ना कानों सुना ना आंखों देखा

भूमिका

सागर से मिला आकाश

बिन पद निरत करों, बिन पद दै दै ताल

बिन नयननि छबि देखणा, श्रवण बिना झनकारि।

पूर्ण साक्षात्कार रहस्यवादी भावना का चरत्माकर्ष कहना उचित है। समस्त विकारों से रहित, लौकिक आकर्षणों से विरत, भावों के द्वंद्वात्मक संघर्षों से प्रथक साधक की आत्मानुभूति की ही अभिव्यंजना होती है उसकी अनबोली वाणी में। जिसमें सब कुछ भूलकर वह पूर्ण आत्मविस्मृत हो जाता है। नवमुकुलित-सुमन वैज्ञानिक दृष्टि से विशेष क्रम में लगी हुई पंखुरियों और पराग का संग्रह मात्र है। सुमन के सौरभ और सौंदर्य से हृदय को प्राप्त होने वाले आनंद का बोध वैज्ञानिक को नहीं होता। इसके विपरीत कलाकार को पुष्प में सौंदर्य से हृदय प्राप्त होने वाले आनंद का बोध वैज्ञानिक को नहीं होता। इसके विपरीत कलाकार को पुष्प में सौंदर्य का ज्ञान नहीं होता, बल्कि अनुभूति होती है। यह अनुभूति उसे अपरोक्ष रूप से होती है। कलाकार से भी अतल गहराई लिए हुए तत्ववेत्ताओं की चेतना को उस परम चेतना की अनुभूति होती है। इस अभौतिक ज्ञान, साधन अनुभूति द्वारा आत्मा एवं अस्तित्व की प्रत्यक्ष अनुभूति सभी मानवप्राणियों के लिए भी उपलब्ध है—"बिइ नयननि छबि देखणा, श्रवण बिना झनकारि"। केवल प्रत्येक साधक में इस अनुभूति की प्राप्ति के लिए संतों जैसी सरलता एवं सागर जैसी गहराई होनी चाहिए।

सागर की अतल गहराई से उठी हुई तरंग समुद्र की सतह से ऊपर उठ जाती है, उसके तटों की सीमाओं का भी उल्लंघन कर जाती है, किंतु आवास उसका समंदर ही है। अपने जन्म, अपनी स्थिति तथा अपने लय के लिए उसे सागर की ही आवश्यकता रहती है। इसी तरह मानवीय संचेतनात्मक सृजन अपनी असाधारणता में भी रहता जीवन का ही है। पूर्णतम निर्मित भी, जीवन के अनंत विस्तार में अपरिचित ही रह जाती है। विश्व की समस्त रूपात्मक तथा जैवी निवृत्ति अणु-परमाणुओं के विशेष संगठन का परिणाम है। मानव एक विशेष भौतिक परिवेश में भी विकास पाता है। विशेष विकास क्रम में उसकी क्रियाशीलता इतनी जटिल और रहस्यमयी रही है कि एक-एक सहज प्रवृत्ति का सहस्त्र-सहस्त्र अर्जित प्रवृत्तियों में हो गया है। और अब एक को दूसरे से भिन्न करना भी असंभव सा है। जैसे एक वटवृक्ष की शाखाएं आकाश की ओर उन्मुख होती हैं तथा जटाएं धरित्री के अंतराल में उतरती हैं, वैसे ही संपूर्ण अस्तित्व मूलतः एक होकर भी सर्वथा विपरीत दिशाओं में प्रसारित सा प्रतीत होता है।

सहस्त्रदल कमल के धीरे-धीरे खुलने वाले सम्पुट के समान ही परम अस्तत्व का सत्य धीरे-धीरे पंखुरित होता है। यह खुलने का क्रम सुंदर तथा उसकी अनुभूति शिव है। शून्य की नौका में बैठकर कभी-कभी समग्र अस्तित्व के सागर को भी अपनी यात्रा करनी पड़ती है। अस्तित्व का यह विशाल सागर शून्य की नौका में ही बैठा है। यह बात सांसारिक लोक में न आज तक किसी ने आंखों से देखी है और न ही किसी ने कानों से सुनी है। किंतु सहस्त्रदल कमल में बैठी मधुमक्षिका ही केवल मधु को पहचान पाती है। पंखुरियों के रस का लोभी भ्रमर केवल सौरभ में सन जाने में जीवन का उद्देश्य मान लेता है। मानव की आस्था की कसौटी काल का क्षण मात्र नहीं बन सकता। क्योंकि वह तो काल पर मनुष्य का स्वनिर्मित सीमावरण है। वस्तुतः साधक की कसौटी क्षणों की अटूट संतृप्ति से निर्मित काल का अजस्त्र प्रवाह ही रहेगा। यह तो शून्य से निर्मित सफीना है जिसमें बैठ कर समंदर को भी सफर करना पड़ता है।

रजत किरणों से नयन पखार

अनोखा ले सौरभ का भार

छलकता लेकर मधु का कोष

चले आए एकाकी पार।

ना कानों सुना ना आंखों देखा

भक्ति, ज्ञान, योग सभी का पर्यवसान मुक्ति में होता है। जिससे उनमें कोई भेद नहीं रह जाता। कबीर के पदों में योग, प्रेम, तथा ध्यान का सुंदर समन्वय हुआ है। यूं तो कबीर के शब्द अत्यंत सरल एवं गहरग हैं। कबीर "मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही न हाथ" कहकर अपनी सादगी को प्रकट कर देते हैं। "वे जुलाहे हैं। जो बोलते हैं, जुलाहे की भाषा है। इसलिए प्यारी भी बहुत है। इसलिए सीधी-सीधी भी बहुत है। उसमें है मिट्टी की सौंधी सुगंध। उसमें गांव की सरलता और सहजता है। जैसे खदान से निकला अभी-अभी हीरा है। तराशा नहीं गया। अभी जौहरियों के हाथ नहीं पड़ा है। अनगढ़ है, इसलिए प्राकृतिक है, नैसर्गिक है, स्वतःस्फूर्त है। बुद्ध के वचन एक सम्राट के वचन हैं—सुसंस्कृत। महावीर के वचन में गणित है, गहरा तर्क, आकाश को छू लेने वाली ऊंचाइयां हैं। कबीर के वचनों में जमीन में गड़ी हुई जड़ें हैं। क्योंकि कबीर तुम्हारे निकटतम हैं। बुद्ध और तुम्हारे बीच बड़ा फासला है, जो फासला राजमहल और झोपड़े के बीच होता है।"

इस तरह यदि हम थोड़ा सहज थोड़ा सजग हो गए तो कबीर के सीधे-सीधे शब्द का भीतर पीयूष की फुहारें बन जाएं। तर्क वितर्क और वाग्जाल से परे बोलचाल की भाषा में कहे अमृत वचनों में फूलों पर पड़ी ओस की बूंद सी माधुरी है। संत हमारे संपूर्ण जीवन को झकझोर देता है। जीवन को तहस-नहस कर वह क्रांति की तुरही सनाने लगता है।

कहै कबीर मैं हौं वाही को

होनी होय सो होय।

प्रेम की कथा अकथनीय है। प्रेम का प्रारंभ है, अंत नहीं। यि कथा प्रारंभ होकर अंतहीन अंत पर चलती चली जाती है। एक तारे की स्वर लहरी जो प्रारंभ हुई उसके पहले कोई ध्वनी ही नहीं थी। फिर तो वे तार झंकृत ही होते रहते हैं। सब कुछ डूब जाता है किंतु वे स्वर नहीं डूबते। वह अनंत अस्तित्व की अनुगूंज है। वही शाश्वत का सत्य और सुंदर रूप है। वह गूंज समय का 'पार्ट' नहीं, वह समयातीत है। प्रेम की विराटता में हम समाहित हो जाते हैं किंतु हम उसे समाहित नहीं कर पा सकते। इसे निर्विचार में ही जाना जाता है। शून्य में ही परिचय होता है। जो इस शून्य में डूबता है वह प्रेम को समाप्त नहीं कर पाता, स्वयं समाप्त हो जाता है।

पश्चिम के एक बहुत बड़े दार्शनिक विटगिन्स्टीन ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक "ट्रेक्टेट्स" में कहा है, "जिस संबंध में कुछ न कहा जा सके, उस संबंध में हमें कुछ भूल कर भी नहीं कहना चाहिए। क्योंकि जो कुछ भी हम कहेंगे वह गलत एवं भ्रांतिपूर्ण ही होगा।" इस तरह तात्विक बात कभी नहीं कही जाती। जीवन को स्वस्थ रखने का एक ही इलाज है कि हम चित्त से मुक्त हो जाएं। ओशो कहते हैं—

"चित्त शब्दों से भरा है, इसलिए शब्दों के ही द्वारा चित्त से मुक्त हो जाओ, क्योंकि शास्त्रों में कितने ही प्यारे शब्द हों, शब्द, शब्द ही हैं। और तुम्हें जाना है निःशब्द में, तुम्हें जाना है महाशून्य में।"

जो व्यक्ति शून्य हो गया हो उसे भी सर्वसाधारण मानव के प्रति अपनी महाकरुणा की अभिव्यक्ति के लिए शब्दों का सहारा लेना पड़ता है। किंतु शब्द महत्वपूर्ण नहीं है। ये तो इशारे मात्र हैं। आगे और भी आगे महाशून्य में खो जाने के लिए। क्योंकि सर्वसाधारण मानव शब्दों को एक झटके में छोड़ नहीं पाता है, इसलिए ही ऐसे ज्ञानियों को बोलना पड़ता है।

"अकथ कहानी प्रेम की" और "होनी होय सो होय" नामक प्रवचनमालाओं में संत शेख फरीद और कबीर जैसे प्रज्ञापुरुषों को भी अपनी देशनाओं के लिए शब्दों की आड़ लेनी पड़ी थी। ओशो ने उन वाणियों को अपनी प्रवचनमाला का आधार बनाकर सर्वसाधारण मानव के लिए सुलभ बना दिया है। शब्दों के पार के संसार में जाने के लिए, शब्दों की दीवारें लांघनी ही पड़ेंगी। फरीद और कबीर जैसे संत हमें अपने आत्मीय से प्रतीत होते हैं। पंडितों एवं पुराहितों की भाषा में वह आत्मीयता नहीं मिलेगी। पंडितों की वाणी में निंदा, भय और अनादार ही मिलता है। संत, शांत, निर्मल झील से ममतामय स्वरूप में हमें अपने प्रतिबिंबों से परिचित कराते हैं। मुक्तकाश में उड़ाने भरने के लिए उनका मधुर सहलावा हमें निर्भय बना देता है।

ना कानों सुना ना आंखों देखा

सत्य की अनुभूति, ज्ञानेंद्रिय एवं कर्मेंद्रियों, से पार की अनुभूति है। यह "न कानों सुना न आंखों देखा" की अनुभूति है। जिस अस्तित्व को न आंखों से देख सकते हैं और न ही जिसकी स्वरलहरी कानों से सुनी जा सकती है, उन्हें फरीद और कबीर ने अपनी अकथनीय भाषा में कहने का प्रयास किया है।

प्रेम हमारी निजता की मृत्यु है, इसलिए उसे महामृत्यु भी कहा जाता है। कहानी प्रेम की अकथनीय है। प्रेम की राह में प्रतिपल चलना ही उसे पा लेना है। "जिसने प्रेम में मरना सीखा, मिटना सीखा, जिसने मिटने का मजा ले लिया, जिसे मिटने स्वाद आ गया—वह शायद मृत्यु में भी मिटने को स्वेच्छा से राजी हो जाए।"

पथ मेरा निर्वाण बन गया

प्रति पग शत वरदान हो गया।

प्रेम की राह ही साधक की मुक्ति का पथ है। जो अंतहीन है। यह तो अतलांत सागर में एक छलांग है, अब तो होनी होय सो होय। अस्तित्व का स्वभाव ही रहस्य है। बेबूझ होना ही उसका धर्म है। इसलिए जितने भी संत हुए, वे हमें रहस्य और बेबूझ ज्ञात होते हैं। क्योंकि उनसे अस्तित्व बोलता है। उनकी वाणी अटपटी मालूम होती है। उनकी भाषा में अतर्क्य कुछ झांकता सा प्रतीत होता है।

"एक अचंभा हमने देखा, नदिया लागी आग

पानी पीना जल गया और मछली खेलें फाग"

मैंने एक आश्चर्य देखा कि नदी में आग लगी है। पानी पानी जल जाने पर भी उसमें निवास कर रही मछलियां होली खेल रही हैं। यह बात बड़ी रहस्यपूर्ण है, किंतु संतों की इन वाणियों में ही रहस्य बोलता है। कबीर कहते हैं कि यह आश्चर्य है कि तुम मरोगे नहीं। वहीं फरीद कहते हैं—वह परम अमृत तेरे भीतर ही है। तू कहां जंगल-जंगल, पहाड़-पहाड़ भटकता है। तू आखिर किसे खोजता है? यह खोज ही बेकार है। जिसे बीज में विशाल वटवृक्ष समाया है उसी तरह व्यक्ति में ही परमात्मा भी बैठा है।

कबीर और फरीद समसामाईक संत थे। प्रेम मार्ग के दोनों पथिक हैं किंतु कबीर कहते हैं—"नाच उठा हूं, मग्न हो गया हूं, मदमस्त हो गया हूं, यह आकाश टूट पड़ा मेरे ऊपर। यह कैसा प्रेम है जो मुझे भिगोए चला जाता है, डुबोए चला जाता है। यह तो चहुं ओर से रस गगन गुफा में अजस्त्र रस से भिगोए चला जाता है। कबीर स्नेह का आमंत्रण-पत्र हैं जो मात्र औपचारिकता से पूर्ण नहीं है। उसमें अंतःकरण की पुकार है आक्रान के लिए। संतों का जीवन अहोभाव का जीवन है। उसमें प्रार्थना है, मांग कहीं दूर-दूर तक नहीं। वह मांगता नहीं और परमात्मा अजस्त्र रस से भिगोए चला जाता है। कबीर और फरीद दोनों अद्वैत हैं। दोनों का पथ एक है। अब जब कि सब कुछ अस्तित्व के प्रति समग्र समर्पण है तब प्रत्येक बात के लिए कबीर भी तैयार हैं और फरीद भी। जो परमतत्व बिना मांग के ही दीन किए जा रहा है उसके अनंत प्रवाह में अपने को छोड़ देना ही उन्होंने जाना है। अब खुद का कोई संकल्प विकल्प नहीं रह गया। अब जो होना हो वह हो। इसके लिए चिंतित नहीं हैं वे।

जैसे वर्षा के कजरारे मेघ आसाढ़ में गहराते हैं। नीर से अप्लावित वे शून्य होने को ही आतुर होते हैं। जितनी प्यासी धरती होती है, उतनी आतुरता, उतनी गहन प्यास बादलों के बरसने में भी होती है। मानव यदि शून्य हो जाए अपने हृदय कपाट की अर्गला खोल दे तो परम प्रकाश प्रवेश के हेतु उतना ही प्रशिक्षित है। कबीर और फरीद जिस प्रेम की अकथ कहानी कह रहे हैं वह कामनाओं से परे, प्रार्थना के अहोभाव से परिपूर्ण है। प्रेम की ऊंचाई का वह गौरीशंकर का शिखर जहां यह भाव प्रार्थना और अर्चन, वन्दन बन जाता है। उससे ही तो परम सत्ता के साम्राज्य का सिंहद्वार खुल पड़ता है।

उसकी ऊंचाई के सम्मुख हिम गिरि नगण्य

उसकी नीचाई के सम्मुख नीचा पाताल

उसकी असीमता के सम्मुख आकाश छुद्र

उसकी विराटता के सम्मुख अति छुद्र काल

"एक अहर्निश प्यास जलने लगे, दग्ध करने लगे, रोंआ-रोंआ उत्तप्त हो उठे, श्वास-श्वास उसे पुकारने लगे। जिसे तुम जीवन समझते हो, यह तो मिट जाएगा। इसके पहले कि यह जीवन मिटे, इस जीवन को, उस जीवन को पाने की सीढ़ बना लो, जो कभी नहीं मिटता है। उस शाश्वत को जाने बिना मत जाना।"

कबीर और फरीद की वाणी को ओशो ने नई रोशनी में एक नई रोशनी में एक नई स्वरलहरी प्रदान की है, जो मौन-मुखर है। प्रेम के पास कोई भाषा नहीं है, उसकी भाषा मौन की भाषा है। जब प्रेम हृदय में घनीभूत होगा तो अभिव्यक्ति भी तलाशेगा। किंतु अब कोई आधार नहीं है, सब उपाय गूंगे हो गए। इसी कारण प्रेम शब्दातीत है। बूंद में कोई विशाल सागर को समाना चाहे, ऐसा ही शब्दों में भरने की चेष्टा मात्र है।

संत मन के पार हो, तो वह गुरु के करीब होता है। प्रकृति रमा की गोद में विचरण करता है। तभी वह परमचेतना के प्रकाश में खिलता है, और संपूर्ण अस्तित्व के साथ तादात्म्य स्थापित कर अद्वैत हो जाता है। ओशो इन वाणियों के माध्यम से हमें 'सुरति' दिलाने आए हैं। वे सोते हुए मनों को जगाने की पुकार लेकर प्रकट हुए हैं। सुदूर पथ की यात्रा पर ले चलने आए हैं जहां प्रेम जागकर विराट से विराटतम होने लगता है।

हिन्दी साहित्य के बड़े-बड़े विद्वान और आचार्य कबीर और फरीद जैसे बेपढ़े-लिखे संतों की शाब्दिक व्याख्याएं करने में आपस में संघर्षरत हो गए। उस युग की सामाजिकता एवं धार्मिक अवस्थाओं के इतिहास के पन्ने पलटने में ही समय गंवाते रहे। उनकी कविताओं में उपमा, रूपक, छंदों के वर्णवृत्तों की खोज करते रहग। क्योंकि सेत-काव्य की "सर्जरी" कर "स्पेशालिस्ट" का नामपट उन्हें अपने साहित्य की दूकानों के दरवाजों पर लगााना था। उनकी अनुभूतियों को, उनकी दीवानगी एवं उनके समर्पण की गहराई में डूबकर उसे पुनुरुज्जीवन देना कोई इन जैसे दूकानदारों का कार्य भी नहीं था। उसके लिए वही पकड़ता, अलमस्ती, और अनुभूति का आकाश अपने में लिए कोई 'दिवाना' ही उन अनुभूतियों को पुनः हम तक पहुंचा सकता है।

ओशो ही मानो कबीर एवं फरीद की वाणियों के माध्यम से हमसे संवाद करते प्रतीत होते हैं। इन संतों की देशनाओं के प्याले ओशो ने अपनी आत्मा की सुराही से भर कर हमें सौंपे हैं। जिसकी जितनी क्षमता है वह उतना पिए। और मतवाला होकर खुद को ही विस्मृति दे दे।

कबीर अगर आग हैं तो उसे अपनी हथेलियों में रखकर ओशो ने करोंड़ों दीपों को जीवनदान दिया है। मन की अंधेरी घाटियों में बिलबलिाते वासना के भयानक सर्प एवं बिच्छुओं को सर्वसाधारण मानव से परिचित कराया है। अंतस की ओर यदि हम घूमें, वहां मधुधार से हमारा परिचय हो सकेगा। उस स्त्रोत को ही पहचानना है। आसक्ति के विचारों के मकड़-जाल हमें बांधे रहते हैं। प्रेम का सहज स्वरूप जहां प्रकट होता है तब परम चेतना की एक झलक वह प्राप्त कर पाता है।

सब कहते हैं—"खोलो खोलो

छबि देखूंगा जीवन धन की

आवरण सभी बन जाते हैं

है भीड़ लग रही दर्शन की"

जिसकी और पाने की आपाधापी समाप्त हो गई उसकी दौड़ भी चली जाती है। यह तृष्णा ही है जो हमें जन्मों में वापस लाती है। जो इस चक्रव्यूह के बाहर है उसके आनंद का पारावार नहीं। "जीवन रहस्य तो एक संगीत की तरह है जो परमात्मा बजाता है, एक सिद्धांत की तरह नहीं है जो गणित की तरह ब्लैक-बोर्ड पर समझाया जाता है। कबीर जो ध्यान के लिए शब्द उपयोग करते हैं, वह शब्द है—उसको "सबद" जिसके भीतर रात की धुन अपने आप उठने लगी है, उठानी नहीं पड़ती, जिसके भीतर ओंकार का नाद होने लगा है उसको "सबद" कहते हैं वे।" ओशो उसे ध्यान की संज्ञा देते हैं। "साखी" भी कबीर का अपना शब्द है। साखी, साक्षी का ही रूप है। जिसे साक्षी की प्रतीति हुई उसके वचन का नाम "साखी"। जिसने अपने हृदय में साक्षी को

अनुभूत कर लिया हो, वह ध्यान की अंतिम शुद्धता है। हम एकदम अवाक रह जाते हैं, मौन रह जाते हैं। एक क्षण को आश्चर्यचकित, विमुग्ध, ठगे-ठगे रह जाते हैं। अवाक! वाणी खो जाती है। शब्द डूब जाते हैं, ज्ञान तिरोहित हो जाता है। एक अनजाना रहस्य किसी अज्ञात लोक से उतरकर हमें घेर लेता है। हम रहस्य में नहा जाते हैं। यही अस्तित्व की अनुभूति का आरंभ है।

कर्मकांडी नबियों के घोर विरोध ने सूफी संतों की प्रेम-भावना को परिमर्जित करके ही उसके परम प्रेम के रूप में प्रतिष्ठित किया था। राबिया ने माधुर्यभाव की स्थापना सूफीमत में की। अपने इष्ट से मिलने में किसी मध्यस्थ की आवश्यकता उसे न जान पड़ी। मानवीय अंतर्वृत्तियों में प्रेम का किसी विशेष गुण से संबंध नहीं होता, वह तो सामान्य को भी विशिष्ट बना देता है। प्रिय के माध्यम से उसे अपने व्यक्तित्व के प्रसार का अवसर प्राप्त होता है। केंद्रगत आकर्षण प्रेम है। उसमें दुराव द्विधा और संकोच का स्थान नहीं होता। व्यक्तित्व अपने सीमित क्षेत्र को छोड़कर व्यापकत्व को प्राप्त करता है।

प्रेम जिस प्रकार बरबस उत्पन्न होता है, उसी प्रकार सच्ची प्रीत की लगन भी बरबस बढ़ती है। प्रेम की निश्चयात्मकता के कारण प्रिय प्राप्ति की दुरूहता या प्रयास के कष्ट, त्याग और आपा, मिटाने की भावना दृढ़ होती जाती है। उसमें दुराव द्विधा और संकोच का स्थान नहीं होता। व्यक्तित्व अपने सीमित क्षेत्र को छोड़कर व्यापकत्व को प्राप्त करता है।

प्रेम जिस प्रकार बरबस उत्पन्न होता है, उसी प्रकार सच्ची प्रीत लगन भी बरबस बढ़ती है। प्रेम की निश्चयात्मक के कारण कोई अभिलाषा नहीं होती। शेख फरीद प्रेम के पथिक हैं। फरीद ने शुद्ध प्रेम की बांसुरी की स्वर लहरी ही छेड़ी है। कबीर भी प्रेम की चर्चा करते हैं लेकिन ध्यान एवं योग की भी बातें करते हैं। फरीद को समझना प्रेम की गहराई को ही जानना होगा। शेख के प्रेम में ही समाधि है। जब मनुष्य स्वेच्छा से समर्पित होगा तभी उस प्रेम की एक अम्लान किरण उसके हृदय पर नृत्य करेगी।

"भक्ति परम स्थिति है, वह आखिरी बात है। उससे ऊपर कोई उंचाई नहीं। वह अंतिम आकाश है।

स्त्रौण चित्त की साकार प्रतिमा में ही परमात्मा अपनी प्राण-प्रतिष्ठा करता है। प्रेम एक अंतरतम पहचान है—बिना जाने, बिना पूर्व परिचय के, और हृदय पहचान लेता है। प्रेम का यह अलौकिक अवसर फरीद गंवाना नहीं चाहते। अब तो द्वार पर जो दस्तक देगा उसे शेख पहचान ही लेंगे। कालातीत को जीने के लिए क्षणभंगुरता का आभास भी होता है हमें, लेकिन इसमें ही शाश्वत छिपा है। क्षुद्रता चारों तरफ रहे किंतु इससे चिंतित नहीं होना है हमें। समय की अवरत धार में रहकर भी हमारे प्राणों की जड़े अनंत की गहराई में जमी हुई हैं।

ओशो कहते हैं—"अकथ कहानी प्रेम की प्रारंभ होती है। एक दिन वीणा के तार बजने शुरू होते हैं। उसके पहले भनक भी नहीं थी। फिर वीणा बजती ही चली जाती है। वह गूंज अनंत की है, शाश्वत की है, वह समय का हिस्सा नहीं, समय के पार है। तुम्हारे लिए प्रेम करीब होगा। उससे तुम्हारे तार जुड़ जाएंगे। प्रेम भी आखिर ध्यान पर पहुंचा देता है। ध्यान सीधी छलांग है। प्रेम तो क्रमिक उपाय है। ध्यान बड़ा दुस्साहस मांगता है—अंधेरे में कूद जाने का। प्रेम धीरे-धीरे फुसलाता है, आ जाओ आश्वासन देता है, घबड़ाओ मत, साथ हूं मैं। प्रेम सुगम है, ध्यान दुर्गम है।"

अपने गंतव्य पर पहुचने के लिए थोड़ी भटकन आवश्यक है। इसी तरह ध्यान तक के सफर के लिए प्रेम की यात्रा आवश्यक है। संत फरीद कहते हैं, कौन सा शब्द है, जो तेरे कानों को मीठा हो, वही गाऊं, वही गुणगुणाऊं? कौन-सा गुण है जो मैं ओढ़ लूं और तेरे प्रेम की नजर मेरी तरफ हो जाए। कबीर, और फरीद हमें हमारे अत्यंत निकट के प्रतीत होते हैं। बुद्ध और महावीर में एक फासला पाते हैं। फरीद में हम अपने वर्तमान के सत्य को भी पाते हैं और भविष्य को भी। स्वाभाविक है कि उनसे आत्मीयता लगे। फरीद की भक्ति विस्तार पाते-पाते महावीर की अहिंसा हो जाती है। वही बुद्ध की महाकरुणा बन जाती है। शुरू हुआ था फरीद का प्रेम

परमात्मा से, अंत होता है समस्त से। गंगोत्री जब प्रारंभ होती है तब अत्यंत क्षीणकाय धार होती है किंतु जब महासागर में वह मिलकर गंगासागर ही बन जाती है।

प्रेम का प्रारंभ माशूक का आशिक से इश्क होता है लेकिन यही प्रेम बाद में—

"मधुर मुझको हो गए सब
मधुर प्रिय की भावना ले"

...के रूप में अपने आप को पाता है। प्रेम मार्ग को भी मूल्य देता है। ध्यान सिर्फ सिद्धि है। ध्यान क्रमिक नहीं, त्वरीत है। वह छलांग है। भक्ति की अंतिम अवस्था पूर्ण आत्म समर्पण है। उसमें सोच विचार करने की आवश्यकता नहीं। परमात्मा ही नदी है तथा वही मल्लह भी। शून्य के अलौकीक मंदिर में अदभुत पताका लगी हैं। अगणित ताराओं के मणि-मुक्ताओं से जटित चंद्र ज्योत्सना का वितान तना हुआ है, रवि शशि की दीप ज्योति द्युतिमान है। उस अनुपम लोक की शोभा देखकर भक्त का मन थिरक उठता है। जो इस अपूर्व दृश्य का दर्शन करता है वह जीवन पय□त बावले अलमस्त डोलते रहे—

"हमन है इश्क मस्ताना हमन को होशिारी क्या
रहें आजाद या जग में हमन दुनिया से यारी क्या
जो बिछुड़े पियारे से भटकते दर-ब-दर फिरते
हमारा यार है हममें हमन को इंतजारी क्या"

समाधि की अवस्था का अर्थ होता है जहां सारी समस्याओं का समाधान हो गया। जहां कोई व्याकुलता नहीं। न कोई संताप, न चिंता, न लोभ, न भय ही रहा। "मनुष्य भी एक चीज है। और जब तक उसमें सहस्त्रदल कमल का फूल न खिल जाए—जिसको योगी कहते हैं सहस्त्रदल कमल, जिसको बुद्ध ने निर्वाण कहा, जिसको महावीर ने कैवल्य, जिसको कबीर कहते हैं सुरति या दशम द्वार—सहस्त्रार। जब तक ध्यान की त्वरा न होगी, जब तक ध्यान एक जलती अग्नि न बन जाए जब तक दसवां द्वार नहीं खुलेगा। दसवें द्वार की प्रतीति परमात्मा है।"

"न कानों सुना न आंखों देखा" प्रवचनमाला के अंतर्गत ओशो ने कबीर एवं फरीद की वाणी को सहजता प्रदान की है। सिर्फ शाब्दिक अर्थों से ही उनकी कविता का परिचय कराना उनका उद्देश्य नहीं था। उन वाणियों में गुंथी हुई अनकही अनुभूतियों को भी कहने का प्रयास किया है। कबीर एवं फरीद वाणी के साथ-साथ जिज्ञासु एवं मुमुक्षुओं के दृश्य में उठनेवाले प्रश्नों के समाधान भी भगवान ने किए हैं। इस संबंध में भगवान कथन ध्यान देने योग्य है—

"जीवन के जो वास्तविक प्रश्न हैं, उनके उत्तर नहीं होते। जो उत्तर देते हैं वे मूढ़ हैं। पूछने वाला नासमझ है, इसलिए पूछ रहा है और उत्तर देने वाला भी नासमझ है, इसलिए उत्तर दे रहा है। वस्तुतः ज्ञानी जो हैं वे तुम्हारे मूढ़ प्रश्नों के उत्तर नहीं देते। समाधान देते हैं, उत्तर नहीं, भेद समझ लेना। उत्तर और समाधान में बड़ा भेद है: प्रश्न का गिर जाना, प्रश्न का मिट जाना।"

इस तरह हम देखते हैं कि भगवान ने प्रत्येक मुमुक्षु के अंतरतम तक झकझोर कर सारे प्रश्नों को मिटा दिया है। हम शब्दों को ही पहचानते हैं, शून्य को नहीं पहचानते। फरीद और कबीर के मिलन की कथा बड़ी अनूठी है। जब एक बार दोनों एक दूसरे से मिले तब उनके शिष्य अबोले मिलन को आश्चर्य से देखते रह गए। बिना वाणी के ही उनका संवाद हुआ शून्य में। वह दो शून्यों का मिलन था। जब दो शून्य मिलते हैं तब द्वैत समाप्त हो जाता है। वार्तालाप कैसे होगा? जैसे पानी की दो बूंदें सरकते-सरकते पास आ जाती हैं फिर एक ही आकार बन जाता है।

ऐसे ही कबीर एवं फरीद इस प्रवचनमाला के दो ऐसे विशाल शून्यता के सागर हैं जो धीरे-धीरे अपने प्रेम में आकर्षित होकरर सरकते-सरकते एकाकार हो गए हैं। आकाश इनके मिलन को अनुभूत कर रहा है।

ना कानों सुना ना आंखों देखा

आज का मानव कुंठाग्रस्त दुखी और दिक्भ्रमित है। इसका कारण यह है कि वह वर्तमान में जीना नहीं जानता। उसे इस मर्म का भी अहसास नहीं कि अस्तित्व का आधार कोई द्वयता नहीं है। ओशो यदि कबीर या फरीद को चुनते हैं तो उनके इस चयन के पीछे अद्वैत की देशनाओं का ही समर्थन है। आत्मा पर नाम, रूप, दर्शन, उपाधि के कई झीने-झीने परदें हैं: उन परदों की सदृढ़ दिवारें तोड़ कर हमारी शुद्ध चेतना से हमारा साक्षात्तकार कराना इन महान संतों का जीवन लक्ष्य रहा है।

ओशो की कल्पनाशीलता, अत्यंत काव्यमयी भाषा सीधे हृदय को स्पर्श करने वाली है। उसमें बिंबविधायकता एवं अपार विश्लेषणक्षमता है। भाषा शैली में प्रवाह, प्रांजलता, विशदता एवं प्रभाविष्णुता का सुंदरतम सामंजस्य है। अध्यात्म के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों के सरलतम विश्लेषण में उनकी भाषा की गरिमा स्पष्ट है। दर्शन की शुष्कता में कविता की प्राणमयी धारा प्रवाहित कर समस्त जिज्ञासुओं के मन प्राण आप्लावित कर दिए हैं।

युद्धभय, अर्थ-संक्रांति, हत्याएं, सांप्रदायिकता, आतंकवाद इन कुचक्रों में उलझा सारा विश्व अराजकता की स्थिति में है। दिशाबोध नष्ट हो गया है। घोर कालिमामयी रजनी में कबीर एवं फरीद की प्रेम-रश्मि उनके सिकुड़े सिमटे जीवन में नए प्राणों का संगीत भर देंगी। इन अदभुत वचनों में ओशो ने मात्र उन्हीं प्रश्नों का समाधान नहीं किया जो हमने पूछे हैं; उनका भी समाधान हमें मिलता है जो प्रश्न हम कभी नहीं पूछते। उन्होंने उन प्रश्नों को भी मिटा दिया है जो हम पूछना चाहते हैं किंतु शब्दों की सीमाएं उस असीम को बांध नहीं पाती हैं। हमारे अचेतन में पड़े हुए प्रश्नों के भी समाधान समाहित हैं इनमें, जो शायद कभी चेतन भी नहीं हो पाते। गुरु के बहाने चुप शांत बैठना हम सीखाते हैं। उसके द्वारा ही सत्संग की कला एवं संगीत में डूबते हैं। वही माध्यम है। जो रहस्यानुभूति हमारे ज्ञान के क्षेत्र में एक सिद्धांत मात्र थी वही हृदय की कोमलतम भावनाओं में प्राण प्रतिष्ठा पाकर इन संतों के अलौकिक प्रेम से अतिरंजित होकर ऐसे कलात्मक रूप में अवतीर्ण हुई जिसने मानव के हृदय और बुद्धि के दोनों किनारों को तृप्ति प्रदान कर दी। एक ओर कबीर की ध्यान साधना और प्रेम की सम-विषम शिलाओं से बंधा हुआ और दूसरी और फरीद के विशद प्रेम विरह की अत्यंत शिरीष कोमल अनुभूतियों की बेला में उन्मुक्त यह रहस्य का सागर, मानव संस्कृति को क्या दे सका है यह कहना अत्यंत कठिन ही होगा। इतना निश्चित है कि इस भौतिकता से परिपूर्ण शुष्क जगत में इसकी उपादेयता कितनी और किस सीमा तक है उसे भगवान की मुखर-मौन वाणी ने अपनी सरलतम एवं सहजतम अभिव्यक्ति में प्रतीति करा दी है:

सागर ही तुम्हारा सत्य नहीं
वह तो गतिमय स्त्रोत की तरह
गतिहीन स्थिर भर है।
तुम्हारा सत्य तुम्हारे ही भीतर है।
ओ रंभाती नदियो
बेसुध
कहां भागी जाती हो?
वंशीरव
तुम्हारे ही भीतर है।

प्रो.डॉ. विकल गौतम
“अनहद”
13, शिवनेरी ले आऊट,

ना कानों सुना ना आंखों देखा

तपोवन रोड, अमरावती
(महाराष्ट्र) 444 602

डॉ विकल गौतम नागपुर विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में एम.ए., पीएच. डी.हैं और उनके मार्गदर्शन में बहुत-से छात्र पीएच.डी. प्राप्त कर चुके हैं। आप नागपुर विश्वविद्यालय की हिंदी साहित्य परिषद के सचिव होने के साथ-साथ 'कोंपले', 'ज्येति', तथा 'वसंतोत्सव' नाम की तीन पत्रिकाओं के संपादक हैं। आपने लगभग 25 नाटकों का निर्वाण एवं निर्देशन किया है तथा प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया है। आल इंडिया रेडिओ, नागपुर स्टेशन के आप नियमित वक्ता हैं और साथ ही महाराष्ट्र की अनेकों सांस्कृतिक संस्थाओं के सक्रिय पदाधिकारी हैं।

अनुक्रम

न कानों सुना न आंखों देखा

पहला प्रवचन

सूत्र

बोलै सेखु फरीदु पियारे अलह लगे।
इहु तन होसी खाक निमाणी गोर घरे।।
आजु मिलावा सेख फरीद टाकिम।

कूंजड़ीआ मनहु मचिंदड़ीआ।।
जे जाणा मरि जाइए घुमि न आईए।
झूठी दुनिया लगी न आपु वआईए।।
बोलिए सचु धरमु न झूठ बोलिए।
जो गुरु दसै वाट मुरीदा जोलिए।।
छैल लघंदे पार गोरी मनु धीरिआ।
कंचन वंने पासे कलवति चीरिआ।।
सेख हैयाती जगि न कोई थिरु रहिआ।
जिसु आसणि हम बैठे केते वैसि गइआ।।
कातिक कूंजां चेति डउ सावणि बिजुलीआं।
सीआले संहंदीआं पिर गलि बाहड़ीआं।।
चले चलणहार विचारा लेइ मनो।
गंढेदिआं छिह माह तुरंदिआ हिकु खिनो।।
जिमी पुछै असमान फरीदा खेवट किनी गए।
जारण गोरा नालि उलामे जीअ सहे।।

फरीद : खालिस प्रेम

प्रेम और ध्यान—दो शब्द जिसने ठीक से समझ लिये, उसे धर्मों के सारे पथ समझ में आ गये। दो ही मार्ग हैं। एक मार्ग है प्रेम का, हृदय का। एक मार्ग है ध्यान का, बुद्धि का। ध्यान के मार्ग पर बुद्धि को शुद्ध करना है—इतना शुद्ध कि बुद्धि शेष ही न रह जाए, शून्य हो जाए। प्रेम के मार्ग पर हृदय को शुद्ध करना है—इतना शुद्ध कि हृदय खो जाए, प्रेमी खो जाए। दोनों ही मार्ग से शून्य की उपलब्धि करनी है, मिटना है। कोइ विचार को काट-काट कर मिटेगा; कोई वासना को काट-काट कर मिटेगा।

प्रेम है वासना से मुक्ति। ध्यान है विचार से मुक्ति। दोनों ही तुम्हें मिटा देंगे। और जहां तुम नहीं हो वहीं परमात्मा है।

ध्यानी ने परमात्मा के लिए अपने शब्द गढ़े हैं—सत्य, मोक्ष, निर्वाण; प्रेमी ने अपने शब्द गढ़े हैं। परमात्मा प्रेमी का शब्द है। सत्य ध्यानी का शब्द है। पर भेद शब्दों का है। इशारा एक ही तरफ है। जब तक दो हैं तब तक संसार है; जैसे ही एक बचा, संसार खो गया।

शेख फरीद प्रेम के पथिक हैं,और जैसा प्रेम का गीत फरीद ने गाया है वैसा किसी ने नहीं गाया। कबीर भी प्रेम की बात करते हैं, लेकिन ध्यान की भी बात करते हैं। दादू भी प्रेम की बात करते हैं, लेकिन ध्यान की बात को बिलकुल भूल नहीं जाते। नानक भी प्रेम की बात करते हैं, लेकिन वह ध्यान से मिश्रित है। फरीद ने शुद्ध प्रेम के गीत गाए हैं; ध्यान की बात ही नहीं की है; प्रेम में ही ध्यान जाना है। इसलिए प्रेम की इतनी शुद्ध कहानी कहीं और न मिलेगी। फरीद खालिस प्रेम हैं। प्रेम को समझ लिया तो फरीद को समझ लिया। फरीद को समझ लिया तो प्रेम को समझ लिया।

प्रेम के संबंध में कुछ बातें मार्ग-सूचक होंगी, उन्हें पहले ध्यान में ले लें। पहली बात: जिसे तुम प्रेम कहते हो, फरीद उसे प्रेम नहीं कहते। तुम्हारा प्रेम तो प्रेम का धोखा है। वह प्रेम है नहीं, सिर्फ प्रेम की नकल है, नकली सिक्का है। और इसलिए तो उस प्रेम से सिवाय दुख के तुमने कुछ और नहीं जाना है।

कल ही फ्रांस से आइ एक संन्यासिनी मुझे रात पूछती थी कि प्रेम में बड़ा दुख है, आप क्या कहते हैं? जिस प्रेम को तुमने जाना है उसमें बड़ा दुख है, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन वह प्रेम के कारण नहीं है, वह

तुम्हारे कारण है। तुम ऐसे पात्र हो कि अमृत भी विष हो जाता है। तुम अपात्र हो, इसलिए प्रेम भी विषाक्त हो जाता है। फिर उसे तुम प्रेम कहोगे तो फरीद को समझना बहुत मुश्किल हो जाएगा; क्योंकि फरीद तो प्रेम के आनंद की बातें करेगा; प्रेम का नृत्य और प्रेम की समाधि और प्रेम में ही परमात्मा को पाएगा। और तुमने तो प्रेम में सिर्फ दुख ही जाना है, चिंता, कलह, संघर्ष ही जाना है। प्रेम में तो तुमने एक तरह की विकृत रुग्ण दशा ही जानी है। प्रेम को तुमने नर्क की तरह जाना है। तुम्हारे प्रेम की बात ही नहीं हो रही है।

जिस प्रेम की फरीद बात कर रहा है, वह तो तभी पैदा होता है जब तुम मिट जाते हो। तुम्हारी कब्र पर उगता है फूल उस प्रेम का। तुम्हारी राख से पैदा होता है वह प्रेम। तुम्हारा प्रेम तो अहंकार की सजावट है। तुम प्रेम में दुसरे को वस्तु बना डालते हो। तुम्हारे प्रेम की चेष्टा में दूसरे की मालकियत है। तुम चाहते हो, तुम जिसे प्रेम करो,वह तुम्हारी मुट्ठी में बंद हो,तुम मालिक हो जाओ। दूसरा भी यहीं चाहता है। तुम्हारे प्रेम के नाम पर मालकियत का संघर्ष चलता है।

जिस प्रेम की फरीद बात कर रहा है, वह ऐसा प्रेम है जहां तुम दूसरे को अपनी मालकियत दे देते हो; जहां तुम स्वेच्छा से समर्पित हो जाते हो; जहां तुम कहते हो : तेरी मर्जी मेरी मर्जी। संघर्ष का तो सवाल नहीं है।

निश्चित ही ऐसा प्रेम दो व्यक्तियों के बीच नहीं हो सकता। ऐसा प्रेम दो सम स्थिति में खड़ी हुई चेतनाओं के बीच नहीं हो सकता। ऐसे प्रेम की छोटी-मोटी झलक शायद गुरु के पास मिले; पूरी झलक तो परमात्मा के पास ही मिलेगी। ऐसा प्रेम पति-पत्नी का नहीं हो सकता, मित्र-मित्र का नहीं हो सकता। दूसरा जब तुम्हारे ही जैसा है तो तुम कैसे अपने को समर्पित कर पाओगे? संदेह पकड़ेगा मन को। हजार भय पकड़ेंगे मन को। यह दूसरे पर भरोसा हो नहीं सकता कि सब छाड़ दो, कि कह सको कि तेरी मर्जी मेरी मर्जी है। इसकी मर्जी में बहुत भूल-चूक दिखाइ पड़ेगी। यह तो भटकाव हो जाएगा। यह तो अपने हाथ से आंखे फोड़ लेना होगा। ऐसे ही अंधेरा क्या कम है, आंखे फोड़ कर तो और मुश्किल हो जाएगी। यह तो अपने हाथ में जो छोटा-मोटा दीया है बुद्धि का, वह भी बुझा देना हो जाएगा। यह तो निर्बुद्धि में उतरना होगा। यह संभव नहीं हैं।

मनुष्य और मनुष्य के बीच प्रेम सीमित ही होगा। तुम छोड़ोगे भी तो सशर्त छोड़ोगे। तुम अगर थोड़ी दूसरे को मालकियत भी दोगे तो भी पूरी न दोगे, थोडा बचा लोगे—लौटने का उपाय रहें; अगर कल वापस लौटना पड़े, समर्पण को इनकार करना पड़े तो तुम लौट सको; ऐसा न हो कि लौटने की जगह न रह जाए। तुम सीढ़ी को मिटा न दोगे, लगाए रखोगे।

साधारण प्रेम बेशर्त नहीं हो सकता, अनकंडिशनल नहीं हो सकता। और प्रेम जब तक बेशर्त न हो तब तक प्रेम ही नहीं होता। तुमसे उपर कोई, जिसे देख कर तुम्हें आकाश के बादलों का स्मरण आए; जिसकी तरफ तुम्हें आंखें उठानी हों तो जैसे सूरज की तरफ कोई आंख उठाए; जिसके बीच और तुम्हारे बीच एक बड़ा फासला हो, एक अलंघ्य खाई हो; जिसमें तुम्हें परमात्मा की थोड़ी-सी प्रतीति मिले—उसको ही हमने गुरु कहा है।

गुरु पूरब की अनूठी खोज है। पश्चिम इस रस से वंचित ही रह गया है; उसे गुरु का कोई पता ही नहीं है। वह आयाम जाना ही नहीं पश्चिम ने। पश्चिम को दो मित्रों का पता है, शिक्षक- विद्यार्थी का पता है, पति-पत्नी का पता है, प्रेमी-प्रेयसी का पता है; लेकिन फरीद जिसकी बात करेगा—गुरु और शिष्य—उसका कोई पता नहीं है।

गुरु और शिष्य का अर्थ है : कोई ऐसा व्यक्ति जिसके भितर से तुम्हें परमात्मा की झलक मिली; जिसके भितर तुमने आकाश देखा; जिसकी खिड़की से तुमने विराट में झांका। उसकी खिड़की छोटी ही हो—खिड़की के बड़े होने की कोई जरुरत भी नहीं है; लेकिन खिड़की से जो झांका, वह आकाश था। तब समर्पण हो सकता है। तब तुम पूरा अपने को छोड़ सकते हो।

धर्म की तलाश मूलतः गुरु की तलाश है, क्योंकी और तुम धर्म को कहां देख पाओगे? और तो तुम जहां जाओगे, अपने ही जैसा व्यक्ति पाओगे। तो अगर तुम्हारे जीवन में कभी ऐसा व्यक्ति आ जाए जिसको देख कर

तम्हें अपने से ऊपर आंखें उठानी पड़ती हों; जिसे देख कर तुम्हें दूर के सपने, आकांक्षा, अभीप्सा भर जाती हो; जिसे देख कर तुम्हें दूर आकाश का बुलावा मिलता हो, निमंत्रण मिलता हो—और इसकी कोई फिक्र मत करना कि दुनिया उसके संबंध में क्या कहती है, यह सवाल नहीं है—तुम्हें अगर उस खिड़की से कुछ दर्शन हुआ हो तो ऐसे व्यक्ति के पास समर्पण की कला सिख लेना। उसके पास तुम्हें पहले पाठ मिलेंगे, प्राथमिक पाठ मिलेंगे—अपने को छोड़ने के। वे ही पाठ परमात्मा के पास काम आएंगे।

गुरु आखिरी नहीं है; गुरु तो मार्ग है। अंततः तो गुरु हट जाएगा, खिड़की भी हट जाएगी—आकाश ही रह जाएगा। जो खिड़की आग्रह करे, हटे न, वह तो आकाश और तुम्हारे बीच बाधा हो जाएगी; वह तो सेतु न होगी, विघ्न हो जाएगा।

जिस प्रेम की फरीद बात कर रहें हैं, उसकी झलक तुम्हें कभी गुरु के पास मिलेगी। तुम मुझसे पुछोगे की हम कैसे गुरु को पहचानें। मैं तुमसे कहूंगाः जहां तुम्हें ऐसी झलक मिल जाए। उसके अतिरिक्त और कोई कसौटी नहीं है। गुरु की परिभाषा यह है कि जहां तुम्हें विराट की थोड़ी सी झलक मिल जाए; जिस बूंद में तुम्हें सागर का थोड़ा-सा स्वाद मिल जाए; जिस बीज में तुम्हें संभावनाओं के फूल खिलते हुए दिखाई पड़ें। फिर ध्यान मत देना कि दुनिया क्या कहती है, क्योंकि दुनिया का कोई सवाल नहीं है। जहां तुम खड़े हो, वहां से हो सकता है, किसी खिड़की से आकाश दिखाई पड़ता हो; जहां दूसरे खड़े हों वहां से उस खिड़की के द्वारा आकाश दिखाई न पड़ता हो। यह भी हो सकता है कि तुम्हारे ही बगल में खड़ा हुआ व्यक्ति खिड़की कि तरफ पीठ करके खड़ा हो, और उसे आकाश न दिखाई पड़े। यह भी हो सकता है कि किन्हीं क्षणों में तुम्हें आकाश दिखाई पड़े और किन्हीं क्षणों में तुम्हें भी आकाश दिखाई न पड़े। क्योंकि जब तुम उंचाई पर होओगे और तुम्हारी आंखें निर्मल होंगी तो ही आकाश दिखाई पड़ेगा। जब तुम्हारी आंखे धूमिल होंगी,आंसुओं से भरी होंगी, पीड़ा, दुख से दबी होंगी—तब खिड़की भी क्या करेगी? अगर आंखें ही धूमिल हों तो खिड़की आकाश न दिखा सकेगीः खिड़की खुली रहेगी, तुम्हारे लिए बंद हो जाएगी। तुम्हें भी आकाश तभी दिखाई पड़ेगा जब आंखें खुली हों; और भीतर होश हो। आंख भी खुली हो और भीतर बेहोशी हो तो भी खिड़की व्यर्थ हो जाएगी।

तो ध्यान रखना, जिसको तुमने गुरु जाना है, वह तुम्हें भी चौबीस घंटे गुरु नहीं मालूम होगा। कभी-कभी, किन्हीं ऊंचाइयों के क्षण में, किन्हीं गहराइयों के मौकों पर कभी तुम्हारी आंख, तुम्हारे बोध और खिड़की का तालमेल हो जाएगा, और आकाश की झलक आएगी। पर वही झलक पर भरोसा रखना। तुम अपनी ऊंचाई पर भरोसा रखना।

अगर ठीक से समझो तो गुरु पर भरोसा अपनी ही जीवन-दशा की ऊंचाई में हुई अनुभूतियों पर भरोसा है। संदेह अपनी ही जीवनदशा की नीचाईयों पर भरोसा है। श्रद्धा अपनी ही प्रतीति के ऊंचाइयों पर भरोसा है। और तुम्हारे भीतर दोनों हैं। तुम कभी इतने नीचे हो जाते हो जैसे पत्थर, बिलकुल बंद, कहीं कोई रंध्र भी नहीं रह जाती कि तुम्हें अपने से पार की कोई झलक मिले। कभी तुम खुल जाते हो, जैसे खिलता हुआ फूल, और तुम्हारे पंखुरियों पर सूरज नाचता है, और तुम्हारे पराग से आकाश का मेल होता है। लेकिन जहां तुम्हें झलक मिल जाए वहां से सिख लेना परमात्मा के पाठ, क्योंकि प्रेम की पहली खबर वहीं होंगी, वहां तुम झुक सकोगे। जहां तुम झुक सको, वहीं धर्म की शुरुआत है।

लोग कहते है, मंदिर में जाओ और झुको; और मैं तुमसे कहता हूं, जहां तुम्हें झुकना हो जाए वहीं समझ लेना मंदिर है। जिसके पास झुकना सहजता से हो जाए, जरा भी प्रयास न करना पड़े, झुकना आनंदपूर्ण हो जाए, लड़ना न पड़े भीतर—वहां तुम्हें प्रेम की पहली खबर मिलेगी; वहां तुम्हें पहली बार पता चलेगा कि प्रेम दान है—वस्तुओं का नहीं, धन का नहीं, अपना स्वयं का।

प्रेम मांग नहीं है। जहां मांग है वहां प्रेम धोखा है, फिर वहां कलह है। अगर गुरु से भी तुम्हारी कोई मांग हो, कि समाधि मिले, परमात्मा मिले, आत्मज्ञान मिले—अगर कोई ऐसी मांग हो तो तुम वहां भी सौदा कर रहे

हो, वहां भी व्यवसाय जारी है; प्रेम की तुम्हें समझ न आई।

गुरु के पास कोई मांग नहीं है। तुम गुरु को धन्यवाद देते हो कि उसने तुम्हारे समर्पण को स्वीकार कर लिया। फिर समाधि तो छाया की तरह चली आती है। जहां समर्पण है वहां समाधि आ ही जाएगी; उसके विचार की कोई जरूरत नहीं है; विचार किया, रुक जाएगी असंभव हो जाएगी। क्योंकी विचार से ही खबर मिल जाएगी कि समर्पण नहीं है। और तुम्हारा मन इतना चालाक है, कानूनी है, गणित से भरा है कि तुम्हें पता ही नहीं रहता कि वह किस तरह का धोखा देता है।

वंदना मराठी में एक पत्रिका मेरे लिए निकालती हैः योगदीप। सुंदर है। कल मैं उसे देखता था। उसने बड़ी मेहनत वर्षों से की है और पत्रिका को बड़े मापदण्ड पर उठाया है। लेकिन जबसे उसने निकाली है पत्रिका, तब से मै एक छोटा सा वक्तव्य उसमें हमेशा देखता हूं। उस पत्रिका में सिर्फ मेरे ही विचार वह छापती है; लेकिन जहां संपादकों के नाम हैं, वहां उसने एक पंक्ति लिख रखी है कि इस पत्रिका में प्रकाशित विचारों से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है।

होशियारी है! मेरे ही विचार छापती है, मेरे लिए ही पत्रिका चलाती है; लेकिन मेरे विचारों से भी संपादक की पूरी सहमति अनिवार्य नहीं हैः कोई मुकदमा चले, कोई झंझट हो! समर्पण भी सशर्त है! स्वीकार में भी कानून है! उलझन में पड़ने की किसी की भी हिम्मत नहीं है, साहस नहीं है।

प्रेम दुस्साहस है। वह ऐसी छलांग है जिसमें तुम कल का विचार नहीं करते। जब तुम जाते हो तो तुम पूरे ही साथ जाते हो, या नहीं जाते; क्योंकि आधा आधा क्या जाना! ऐसे तो तुम ही कटोगे और मुश्किल में पड़ोगे। जैसे आधा शरीर तुम्हारा मेरे साथ चला गया और रह गया, तो तुम्हीं कष्ट पाओगे। इसमें मेरा कोई हर्ज नहीं है। लेकिन तुम्हीं दुविधा में रहोगे। या तो पूरे घर रह जाओ, या पूरे साथ चल पड़ो। जरा-सी भी मांग हो, खंड़ित हो गये!

तुमने कभी खयाल किया?—जहां भी मांग आती है वहीं तुम छोटे हो जाते हो; जहां मांग नहीं होती, सिर्फ दान होता है, वहां तुम भी विराट होते हो। जब तुम्हारे मन में मांगने का भाव ही नहीं उठता, तब तुममें और परमात्मा में क्या फासला है? इसलिए तो बुद्धपुरुषों ने निर्वासना को सूत्र माना, कि जब तुम्हारी कोई वासना न होगी, तब परमात्मा तुममें अवतरित हो जाएगा।

परमात्मा तुममें छिपा ही है, केवल वासनाओं के बादल में घिरा है। सूरज मिट नहीं गया है सिर्फ बादलों में घिरा है। वासना के बादल हट जाएंगेः तुम पाओगे, सूरज सदा से मौजूद था।

गुरु के पास प्रेम का पहला पाठ सीखना, बेशर्त होना सीखना, झुकना और अपने को मिटाना सिखना। मांगना मत। मन बहुत मांग किए चला जाएगा, क्योंकि मन की पुरानी आदत है। मन भिखमंगा है। सम्राट का मन भी भिखारी है; वह भी मांगता है।

आत्मा सम्राट है; वह मांगती नहीं। जिस दिन तुम प्रेम में इस भांति अपने को दे डालते हो कि कोई मांग की रेखा भी नहीं होती, उसी क्षण तुम सम्राट हो जाते हो। प्रेम तुम्हें सम्राट बना देता है। प्रेम के बिना तुम भिखारी हो। वहीं तुम्हारा दुख है।

दूसरी बातः जब फरीद प्रेम की बात करता है, तो प्रेम से उसका अर्थ हैः प्रेम का विचार नहीं, प्रेम का भाव। और उन दोनों में बड़ा फर्क है। तुम जब प्रेम भी करते हो तब तुम सोचते हो कि तुम प्रेम करते हो। यह हृदय का सीधा संबंध नहीं होता; उसमें बीच में बुद्धि खड़ी होती है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हमारा किसी से प्रेम हो गया है। मैं कहता हूं, ठीक से कहो, सोच कर कहो। वे थोड़े चिंतित हो जाते हैं। वे कहते हैं, हम सोचते हैं कि प्रेम हो गया है; पक्का नहीं, हुआ कि नहीं, लेकिन ऐसा विचार आता है कि प्रेम हो गया है।

प्रेम का कोई विचार आवश्यक है? तुम्हारे पैर में कांटा गड़ता है तो तुम्हारा बोध सीधा होता है कि पैर में

पीड़ा हो रही है। ऐसा थोड़े ही तुम कहते हो कि हम सोचते हैं कि शायद पैर में पीड़ा हो रहीं है। सोच विचार को छेद देता है कांटा, आर-पार निकल जाता है। जब तुम आनंदित होते हो तो क्या तुम सोचते हो कि तुम आनंदित हो रहे हो, या कि तुम सिर्फ आनंदित होते हो? जब तुम दुखी होते हो—कोई प्रियजन चल बसा, छोड़ दी देह, मरघट पर विदा कर आए—जब तुम रोते हो तब तुम सोचते हो कि दुखी हो रहे हो, या कि दुखी होते हो? दोनों में फर्क है। अगर सोचते हो कि दुखी हो रहे हो ही नहीं रहे; शायद दिखावा होगा। समाज के लिए आंसू भी गिराने पड़ते हैं। दूसरों को दिखाने के लिए हंसना भी पड़ता है, प्रसन्न भी होना पड़ता है, दुखी भी होना पड़ता है; लेकिन तुम्हारे भीतर कुछ भी नहीं हो रहा है। लेकिन तुम्हारे भीतर दुख हो रहा है तो विचार बीच में माध्यम नहीं होता। यह सीधा होता है।

फरीद जब प्रेम की बात करे तो याद रखना, यह सोच-विचार वाला प्रेम नहीं है; यह पागल प्रेम है, यह भाव का प्रेम है। और जब भाव से तुम्हें कोई बात पकड़ लेती है तो तुम्हारे जड़ों से पकड़ लेती है। विचार तो वृक्षों में लगे पत्तों की भांति है। भाव वृक्ष के नीचे छिपी जड़ों की भांति है। छोटा-सा बच्चा भी जन्मते ही भाव में समर्थ होता है, विचार में समर्थ नहीं होता। विचार तो बाद का प्रशिक्षण है; सिखाना पड़ता है—स्कूल, कालेज, यूनिवर्सिटी, संसार, अनुभव—तब विचार करना सिखता है; लेकिन भाव तो पहले क्षण ही से करता है। अभी-अभी पैदा हुए बच्चे को भी गौर से देखो तो तुम पाओगे, भाव से आंदोलित होता है। अगर तुम प्रसन्न हो और आनंद से उसे तुमने छुआ है तो वह भी पुलकित होता है। अगर तुम उपेक्षा से भरे हो और तुम्हारे स्पर्श में प्रेम की ऊष्मा नहीं है, तो वह तुम्हारे हाथ से अलग हट जाना चाहता है, वह तुम्हारे पास नहीं आना चाहता। अभी सोच-विचार कुछ भी नहीं है। अभी मस्तिष्क के तंतु तो निर्मित होंगे, अभी तो ज्ञान स्मृति बनेंगे। तब वह जानेगाः कौन अपना है, कौन पराया है। अभी वह अपना-पराया नहीं जानता। अभी तो जो भाव के निकट है वह अपना है, जो भाव के निकट नहीं वह पराया है। फिर तो वह जो अपना है उसके प्रति भाव दिखाएगा; जो अपना नहीं है उसके प्रति भाव को काट लेगा। अभी स्थिती बिलकुल उलटी है। इसलिए तो छोटे बच्चे में निदोर्षता का अनुभव होता है। और जीसस जैसे व्यक्तियों ने कहां है कि जो छोटे बच्चों की भांति होंगे, वही मेरे परमात्मा के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे।

फरीद का प्रेम भाव का प्रेम है। और भाव तो तुम बिलकुल ही भूल गए हो। तुम जो भी करते हो वह मस्तिष्क से चलता है। हृदय से तुम्हारे संबंध खो गए हैं। तो थोड़ा-सा प्रशिक्षण जरूरी है हृदय का।

यहां मेरे पास लोग आते हैं। उनसे मैं कहता हूं कि थोड़ा तुम हृदय को भी जगाओ; कभी आकाश में घूमते हुए, गुजरते हुए बादलों को देख कर नाचो भी, जैसा मोर नाचता है। बादल घुमड़-घुमड़ कर आने लगे, ऐसे क्षण में तुम बैठे क्या कर रहे हो? बादलों ने घूंघर बजा दिए, ढोल पर थाप दे दी, तुम बैठे क्या कर रहे हो? नाचो! पक्षी गीत गाते हैंः सुर में सुर मिलाओ! वृक्ष में फूल खिलते हैंः तुम भी प्रफुल्लित होओ! थोड़ा चारों तरफ जो विराट फैला है जिसके हाथ अनेक-अनेक रूपों में तुम्हारे करीब आए हैं—कभी फूल, कभी सूरज की किरण, कभी पानी की लहर—इससे थोड़ा भाव का नाता जोड़ो। बैठे सोचते मत रहो। इंद्रधनुष आकाश में खिले, तो तुम यह मत सोचो कि इंद्रधनुष की फिजीक्स क्या है, कि यह प्रकाश प्रिज्म से गुजर कर सूरज की किरणें सात रंगों में टूट गई हैं—इस मूढ़ता में मत पड़ो। इस पांडित्य के कारण तुम वंचित ही रह जाओगे। इंद्र धनुष का सौंदर्य खो जाएगा; हाथ में फिजिक्स की किताब रह जाएगी, जिसमें कोई भी इंद्रधनुष नहीं है। तुम इसके रहस्य को अनुभव करो। तुम किसी सिद्धांत से इसे समझा मत लो अपने को। इंद्रधनुष आकाश में खिला है, तुम्हारे भीतर भी इंद्रधनुष को खिलने दो! तुम भी ऐसे रंग-बिरंगे हो जाओ! थोड़ी देर को तुम्हारी बेरंग जिंदगी में रंग उतरने दो!

चारों तरफ से परमात्मा बहुत रूपों में हाथ फैलाता है; लेकिन तुम अपना हाथ फैलाते ही नहीं, नहीं तो मिलन हो जाए। और यहीं प्रशिक्षण होगा। यहीं से तुम जागोगे, और धीरे-धीरे तुम्हें पहली दफे पता चलेगा भेद,

कि विचार का प्रेम क्या है, भाव का प्रेम क्या है।

विचार का प्रेम सौदा ही बना रहता है, क्योंकि विचार चालाक है। विचार यानी गणित। विचार यानी तर्क । विचार के कारण तुम निर्दोष हो हा नहीं पाते। विचार ही तो व्यभिचार है। भाव निर्दोष होता है। भाव का कोई व्यभिचार नहीं है। और विचार के कारण तुम कभी सहजता, सरलता, समर्पण—इनका अनुभव नहीं कर पाते, क्योंकि विचार कहता हैः सजग रहो! सावधान, कोई धोखा न दे जाए! चाहे विचार तुम्हें सब धोखों से बचा ले; लेकिन विचार ही अंततः धोखा दे देता है। और भाव के कारण शायद तुम्हें बहुत खोना पड़े; लेकिन जिसने भाव पा लिया उसने सब पा लिया।

फरीद जिस प्रेम की बात करेगा, वह भाव है। और तुम्हें उसकी थोड़ी-सी सीख लेनी पड़ेगी। और सीख कठिन नहीं है। किसी विश्वविद्यालय में भर्ती होने की जरूरत नहीं है। अच्छा ही है कि भाव को सिखाने का कोई उपाय नहीं है; नहीं तो संस्थाएं उसको भी सिखा देतीं और खराब कर देतीं। अगर निर्दोषता को सिखाने के लिए भी कोई व्यायामशालाओं जैसी जगह होती तो वहां निर्दोषता भी सिखा दी जाती; तुम उसमें भी पारंगत हो जाते, और तब तुम उससे भी वंचित हो जाते।

भाव को कोई सिखाने का कोई एक उपाय नहीं है; सिर्फ थोड़ा बुद्धि को शिथिल करने की बात है। भाव सदा से मौजूद है; तुम ले कर आए हो। भाव तुम्हारी आत्मा है।

अब फरीद के इन वचनों को समझने की कोशिश करें।

'बोलै सेखु फरीदु पियारे अलह लगे।'

शेख फरीद कहता हैः मेरे प्यारो, अल्लाह से जोड़ लो अपनी प्रीति।

बोलै सेखु फरीदु पियारे अलह लगे।

ऐसा ही इसका अनुवाद सदा से किया गया है कि फरीद कहता हैः मेरे प्यारो, अल्लाह से जोड़ लो अपनी प्रीति। लेकिन मुझे लगता है, शाब्दिक रूप से तो अर्थ ठीक है, लेकिन फरीद का गहरा इशारा चूक गया है। मैं इसके अनुवाद में थोड़ा फर्क करना चाहता हूं।

बोलै सेखु फरीदु पियारे अलह लगे। शेख फरीद कहता हैः प्यारो, अल्लाह से लग जाओ। अल्लाह से लग जाना—उसी को मैं कह रहा था भाव का प्रशिक्षण। अल्लाह से अगर तुमने प्रेम करने की कोशिश की तो तुम वही प्रेम करोगे जो तुम अब तक करते रहे हो। तुम्हारी भी मजबूरी है। तुम नया प्रेम कहां से ले आओगे? तुम अल्लाह से भी प्रेम करोगे तो वही प्रेम करोगे जो अब तक करते रहे हो। अनेक भक्त वहीं करते हैं। कोई राम की मूर्ति सजा कर बैठा है, तो उसने राम की मूर्ति ऐसे सजा ली है जैसा कि कोई प्रेयसी अपने पति को सजाती है; हीरे-जवाहरात लगा दिए हैं, सोने-चांदी का सामान जुटा दिया है; भोग लगा देता है; बिस्तर पर सुला देता है, उठा देता है; मंदिर के पट बंद हो जाते है, खुल जाते।

अगर तुमने परमात्मा को पिता की तरह देखा तो तुम उसकी सेवा में वैसे ही लग जाओगे जैसे तुम्हें अपने पिता की सेवा में लगना चाहीए। अगर तुमने परमात्मा को प्रेयसी के रूप में देखा, जैसा सूफियों ने देखा है, तो तुम उसके गीत वैसे ही गाने लगोगे जैसे लैला ने मजनू के गाए। लेकिन इस सब से तुमने जो प्रेम जाना, उसी को तुम परमात्मा पर आरोपित कर रहे हो; नए प्रेम का अविर्भाव नहीं हो रहा है।

इसीलिए तो हजारो भक्त है, लेकिन कभी कोई एकाध भगवान को उपलब्ध होता है। क्योंकि तुम्हारी भक्ति तुम्हारे ही प्रेम की पुनरुक्ति होती है। अगर तुम्हारे प्रेम से ही परमात्मा मिलता होता तो कभी का मिल गया होता। तुम फिर से परमात्मा से भी वे ही नाते-रिश्ते बना लेते हो जो तुमने आदमियों से बनाए थे। तुम उससे भी वही बाते करने लगते हो जो तुमने आदमियों से की थीं। तुम किसी के प्रेम में पड़ गए थे, तुमने कहां थाः तुझसे सुंदर कोई भी नहीं। अब तुम परमात्मा से यही कहते हो कि तू पतितपावन है, ऐसा है, वैसा है! तुम वही बातें कह रहे हो? शब्द बासे हैं, उधार हैं।

इसलिए मैं फरीद के वचन का अर्थ करता हूंः पियारे अलह लगे—तू अल्लाह से लग जा। अब अल्लाह से लग जाना—इसका अर्थ क्या होगा? वही अर्थ होगा कि चारों तरफ अस्तित्व ने घेरा हुआ है; अल्लाह तुझे घेरे ही हुए है; तू ही अलग-थलग है; अल्लाह तो लगा हुआ ही हैःतु भी लग जा। अल्लाह ने तो तुझे ऐसे घेरा है जैसे मछली को सागर ने घेरा हो।अल्लाह तो तुझसे लगा ही हुआ है; क्योंकि अल्लाह न लगा हो तो तू बच ही न सकेगा, एक क्षण न जिएगा, श्वास भी न चलेगी हृदय भी न धड़केगा। वह तो अल्लाह तुझसे लगा हैः इसलिए तू धड़कता है, चलता है, श्वास है, जीवन है। तू गलत भी हो जाए तो भी अल्लाह लगा हुआ है। क्योंकि अल्लाह के बिना हत्यारा भी श्वास न ले सकेगा, चोर का हृदय भी न धड़केगा। बुरे हो या भले, अल्लाह चिंता नहीं करताः वह लगा ही हुआ है।

असली सवाल अब यह है कि हम भी उससे कैसे लग जाएं जैसे वह हमसे लगा है बेशर्तः कहता नहीं कि तुम अच्छे हो तो ही तुम्हारे भीतर श्वांस लूंगा; साधू हो तो हृदय धडकेगा; असाधू तो बंद; कानून के खिलाफ गए, दाएं चले, बाएं नहीं चले सड़क पर, अब श्वांस न चलेगी। अल्लाह अगर ऐसा कंजूस होता कि सिर्फ साधुओं में धड़कता, असाधुओं में न धड़कता तो संसार बड़ा बेरौनक हो जाता; तो राम ही राम होते, रावण दिखाई न पड़ते। और तुम सोच सकते हो, राम ही राम हों तो कैसी बेरौनक हो जाए दुनिया! लिए अपना-अपना धनुष खड़े हैं; मारने तक को कोई नहीं जिसको बाण मारें! सीता जी खड़ी हैं, कोई चुराने वाला नहीं है! राम-कथा आगे बढ़ती नहीं!

न, परमात्मा राम में भी श्वांस ले रहा है, रावण में भी; और जरा भी पक्षपात नहीं है, दोनों में लगा हुआ है। परमात्मा बेशर्त, बिना शुभ-अशुभ का विचार किए, तुम्हारी योग्यता-अयोग्यता का बिना विचार किए, तुम्हारे साथ है। तुम उसके साथ नहीं हो। सागर तो तुम्हारे साथ है; तुम उससे लड़ रहे हो!

बोलै सेखु फरीदु पियारे अलह लगे।

फरीद कहता हैः प्यारो, अल्लाह से लग जाओ, वैसे ही जैसा अल्लाह तुमसे लगा है।

हिंदू के अल्लाह से मत लगना, मुसलमान के अल्लाह से मत लगना, नहीं तो शर्त हो जाएगी। मंदिर के अल्लाह से मत लगना, मस्जिद के अल्लाह से मत लगना, नहीं तो शर्त हो जाएगी। जैसे वह बेशर्त लगा है—न पूछता है कि तुम हिंदू हो, न पूछता है कि तुम मुसलमान हो, न पूछता है कि तुम जैन हो, कि बौद्ध हो, कि ईसाई, पूछता ही नहीं; न पूछता कि तुम स्त्री कि पुरुष, न पूछता कि काले कि गोरे—कुछ पूछता ही नहीं; बस तुमसे लगा हैः ऐसे ही तुम भी मत पूछो कि तू मस्जिद का कि मंदिर का, कि तू कुरान का कि पुराण का, कि तू गोरे का कि काले का; तुम भी लग जाओ।

मंदिर और मस्जिद के अल्लाह ने मुसीबत खड़ी की है। तुम उस अल्लाह को खोजो जो सब में व्याप्त है, सब तरफ मौजूद है; जिसने सब तरफ अपना मंदिर बनाया हैः कहीं वृक्ष की हरियाली में कहीं झरने के नाद में, कहीं पर्वत के एकांत में, कहीं बाजार के शोरगुल में—जिसने बहुत तरह से अपना मंदिर बनाया है। सारा जगत उसके मंदिर के स्तंभ हैं! सारा आकाश उसके मंदिर का चंदोवा है! सारा विस्तार उसकी ही भूमि है! तुम इस अल्लाह को पहचानना शुरू करो, इससे लगो।

बोलै सेखु फरीदु पियारे अलह लगे।

इहु तन होसी निमानी गोर घरे।।

और इस शरीर से बहुत मत लगे रहो, क्योंकि जल्दी ही कब्र में सड़ेगा। यह शरीर तो खाक हो जाएगा और इसका घर निगोड़ी कब्र में जा बनेगा। इससे तुम जरूरत से ज्यादा लग गए हो। जिससे लगना चाहिए उसे भूल गए; जिससे नहीं लगना था उससे चिपट गए। जो तुम्हारे जीवन का जीवन है, उससे तुमने हाथ दूर कर लिए; और जो क्षण भर के लिए तुम्हारा विश्राम-स्थल है, राह पर सराय में रुक गए हो रात भर—सराय को तो पकड़ लिया, अपने को छोड़ दिया है।

यह शरीर—इहु तन होसी खाक—यह शरीर तो खाक हो जाएगा। निमाणी गोर घरे—और किसी निगोड़ी कब्र में इसका घर बन जाएगा। तुम इससे मत जकड़ो। अगर पकड़ना ही है तो जीवन के सूत्र को पकड़ लो। लहरों को क्या पकड़ते हो; पकड़ना ही है तो सागर को पकड़ लो। क्योंकि लहरें तो तुम पकड़ भी न पाओगे और मिट जाएंगी; तुम मुट्ठी बांध भी न पाओगे और विसर्जित हो जाएंगी।

लहरों को पकड़ना शरीर को पकड़ना है। शरीर तरंग है, पांच तत्व की तरंग है, पांच तत्व के इस विराट सागर में उठी एक बड़ी लहर है—सत्तर साल तक बनी रहती है, अस्सी साल तक बनी रहती है। पर विराट को देखकर सत्तर-अस्सी साल क्या है, क्षणभर भी नहीं है। जो समय तुमसे पहले हुआ और जो समय तुम्हारे बाद होगा, उसे हिसाब में लो तो तुम जितने समय रहे वह न के बराबर है। यह लहर है। इसको तो तुमने जोर से पकड़ लिया है और जिसमें यह लहर उठी है, उसको तुम भूल ही गए हो। जो आधार है वह भूल गया है, पत्तों पर भटक रहे हो।

'इहु तन होसी खाक निमाणी गोर घरे'।

'आजु मिलावा सेख'—यह वचन मुझे बहुत प्यारा रहा है। यह बड़ा अनूठा है! इसे बहुत गौर से जाग कर समझने की कोशिश करना।

'आज उस प्रीतम से मिलन हो सकता है, शेख, यदि तू भावनाओं को काबू कर ले जो तेरे मन को बेचैन कर रही हैं।'

आजु मिलावा सेख—आज मिलना हो सकता है तेरा। यह बड़ा क्रांतिकारा वचन है। क्योंकि साधारणतः तुम्हारे पंडित-पुरोहित कहते हैं कि जन्मों-जन्मों का पाप है, उसको काटना पड़ेगा, तब मिलन हो सकेगा। और शेख कहता है: आजु मिलावा सेख—यह आज हो सकती है बात; इसी क्षण हो सकती है। इसको एक क्षण भी टालने की जरूरत नहीं है। क्योंकि परमात्मा आज इतना ही उपलब्ध है जितना कभी था, और इतना ही सदा उपलब्ध रहेगा। उसकी उपलब्धि में रत्ती भर फर्क नहीं पड़ता। तुमने पाप किए कि पुण्य किए—इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम जिस दिन भी उसके साथ लगने को राजी हो, उसका आलिंगन सदा ही उन्मुक्त था; आमंत्रण सदा ही था। तुम्हारे पाप बाधा न बन सकेंगे। तुम्हारे पाप तुम ही क्या हो, तुम्हारे पापों का कितना मूल्य हो सकता है? लहर ही मिट जाती है, तो लहर का इठलाना कितना टिक सकता है?

इसे थोड़ा हम समझें। यह भी मनुष्य का अहंकार है कि मैंने बहुत पाप किए हैं। यह तुम्हें अड़चन लगेगी समझने में। तुम कहोगे: यह कैसा अहंकार है? लेकिन इससे भी ऐसा लगता है कि मैं कुछ हूं। और इससे ऐसा भी लगता है कि जब तक मैं इन पापों को न काट दूंगा, जब तक परमात्मा न मिलेगा। जैसे परमात्मा का मिलना मेरे किसी कृत्य पर निर्भर है! इसलिए कर्म का सिद्धांत अहंकारियों को खूब जमा, खूब जंचा। अहंकारियों के अहंकार को पुष्टि मिली की हमने ही कर्म किए थे,इसलिए हम भटक रहे हैं; हम ही कर्म जब ठीक करेंगे तो पहुंच जाएंगे। लेकिन हम, मै छिपा है भीतर।

यहीं फर्क है भक्तों का। भक्त कहते हैं, पहुंचेंगे उसके प्रसाद से। तुम्हारे प्रसाद से नहीं पहुंचोगे। तुम्हारा प्रयास ही तो अटका रहा है। यह खयाल कि मेरे करने से कुछ होगा, यही तो तुम्हें भटका रहा है। कर्म नहीं भटका रहें हैं, कर्ता का भाव भटका रहा है। असली पाप कर्मों में नहीं है, कर्ता के भाव में है। इसलिए कृष्ण ने अर्जुन से गीता में कहा: तू कर्ता का भाव छोड़ दे। तू निमित्तमात्र हो जा। फिर तुझे कुछ भी कर्म न छुएगा। कर्म तू कर, पर ऐसे कर जैसे वही तुझसे कर रहा है, तू बीच में नही है। तू बांस की पोंगरी हो जा; उसको ही गाने दे गीत। वह गाए तो ठीक, न गाए तो ठीक। तू बीच में चेष्टा मत कर। तू अपने को बीच में मत ला; अपने को बीच में खड़ा मत कर।

शेख फरीद कहते हैं: आज ही हो सकता है मिलन। यह बड़े हिम्मत के फकीरों ने ऐसी बात कही है। तुम्हारा मन तो खुद भी ड़रेगा कि यह कैसे हो सकता है आज। वस्तुतः सच्चीइ यह है कि तुम आज चाहते भी

नहीं। तुम चाहते हो कि कोई समझाए कि कल हो सकता है, आज नहीं; क्योंकि आज और दुसरे काम करने हैं, हजार व्यवसाय पूरे करने हैं। आज ही हो सकता है मिलन! यह जरा जल्दी हो जाएगी। इसमें तो पोस्टपोन करने का, स्थगित करने का उपाय न रहेगा।

तो, मैं तुमसे कहता हूं, कर्म का सिद्धांत अहंकारीयों को खूब जंचा। और अहंकारीयों को यह भी बात जंची कि जब तक हम कर्मों को बदल न देंगे; बुरे को शुभ से मिटा न देंगे; काले को सफेद से पोत न देंगे; अशुभ को शुभ में ढांक न देंगे; जब तक तराजू बराबर संतुलन में ना आ जाएगा; शुभ और अशुभ बराबर ना हो जाएंगे—तब तक छुटकारा नहीं हो सकता। इसका अर्थ हुआ कि मैंने ही पाप किए, मुझे ही पुण्य करने होंगे; मेरे ही कारण घटना घटेगी, परमात्मा के प्रसाद से नहीं, उसके अनुग्रह से नहीं। और इसमें बड़ी सुविधा है कि जन्मों-जन्मों के कर्म हैं, वे आज तो कट नहीं जाएंगे, जन्म-जन्म लगेंगे। स्वभावतः जितने दिन मिटाया है उतने दिन बनाना पड़ेगा। कितनी ही जल्दी करो तो भी जन्मों-जन्म लग जाएंगे। इससे बड़ी सुविधा है। इससे आज कोई झंझट नहीं है। आज दुकान करो, आज चोरी करो; धर्म कल। आज तुम जैसे चलते है चलते रहो, कोई उपाय ही नहीं है; कल परीवर्तन होगा, कल होगा रूपांतरण!

कल के खयाल ने मनुष्य को अधार्मिक बनाया है। कल बड़ी सुविधा है। उसकी आड़ में हम अपने को छिपा लेते हैं। कल होगा, आज तो कुछ होना नहीं है—तो आज तो हम जो हैं हम रहेंगे! एकदम से तो क्रांति हो न जाएगी! तत्क्षण तो कुछ घट न जाएगा! सिलसिला होगा! क्रमिक विकास होगा! विकास होते-होते समय आएगा, तब कहीं घटना घटेगी! इस जन्म में तो हाने वाला नहीं है! तो इस जन्म में जो कर रहे हो, करते रहो; और थोड़ी कुशलता से कर लो! समय जितनी देर मिला है, और भोग लो; कहीं अगले जन्म में मुक्ति हो ही न जाए।

ऐसे पूरब में, जहां कि पुनर्जन्म के सिद्धांत को , कर्म के सिद्धांत को बड़ी स्वीकृती मिली, अधर्म का बड़ा गहरा विस्तार हुआ। होना नहीं चाहिए था। अगर वस्तुतः लोगों ने इसलिए स्वीकार किया था पुनर्जन्म का सिद्धांत कि वे धार्मिक थे, तो पूरब में क्रांति हो जानी चाहिए थी,पूरब में सूर्योदय हो जाता। नहीं हुआ। पूरब जितना बेईमान है, पश्चिम में भी उतने बेईमान आदमी नहीं पाए जाते। और पूरब जितना अनैतिक है और जितना भ्रष्ट है, वैसा भ्रष्टाचार और वैसी अनैतिकता भी कहीं नहीं पाई जाती। नास्तिक से नास्तिक और भौतिकवादी से भौतिकवादी मुल्कों में भी ऐसी अनीति नहीं है। कारण क्या होगा? पूरब के पास सुविधा है। हम टाल सकते हैं। उनके पास सुविधा नहीं है, उनका यही जीवन सबकुछ है। अच्छे होना है तो यही जीवन है, बुरे होना है तो यही जीवन है। हमारे पास बहुत जीवन हैं। हमें कोई जल्दी नहीं है।

पूरब के मन में जल्दी नहीं है; इसलिए जो चल रहा है चलने दो, जो हो रहा है होने दो। हम किसी त्वरा में नहीं हैं कि क्रांति अभी हो जाए। समय हमारे पास जरूरत से ज्यादा हैः आज नहीं होगा, कल होगा कल नहीं होगा परसों होगा। हमें बड़ा धीरज है। धीरज आड़ बन गई है। जहां-जहां धीरज ज्यादा हो जाता है, वहां क्रांती असंभव हो जाती है। अगर तुम्हें आज पता चल जाए कि आज ही हो सकती है ये बात, तो फिर तुम्हें दोष अपने को ही देना पड़ेगा; फिर तुम्हें साफ कर लेना होगा कि अगर टालना है तो तुम टालते हो, स्थगित करना है तो तुम स्थगित करते हो; परमात्मा आज राजी था। तब तुम्हें बड़ी बेचैनी होगी। तब तुम्हे कोई भी सांत्वना का उपाय न रह जाएगा।

इसलिए फरिद का वचन मैं कहता हूं बड़ा क्रांतिकारी हैः आजु मिलावा सेख, आज हो सकता है मिलना, शेख। देर उसकी तरफ से नहीं है।

हमारे मुल्क में कहावत हैः देर है, अंधेर नहीं। मैं तुमसे कहता हूंः न देर है, न अंधेर है। उसकी तरफ से कुछ भी नहीं हैं; तुम्हारी तरफ से दोनों हैं। उसकी तरफ से न तो देर है और न अंधेर है; तुम्हारी तरफ से देर भी है और इसलिए अंधेर है। देर के आधार से ही अंधेर है। टालने की सुविधा है—तो आज जैसी भी स्थिती है, ठीक

है; कल सब ठीक हो जाएगा। कल के स्वप्न के आधार पर तुम आज के गंदे यथार्थ को टालते चले जाते हो; कल की आशा में आज की बीमारी झेल लेते हो। आज का नर्क भोग लेते हो; कल स्वर्ग मिलेगा!

आजु कमलावा सेख—आज उस प्रितम से मिलन हो सकता है। करना क्या है? बस एक छोटी सी बात करनी हैः 'कूंजड़ाआ मनहु मचिदंडिआ'—यह जो मन में विचारों और भावों का शोरगुल मचा है, यह भर बंद हो जाए। कर्मों को नहीं बदलना है; सिर्फ विचारों को शांत करना है। कर्मों को बदलना तो असंभव है। कितने जन्म तुम्हारे हुए, कोई हिसाब है? उसमें क्या-क्या तुमने नहीं किया, कोई हिसाब है? उस सबको बदलने बैठोगे तो यह कथा तो अंथहीन हो जाएगी। यह तो फिर कभी हो ही न पाएगा। लेकिन बुद्ध हुए, महावीर हुए, फरीद हुआ, नानक हुए, दादू हुए, कबीर हुए—इनके जीवन में क्रांति घटित होते हमने देखी। यह घटना घटि है, तो इसके घटने का एक ही कारण हो सकता है कि जो हमने समझा है कि कर्म बदलने होंगे, वह भ्रांति है; सिर्फ विचार गिरा देने काफीं हैं।

ऐसा समझो कि एक रात एक आदमी रात सपना देखता रहा है कि उसने बड़ी हत्याएं की हैं, बड़ी चोरियां की हैं, बड़े व्यभिचार किए हैं, और वह बड़ा परेशान है अपने सपने में कि अब कैसे छुटकारा होगा; इतना उपद्र व कर लिया है, अब इस सबके विपरीत कैसे शुभ कर्म करूंगा?—और तब तुम जाते हो, उसे हिला कर जगा देते हो, आंख खुलती हैः सपने खो गए! कर्म नहीं बदलने पड़ते; सपना टूट जाए, बसः फिर वह खुद ही हंसने लगता है कि यह भी मैं क्या-क्या सोच रहा था! और मैं सोच रहा था कि इससे छुटकारा कैसे होगा लेकिन सपना टूटते ही छुटकारा हो गया!

विचार तुम्हारे स्वप्न हैं। कर्म ने नहीं बांधा है; बांधा है विचार ने। कर्म तो विचारों के स्वप्नों के भीतर घट रहे हैं। अगर विचार टूट जाए, स्वप्न टूट जाएः तुम जाग गए। सारे जन्म तुम्हारे जो हुए, वह एक गहरा स्वप्न था, एक दुखस्वप्न था। उसको बदलने का कोई सवाल नहीं है। उसको मिटाने का भी कोई सवाल नहीं है। जागते ही वह नहीं पाया जाता है।

शेख, यदि तू उन भावनाओं को काबू कर ले जो तेरे मन को बेचैन कर रही हैं...! वे जो तेरे भाव, तेरे विचार, और उनकी जो तरंगे, झंझावात और ऊहापोह तेरे भीतर मचा है—बस उसको तू शांत कर ले।

उसको शांत करने के दो ढंग हैं।

एक ढंग ध्यान है।

ध्यान शुद्ध विज्ञान है कि तुम वैज्ञानिक आधार पर मन की तरंगों को एक के बाद एक शांत करते चले जाते हो। लेकिन ध्यान का रास्ता मरुस्थल का रास्ता है। वहां छायादार वृक्ष नहीं हैं, मरूद्याप नहीं हैं। वहां चारों तरफ फूल नहीं खिलते और हरियाली नहीं है; पक्षियों के गीत नहीं गूंजते; अंतहीन रेत का विस्तार है—तप्त-उत्तप्त! ध्यान का मार्ग सूखा है, गणित का है।

दूसरा मार्ग है प्रेम का, कि तुम इतने प्रेम से भर जाओ कि तुम्हारे जीवन की सारी ऊर्जा प्रेम बन जाए, तो जो उर्जा भावना बन रही थी, विचार बन रही थी, तरंगे बन रही थी, वह खिंच आए और सब प्रेम में नियोजित हो जाए। इसलिए तो बड़े वृक्ष के नीचे अगर तुम छोटा वृक्ष लगाओ तो पनपता नहीं है; क्योंकि बड़ा वृक्ष सारे रस को खींच लेता है भूमि से, छोटे वृक्ष को रस नहीं मिलता। जो बहुत बड़े वृक्ष हैं, वे अपने बिजों को दूर भेजने की कोशिश करते हैं, क्योंकि अगर बीज नीचे ही गिर जाएं तो वे कभी वृक्ष न बन पाएंगे।

सैमर का बड़ा वृक्ष अपने बीजों को रुई में लपेट कर दूर भेजता है ताकि हवा में रुई उड़ जाए। वैज्ञानिक कहते हैं कि वह बहुत कुशल और होशियार वृक्ष है, बड़ा चालबाज है! वह तरकिब समझ गया है कि अगर बीज नीचे ही गिर गया तो कभी पनपेगा ही नहीं; उसकी संतती नष्ट हाक जाएगी। तो वह उसको रुई में लपेट लेता है। वह रुई तुम्हारे तकियों के लिए नहीं बनता। तुम्हारे तकियों से सैमर को क्या लेना-देना? वह अपने बीजों को पंख लगाता है, रुई में लपेट देता हैः रुई हवा में उड़ जाती है और जब तक ठीक भूमि न मिल जाए

तब तक वह उड़ती चली जाती है। जब ऐसी भूमि मिल जाती है, जहां कोई वृक्ष बड़ा नहीं है आसपास, तब वह जमीन को पकड़ लेता है।

बड़े वृक्ष के नीचे छोटा वृक्ष नहीं पनपता। ठीक जब तुम्हारे भीतर प्रेम का बड़ा वृक्ष पैदा होता है तो सब छोटी-मोटी तरंगे खो जाती हैं; सब भूमि में रस एक ही प्रेम में चला आता है; प्रेम अकेली अभीप्सा बन जाता है, सब लपेटों को अपने में समा लेता है।

तो, एक तो ध्यान है कि तुम एक-एक तरंग और एक-एक विचार को क्रमशः शांत करते जाओ। फिर एक प्रेम है कि शांत किसी को मत करो, सब को लपेट लो एक महा अभीप्सा में, एक प्रेम की प्रगाढ़ अभीप्सा मेंः तुम एक महा लपट बन जाओ, सब लपटें उसमें समा जाएं। दो उपाय हैं।

प्रेम का रास्ता बड़ा हरा-भरा है। उस पर पक्षी भी गीत गाते हैं, मोर भी नाचते हैं। उसपर नृत्य भी है। उस पर तुम्हें कृष्ण भी मिलेंगे—बासुरी बजाते। उस पर तुम्हें चैतन्य भी मिलेंगे—गीत गाते। उस पर तुम्हें मीरा भी नाचती मिलेगी।

ध्यान का रास्ता बड़ा सूखा है। उस पर तुम्हें महावीर मिलेंगे, लेकिन मरुस्थल जैसा है रास्ता। उस पर तुम्हें बुद्ध बैठे मिलेंगे, लेकिन कोई पक्षी की गूंज तुम्हें सुनाई न पड़ेगी। तुम्हारी मर्जी। जिसको मरुस्थल से लगाव हो...। ऐसे भी लोग हैं जिनको मरुस्थल में सौंदर्य मिलता है। व्यक्ति-व्यक्ति की बात है।

एक युवक ने मुझे आ कर कहा कि जैसा सौंदर्य उसने मरुस्थल में जाना वैसा उसने की नहीं जाना। यह संभव है, क्योंकि मरुस्थल में जो विस्तार है वह कही भी नहीं है। सहारा के मरुस्थल में खड़े हो कर ओर-छोर नहीं दिखाई पड़ता; रेत ही रेत का सागर है अंतहीन; कहीं कोई अंत नहीं मालूम होता। इस अनंत में किसी को सौंदर्य मिल सकता है, कोई आश्चर्य नहीं है। और जैसी रात मरुस्थल की होती है वैसी तो कहीं भी नहीं होती। जैसे मरुस्थल की रात में तारे साफ दिखाई पड़ते हैं वैसे कहीं नहीं दिखाई पड़ते; क्योंकि मरुस्थल की हवाओं में कोई भी भाप नहीं होती; हवा बिलकुल शुद्ध होती है, पारदर्शी होती है; तारे इतने साफ दिखाई पड़ते हैं कि हाथ बढ़ाओ और छू लो।

तो ध्यान का अपना मजा है। ध्यान जिसको ठीक लग जाए वह उस तरफ चल पड़े। प्रेम का अपना मजा है। ध्यान का पूरा मजा तो जब मंजिल मिलेगी तब आएगा। ध्यान का मजा तो पूरा अंत में आएगा; प्रेम का मजा कदम-कदम पर है। प्रेम की मंजिल पूरे रास्ते पर फैली है। ध्यान की मंजिल अंत में है और रास्ता बहुत रुखा-सूखा है। प्रेम की मंजिल अंत में नहीं है, कदम-कदम पर फैली है, पूरे रास्ते पर फैली है मंजिल। तुम जहां रहोगे वहीं आनंदित रहोगे। तुम्हारी मर्जी! व्यक्ति-व्यक्ति को अपना चुनाव कर लेना चाहिए।

आज उस प्रितम से मिलन हो सकता है, शेख, यदि तू उन विचारों को काबू में कर ले, उन तरंगों को रोक ले जो तुझे बेचैन कर रही हैं।

कूंजड़ीआ मनहू मंचिदड़ीआ—जिन्होंने तेरे मन में बड़ा उपद्रव मचा रखा है, झंझावात, तूफान—उनको तू सम्हाल ले।

और ध्यान रखना, प्रेम का रास्ता सुगम है; क्योंकि तुम सारे उपद्रव को परमात्मा के चरणों में समा देते हो। तुम कहते होः तू ही सम्हाल! हम तेरे साथ लग लेते हैं, तू फिक्र कर!

तुम एक बड़ी नाव में सवार हो जाते हो।

ध्यान का रास्ता छोटी नाव का है।

बुद्ध के जमीन से विदा हो जाने के बाद दो संप्रदाय हो गए उनके अनुयायिओं के। एक का नाम हैः हीनयान। हीनयान का अर्थ होता हैः छोटी नाव; छोटी नाव वाले लोग। हीनयान ध्यान का रास्ता है। अपनी अपनी डोंगी, दो भी नहीं बैठ सकते; दो भी बैठ जाए तो उलट जाए; एक ही बैठ सके, और वह भी पूरा सम्हल कर ही चले। और अपने ही हाथ से खेना है, और कोई सहारा नहीं है, और बड़ा तूफान है।

और दूसरे पंथ का नाम हैः महायान। महायान प्रेम का मार्ग है। महायान का अर्थ हैः बड़ी नाव, जिस पर हजारों लोग एक साथ सवार हो जाएं। हीनयान कहता हैः बुद्ध से इशारा ले लो, सहारा मत लो, क्योंकि चलना तुम्हें है। महायान कहता हैः इशारा क्या लेना? सहारा ही ले लेते हैं; बुद्ध के कंधे पर ही सवार हो जाते हैं। जब बुद्ध जा ही रहे हैं, हम उनके साथ लग लेते हैं।

महायान फैला बहुत; हीनयान सिकुड़ गया। क्योंकि हीनयान थोड़े-से लोगों का रस हो सकता हैं; वह मार्ग ही संकिर्ण है। महायाप विराट हुआ। जो भी बुद्ध धर्म का विकास हुआ बादमें, वह महायान के कारण हुआ। क्योंकि भक्ति और प्रेम हृदय को छूते हैं, जगाते हैं। क्या जरूरत है रोते हुए जाने की, जब हंसते हुए जाया जा सकता हो? और क्या जरूरत है गंभीर चेहरे बनाने की, जब मुस्कराते हुए रास्ता कट जाता हो? और क्या जरूरत है अकारण कष्ट पाने की, जब प्रेम की भीनी-भीनी बहार में यात्रा हो सकती हो?

आज उस प्रीतम से मिलन हो सकता है, शेख; बस तू मन की सारी तरंगों को समर्पित कर दे।

'जे जाणा मरि जाइए'—शेख कहता हैः अगर पता होता कि मरना ही होगा तो जिंदगी ऐसी न गंवाते। इस जिंदगी में जिसको भी पता हो जाता है कि मृत्यु है,वही बदल जाता है; और जिसको पता नहीं होता कि मृत्यु है वही बर्बाद हो जाता है। धर्म तुम्हारे जीवन में उसी दिन उतरता है जिस दिन तुम्हारे जीवन में मृत्यु का बोध आता है, जिस दिन तुम्हे लगता है कि मौत आती है। मौत का आना, मौत के आने का खयाल, मौत के पैरों की पगध्वनि, जिसे सुनाई पड़ गई, वह आदमी तत्क्षण रूपांतरित हो जाता है। मौत जब आती हो तो चांदी के ठीकरों में क्या अर्थ रह जाता है? मौत जब आ ही रही हो तो बड़े महल बना लेने से क्या होगा? मौत जब आ ही रही है, चल ही पड़ी है, किसी भी क्षण मिलन हो जाएगा, तो दुश्मनी, वैमनस्य, ईर्ष्या, इनका क्या मूल्य है?

तुम इस तरह जीते हो जैसे कभी मरना ही नहीं, इसलिए तुम गलत जीते हो। अगर तुम इस तरह जिने लगो कि आज ही मरना हो सकता है, तुम्हारी जिंदगी से गलती विदा हो जाएगी। गलती के लिए समय चाहिए। गलती के लिए सुविधा चाहिए।

थोड़ा सोचो, आज अचानक तुम्हें खबर आ जाए कि बस आज सांझ विदा हो जाओगे, तो आज तुमने सोचा था कि किसी की हत्या कर देने की—क्या करोगे? बजाय हत्या करने पर तुम जा कर उसको गले लगा लोगे; कहोगे कि भाई अब जा रहे हैं, अब कोई सवाल ही न रहा। अब झगड़ा ही क्या! विदा होने का वक्त आ गया! तुम खुश रहो, आबाद रहो; हम तो जाते हैं। किसी की चोरी करने की तैयारी पर ही थे—अब क्या जेब काटनी है! अब तो उलटा मन होगा कि अपनी जेब भी उसीको दे दो, क्योंकि अब जाने का वक्त आ गया! इंच-इंच जमीन के लिए लड़ रहे थे—अब कोई अड़चन न रही; क्योंकि जमीन मरे हुए सम्राट को भी उतनी ही मिलती है, भिखारी को भी उतनी ही मिलती है। छह फीट जमीन काफी हो जाती है।

फरीद कहता हैः यदि मुझे पता ही होता, फरीद की मरना होगा और फिर लौटना नहीं है, तो इस झूठी दुनिया से प्रीति जोड़ कर मैं अपने को बर्बाद न कर बैठता। तब फिर मैंने प्रेम तुझसे ही लगाया होता।

हम व्यर्थ की चीजों से प्रेम लगाते रहे। खुद विदा होना था जहां से वहां हमने प्रेम के बीज बोए। जहां से हमको ही चले जाना था वहां अपना हमने हृदय जोड़ा। तो स्वभावतः हम टूटेंगे, हृदय टूटेगा, दुख और पीड़ा होगी। जे जाणा मरि जाइए—तब तो क्रांति घट जाती।

पशुओं में कोई धर्म पैदा नहीं हुआ। और जिस मनुष्य के जीवन में धर्म की किरण न उतरे वह पशु जैसा है। एक बात में समानता है उसकी और पशु की। पशुओं में धर्म क्यों पैदा न हुआ? क्योंकि पशुओं को मृत्यु का कोई बोध नहीं है। मरते जरूर हैं; लेकिन जब एक कुत्ता दूसरे कुत्ते को मरते देखता है तो वह समझता हैः अच्छा तो तुम मर गए! मगर उसे कभी खयाल नहीं आता कि मैं मरूंगा। यह आ भी कैसे सकता है? क्योंकि कुत्ता सदा दूसरे को मरते देखता हैं, अपने को तो कभी मरते देखता नहीं। इसलिए तर्कयुक्त है कि दूसरे मरते हैं, मैं नहीं मरता। हरेक मरते कुत्ते को देख कर उसकी अकड़ और बढ़ती जाती है कि मैं तो मरने वाला नहीं, हरेक मर

रहा है, सब मर रहे हैं, मैं अमर हूं।

ऐसी नासमझी मनुष्य के भीतर भी है। तुम दूसरे को मरते देख कर दया करते हो, सहानुभूति करते हो, दो आंसू बहाते हो, कहते होः बहुत बुरा हुआ। लेकिन तुम्हें याद आता है कि उसकी मौत में तुम्हारी मौत ने भी तुम्हें संदेश दिया कि, उसकी मौत तुम्हारी भी मौत है?

एक अंग्रेज कवि ने लिखा है—उसके गांव का नियम है, जब कोई मर जाता है तो चर्च की घंटिया बजती हैं, तो उसने लिखा है कि पहले मैं भेजता था लोगों को पता लगाने कि देखो, कौन मर गया; अब मैं नहीं भेजता, क्योंकि जब भी चर्च की घंटी बजती हैं तो मैं ही मरता हूं।

हर मनुष्य की मौत मनुष्यता की मौत है। हर मनुष्यता की मौत में तुम्हारी मौत घटती है। अगर यह दिखाई पड़ने लगे तो तुम क्या ऐसे ही रहोगे जैसे अब तक रहे हो? इन्हीं खेल-खिलौनों से खेलते रहोगे? इन्हीं व्यर्थ की चीजों को इकट्ठा करते रहोगे या बदलोगे? मौत बदल देगी, झकझोद देगी, सपना तोड़ देगी।

जे जाणा मरि जाइए—पता होता कि मर जाना है, तो कभी के बदल गए होते। फरीद तुमसे कह रहा है, उसे तो पता ही है। वह तुमसे कह रहा है कि जागो। जिसे तुमने जीवन समझा है वह जीवन नहीं है; वह मरने की लंबी प्रकिया है। जीवन कहीं और है, जहां तुमने खोजा ही नहीं। जीवन तो परमात्मा के साथ है।

'बोलै सेखु फरीदु पियारे अलह लगे'।

उसके साथ मरना कभी नहीं होता। संसार के साथ जो जुड़ता है वह बार-बार मरता है, क्योंकि यह टुटेगा ही संबंध। यह नही-नाव संयोग है। यह कोई थिर रहने वाली बात नहीं है। नदी बदली जा रही है, प्रतिक्षण भागी जा रही है; उसी नदी से नाव का संयोग कैसे रहेगा?

हैराक्लतु ने कहा हैः एक ही नदी में दुबारा उतरना असंभव है। क्योंकि जब तुम दुबारा उतरने जाओगे, वह नदी तो जा चुकी होगी। एक ही आदमी से दुबारा मिलना असंभव है; क्योंकि जब तुम दुबारा मिलने जाओगे, वह आदमी अब कहां रहा! वह आदमी वही नहीं है। पहली दफा मिले तो बड़ा क्रुद्ध था; अब मिले तो बड़ा दयावान था। यह आदमी वही नहीं है।

बुद्ध पर एक आदमी थूक गया और दूसरे दिन क्षमा मांगने आया। बुद्ध ने कहाः नासमझी मत कर। तू कर तो कर, मुझसे तो मत करवा। जिस पर थूक गया था वह आदमी अब कहां! वह बात गई-गुजरी हो गई। भूल! जाग! मैं वहीं नहीं हूं। चौबीस घंटे में गंगा का कितना पानी बह गया! तू वही नहीं है। मेरी तो फिक्र छोड़; लेकिन तेरा तो बात साफ हैः कल तू थूक गया था; आज तू क्षमा मांगने आया है! तू वही कैसे हो सकता है? थूकने वाला और क्षमा मांगने वाला दो अलग दुनिया हैं। जाग!

जे जाणा मरि जाइए—जिसने जाना कि मौत होगी उसने असली जीवन की खोज शुरू कर दी। समय खोने जैसा नहीं है। इसके पहले की समय हाथ से निकल जाए,अवसर खो जाए, जीवन पर जड़े पहूंच जानी चाहिए।

'बोलिए सच धरम न झूठ बोलिए। जो गुरु दसै वाट मुरीदा जोलिए।'

इसका अनुवाद सदा से किया जा रहा है कि तू धरम से सच बोल, झूठ न बोल। जो रास्ता गुरु दिखा दे, उसी पर चल। इसमें मैं थोड़ा फर्क करता हूं।

बोलिए सचु धरमु...। फरीद का शब्द हैः बोलिए सचु धरमु—सत्य धर्म से बोल, सत्य से बोल। सचु धरमु का अर्थ होता हैः स्वभाव से बोल। जो तेरा वास्तविक स्वभाव है वही धर्म है। अपनी प्रामाणिकता से बोल। अपने अस्तित्व से बोल। धर्म से सच बोल में बात चली जाती है। धर्म से सच बोल—जैसे की हम किसी को कसम दिलवा रहे हों कि खा धर्म की कसम और सच बोल; खा ईमान की कसम और सच बोल। नहीं, धर्म से सच बोल—ऐसा नहीं; सत्य धर्म से बोल; वह तेरा जो स्वभाव है, वह तेरा जो सच्चा धर्म है—जिसको कृष्ण ने स्वधर्म कहा हैः स्वधर्मे निधनं श्रेयः। तू वहा से बोल जो तू है; तू अपनी वास्तविकता से बोल।

ना कानों सुना ना आंखों देखा

ये दोनों अलग बातें हैं। धर्म से सच बोलने का मतलब यह है कि झूठ मत बोल; जैसा तूने जाना हो वैसा बोल; तथ्य बोल। और जो अनुवाद मैं कर रहा हूं, वह हैः तू अपनी वास्तविकता से बोल; तथ्य कि फिक्र मत कर, सत्य बोल। क्योंकि बहुत बार सत्य तथ्य के उपर होता है। बहुत बार तुम बोलते हो, बिलकुल फैच्कुअल होतस है, तथ्यगत होता है; लेकिन सत्य नहीं होता, क्योंकि तुम्हारी वास्तविकता से नहीं बोला गया होता।

ऐसा समझो, हिंदुओं और मुसलमानों का दंगा हो रहा है। एक हिंदू ने भी दंगा देखा है, एक मुसलमान ने भी दंगा देखा है। दोनों अदालत के सामने वक्तव्य देतें है। हिंदू कुछ और देखेगा जो मुसलमान ने देखा ही नहीं। मुसलमान कुछ और देखेगा जो हिंदू ने देखा ही नहीं। दोनों तथ्य बोल रहे हैं। न तो हिंदू झूठ बोल रहा हैं, न मुसलमान झूठ बोल रहा हैं। हिंदू भी वही बोल रहा है जो उसने देखा। लेकिन सवाल तो यह है कि देखने में ही व्याख्या हो जाती है। अगर हिंदू देख रहा है तो व्याख्या तो वही हो गई। कुछ चीजे हिंदू देख ही नहीं सकता;वे मुसलमान होने के कारण असंभव हैं।

जैसे समझो कि किसी ने कुरान जला दी, तो मुसलमान के तो प्राण जला दिए; हिंदू के लिए किताब, जो रद्दीबाजार में एक रुपये में बिक सकती थी, वह जला दी!

जब किसी हिंदू की मूर्ति तोड़ी जाती है, तो मुसलमान के लिए पत्थर है, हिंदू के लिए परमात्मा है। तथ्य काफी नहीं है। मुसलमान कहेगाः एक पत्थर को लोगों ने तोड़ा! उसके लिए इतना उपद्रव मचाने की कोई जरूरत न थी। लोगों ने व्यर्थ शोरगुल मचाया, हत्या की। यह सब अकारण है। एक पत्थर तोड़ा था! हिंदू कहेगाः हमारे परमात्मा पर हमला हो गया, हम पर हमला हो गया। हमारे प्राणों को गहरी चोट पहुंचाई गई है। फिर जो भी हुआ वह कुछ भी नहीं है उसके मुकाबले।

तथ्य तो तुम्हारी आंख से तथ्य बनता है; तुम्हारा दृष्टिकोण उसमें सम्मिलित हो गया। मैं किसको कहूंगा सच? मैं दोनों को सच नहीं कहूंगा। क्योंकि जब तक तुम हिंदू हो तुम सच नहीं हो सकते; जब तक तुम मुसलमान हो सच नहीं हो सकते। क्योंकि तुमने कुछ धारणाएं पहले से ही मान लीं जो तुम्हें सच न होने देंगी। तुम जब न हिंदू की तरह बालोगे न मुसलमान की तरह बालोगे; जब तुम एक शुद्ध चैतन्य की तरह बोलोगे, तब तुम सच धर्म से बोले। तब तुम अपनी वास्तविकता से बोले। तब तुमने न तो हिंदू के ढंग से कहा, न मुसलमान की ढंग से कहा। तब तुमने शुद्ध चैतन्य की ढंग से कहा। और यह बड़ी अलग बात है। यह बड़ी भिन्न बात है।

तथ्यों की बहुत फिक्र मत करना, सत्यों की फिक्र करना ; क्योंकि तथ्य तो आदमी का मन ही निर्मित करता है। असली सवाल उस सत्य की खोज़ का है जो आदमी का बनाया हुआ नहीं, जो परमात्मा का बनाया हुआ है। सत्य वह है जो परमात्मा के द्वारा है, तथ्य वह है जो हमारी व्याख्या है। तो व्याख्याएं तो बड़ी बड़ी अलग-अलग होती हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन का एक मित्र है—मित्र भी है और शत्रु भी है, क्योंकि दोनो कवि हैं। और बड़ा वैमनस्य है और बड़ी ईर्ष्या है। वर्षों बाद मित्र से मिलना हुआ है, या शत्रु से। स्वभावतः जैसा कवियों कि आदत होती है, एक-दूसरे ने डींग मारना शुरू कर दी। मित्र ने कहा कि वर्षों बाद मिले, नसरुद्दीन, तुम्हें पता भी न होगा, मेरी कविताओं को पढ़नेवालों की संख्या दुगुनी हो गई है। नसरुद्दीन ने कहाः हद हो गई, मुझे पता ही न चला कि कब तुम्हारा विवाह हो गया! वह कह रहा है कि मेरे पढ़नेवालों की संख्या दुगुनी हो गई है और नसरुद्दीन कह रहा है कि मुझे पता ही न चला कि कब तुम्हारा विवाह हो गया। क्योंकि और तो कोई उपाय नहीं की तुम्हारे पढ़नेवाले दुगुने हो जाएं। पहले अकेले पढ़नेवाले थे; अब औरत और पढ़ती होगी! तुम्हारी कविता कोई और पढ़ेगा?

आंकड़े जितना झूठ बोलते हैं उतना दुनिया में कोई चीज नहीं बोलती। सरकारें जानती हैं अच्छी तरह, इसलिए वे आंकड़ों में बात करती हैं। वे झूठ बोलने के ढ़ंग हैं।

उन्नीस सौ सत्रह में रूस में क्रांति हुई। साल भर बाद, एक छोटे गांव के संबंध में अखबार में खबर छपी

थी कि वहां शिक्षा दुगुनी हो गई है। अब यह आंकड़ा बड़ा है। लेकिन हुआ कल इतना था कि उस स्कूल में एक मास्टर था और एक ही विद्यार्थी था, अब दो विद्यार्थी हो गए थे। शिक्षा दुगुनी हो गई! सौ प्रतिशत बढ़ गई!

आंकड़े बड़े झूठ बोलते हैं। राजनितिज्ञ भलीभांति जानते हैं, कैसे आंकड़ों को उपयोग करना। तुम्हें समझ में ही न आएगा। उनके आंकड़े तुम देखो तो मुल्क अमीर हो जाता है, तुम गरीब होते जाते हो। तुम भूखे मरते हो, मूल्क की संपत्ती बढ़ती चली जाती है। उनके आंकड़े अगर तुम देखो तो कुछ और ही दुनिया है उनके आंकड़ों की। और उनके आंकड़ों में घिरे वे बैठते रहते हैं और हिसाब लगाते रहते हैं। नीचे असलियत बड़ी और है। आंकड़े असलियत को छुपाते हैं, उघाड़ते नहीं।

तथ्य तो तुम्हारी व्याख्या है; तुम्हारी धारणा उसमें समाविष्ट हो गई है। सत्य निर्धारणा होकर देखी गई बात है।

फरीद के वचन का मैं अर्थ करता हूंः बोलिए सचु धरमु—तुम्हारी सच्चाई से, तुम्हारे अस्तित्व से, तुम्हारे स्वभाव से, तुम्हारे धर्म से बोलो; अपनी प्रामाणिकता से बोलो, अप्रामाणिकता से नहीं। और तभी यह संभव होगाः ' जो गुरु दसै वाट, मुरीदा जोलिए।'—तभी यह संभव होगा कि गुरु जो राह दिखाएगा, तुम उस पर चल सकोगे, उसके पहले नहीं। क्योंकि उसके पहले गुरु जो रास्ता बताएगा, उसमें भी तुम अपनी धारणा से हिसाब लगाओगे।

यह मेरा रोज का अनुभव हैः मैं कुछ कहता हूं, लोग करते कुछ हैं। और उनसे मैं पूछता हूं तो वे कहते हैं कि आपने ही तो कहा था! तब मैं गौर करता हूं तो मैं पाता हूं कि उन्होंने कहां होशियारी की। जो मैं कहता हूं उसमें से कुछ चुन लेते हैं वे। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि वह कुछ पूरे के विपरीत हो।

कुरान में एक वचन है। वचन यह है कि तू शराब पी, नरक में सड़ाया जाएगा। एक मुसलमान शराब पीता था। मौलवी ने उससे कहाः पागल, तू सदा मस्जिद आता है। सदा मेरी बात सुनता है। हजार बार तूने सुना होगा यह वचन कि तू शराब पी और नर्क में सड़ जाएगा। फिर भी तू पिए चले जा रहा है? तुझे होश नहीं आया?

उसने कहाः अभी मैं आधे वचन को ही पूरा करने में समर्थ हूं—तू शराब पी; अभी बाकी वचन की सामर्थ्य नहीं; धीरे-धीरे...।

कभी-कभी अंश पूरे के विपरीत हो सकता है। कभी-कभी खण्ड समग्र के विपरीत हो सकता है; क्योंकि समग्र बड़ी और बात है। तो मैं देखता हूं कि कहूं कुछ, परिणाम कुछ हो जाता है। वह चुननेवाला वह बैठा है। जब तक तुम अपनी प्रमाणिकता से ही बदलने को नहीं राजी हो तब तक कोई तुम्हें बदल न सकेगा। क्योंकि तुम्हें कोई कैसे बदलेगा, जब तुम ही बदलना न चाहते होओ? अगर तुम ही अपने साथ खेल खेल रहे हो, अपने को ही धोखा देने में लगे हो, तो तुम्हें कोई भी नहीं जगा सकता। सोए को कोई जगा दे; और जागा हुआ कोई आंख बंद किए पड़ा है, उसको तुम कैसे जगाओगे? वह जागना ही नहीं चाहता।

बोलिए सचु धरमु, न झूठ बोलिए। जो गुरु दसै वाट, मुरीदा जोलिए।

और फिर जो गुरु राह बता दे, उसे सुनना अपनी वास्तविकता में। उसे सुनना अपनी धारणाओं को हटा कर। उसके इशारे को पहचानने की कोशिश करना उसकी तरफ से, अपनी तरफ से नहीं; क्योंकि तुम तो कुछ गलत ही समझोगे। तुम गलत होः तुम जो व्याख्या करोगे वह गलत होगी, तुम जो मतलब निकालोगे वह तुम्हारा अपना होगा। वह जो कहता है उसे ठीक से सुन लेना—अपने मन को अलग हटा कर, किनारे रख कर।

'प्रेमी के रास्ता पार कर लेने पर प्रियतमा को हिम्मत बंध जाती है।'

और जैसे-जैसे तुम गुरु की बात मान कर चलोगे, गुरु की आंखों में तुम्हें दिखाई पड़ने लगेगा कि तुम्हारे संबंध में आस्था और आश्वासन आने लगा। तुम अपनी फिक्र मत करना; तुम गुरु की आंख में देखना। तुम यह मत सोचना अपनी तरफ से कि मैं खूब बढ़ रहा हूं और ठीक विकास हो रहा है। यह सवाल नहीं है। तुम इस बात को देखना कि गुरु तुम्हारे प्रति आश्वस्त हो रहा है या नहीं।

ना कानों सुना ना आंखों देखा

अभी कल रात मैं एक जर्मन विचारक, हैरिगेल, की किताब पढ़ रहा था। उसने छह वर्ष तक जापान में एक गुरु के पास धनुर्विद्या सीखी। धनुर्विद्या के माध्यम से जापान में ध्यान सिखाया जाता है। वह झेन फकीरों का एक रास्ता है। और धनुर्विद्या में ध्यान बड़ी सुविधा से फलित होता है; मगर बड़ा कठिन भी है। छह साल! और हैरिगल पहले से ही धनुर्विद्या में कुशल व्यक्ति था। तो उसने सोचा था कि साल छह महिने में सब सीख कर लौट आऊंगा। तीन साल बीत गए, कुछ भी हल नहीं होता, और गुरु कुछ असंभव मालूम होता है; क्योंकि वह बातें ऐसी कहता है जो हैरीगेल की पकड़ में नहीं आतीं। पहली बात वह यह कहता है कि लक्ष्य-भेद हमारा लक्ष्य नहीं है। तीर तुम्हारा ठीक जगह पर लग गया, इससे हमें कुछ लेना देना नहीं है—लग गया, ठीक; नहीं लगा, ठीक। असली सवाल तुम्हारे हृदय से, तुम्हारे भीतर से जब तीर छूटा तब ठीक छूटा की नहीं, वह सवाल है। ठीक तो कभी-कभी ऐसे भी लग जाता है, अंधेरे में भी लग जाता है। ठीक तो तकनिकी ढंग से भी लग जाता है। अगर किसी आदमी ने तकनिक सीख ली तो तीर लग जाता है। यह सवाल नहीं है। ध्यान कहां घटित होगा? तुम्हारे भीतर जब तीर छूटता है, उस क्षण का सवाल है। उस क्षण ध्यान में छूटता है तो लगा। लगे या न लगे, अगर ध्यान में न छूटा; विचारणा में छूटा तो लग जाए तो बेकार।

तीन साल बाद हैरीगोल को लगा कि मैं सिर पचा रहा हूं इस आदमी के साथ; क्योंकि तीर मतलब होता है कि लगना चाहिए। पश्चिम का सोचने का ढंग यह है कि जब तुम तीर सीख रहे हो तो उसका कुल अर्थ इतना है कि कितनी बार निशाने पर लगता है; अगर सौ प्रतिशत लगने लगा तो तुम पूरे कलाकार हो गए। और यह आदमी पागल हैः सौ प्रतिशत तीर लगे तो भी वह सीर हिलाए जाता है; वह कहता है कि नहीं।

और दूसरी बात गुरु ने कही कि जब तुम तीर चलाओ तो तुम्हें नहीं चलाना चाहिए; वह चलाए—परमात्मा! तुम सिर्फ तीर लेकर खड़े रहो। उसने कहाः यह बिलकुल पागलपन हो गया। वह कौन है? वह कहां से चलाएगा? मैं नहीं चलाऊंगा तो तीर कैसे चलेगा?

और गुरु कहता हैः चलेगा। और गुरु जब चलाता है तो हैरीगल भी देखता है कि बात तो ठीक कहता है। जब वह तीर खींचता है तो हैरीगल ने जा कर उसकी मसल टटोल कर देखी, उसकी मसल पर जोर नहीं है, जो कि होना चहिए। इतनी बड़ी प्रत्यंचा को वह खींढ रहा है, मसल ऐसे है जैसे छोटे बच्चे की हों! उसमें मसल है ही नहीं! कहीं और खींचने का तनाव ही नहीं है। चेहरे पर कोई तनाव नहीं है। और वह खड़ा रहता है तीर खींच कर, और जब तीर छूटता है तो ऐसे ही छूटता है जैसे कि वह गुरु उसको जिस ढंग से समझाता है। वह प्रतिक उसको भी ठीक लगता है।

जापान में बांसों का बड़ा प्रेम है। और गुरु कहता हैः जैसे बांस की शांखा पर बर्फ पड़ जाती है तो बांस उसे झकझोरता थोड़े ही है; बांस वजन में झुक जाता है; एक घड़ी आती है, बर्फ खुद ही सरक जाती है।

वह उसकी समझ में नहीं आता। उसने बड़े उपाय किए। वह एक महिने भर की छुट्टी लेकर दूर समुद्र के तट पर चला गया। वह आदमी कुशल है, होशियार है। उसने सोचा, कोई तरकीब होगी इसमें, क्योंकि गुरु का हाथ भी छूट जाता है। तो उसने तरकीब साध ली। एक महिना उसने कई तरह के उपाय किए। उसने एक तरकीब खोज ली। वह तरकीब उसने यह खोज ली कि तीर को खींच कर वह खड़ा हो जाए और हाथ को इतने धीमे से छोड़े, इतने अहिस्ता छोड़े कि छोड़ने का पता न चले; धीमे से छोड़ दे और तीर छूट जाए। वह महिने भर में निष्णात हो गया। उसने कहा कि अरे, इतनी-सी बात थी और मैं नाहक परेशान हो रहा था!

वह आया। उसने तीर चला कर गुरु को दिखाया। गुरु एकदम चौंका, इतना कभी नहीं चौंका था। वह पास आया और उसने कहाः वंस अगेन प्लीज (एक बार फिर) हैरीगेल भी डरा कि शायद उसमें कुछ गड़बड़ हो गई है या क्या? तीर बिलकुल छूटा तो सही है। गुरु को भरोसा न आया कि यह छूट नहीं सकता; क्योंकि यह छूट ही तब सकता है जब ध्यानस्थ चित्त हो, यह तो ध्यानस्थ चित्त है नहीं अभी! यह तीर छूटा कैसे? इसने कोइ तरकीब सीख ली।

दुबारा इसने तीर छोड़ कर बताया। गुरु ने उसके हाथ से प्रत्यंचा ले ली और उसकी तरफ पीठ करके बैठ गया—जो कि जापान में सबसे बड़ा अपमान है जो गुरु शिष्य का कर सकता हैः पीठ करके बैठ जाना। उसने कहा कि बात खतम हो गई। पंद्रह दिन तक बड़ी मिन्नतें की गुरु की, आदमियों से खबरें पहुंचाइ; उसने कहा कि नहीं। जब शिष्य गुरु को धोखा दे तो फिर कोई उपाय नहीं।

हैरीगल ने लिखा हैः मैंने धोखा दियर नहीं था। यह पश्चिमी और पूर्वीय बुद्धि का भेद है। मैंने तो कोई धोखा दिया नहीं था। मैंने तो सोचा था कि मैंने कोई तरकीब खोज ली है। मगर गुरु ने उसको ऐसा लिया कि धोखा दिया गया है। बामुश्किल गुरु राजी हुआ और उसने कहाः दुबारा ऐसी भूल न हो, अन्यथा मैं तुम्हारी शक्ल न देखूंगा।

वह जो पीठ फेर कर बैठ जाना है...'छैल लघंदे पार, गोरी मनु धीरीआ—जैसे कि प्रेमी नदी पार करके आ रहा है और प्रेयसी इस किनारे खड़ी है और प्रेमी उस पार से आ रहा है; नदी तेज है, भयंकर उसका प्रवाह है, या वर्षा की बाढ़ है, उत्तुंग तरंगे है औ गोरी का डर, और गोरी का मन कंप रहा है कि पता नहीं प्रेमी पार कर पाएगा, नहीं कर पाएगा, नदी बहा तो न ले जाएगी। वह शंकित है। वह आश्वस्त नहीं है। पर जैसे-जैसे प्रेमी पास आने लगता है इस किनारे के, गोरी आश्वस्त हो जाती है, प्रेयसी को धीरज बंधता जाता हैः अब डर नहीं है!'

गुरु किनारे खड़े शिष्य को ऐसे ही देखता है। तुम गुरु की नजरों पर नजर रखना। जब तुम उसमें पाओ कि आश्वासन आ गया; जब तुम पाओ कि गुरु प्रसन्न है; जब तुम पाओ कि वह मुस्करा रहा है; जब तुम पाओ कि आशिश बरसते है उससे; जब तुम पाओ कि अब वह आश्वस्त है—तभी तुम आश्वस्त होना। अपनी तरफ से आश्वस्त मत हो जाना, नहीं तो तुम खुद धोखा दे लोगे अपने को। तुम्हारी धोखा देने की इतनी संभावना है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। तुम अपने पर भरोसा मत कर लेना।

छैल लघदे पार, गोरी मनु धारीआ—कि प्रेमी पास आ गया, अब ज्यादा दूर न रही; हाथ दो हाथ मारने की बात है, किनारा लग जाएगा। गोरी के मन धीरज आ गया।

प्रेमी के नदी पार कर लेने पर जैसे प्रियतमा को हिम्मत बंध जाती है,ऐसे ही जिस दिन तुम गुरु की आंख में हिम्मत बंधी देखो तुम्हारे बाबत, आश्वस्त देखो गुरु को, उसी दिन आश्वस्त होना, उसके पूर्व नहीं।

'तू करौत से चीर दिया जाएगा यदि तू कंचन की तरफ लुभाएगा।'

'कंचन वंने पासे कलवति चीरिआ'।

और प्रेम के जगत में एकमात्र ही भटकाव है वह है धन है। यह बड़ी मनोवैज्ञानिक और बड़ी गहरी बात है। फरीद कह रहा है कि प्रेम से चूकने का एक ही उपाय है, कि कंचन में उत्सुक हो जाए। अब यह नाजूक है। यह खयाल बड़ा गहरा है। और मनोविज्ञान अब इसकी खोज कर रहा है धीरे-धीरे। और मनोविज्ञान कहता है कि जो आदमी धन में उत्सुक है वह आदमी उत्सुक नहीं होता। ये दोनों बात एक साथ होती ही नहीं—ऐसे ही जैसे जो आदमी पूरब चल रहा है, वह पश्चिम की तरफ नहीं चल रहा है।

क्यों धन और प्रेम में इतना विरोध है?

प्रेम बड़े से बड़ा धन है। जिसने प्रेम को पा लिया, उसे धन मिल गया। वह अपनी गरीबी में भी हीरे-जवाहरातों का मालिक है। लेकिन जिसने प्रेम नहीं पाया, उसके लिए तो फिर एक ही रास्ता है कि वह धन इकट्ठा करे, ताकि थोड़ा-सा आश्वासन मिले कि मेरे पास भी कुछ है। धन प्रेम का सबस्टीट्यूट है। इसलिए कृपण आदमी प्रेमी नहीं होता। कंजूस प्रेमी नहीं होता। कंजूस प्रेमी नहीं होता—हो नहीं सकता। ये दोनों बातें एक साथ नहीं घट सकतीं; ये विपरीत हैं। जितना तुम धन को इकट्ठा करते हो उतना ही तुम्हारा प्रेम पर भरोसा कम है। तुम कहते होः कल क्या होगा? बुढ़ापे में क्या होगा? आर्थिक हालत बिगड़ जाएगी तो परिस्थिति कैसे सम्हालूंगा?

प्रेमी कहता हैः क्या करेंगे; जो प्रेम आज करता है वह कल भी करेगा। जिसने आज प्रेम दिया है और भरपूर किया है वह कल भी फिक्र लेगा।

अगर तुम किसी को पाते हो जो तुम्हें प्रेम कर रहा है तो बुढ़ापे की चिंता न होगी। अगर तुम्हारा कोई नहीं प्रेमी, तुमने किसाी को इतना प्रेम नहीं दिया, न कभी किसीसे इतना प्रेम लिया, तो तिजोडी ही सहारा है बुढ़ापे में। और फिर तुम्हें डर है, प्रेमी तो धोखा दे जाए; तिजोडी कभी धोखा नहीं देती। प्रेमी का क्या भरोसा, आज साथ है, कल अलग हो जाए! धन ज्यादा सुरक्षित मालूम पड़ता है। प्रेमी माने न माने, धन तो सदा तुम्हारी मान कर चलेगा। धन तो कोई अड़चन खडी नहीं करता, मालकियत पूरी स्वीकार करता है। फिर धन का तुम कैसा उपयोग करना चाहो, वैसा कर सकते हो। प्रेमी का तुम उपयोग नहीं कर सकते। प्रेमी प्रेम में कुछ करे, ठीक; प्रेमी के साथ जबरदस्ती नहीं की जा सकती।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, छोटा बच्चा जब पैदा होता है तो अगर मां उसको प्रेम करती हो तो वह ज्यादा दूध नहीं पीता। आपको भी अनुभव होगा, अगर मां बच्चे को ठीक प्रेम करती हो तो मां सदा परेशान रहती है उसको जितना दूध पिना चाहिए, वह नहीं पी रहा है; जितना खाना खाना चाहिए, वह नहीं खा रहा है। वह उसके पीछे लगी है चौबीस घंटे कि और खा। क्यों? क्योंकि बच्चा जानता है, जिस स्तन से दूध अभी बहा प्रेम से भरा हुआ, जब भूख लगेगी फिर बहेगा। भरोसा है। लेकिन अगर मां बच्चे को प्रेम न करती हो; नर्स हो, मां न हो तो बच्चा छोड़ता ही नहीं स्तन। क्योंकि बच्चे को ड़र हैः तीन घंटे बाद जब भूख लगेगी, नर्स उपलब्ध रहेगी नहीं रहेगी, इसका कुछ पक्का नहीं है। भविष्य अंधकारपूर्ण है। इसलिए तुम देखोगे, जिन बच्चों को प्रेम नहीं मिला उनके पेट बड़े पाओगे; जिन बच्चों को प्रेम मिला उनके पेट बड़े नहीं पाओगे। पेट बड़ा, मां की तरफ से प्रेम नहीं मिला, इसका सबूत है। बड़ा पेट यह कह रहा है कि थोड़ा भोजन हम इकट्ठा कर लें वक्त-बेवक्त के लिए, क्योंकि कुछ भरोसा तो है नहीं। नर्स क्या भरोसा? मां का, अगर वह सिर्फ शरीर की ही मां हो और ह्रदय से प्रेम न बहता हो, और भरोसा न हो तो बच्चा बेचारा अपनी सुरक्षा कर रहा है। वह यह कह रहा है, थोड़ा अतिरिक्त हमेशा रखना चाहिएः कभी रात भूख लगेगी, कोई उठाने वाला न होगा, तो पेट भरा होना चाहिए।

तुम ध्यान रखना, गरीब लोग ज्यादा खाते हैं, क्योंकि कल का भरोसा नहीं। अमीर की भूख ही मिट जाती है, क्योंकि जब चाहिए तब मिल जाएगा। अमीरों के पेट बड़े होने चाहिए वस्तुतः। लेकिन तुम पाओगे, अकालग्रस्त क्षेत्रों में लोगों के पेट बहुत बड़े हो जाते है; सारा शरीर सूख जाता है, पेट बड़ा हो जाता है। क्योंकि जब मिल जाता है तब वे पूरा खा लेते हैं, जरूरत से ज्यादा खा लेते हैं; क्योंकि दो-चार-पांच दिन चलना पड़गा, क्या पता बिना खाने के चलना पड़ेगा!

मां के स्तन पर बेटे को दो रास्ते खूलते हैंः एक प्रेम का रास्ता है। एक पेट का रास्ता हैं। पेट यानी धन, पेट यानी तिजोड़ी। एक प्रेम का रास्ता है। प्रेम यानी आत्मा। तिजोड़ी यानी शरीर; प्रेम यानी परमात्मा। तो जिनके जीवन में प्रेम की कमी है,वे धन पर भरोसा रखेंगे।

इसलिए फरीद कहता हैः कंचन वंने पासे कलवति चीरिआ—और ध्यान रखना, प्रेम के रास्ते में धन के अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। अगर धन की तरफ झुका, लुभाया तो, आरे से चीर दिया जाएगा। इसका कुछ मतलब ऐसा नहीं है कि कोई आरे से किसी को चीर देगा। लेकिन जब प्रेम कट जाता है तो प्राण ऐसे ही कट जाते हैं जैसे आरे से चीर दिए गए हों।

'सेख हैयाती जगि न कोई थिरु रहिया।'

शेख, इस दुनिया में कोई हमेशा रहने वाला नहीं हैं। जिस पिढ़े पर हम बैठे हैं, उस पर कितने ही बैठ चुके हैं।

वैज्ञानिक कहते हैं कि जिस जगह तुम बैठे हो वहां कम से कम दस आदमियों की लाशें दफनाई जा चुकी हैं। इंच-इंच जमीन पर करोड़ों लोग दफनाए जा चुके हैं। तुम भी थोड़े दिन बात जमीन के भीतर होओगे, कोई

और तुम्हारे उपर बैठा होगा। पर्त-दर-पर्त मुर्दे दबते जाते हैं।

शेख, इस दुनिया में कोई भी हमेशा रहने वाला नहीं हैं।

बुद्ध का बड़ा प्रसिद्ध वचन है: सब्बे संघार अनिच्चा—इस संसार सभी कुछ बहावमान है, बहता जा रहा है, परिवर्तनशील है। इसमें कहीं भी कोई किनारा नहीं है। लहरों को किनारे मत समझ लेना और उनको पकड़ कर मत रुक जाना। और जिस जगह तुम बैठे हो, बैठे-बैठे अकड़ मत जाना, उसको सिंहासन मत समझ लेना। सब सिंहासनों के नीचे कब्रें दबी हैं।

'जैसे कुलंग पक्षी कार्तिक में आते हैं, चैत में दावानल और सावन में जैसे कामिनी अपने प्रीतम के गले में बाहें डाल देती हैं—ऐसे ही सब क्षण भर को आता है और चला जाता है। इस सत्य पर तुम अपने मन में विचार कर कि यहां सब क्षणभंगुर है।' शाश्वत के सपने मत सजा। शाश्वत के सपने सजाएगा तो भटकेगा। क्षणभंगुर के सत्य को देख। इस पर तू अपने मन में विचार कर।

'मनुष्य के गढ़ जाने में महिनों लगते हैं, टूट जाने में क्षण भी नहीं लगता।'

फरीद कहते हैं: जमीन ने आसमान से पूछा, कितने खेने वाले चले गए।' श्मशान और कब्रों में उनकी रुहें झिड़कियां झेल रही हैं!'

'चले चलणहार विचारा लेइ मनो।'

चलती हुई हालत है; चल ही रहे हैं मौत की तरफ। चले चलनहार—चल ही पड़े हैं। जन्म के साथ ही आदमी मरने की तरफ चल पड़ा है।

'चले चलणहार विचारा लेइ मनो'।

ठीक से सोच ले। यहां घर बनाने की कोई जगह नहीं है। यहां रात रुक जा, ठीक; मंजिल यहां नहीं है। पड़ाव हो, बस; सुबह उठे और डेरा उठा लेना है।

'चले चलणहार विचारा लेई मनो'।

'गंढ़ेदिआ छिअ माह तुरंदिआ हिकु खिनो।।'

छह महिने लग जाते हैं बच्चे के गढ़ने में, क्षण भर में मिट जाती है। मरने में क्षण भर नहीं लगता।

'जिमी पूछै असमान, फरीदा खेवट किनी गए।'

जमीन आसमान से पुछती है, फरीद कितने खेने वाले, नावें चलाने वाले माझी आए और चले गए।

'जारण गोरा नालि उलामें जीअ सहे।'

और वे सब कहां हैं, जो बड़ा मस्तक उठा कर माझी बने थे: जो नाव पर अकड़ कर बैठे थे; जिन्होंने सिंहासनों को शोभायमान किया था—वे अब सब कहां हैं? वे सब बड़े खेने वाले लोग कहां खो गए ?

शमशान और कब्रों में उनकी रुहें झिड़कियां झेन रही हैं।

अब वे अपने लिए ही पछता रहे हैं कि उन्होंने कुछ न किया, जो करने योग्य था! और वह सब कमाया जो मिट्टी था! हीरे गंवाए, कंकड़ इकट्ठे किए! कूड़ा-कर्कट सम्हाला, संपदा खोई। अब वे झिड़कियां झेल रहें हैं।

जीवन, जिसे तुम जीवन कहते हो, जीवन नहीं हैं; यह तो केवल मरने की प्रतिक्षा है; मृत्यु के द्वार पर लगा क्यू है: अब मेरे, तब मेरे! एक और जीवन है, एक महाजीवन है। धर्म उसीका द्वार है। लेकिन जो इस जीवन को मृत्यु जान लेगा वही उस महाजीवन की खोज में निकलता है। इस पर ठीक से सोचना।

फरीद ठीक कहता है: खूब मन ठीक से विचार कर ले। यह जीवन हो सकता है, यह क्षणभंगुर, जो अभी है और अभी गया; हवा के झोंके में कंपते हुए पत्ते की भांति, जो प्रतिपल मरने के लिए कंप रहा है? सुबह के उगते हुए सुरज में जैसे ओस समा जाती हैं, विलीन हो जाती है, खो जाती है, ऐसी मौत किसी भी दिन तुझे तिरोहित कर देगी। यह तेरा होना कोई होना है? इस पर ठीक से ठीक से विचार कर ले। जिन्होंने भी ठीक से विचार किया वे ही नए अस्तित्व की खोज में लग गए।

बुद्ध ने देखा मरे हुए आदमी को, पूछा अपने सारथी कोः क्या हो गया है इसे?

सारथी ने कहाः सभी को हो जाता है—अंत में सभी मर जाते हैं।

बुद्ध ने कहाः रथ वापस लौटा ले।

सारथी ने कहाः लेकिन हम युवक महोत्सव में भाग लेने जा रहे थे। वे आपकी प्रतिक्षा करते होंगे, क्योंकि राजकुमार गौतम ही युवक महोत्सव का उदघाटन करने को था।

गौतम बुद्ध ने कहाः अब मैं युवक न रहा। जब मौत आती है, और मौत आ रही है—कैसा जीवन? कैसा उत्सव? वापस लौटा ल। मैं मर गया। इस आदमी को मरा हुआ देख कर मैं जिसे अब तक जीवन समझता था, वह मिट गया; अब मुझे किसी और जीवन की तलाश में जाना है।

उस जीवन की खोज ही धर्म है।

आज इतना ही।

न कानों सुना न आंखों देखा

दूसरा प्रवचन

प्रश्न-सार

तड़पते-तड़पते जब सीना छलनी हो जाए, व्यक्ति एक घाव हो जाए और फिर भी होश न आए—तब क्या?

लगातार बारह वर्षों तक सत्य-भाषण से क्या मुक्ति उपलब्ध होती है?

मेरा तथा अन्यों का दुख भगवान श्री कैसे जान लेते हैं, और प्रवचन से ही सभी संदेहों और प्रश्नों का समाधान कैसे मिल जाता है?

मैं तुमसे बोल रहा हूं

पहला प्रश्नः तड़पते-तड़पते मेरा सीना छलनी हो गया है और मैं एक घाव हो गई हूं; मगर जागने और होश में आने की फिर भी कोई ईच्छा नहीं है। क्या कारण है? और गहरा डोज़ दे ही डालिए।

अतिशयाक्ति से बचना जरूरी है। अतिशयोक्ति असत्य का ही एक रूप है—छिपा हुआ, दिखाई नहीं पड़ता। और अतिशयोक्ति को जिसने भी जीवन में पकड़ लिया, उसकी कोई भी समस्या हल होनी असंभव हो जाएगी; क्योंकि समस्या इतनी बड़ी होती ही नहीं जितनी बड़ी अतिशयोक्ति के कारण दिखाई पड़ती है। जहां सुई से काम हो जाए वहां तलवार की तो कोई जरूरत होती नहीं। लेकिन अगर अतिशयोक्ति के कारण तुम्हें ऐसे दिखाई पड़े कि तलवार की जरूरत है तो जो काम सुई से हो सकता था वह तलवार से न होगा। सुई तो जोड़ती, तलवार और तोड़ देगी, सुई से तो सीना हो जाता, तलवार से तो और कपड़े फट जाएंगे।

धर्म के मार्ग पर भी अतिशयोक्ति एक बहुत बड़ा उपद्रव है, और मन का आग्रह है अतिशयोक्ति का। मन सभी चीजों का बड़ा करके देखता है। न तो तुम्हारा दुख इतना बड़ा करके तुम देखते हो; न तुम्हारी समस्याएं इतनी बड़ी हैं जितनी बड़ी करके तुम देखते हो।

मन सभी चीजों को मैगनीफाई करता है,क्योंकि अहंकार बड़ी चीजों में रस लेता है। दुख की बात होगी तो तुम देख के हिमालय की चर्चा करोगे। जरा-सी अशांति हो जाएगी, आंधा और तूफानों को ले आओगे। इस बचकानी आदत से बचो। क्योंकि तब प्रारंभ से ही यात्रा गलत हो गई; समाधान का उपाय न होगा।

मैं एक घर में मेहमान था। मेजवान का छोटा-सा बच्चा भागा हुआ बाहर से भीतर आया, और उसने पिता से आकर कहा कि मेरे पीछे सैकड़ों शेर लग गए—बबर शेर! बाप ने कहाः ठीक से बता। शेर यहां सड़क पर कहां मिल जाएंगे? बबर शेर तुझे कहां मिल गए?

लड़का थोड़ा चौंका। उसने कहाः शेर तो नहीं थे, कुत्ते ही थे।

बाप ने कहाः और जरा ठीक से बता। सैकड़ों कुत्ते अचानक कहां से आ जाएंगे?

उसने कहाः सैकड़ो तो नहीं थे, एक ही था।

बाप ने पूछाः। वह तेरे पीछे लगा था, तुझ पर हमला किया था?

उसने कहाः वह हमला क्या करेगा? पड़ोसी का लंगड़ा कुत्ता! मगर वह पीछे-पीछे आ रहा था।

बाप का नाराज होना स्वाभाविक था। उसने कहाः दस करोड़ दफे तुझसे कह चुका हूं कि अतिशयोक्ति मत किया कर।

लड़का तो चला गया। मैने बाप से पूछाः इस लड़के की उम्र कितनी है? उसने कहा की होगी कोई तीन साल की।

तो मैंने कहाः अगर इसके जन्म से लेकर तुम एक लाख बार कह रहे हो तब कहीं तीन साल में दस करोड़...। अतिशयोक्ति तुम उसकी रुकवाना चाहते हो; अतिशयोक्ति तुम भी कर रहे हो, और इससे ज्यादा कर रहे हो। शायद उसकी अतिशयोक्ति में तो थोड़ा सच है—थोड़ा सच यह है कि यह ड़र गया है; कुत्ता ही सही, लेकिन इसको डर शेर का लग गया होगा। यह घबड़ा गया है; घबड़ाहट में हजारों-सैकड़ों कर डाले इसने; कुत्ते का शेर हो गया। लेकिन इसकी अतिशयोक्ति में भी थोड़ा सच है; तुम्हारे दस करोड़ में तो इतना भी सच नहीं है। पर अपनी अतिशयोक्ति दिखाई नहीं पड़ती। दूसरे की अतिशयोक्ति सरलता से दिखाई पड़ जाती है।

पूछा है, तड़पते-तड़पते मेरा सीना छलनी हो गया है।

अगर सच में ही इतना तड़फा हो कि सीना छलनी हो जाए तो परमात्मा से मिलना हो ही जाता है; क्योंकि तड़फ ही तो उसकी प्रार्थना है और तड़फ ही तो उसकी पूजा है। और जो इतना तड़फा हो कि सीना छलनी हो जाए...।

थोड़ा सोचना कि छलनी का मतलब क्या होता है। छेद ही छेद हो गए हों जहां, कुछ भी पकड़ने की सुविधा न रह गई हो। छलनी कुछ भी सम्हाल नहीं सकती; भरो पानी, सब बह जाता है। सीना छलनी हो जाने का मतलब है कि अब कुछ भी पकड़ने की सामर्थ्य न रही; कोई आसक्ति न रही; किसी भी चीज को परिग्रह करने का उपाय न रहा। अहंकार भी नहीं भर सकता, सीना छलनी हो जाए तो, क्योंकि वह भी बह जाएगा; वासना नहीं भर सकती; महत्वकांक्षी नहीं भर सकती; ईर्ष्या, घृणा नहीं भर सकती; मोह आसक्ति, माया-मत्सर, कुछ भी नहीं भर सकता।

सीना छलनी हो गया, तो तुम शून्य हो जाओगे। सीना छलनी हो जाए, तुम शून्य हो जाओ, तो पूर्ण से मिलने में बाधा और क्या है?

नहीं, लेकिन कविता करना एक बात है; जीवन के सत्य को समझना बिलकुल दूसरी बात है। लंगड़े कुत्ते को देख कर शेर बबर याद आ गया है।

तड़पते-तड़पते मेरा सीना छलनी हो गया है!

और ध्यान रखना, अच्छे शब्दों में खतरा है, सुंदर शब्दों में खतरा है; क्योंकि एक शब्द के पीछे दूसरा शब्द बंधा चला आता है। तुमने कविता शुरू की; शुरू भला तुमने की हो, अंत तुमसे नहीं होता। तुमने एक पंक्ति कविता की बना ली, दूसरी पंक्ति पहली पंक्ति से अपने-आप पैदा हो जाती है। इसे थोड़ा मन में सोचना और समझना और विश्लेषण करना।

जहां तुम कल्पना में उतरना शुरु हुए कि अनंत कल्पनाओं के द्वार खुल जाते हैं। फिर सब तरफ से कल्पनाएं बहना शुरु हो जाती हैं। मनुष्य का मन तो सपने देखने में बड़ा कुशल है। झूठ तो उसकी एकमात्र कला है। और तो मन कुछ जानता ही नहीं। सत्य से तो उसका कोई संबंध नहीं है।

और मैं एक घाव हो गई हूं।

अगर तुम घाव ही हो जाओ, अगर तुम्हारे प्राण सिर्फ पीड़ा ही पीड़ा से भर जाए, तो फिर और करने को

बचा क्या? फिर और तुम करोगे भी क्या? फिर भी अगर परमात्मा न मिले तो उसका एक ही अर्थ होता है कि परमात्मा होगा ही नहीं। तो ऐसी चित्त-दशा के दो ही अर्थ हो सकते हैं। या तो परमात्मा है ही नहीं, क्योंकि अब और क्या किया जा सकता है...? जो करना था वह सब किया जा चुकाः तुम घाव हो गए, सीना छलनी हो गया! और या फिर परमात्मा तो है; यह घटना तुम्हें नहीं घटी है। इसकी तुमने कल्पना कर ली है। हालांकि तुम्हारा मन भी यही होगा कि जहां तक तो परमात्मा ही न होगा; क्योंकि अपने पर शक नहीं आता, परमात्मा तक पर शक लाना आसान है। मेरा सीना तो छलनी हो ही गया है, मैं तो घाव हो ही गया हूं—मन यही कहेगा, इससे साफ है कि परमात्मा नहीं है। इसलिए तो नास्तिकता पैदा होती है।

नास्तिकता अपने पर भरोसा है—जरुरत से ज्यादा, अतिशयाक्तिपूर्ण। नास्तिकता यह कहती है, मैं तू हूं, परमात्मा नहीं है। आस्तिक कहता है, मैं नहीं हूं, परमात्मा है। बस तीर को जरा सा बदल लेना है। नहीं का तीर अपने पर लगा लेना है। वही तीर परमात्मा पर लग जाए—तीर वही हैः मैं—हूं, परमात्मा नहीं है; अपने होने को तुम बड़ा करके देख लो और परमात्मा के सारे होने को पी जाओ, उस को भी अपने अहंकार में जोड़ लो—तो नास्तिक। और तुम परमात्मा को इतना होना दे दो कि अपना होना भी उसी में सम्मिलीत हो जाए, उसके अतिरिक्त अपना होना न बचे—तो आस्तिक।

और दो ही तो विकल्प हैंः या तो अहंकार का भरोसा है...।

यह सब भाषा अहंकार की है। तुम यह तो मान ही नहीं सकते कि तुम्हारी तरफ से कोई कमी रह गई है। परमात्मा अगर नहीं मिल रहा है तो कठोर होगा; अगर नहीं सुन रहा है तो बहता होगा; अगर नहीं दौड़ा चला आता है तुम्हारे घाव को देख कर तो उसके पास कोई हृदय नहीं है। अगर इसी से तुम चलते रहे—इसी तर्क पर, तो एक दिन तुम कहोगे कि मैं तो जार-जार,छलनी-छलनी हो गया, परमात्मा कहीं है नहीं। तुम्हारे भीतर नास्तिक चल रहा है; नास्तिक पैदा होने की तैयारी कर रहा है। नास्तिक तुम्हारे गर्भ में छिपा है। अतिशयोक्ति में असत्य छिपा है, असत्य में नास्तिक छिपा है। इससे जागो।

तो, पहली बात यह है कि हजार छेद न हों तो हजार छेदों की बात मत करो। अगर तुम आस्तिक से पूछो, ठीक आस्तिकता से, तो वह यही कहेगा, मैंने तुझे पाने के लिए कुछ भी तो नहीं किया। अगर दो फूल चढ़ा दिए तो उसमे भी मेरा क्या है; तेरे ही फूल थे; तुझ पर चढ़े ही थे, उनको तोड़ लाया। कुछ बड़ा उपक्रम नहीं हो गया है। अगर तेरे सामने बैठकर दो आंसू गिरा दिए तो तेरी ही आंखें थीं। तेरे ही आंसू थे तेरी ही चीज थी गोविंद, तुझी को समर्पित कर दी। मेरा इसमें क्या है?

आस्तिक अपने में कर्तत्व नहीं देखेगा; देखेगा परमात्मा को ही। और ऐसी घड़ी में कोई द्वार बंद कैसे रह सकता है? कभी नहीं रहा है। कोई तुम्हारे लिए कोई विशेष नियम थोड़े ही लागू करना होगा? एक भी छेद हो जाए हृदय में तो खाली हो जाओगे। हजार छेदों की जरूरत थोड़े ही है। नाव एक छेद से डूब जाती है; कोई छलनी थोड़े ही होना पड़ता है।

मैं तुमसे कहता हूं, अभी एक भी छेद नहीं हुआ। यह छेद की बातचित तुम्हारी कल्पना होगी। यह भी तुम्हारे मन का मजा है। और तरह के मजे देख लिए हैंः मेरे पास बहुत धन है, मेरे पास बड़ा मकान है, बड़ा पद है; अब उससे तुम उब गए हो, अब तुम एक नई महत्वकांक्षा में लगे हो, मगर खेल वही है कि मेरे हृदय में इतने छेद परमात्मा की पीड़ा से नहीं हुए; मैं छलनी हो गया! अगर कोई दूसरा दावा करेगा की मेरे छेद तो गिनो, तुमसे ज्यादा हैं, तो बड़ी पीड़ा होगी, दुख लगेगा। वही महत्वकांक्षा, वही अहंकार नये रूपों में पकड़ रहा है। तो ऐसे यह मूढ़ता कभी भी न टुटेगी।

तो पहली बात तो गौर से देखो, फिर से सोचना—तड़पते-तड़पते मेरा सीना छलनी हो गया है!

क्या तड़पे हो? धन के लिए भी जितने तड़पे हो उतने परमात्मा के लिए नहीं तड़पे। अगर कभी जेब कट जाए तो जितने रोओगे उतने भी परमात्मा के खोने से नहीं रोए हो; कि अभी मकान गिर जाए तो जैसा छाती पर

दुख का पहाड गिरेगा, ऐसा मंदिर के गिर जाने से कब पीड़ा हुई है। अभी छोटा-सा बच्चा तुम्हारा चल बसे, या पत्नी चल बसे, या पती चल बसे, तो जैसे दहाड़ मार कर तुम रोओगे, ऐसे तुम परतात्मा के खो जाने से रोए हो?

तड़पते-तड़पते मेरा सीना छलनी हो गया है!... फिर से सोचना। कविता करनी हो तो कोई हर्जा नहीं है।

यूनान में एक बहुत बड़ा विचारक हुआ—प्लैटो। उसने एक ऐसे समाज की कल्पना की है—भविष्य के एक उटोपिया की, जहा सब सुंदर होगा; मगर एक उसने अजीब बात अपने उस उटोपिया, रिपब्लिक में लिखी है कि उस दुनिया में कवि बिलकुल नहीं होंगे। प्लैटो—के कल्पना के लोक में रामराज्य में कवियों को कोई जगह नहीं है। शिष्यों ने पूछा कि यह आप क्या कह रहे हैं; यह तो हम सोच ही नहीं सकते—और सब होगा, सब सुंदर, और सुंदर के पुजारी न होंगे?

प्लैटो ने कहाः काव्य एक झूठ है। और कवियों से ज्यादा झूठे लोग पाना मुश्किल है।

इसमें सचाई है। सौ कवियों में निन्यानवे झूठे होते हैं, और एक जो झूठा नहीं होता उसको हमने ऋषि कहा है, कवि नहीं कहा है। हमने फर्क किया है इस मुल्क में। उपनिषद के कवियों को हमने ऋषी कहा है, क्योंकि वह वही कह रहे हैं जो उन्होंने जाना है। और तुम्हारे कवि-संम्मेलनों में जो कवि इकट्ठे हो रहे हैं, उनका जानने से कोई लेना देना नहीं है। वे कल्पना करने में कुशल हैं। उनकी कविताएं सिवाय झूठ के और कुछ भी नहीं है। तुम्हें भी प्रितिकर लगती हैं उनकी कविताएं, क्योंकि झूठ से झूठ का तालमेल हो जाता है। तुम भी प्रफुल्लीत होते हो, क्योंकि ऐसा लगता है, जो तुम कहना चाहते थे वह उन्होंने कह दिया। तुम इतनी सुघस्ता से न कह पाते शायद, उन्होंने ज्यादा सुडौल शब्द चुने, ज्यादा लयबद्ध, ज्यादा संगीतपूर्ण! वे ज्यादा कुशल हैं मात्रा, व्याकरण, काव्य-शास्त्र, छंद में तुम जो कहना चाहते थे वह उन्होंने कह दिया। लेकिन झूठ तुम्हारे भीतर भी घनीभूत है।

प्लैटो ठीक कहता है। मैं भी जानता हूं कि कवि नहीं हो सकते सुंदर लोक में, ऋषि होंगे। वे उतने की ही बात करेंगे जितना है। तुम इंच भर सत्य से हटे कि तुम बहुत दूर हट गए, जमीन-आसमान का फासला हो गया। इंच भर का फासला, जमीन-आसमान का फासला है।

तड़पते-तड़पते मेरा सीना छलनी हो गया है!—फिर से सोचना। अगर ऐसा हो ही गया होता तो कहने वाला भी न बचता।

और मैं एक घांव हो गई हूं!—अगर ऐसा हो ही गया होता तो प्रश्न न उठते; तुम्हारी पीड़ा अहर्निश नहीं हो उठती।

मगर जागने और होश में आने की कोई इच्छा नहीं है! इससे सब बात साफ है। क्योंकि जब इतनी पीड़ा हो तो कोई सोया रह सकता है?

कभी तुमने खयाल किया, सुंदर सपना चलता हो तो नींद नहीं टूटती; लेकिन नाइटमेयर, दुख स्वप्न चलता हो तो नींद टूट जाती है? एक सीमा है दुख के झेलने की। तुम देख रहे हो कि तुम्हारी छाती पर भयंकर यमदूत बैठे हुए हैं—रात सपने में—हाथ में कृपाण उठा ली है, गर्दन पर गिरने ही वाली है, बस तुम पाओगे कि जब वह गर्दन को छूने के ही करीब थी धार उसकी, तभी नींद खुल गई।

एक सीमा है—पीड़ा को झेलने की और सोने की। जब तक तुम पीड़ा को झेलते हो और सोते हो, तब तक समझना कि पीड़ा में भी एक मिठास होगी। पीड़ा भी मिठी होती है। तुम पिड़ित भला सोचते हो कि हो रहे हो, लेकिन पीड़ा नींदा तोड़ने वाली नहीं है तो पीड़ा नहीं है।

जब वस्तुतः कोई दुखी होता है तो सपना कैसे टिक सकता है? सपना टूट जाता है। दुख तो दूर की बात है, जरा-सा आलार्म बजता है घड़ी का और सपना टूट जाता है। अलार्म इतना व्याघात उत्नादन कर देता है। और तुम्हारा जीवन घाव हो गया है, अभी अलार्म नहीं बजता है? तुम्हारा सीना छलनी हो गया और अभी तक

नींद से जगने की आकांक्षा पैदा नहीं होती? आकांक्षा का सवाल कहां है! इतनी पीड़ा में तो नींद टूट ही जाएगी। नींद के लिए तो सुविधा चाहिए।

तुमने खयाल किया होगा, जरा-सा कंकड पड़ा हो विस्तार पर तो नींद नहीं आती। जरा-सी तकलीफ हो तो नींद नहीं आती; और सीना छलनी हो जाए, हृदय घाव बन जाए और नींद से उठने की इच्छा न हो—यह असंभव है।

नहीं, कहीं तुम्हारे स्वयं को देखने में भूल हो गई। देखने की तुमने फिक्र ही न की। तुमने तो कविता बनाने की कोशिश की। प्रश्न नहीं लिखा, एक कविता लिख दी है, झूठ लिख दिया है। तुमने अच्छा प्रश्न बनाने की कोशिश की, सच्ची प्रश्न नहीं। तुमने मुझे प्रभावित करना चाहा, अपने को रूपांतरित नहीं। लेकिन तुम्हारी कविताओं से मैं प्रभावित होने वाला नहीं हूं। तुम्हारी कविताएं कूड़ा-कर्कट हैं, उनको कचरे-घर में फेंक दो। तुमसे सत्य काव्य का जन्म नहीं हो सकता, यह मैं जानता हूं, क्योंकि तुम सत्य नहीं हो। तुम्हारी कविता तुम्हारे अंधेरे जगत का ही हिस्सा होगी।

मगर जगने और होश में आने की फिर भी कोई इच्छा नहीं है! यह सबूत है कि दुख हुआ नहीं। हां यह हो सकता है कि मेरी बात सुन-सुन कर तुम्हे परमात्मा को पाने की लालसा जगी हो; लेकिन संसार से जागने की बात पैदा नहीं हुई है। यह हो सकता है। मुझे सुनो, मैं रोज परमात्मा को पाने का आनंद तुमसे कहे जाऊं। कबीर को सुनो, नानक को, दादू को, फरीद को, बुद्धों को सुनो, मीरा का नाच देखो, चैतन्य के गीत सुनो—तो तुम्हारे मन में एक लोभ उठेगा परमात्मा को पाने का। लेकिन इन लोगों ने लोभ के कारण परमात्मा को नहीं पाया हैं; इन्होंने तो—जीवन की पीड़ा, जीवन का दुख, जीवन का संताप, इतना गहन हो गया कि इनका हृदय टूट गया, ये जाग गए, नींद टूट गई—इन्होंने जागकर पाया है। जब ये अपने जाग कर पाने की तुमसे बात करते हैं तो तुम्हारे भीतर लोभ का कीड़ा सरकता है; वह कहता है, ऐसा सुख हमें भी चाहिए, ऐसा आनंद हमें भी चाहिए, सच्चिदानंद मैं भी घर में बांध कर लाऊंगा! तब तुम्हारी अड़चन शुरू होती है। तुम इनसे पूछते हो: कैसे मिलेगा यह सच्चिदानंद? वे कहते हैं: जागोगे, जीवन का दुख पहचानोगे, जीवन के चुभते कांटे को समझोगे...! तुम कहते हो: जागने की तो इच्छा नहीं होती।

वस्तुतः तुम जिसे ईश्वर कहते हो, वह तुम्हारा और एक गहरा स्वप्न है। तुम ईश्वर के नाम से भी सो जाना चाहते हो। संसार की नींद पूरी नींद नहीं है, इसमें बड़ी मकलीफें हैं; तुम परमात्मा की नींद चाहते हो, तकलीफ बिलकुल ही न हो। तुम्हारा मोक्ष तुम्हारे संसार का ही परिष्कृत रूप है, आखिरी शुद्धतम रूप है। इसलिए तुम्हारा मोक्ष और महावीर का मोक्ष अलग-अलग बातें हैं। तुम्हारे मोक्ष का नाम स्वर्ग है। महावीर के मोक्ष का नाम स्वर्ग नहीं है। स्वर्ग का मतलब है, जिन सुखों को तुम यहां पृथ्वी पर पाना चाहते हो और नहीं पा पाते, उन सबकी तुमने आकांक्षा स्वर्ग में कर ली।

सोचो: जिन्होंने स्वर्ग में कल्पवृक्षों का विचार किया है, वे संसारी लोग ही होंगे।

कल्पवृक्ष का मतलब क्या होता है?

कल्पवृक्ष के नीचे तुम भी बैठना चाहते हो। संसार में भी तुम्हारी चेष्टा यही है कि कल्पवृक्ष मिल जाए। नहीं मिलता; यह संसार की कृपा है कि नहीं मिलता। मिल जाए तो तुम वहीं ढेर हो जाओ सदा के लिए, फिर तुम वहां से हिलो न। तुम्हारी भी आकांक्षा तो यही है कि श्रम न करना पड़े और फल मिल जाए। कल्पवृक्ष का मतलब इतना है कि वहां तुम बैठ जाओ, आकांक्षा करो, पूरी हो जाती है; आकांक्षा और पूर्ति में जरा भी फासला नहीं होता। कृत्य कुछ भी नहीं करना पड़ता; बस कामना की और फल मिला।

तो स्वर्ग में तुमने कल्पवृक्ष बनाया है। वह तुम्हारी वासनाओं का वृक्ष है।

मुसलमान मानते हैं कि स्वर्ग में शराब के चश्मे बह रहे हैं। हिंदुओं का कल्पवृक्ष है। मुसलमानों के शराब के चश्मे हैं। यहां शराब वर्जित है और वहां शराब के झरने बह रहे हैं। वहां कोई बनानी भी नहीं पड़ती।

वहां पानी पिने को है ही नहीं, शराब ही है। उसी में नहाओ, उसी में धोओ, उसी में डूबो, तैरो, और कोई पाबंदी नहीं है।

आदमी की वासना उसके स्वर्ग को बनाती है। वहां सुंदर स्त्रियां हैं जिनके शरीर से पसीना नहीं बहता और जो कभी बूढ़ी नहीं होतीं। उसकी उम्रह सोलह पर ही टंगी रह जाती है, उससे आगे नहीं चलती; सोलह पर ही घड़ी बंद हो जाती है। उर्वशी की उम्र मालूम है, कितनी है? अप्सराएं बस सोलह पर रूक गई है, उससे आगे नहीं जातीं।

यह किन कामनोग्रस्त लोगों ने इनकी कल्पना की होगी, थोड़ा सोचो। यह किन्ही ऋषियों का अनुभव है? यह किन्हीं बुद्धों की प्रतीति है? यह तुम्हारी वासना है।

और यहां तक तुम्हारी सीमा पहुंच जाती है कि ऐसे लोग भी हैं जमीन पर जिन्होंने स्वर्ग में न केवल सुंदर स्त्रियों की कल्पना की है सुंदर छोकरों की भी कल्पना की है, होमोसुक्सुअलिटी का भी इंतजाम किया हुआ है। अब पर्वसन और विकृत और क्या हो सकती है!

तुम्हारा स्वर्ग तुम्हारी ही छाया है। महावीर का मोक्ष महावीर के मिट जाने से अनुभव में आता है। तुम्हारा स्वर्ग तुम्हारा विस्तार है। यहां तुम्हें जो नहीं मिला है वह तुम स्वर्ग में पाना चाहते हो। संसार में तुमने जो नहीं पाया...चाहते थे दिल्ली पहुंच जाए, नहीं पहुंद पाए, चाहते थे राष्ट्रपती हो जाएं, नहीं हो पाए। आसान नहीं है। पा लो जो मिलता कुछ नहीं है लेकिन बहुत मुश्किल है; क्योंकि तुम अकेले थोड़े ही पागल हो, इस मुल्क में पचास करोड पागल हैं—वे सभी राष्ट्रपती होना चाहते हैं। तो ये पचास करोड़ सिंहासन पर तो हो नहीं सकते, एक ही हो पाएगा। और जो एक किसी तरह पहुंच जाएगा, वह इन पचास करोड़ से लड़ कर पहुंचेगा; लड़ने में ही पागल हो जाएगा, इतना भयंकर उपद्रव है! और पहुंच कर भी यह निश्चित तो बैठ नहीं सकता सिंहासन पर, क्योंकि ये पचास करोड़ पागल धक्का दे रहे हैं सिंहासन को, ये कह रहे हैंः अब छोड़ो सिंहासन, जनत आती है वे चैन से थोड़े बैठने देंगे; कोई टांग खींच रहा है, कोई हाथ खींच रहा है। धक्के देने की तैयारी चल रही है। यह कोई स्थिती थोड़क ही हो सकती है सुख की।

जिनको मिल जाता है वे दुख में हैं; जो नहीं मिल पाते, जो नहीं पहुंच पाते, वे दुख में हैं। फिर तुम्हारी कल्पना कहती है, इस संसार में कुछ सार नहीं। इसलिए नहीं कि तुम्हें दिखाई पड़ गया कि संसार में कोई सार नहीं है; सार तो तुम्हें संसार में ही है; तुम्हारी असफलता के कारण तुम अपने को समझा रहे होः अंगूर खट्टे हैं। अब तुम मोक्ष, परमात्मा, प्रार्थना-पूजा की आकांक्षा से भरते हो। वे तुम्हारी जीवन की समझ से पैदा नहीं हो रही हैं, जीवन के राग से ही पैदा हो रही हैं। फिर परमात्मा नहीं मिलता। होश में आने की इच्छा भी नहीं होती। ध्यान करने का मन भी नहीं होता। तुम परमात्मा को मुफ्त पाना चाहते हो।

मगर जगने और होश में आने की फिर भी कोई इच्छा नहीं है! स्वभावतः बात साफ है कि अभी नींद में रस है, इसलिए तुम जगना नहीं चाहते। और इसलिए आखिरी बात तुमने पूछी हैः क्या कारण है? कारण बिलकुल साफ है। मुझसे क्या पूछना है? अपने भीतर ही देखो, कारण साफ है। तुम जगना नहीं चाहते। अभी जगने योग्य समझ ही नहीं हैं। जीवन एक अंतहीन शृंखला है पीड़ा की। मौत ही मौत है यहां प्रत्येक कदम पर; कांटे ही कांटे बिछे हैं। फूल दिखते हैं—वह तुम्हारा प्रक्षेपण है। फूल तुम्हारी आकांक्षा है, लेकिन मिलते कांटे हैं। चाहते फूल हो, मिलता कांटा है। खेलना फूल से चाहते थे, उलझ कांटे से जाते हो।

तुम्हारी वहीं दशा है जो किसी मछली की होती है। मछलीमार आटे को लटका देता है बंसा में बांध कर। मछली आटा पकड़ने आती है, आटे में कांटा छिपा होता है। मछली कोई कांटा थोड़े ही पकड़ने आती है? कौन कांटा पकड़ने जाता है? सभी आटा पकड़ने जाते हैं, पकड़ती है आटा, फंस जाती है कांटे से। वह तो बंसी लटकाए बैठा हुआ मछलीमार है, वह कोई मछलियों पर करुणा करके यहां आटा बांटने नहीं आया है। आटा तो प्रलोभन है। वह तो सेल्समैनशिप है। वह तो विज्ञापन है। भीतर तो कांटा छिपा है। नजर तो इस पर है कि आटा

पकड़ ले मछली तो बस कांटे से उलझ जाए, फंसे।

संसार में जहां-जहां तुम्हें आटा दिखता है वहीं-वहीं कांटे तुम पाओगे। तुमने सदा पाए भी हैं, लेकिन फिर भी तुम्हारी मुर्च्छा नहीं टूटती। मन कहता है : अब तक जिन आटों को पकड़ा, कांटे पाए; लेकिन भविष्य में भी क्या सदा ऐसा ही होगा? फिर जब नया आटा लटकता है—नए रंग में नए सुगंध के साथ, फिर तुम अपने को नहीं सम्हाल पाते। तुम सोचते हो : कौन जाने, इस बार आटा ही हो! कांटा तो दिखाई नहीं पड़ता जब तक चुभे न।

जिसको तुम संसार में सुख कहते हो, वह सभी दुख का आवरण है।

एक बहुत पुरानी अरब कथा है, कि परमात्मा ने पृथ्वी बनाई, और उसने सौंदर्य और कुरुपता की देवियां बनाइं और उनको पृथ्वी पर भेजा। स्वर्ग से पृथ्वी तक आते-आते धूल-धवांस में भर गइं, एक झील के किनारे उन्होंने वस्त्र उतारे और दोनो नग्न होकर स्नान करने झील में उतर गइं। सौंदर्य की देवी तो तैरती दूर चली गई; कुरुपता की देवी किनारे के पास ही रही। जैसे ही सौंदर्य की देवी जरा दूर गई, वह निकली, उसने सौंदर्य की देवी के वस्त्र पहने और चलती बनी। जब सौंदर्य की देवी वापस किनारे पर आई तो सुबह हो गई थी, गांव के लोग जगने लगे थे, आवागमन शुरु हो गया था; वह नग्न खड़ी थी, और वस्त्र तो नदारद थे। मजबूरी में उसे कुरूपता के वस्त्र पहन लेने पड़े, और कोई उपाय न था। वे ही वस्त्र उपलब्ध थे। औ कहते हैं, तब से सौंदर्य की देवी कोशिश कर रही है खोजने की कि कुरुपता की देवी मिल जाए तो उससे अपने वस्त्र ले ले, लेकिन वह मिलती नहीं। और तब से सौंदर्य कुरुपता के वस्त्र पहने घूम रही है और कुरुपता सौंदर्य के वस्त्र पहने घूम रही है। तब से सब चीजे उलटी हो गई हैं।

कहानी बड़ी महत्वपूर्ण है।

इस जगत में तुम सौंदर्य के भीतर छिपी हुई कुरुपता को पाओगे। द्वार पर तखती लगी होगी स्वर्ग की; भीतर पहुंचोगे, नर्क पाओगे। लेकिन जिस दिन तुम्हें यह अनुभव प्रगाढ़ हो जाएगा—मेरे कहने से नहीं, या बुद्ध के कहने से नहीं—जिस दिन तुम्हें यह दिख जाएगा कि जहां-जहां आटा है वहां-वहां कांटा है, उस दिन हृदय को छलनी बनाने की जरूरत न रहेगी, एक छेद काफी हो जाएगा। एक छेद पर्याप्त है डुबाने को। एक छेद पर्याप्त है उबारने को भी। कोई डुबने के लिए पूरी नाव को छलनी नहीं बनाना पड़ता। बस एक छेद तुम्हारे जीवन में हो जाए—इस बोध का कि इस जगत में सुख असंभव है, यह तुम्हारी गहन प्रतीति हो जाए—तो परमात्मा क तरफ जो प्रार्थना उठेगी, वह पहली बार वास्तविक होगी। वह सांसारिक नहीं होगी प्रार्थना। वह तुम्हारी नींद का हिस्सा नहीं होगी। अन्यथा तुम्हारी नींद में ही तुमने मंदिर भी बनाए हैं और मूर्तियां भी सजाई हैं और पूजा भी की है और दीए भी जलाए हैं—पर तुम्हारी नींद में ही।

इसीलिए तो दुनिया में इतने मंदिर हैं और आदमी जागा हुआ दिखाई नहीं पड़ता। इतनी मस्जिदें, इतने गुरुद्वारे, और आदमी बेहोश! यह हो कैसे सकता है? जरूर यह सब नींद में ही चल रहा है। तुम मंदिर भी चले जाते हो, पूजा भी कर लेते हो : न तुम्हें पता है, तुम क्यों कर रहे हो, न तुम्हें पता है यह मंदिर क्या है। और तुम इतने ड़रे हुए हो कि कहीं पता न चल जाए। इसलिए तुम चुपचाप करके निकल आते हो। अगर कोई पकड़े और झकझोरे तो तुम नाराज हो जाते हो। इसलिए तुम बुद्धों को माफ नहीं कर पाते। जीसस को सूली देनी पड़ती है। सुकरात को जहर पिलाना पड़ता है। ये वे लोग हैं जो तुम्हें रास्ते में पकड़ लेते हैं और तुम्हें कहते हैं : कहां जा रहे हो? यह मंदिर झूठा है। तुम खुद अभी सोए हो। सोए हुए आदमी का मंदिर सच्चा कैसे हो सकता है?

शराब पिए हुए कोई पूजा कर रहा है, क्या उसकी पूजा सच हो सकती है? शराब पिए आदमी की न तो गाली का कोई भरोसा होता है। जब होश में आ जाए तो समझना। होश में आने पर शायद खुद ही हंसे कि यह मैं क्या कर रहा था; शायद छिपाए कि किसी को पता तो नहीं चल गया कि मैं पूजा करता हुआ देख लिया गया हूं। लोग हंसेगे, कहेंगे : इतना समझदार होकर अभी तक अंधविश्वासी है।

शराब पिए हुए आदमी पूजा करे तो व्यर्थ, झगड़ा करे तो व्यर्थ; उससे सार्थक तो हो ही नहीं सकता है।

कारण पूछते हो क्या कारण है? कारण साफ है: संसार अभी दुख नहीं हुआ और उसके पहले ही तुमने परमात्मा की मांग शुरू कर दी। नहीं, यह नहीं हो सकता। पके बिना कोई उपाय नहीं है। पकना ही होगा। दुख इतना पक जाए, जैसे वृक्ष पर फल पक जाते हैं, तो पका हुआ फल गिर जाता है—ऐसे ही पका हुआ संसार गिर जाता है, पका हुआ दुख गिर जाता है। और तब तुम उठते हो तुम्हारी निर्दोषता में। तब तुम्हारे भीतरे से एक गूंज उठती है ओंकार की। तब तुम्हारे भीतर से अनाहत का नाद उठता है। तब तुम यह मुझसे पूछोगे नहीं कि इतने छेद हो गए हैं हृदय में, अब तक देर क्यों हो रही है! देर कभी हुई ही नहीं है; छेद ही नहीं हुए हैं, इसलिए देर हो रही है।

और तुमने यह मुझसे पूछा है: और गहरा डोज़ दे ही डालिए! जैसे मेरा कोई कसूर है! जैसे जिम्मेवारी मेरी है! जागो तुम नहीं , तो तुम कहते हो: तुमने ठीक से न जगाया होगा। जागाक तुम नहीं तो तुम कहते हो: तुमने जोर से क्यों न हिलाया?

इमेनुएल कांट जर्मनी का बड़ा विचारक हुआ। पूरी जिंदगी उठ कर भी तीन बजे उठाना उसे कष्टपूर्ण रहा। वह उसके शरीर को जमता न था, उसने एक नौकर रख छोड़ा था जो इतना ही काम करता था कि उसे जबरदस्ती उठर दे। कभी-कभी मारपीट भी हो जाती थी, क्योंकि नौकर उठा रहा है, वह नहीं उठना चाहता रहा है। झगड़ा हो जाए: नौकर खींच रहा है और बिस्तर में, पल्ली में छुप रहा है। वह नौकर को मारे भी; सुबह क्षमा भी मांगे। पहली-पहली दफे जब नौकर रखा था तो उसने कहा: तीन बजे उठा देना। नौकर ने जा कर उठा दिया। वह करवट ले कर सो गया। नौकर हट गया। उसने कहा, बात खतम हो गई। सुबह बहुत नाराज हुआ कि उठाने का मतलब उठाना; चाहे कुछ भी हो जाए—मैं अगर तुझे मारूं भी तो तू फिक्र मत करना; तू भी मारना; उस वक्त न कोई नौकर है न कोई मालिक है—मगर तीन बजे उठाना है! नौकर भी नहीं समझता था कि यह मामला क्या है। अगर उठना ही है तो उठ जाओ। अगर नहीं उठना है तो मारपीट की नौबत क्या लानी! लेकिन यह जिंदगी भर चला, ऐसे ही चला।

यह भी उठना कोई उठना हुआ? और ऐसे उठकर क्या ब्रह्ममुहूर्त का आनंद लिया जा सकता है? उठ आता होगा; आंख में तो नींद घिरी रहेगी। उठ आता होगा, लेकिन मन में तो अभी भी सपने चलते रहेंगे। उठ आता होगा—किसी तरह; खींचता होगा देह को अपनी। लेकिन जिंदगी भर लड़-लड़ कर मारपीट करके उठना पड़ता हो, इस उठने में मजा न रहा।

नहीं, मैं तुम्हें मारपीट करके पहीं उठाना चाहता। यह बात ही बे-मजे की हो गई। तुम इशारे से उठ आओ तो ठीक है; न उठो तो जाहिर है कि तुम अभी सोना चाहते हो। मैं तुम्हारी नींद क्यों खराब करूं? इसमें मेरा कोई कसूर नहीं है।

मेरे ड़ोज के कम-ज्यादा देने से कुछ भी न होगा; क्योंकि यह सवाल तुम्हारी गहन आकांक्षा का है। इसकी कोई दवा नहीं हो सकती।

चिकित्सक कहते हैं कि अगर मरीज बीमार हो तो ठीक किया जा सकता है, दवा दी जा सकती है; लेकिन अगर मरीज ने जीने की आशा छोड़ दी हो तो कोई उपाय नहीं है। अगर कोई मरीज मरना ही चाहता है तो बीमारी भी ठीक हो जाए तो भी मर जाएगा, क्योंकि जीने की आकांक्षा ही छोड़ दी हो तो फिर कोई उपाय नहीं है।

ठीक ऐसी ही दशा है। अगर तुमने जागने की आकांक्षा ही न जगाई हो तो मैं लाख उपाय करूं, तुम जागोगे न; सिर्फ मुझसे नाराज हो जाओगे; सिर्फ मुझे गालीयां दोगे; सिर्फ क्रोध जाहीर करोगे। लेकिन अगर तुमने जागना चाहा है तो जरा-सा इशारा काफी है।

बुद्ध ने कहा है: कुछ घोड़े ऐसे होते हैं कि मारने की जरूरत नहीं होती, सिर्फ कोड़ा फटकारना पड़ता है; चोट की जरूरत नहीं होती है, कोड़े की आवाज, और घोड़ा सतेज होकर चलने लगता है।

और बुद्ध ने कहाः कुछ घोड़े ऐसे भी हैं कि कोड़ा फटकारना भी नहीं पड़ता, क्योंकि वह भी अपमानजनक है। सिर्फ कोड़ा है—इतना काफी है; कोड़े की छाया चला देती है। फटकार नहीं, कोड़े की छाया!

बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा हैः तुम तिसरे तरह के घोड़े बनना। मार-मार कर चला भी लिया तो कुछ हल न होगा। क्योंकि मार-मार कर, तुम अगर घसिट-घसिट भी गए, तो कोई घसिट-घसिट कर कभी परमात्मा के मंदिर तक पहुंचता है? वह मंजिल नाच कर पहुंची जाती है। वह मंजिल ऐसी है कि तुम उत्सव से ही चले तो ही पहुंच सकोगे; तुम गीत गाते, मौज से ही चले, तो ही पहुंच सकोगे। जबरदस्ती तुम्हें धकाने का उस तरफ कोई उपाय नहीं है। यह तो सीधी समझ में आ सकने वाली बात है।

मोक्ष जबरदस्ती नहीं मिल सकता, क्योंकि मोक्ष का मतलब ही परम स्वतंत्रता है। अगर परम स्वतंत्रता भी जबरदस्ती मिलती हो तो क्या खाक स्वतंत्रता रह गई; वह तो एक तरह की गुलामी हो गई। उसे तुम्हें कोई भी नहीं दे सकता। तुम जिस दिन चाहोगे उस दिन सारा संसार तुम्हारे लिए सहयोगी हो जाएगा। तुम जब तक नहीं चाहते हो, परमात्मा भी कुछ नहीं कर सकता।

यह बड़े मजे की बात है। धर्मशास्त्रियों ने सदा से इस पर विचार किया है कि परमात्मा अगर है तो आदमी दुख में क्यों है? वह खींच क्यों नहीं लेता? यह बात विचारने जैसी है। परमात्मा महा करुणावान होगा। उसके हृदय में तो प्रेम ही प्रेम होगा। तुम नरक में सड़ रहे हो, वह खींच क्यों नहीं लेता तुम्हें, उठा क्यों नहीं लेता? इससे जाहिर होता है कि नहीं है। अगर होता, करुणावान होता तो तुम्हें खींच लेता। या तो इससे जाहिर होता है कि है हि नहीं और या इससे जाहिर होता है कि वह शैतान है, भगवान नहीं है। वह रस ले रहा है। तुम्हें सता रहा है। सेडिस्ट है। मजा ले रहा है। तुम सताएं जा रहे हो नर्क में, दुख में, पीड़ा में उबाले जा रहे हो उबलते तेल में, और वह बैठा मजा ले रहा है। वह उस सम्राट नीरो की भांती है जिसने पूरे रोम में आग लगवा दी थी और बैठ गया था पास की पहाड़ी पर, बांसुरी बजा रहा था, और यहां लोग जल रहे थे। और उसने पूरे रोम के चारों तरफ सिपाही खड़े कर दिए थे कि कोई भाग कर बाहर न जा सके। वे मशालें लिए खड़े थेः जो भी बाहर भागता उसको मशालों से धक्का दे कर भीतर कर देते थे। आग ही आग थी, और नीरो बांसुरी बजा रहा था।

तो या तो परमात्मा नीरो जैसा है कि तुम जल रहे हो; भागने भी नहीं देता। आत्महत्या भी करो तो सरकारें रोकती हैं, सिपाही लगा रखे हैं। कहीं जा नहीं सकते भाग कर। आत्महत्या करते पकड़े गए तो फांसी की सजा लगेगी! बड़े मजे की बात है, वह हम खुद ही करने जा रहे थे, वह सरकार कर देगी। कोई भाग नहीं सकता। और परमात्मा बैठा ऊपर जरूर बांसुरी बजा रहा होगा—और क्या करेगा?

हिंदुओं ने ठीक सोचा कि कृष्ण बांसुरी बजा रहा है। वह परमात्मा बैठा बांसुरी बजा रहा है! तुम सड़ रहे हो! या तो शैतान है, भगवान नहीं। और अगर भगवान है तो बड़ा बेबूझ है! उठा क्यों नहीं लेता? साधारण महात्मागण तुम्हें दुख से उठाने की कोशिश करते हैं, और परमात्मा कोशिश नहीं करता!

धर्मशास्त्री बड़ा चिंता में रहे हैं कि क्या करें। बात तो तर्कयुक्त लगती है कि या तो वह दुखवादी है, और लोग दुखी हो इसमें रस आता है उसे; तुम्हारे घाव में उंगलीया डालता है। उसको खुद ही मनोचिकित्सा की जरूरत है। और या फिर है ही नहीं।

और ध्यान रखना; जो कहते हैं नहीं है, वही ज्यादा ठीक कह रहे हैं, बजाय उनके जो कहें कि वह दुखवादी है। शैतान होने से बेहतर है कि न हो। इसलिए तो महावीर और बुद्ध ने कह दिया, कोई परमात्मा नहीं है। क्योंकि उनके सामने दो ही विकल्प थेः या तो वे मानें कि वह दुखवादी है...दोनों तर्कयुक्त व्यक्ति थे; दोनों राजघरानों से आए थे, ठीक से संस्कृत हुए थे; ठीक तर्कशास्त्र अध्ययन किया था; विचार में पारंगत थे—उनको बात साफ दिखाई पड़ गई कि यह विकल्प तो सीधा है! अगर परमात्मा है तो शैतान है—ऐसे परमात्मा का इन्कार जरूरी है। और या फिर परमात्मा नहीं है; क्योंकि यह हम कैसे मानें कि परमात्मा है और

लोग सदियों से, अनंत काल से दुख में सड़ रहे हैं, और वह बैठा मजा कर रहा है, लीला कर रहा है, और उठाता नहीं किसी को?

मेरा क्या उत्तर है? मैं कहता हूं: परमात्मा है और शैतान नहीं है। मेरा उत्तर यह है कि परमात्मा है और तुम दुख में उसके कारण नहीं हो, तुम्हारी स्वतंत्रता के कारण हो। परमात्मा है और जगत् स्वतंत्र है। परमात्मा की महिमा यही है कि उसने तुम्हें स्वतंत्र बनाया है, उसने परिपूर्ण स्वतंत्रता दी है। वह कोई तानाशाह नहीं है, और न ही उसने कोई इमरजेंसी की अवस्था घोषित कर रखी है। परमात्मा ने मनुष्य को गरिमा दी है परिपूर्ण स्वतंत्र होने की।

निश्चित ही स्वतंत्रता में खतरा है। स्वतंत्र होने का अर्थ ही यह है कि दुख भोगने की भी स्वतंत्रता है, सुख भोगने की भी। स्वतंत्रता का अर्थ ही यह है कि अपने को नष्ट कर लेने की भी स्वतंत्रता है, अपने को सृजन करने की भी। स्वतंत्रता का सीधा अर्थ है कि तुम जो भी होना चाहो—अगर तुम दुख भोगना चाहो तो भी बाधा न दी जाएगी। तुम्हारे ऊपर ही सब छोड़ दिया है। यही मनुष्य के लिए जोखिम है, यही उसका गौरव भी है कि वह स्वतंत्र है। वह अगर गिरना चाहे सीढ़ी से तो आखिरी खड्ड तक गिर सकता है, कोई रोकने न आएगा। वह चढ़ना चाहे तो कोई रोकने न आएगा; वह आखिरी ऊंचाई तक चढ़ सकता है।

नर्क भी तुम हो, स्वर्ग भी तुम हो। तुम्हारा निर्णय ही आत्यंन्तिक है। तुम जिम्मेवारी किसी और पर मत छोड़ना। ऐसे ही तो तुमने सदा जिम्मेवारी किसी और पर छोड़ी है। और तब तुम निश्चिंत हो जाते हो, तुम सोच लेते हो कि मैं ही तुम्हें ठीक से ड़ोज नहीं दे रहा हूं जागने का, नहीं तो तुम कभी के जाग गए होते। तुम्हारे हृदय में तो छलनी हो गई है और तुम्हारा प्राण तो घाव हो गया है! अब तुम्हारी तरफ से तुमने कोई कमी नहीं छोड़ी! अगर कमी होगी तो मेरी तरफ से होगी!

इस तरह की गलतियों में मत पड़ो, क्योंकि इस तरह तो फिर तुम कभी भी न जाग सकोगे।

ध्यान करो: दुखी हो तो तुम्हीं कारण हो; सुखी हो तो तुम्हीं कारण हो। मैं तुम्हें जगा नहीं सकता; मैं तुम्हें जागने के उपाय बता सकता हूं।

बुद्ध ने कहा है: मैं राह बता सकता हूं, चलना तुम्हीं को पड़ेगा। मैं तुम्हें चला नहीं सकता। और जो गुरु तुम्हें चलाने की कोशिश करे, जानना वह तुम्हारा दुश्मन है। क्योंकि अगर वह तुम्हें घसीटे, अपने कंधे पर रख कर चले, तुम्हारी बैसाखी बन जाए, तो फिर तुम्हारे पैर कभी भी चलने में समर्थ न होंगे। जिस दिन वह गुरु विदा होगा उस दिन तुम वहीं पहुंच जाओगे जहां तुम पाए गए थे। फिर तुम वहीं गड्ढे में गिर जाओगे।

नहीं सदगुरु मार्ग दिखाते हैं, चलना प्रत्येक को स्वयं पड़ता है।

जैसे एक छोटा बच्चा चलना शुरू करता है, कोई उसके लिए चल थोड़े ही सकता है। कई बार गिरेगा। बाप को कितनी इच्छा न होती कि मैं इसके पैर बन जाऊं! मां की कितनी आकांक्षा न होती होगी कि इसके घुटनों में चोट लगती है, मैं इसकी सुरक्षा बन जाऊं; मैं इसके लिए चलूं, इसे कंधे पर रखे रहूं। लेकिन अगर कोई मां ऐसा करे तो वह दुश्मन है, क्योंकि यह बच्चा फिर सदा के लिए पंगु हो जाएगा; यह कभी चल ही न सकेगा। नहीं, मां प्रेम से देखेगी; इशारा भी देगी कि चलो; दूर बैठे बच्चे को बुलाएगी कि आ जाओ; दोनों हाथ भी फैला कर कहेगी: घबड़ाओ मत, मैं मौजूद हूं; गिरोगे तो संभाल लूंगी। हालांकि बच्चा फिर भी गिरेगा, क्योंकि बिना गिरे कभी कोई चलना सीखा है? अगर कोई बच्चा गिरे ही न, बार-बार सम्हाल लिया जाए, तो भी लंगड़ा हो जाए। गिरने भी देना होगा। घुटने पर चोट भी लगेगी, तो ही मजबूती आएगी शरीर की, व्यक्तित्व की, अपने पैरों पर खड़ा होना आएगा।

मैं तुम्हारी गुलामी नहीं बनना चाहता हूं; न तुम मुझ पर निर्भर होने की कोशिश करना। मैं चाहूंगा कि तुम परिपूर्ण स्वतंत्र हो जाओ, अपने पैर से चल सको; क्योंकि तुम्हारा मंदिर तुम्हारे चलने से ही तुम्हारे करीब आएगा। तुम्हारा परमात्मा तुम्हें लंगड़ों की तरह आया हुआ देख कर प्रसन्न न होगा। तुम्हें दौड़ते और नाचते हुए

आते देख कर ही तुम्हारा स्वागत हो सकता है।

दूसरा प्रश्नः एक पूरानी धारणा है कि यदि कोई व्यक्ति लगातार बारह वर्षों तक सत्य-भाषण का व्रत पूरा करे तो वह मुक्ति को उपलब्ध हो सकता है। कृपया बताएं कि इस धारणा में कितना बल है?

बारह वर्ष तक अगर कोई व्यक्ति सत्य-भाषण का व्रत पूरा करे तो वह मुक्त हो जाता है—यह धारणा कोई गणित की धारणा नहीं है। कोई ऐसा नहीं है कि बारह ही वर्ष में ऐसा होगा, कि ग्यारह में नहीं हो सकता और तेरह में नहीं हो सकता। यह तो प्रतिक-धारणा है, इशारा है, एक इंगित है। इंगित कीमती है।

सचाई यह है कि बारह वर्ष तो दूर, बारह दिन भी बिना स्वभाव को उपलब्ध हुए तुम सत्य भाषण का व्रत पूरा नहीं कर सकते। बारह वर्ष तो बहुत दूर, बारह दिन भी; बारह दिन में भी तुम हजार बार झूठ बोल चुके होओगे। शायद तुम्हें पता भी न चले कि तुमने कब झूठ बोला; क्योंकि कई झूठ तो ऐसे हैं जिनको तुम सच मानते हो। और तुमने कभी खयाल ही नहीं किया कि यह झूठ है और तुम इसे सच मानते हो। कई झूठ तो ऐसे हैं कि तुम्हारे रग-रेशे में, खून में समाए हुए हैं—मां के दूध के साथ तुम्हें मिले हैं।

अगर कोई तुमसे रास्ते पर पूछे कि तुम कौन होः अगर तुमने कहा, मैं हिंदू हूं तो तुमने झूठ बोला; तुमने कहा, मैं मुसलमान हूं, तुमने झूठ बोला। भीतर खोजोः तुम मुसलमान हो हिंदू हो? मगर यह तुम्हें खयाल ही न आएगा; यह तो खून में मिल गया । तुम पैदा तो हुए थे, तब तुम न हिंदू थे, न मुसलमान थे; अब अचानक तुम हिंदू-मुसलमान कैसे हो गए? यह सिखावन है किसी की, एक सामाजिक झूठ है, प्रचारित झूठ है। तुम्हारें चारों तरफ जो लोग थे, वे इस झूठ में भरोसा करते थे कि हिंदू हैं, या मुसलमान हैं, या जैन हैं। उन्होंने भरोसा तुम्हें भी दिला दिया। यह एक कंडिशनिंग है। उन्होंने संस्कारित कर दिया मन को, ठोक दिया बार-बार कि तुम हिंदू हो, तुम हिंदू हो, तुम हिंदू हो! अब तुम्हें पता ही नहीं। अब तुमसे कोई पूछेगा नींद में भी तुम कौन हो, तुम कहोगे हिंदू हूं।

तुमसे अगर कोई पूछेगा कि तुम्हारा नाम क्या, क्या तुम कहोगे कि मैं अनाम हूं? क्योंकि पैदा तो तुम बिना नाम के हुए थे। तुम्हारा नाम राम हो कि अब्दुल्ला हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? नाम तो झूठ हैं, ऊपर से चिपकाए गए हैं। नाम लेकर तुम आए नहीं, दूसरों ने दिया है। लेकिन इतना गहरा हो जाता है तादात्म्य—अगर तुम यहां सब सो जाओ रात और मैं आऊं और पुकारूंः राम! तो किसी को सुनाई न पड़ेगा, लेकिन जिसका नाम राम है वह चौंक कर खड़ा हो जाएगा कि कौन नींद खराब करने आ गया! रात भी सोने दोगे? किसी को पता न चलेगा; लेकिन जिसका नाम राम है, उसको कैसे पता चल गया? उसने कैसे सुन लिया? झूठ बहुत गहरा चला गया, अचेतन, अनकांसस में बैठ गया।

छूटना होगा इस तरह के झूठों से।

बारह दिन भी सत्य-भाषण का पालन कैसे करोगे? और हो सकता है, दिन में कर लो, रात सपनों का क्या होगा? सोचो। मान लो कि दिन भर होश रखा, सम्हाल कर चले, दरवाजा बंद ही कर के रहे, बोलने का मौका ही न आने दिया बारह दिन—न बोलेंगे, न झूठ निकलेगा—तो रात सपनों का क्या करोगे? सपनों में तो बहुत झूठ चलते हैं। सपना तो पूरा ही झूठ है। रात भर सपने चलते हैं। और अगर बारह दिन कोठरी में बंद रहे तो दिन में बैठे-बैठे भी क्या करोगे,सपना देखोगे। हजार तरह के झूठ चलने लगेंगे।

झूठ तो तभी छोड़ा जा सकता है जब तुम आत्मस्थ हो जाओ। इसलिए मैंने कल फरीद की वाणी का अर्थ यह नहीं किया कि तुम सच बोलो; यह किया कि तुम सच हो जाओ। सच बोलना असंभव है जब तक तुम सच न हो जाओ। यह तो ऐसे ही है कि चम्पा के वृक्ष पर चमेली के फूल लगाने की कोशिश चल रही है। तुम झूठ हो तो तुम पर झूठ के फूल लगेंगे।

बड़ी पूरानी कहानी है—सम्राट सोलोमन की। यहूदी कहते हैं, सोलोमन से बुद्धिमान आदमी दुनिया में कभी दूसरा नहीं हुआ। सोलोमन का नाम तो लोकलोकांतर में व्याप्त हो गया है। हिंदूस्तान में भी गांव के लोग

भी, कोई अगर बहुत ज्यादा बुद्धिमानी दिखाने लगे तो कहते हैंः बड़े सुलेमान बने हो! वह सोलोमन का नाम है। उनको पता भी नहीं कि कौन सोलोमन था, कौन सुलेमान था; लेकिन वह प्रविष्ट हो गया है।

सेबा की रानी सोलोमन के प्रेम में पड़ गई। वह चाहती थी, दुनिया के सबसे ज्यादा बुद्धिमान आदमी से प्रेम करे। बुद्धुओं से तो प्रेम बहुत आसान है, लेकिन परिणाम सदा दुखकर होता है। तो सोलोमन की जब खबर सुनी हो सेबा की रानी ने, तो उसने कहा कि अगर प्रेम ही करना है तो इस बुद्धिमान से करेंगे, अन्यथा प्रेम दुख लाता है। बुद्धुओं से प्रेम करो—दुख में पड़ोगे। उसने सब प्रेम करके देख लिए थे। वह बड़ी सुंदर थी। उसने सोचा कि सौंदर्य और समझ, इनका मेल हो।

वह गई। पर इसके पहले कि वह सोलोमन को चुने, परिक्षा लेनी जरूरी हैः बुद्धिमान है भी या नहीं? तो अपने साथ एक दर्जन बच्चे ले गई। छह उनमें लड़कियां थीं और छह उनमें लड़के थे; लेकिन उनको एक-से कपड़े पहनाए गए थे और सबकी उम्र चार-पांच साल की थी। पहचान बिलकुल मुश्किल थी। उनके बाल एक-से काटे गए थे, कपड़े एक-से पहनाए गए थे। और वह जा कर खड़ी हो गई उन बारह, एक दर्जन बच्चों को ले कर, और उसने दूर से सोलोमन से कहा कि अब तुम देख लो। तुम इनमें बता दो, कौन लड़कियां हैं और कौन लड़के? यह तुम्हारी पहली परीक्षा है।

बड़ा मुश्किल था। दरबारी भी थोड़े घबड़ा गए कि यह परीक्षा तो बड़ी कठिन मालूम पड़ती हैः समझ में नहीं आता कि कौन लड़का है, कौन लड़की! पर सोलोमन ने परीक्षा कर ली। उसने कहाः एक दर्पण ले आओ। लड़कों के सामने दर्पण रखा गया, वे ऐसे ही खड़े देखते रहे; लड़कियों के सामने रखा गया, वे उत्सुक हो गयीं। लड़की, और दर्पण सामने हो! बात ही बदल गई। उसने छह लड़कियां अलग निकाल दीं। कपड़े ऊपर से पहना दो, लेकिन भीतर की सत्ता अगर स्त्रैण है तो बहुत मुश्किल है बदलना। लड़की दर्पण में और ही ढंग से देखती हैः कोई लड़का देख ही नहीं सकता। वह असंभव ही है।

मैंने सुना है कि एक दिन नसरुद्दीन अपने घर में मक्खियां मार रहा था। उसकी पत्नी ने पूछाः कितनी मार चुके? उसने कहा कि दो स्त्रियां, मादाएं और दो पुरुष। पत्नी ने कहाः हद हो गई! यह कभी सुना नहीं। तुमने पता कैसे लगाया कि कौन मादा, कौन पुरुष?

उसने कहाः दो दर्पण पर बैठी थीं। वे मादा होनी चाहिए। दर्पण पर पुरुष क्या करेगा बैठ कर! वे घंटों से बैठी थीं, वहीं बैठी थीं।

भीतर का अस्तित्व, भीतर का ढंग...।

दूसरी बार सेबा दो फूलों के गुलदस्ते ले कर आयी, दूर खड़ी हो गई। उसमें एक फूलों का गुलदस्ता नकली था, कागजी था, पर बड़े-बड़े कलाकारों ने बनाया था। उसने कहाः बस, यह आखिरी परीक्षा। कौन-सा असली है? क्योंकि सेबा ने सोचा कि लड़के-लड़कियां को तो इसने दर्पण से पहचान लिया; फूलों का क्या करेगा? और वह इतनी दूर खड़ी थी कि गंध न आ सके। दरबारी घबड़ाए। सोलोमन ने कहाः दरवाजे-खिड़कियां खोल दिए जाएं महल के। दरवाजे-खिड़कियां खोल दिए गए। दो क्षण में तय हो गया। दो मक्खियां उड़ती भीतर आ गइ। वे असली फूलों पर जा कर बैठ गइ। उसने कहाः वे असली फूल हैं।

मक्खियों को कैसे धोखा दोगे? मक्खी नकली फूल पर किसलिए जाएगी? असली फूल की गंध उसे बुला लाई।

जब तुम्हारे भीतर सत्य होता है तभी तुम्हारे बाहर...जब तुम्हारे भीतर सत्य नहीं होता तब तुम लाख उपाय करो, नकली फूल हो। दूसरों को भी धोखा दे दोगे; अपने को कैसे दोगे? हो सकता है, कुछ बुद्धू मक्खियां हों, मूढ़ हों, नशे में हों, और बैठ जाएं, तो भी क्या फर्क पड़ता है? लेकिन इससे भी तो कोई नकली फूल असली न हो जाएगा।

इसलिए कहावत बिलकुल ठीक है, क्योंकि बारह वर्ष तक कोई सत्य भाषण का उपयोग तभी कर सकता

है जब वह सत्य हो गया हो, अन्यथा कोई उपाय ही नहीं है। तो मोक्ष तो उपलब्ध हो ही जाएगा। ऐसा नहीं की बारह साल के बाद में होगा, वह पहले ही हो गया, वह बारह साल की शुरूवात में ही हो गया। जो सत्य हो गया वह मुक्त हो गया। हां, अगर तुम चेष्टा करोगे सत्य की, तो तुमसे बहुत झूठ हो जाएंगे। चेष्टा का मतलब ही यह है कि तुम भीतर आश्वस्त नहीं हो। तुम्हें निर्णय करना पड़ेगाः क्या बोलूं, क्या न बोलूं; कैसा कहूं; क्या ठीक होगा, क्या गलत होगा! और जिंदगी इतनी तेजी से बही जाती है कि ऐसे व्यक्ति तो कुछ बोल ही नहीं पाते। सत्य बोलना तो असंभव है; क्योंकि सत्य तो क्षण-क्षण के संवेदन से पैदा होता है।

अगर यह सोलोमन सच में ही बुद्धिमान न होता तो मुश्किल में पड़ जाता। तुम्हें खयाल आता दर्पण का? मुश्किल होती। तुम्हें खयाल आता खिड़कियां खुली छोड़ देने का? अब आ सकता है क्योंकि कहानी मैंने तुमसे कह दी। कहानी कहने के बाद कोई मतलब हल नहीं होता। बात खतम हो गई। अब दुबारा रानी सेबा सोलोमन का इस ढंगों से परीक्षण नहीं कर सकती। और जिंदगी की रानी नये-नये उपाय खोजती है और कभी कोई सुलेमान पार हो जाता है, उत्तीर्ण हो पाता है।

कहावत ठीक है कि यदि कोई व्यक्ति लगातार बारह वर्षों तक सत्य भाषण के व्रत का पालन करे तो वह मुक्त हो जाएगा। लेकिन बारह साल तक सत्य-भाषण के व्रत का पालन वही कर सकता है, जो मुक्त हो ही गया हो इसलिए यह कहावत ठीक है।

मैं नहीं कहता कि बारह साल की फिक्र करो। बारह क्षण जांच लेंगे। बारह क्षण काफी हैं। तुम अगर भीतर झूठ हो, बारह क्षण में कुछ न कुछ झूठ हो जाएगा; क्योंकि तुम्हारे भीतर का रूप बार-बार बाहर आ रहा है। तुम्हारे होने के ढंग में, तुम्हारे बैठने के ढंग में झूठ हो जाएगा। हो सकता था, इसके पहले तुम सहजता से चल रहे थे; तुम एक आदमी के पास आए और सम्हल गए—झूठ शुरू हो गया। सम्हलने का क्या मतलब? क्यों सम्हल रहे हो? तुम इस आदमी को कुछ दिखलाना चाहते हो जो तुम नहीं हो। तुम इस आदमी को बतलाना चाहते हो जो तुम नहीं हो।

तुम अपने कमरे में अकेले बैठे हो, तुम और ही आदमी हो। फिर मेहमान घर में आ गए—तुम तत्क्षण बदल गए, तुम्हारे चेहरे पर रंग बदल गया। अभी तुम उदास बैठे थे, मुर्दे कि भांति; अब तुम मुस्कराने लगे, हंस-हंस कर बाते करने लगे। तुम पड़ोसियों को दिखाना चाहते हो, तुम बड़े प्रसन्न हो। यह प्रसन्नता झूठ है।

बोलने का ही थोड़े सवाल है; भाव-भंगिमा से झूठ निकलेगा। मुद्रा से झूठ निकलेगा। उठते-बैठते तुम्हारी श्वास-श्वास से झूठ निकल रहा है। तुम अगर झूठ हो तो झूठ के फूल तुममें लगते ही रहेंगे, तुम उनसे बच न सकोगे। मैं तुमसे कहता भी नहीं कि झूठ रहते हुए तुम सच के फूल अपने ऊपर लगाओ। वह नकली गुलदस्ता होगा। उस पर मक्खियां भी न बैठेंगी, आदमियों की तो बात दूर, परमात्मा को तो तुम भूल ही जाओ। मक्खियों तक को धोखा देना आसान नहीं; परमात्मा को तुम, मोक्ष को कैसे धोखा दोगे?

नहीं, मैं तुमसे कहता हूं, सच हो जाओ; सच बोलने की फिक्र छोड़ो, वह अपने-आप आ जाएगा। तुम सच हो जाओ। इसलिए फरीद के वाणी का मैंने अर्थ कियाः सत्य-धर्म, तुम्हारे स्वभाव का धर्म तुम्हें उपलब्ध हो जाए। फिर सब अपने-आप ठीक होता रहेगा।

कोई बुद्ध सोचते थोड़े ही हैं चलते वक्तः कैसे चलूं, कैसे उठूं, कैसे बैठूं? क्या कहूं, क्या न कहूं? क्या ठीक होगा, क्या गलत होगा? यह सवाल ही नहीं है। जैसे वृक्ष में फूल लगते हैं, ऐसे बुद्ध में सत्य लगता है। इसलिए सत्य की चिंता मत करो; सत्य होने की चिंता करो। सच बोलने से क्या होगा? बोलना तो ओठों की बात है। अगर कंठ के नीचे झूठ है तो ओठों के बाहर सत्य कैसे आएगा? हां, सत्य जैसा लगता है, लेकिन सत्य नहीं होगा।

एक झेन फकीर हुआ। वह अपने गुरु के पास था। उसने सब उपाय किए गुरु को तृप्त करने के लिए, लेकिन गुरु तृप्त न हो। वह उसे कहे ही जाए कि और ध्यान करो, और ध्यान करो। आखिर उसने दूसरों से पूछा

कि वर्षों बीत गए, मैं ध्यान करता हूं, किसी तरह गुरु की परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं होता हूं। अब तो मैं थक भी गया। क्या करूं? जिससे पूछा था, उसने कहा कि और तो हम किसी का नहीं जानते, लेकिन हम कैसे स्वीकृत हुए वह हम बता देते हैं। मैं भी वर्षों परेशान हुआ। लेकिन जब तक मैं परेशान हो रहा था, मैं अपने को बचा रहा था। मैं सिद्ध करना चाहता था कि मैं सत्य को उपलब्ध हो गया हूं। फिर मैं थक गया। जब सच में ही थक गया तो मैंने सिद्ध करने के उपाय छोड़ दिए। मैं मुर्दे की भांति हो गया, उसी दिन गुरु ने मेरी पीठ थपथपाई और कहाः तूने पा लिया! कहां पाया? तो इतना मैं तुझे बता सकता हूं।

उसने कहाः नासमझ, पहले ही क्यों न कहा? यह तो हत कभी का कर देते। तीन साल ऐसे ही गंवाए। और तू यहां पड़ोस में ही रहता है, इतनी भी करूणा नहीं कि ! मैं अभी जाता हूं।

वह गया। जैसे ही गुरु ने पूछा, कैसे आए हो, धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा। उसने आंख मूंद ली और पड़ा रहा। गुरु ने कहाः बड़े भले लग रहे हो! बिलकुल ठीक! ध्यान का क्या हुआ? तो उसने एक आंख खोली और कहा, वह तो अभी कुछ नहीं हुआ। तो गुरु ने एक डंडा उसके सिर पर मारा और कहाः उठ! मुर्दे कहीं बोलते हैं? तू जरूर किसा से कहानी सुन कर आ गया है।

यहूदी फकीर हुआ—बालसेन, वह एक गांव से गुजर रहा था। एक स्त्रा उसके पीछे आ गई। उसका पैर पकड़ कर रोने लगी रास्ते पर। भीड़ लग गई। बालसेन ने पूछाः मामला क्या है?

उस स्त्री ने कहाः मेरे बच्चे नहीं होते। और मैंने सुना है कि तुम्हारी मां को भी बच्चे नहीं होते थे, और एक सदगुरु ने आशिर्वाद दिया।

बालसेन ने कहाः बात ठीक है। मेरी मां को भी बच्चे नहीं होते थे, और एक सदगुरु के पैरों पर ऐसे ही मेरी मां भी पड़ गई थी। ऐसा मैंने सुना है। सदगुरु ने कहाः तू ऐसा कर, मेरी टोपी खो गई है, तू एक टोपी बना ला। तू टोपी दे, हम तुझे बेटा देंगे। तो वह गई और एक टोपी बना लाई। गुरु ने टोपी लगा ली और उसी रात वह गर्भस्त हुई। ऐसे मैं पैदा हुआ।

उसी स्त्री ने कहा कि अरे! रुको, मैं अभी टोपी लेकर आती हूं।

गुरु ने कहाः ठहर! अब यह कहानी काम न करेगी। अब यह कहानी काम न करेगी; यह तो मैंने तुझे कह दी। अब कुछ और करना पड़ेगा। क्योंकि अब तो यह नकल होगी। अब तो यह केवल पुनरुक्ति होगी। अब तो यह उधार होगी। अब तो यह असत्य हो गई बात; अब इससे काम नहीं चलेगा।

वह स्त्री बोलीः 'अब मत लौटाओ अपने वचन को। एक टोपी नहीं हजार टोपी लाकर दूंगी। अभी बाजार से खरीद लाती हूं। जितनी टोपी बाजार में होंगी, सब ला दूंगी। बस एक दफा तुम आशीर्वाद दे दो।

टोपियों का सवाल नहीं है—बालसेन ने कहा—यह कहानी काम न करेगी; कुछ और कहानी मुझे बनानी पड़ेगी।

थोड़ा समझनाः जीवन में आदमी की बड़ी आकांक्षा होती है अनुकरण करने की। अनुकरण असत्य है।

बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे बैठे थे—ज्ञान हुआ। तब से हजारो लोगों ने बोधिवृक्ष के नीचे बैठ कर ठीक बुद्ध का आसन लगा कर आकांक्षा की है कि ज्ञान हो जाए, वह नहीं हुआ। महावीर बारह वर्ष मौन रहे, तब उन्हें ज्ञान हुआ। लाखों लोगों ने इन पच्चीस सौ वर्षों में मौन रहने की कोशिश की है—न केवल कोशिश की है, बल्कि जैन साधू अपने को मुनि कहता है, इसी कारण; मौन नहीं रहता, मुनि कहता है। अनुकरण कर रहा है। महावीर को मौन से ज्ञान उपलब्ध था, तो उसने अपने नाम के सामने मुनि लगा रखा है—मुनि नथमल, मुनि तुलसी, मुनि फलां-ढिंका! अब कोई मुनि लिखने से थोड़े ही ज्ञान होगा। अब कहानी पता हो गई। अब तो तुम बारह वर्ष भी मौन रहो तो धोखा होगा। महावीर ने किसी का अनुकरण न किया था। यह सहज अविर्भाव था। यह भीतर का स्वभाव था। इससे बात उठी थी।

महावीर नग्न हो गए, तो न मालूम कितने लोग महावीर के पीछे नग्न खड़े हो गए हैं। महावीर की नग्नता

में एक निर्दोषता थी; इनकी नग्नता में अनुकरण है। अनुकरण असत्य है। सत्य होने की जरूरत है। अन्यथा तुम कोई ना कोई झूठ में पड़ जाआगे। तुम झूठ हो, झूठ से न बच सकोगे। तुमसे झूठ का धुआं ही उठता रहेगा। सच कैसे तुम हो जाओगे।

सच होने का एक ही उपाय है, और वह उपाय यह है कि तुम इस जगत में दिखावे की आकांक्षा छोड़ दो। सब झूठ उससे पैदा होता है। तुम इस जगत में वही हो रहो जो तुम होः बुरे तो बुरे, भले तो भले, चोर तो चोर, ईमानदार तो ईमानदार, साधु तो साधु, असाधु तो असाधु तुम जो हो, तुम परमात्मा के सामने और संसार के सामने अपने को वैसा ही छोड़ दो कह दोः यही मेरा होना है। यही परमात्मा ने मुझे चाहा है। जैसी उसकी मर्जी वैसे रहेंगे। अपना अब क्या करने को बचा!

तुम अगर बिलकुल निष्कपट भाव से अपने को ऐसा ही खोल दो जैसे तुम हो, तुम्हारे जीवन से असत्य विदा हो जाएगा। असत्य पैदा होता है दिखावे की भावना से, प्रदर्शन से। असत्य इस बात की कोशिश है, जो मैं नहीं हूं वैसा तुम्हें दिखाई पडूं; जो मैं नहीं हूं वैसा लोग मुझे मानें; जो मेरी प्रतिमा नहीं है, वह लोगों के मन में मेरा आदर्श हो।

नहीं, तुम जैसे हो, जहां हो, वैसा ही खोल दो। रत्ती भर यहां-वहां डोलने डांवाडोल होने की जरूरत नहीं है।

तुम यहां किसी की प्रशंसा पाने नहीं आए हो और न किसी से प्रमाणपत्र इकट्ठा करने। तुम यहां किसी की अपेक्षाएं भी पूरा करने को नहीं हो। यहां तुम स्वयं होने को हो। बस तुम स्वयं हो रहो। फिर जो हो...। और तुम अचानक पाओगेः तुम उठने लगे और ढंग से, बैठने लगे और ढंग से, देखने लगे और ढंग से—तुम्हारे सारे जीवन का ढंग बदल गया, तो तुम्हारा आचरण जाएगा।

कहावत ठीक ही है कि बारह वर्ष अगर कोई सत्य-भाषण करे तो मुक्त हो जाएगा। लेकिन बारह वर्ष क्या, बारह दिन भी सत्य-भाषण करना असंभव है। इसलिए कहावत यह कह रही है कि तुम सत्य हो जाओ तो ही सत्य-भाषण कर सकोगे। और जो सत्य हो गया, वह बारह वर्ष बाद मुक्त नहीं होता; वह सत्य होते ही मुक्त हो जाता है। क्योंकि सत्य और मोक्ष एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

आखिरी प्रश्नः दुख के बारे में जब आप बोलते हैं तब मुझे तथा कई अन्यों को भी ऐसा लगता है कि यह तो मेरे जीवन का दुख है, उसे भगवान ने कैसे जान लिया! साथ ही मन में उठने वाले अनेक संदेहों और प्रश्नों का समाधान भी आप ही आप प्रवचन से मिल जाता है। कृपया बताएं कि इसका रहस्य क्या है?

पहली बातः तुम्हारा दुख और दुसरों का दुख अलग-अलग नहीं है। मनुष्यमात्र का दुख एक है। थोड़ी-बहुत मात्राओं के भेद होंगे, थोड़े-बहुत रंग-आकार के भेद होंगे; लेकिन दुख का स्वभाव एक है।

इसलिए जब मैं दुख के संबंध में बोलता हूं, तुम समझोगे तो जरूर लगेगा कि तुम्हारे ही दुख के संबंध में बोल रहा हूं। तुम्हारे दुख के संबंध में बोल नहीं रहा हूं; दुख के संबंध में बोल रहा हूं। दुख का स्वभाव एक हैः वह तुम्हारा हो कि पड़ोसी का हो कि किसी और का हो—एक ही है। दुख का स्वभाव एक ही है।

ऐसा समझो कि कोई आदमी अंगारे से जल गया, कोई आदमी चिराग जलाते हुए जल गया, कोई आदमी चकमक तोड़ रहा था और जल गया—जलन तो एक ही होगी, चकमक अलग है, चिराग अलग है, अंगारा अलग है; मगर हाथ में आग से जो जलन होती है वह तो एक ही है। मैं जलन के संबंध में बोल रहा हूं, चकमक के संबंध में क्या बोलना? कहां तुम जले, इससे क्या लेना-देना है? कैसे तुम जले, इससे क्या प्रयोजन है? तुम्हारी जलन, जलन के शुद्ध स्वभाव के संबंध में बोल रहा हूं। क्योंकि अहंकार बड़ा सूक्ष्म है; वह इसमें भी मजा लेता है कि देखो, मेरे ही दुख के संबंध में बोल रहे हैं! तुम्हारे दुख से क्या लेना-देना? तुम्हारा मुझे पता ही कहां है? दुख के संबंध में बोल रहा हूं!

लेकिन तुमने भी दुख जाना है, सबने दुख जाना है। जब तुम आनंद जानोगे तब जो मैं आनंद के संबंध में

बोल रहा हूं वह भी ऐसा ही लगेगा कि तुम्हारे आनंद के संबंध में बोल रहा हूं।

तुम तो केवल निमित्तमात्र हो, जहां घटनाएं घटती हैं। उन घटनाओं का स्वभाव क्या है? अगर मैं एक-एक व्यक्ति के दुख के संबंध में बांलूं तब तो बड़ा मुश्किल हो जाए; तब तो विस्तार अनंत होगा; सभी के हृदय तक पहुंच पाना असंभव होगा। दुख के संबंध में बोलता हूं, बस—सबके हृदय तक पहुंच जाता हूं।

ऐसा समझो कि मैं सागर के संबंध में बोल रहा हूं: हिंद महासागर ने सुना, प्रशांत महासागर ने सुना, अरब महासागर ने सुना, कि अटलांटिक महासागर ने सुना—क्या फर्क पड़ेगा? मैंने अगर कहा कि सागर का पानी खारा है, वे सभी समझेंगे कि मेरे संबंध में बोल रहें हैं। सभी सागरों का पानी खारा है। यही तो तुम्हीं समझना है कि तुम्हारा दुख और पड़ोसी का दुख अलग-अलग नहीं है।

तुम मनुष्य हो: तुम्हारे होने के ढंग में थोड़े-बहुत भेद होंगे, लेकिन तुम्हारी अन्तःसत्ता तो एक है। तुम्हारे आंगन में जो आकाश समाया है वही तुम्हारे पड़ोसी के आंगन में भी समाया है। तुम्हारा आंगन तिरछा होगा, तुम्हारे आंगन में साधारण गरीब आदमी की मिट्टी की दीवाल होगी, पड़ोसी का आंगन कीमती होगा, संगमरमर जड़ा होगा—पर आकाश तुम्हारे मिट्टी के आंगन में भी वही है, संगमरमर के आंगन में भी वही है। मैं आकाश के संबंध में बोल रहा हूं, तुम्हारे आंगन के संबंध में नहीं। इसलिए तुम्हें स्वाभाविक लगेगा। इसमें रहस्य कुछ भी नहीं है, सीधा गणित है।

और स्वभावत: मैं शून्य में नहीं बोल रहा हूं; मैं तुमसे बोल रहा हूं; तुम्हारी गहनतम मनुष्यता से बोल रहा हूं। इसलिए मेरा, जिनको मैटाफिजीकल, पारलौकिक विषय कहें, उनमें मेरा कोई रस नहीं है; वह फिजूल की बकवास है। मैं तो मनोवैज्ञानिक सत्यों पर बोल रहा हूं। मैं तो तुम्हारे संबंध में बोल रहा हूं ताकि तुम जहां हो वहां से ही यात्रा शुरू हो सके।

मुझे फिक्र नहीं है कि परमात्मा ने संसार बनाया कि नहीं बनाया, कि किस तारीख में बनाया, किस दिन में बनाया, कि हिंदूओं के ढंग से बनाया कि मुसलमानों के ढंग से बनाया—यह सब बकवास है, इस सबसे कोई अर्थ नहीं है। मैं कोई पागल नहीं हूं। मेरी दृष्टि में सभी दार्शनिक पागल हैं। वे जो बोल रहे हैं, उसका कोई मूल्य नहीं है, अर्थ नहीं है।

तुम दुखी हो, यह सत्य है। तुम हिंदू हो तो दुखी हो, मुसलमान हो तो दुखी हो, तुम मानते नहीं हो कि इश्वर ने बनाया नहीं संसार, ईश्वर है ही नहीं, तो भी दुखी हो। तुम्हारे दुख को मिटाना है। और मेरे अनुभव में ऐसा है कि जब तुम्हारा दुख मिट जाएगा तो शेष रह जाता है वही परमात्मा है।

परमात्मा कोई धारणा नहीं है; धारणा-शून्य चित्त का अनुभव है। परमात्मा कोई सिद्धांत नहीं है कि जिसे सिद्ध करना है; परमात्मा एक प्रतीति है—आनंद की, परम आनंद की, अहोभाव की!

तो दो बातें: एक तो व्यक्ति-व्यक्ति से क्या लेना-देना है; सब व्यक्तियों के भीतर जो एक-सा है उसी के संबंध में बोल रहा हूं। और चेष्टा तुम्हें आकाश के सिद्धांत समझाने की नहीं है; पृथ्वी पर जहां तुम खड़े हो, जहां से तुम्हारी यात्रा शुरू होगी, उस संबंध में बोल रहा हूं।

इसलिए स्वभावतः अगर तुमने मुझे सुना है तो तुम्हें ऐसा लगेगा कि मैंने तुम्हें कोई विशेषता दी; यहां इतने लोग मौजूद थे, मैं तुम्हारे दुख के संबंध में बोलता रहा। इस तरह अहंकार को मत बचा लेना, नहीं तो दुख कभी भी न मिटेगा; क्योंकि अहंकार दुख की सुरक्षा है।

आज इतना ही।

न कानों सुना न आंखों देखा।

तीसरा प्रवचन

सूत्र

(क) तपि तपि लुहि लुहि हाथ मरोरऊं। बावली होई सो सहु लोरऊं।।

तैं सहि मन महि कोआ रोसु। मुझु अवगुन सह नाही दोसु।।
तैं सहिब की मैं सार न जानी। जोबनु खोई पीछे पछतानी।।
काली कोइल तू कित गुन काली। अपने प्रीतम के हउ विरहै जाली।।
पिरही विहून कतही सुखू पाए। जा होइ कृपालु ता प्रभु मिलाए।।
विधण खूही मुंध अकेली। ना कोइ साथी ना कोइ बेली।।
बाट हमारी खरी उडीणी। खंनिअहु तिखी बहुत पिईणी।।
उसु उपरी है मारग। सेख फरीदा पंथु सम्हारी सवेरा।।
सलोक
(ख) जितु दिहाड़ै धनवरी साहे लह लिखाइ।
मलकु जिकंनी सुणीदा मुहु देखाले आइ।।
जिंदु निमाणी कढीए हडा कूं कड़काइ।
साहे लिखे न चलनी जिंदु कूं समझाइ।।
जिंदु बहूटी मरणु बरु लैजासी परणाइ।
आपण हथी जोलिकै कै गलि लगे धाइ।।
वालहु निकी पुरसलात कंनी न सुणीआइ।
फरीदा किड़ी पवंदई खड़ा न आपु मुहाइ।।
प्रेम प्रसाद है

जीवन का प्रारंभ तो सभी का एक-सा है, लेकिन अंत नहीं। सुबह तो समान है, सांझ सबकी बड़ी भिन्न-भिन्न है। क्योंकि जन्म के साथ तो आता है व्यक्ति कोरे कागज की भांति; मृत्यु के क्षण जीवन की पूरी कथा लिख जाती है कागज पर।

जन्म निर्वैयक्तिक है, मृत्यु वैयक्तिक। मरने के करीब पहुंचते-पहुंचते तुम्हारा एक व्यक्तित्व, तुम्हारा ढंग, तुम्हारी एक शैली नियत हो जाती है। जन्माता तो परमात्मा है, मरते तुम हो। आते तो कोरे हो, जाते समय बहुत भर जाते हो। उसी भराव के कारण भेद है। उसी भराव का नाम अहंकार है।

अहंकार सबके अलग-अलग हैं; आत्मा एक है। आत्मा तो उस तत्व का नाम है जिसे तुम जन्म के साथ ले कर आए और और अहंकार उस तत्व का नाम है जिसे तुमने ही जीवन बनाया; जिसे तुम लाए न थे; जिसे तुमने ही संवारा-सजाया। तुम्हें तो परमात्मा ने बनाया है, लेकिन अहंकार के निर्माता तुम हो।

तो, एक तो संसार है परमात्मा का, उसका तो तुम्हें तो कुछ पता नहीं; एक संसार है तुम्हारे अहंकार का, बस उसमें ही तुम जीते हो, उसी में समाप्त हो जाते हो।

अहंकार का अर्थ हैः तुम जान ही न पाए उसे जो तुम थे। इसके पहले की तुम जानते अपने कोरेपन को, तुमने लिखावट से स्वयं को भर लिया। इसके पहले कि तुम जानते निर्मलता को—चैतन्य की, तुमने बहुत कूड़ा-कबाड़ इकट्ठा कर लिया।

इसलिए मैं फिर दोहराता हूंः जन्मते तो सभी एक जैसे हैं, मरते सभी अलग-अलग हैं। मौत का व्यक्तित्व है; जन्म निर्वैयक्तिक निराकार शून्यता है। और इसीलिए, मौत से ही पता चलता हैः तुम कैसे जिए; क्योंकि मौत घोषणा है तुम्हारे पूरे जीवन की, वक्तव्य है तुम्हारे पूरे जीवन भर। मरने के क्षण में तुम संग्रहीभूत हो जाते हो, तुम्हारा सत्तर-अस्सी साल का, सौ साल का जीवन एक क्षण में समा जाता है। उस क्षण में तुम प्रगट होते हो। जीवन भर चाहे तुम अपने को छिपा रहे हो, मृत्यु के क्षण में न छिपा सकोगे; क्योंकि छिपाने का होश भी न रह जाएगा। जीवन भर चाहे तुमने धोखा दिया हो, मृत्यु के क्षण में तुम धोखा न दे पाओगे। मृत्यु तुम्हारी असलियत खोल ही देगी। मृत्यु तो बता ही देगी कि तुम क्या थे। अगर तुम धन को पकड़ कर जीए थे तो हंसते

हुए कैसे मर सकोगे? क्योंकि धन तो छूटता होगा। रोओगे, जार-जार होओगे। अगर तुम संपदा, पद प्रतिष्ठा को सब कुछ मानकर जिए थे, मरते वक्त कैसे शांति से विदा हो सकोगे? क्योंकि तुम्हारी नाव तो छूटने लगेगी; तुम्हारी पद और प्रतिष्ठाएं इसी तट पर पड़ी रह जाएंगी। तुम चीखोगे-चिल्लाओगे। तुम्हारा रोआं-रोआं तड़फेगा। तुम किनारे को पकड़ लेना चाहोगे; आखिरी टूटती सांस से भी तुम इसी किनारे से अपनी खूंटी बांध रखना चाहोगे। तुम्हारी विदाई बड़ी दुखद होगी! तुम्हारी विदाई बड़ी विषाक्त होगी। तुम एक फूल की भांति मुस्कुराते हुए, एक सुगंध की भांति आकाश में मुक्त न हो जाओगे। तुम्हारे जाने में रुदन होगा, विषाद होगा। तुम्हारा जाना दुखांत होगा!

लेकिन जिसने जीते-जी जान लिया कि मौत करीब है; जिनसे जीते-जी पहचान लिया कि मरना होगा; और जिसे यह बात इतनी गहराई से समझ में गई कि उसने मरने के पहले ही अपने को छोड़ दिया, मरने के पहले ही मार डाला अपने को; जिनसे यह जान लिया कि मैं वैसा ही जाऊंगा जैसा आया था, कोरा, खाली, सब पकड़ व्यर्थ है; जो मरने के पहले फिर कोरा कागज हो गया; जिसने अपनी मौत को वैसा ही निर्विकार और शुद्ध कर लिया जैसा जन्म था—उसका जीवन एक वर्तुल हो गया; उसके जीवन में अधूरापन न रहा, एक परिपूर्णता हो गई। उसकी विदाई बड़ी भिन्न होगी। उसकी विदाई पर सारा अस्तित्व प्रसन्न होगा; क्योंकि उसकी विदाई एक परिपूर्णता की विदाई होगी। वह रोता हुआ न जाएगा। उसके ओंठों पर गीत होंगे। उसके प्राणों में उल्लास होगा, आनंद होगा। वह नाचता हुआ विदा होगा। जाते समय किसी से उसकी शिकायत न होगी, आशीर्वाद होंगे। इस किनारे को वह धन्यवाद दे सकेगा। इस किनारे पर इतनी देर रहा, इस किनारे ने इतनी देर सम्हाला; अब वह दूसरे किनारे के लिए विदा हो रहा है—इस किनारे के प्रति भी उसके मन में बड़ी गहन कृतज्ञता होगी। उसकी विदाई ऐसे होगी जैसे कोई फूल अपनी सुगंध को मुक्त करे। वह दुगध की तरह नहीं जाएगा। और उसकी मृत्यु फिर स्वभावतः मृत्यु जैसी न होगी, महाजीवन का प्रारंभ होगा।

तो, अगर हम सभी व्यक्तियों कि मृत्युओं को बांटना चाहें तो दो मोटी कोटियों में बांट सकते हैंः एक, अधिक लोगों की मृत्यु जिस भांति होती है; और दूसरी, कुछ बुद्धपुरुषों की। करोड़ में एक जैसा मरता है और करोड़ जैसे मरते हैं—दो मोटे विभाजन हम कर सकते हैं। वह जो करोड़ों लोगों के मरने का ढंग है वैसा है कि उसमें एक जीवन तो समाप्त हो जाता है, दूसरे का प्रारंभ नहीं होता।

इसे तुम ठीक से समझो। यह बात थोड़ी बारीक है; और तुम्हारे खयाल में आ जाए तो तुम्हारे भीतर चेतना का एक तल ऊपर उठ जाएगा।

एक तो मौत जैसी है—अधिक लोगों की मौत कि जीवन तो समाप्त हो जाता है, महाजीवन की शुरुआत नहीं होती, व्यक्ति अधर में टंग जाता है। सीढ़ी तो छूट जाती है। अब तक जिस सीढ़ी पर खड़े थे वह तो छूट जाती है, नयी भूमि नहीं मिलती जहां पैर को रख लें—जैसे कोई गड्ढे में गिर गया। एक द्वार तो बंद हो जाता है, जिसे अब तक पहचाना था; कोई नया द्वार नहीं खुलता, सामने दीवाल आ जाती है। एक राह तो पूरी हो जाती है, जिस पर अब तक चले थे जन्म से लेकर; लेकिन कोई नयी राह शुरू होती मालूम नहीं होती। यही तो करोड़ों जनों के मरते समय की पीड़ा है। काश, नया द्वार खुल जाए तो कौन रोता है पुराने द्वार के लिए! नया मार्ग खुल जाए तो कौन व्यथित होता है पुराने मार्ग के लिए! नयी भूमि मिल जाए पैर रखने को तो कौन चीखता-चिल्लाता है, कौन पागल पीछे लौट कर देखता है!

वह जो दूसरी मौत है, बहुत थोड़े-से गिने-चुने लोगों की—जो कि सबकी हो सकती है, लेकिन सबकी हो सकती है, लेकिन सबकी है नहीं; जिसके सभी अधिकारी हैं, लेकिन अपने अधिकार की घोषणा नहीं कर पाते; जो सभी को मिल सकती थी, लेकिन जो उसे कमा नहीं पाते, जो जीवन को यूं ही गंवा देते हैं—उस मृत्यु में जीवन तो समाप्त होता है, महाजीवन उपलब्ध होता है। बूंद तो छूट जाती है हाथ से, लेकिन सागर हाथ में उतर आता है। रोने का प्रश्न नहीं है; महोत्सव का क्षण है! छोटा-सा क्षुद्र द्वार तो बंद होता है—जैसे कि कोई

टनल में, बोगदे में चलता रहा हो—और अचानक खुला आकाश आ जाता है! कौन पागल लौट कर रोएगा! सरकते थे, घसिटते थे; छोटी राह थी, संकीर्ण मार्ग था—कीड़ों कि तरह चलना पड़ रहा था; अचानक बोगदा समाप्त हुआ, खुला आकाश सामने आ गया—तारों से भराः कौन लौट कर पीछे देखता है! एक द्वार बंद हो जाता है, नया द्वार खुल जाता है! और नया द्वार महाद्वार है! अब तक जिसे जीवन कहा था वह मृत्यु जैसा मालूम पड़ता है; क्योंकि महाजीवन के समक्ष उसे जीवन कहना उचित नहीं।

श्री अरविंद ने कहा है कि जाना तब पाया कि जिसे जीवन कहते थे वह तो मृत्यु थी; और जिसे अब तक प्रकाश समझा था, वह तो अंधकार का एक ढंग था; और जिसे अब तक अमृत मान कर चले थे, वह महाविष सिद्ध हुआ, जहर सिद्ध हुआ। लेकिन यह तुलना तो तभी होगी संभव जब तुम अपने संकीर्ण द्वार से बाहर आ जाओगे।

ऐसा ही समझो कि एक बच्चा मां के पेट में बंद है, नौ महीने तक वह उसे ही जीवन समझता है, कोई और जीवन जानता भी नहीं, वही एकमात्र जीवन है। मां के पेट में होना भी कोई जीवन है? ज्यादा से ज्यादा जीवन की तैयारी हो सकती है, जीवन नहीं। थोड़ा सोचो, अगर तुम सदा के लिए मां के पेट में ही बंद रह जाते, न सूरज की किरणें तुम्हें छूतीं, न पक्षियों के गीत तुम्हें सुनाई पड़ते, न तुम्हारे जीवन में प्रेम का आविर्भाव होता, न तुम प्रार्थना से परिचित होते, न तुम जीवन के झंझावात और तूफानों में खड़े होते, न तुम सागर की लहरें जानते, न तुम्हें हिमालय के उत्तुंग शिखर दिखाई पड़ते, तुम बंद रहते एक खोल में मां के पेट में—तो चाहे कितनी ही सुविधा रही हो, तुम थोड़ा सोचो, तुम उसे जीवन कहते? तुम उसके लिए राजी होते?

लेकिन हर बच्चा पैदा होने के पहले घबड़ाता है—मनोवैज्ञानिक कहते हैं उसे बर्थ-ड्रामा—हर बच्चा घबड़ा जाता है जन्म के पहले; क्योंकि उसे तो ऐसा ही लगता है, उसकी जानकारी में ऐसा ही आता है कि यह तो मरना हो रहा है। वह और तो कोई जीवन जानता नहीं, इस मां के पेट में बंद जीवन को ही जीवन जाना था, और उसमें सब तरह की सुविधा थी; कोई चिंता न थी, कोई बेचैनी न थी, कोई नौकरी न करनी थी, कोई बाजार न जाना था, कोई दफ्तर में काम न करना था। सब बैठे-बैठे मिल जाता था, सोए-सोए मिल जाता था। मां का खून खून बनता था, मां के भोजन से भोजन मिल जाता था, मां की श्वास श्वास बन जाती थी; खुद कुछ करने की बात ही न थी। कर्म तो था ही नहीं कुछ।

बच्चा डरता है, घबड़ाता है। और जब मां के पेट से बच्चे को पैदा होना पड़ता है तो एक सुरंग से गुजरने में डर लगता है। और जहां भी तुम्हें सरकना पड़े और जगह संकीर्ण हो जाए वहीं भय मालूम होने लगता है। क्योंकि बच्चे का जो पहला भय है, वह सुरंग का भय है। मां के पेट से पैदा होते वक्त जिस नली से उसे गुजरना पड़ता है वह अत्यंत संकरी है; वह सब तरफ से दबोचती है, सब तरफ से प्राण उसके संकट में पड़ जाते हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जीवन भर जहां भी तुम्हें फिर कहीं ऐसी स्थिति आ जाएगी जहां तुम दबाए हुए अपने को अनुभव करोगे, तत्क्षण तुम्हें बर्थ-ड्रामा, वह जो जन्म की पीड़ा थी, उसका पुनः स्मरण हो जाएगा, तुम फिर घबड़ा जाओगे। इसलिए तो तुम्हें भीड़ में घबड़ाहट मालूम होती है। अगर चारों तरफ से भीड़ ही भीड़ दबोच रही हो तो तुम्हें बड़ी हैरानी मालूम होती है, बड़ी भीतर बेचैनी—जैसे गला घोंटा जा रहा हो। वह घबड़ाहट जन्म के समय बच्चे ने जो पहला अनुभव किया है उसकी घबड़ाहट है। बच्चे को ऐसा ही लगता है वह मरा। और यह बिलकुल तर्कयुक्त है लगना; क्योंकि और तो कोई जीवन बच्चा जानता नहीं; जो जीवन था, उजड़ा; जिसे अब तक सुख-सुविधा मानी थी, वह मिटी।

मृत्यु भी एक सुरंग है। अगर घबड़ा न गए, अगर इतने न घबड़ा गए कि बेहोश हो गए घबड़ाहट में, इतने दुखी और बेचैन न हो गए, जो छूट रहा है उसके कारण कि जो मिल रहा है वह दिखाई न पड़े—कई बार तुम्हारे हाथ से कंकड़-पत्थर छीने जाते हैं, लेकिन कंकड़-पत्थरों को तुमने हीरे समझा था; तुम उन्हें छोड़ते नहीं, तुम मुट्ठी बांधते हो; तुम सारी ताकत लगाते हो कोई छुड़ा न ले—तुम्हें पता नहीं है कि हीरे-जवाहरात दिए जाने

की तैयारी की जा रही है। तुम्हें पता हो भी कैसे सकता है? तो तुम इतना उपद्रव मचा सकते हो कंकड़-पत्थर छोड़ने में कि तुम बेहोश हो जाओ; तुम इतने दुखी हो सकते हो कि चैतन्य खो दो—फिर हीरे-जवाहरात पड़े रह जाएंगे। तुम इसी पीड़ा में पड़े रहोगे कि तुम्हारे जीवन का सब सार छीन लिया गया।

मृत्यु एक सुरंग है। जो घबड़ा गया, जो डर गया, जिसने जोर से पकड़ा, वह आगे खुलने वाले आकाश को न देख पाएगा। जो न डरा, जो न घबड़ाया, बल्कि जो उत्सुक रहा, जो बड़ी गहन जिज्ञासा से प्रतीक्षा किया, और जिसने जाना कि यह सुरंग है, पार हो जाएगी—और जिसे मैंने अब तक जीवन कहा था, वह एक सुरंग का जीवन था, संकीर्ण था बहुत, गला घोंटा जा रहा था उसमें, कुछ मिल नहीं रहा था—उसे जैसे ही खुले आकाश के दर्शन होंगे, उसके अहोभाव की कोई सीमा नहीं! उस क्षण पता चलेगा कि जिसे जीवन कहा वह मृत्यु थी; जिसे प्रकाश कहा वह अंधकार था; जिसे अमृत कहा वह जहर था। पर तुलना अभी तो नहीं पैदा हो सकती।

तो, दो तरह की मृत्युएं हैं मोटे अर्थों में। ऐसे तो प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु बड़ी निजी और व्यैयक्तिक है। जैसे तुम्हारे हस्ताक्षर अलग हैं ऐसे तुम्हारी मौत अलग है। जैसे तुम्हारे अंगूठे का चिह्न अलग है ऐसे तुम्हारी मौत अलग है। तुम्हारे भीतर का आकाश तो एक है, लेकिन तुम्हारे आंगनों की दीवाल अलग-अलग है, अलग-अलग ढंग की है।

फिर भी मोटे अर्थों में दो विभाजन हो सकते हैं और वे दो विभाजन कीमती हैं। एक तो जागे हुए व्यक्ति की मृत्यु है—जागा हुआ यानी वह जिसने मरने के पहले मृत्यु को स्वीकार कर लिया; जो मरने के पहले मर गया। और दूसरी मृत्यु सोए हुए व्यक्ति की मृत्यु है। और तुम्हारे ऊपर निर्भर है कि तुम कैसे मरोगे; क्योंकि तुम जैसे जीयोगे वैसे ही तुम मरोगे। मृत्यु तुम्हारे पूरे जीवन का सार-निचोड़ निष्कर्ष होगी, निष्पत्ति होगी। अगर तुम गलत जिए, तुम गलत मरोगे। अगर तुम सम्यक जिए, तुम सम्यक मरोगे। अगर तुम छोड़ते हुए जिए तो मृत्यु के पहले तुमने वह सब छोड़ ही दिया होगा तो किनारा तुमसे छीना जाने वाला है; तुम खुद ही छोड़ का नाव में बैठ गए थे, तुम तैयार ही थे कि कब पाल खुल जाए, कब इशारा मिले और नाव यात्रा पर निकल जाए।

त्याग का इतना ही अर्थ है। त्याग का अर्थ घर छोड़कर भाग जाना नहीं, न दुकान छोड़कर भाग जाना है। त्याग का अर्थ इतना ही है तुम जहां भी हो, जिस स्थिति में भी हो उससे इतना ग्रसित मत हो जाना कि जब वह छिनी जाए तो तुम पीड़ा से भर जाओ—बस! छोड़ कर भागने की कोई जरूरत नहीं है, छोड़े हुए होने का भाव पर्याप्त है। तुम कैसे, कहां जी रहे हो—यह सवाल नहीं है; तुम्हारे भीतर की दृष्टि क्या है...। अगर तुम यह जान कर जी रहे हो कि यह सब छिन जाएगा, और इस छिनने से तुम्हें कोई पीड़ा होने की संभावना नहीं है तो तुम जहां भी जी रहे हो, तुम संन्यासी हो। अगर तुम जंगल भाग गए और एक झोपड़ी बना ली, और तुम्हें डर लगता है कि अगर यह छिनेगी तो मैं छोड़ न पाऊंगा, जब मौत आकर लंगोटी मांगेगी तो मेरे हाथ सरलता से खुलेंगे नहीं—तो तुम वहां भी संसारी हो।

संसार और संन्यास दृष्टिकोण हैं, तुम्हारे भीतर की बड़ी आत्यंतिक भावदशाएं हैं।

जो व्यक्ति संन्यासी की तरह जीया, उसकी मृत्यु महाजीवन का द्वार बन जाती है। जो व्यक्ति संसारी की तरह जीया उसकी मृत्यु में, सिर्फ जीवन का अंत तो हो जाता है, नये जीवन का आविर्भाव नहीं होता। पुराना दिया बुझ जाता है, नया सूरज उगता नहीं। सब जाना-माना खो जाता है अपरिचित का अपरिचित का अवतरण नहीं होता। हाथ से कंकड़ पत्थर तो छूट जाते हैं—जिन्हें हीरे-जवाहरात समझा था—और हीरे-जवाहरात हाथ में आते नहीं। इसलिए मृत्यु ऐसे व्यक्ति की बड़ी विडंबना हो जाती है।

ये दो मृत्युएं खयाल में रखें, फरीद के वचन समझ में आ सकेंगे।

'विरह-ज्वर से मेरा अंग-अंग जल रहा है। और मैं अपने हाथों को मरोड़ती हूं। प्रीतम से मिलने की लालसा ने मुझे बावली बना दिया है—

'तपि तपि लुहि लुहि हाथ मरोरऊं। बावली होई सो सहु लोरऊं।।

इसके पहले फरीद ने कहा कि एक ऐसी घड़ी आती है जब आशिक माशूक हो जाता है; एक ऐसी घड़ी आती है प्रेम के ज्वर की जब कि प्रेमी प्रेयसी हो जाता है। अब ये सारे वचन फरीद प्रेयसी की भांति कह रहा है। अब परमात्मा प्रीतम है, फरीद प्रेयसी है। परमात्मा पुरुष है, फरीद स्त्री है। ये उस घड़ी के बाद के वचन हैं, खयाल रखना; अन्यथा तुम्हें हैरानी होगी कि फरीद अचानक स्त्री के ढंग से क्यों बोलने लगा!

मैंने तुम्हें कहा कि जब तुम परमात्मा के प्रेम में शुरू-शुरू में उतरते हो तब तुम्हारा प्रेम भी आक्रामक होता है; तुम इस तरह जाते हो जैसे परमात्मा पर कोई आक्रमण बोल दिया हो, धावा बोल दिया हो; तुम्हारी प्रार्थना भी आक्रामक होती है, तुम्हारी पूजा भी आक्रामक होती है। स्वाभाविक है। लेकिन जैसे-जैसे तुम्हें पूजा और प्रार्थना का आनंद मिलना शुरू होता है और जैसे-जैसे तुम्हें यह समझ में आता है कि आक्रमण का भाव ही मेरी पूजा की कमी है, मेरे आक्रमण का भाव ही मेरी प्रार्थना का दंश है; जैसे-जैसे तुम्हें समझ में आता है कि आक्रमण के भाव के कारण ही मेरे पूजा के दिये से अंधेरा निकलता है, प्रकाश नहीं निकलता; आक्रमण के भाव के कारण मेरा अहंकार बना है, पूजा होगी कैसे, प्रार्थना होगी कैसे, मेरा अहंकार मुझे मंदिर के भीतर आने कैसे देगा?

मंदिर के भीतर तो तभी प्रवेश होता है जब तुम अहंकार को वहीं रख आते हो जहां तुम जूते उतार आते हो; वहीं छोड़ आते हो अहंकार को!

बंगाल में एक पुरानी बाउलों की कथा है कि एक व्यक्ति वृंदावन की यात्रा को गया। बाउल भक्तों के लिए वृंदावन परमात्मा का घर है, वह बैकुंठ है। यह सब छोड़ दिया है इसने, सब त्याग कर दिया; क्योंकि उस परमात्मा के घर तक जाने में क्या ले जाया जा सकता है! परमात्मा के घर की यात्रा तो ऐसे है जैसे कोई पहाड़ पर चढ़ता है, जैसे-जैसे ऊंचाई बढ़ती है वैसे-वैसे बोझ कम करते जाना है। जब कोई गौरीशंकर के शिखर पर पहुंचता है तो सभी बोझ छूट जाता है, अकेला ही खड़ा होता है।

तो वृंदावन आते-आते उसने सब त्याग कर दिया, कुछ भी न बचा; सिर्फ एक जोड़ी कपड़ा रह गया—स्नान करके बदलने को। वह भी इसीलिए बचा लिया कि वृंदावन के मंदिर में बिना स्नान किए कैसे प्रवेश हो सकेगा? तो एक छोटी-सी पोटली जिसमें एक जोड़ी कपड़ा, बस यही कुल सामान रह गया। वह भी स्नान की दृष्टि से बचाया था। वह भी कोई अपने शरीर को सजाने का सवाल न था—लेकिन परमात्मा के मंदिर में बिना स्नान के कैसे प्रवेश करूंगा! वह द्वार पर खड़ा हो गया मंदिर के, लेकिन द्वारपाल ने दोनों हाथ से उसे द्वार पर रोक दिया, और कहा : भीतर न जा सकोगे। भीतर तो वही जाता है जिसके पास कुछ भी न हो।

वह बाउल हंसने भी लगा, रोने भी लगा। वह हंसने लगा। उसने कहा : तुम भी पागल मालूम होते हो! मेरे पास क्या बचा है? एक पोटली है, इसमें एक जोड़ी कपड़ा है सिर्फ। वह भी मेरे लिए नहीं है, वह भी इसलिए कि मंदिर में बिना स्नान किए कैसे जा सकूंगा! और मेरे पास कुछ भी नहीं है, इसलिए तुम्हारी बात पर हंसी भी आती है। और तुम्हारी बात से रोता भी हूं कि अगर तुमने भीतर न जाने दिया तो अब क्या होगा? इसी एक आशा से तो चलता रहता हूं।

उस द्वारपाल ने कहा कि तुम्हारी पोटली में अगर कपड़े ही होते तो हम जाने देते; बड़ा सूक्ष्म अहंकार छिपा है! यह बिना स्नान किए तुम कैसे जाओगे—यह भी परमात्मा का सवाल नहीं है! परमात्मा तो तुम्हें बिना स्नान किए भी स्वीकार कर लेगा। उसके लिए तो तुम सद्यःस्नात हो, स्नान किए ही हो। उसके लिए कुछ अपवित्र कभी कुछ हुआ ही नहीं है। लेकिन तुम बिना स्नान किए कैसे जाओगे! नहीं, यह तुम्हारे अहंकार को बात नहीं रुचती। पोटली में कपड़े ही होते तो चले जाने देते; पोटली में भारी अहंकार तुम लिए हो—इसे छोड़ आओ। मंदिर के द्वार तब तक नहीं खुल सकते जब तक तुम अपने को बाहर नहीं छोड़ आए हो।

अगर स्नान का भाव अहंकार हो सकता है तो तुम्हारी पूजा, तुम्हारी प्रार्थना, तुम्हारी अर्चना, तुम्हारी गीता, तुम्हारी कुरान, तुम्हारी बाइबिल—बाइबिल, कुरान, गीता से तुम्हें कुछ लेना नहीं है—तुम्हारा! पूजा-अर्चना के तुम्हारे ढंग, विधियां, शैलियां! ये भी नहीं। तुम्हारा भगवान!

किसी का कृष्ण भगवान है, किसी का महावीर, किसी का बुद्ध। जो बुद्ध को भगवान मानता है, कृष्ण के सामने सिर नहीं झुकाता। अपने-अपने भगवान के सामने लोग सिर झुकाते हैं। ऐसा हर किसी, ऐरे-गैरे-नत्थूखैरे के भगवान के सामने सिर झुका देंगे!

मैं बहुत वर्षों तक जबलपुर में रहा। वहां एक बार गणपति विसर्जन के समय एक बड़ी झंझट हो गई। नियम था कि जब भी गणपति विसर्जित होते तो जो शोभायात्रा निकलती, उसमें ब्राह्मणों के मोहल्ले के गणेश सबसे आगे, फिर क्रमशः और लोगों के गणेश होते। एक वर्ष ब्राह्मणों के गणेश को आने में थोड़ी देर हो गई। और जुलूस को तो समय पर निकलता था, क्योंकि समय पर उसे कहीं पहुंचना था विसर्जन के लिए। इसलिए जुलूस तो निकल गया; ब्राह्मण बाद में पहुंचे। बड़ा उपद्रव मच गया और बीच रास्ते में उन्होंने जुलूस रुकवा दिया और जो बात हुई वह बड़े मजे की थी। वह आदमी के संबंध में बड़ी खबर देती है। हुआ यह कि चमारों के गणेश आगे हो गए। अब चमारों के गणेश की कोई हैसियत! तो ब्राह्मणों ने कहाः हटाओ चमारों के गणेश को पीछे! अपनी-अपनी हैसियत से रहना ठीक है। देर भले हो जाए, लेकिन गणेश तो ब्राह्मणों के ही आगे होंगे।

गणेश भी चमारों के और ब्राह्मणों के अलग-अलग हैं। वहां भी ब्राह्मण का अहंकार है!

तुम अपने भगवान के सामने झुकते हो। इसका मतलब हुआ कि तुम अपने ही सामने झुकते हो, तुम किसी के सामने नहीं झुकते। यह तुम्हारा भगवान तुम्हारे ही अहंकार की पूजा है। अन्यथा तुम झुकते; क्या लेना-देना था कि मस्जिद होती कि मंदिर होता कि चैत्यालय होता कि गुरुद्वारा होता—क्या फर्क पड़ता था? तुम्हें झुकने में अगर मजा आ गया होता तो तुम कहते, चलो मस्जिद के बहाने झुक जाएं यहां, वहां मंदिर के बहाने झुक जाएंगे; जहां कृष्ण के बहाने झुकने का मौका मिलता है, क्यों छोड़े; वहां महावीर के बहाने भी झुक जाएंगे—क्योंकि जहां जितना मौका मिल जाए झुकने का उतना अच्छा है; क्योंकि उतने ही टूटने की सुविधा है, उतनी ही प्रार्थना में से दुर्गंध हट जाएगी।

लेकिन नहीं, लोग अपनी ही पूजा कर रहे हैं। तुमने कृष्ण की प्रतिमा में अपने अहंकार को बिठा लिया है और तुमने महावीर में भी अपने को ही खड़ा कर लिया है। यह तो दूर की बात है, मैं एक गांव में ठहरा। वहां एक जैन मंदिर है, उस पर झगड़ा चलता है वर्षों से मुकदमा है, लट्ठबाजी हो गई। अहिंसक हैं और लट्ठबाजी होती है। दो दल हैं श्वेतांबरों के, और दिगंबरों के दोनों में लट्ठबाजी हो गई। हालत यहां तक हो गई कि पुलिस को उनके भगवान पर ताला लगा देना पड़ा। मैंने पूछा कि तुम तो दोनों अहिंसक हो! उन्होंने कहा कि अहिंसक होना ठीक है, लेकिन जब भगवान की रक्षा का सवाल हो तो चाहे जान रहे की जाए... मर जाएंगे, मिटा देंगे, मगर भगवान का सवाल है! मैंने उनको कहाः मैंने तो सुना है कि भगवान तुम्हारी रक्षा करता है; तुम कब से भगवान की रक्षा करने लगे? और अगर तुम्हारे हाथ में भगवान की रक्षा पड़ जाएगी तो भगवान बड़ी मुसीबत में पड़ेगा। तुम अपनी नहीं कर पा रहे हो रक्षा, इसलिए तो भगवान की तलाश है। अभी तुमने और उलटा उपद्रव ले लिया। खोजने गए थे रक्षक को और तुम खुद रक्षक हो गए।

और झगड़ा क्या है? झगड़ा ऐसा बचकाना है कि सिर्फ धार्मिक अंधों को दिखाई नहीं पड़ता। जिनके पास जरा-सी भी समझ की आंख है उनको तत्क्षण दिखाई पड़ जाएगा, हंसी आएगी कि यह कोई झगड़ा है!

झगड़ा यह है कि श्वेतांबर महावीर की मूर्ति की पूजा करते हैं—उसी मूर्ति की जिसकी दिगंबर करते हैं, कोई खास भारी फर्क नहीं है, जरा-सा फर्क है—वह फर्क यह हैं कि श्वेतांबर खुली आंख वाले महावीर की पूजा करते हैं और दिगंबर बंद आंख वाले महावीर की पूजा करते हैं। दिगंबर कहते हैं कि तीर्थंकर तो बंद आंख किए ध्यानस्थ खड़े हैं, अंतर्मुखी हैं, यह खुली आंख तो बहिर्मुखता का लक्षण है। श्वेतांबर कहते हैं कि

जिसने अपने को जान ही लिया वह किसलिए आंख बंद किए खड़ा है? अब तो आंख खोल सकता है यह। यह तो साधक की बात है कि आंख बंद करे और ध्यान करे, सिद्ध की तो नहीं। सिद्ध की तो आंख खुल गई, अब क्या है? आंख खुल गई—अब बंद करने का कहां सवाल है? यह तो रास्ते पर चलने वालों कि बात है।

यह झगड़ा है।

तो एक ही मंदिर में पूजा करते हैं, एक ही प्रतिमा की पूजा करते हैं; बारह बजे तक दिगंबर पूजा करेंगे—तो बंद आंख भगवान की! अब पत्थर कि मूर्तियां हैं, उनकी आंखें इतनी सरलता से खोली नहीं जा सकतीं, तो ऊपर से झूठी आंखें चिपका देते हैं, ऊपर से फिक्स कर देते हैं; जैसे तुम चश्मा लगा लेते हो ऐसा ऊपर से लगा देने वाली आंखें हैं। श्वेतांबर जब पूजा करते हैं वे आंखें लगा लेते हैं; दिगंबर जब पूजा करते हैं; वे आंखें अलग कर दी जाती है कि हटाओ, अब भगवान की आंख खुलने का वक्त आ गया! इस पर मुकदमे चलते हैं, मारपीट हो जाती है।

पर थोड़ा सोचो, तुम्हें महावीर से लेना-देना है? अगर तुम्हें महावीर से लेना-देना होता तो ये दोनों आग्रह गलत हैं। न तो महावीर ने चौबीस घंटे आंख खोली होगी; झपकते होंगे; कभी बंद भी करते होंगे, कभी खोलते भी होंगे, रात सो जाते होंगे तो आंख बंद करके सोते थे। दिन जगते थे तो आंख खोल कर ही चलते थे रास्तों पर, भिक्षा मांगने जाते थे। आंख जैसी आंख थी, जैसी तुम्हारी आंख झपकती है। जिंदा आंख झपकती है, मुर्दा आंख रुक जाती है: बंद तो बंद, खुली तो खुली। तुम मरी हुई आंख को पूज रहे हो। जिंदा आंख को पूजते तो तुम कहते, दोनों ही घटनाएं घटती हैं, दोनों ही सही हैं। कुछ चुनाव नहीं है। जैसे नदी के दो किनारे होते हैं ऐसे चेतना की अंतर्मुखता और बहिर्मुखता है। जैसे श्वास भीतर आती है बाहर जाती है, ऐसे ही चेतना भी भीतर जाती है बाहर आती है। जिसने दोनों के मध्य अपने को साध लिया वही सिद्ध है। जो एक में जकड़ गया वही पंगु है। लेकिन तुम्हारे भगवान वस्तुतः भगवान नहीं हैं; तुम्हारे हैं, इसलिए भगवान हैं। भगवान होने के कारण तुम्हारे होते तो बात और होती; तब तो तुम्हें मस्जिद में भी पहचान में आ जाते, जहां कोई मूर्ति न थी। तुम कहते, भगवान यहां निराकार है। कृष्ण के मंदिर में जाते तो तुम कहते, भगवान यहां बांसुरी बजा रहे हैं। महावीर के मंदिर में जाते, तुम कहते, भगवान यहां ध्यान कर रहे हैं। तुम्हें भगवान ही दिखाई पड़ता! लेकिन तुम्हारा मैं भगवान को नहीं देखता, न देखने का उसे कोई सवाल है; वह अपने भगवान को देखता है। वह ठीक देख लेता है: अपने ही हैं? कहीं धोखा-धड़ी तो नहीं?—तब झुकता है।

तुम अपने अहंकार के सामने झुकते हो। अच्छा होता! तुम क्यों व्यर्थ की मूर्तियां बनाते हो? तुम आईना लगा लो घर में, उसी में अपने को देखो, अपना रूप निहारो, पूजा के थाल सजाओ, आरती उतारो। वह कम से कम तो सचाई तो होगी; तुम्हारे संबंध में कम से कम झूठ तो न होगी। और उसमें एक फायदा है, और वह फायदा यह है कि बहुत मूर्तियों की जरूरत न रहेगी; तुम जब उतारो मूर्ति की पूजा तब तुम रहोगे; तुम्हारी पत्नी उतारे तब वह रहेगी, तुम्हारा लड़का उतारे तब वह रहेगा—एक दर्पण सभी के लिए मंदिर का काम दे देगा। हिंदू आ जाए तो हिंदू, मुसलमान आ जाए तो मुसलमान, चोटी बांधे हुए हो तो चोटी, चोटी न हो तो बिना चोटी—कम से कम दर्पण तुम्हीं को बताता रहेगा। मूर्तियों ने तुम्हें धोखा दे दिया है, लेकिन हैं वे तुम्हारी ही मूर्तियां।

यह जो फरीद कहते हैं कि ऐसी घड़ी आती है भक्त के जीवन में जब आक्रमण बिलकुल खो जाता है।

आक्रमण यानी अहंकार।

अहंकार शुद्धतम आक्रमण है। जब तक तुम्हारे भीतर अहंकार है तब तुम अहिंसक न हो सकोगे; तब तक तुम्हारी अहिंसा में भी हिंसा भी छिपी होगी, ऊपर से अहिंसा के वस्त्र हो जाएंगे, आवरण हो जाएंगे।

नहीं, अहंकार के रहते कोई अहिंसक नहीं हो सकता। और अहंकार के रहते जब अहिंसक ही नहीं हो सकते तो प्रेमी क्या खाक हो सकोगे? अहिंसक का तो कुल इतना ही मतलब होता है कि दूसरे को दुख न देंगे;

प्रेमी का मतलब होता है, दूसरे को सुख देंगे। जब अहिंसक ही नहीं हो सकते तो क्या खाक प्रेमी हो सकोगे? प्रेम तो अहिंसा की पराकाष्ठा है। अहिंसा तो प्रेम की शुरुआत है—क ख ग बिलकुल प्रारंभ है बारहखड़ी का। अहिंसा का तो मतलब होता है, हम कम से कम दूसरे को दुख न देंगे। अहिंसा निषेधात्मक है। फिर दूसरे कदम पर चेष्टा करेंगे; जब दुख न देंगे—ऐसी घड़ी आ जाएगी, तो फिर सुख देने की संभावना ,खुलती है—तो फिर हम सुख देंगे।

अहंकार न तो अहिंसक होने देता है, प्रेमी तो कैसे होने देगा? भक्त होने का तो कोई उपाय ही नहीं; क्योंकि भक्ति तो प्रेम से भी ऊपर है। अहिंसक कहता है, दूसरे को सुख देने में सुख है। और भक्त कहता है, दूसरा दूसरा न रह जाएगा मेरा मेरा न रह जाए, पराया पराया न रह जाए—तब सुख है।

भक्ति परम स्थिति है; वह आखिरी बात है। उससे ऊपर फिर कोई और ऊंचाई नहीं। वह अंतिम आकाश है।

फरीद कहते हैं; ऐसी घड़ा आती है भक्त की जब आक्रमण चला जाता है; जब वह ऐसे नहीं जाता मंदिर की तरफ जैसे कुछ छिनने जा रहा हो; ऐसे नहीं जाता मंदिर की तरफ जैसे भगवान से कोई शिकायत कर रहा हो कि इतनी देर से प्रार्थना कर रहा हूं, अभी तक नजर न हुई, इस तरफ कब देखोगे? नहीं वह मंदिर ऐसे जाता है—शिकायत की तरह नहीं, अहोभाव की तरह, कि जो दिया है वह जरूरत से ज्यादा है; मेरी कोई योग्यता न थी और दिया है; मेरी कोई पात्रता नहीं थी और तुम बरसाए चले जाते हो; तुम रोज मेघ बनाए चले जाते हो; तुम अमृत गिराएं चले जाते हो; तुम यह भी फिक्र नहीं करते कि मेरा पात्र सीधा रखा है कि उलटा रखा है, मेरे पात्र में संभलता है कि नहीं संभालता है! तुम औघड़दानी हो! तुम दिए ही चले जाते हो; इसकी फिक्र नहीं करते कि दूसरों को चाहिए भी, अभी अक्ल भी है लेने की या नहीं! तुम लुटाए जाते हो!

इसका धन्यवाद देने जब भक्त जाने लगता है तब उसके जीवन में स्त्रैण भाव आता है; तब वह सिर्फ स्वीकार की अवस्था में होता है, आक्रमण की नहीं। वह कहता हैः तुम जो दे दोगे, ले लेंगे और नाचेंगे। तुम जो न दोगे, समझ लेंगे कि हमारे लिए खतरा था। तुम्हारे न देने को समझ के नाचेंगे, न बरसोगे तो नाचेंगे। तुम हमारे नाच को न रोक सकोगे अब! बरसोगे तो नाचेंगे, न बरसोगे तो नाचेंगे; क्योंकि अब हम जानते हैं कि तुम्हारे हाथों में छोड़ दिया, तब तुम जहां ले जाओगे!

एक तो वृक्ष हैः अपने सहारे खड़ा होता है; एक लता हैः वक्ष के सहारे कंधे पर टिक कर खड़े होती है। एक तो पुरुष हैः अपने सहारे खड़ा होता है वृक्ष की भांति, एक स्त्री हैः लता की भांति वह पुरुष के कंधे का सहारा ले कर खड़ी होती है, अपने से तो गिर जाएगी।

जब तक तुम्हारी प्रार्थना तुम्हारा संकल्प है तब तक पुरुष; जब तुम्हारी प्रार्थना समर्पण है, तुम लता की भांति हो गए कि तुमने परमात्मा पर ही अपने को सौंप दिया कि अब तू सम्हालेगा तो सम्हलेंगे, तू गिराएगा तो समझेंगे कि गिरने में ही हित है; अब तेरी मर्जी! जैसा दादू कहते हैंः तू जैसा रखेगा वैसे रहेंगे! जैसा जीसस ने कहा, तेरी मर्जी पूरी हो!

जहां मेरी मर्जी नहीं रह जाती, जहां मैं नहीं रहा जाता—वहीं स्त्रैण चेतना काम करना शुरू कर देती है। भक्ति के मार्ग पर पुरुष भी स्त्रैण हो जाते हैं।

रामकृष्ण के जीवन में ऐसा उल्लेख है। पता नहीं, रामकृष्ण को फरीद का पता भी था या नहीं; अगर पता होता तो रामकृष्ण उसके लिए सबसे बड़े गवाह हो जाते। इसकी कोई कहानी नहीं है कि फरीद के जीवन में यह तो क्रांति घटी, जब वह अपने को समझने लगा प्रेयसी, तब उसके शरीर में भी कुछ हुआ या नहीं; चेतना में तो हुआ, यह पक्का है, लेकिन शरीर में भी कुछ हुआ या नहीं, यह पक्का नहीं है। रामकृष्ण के तो जीवन में ऐसी घटना घटी जो इतिहास में अनोखी है; उनका शरीर भी स्त्रैण होने लगा था। जब उन्होंने भक्ति की गहन साधना की तो स्तन बड़े हो गए। जब उन्होंने भक्ति की और प्रगाढ़ साधन की तो उसकी चाल बदल गई; वह स्त्रियों

जैसे चलने लगे, जो की चमत्कार है। क्योंकि बड़ा कठिन है किसी पुरुष को स्त्री जैसा चलना। क्योंकि वह सवाल चलने का नहीं है, सवाल भीतर के हड्डियों के ढांचे का है। स्त्री के पेट में तो गर्भ की जगह है; उस जगह के कारण उसकी चाल अलग है। स्त्री दौड़ नहीं सकती पुरुष जैसा। वह दौड़ेगी भी तो तुम दूर से कह सकते हो कि स्त्री है।

रामकृष्ण स्त्रियों जैसा चलने लगे। और बात यहीं रुक जाती तो ठीक थी; बात आखिरी कदम पर पहुंच गई जो के इतिहास में कभी भी जिसका उल्लेख नहीं; हुआ तो होगा बहुत बार, शायद बात छिपा ली गई, क्योंकि भरोसे की भी नहीं है। कौन भरोसा करेगा? रामकृष्ण को मासिक धर्म शुरू हो गया। भाव इतना गहनता से स्त्रैण हो गया—निश्चित ही आशिक माशूक हो गया। पुरुष का भाव ही न रहा। आवाज बदल गई। कंठ स्त्रैण हो गया। मगर यह सब हो सकता हैः कंठ भी स्त्रैण हो सकता है, क्योंकि माधुर्य का भाव आ जाए तो हो सकता है। लेकिन मासिक धर्म का शुरू हो जाना—जैसे शरीर ने पूरा रूपांतरण कर लिया; जैसे शरीर के भीतर के हारमोन भी चेतना के रूपांतर के साथ प्रवाहित हो गए और बदल गए।

इसलिए फरीद अब ऐसी बात कर रहा है जैसे वह प्रेयसी है।

'तपि तपि लुहि लुहि हाथ मरोरऊं।'

अब स्त्री क्या कर सकती है और? हाथ मरोड़ती है, जलती है।

'विरह से मेरा अंग-अंग जल रहा है, और मैं अपने हाथों को मरोड़ती हूं।'

पुरुष होता तो हमला कर देता। हाथ मरोड़ना स्त्रैण है। अगर तुम पुरुष को हाथ मरोड़ते देखो तो तुम समझोगे कि कुछ गड़बड़ है। या कुछ करना हो तो हाथ चलाओ; मरोड़ क्या रहे हो? मरोड़ने का मतलब है चलने का भाव नहीं है। कुछ समझ में नहीं आता, क्या करें? बड़ी बेबूझ दशा है। करने का भी मन होता है और यह भी समझ में आता है कि करने से क्या होगा! उसकी कृपा होगी तो होगा! तो ऐसी दशा में हाथ मरोड़ना बड़ा ठीक प्रतीक है।

'विरह-ज्वर से मेरा अंग-अंग जल रहा है, और मैं अपने हाथों को मरोड़ती हूं।'

करने को कुछ बचा नहीं। करना गिर गया। अब कोई उपाय नहीं है। प्रतीक्षा करती हूं, हाथ मरोड़ती हूं, राह देखती हूं। आओगे, तब आओगे। जब आने की तुम्हारी मर्जी होगी, तभी आओगे। मेरे किए कुछ हो नहीं सकता। मैं द्वार पर खड़ी हूं; दरवाजा खुला रखा है। सेज तैयार रखी हैः तुम आओगे तो विश्राम की तैयारी है! तुम्हारे लिए भोजन बना रखा है। लेकिन अब मैं और क्या कर सकती हूं? दौड़-दौड़ आ जाती हूं द्वार पर, हाथ मरोड़ती हूं!

अंग-अंग जल रहा है ज्वर से।

इसे थोड़ा समझो। जिस जीवन में प्रेम नहीं है, उस जीवन में एक तरह का उत्ताप होता है, एक तरह का ज्वर होता है। जिस जीवन में प्रेम अवतरित होता है, एक शीतलता आ जाती है, एक ज्वर खो जाता है। साधारणतः जब तुम बुखार से ग्रस्त हो तो होता क्या है? बुखार है क्या? ज्वर किस घटना का नाम है? और तुम्हारा शरीर उत्तप्त क्यों हो जाता है? अगर तुम समझते हो कि शरीर का उत्तप्त हो जाना ही ज्वर है तो तुम गलत समझे, तो तुमने लक्षण को बीमारी समझ लिया। शरीर का उत्तप्त हो जाना तो लक्षण है, बीमारी तो गहरे में है। चिकित्सक कहते हैं कि बीमारी है तुम्हारे शरीर में किसी विजातीय द्रव्य का प्रवेश, विजातीय रोगाणुओं का प्रवेश; तुम्हारे शरीर में कुछ ऐसे रोगाणु प्रविष्ट हो गए हैं जो तुम्हारे शरीर के अणुओं से लड़ रहे हैं; एक गृह-युद्ध मचा है; तुम्हारा शरीर कुरुक्षेत्र हो गया है, एक महाभारत मचा है; तुम्हारे शरीर के अणु विजातीय अणुओं से संघर्ष कर रहे हैं। उस संघर्ष के कारण गरमी पैदा होती है। जैसे तुम दो हाथों को रगड़ो और गरम हो जाएं; और तुम दो चकमक पत्थरों को रगड़ो और आग पैदा हो जाए; तुम दो बांसों को रगड़ो और जंगल में आग लग जाए—ऐसे जहां भी रगड़ है, संघर्ष है, वहां उत्ताप पैदा हो जाता है। तुम्हारे शरीर के अणु विजातीय द्रव्यों से लड़ रहे हैं। जब तक उनको निकाल

कर बाहर न फेंक देंगे तब तक शीतलता नहीं हो सकती। इसलिए बीमार कोई बुखार से हो तो उसका शरीर ठंडा करने में मत लग जाना, कि बर्फ से नहला दो, कि ठंडा कर दो तो ठीक हो जाएगा; ठीक नहीं होगा, समाप्त हो जाएगा।

बुखार बीमारी नहीं है, सिर्फ लक्षण है: भीतर युद्ध मचा है, संघर्षण हो रहा है।

जब तुम किसी की प्रतीक्षा में रत हो, जब जिसे मिलना चाहिए वह तुम्हें नहीं मिला है, तब भी एक गहरा संघर्षण होता है। संसार में होना एक संघर्षण होना है। संसार में होना बंटे हुए होना है। तुम अपने भीतर ही खंड-खंड हो; तुम्हारे खंड ही आपस में लड़ रहे हैं। तुम अखंड नहीं हो। तुम एक नहीं हो, तुम दो हो, अनेक हो। तुम एक भीड़ हो; उस भीड़ में घर्षण हो रहा है; उस संघर्ष का परिणाम है कि तुम उत्तप्त हो। तुम्हारी बेचैनी, तुम्हारा तनाव, तुम्हारी अशांति, उसी गहरे ज्वर के अलग-अलग रूप हैं।

"विरह ज्वर से मेरा अंग-अंग जल रहा है, और मैं अपने हाथों को मरोड़ती हूं। कुछ सूझता नहीं, क्या करूं! यह मेरी दशा है विक्षिप्त जैसी। कुछ करने को नहीं है, हाथ मरोड़ती हूं और ज्वर से ग्रस्त हूं।

प्रेम ही शांति ला सकती है। प्रेम का अर्थ है उससे मिल जाना जो हमारा स्वभाव है। प्रेम का अर्थ है उससे मिल जाना जिससे मिलना हमारी नियति है। प्रेम का अर्थ है उसे पा लेना जिसे पाने को हम बने हैं। प्रेम का अर्थ है बीज फूल हो जाए, तो सब शांत हो जाएगा। जब तक बीज बीज है तब तक भीतर एक संघर्ष चलता ही रहेगा, क्योंकि कलियां लानी हैं। लेकिन एक बार फूल आ गए, फूल लग गए: वृक्ष का पूरा प्राण शांत हो जाता है; जो होना था वह पूरा हो गया, अब बेचैनी का कोई कारण नहीं।

जब तक व्यक्ति परमात्मा न हो जाए तब तक ज्वरग्रस्त रहेगा, तब तक कोई उसके ज्वर को मिटा नहीं सकता। और जो उसको ज्वर को मिटाने की कोशिश करते हैं वे दुश्मन हैं। क्योंकि इसका तो मतलब हुआ कि ज्वर भीतर से मिटेगा भी नहीं, ऊपर से मिटने का धोखा भी हो जाएगा—तो व्यक्ति अपनी मंजिल से भटक जाएगा।

'विरह ज्वर से मेरा अंग-अंग जलता है, मैं अपने हाथों को मरोड़ती हूं। प्रीतम से मिलने की लालसा ने मुझे बावली बना दिया है। मैं बिलकुल पागल हुई जा रही हूं।'

पागल होने से कम में काम न चलेगा। भक्ति परमात्मा के लिए पागलपन है। पागल तो तुम भी हो: तुम संसार के लिए पागल हो। तुम उसके लिए पागल हो जिसको पाकर भी कुछ न मिलेगा। भक्त भी पागल है, पर वह उसके लिए पागल है जिसको पा कर सब मिल जाएगा। तब तुम खुद ही सोच लो कि दोनों में कौन ज्यादा पागल है? कौन असली में पागल हैं? तुम ही असली में पागल हो। क्योंकि ऐसा पागलपन जो तुम्हें अपने स्वभाव से जुड़ा देगा, भला अभी पागलपन दिखता हो, अंततः वही समझदारी सिद्ध होगी। और ऐसा पागलपन जो अभी भला समझदारी दिखती हो कि धन कमा लो, प्रतिष्ठा कमा लो, बड़े महल बना लो, बड़ा साम्राज्य फैला दो—अभी बिलकुल समझदारी दिखती है, वही अंततः पागलपन सिद्ध होगी।

एक बाउल फकीर का गीत मैं पढ़ रहा था। वह परमात्मा से कह रहा है कि पागल तो हम सब हैं; कुछ तेरी तरफ पागल हैं, कुछ तेरे विरोध में पागल हैं; कुछ तेरी तरफ आने को दीवाने हैं, कुछ तुझसे दूर जाने को दीवाने हैं। हे परमात्मा, तू ही बता, हम दोनों में कौन ज्यादा दीवाना है? कौन ज्यादा पागल है? क्योंकि जो तुझसे दूर जा रहा है, वह कहां जाएगा? वह कितने ही दूर चला जाए तो भी मंजिल तो न जाएगी। और दूर जाता रहे— और जितना दूर जाएगा उतना ही ज्वर से भरता रहेगा। इसलिए अभागे हैं वे लोग जिनको तुम्हारे जिंदगी में तुम सफल कहते हो। और धन्यभागी हैं वे लोग जो तुम्हारे हिसाब से सफल नहीं होते, असफल हो जाते हैं। जिनको धन मिल गया और जीवन जिन्होंने गंवा दिया, उनको तुम सफल कहते हो। उनके जैसी असफलता तुम और कहां पाओगे? सिकंदर और नेपोलियन—इनसे ज्यादा असफल आदमी तुम कहां खोजोगे?

मैं एंडरू कारनेगी का जीवन पढ़ रहा था। वह अमेरिका का सबसे बड़ा अरबपति हुआ। वह मरा तो दस अरब रुपए छोड़ कर मरा। मरते वक्त ऐसे ही कुतूहलवश, दो दिन पहले, जो व्यक्ति उसके सेक्रेटरी का काम

करता था और उसका जीवन लिख रहा था, उससे उसने पूछा, एक दिन ऐसा पड़े-पड़े आंख खोली, और कहाः सुनो लिखना बाद में, पहले एक सवाल का जवाब दो। अगर तुम्हें परमात्मा यह चुनाव का मौका दे कि चाहो तो तुम एंडरू कारनेगी हो जाओ और चाहो तो एंडरू कारनेगी की सेक्रेटरी हो जाओ, तुम दोनों में से क्या होना पसंद करोगे?

उस सेक्रेटरी ने कहाः इसमें सोचने-विचारने का सवाल ही कहां है?

एंडरू कारनेगी ने समझा कि शायद वह यह कह रहा है कि इसमें सोचने का सवाल कहां है; एंडरू कारनेगी होना पसंद करूंगा। वह हंसने लगा। उसने कहा कि मैं समझा।

सेक्रेटरी ने कहाः आप समझे नहीं। मैं यह कह रहा हूं कि मैं सेक्रेटरी होना ही पसंद करूंगा, एंडरू कारनेगी नहीं।

एंडरू कारनेगी के मन में बड़ी चिंता आ गई। उसने कहाः तुम्हारा मतलब क्या? तुम क्यों सेक्रेटरी होना चाहोगे जब तुम एंडरू कारनेगी हो सकते हो?

उसने कहाः मैं सेकेट्री होना चाहूंगा। सुनिए— मैं आपका जीवन लिख रहा हूं और आपके जीवन को समझने की कोशिश कर रहा हूं। जो मैं समझ पाया उससे एक बात तो सिद्ध हो गई कि जिनको हम सफल कहते हैं वे सफल नहीं हैं। तुम्हारा जीवन लिखते-लिखते मुझे अपने संबंध में बड़ी गहरी समझ आ गई। जो भूल तुमने की है वह मैं न करूंगा।

एंडरू कारनेगी अपने दफ्तर सुबह नौ बजे पहुंच जाता था, चपरासी दस बजे पहुंचते, क्लर्क साढ़े दस पहुंचते, मैनेजर्स बारह बजे पहुंचते, डायरेक्टर्स एक बजे पहुंचते, तीन बजे विदा हो जाते, फिर मैनेजर्स विदा हो जाते, चपरासी भी साढ़े पांच बजे चले जाते; एंडरू कारनेगी रात नौ बजे घर लौटता। नौ बजे से नौ बजे! चपरासियों से गई-बीती उसकी हालत थी। और घर कहीं एंडरू कारनेगी जैसे लोग लोटते हैं? क्योंकि एंडरू कारनेगी की पत्नी ने कहा है उसी सेक्रेटरी को कि भूल हो गई; इतने महत्वाकांक्षी आदमी से विवाह करने में कोई अर्थ नहीं; इससे तो बिना विवाह के रह जाना भी बराबर है। क्योंकि इतनी जिसकी महत्वाकांक्षा है वह प्रेम करने के लिए समय ही नहीं निकाल पाता।

एंडरू कारनेगी के बच्चों ने लिखा है कि हमें अपने पिता से कोई संबंध नहीं हो पाया। हम ऐसे ही आते-जाते नमस्कार करते रहे, बस। एक अजनबी थे वे, क्योंकि उनको फुर्सत कहा थी! जिसको करोड़ों-अरबों रुपए छोड़ जाना हो, उसे बच्चों के साथ समय गंवाने में कहां सुविधा हो सकती है।

और इस आदमी ने मरते वक्त खुद क्या कहा? मरते वक्त किसी ने कहा कि अब तो तुम तृप्त होकर मर रहे हो?—क्योंकि जमीन पर तुमसे ज्यादा धन किसी के भी पास नहीं है।

उसने आंख खोली और उसने कहाः तृप्त! एंडरू कारनेगी तृप्ति जानता ही नहीं। दस अरब रुपए छोड़ कर मर रहा हूं, लेकिन योजना सौ अरब कमाने की थी। हारा हुआ हूं। नब्बे अरब से हारा हूं।

यही सभी सफल लोगों की कथा है। असफलता सफल लोगों की कहानी है।

मैं तुमसे कहता हूंः धन्यभागी हो, अगर तुम्हारे जीवन में सफलता का भूत सवार न हो।

एक मेरे मित्र हैं। एक राज्य में मंत्री हैं, कई वर्षों से मंत्री है; उससे आगे नहीं बढ़ पाते। मुख्यमंत्री होने की चेष्टा करते हैं, लेकिन सफल नहीं हो पाते। थोड़े भले आदमी हैं! मुख्यमंत्री होने के लिए जैसा आदमी चाहिए, उतनी बुराई नहीं है, उतने दुर्गुण नहीं हैं, उतनी शैतानी, चालबाजी नहीं है, उतना षड्यंत्र नहीं कर पाते; करते हैं फिफ्टी-फिफ्टी हैं; करते भी हैं और भीतर से मन में भी लगता है कि गलती काम कर रहे है; वह ताकत भी उनमें नहीं है। वे मेरे पास कई बार आते हैं। पिछली बार मेरे पास आए, कहने लगेः अब आशीर्वाद दे दो। बस, एक दफा मुख्य मंत्री हो जाऊं!

मैंने कहाः आशीर्वाद कहते हो उसको कि अभिशाप? अगर आशीर्वाद तुम मुझसे मांगते हो तो एक ही दे सकता हूं कि तुम मंत्री भी न रह जाओ, ताकि तुम आदमी बन सको। तुम असफल हो जाओ तो तुम्हें कुछ अक्ल आए। तुम मंत्री ही बन कर क्या पा लिए हो, वह मुझे बताओ। तो तुम मुख्य मंत्री बन कर और क्या पा लोगे? हां, मैं तुम्हें बताता हूं कि मंत्री बन कर तुमने क्या-क्या खो दिया है। मुख्य मंत्री बन कर तुम और भी कुछ खो दोगे। तुम असफल हो जाओ एक बार। तुम बिलकुल हार जाओ, टूट जाओ तो शायद तुम्हारे नए जीवन की यात्रा शुरू हो जाए।

नहीं, सफलता सौभाग्य नहीं है। और जिसको संसार समझदारी कहता है वह समझदारी नहीं है। समझदारी का कुल इतना मतलब हैः बाकी सब लोग भी तुमसे सहमत हैं कि हां, यही समझदारी है। धन कमाओः यह समझदारी है! गंवाओः कौन कहेगा समझदारी है? बुद्ध को भी बुद्ध के बाप नहीं मानते कि यह समझदार है, नासमझ है, बुद्धि नहीं है। बुद्ध के पिता को तो छोड़ दो, बुद्ध का जो सारथी उन्हें छोड़ने जंगल में गया था, उससे भी न रहा गया। उसने भी कहां कि मैं नौकर हूं और छोटे मुंह बड़ी बात नहीं करनी चाहिए; लेकिन अब यह ऐसा मौका है कि करनी पड़ेगी। तुम नालायकी कर रहे हो। सारी दुनिया पागल है धन पाने को, राज्य पाने को; तुम छोड़ कर जा रहे हो! पछताओगे, भटकोगे। और एक बार बाप नाराज हो गया और उसके द्वार बंद हो गए तो फिर जीवन भर तड़फोगे। अभी लौट चलो, अभी कुछ बिगड़ा नहीं है, किसी को खबर नहीं है। मैं किसी को न कहूंगा, मैं पुराना तुम्हारे घर का नौकर हूं। तुम्हारे बाप से मेरी उम्र ज्यादा है। मेरी सुनो।

स्वाभाविक है। सारथीः गरीब आदमी! उसकी आकांक्षाएं महलों में अटकी हैं। वह यह बात नहीं समझ सकता कि बुद्ध को क्या पागलपन हो गया है कि सब छोड़ कर जा रहा है। सुंदर तेरी पत्नी है—उसने बुद्ध से कहा—नया-नया पैदा हुआ, नवजात बच्चा है। अभी तो बगिया बस रही थी, तू उजाड़ने लगा। संन्यास भी लेना हो तो यह तो आदमी आखिरी समय में लेता है। तुझे पता नहीं है(?)ः धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष— ये सब जो चार पुरुषार्थ हैं, इनकी एक श्रृंखला है। मोक्ष आखिरी है। वह तो बुढ़ापे के लिए है। जब देह जराजीर्ण हो जाती है और आदमी चलने चलने को हो जाता है और दूसरे लोग अरथी बांधने लगते हैं, तब आदमी मोक्ष की चिंता करता है। जब एक कदम कब्र में उतर जाता है और दूसरा अटका होता है कि बस अब गया, अब गया—तब आदमी परमात्मा का नाम लेता है। और कहानी तूने नहीं सुनी(?) कि एक पापी मरा था और मरते वक्त—उसके लड़के का नाम नारायण था। और उसने जोर से बुलायाः नारायण! और ऊपर के नारायण धोखे में आ गए। वह मर गया और मोक्ष को उपलब्ध हुआ। ऐसे आदमी मुक्त हो जाता है। ये तो अंतिम बातें हैं। इनको अभी करने की क्या जरूरत है?

स्वभावतः बुद्ध पागल लगे होंगे।

इस जगत में पागल होना इतना सामान्य है कि यहां बुद्धिमान पागल मालूम होते हैं।

पश्चिम के बहुत बड़े विचारक लुई पाश्चर ने लिखा है कि समझदार होने का मतलब सारी दुनिया की आंखों में नासमझ होना होगा। और दुनिया इतनी विक्षिप्त है कि यहां विक्षिप्त न होना एक तरह की विक्षिप्तता मालूम होती है।

पागल तो परमात्मा का प्रेमी भी है। पागल धन और पद का प्रेमी भी है। जो कहता है, चलो दिल्ली वह भी पागल है। जो मोक्ष की यात्रा कर रहा है वह भी पागल है। लेकिन पागलपन पागलपन में बड़ा भेद है। तुम उस पागलपन को चुनना जिससे तुम्हारी नियति पूरी हो। तुम उसके लिए दीवाने हो—क्योंकि दीवानेपन से कम से काम न चलेगा—जो तुम्हारे बीज को अंकुरित करे, जो तुम्हें वहां पहुंचा दे जो तुम होने को हो; क्योंकि अन्यथा कभी शांति न मिलेगी; अन्यथा तुम्हारे जीवन में आनंद-उत्सव न आ पाएगा।

'विरह-ज्वर से मेरा अंग-अंग जल रहा है और मैं अपने हाथों को मरोड़ती हूं। प्रीतम को मिलने की लालसा ने मुझे बावली बना दिया है।'

'प्यारे, तू अपने मन में मुझसे रूठ गया है; सो इसमें मेरा ही दोष था, तेरा नहीं।'

यह भक्त का भाव है।

'तैं सहि मन कोआ रोसु। मुझु अवगुन सह नाही दोसु।'

तू मुझसे रूठा है, यह बात पक्की है, अन्यथा मिल जाता; लेकिन यह बात भी पक्की है कि तू रूठा होगा मेरे ही किसी अवगुण के कारण, क्योंकि तू तो रूठना जानता ही नहीं।

यह भक्त का मन है, समझने की कोशिश करो।

तू रूठा है, यह बात पक्की है।

भक्त अनुभव करता है कि मैं पुकार रहा हूं, तू आता नहीं, तेरे रथ के पहियों कि कोई आवाज नहीं आती। भागा-भागा द्वार पर आता हूं, पाता हूं हवा ने थपेड़े दिए थे। सोए रात आधी रात जग जाता हूं, लगता है कोई आया; बाहर जाकर देखता हूं, कुछ भी नहीं, सूखे पत्ते हवा में उड़ रहे हैं। कितनी बार तेरे आने का धोखा हो जाता है, तू आता नहीं: निश्चित रूठा है। आंखें बिछा दी हैं तेरी राह पर, न नींद है न चैन है। ज्वरग्रस्त है, रोआं-रोआं, अंग-अंग तप रहा है। निश्चित ही तू रूठा है। इसमें कोई शक नहीं है। अन्यथा तू आ ही गया होता। लेकिन...।

और उस लेकिन में ही भक्त का पूरा हृदय है। मैं ही ऐसा गलत चलता रहा जन्मों-जन्मों तक। मैंने ही ऐसे-ऐसे उपाय किए तुझे पास न आने देने के। मैंने ही इतनी दिवाले बनायीं। मैं ही इतना तेरी तरफ पीठ किए रहा। तेरे सन्मुख होने के जितने उपाय थे, मैंने गंवा दिए; और तुझसे विमुख होने के जितने मार्ग थे, सबका मैंने अनुकरण किया। जानता हूं कि आज यह कहना उचित नहीं है कि तू रूठ गया है; तुझे मैंने ही रूठा दिया है। रूठना तेरा गुण नहीं, तेरा धर्म नहीं। तू तो कभी का आ गया होता; लेकिन मेरे ही अनंत काल के व्यवहार ने परदे डाल दिए हैं, आड़ें खड़ी कर दी हैं।

भक्त स्मरण भी करता है कि परमात्मा रूठा है तो भी दोषी अपने को मानता है। भक्त शिकायत भी करता है तो भी शिकायत का तीर सदा अपनी तरफ होता है।

भक्त की शिकायत ऐसी है जैसा मैंने सुना: रोजा लग्ज़मर्ग जर्मनी की एक बहुत महत्वपूर्ण विचारक हुई। किसी ने उसके खिलाफ अनर्गल बातें अखबारों में लिखीं। वह चुप ही रहीं, कोई जवाब न दिया। मित्र भी संदिग्ध हो गए। मित्रों ने कहा: जवाब क्यों नहीं देती हो? क्योंकि ऐसे जवाब न दोगी तो लोग समझेंगे कि सही होगा तभी जवाब नहीं देते।

रोजा लग्ज़मबर्ग ने कहा कि मैं छोटी थी, और मेरे पिता ने मुझे एक शिक्षा दी थी जो मुझे भूलती नहीं। और वह यह थी कि जब भी तुम किसी दूसरे की तरफ निंदा की अंगुली उठाते हो तो एक अंगुली तो दूसरे की तरफ होती है, लेकिन तीन अंगुलियां तुम्हारे अवगुणों की तरफ होती हैं।

भक्त अगर शिकायत भी करता है तो एक अंगुली परमात्मा की तरफ उठाता हो भला, लेकिन होशपूर्वक तीन अंगुलियां अपनी तरफ उठाता है। वह जानता है कि दोष उस तरफ नहीं हो सकता है।

'प्यारे, तू अपने मन में मुझसे रूठ गया है; इसमें मेरा ही दोष था तेरा नहीं।'

'मेरे स्वामी, मैंने तेरे गुणों को पहचाना नहीं। मैंने अपना यौवन गंवा दिया और पीछे बहुत पछताई।'

'मुझु अवगुण सह नाहीं दोसु। तैं साहिब की मैं सार न जानी। जोबनु खोई पाछे पछतानी।'

जिन्होंने भी जवानी खो दी है, वे सभी पछताते हैं। क्योंकि जवानी का अर्थ है शक्ति का क्षण, जवानी का अर्थ है ऊर्जा का क्षण। जब ऊर्जा थी तब तुमने व्यर्थ को कमाने में लगा दी, और जब ज्वार उतर गया ऊर्जा का, हाथ में कुछ भी न रहा तब तुम परमात्मा की तरफ चलने लगे! अशक्ति को तुम परमात्मा में लगाते हो; जब ऊर्जा नहीं रह जाती तब थके-हारे तुम कहते हो: अच्छा, परमात्मा, अब तू ही सही!

'मेरे स्वामी मैंने तेरे गुणों को पहचाना नहीं। मैंने अपना यौवन गंवा दिया, पीछे बहुत पछताई।'

'री काली कोयल, तू किस कारण काली हुई? अपने प्रीतम के विरह में जलभुन कर?'

और अब मैं काली हुई जा रही हूं कोयल की तरह। अब तेरे लिए जलती हूं, भूनती हूं, लेकिन ताकत नहीं है; हाथ मरोड़ती हूं। अब कोई शक्ति पास में नहीं है। शक्ति तो व्यर्थ गंवा दी। तेरे गुणों का न पहचाना। तब धन में तुझे देखा। तब पद में तुझे देखा। तब कौड़ियों में तुझे खोजा और हीरे पास पड़े थे और मुझे कोई परख न थी; मेरे पास कोई जौहरी का मन न था, कोई कसौटी न थी।

'री काली कोयल, तू किस कारण काली हुई?—अपने प्रीतम के विरह में जल-भुन कर?।

क्या जो दशा मेरी है वही तेरी है? क्या तू प्यारे को गा-गा कर, पुकार-पुकार कर काली हो गई? क्योंकि मैं तो चली जा रही हूं। आखिरी क्षण आ गए जीवन के। अब तो सिवाय जलने-भूलने के कोई उपाय नहीं रहा। अब तो यही प्रार्थना है, यही पूजा है, यही तपश्चर्या है कि रोऊं, विरह में तड़फूं और दीवानी हो जाऊं।

'काली कोयल तू कित गुण काली। अपने प्रीतम के हउ विरहै जाली।।'

क्या जो दशा मेरी है वही तेरी भी है?

'अपने प्रीतम से विलग हो कर क्या कभी किसी को सुख मिला? उस प्रभु से मिलना उसी की कृपा से होता है।'

'पिरही विहून कतही सुख पाए। जा कोई कृपालु ता प्रभु मिलाए।।'

अपने प्रीतम से विलग हो कर क्या कभी किसी को सुख मिला?

अपने प्रीतम से विलग होने का अर्थ है अपने से ही विलग हो जाना। प्रीतम से मिलने का अर्थ है अपने से ही मिल जाना। प्रीतम तो बहाना है; उसके बहाने हम अपने से मिल जाते हैं। साधारण जीवन में भी जब तुम्हें कभी किसी कि प्रेम का अनुभव होता है तो उस प्रेम में तुम अपने से ही मिलते हो; उस प्रेम में तुम अपने से ही जुड़ जाते हो। प्रेम के माध्यम से तुम अपने को ही पहचान पाते हो। साधारण जीवन में भी यही होता है तो उस असाधारण प्रेम की तो बात क्या कहनी! जब व्यक्ति परम से मिलता है तब उसका सारा का सारा रूप अपने सामने प्रगट होता जाता है।

परमात्मा तो बहाना है; उसके नाम, उसकी याद में अपने को ही खोजना है, अपने से ही मिलना है।

अपने प्रीतम से विलग होकर क्या कभी किसी को सुख मिला?

आनंद का एक ही अर्थ हैः अपने से मिल जाना। अपने से मिलने के मैंने तुमसे दो ढंग कहे। एकः ध्यान। उसमें परमात्मा की कोई जरूरत नहीं; तुम सीधे-सीधे अपने से मिलते हो। एकः प्रेम, उसमें परमात्मा की जरूरत होती है; तुम परमात्मा के बहाने, परमात्मा के माध्यम से अपने से मिलते हो। घटना तो एक ही घटती है—अपने से मिलने की।

ध्यान का रास्ता सूखा-सूखा है, क्योंकि सीधे-सीधे मिलना है, कोई यात्रा नहीं है उसमें। ध्यान के रास्ते पर कोई तीर्थयात्रा नहीं है; सीधा अपने से मिल जाना है; कहीं जाना न आना है; बस आंख बंद करनी है और अपने में डूब जाना है। लेकिन प्रेम के रास्ते पर बड़े तीर्थ हैंः काशी है, काबा है। प्रेम के रास्ते पर बड़े तीर्थ हैं। बड़ी लंबी यात्रा है, मधुर है प्रीतिकर है! बल हो तो करने जैसी है। ऊर्जा हो तो जाने जैसा है। पंख हो तो उड़ने जैसा है।

'उस प्रभु से मिलना लेकिन उसी की कृपा से होता है।'

यह बात सदा याद रखनाः ध्यान तो अपने श्रम से हो सकता है; प्रेम उसकी कृपा से होता है। क्योंकि प्रेम कोई कृत्य नहीं है, प्रेम तो उसके आशीर्वाद की वर्षा है। वह दे तो होता है, न दे तो नहीं होता है। तो तुम क्या करोगे?

'विरह-ज्वर से मेरा अंग-अंग जल रहा है और मैं अपने हाथों को मरोड़ती हूं। प्रीतम से मिलने की लालसा ने मुझे बावली बना दिया है।'

तुम हाथ मरोड़ो। तुम जलो। तुम बावले हो जाओ। बस इतना ही कर सकते हो, और क्या करोगे? तुम रोओ। तुम्हारी आंखें आंसुओं के झरने बन जाएं और तुम्हारे हृदय में सिर्फ उसके ही विरह का कांटा चुभने लगे। अहर्निश उसी की याद तुम्हें सताए। तुम्हारा रोआं-रोआं उसी को पुकारे। और तुम क्या करोगे? करने को कुछ और है भी नहीं।

प्रेम प्रसाद है। जिस क्षण तुम तैयार हो जाओगे; जिस क्षण तुम्हारे भीतर अहंकार पूरा ही विरह में डूब जाएगा; जिस दिन तुम्हारे भीतर तुम्हारा आपा उसके रुदन से बिलकुल धुल जाएगा; तुम्हारे आंसू तुम्हारे आपे को बहा ले जाएंगे; तुम तुम न रहोगे; उसकी याद ही मित्र रह जाएगी; उसकी सुरति, उसका स्मरण ही बस तुम्हारा होना हो जाएगा—उसी क्षण वर्षा हो जाएगी।

प्रभु का मिलन, प्रेम का मिलन तो उसी की कृपा से होता है।

'कुआं यह बहुत दुखदायी है, और वह बेचारी उसमें अकेली जा पड़ी है। न उसकी वहां कोई सहेली है और न बेली।'

यह परमात्मा से निवेदन चल रहा है। यह बातचीत अपने प्रीतम से हो रही है, जिनका कोई पता-ठिकाना नहीं है। यह बातचीत अपने प्रीतम से हो रही है जो कभी मिलेगा, लेकिन जिसका पक्का नहीं है। यहां बड़ी नाजुक बात है।

मैंने एक कहानी पढ़ी है। एक छोटे-से गांव में जर्मनी के—छोटा गांव था—चर्च था गांव का, लेकिन गांव बहुत गरीब था। वर्षों से चर्च भर पुताई भी न हुई थी, और चर्च का घंटा तो सदियों पहले कभी टूट गया था, वह दुबारा नहीं लाया जा सका था। गांव के पंच मिले। उन्होंने कहाः कुछ करना जरूरी है। यह परमात्मा का घर ऐसा अधूरा-अधूरा खंडहर पड़ा रहे, यह शोभा नहीं देता। इसकी लिपाई-पुताई करनी है, व्यवस्था जमानी है और नया घंटा खरीदना है। बिना घंटे के गांव, जिसके चर्च में घंटी न बजती हो, मुर्दा मालूम पड़ता है। अगर तुमने चर्च की घंटियां सुनी हैं सांझ-सुबह, तो तुम समझोगे कि चर्च की घंटियों का नाद गांव को एक जीवन देता है। मंदिर की घंटियों का नाद गांव को एक सुवास देता है दूसरे लोक की।

पैसे इकट्ठे किए गए। गांव बहुत गरीब था। बामुश्किल की पैसे इकट्ठे हुए। बड़ा घंटा खरीदना था। और गांव जो मुखिया था वह घंटा खरीदने भेजा गया। वह गया, जिस गांव में घंटे बनते थे और बिकते थे। एक-एक दुकान पर गया। एक-एक घंटे को बजा कर उसने गौर से सूना; लेकिन कहा कि नहीं यह आवाज नहीं है। सैकड़ों घंटे देख डाले। दुकानदार भी पूछने लगे की तुम भी पागल मालूम पड़ते हो; तुम कौनसी आवाज चाहते हो यह पहले बताओ। तुम नाहक हमारा समय खराब कर रहे हो। जो घंटा तुम सुनते हो, कहते हो आंख बंद करने कि नहीं, यह आवाज नहीं। तुम कौन-सी आवाज चाहते हो?

उसने कहाः यह तो बताना मुश्किल है; क्योंकि उसे मैंने अब तक सुना नहीं है, लेकिन मैं जानता हूं कि मैं पहचान लूंगा। यह जरा समझने की बात है। उसने कहा कि मैंने सुना नहीं है, क्योंकि जब से मैं पैदा हुआ, गांव के चर्च में घंटा नहीं है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि मैं जानता हूं। हालांकि मैंने सुना नहीं है कि मैं कौन-सी आवाज खोज रहा हूं, लेकिन भीतर अंतर हृदय में मुझे पता है कि जब वह आवाज होगी, तत्क्षण मैं पहचान लूंगा कि यह आवाज है।

परमात्मा की खोज ऐसी ही है। तुम उसे कभी मिले नहीं, लेकिन तुम भली-भांति जानते हो कि जब वह मिलेगा, तुम तत्क्षण पहचान लोगे। एक क्षण की देरी न होगी। संदेह भी न उठेगा, प्रश्न भी न उठेगा। उसके पद-चाप पड़ेंगे नहीं तुम्हारे द्वार पर कि तुम पहचान लोगे, हालांकि तुमने कभी उसके पद-चाप सुने नहीं।

और अंततः उसने एक घंटा चुन लिया। बस उस घंटे की आवाज आई, उसने कहा कि बस, ज्यादा बजाने की कोई जरूरत नहीं, जरा-सा स्वाद काफी है। पहचान में आ गया, यही घंटा है। इसकी ही हम तलाश में हैं।

तुम्हें भी कई बार जीवन में ऐसा अनुभव हुआ होगा; न हुआ हो तो थोड़ा जाग कर अनुभव करने की कोशिश करना। बहुत बार ऐसा हुआ होगाः किसी स्त्री को तुमने देखा, देखते ही ऐसा लगा कि यही स्त्री है! इसलिए पहले प्रेम की बड़ी महिमा है। तुम कभी इससे मिले न थे, तुमने इससे देखा न था। कोई कारण न था कि यही स्त्री है। लेकिन अगर तुम्हारा हृदय से कोई तालमेल हो गया, जिस स्त्री की प्रतिमा को तुम हृदय में छिपाए हो उससे इसकी धुन मिल गई—तो तुम पहचान लेते हो। और ऐसी स्त्री मिल जाए तो प्रेम शाश्वत हो जाता है; ऐसा पुरुष मिले जाए तो प्रेम शाश्वत हो जाता है। फिर कोई बदलाहट नहीं है। तुमने अपने मन की स्त्री को खोज लिया! ऐसी स्त्री न मिल पाए तो रोज बेचैनी है, तो रोज हर स्त्री के निकलने में तुम्हें फिर शक होता है कि शायद वह स्त्री आ रही हो जिसकी प्रतीक्षा है।

प्रेम एक बड़ी आंतरिक पहचान है—बिना जाने, बिना पूर्व परिचय के; और हृदय पहचान लेता है। रहस्यपूर्ण है बात, अतर्क्य है; गणित और तर्क से समझाई नहीं जा सकती। लेकिन बहुत बार तुम्हें भी कभी-कभी जीवन में इसका अनुभव हुआ होगाः कभी किसी व्यक्ति के पास आए और सहज भरोसा हो गया; अभी इसका कोई कृत्य नहीं देखा, न इसके व्यवहार से कोई पहचान हुई है—पर, बस हृदय ने पहचान लिया, हृदय ने कहा कि भरोसा करो। अब अगर तुम्हें लूट भी ले तो तुम कहोगे कि लूटने में मेरा कोई हित रहा होगा; क्योंकि वह आदमी तो लूट न सकता था।

'प्यारे, तू अपने मन में मुझसे रूठ गया है; इसमें मेरा ही दोष है, तेरा नहीं।'

वह तो लूट ही न सकता था; वह तो आदमी भरोसे का था। श्रद्धा पूरी थी। लुट भी गए तो भी तुम पाओगे कि लूट जाने में भी तुम्हारा हित है, सौभाग्य है।

गुरु का मिलन ऐसे ही होता है। इसलिए गुरु के मिलने की बहुत झंझट है। तुम किसी को भी समझा न सकोगे कि इस आदमी को तुमने कैसे चुन लिया! इसका व्यवहार देखा, चरित्र का आंकलन किया? इसका अतीत इतिहास देखा? इसके भविष्य की सब संभावनाएं खोजीं? तुमने कैसे इसे चुन लिया? किस कसौटी पर कसा? कौन से तराजू में तोला? तुम कहोगे, कसौटी और तराजू का यहां सवाल ही नहीं है; जो हृदय के तराजू पर तुल गया। तुम अंधे हो जाते हो।

सब प्रेम अंधे हैं; क्योंकि हृदय के देखने के ढंग और हैं। हृदय की आंख और है। बुद्धि से उसका कुछ लेना देना नहीं है। इसलिए तुम न तो कभी दुनिया को समझा पाओगे कि तुम इस स्त्री को प्रेम क्यों किए, इस पुरुष को तुमने क्यों चाहा। न तुम दुनिया को वह कभी समझा पाओगे कि यह गीत तुम्हें क्यों प्रीतिकर लगता है! न तुम दुनिया को समझा पाओगे कि यह गुलाब या यह कमल या यह फूल तुम्हें क्यों प्यारा है! तुम कहोगे बस, पसंद पड़ता है। न तुम दुनिया को कभी समझा पाओगे कि तुमने बुद्ध को क्यों चुन लिया, महावीर को क्यों चुन लिया, कृष्ण को क्यों चुन लिया! तुम कहोगे, यह भी बात कोई समझाने की है, यह निजी है, यह आत्यंतिक है। इसे बाजार में खोलने का सवाल नहीं है। और दुनिया चाहे विपरीत में कुछ भी कहे, तुम्हारा हृदय कहे ही चला जाएगा कि यही है वह जिसकी तुम्हें तलाश थी।

यह चर्चा उससे चल रही है जिससे अभी मिलन नहीं हुआ। यह चर्चा उससे चल रही है जिससे मिलन होने-होने को है। यह चर्चा उस धुन और स्वर से चल रही है जिसका पता भी है और पता नहीं भी है। कह सकते हैं एक अर्थ में कि पहचानते हैं, क्योंकि जब आएगा सामने तो पहचान लेंगे; और कह सकते है दूसरे अर्थ में कि बिलकुल नहीं पहचानते, क्योंकि अभी तो कही कोई मिलना नहीं हुआ, पहचानोगे कैसे?

कुआं यह बहुत दुखदायी है और बेचारी उसमें अकेली जा पड़ी है। न उसकी वहां कोई सहेली है न बेली।

फरीद कह रहे हैंः जरा खयाल तो करो। कुएं में पड़ी हूं, संसार में पड़ी हूं। बड़ा गहरा कुआं है! और बिलकुल अकेली हूं। संगी-साथी भी नहीं है और तुम भी छोड़ बैठे हो और तुम भी रूठ गए। और यह कुआं बड़ा अंधेरा है; इससे निकलने का कोई उपाय भी नहीं सूझता और इसमें होना बिलकुल अकेला है।

जब तक परमात्मा नहीं मिलता तब तक तुम अकेले ही रहोगे। तब तक तुम लाख धोखे दे लो अपने को—कभी पत्नी, कभी पति, कभी मित्र, कभी इसमें-उसमें कि अपने संगी-साथी है, अकेला नहीं है—लेकिन धोखा ही है। जरा गौर करोगे तो पाओगे बिलकुल अकेले हो। तुम अपने कुएं में पड़े हो, तुम्हारी पत्नी अपने कुएं में पड़ी हैः दोनों के कुएं अलग-अलग हैं। पास होंगे, निकट ही होंगे, पड़ोस में ही होंगे—लेकिन दोनों के कुएं अपने-अपने हैं। तुम अपने भीतर पड़े हो—अपनी गहराई, अपने एकांत में; पत्नी अपनी गहराई, अपने एकांत में पड़ी है। एक-दूसरे का साथ दे देते हो, क्योंकि जरूरत है; अन्यथा अकेलापन बहुत भारी हो जाएगा, झेलना असंभव हो जाएगा। एक-दूसरे का हाथ पकड़ लेते हो।

तुमने देखा है? आदमी अंधेरे में चलता है तो सीटी बजाने लगता है, गीत गाने लगता हैः अपनी ही आवाज सुनकर हिम्मत बढ़ती है कि जैसे कोई और भी है! बस सीटी बजा रहे हैं हम। हमारा सब संग-साथ सीटी बजाने जैसा है। हम दूसरे को हिम्मत दे देते हैं, दूसरा हमें हिम्मत दे देता हैः न तो हमारा अकेलापन मिटता, न उसका अकेलापन मिटता

'विधण खूही मुंध अकेली।'

बेचारी अकेली पड़ी है और तुम भी रूठ गए।

'ना कोई साथी ना कोई बेली।।'

न कोई संगी है न कोई साथी है, एकदम अकेलापन है।

'मेरी बड़ी विकट बात है—दोधारी तलवार से भी तेज और पैनी।'

बड़ी विकट राह है, बड़ी बाट है।

दोधारी तलवार से भी तेज और पैनी! उस पर मुझे ही चलना है। कोई संगी-साथी नहीं। शेख फरीद, तैयार हो जा उस मार्ग पर चलने को, अभी समय है।

'खंनिअहु तिखी बहुतु पिईणी। उसु उपरी है मारगु मेरा।'

दोधारी तलवार की तरह है राह। उसके ऊपर चलना है, उसके ऊपर है मेरा मार्ग। इधर गिरो तो खाई; मध्य में सम्हालना है।

इसे थोड़ा समझो। अगर अकेले रह जाओ, संगी-साथी मत बनाओ तो मुसीबत—कुआं। एकांत मालूम पड़ता है। डूबे! कोई सहरा भी नहीं। कोई स्वर भी नहीं जो आवाज दे दे, पुकार दे दे, भरोसा दे दे कि कोई और भी है—एकदम सन्नाटा है। अगर संगी-साथी न बनाओ तो—कुआं। अब संगी-साथी बनाओ तो भीड़-भाड़ हो जाती है; लेकिन भीतर का अकेलापन तो मिटता ही नहीं—तो खाई। दोनों के मध्य में खड़ा होना है। अकेले भी रहना है और अकेले नहीं भी रहना है। इसका मतलब है कि इतना एकांत साध लेना है भीतर कि भीड़ में तो कोई झूठा लगाव न रह जाए; लेकिन अपने एकांत में बिलकुल डूब कर मर भी नहीं जाना है, क्योंकि वह तो आत्महत्या होगी। उस एकांत को ही प्रार्थना बनानी है और परमात्मा से संग जोड़ना है। अकेले होना है ताकि परमात्मा के साथ हो सकें। भीड़ में नहीं होना है,कहीं परमात्मा का साथ और न छूट जाए।

इसलिए मेरी बड़ी विकट बाट है—दोधारी तलवार से भी तेज और पैनी! उस पर ही मुझे चलना है। शेख फरीद, तैयार हो जा उस मार्ग पर चलने को, अभी समय है।

उसु उपरी है मारगु मेरा। सेख फरीदा पंथु सम्हारी सवेरा।।

बड़ा प्यारा वचन है। इसका जो अनुवाद है वह बिलकुल ठीक-ठीक चोट नहीं करता। अनुवाद हैः उस मार्ग पर चलने को तैयार हो जा, फरीद, अभी समय है।

बात तो हो जाती है लेकिन चोट नहीं पड़ती। फरीद का मतलब और गहरा है।

सेखु फरीदा पंथु सम्हारि सवेरा—शेख फरीदा, जिस दिन पंथ को सम्हाल लिया, उस दिन सवेरा है। माना की बहुत समय जा चुका। माना, मैंने अपना यौवन गंवा दिया, अब पीछे बहुत पछताई।

लेकिन जिस दिन भी तुम जाग गए, उसी दिन सवेरा है। कितना ही गंवाया हो तो भी परमात्मा कुछ ऐसा है कि तुम गंवा नहीं सकते। कितनी ही देर लगाई हो तो भी परमात्मा कुछ ऐसा है कि देर आत्यंतिक नहीं हो सकती।

कहावत हैः सुबह का भूला सांझ घर लौट आए तो भूला नहीं समझा जाता। अगर अंत-अंत तक भी उसका स्मरण आ गया और उसका स्मरण ही सब कुछ प्राणों का प्राण बन गया तो कोई फिक्र मत कर।

सखु फरीदा पंथु सम्हारी सवेरा।

अब तू डर मत। माना कि सवेरा निकले बहुत देर हो गई, धूप भी चढ़ गई, सूरज भी उतर गया, सांझ करीब आ रही है; पर मत घबड़ा।

सखु फरीदा पंथु सम्हारी सवेरा।

अगर अभी भी तू पैर रख दे अपनी यात्रा पर तो अभी भी सवेरा हो सकता है! अभी भी समय है। कभी भी समय गंवाया नहीं है। बड़ी दुविधा की बात हैः देर भी बहुत हो गई है। अगर उसकी तरफ देखें तो अभी भी सवेरा है। अगर अपनी सामर्थ्य की तरफ देखें तो सब चुक गया, यौवन खो बैठे। अब पछतावा ही पछतावा है। अगर उसकी करुणा की तरफ देखें, अभी भी रास्ते पर आ जाएं तो अभी सवेरा हो सकता है। अपनी तरफ देखने से तो हम चुक गए हैं; उसकी तरफ देखने से कुछ भी बिगड़ा नहीं है। क्योंकि हमारे लिए समय की सीमा है; उसके लिए समय की कोई सीमा नहीं। हमारा समय तो बंधा है; उसका समय तो अनबंधा है।

भक्त दोनों तरफ देखता है—अपनी तरफ देखता है तो रोता है कि रोने के सिवाय कुछ उपाय नहीं है अब; उसकी तरफ देखता है तो हंसता है। कहता हैः तेरे लिए तो सब उपाय हैं। और तेरे ही द्वारा तो होने वाला है; हमारे द्वारा तो होना भी न था। युवा भी होते, यौवन भी होता तो भी हमारे द्वारा तो तू मिलने वाला न था। मिलना तो तेरी कृपा से है।

'वह दिन पहले ही लिख दिया गया था जिस दिन धनवंती का ब्याह होना था।'

शेख फरीद बड़ी प्यारी बातें कर रहा है।

'जिस दूल्हे के बारे में सुन रखा था, वह अपना मुखड़ा दिखाने आ पहुंचा है। हड्डियों का खड़खड़ा कर वह उस बेचारी धनवंती को अपने साथ ले जाएगा। अपनी जीवात्मा को तू समझा दे कि जो घड़ी नियत हो चुकी है उसे बदला नहीं जा सकता। जीवात्म दुलहन है और मृत्यु दूल्हा है; वह उसे ब्याह कर अपने साथ ले जाएगा। विदा होते समय वह बेचारी किसके गले में अपनी बांहें डालेगी? क्या तुमने सुना नहीं कि वह दुलहन बाल से भी अधिक महान है? फरीद जब तेरा बुलावा आए, उठ कर खड़े हो जाना; और अपने-आप को धोखा न देना।'

जीवन दो ढंग से समाप्त हो सकता है। एकः मरना तो हो जाए, अमृत का उदय न हो। एकः इधर मृत्यु घटे उधर अमृत की शुरुआत हो जाए। मृत्यु के पार दो तरह के दूल्हा तुम्हारी प्रतीक्षा करते हैं। दो घोड़ों पर अलग-अलग सवार। एक तो मृत्यु है, वह भी दूल्हे की तरह आती है। अगर जीवन तुमने गंवा दिया हो तो मृत्यु ही आती है। और दूसरा परमात्मा है। अगर जीवन तुमने सम्हाला हो—एक गीत की तरह, संगीत की तरह—तो परमात्मा आता है। मृत्यु के द्वार पर या तो तुम्हारा मृत्यु से मिलना होता है या महाजीवन से।

फरीद कहता हैः जितु दिहाड़ै धनवरी साहे लए लिखाइ।

वह दिन पहले ही लिख दिया गया था। मौत का दिन तो पहले ही से तय था। वह तो जिस दिन पैदा हुए उस दिन लिख दिया गया था।

जिस दूल्हे के बारे में सुन रखा था, वह मुखड़ा दिखाने आ पहुंचा है। अब मौत करीब आ रही है।

साधारणतः करोड़ में एक को छोड़कर बाकी का विवाह तो मौत से ही होता है। वह दूल्हा आ गया है, द्वार पर खड़ा है।

हड्डियों को खड़खड़ा कर वह बेचारी धनवंती को अपने साथ ले जाएगा। अपनी जीवात्मा को तू समझा दे फरीद कि जो घड़ी नियत हो चुकी है, उसे बदला नहीं जा सकता।

भाग्य का अर्थ यही है कि जीवन जैसा है उसे स्वीकार कर लो; क्योंकि उससे लड़ने में तुम्हारा समय ही व्यर्थ व्यतीत हो जाएगा। जीवन जैसा है, स्वीकार कर लो। उसे इतनी परिपूर्णता से स्वीकार कर लो कि उससे संघर्ष में जरा भी शक्ति व्यय न हो। और तब तुम अचानक पाओगे; जो शक्ति लड़ने में लग जाती थी, संघर्ष में खो जाती थी, वही शक्ति लहर बन गई समर्पण की, वह तुम्हें ले चली।

मौत से तुम अगर लड़ो तो बस मौत ही पाओगे। अगर मौत के साथ जाने को राजी हो जाओ, तुम अमृत को उपलब्ध हो जाओगे। इतना-सा ही फर्क बहुत बड़ा भी है। मौत से जो लड़ने लगा वह मरेगा। वह भी मरेगा जो मौत का मुखड़ा बदल जाता है; तब उसके लिए मौत नहीं है, अमृत का दूल्हा आया है। और जो लड़ा, उसके लिए मौत ही है केवल। तुम्हारे लड़ने के कारण ही परमात्मा मृत्यु जैसा दिखाई पड़ता है। तुम्हारे समर्पण की संभावना हो तो मृत्यु परमात्मा हो जाती है।

'जितु दिहाड़ै धनवरी साहे लए लिखाइ। मलकु जिकंनी सुणीदा मुहु देखाले आइ।। जिंदु निमाणी कढीए हडा कूं कड़काइ। साहे लिखे न चलनी जिंदु कूं समझाइ।।'

समझा दे अपनी आत्मा को कि जो घड़ी नियत हो चुगी, उसे बदला नहीं जा सकता, इसलिए बदलने की आकांक्षा मत कर

'जीवात्मा दुलहन है और मृत्यु है दूल्हा; वह उसे विवाह कर अपने साथ ले जाएगा।'

'जिंदु बहूटी मरणु बरु लैजासी परणाइ। आपण हथी जोलिकै कै गलि लगे धाइ।।'

और ध्यान रख, मरते समय जब तू विदा होगा, तू इतना अकेला होगा कि किसी के कंधे पर हाथ रख कर रोने और विदा लेने की भी सुविधा न होगी।

विदा होते समय यह बेचारी किसके गले में बांहें डालेगी? क्या तुमने सुना नहीं कि वह दुलहन बाल से भी अधिक महीन है।

और वह जो भीतर की आत्मा है, इतनी महीन है, बाल से भी अधिक महीन है; इतनी सूक्ष्म है कि किन्हीं स्थूल कंधों पर हाथ रख भी नहीं सकती। उसके लिए तो सिर्फ एक ही कंधा काम आ सकता है, वह परमात्मा का है। सूक्ष्म के लिए सूक्ष्म का ही कंधा काम आ सकता है। इस शरीर के लिए सहारा लेना हो तो किसी शरीर का सहारा लिया जा सकता है। इस आत्मा का सहारा खोजना हो तो बस आत्मा का ही सहारा खोजा जा सकता है।

फरीद, जब तेरा बुलावा आए तो तू उठ कर खड़ा हो जाना।

'बालहु निकी पुरसलात, कंनी न सुनीआइ। फरीदा किड़ी पवंदई खड़ा न आपु मुहाइ।।'

जब तेरा बुलावा आए तो तू उठ कर खड़ा हो जाना। घसीट कर ले जाना पसंद मत करना। मौत छीना-झपटी करके ले जाए, यह भी कोई बात हुई? यह भी कोई इज्जत की बात हुई? ऐसी प्रतिष्ठा मत गंवाना। फरीदा जब तेरा बुलावा आए, उठ कर खड़े हो जाना। मौत मुझे तैयार पाए। अगर मौत ने तुझे तैयार पाया तो तूने मौत को असफल कर दिया। अगर मौत को तुझे घसीटना पड़ा, जबरदस्ती करनी पड़ी तो मौत जीत गई, तू हार गया। फरीद, उठ कर खड़ा हो जाना; और अपने-आप को धोखा न देना। क्योंकि उस वक्त अगर तुमने अपने-आप को धोखा दिया, एक मौका फिर खो गया। फिर एक जन्त होगा। फिर एक लंबी यात्रा होगी। फिर वही घड़ी वर्षों बाद आएगी। तो, मौत की घड़ी को चूक मत जाना, जीवन की घड़ी को तो चूक गया। यौवन जा चुका; वह तो गफलत में बीत गया दिन। अब और एक अवसर है जागने का; उसको मत चूक जाना। उस समय अपने-आप को धोखा न देना।

क्या है धोखा देना? मौत जब आती है तो धोखा यह है कि तुम सोचते हो, शायद इससे बचा जा सकता है। बस, बचने की कोशिश में लग जाते हो—घसीटे जाते हो। बचने की कोशिश ही मत करना। मन को कह देना जो नियत हो गया हो गया और जब दूल्हा आ गया तो आ गया। अब विदा लेनी है। तैयार हो जाना। उठ कर खड़े हो जाना। पीछे लौट कर भी मत देखना। इस किनारे की बात ही मत उठाना। मौत झेंप जाए तुम्हारी तैयारी देख कर, मौत संकोच करने लगे कि तुम इतने तत्पर हो जाने को, तो मौत हार जाती है।

अपने को धोखा देने की कोशिश मत करना। जिंदगी भर तो चीजों को पकड़ा, मरते वक्त फिर मत पकड़ लेना। जिंदगी भर सहारे पकड़े, संबंध पकड़े; अब मरते वक्त फिर मत पकड़ लेना, अन्यथा फिर एक अवसर खो जाएगा। उस वक्त तो सब छोड़ ही देना। जिंदगी भर पकड़ पर ध्यान रखा, मरते वक्त त्याग को उपलब्ध हो जाना। लेकिन यह तभी संभव है जब जीवन भर तुमने धीरे-धीरे साधा हो।

तुम यह मत समझना फरीद की वाणी से कि चलो ठीक हुआ, मरते वक्त देखेंगे। तब तो तुम चुक जाओगे। क्योंकि मरने की कोई घड़ी कल थोड़े ही है, अभी है इसी क्षण है। अभी मौत आ सकती है। तैयार रहो। कल के लिए मत टालना, क्योंकि मौत जब भी आती है अभी जाती है, कल कभी नहीं। तुमने कभी किसी को कल मरते देखा? लोग आज मरते हैं जब भी मरते हैं। हां कल जी सकते हैं, कल की कल्पना में जी सकते हैं; लेकिन कल मर नहीं सकते हैं, मरेंगे तो अभी। मृत्यु सदा अभी घटती है, आज घटती है।

फरीदा, जब जब तेरा बुलावा आए तो उठ कर खड़े हो जाना और अपने-आप को धोखा न देना।

जिसने अपने को धोखा न दिया, उसे मौत हरा नहीं पाती। जो सजग रहा, प्रवंचना से मुक्त रहा, होश को सम्हाले रहा, और जिसने स्वीकार किया बेशर्त भाव से—परमात्मा जो भी करे; मौत तो मौत, जीवन तो जीवन—जिसने अपनी मर्जी के अनुसार जीवन और मौत को चलाना न चाहा, बल्कि जो उस विराट की मर्जी से चल गया,बहने लगा उसके साथ—वह अमृत को उपलब्ध हो जाती है।

आज इतना ही।

प्रश्न सार

पश्चिम का मृत्यु पर बहुत अन्वेषण क्या धर्म की खोज है?

धर्मग्रथों में प्रार्थनाएं मांग जैसी क्यों हैं? क्या प्रकाश और
प्रज्ञा की प्रार्थना भी मांग है?

परमात्मा के प्रति प्रेमानुभूति से भरना क्या उन्नत और श्रेष्ठ
आत्मा की संभावना है?

अंधविश्वास और शोषण पर खड़े मंदिरों और धर्माचार्यों के
चरणों में झुकना क्या उचित है?

धर्म समर्पण है

पहला प्रश्नः कल के प्रवचन में आपने मृत्यु की विशद चर्चा
की। पश्चिम में अभी मृत्यु पर बहुत अन्वेषण होता है और चर्चा
भी। क्या यह अनजाने ही धर्म खोज है?

धर्म की खोज नहीं, धर्म से बचने की खोज है। मृत्यु के
संबंध में आदमी के दो उपाय रहे हैं। एक उपाय हैः मृत्यु को
स्वीकार कर लेना, मृत्यु के तथ्य को परिपूर्ण भाव से अंगीकार
कर लेना। उस भांति धर्म की क्रांति घटित होती है। क्योंकि जो
मरने को राजी है, मृत्यु उसके सामने असफल हो जाती है। जो
मरने को सहज तत्पर है, उसके लिए मृत्यु ही अमृत हो जाती है।

एक दूसरी राह रही है—मृत्यु को पराजित करने कीः कुछ
उपाय खोजना है कि आदमी न मरे; कुछ ऐसा करना है कि
आदमी सदा-सदा के लिए बच जाए; देह नष्ट न हो, अंत न
आए।
पश्चिम में जो मृत्यु की चर्चा चलती है, कि कैसे मृत्यु को
पीछे हटाया जाए; कैसे मृत्यु से बचा जाए; हम कैसे वैज्ञानिक
उपाय खोज लें कि आदमी मरे न। यदि किसी दिन ऐसा हो जाए
कि आदमी न मरे तो अधर्म जीत जाएगा, धर्म हार जाएगा।
क्योंकि जैसे ही मृत्यु की बात समाप्त हो गई, मोक्ष की बात भी
समाप्त हो गई। जैसे ही मृत्यु को जीत लिया गया, वैसे ही
परमात्मा शेष ही न रहा।
मनुष्य के जीवन में मुक्ति की धारणा पैदा होती है मृत्यु के
कारण; जीवन को बदलने की आकांक्षा जगती है मृत्यु के
कारण। यह जीवन तो चला जाएगा। इसलिए जो समझदार हैं वे
इसी जीवन को जीवन मानने को राजी नहीं हो पाते। जो चला ही
जाएगा वह जीवन नहीं है। इसलिए शाश्वत की खोज होती है।
मृत्यु के कारण ही शाश्वत की खोज होती है। थोड़ी देर को तुम
सोचो, कि मृत्यु न हो तो तुम शाश्वत की खोज किसलिए
करोगे? तुम स्वयं ही शाश्वत हो। मृत्यु न हो तो मोक्ष का प्रश्न
कहां है? मुक्त होने की बात ही व्यर्थ है। और मृत्यु न हो तो धर्म
तत्क्षण विदा हो जा जाएगा। पशुओं-पक्षियों में धर्म नहीं है,
क्योंकि उन्हें अपनी मृत्यु का पता नहीं है। मनुष्य में भी धर्म शून्य
हो जाएगा अगर यह पक्का हो जाए कि मृत्यु नहीं होने वाली है।
इसे ठीक से समझना। तुम्हारे जीवन में मृत्यु का बोध जितना
प्रगाढ़ और स्पष्ट हो जाएगा उतने ही तुम्हारे पैर परमात्मा की
तरफ बढ़ने शुरू हो जाएंगे। अगर तुम्हें ऐसा लगने लगे की मृत्यु
किसी भी क्षण घटित हो सकती है, जो कि सच है, आनेवाला
क्षण हो सकता है मृत्यु का क्षण हो; हो सकता है जो श्वास
बाहर जाती है फिर भीतर न आए—तो इसी क्षण तुम्हारा जीवन
दूसरा हो जाएगा; तुम्हारे जीवन का अर्थ, आयाम, सब बदल
जाएगा; तुम वहीं न कर सकोगे जो एक क्षण पहले तक कर रहे
थे। मृत्यु की घटना सब बदल देगी।
मैंने सुना है, एक युवक एक संत के पास आता था। एक ही
प्रश्न बार-बार पूछता था। प्रश्न यह था कि मैंने तुम्हें सब तरफ
से देखा और परखा, वर्षों से तुम्हारी पहचान की; कहीं कोई भूल
नहीं दिखाई पड़ती। तुम्हारा जीवन ऐसा निर्मल है, तुम्हारे जीवन
की धारा ऐसी निर्दोष है कि कहीं कोई मलिनता नहीं दिखाई
पड़ती। इस पर मुझे भरोसा नहीं आता कि आदमी इतना शुद्ध

कैसे हो सकता है! मैं भी आदमी हूं, और भी आदमी हैं; तुम विश्वास के योग्य मालूम नहीं पड़ते। लगता है, एक सपना हो। हो नहीं सकते। और अगर हो तो मेरी खोज में कहीं कमी रह गई है; भूल-चूक कहीं छिपी होगी। आदमी मात्र में भूल-चूक है। मैं खोज न पाया होऊंगा। तुमने इस भांति ढांका होगा पर्त-दर-पर्त कि मैं उघाड़ न पाता होऊंगा। मेरी खोजने की सामर्थ्य तुम्हारी छिपाने की सामर्थ्य से कम होगी ऐसा संदेह मन में होता है।

संत सुनता रहा। लेकिन यह बार-बार उठाया गया था सवाल तो एक दिन संत ने कहाः अब जवाब दे देना जरूरी है। तेरा हाथ देखना चाहता हूं।

युवक कुछ समझा नहीं कि हाथ देखने से मेरे प्रश्न का क्या संबंध होगा? हाथ संत ने देखा और कहा कि कहना तो नहीं चाहिए, लेकिन सत्य को छिपाना उचित नहीं है। कल सुबह सूरज उगने के साथ ही तेरा अंत हो जाएगा। इधर सूरज उगेगा, उधर तेरा सूरज डूब जाएगा। तेरी मौत की घड़ी करीब आ गई है। तेरी उम्र की रेखा कट गई है। कई दफे तेरे हाथ पर नजर गई, लेकिन मैं सोचता था, अभी तो देर है; अभी क्यों मरने के पहले मार देना! लेकिन अब देर नहीं है। यह आखिरी मिलन है। कल सुबह के बाद तो फिर तू मिल न पाएगा मुझे। अब मैं निश्चिंत हुआ। यह तुझसे कह दिया, मेरा बोझ हलका हो गया। अब तू पूछ, क्या पूछना है।

वह जो प्रश्न सदा से युवक ने पूछा था, भूल गया। जब अपनी मौत आ गई हो तो किस में दोष हैं, किस में दोष नहीं हैं—किसको प्रयोजन है? यह तो सुविधा के समय की बातचीत है। वह उठ कर खड़ा हो गया। उसने कहा कि अभी मुझे कोई प्रश्न नहीं सूझता। मुझे अब घर जाने दें। संत ने कहाः रुको भी। इतनी जल्दी क्या है? कल सुबह को अभी काफी देर है। अभी तो दिन पड़ा है, रात पड़ी है—चौबीस घंटे लगेंगे। इतनी घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है।

उस युवक ने कहाः बातचीत बंद करो। मेरी मौत आ गई है, तुम्हें यहां बैठ कर बकवास करने की पड़ी है।

संत ने कहाः लेकिन, भई तुम सदा एक प्रश्न पूछते थे; फिर कभी न पूछ पाओगे, क्योंकि कल सुबह तुम विदा हो जाओगे। आज मैं उसका उत्तर देने को तैयार हूं।

उस युवक ने कहाः रखो अपना उत्तर अपने पास। मुझे घर जाने दो, मुझे पकड़ो मत।

उसके हाथ-पैर कंप रहे हैं। अभी आया था बल से भरा।

अभी पैर रखता था तो ताकत थी। सब शक्ति खो गई। कहीं कुछ बदलाहट नहीं हुई है, सब वैसा का वैसा है। कोई बीमार नहीं हो गया है अचानक; लेकिन स्वास्थ्य खो गया। बीमारी जो नहीं आयी, स्वास्थ्य जा चुका। उतरा। आया था, तब सीढ़ियों पर चलने में एक नृत्य था, जवानी थी। लौटता था तो सीढ़ीयों के पास की दीवाल का सहारा लेकर उतरने लगा। आंख पर धुंध छा गई। पैर कंपने लगे।

फकीर ने कहाः ऐसी क्या बात है? अभी आए थे तब भले-चंगे थे, अब इतने क्या परेशान हो रहे हो? ऐसा क्या दीवाल पकड़ रहे हो? जवान आदमी हो!

लेकिन अब उसे कुछ सुनाई न पड़ाः कान जैसे बहरे हो गए; आंखें जैसे अंधी हो गइं।

सारी इंद्रियों का खेल है जब तक जीवन है। जब जीवन ही जाता हो तो सब इंद्रियां उदास हो गइं। वह घर जा कर बिस्तर से लग गया। घर के लोगों ने कहाः क्या हुआ है आज? कोई बीमारी हो गई है, कोई दुख, कोई पीड़ा, कोई चिंता?

उस युवक ने कहा कि न कोई चिंता है, न कोई बीमारी है, न कोई दुख है; लेकिन सब गया। चिंता भी नहीं है। चिंता भी क्या करनी है? एकदम शून्य हो गया हूं। सब डगमगा गया है। भीतर एक कंपकंपी है। मरना है कल सुबह। फकीर ने कहा हैः उम्र की रेखा कट गई है।

बार-बार अपना हाथ देखता है, रेखा देखता है। घर के लोग रोने-पीटने लगे। मोहल्ले-पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गए। दूसरे दिन सुबह सूरज उगने के पहले वह युवक बुझी-बुझी हालत में था—अब गया; तब गया; जैसे दिया आखिरी टिमटिमाहट लेता है। तभी फकीर ने द्वार पर दस्तक दिया। पत्नी रो रही , बाप रो रहा था, मां रो रही थी, बच्चे रो रहे थे, मोहल्ला इकट्ठा था। फकीर ने कहाः रोओ मत। मुझे भीतर आने दो। चुप हो जाओ। उस युवक को हिलायाः आंख खोल। उसने आंख खोली, लेकिन पहचान नहीं सका कि कौन खड़ा है। प्रत्यभिज्ञा नष्ट हो गई। फकीर ने कहाः तेरे सवाल का जवाब देने आया हूं।

उस युवक ने कहाः बंद भी करो। सवाल का जवाब मांगता कौन है?

उस फकीर ने कहाः लेकिन जो मैंने यह तेरे हाथ के रेखा की बात कही है, यह तेरे सवाल का जवाब है। अभी तेरी मौत आई नहीं है। मैं तुझसे यह पूछता हूं कि इन चौबीस घंटों में तूने कोई पाप किया?

'सवाल का उत्तर है?' युवक उठ कर बैठ गया—'तो मौत

नहीं आ रही है?'

फकीर ने कहा : यह सिर्फ मजाक था; सिर्फ यह बताने को कि अगर मौत आती हो तो आदमी के जीवन से पाप खो जाता है। चौबीस घंटे में कोई पाप किया? किसी को दुख पहुंचाया

उस युवक ने कहा : दुख की बात करते हैं; दुश्मनों से क्षमा मांग ली। सिवाय प्रार्थना के इन चौबीस घंटों में कुछ भी नहीं किया है।

फकीर ने कहा कि मेरे जीवन में भी जो तुझे पवित्रता दिखाई पड़ती है, वह मौत के बोध के कारण है। तुझे चौबीस घंटे बाद मौत दिखाई पड़ती है, मुझे चौबीस साल बाद दिखाई पड़ती है—इससे क्या फर्क पड़ता है? मौत है! मौत का होना काफी है। वह सत्तर दिन बाद आएगी कि सत्तर साल बाद आएगी—इससे क्या... ? यह तो ब्योरे की बात है। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता; आ रही है! जो आ रही है वह आ ही गई है। उसने मेरे जीवन को बदल दिया है।

मृत्यु का बोध जीवन को रूपांतरित करता है; जीवन को पुण्य की गरिमा से भरता है; जीवन को पवित्रता की सुवास से भरता है; जीवन को पंख देता है परलोक जाने के; परलोक की अभीप्सा देता है; परमात्मा की आकांक्षा जगाता है।

लेकिन पश्चिम में जो खोज चलती है मृत्यु की, वह धर्म की खोज नहीं है; वह धर्म से बचने की खोज है : कैसे हम मृत्यु को जीत लें; कैसे आदमी को लंबाया जा सके? अगर हृदय टूट जाता है तो प्लास्टिक का हृदय कैसे लगाया जा सके जो कभी न टूटे, या कभी बिगड़ भी जाए तो दूसरा प्लास्टिक का हृदय पेट्रोल पंप से लाया जा सके। कभी कुछ गड़बड़ हो जाए तो शरीर को गैरेज में जा कर खड़ा कर दिया—नट बोल्ट की बात रह जाए, तकनीकी हो जाए जीवन। हड्डी टूट जाती है; वह स्टील की हो सकती है कल। खून खराब हो जाता है; वह पूरा का पूरा बदला जा सकता है। खून की जरूरत क्या है? रासायनिक द्रव्य उसकी जगह बह सकते हैं जो ज्यादा शुद्ध होंगे। शरीर को इस भांति कर लेना है कि वह यंत्रमात्र हो जाए, तो फिर उसमें पुर्जे बिगड़ते जाए, बदलते जाओ, और अंतकाल तक शरीर को चलाते रहो : वह कभी बूढ़ा न हो, वह कभी जराजीर्ण न हो।

तुम थोड़ी देर सोचो; यह जो आकांक्षा है मृत्यु को जीत लेने की, यह जो जीवन के सामने सबसे बड़ा संघर्ष है यह युद्ध वाले मन की आकांक्षा है। पहले विज्ञान ने प्रकृति को जीतना चाहा, अब प्रकृति पर जीत काफी दूर तक हो गई है; अब वह परमात्मा को भी जीत लेना चाहता है। फिर कोई मंदिर न होगा, न कोई

प्रार्थना होगी, न ध्यान का कोई सवाल होगा। तुम जीते रहोगे; यद्यपि जीवन जैसा सब कुछ विदा हो जाएगा, क्योंकि यंत्र का क्या जीवन?

तुम थोड़ी देर को सोचो; तुम्हारे भीतर सब कल-पुर्जे चल रहे है— क्या जीवन होगा तुम्हारा? तुम्हारी क्या आत्मा होगी? आत्मा तुम्हारी निजता में है, तुम्हारी व्यक्तित्व में है, तुम्हारे अनूठेपन में है, तुम्हारी अद्वितीयता में है। यंत्र तो यंत्र ही होंगे; उनमें तुम्हारी कोई अद्वितीयता न रह जाएगी।

विज्ञान मृत्यु के संबंध में सोचता है—मृत्यु को जीतने को। धर्म मृत्यु के संबंध में सोचता है—मृत्यु को स्वीकार करने को। इनमें क्रांतिकारी फर्क है। धर्म कहता है: जो है उसे स्वीकार कर लो। उससे लड़ना व्यर्थ है। अंश अंशी से लड़ेगा जो कैसे जीतेगा? खंड अखंड से लड़ेगा तो हार निश्चित है। और लड़ने में जो समय गया, शक्ति गई, वही समय और शक्ति तो जीवन के आनंद को भोगने में व्यतीत हो सकता था। तुम लड़ो ही मत, बहो।

धर्म कहता है: समर्पण। विज्ञान कहता है: संघर्ष! मृत्यु के संबंध में भी दो ही दृष्टिकोण हैं—या तो संघर्ष या समर्पण। समर्पण ही द्वार है। अगर तुमने समर्पण किया तो मृत्यु जीत ली जाती है—बड़े गहरे अर्थों में। शरीर की मृत्यु नहीं जीती जाती, लेकिन आत्मा की मृत्यु जीत ली जाती है। शरीर तो मरेगा, मरना ही चाहिए; क्योंकि जीवन नित-नूतन होता है। पुराने ही वृक्ष खड़े रहें तो नए वृक्षों के जन्म का उपाय न रह जाएगा। पुराने ही फूल पौधों पर लगे रहे तो नए फूल कहां अंकुरित होंगे, कैसे अंकुरित होंगे? पुराना ही बना रहे तो नए का आना बंद हो जाएगा। बूढ़े ही बच्चे रहे तो बच्चों का प्रवाह, बच्चों की धारा अवरुद्ध हो जाएगी। जीवन तो नित नया होता है। तुम जीवन के प्रति मोहग्रस्त मत बनो। यह आग्रह मत करो कि मैं इसी ढंग से बना रहूं जैसा हूं। तुम परमात्मा को मौका दो कि वह तुम्हें नित नया करता जाए।

मृत्यु तुम्हें नए करने की कोशिश है। मृत्यु दुश्मन नहीं है; मृत्यु मित्र है। मृत्यु तो तुम्हें बदलने का उपाय है। मृत्यु तुम्हें सतत प्रवाह में रखने का मार्ग है। तुम तो चाहोगे कि जड़ हो जाओ, बर्फ की तरह जम जाओ; मृत्यु तुम्हें पिघलाए जाती है, जलधारा की तरह बहाए जाती है। मृत्यु साथी है। वह जीवन का दूसरा पैर है। जैसे पक्षी के दो पंख हैं, ऐसा जन्म और मृत्यु तुम्हारे दो पंख हैं। उन दोनों से ही तुम जीवन के आकाश में उड़ते हो। उनमें से एक पंख तुमने काट दिया तो ध्यान रखना,

दूसरा पंख काम न आएगा।
जिस दिन मनुष्य मृत्यु को जीत लेगा—जीत नहीं सकता, यह मैं जानता हूं; यह सिर्फ मैं परिकल्पना की बात कह रहा हूं विज्ञान की—यदि मनुष्य मृत्यु को जीत लेगा, उसी दिन जीवन व्यर्थ हो जाएगा; उसी दिन जीवन में कोई सार न रह जाएगा। जिस दिन मनुष्य मृत्यु को जीत लेगा, उसी दिन तुम प्रार्थना करने लग पड़ोगे कि कैसे मरें; परमात्मा मृत्यु दे! क्योंकि तुम अटके रह जाओगे। तुम लंबे जीओगे लेकिन तुम प्लास्टिक के हो जाओगे। तुम लंबे जीओगे, तुम्हारा हृदय धड़कता ही रहेगा, लेकिन वह लोहे का हृदय होगा, आदमी का नहीं। उसमें से परमात्मा का हाथ अलग हो जाएगा; उसमें आदमी का हाथ समाविष्ट हो जाएगा। तब तुम एक यंत्रवत हो रहोगे।
लेकिन, अगर तुम जीवन को ठीक से समझो तो तुम समझोगे कि मृत्यु अनिवार्य है। वह कोई दुर्घटना नहीं है। मृत्यु कोई दुर्घटना नहीं है, मृत्यु जीवन का अनिवार्य अंग है; अत्यंत अपरिहार्य है; होनी ही चाहिए। आवश्यक है ताकि तुम्हारी देह बदल सके, तुम्हारे जराजीर्ण वस्त्रों को तुम छोड़ दो, नए वस्त्र पहन लो।
विज्ञान की चेष्टा, ऐसी है जैसे भिखमंगे की चेष्टा है; उसके पास फटे-पुराने कपड़े हैं, चीथड़े है, वह उन्हीं में थेगड़े लगाए जाता है, मगर छोड़ता नहीं है: भिखमंगा है, उसे भरोसा भी नहीं है कि दूसरे वस्त्र मिल सकते हैं। सम्राट अपने वस्त्रों पर थेगड़े नहीं लगाता; वस्त्र इसके पहले कि पुराने हों छोड़ देता है, नए वस्त्र उपलब्ध हो जाते हैं।
धर्म का ढंग सम्राट का ढंग है। क्या थेगड़े लगाना है उसी शरीर पर? दूसरा मिलेगा। जहां से पहला आया है वहां से दूसरे के आने में क्या अड़चन है? जिसने तुम्हें इस बार जीवन दिया है वह तुम्हें दुबारा न देगा—ऐसा संदेह तुम्हें कैसे होता है, क्यों होता है? अगर एक बार जीवन का चमत्कार घट सकता है तो हजार बार क्यों नहीं घट सकता? जो बात एक बार हो सकती है वह करोड़ बार हों सकती है। तुमने एक बार जीवन को जाना, वसंत को जाना—पतझड़ को भी जानो! हर पतझड़ के बाद फिर वसंत आ जाएगा। तुमने जीवन की मुस्कुराहट जानी, जीवन का रुदन भी जानो। हर आंसुओं के बाद आंखें फिर स्वच्छ और ताजी हो जाएंगी। जो वृक्ष के फूल आज गिर रहे हैं पतझड़ में वृक्ष के पत्ते, चुपचाप दबते जाते हैं मिट्टी में: वे फिर उगेंगे। वस्तुतः जमीन में वे जा कहां रहे हैं? जड़ों के पास पहुंच रहे हैं: जमीन में घुलेंगे-मिलेंगे, फिर नई जड़ों से प्रवाहित होंगे, फिर

उठेंगे आकाश में, फिर खिलेंगे।
डरो मत! सूखे पत्ते की तरह कंपो मत। घबड़ाओ मत।
चुपचाप सो जाओ गहन निद्रा में। उतर जाओ जड़ों के पास।
जिसने तुम्हें एक बार उठाया था आकाश में, वह तुम्हें अनंत बार उठा सकेगा।
कमजोर आदमी, भिखमंगा आदमी, भयग्रस्त है। उसकी आस्था नहीं है। वह कहता है: इस बार तो किसी तरह हो गए—हालांकि उसे पता नहीं कि कैसे हो गए—इस बार तो किसी तरह हो गए; अब आगे कैसे होंगे, इसलिए पकड़े रहो! सूखा पत्ता वृक्ष को पकड़ने की कोशिश में रहा है। वह कहता है: मैं लगा ही रहूं, चाहे धागे से भी दिया जाऊं, चाहे सुख जाऊं, सड़ जाऊं मगर अटका रहूं वृक्ष से।
तुम सोचो: अगर सूखे पत्ते को वैज्ञानिक किसी तरह अटका दे तो सूखे पत्ते के हित में हुआ या अहित में हुआ? उसके नए होने का उपाय नहीं रहेगा। अब वह जमीन में वापस न सो सकेगा। और इतने दिन तक आकाश में खड़े रहने के बाद, हवाओं से जूझने बाद विश्राम भी चाहिए। वह भूमि में खो जाए, कुछ देर गहरी नींद ले ले, फिर से ताजा और नया हो जाए—फिर सुबह होगी!
तुम उस भिखमंगे की तरह मत बनो जो सोचता है, अगर ये वस्त्र खो गए तो फिर कोई वस्त्र मिल नहीं सकते; ये वस्त्र आखिरी नियति मालूम होते हैं, इन्हीं पर थेगड़े लगाए जाओ; गंदे और जराजीर्ण होते चले जाओ—लेकिन पकड़े रहो!
सम्राट उतार देता है वस्त्रों को, दूसरे पहन लेता है।
धर्म का ढंग सम्राट का ढंग है धर्म इतना ही सिखाता है कि तुम्हारा शरीर ज्यादा से ज्यादा वस्त्रों की भांति है; उसे छोड़ने में घबड़ाना मत। तुम तुम्हारा शरीर नहीं हो। तुम तो वही शाश्वत स्वर हो जो अनंत शरीरों में आया और गया, जिसने बहुत पतझड़ देखे और बहुत बसंत। तुम न तो पतझड़ हो, न बसंत हो। तुम न तो सुखा पत्ता हो, न हरे पत्ते हो। तुम तो वह जीवन हो जो हरे पत्ते को हरा करता है। तुम तो वह जीवन हो जो विदा हो जाने पर सूखे पत्ते को सूखा करता है। तुम जीवन की रसधार हो।
इस रसधार को ही हमने ब्रह्म कहा, आत्मा कहा। इस रसधारा का न कोई नाम है, न रूप है। यह रसधारा बहुत ढंगों से प्रगट होती है। तुम इसके अनंत खेल में भागीदार बनो। तुम डरो मत। तुम भय से कंपो मत। वही फरीद कह रहे हैं कि जब मौत आए फरीद, तू उठ कर खड़े हो जाना; तू स्वागत के लिए

हाथ फैला देना। मौत तुझे, ऐसा न हो, गैर-तैयारी में पाए। ऐसा न हो कि कहीं तू अपने को धोखा दे दे आखिरी क्षण में और डरने लगे और कंपने लगे और पकड़ ले जोर से जीवन को। कहीं ऐसा न हो कि कहीं तू अपने को धोखा दे दे आखिरी क्षण में और डरने लगे और कंपने लगे और पकड़ ले जोर से जीवन को। कहीं ऐसा न हो! उठ कर खड़े हो जाना। स्वागत से द्वार खोल देना। फूलमाला सजा देना। कहनाः मैं तैयार हूं। मैं कब से प्रतीक्षा करता था।

तत्क्षण वह जो मौत की तरह दिखाई पड़ा था, वह मौत की तरह दिखाई नहीं पड़ेगा।

इसे थोड़ा समझो, क्योंकि मौत तुम जिसे कहते हो, वह भी तुम्हारी व्याख्या है। मौत शब्द में ही तुम्हारी व्याख्या छिपी है। द्वार पर कोई आता है जरूर; वह कौन है, यह तुम्हारी व्याख्या पर निर्भर होगा। अगर तुम भयभीत हो तो मौत; अगर तुम निर्भय हो तो परमात्मा। यह तुम्हारी व्याख्या है। जो आता है, तुम उसे थोड़े ही देखते हो; तुम्हारा मन तुम्हें जो दिखाता है, तुम उसी को देखते हो। अगर तुम डर गए तो द्वार पर खड़ा हुआ दूल्हा मौत का है; अगर तुम न डरे, उठ कर घोड़े पर सवार हो गए कि चलने को तैयार हूं—अचानक दूल्हे का रूप खुल जाता है, रहस्य खुल जाता है। वह तुम्हारा प्रीतम है जिसकी प्रतीक्षा की थी। कभी वह जन्म की तरह आया था, तब भी तुम चुक गए, न देख पाए; अब मौत की तरह आया है, अब भी चूक जाओगे? फरीद कहता हैः फरीदा, अपने को धोखा मत दे देना। अब यह अवसर चूक न जाए। अब तो तू पहचान ही लेना कि कौन द्वार पर दस्तक दिया है।

पश्चिम में भी मृत्यु का विचार चलता है, लेकिन वह विचार धर्म के लिए नहीं है; वह विचार इसलिए चलता है कि हम कैसे मनुष्य को अमर बना दें। और अमर होने की आकांक्षा किसलिए है?—ताकि वासनाओं को हम अनंत तक भोग सकें। आखिर अमर होने की क्या आकांक्षा हो सकती है? क्या करोगे? सत्तर साल जीते हो; सात सौ साल जीओगे—क्या करोगे? सात हजार साल जीओगे—क्या करोगे? वही करोगे न जो सत्तर साल जी कर दिया था? उसी को बार-बार करोगे। उसको ही दोहराते जाओगे। गाड़ी के चाक की तरह घूमते रहोगे। करोगे क्या? वही पद, वही धन, वही वासना—उसी को दोहराओगे।

आदमी अमर क्यों होना चाहता है? क्योंकि जीवन छोटा मालूम पड़ता है और वासनाएं इतनी बड़ी मालूम पड़ती हैं कि पूरी नहीं होतीं। जीवन छोटा पड़ता है, वासनाएं बहुत हैं।

अरबों-खरबों रुपये जमा करने हैं। बड़े पदों पर पहुंचना है। सारे साम्राज्य को निर्मित करना है। अनंत आकांक्षाएं हैं और जीवन थोड़ा है—यह अड़चन है। इसलिए आदमी अमरता चाहता है। कहीं कोई मिल जाए अमृत, कहीं कोई मिल जाए पारस पत्थर कि छूते ही आदमी अमर हो जाए—बस फिर कोई दिक्कत नहीं है। फिर कितनी ही हों वासनाएं, सभी को पूरा करके रहेंगे। लेकिन वासनाओं का स्वभाव दुष्पूर है। वासनाएं इसलिए पूरी नहीं होती कि तुम्हारा जीवन छोटा है, यह मत समझना; वासनाएं इसलिए पूरी नहीं होतीं कि पूरा होना उनका स्वभाव नहीं है।

यही धार्मिक और अधार्मिक व्यक्ति की दृष्टि का भेद है। अधार्मिक आदमी कहता है, जीवन छोटा है—आया, गया, सत्तर साल में चुक जाता है। बीस-पच्चीस साल तक तो होश ही नहीं रहता—बचपन में गुजर गए, लड़कपन में गुजर गए। बीस साल आदमी सोता है साठ साल में, वे ऐसे ही गुजर जाते हैं।फिर खाना है, पीना है, काम करना है, नौकरी-चाकरी—इस सब में वक्त व्यतीत हो जाता है। बचता क्या है? अगर सत्तर साल में बहुत खोजबीन करो तो भोगने लायक समय क्या बचता हैः साल दो साल, बहुत? है बात; वासनाओं का स्वभाव दुष्पूर है।

ययाति की बड़ी प्रसिद्ध कथा है। वह मरने के करीब हुआ। वह सौ साल का हो गया था। मृत्यु लेने आई, ययाति गिड़गिड़ाने लगा। वह बड़ा सम्राट था। मृत्यु को भी दया आ गई। वह आदमी बड़ा बलशाली था, और आज ऐसे दुर्दिन में रोने लगा, छोटे बच्चों की तरह चीखने-चिल्लाने लगा और मृत्यु के पैर पकड़ने लगा। वही उसने भूल की जो फरीद बचाना चाहता है कि—फरीद अपने को धोखा मत देना। ययाति ने फिर धोखा दे दिया। ययाति उठ कर खड़ा न हो सका; गिड़गिड़ाने लगा। वह कहने लगाः मुझे छोड़ दो। अभी तो कुछ भी पूरा नहीं हुआ। अभी तो एक भी वासना पूरी नहीं हुई और तुम लेने आ गई हो? अन्याय मत करो। ये दिन तो ऐसे ही बीत गए बेहोशी में। सौ साल मुझे और मिल जाए बस, तो अब मैं चूकूंगा नहीं, भोग ही लूंगा। सौ साल बाद तुम आ जाना, तुम मुझे तैयार पाओगी।

पर मौत ने कहाः किसी को ले जाना पड़ेगा। खाली हाथ जाने का कोई उपाय ही नहीं है। तू अपने बेटों में से किसी को राजी कर ले।

सौ बेटे थे ययाति के। सौ साल जी चुका था। सैकड़ों रानियां

थीं। मौत ने तो इसलिए कहा, क्योंकि यह तो तरकीब थी मौत की कि कोई बेटा कहीं जाने को राजी हुआ है! जब तक बाप तक मरने को राजी नहीं तो बेटा कैसे राजी होगा? जब इसकी वासनाएं पूरी नहीं हुइं तो चालीस-पचास साल के आदमी की वासनाएं अभी कहां पूरी हुई होंगी? यह तो तरकीब थी। यह तो होशियारी थी मौत की। यह तो सिर्फ न कहने का एक कुशल ढंग था। यह तो राजनीति थी।

ययाति ने अपने लड़कों को बुला लिया। बड़े लड़कों ने तो ध्यान ही नहीं दिया। वे तो चुपचाप बैठे रहे। उन्होंने तो सिर भी न हिलाया; क्योंकि वे भी जीवन के अनुभव से अनुभवी हो गए थे। उन्होंने भी कहाः यह भी बूढ़ा क्या बातें कर रहा है! तुम मरना नहीं चाहते, हमें मारना चाहते हो! जब तुम्हारी इच्छाएं पूरी नहीं हुइं हो तो हमारी कहां से पूरी हो जाएगी? हम तो तुमसे कम ही जीए हैं। तुमने तो सब भोग लिया। तुम हटो तो सिंहासन खाली हो, तो हम भी थोड़ा भोग सकें। तुम हमें हटाने की कोशिश कर रहे हो! यह तो जरूरत से ज्यादा बात हो गई। बाप मरे, यह तो नैसर्गिक नियम है; बाप के पहले बेटा मरे, और वह भी बाप मांगे, यह भी कोई बाप हुआ! और बाप कहे कि तू मर जा! ऐसे बाप के लिए कौन मरने को राजी होगा?

बड़े लड़के तो चुप रहे, लेकिन एक छोटा लड़का जिसकी उम्र कुल अट्ठारह-उन्नीस साल थी—अभी कली खिली भी न थी, अभी मूंछ की रेखाएं आनी शुरू हुई थीं—वह उठ कर पास आ गया और उसने कहा कि मैं तैयार हूं। ययाति भी चौंका। वह बेटा उसे बहुत प्यारा था। लेकिन अपने से ज्यादा प्यारा तो बेटा भी नहीं होता। अपने जान जाती हो तो पति भी प्यारा नहीं, पत्नी भी प्यारी नहीं, बेटा भी प्यारा नहीं। उपनिषद कहते हैं, आदमी दूसरों को भी अपने लिए प्रेम करता है। यह तो सुविधा होती है, तब की बात है प्रेम। अब यहां जहां मौत का सवाल हो तो तुम अपने को बचाओगे कि बेटे को बचाओगे?

ययाति को दुख तो हुआ, लेकिन मजबूरी थी। उसने कहाः क्षमा कर। लेकिन मेरा रहना जरूरी है।

मौत हैरान हुई। मौत ने उस बेटे के कान में कहाः नासमझ! तेरा बाप मरने को तैयार नहीं, तू मरने को तैयार है?

उस बेटे ने कहाः बाप को न मरते देख कर ही मैं तैयार हो गया। सोचा कि जब सौ साल में भी इच्छाएं पूरी नहीं होती तो मैं भी क्या कर लूंगा! अस्सी साल और गंवाने से क्या फायदा है? अस्सी साल बाद तुम आओगे, मृत्यु के देवता! आओगे जरूर, तब अस्सी साल और यहां तुम्हारी राह देखने की क्या जरूरत

है? निपटारा ही करो। बात खत्म ही करो। और बाप की इच्छाएं अभी पूरी नहीं हुइ—इससे साफ है कि इच्छाएं पूरी नहीं होती। नहीं तो मेरे पिता को क्या कमी थी? हजारों रानियां हैं, धन-संपत्ति है, बड़ा साम्राज्य है भोग का कभी अंत नहीं होता। तुम मुझे ले चलो। मैं तो पिता को तैयार न देख कर ही तैयार हो गया हूं। बात ही खत्म हो गई। अब इसी मूढ़ता में मैं क्यों पडूं? मौत ने मजबूरी में वचन दे दिया, ययाति के बेटे को ले जाना पड़ा। सौ साल ययाति जिंदा रहा। फिर मौत आई। लेकिन वह सौ साल भूल ही गया, बात ही भूल गया था। सौ साल इतना लंबा वक्त है, कौन याद रखता है। सौ साल बाद मौत आई, फिर गिड़गिड़ाने लगा। कथा बड़ी अदभुत है! फिर रोने लगा और कहने लगाः मैं तो भूल ही गया। भोग नहीं पाया। सब अधूरा रह गया।

ऐसे मौत दस बार आई। हर बात ययाति के बेटे को ले गई। हजारवीं बार आई तब भी ययाति गिड़गिड़ा रहा था। मौत ने कहाः कुछ तो सोचो! तुम्हारी वासनाएं कभी पूरी होंगी। तब उसे होश आया। यह भी जल्दी आ गया। हजार ही साल में आ गया; तुम तो न मालूम कितने हजार साल से जी रहे हो। पर हर बार मौत आती है और तुम फिर भूल जाते हो। एक शरीर ले जाती है, तुम्हें दूसरा शरीर मिल जाता है, तुम उस शरीर में फिर बेहोश हो जाते हो।

ययाति ने एक वचन लिखा जाते वक्त, आने वाली संतति के लिए, कि कितना ही भोगो, भोग भोगने से नहीं जाते। कितना ही भोगो, भोगों का कोई अंत नहीं है। तृष्णा दुष्पूर है। वासना पूरी नहीं होती। समय का सवाल नहीं है। वासना का स्वभाव पूरा होना नहीं है।

यह ययाति की कथा काल्पनिक है, लेकिन इससे ज्यादा सत्य कथा तुम कहां पाओगे? यही तो सबकी कथा है।

तो, एक तो रास्ता है जो विज्ञान को, साधारण बुद्धि को समझ में आता है कि जीवन को बढ़ा लो तो वासनाओं को पूरा करने का काफी समय मिल जाएगा। लेकिन धर्म कहता है, कितना ही समय हो, वासना पूरी नहीं होती; क्योंकि वासना का स्वभाव पूरा होना नहीं है।

तुमने कभी वासना पर विचार किया? तुम्हारे पास दस हजार रुपये हैं, दस लाख की वासना है। दस लाख हो जाएंगे, तुम सोचते हो तृप्त हो जाएगी वासना? वासना दस करोड़ की हो जाएगी। दस करोड़ हो जाएंगे, तुम सोचते हो तृप्त हो जाएगी?—वासना दस अरब की हो जाएगी। संख्या तो सदा

आगे शेष रहेगी। दस का अनुपात कायम रहेगा। दस रुपये थे तो सौ रुपये की आकांक्षा थी; दस हजार थे, तो लाख की थी, लाख थे तो दस लाख की थी—लेकिन दस का अनुपात कायम रहेगा।

तुम जितना आगे बढ़ते हो, वासना क्षितिज की भांति उतनी ही आगे बढ़ जाती है! जैसे आकाश छूता हुआ दिखाई पड़ता है पृथ्वी को, कहीं छूता नहीं—बढ़ते जाओ, दिखता है यह रहा, दो-चार-दस मील चलने की बात है: पहुंच जाएंगे उस जगह जहां आकाश पृथ्वी को छूता है। तुम कभी न पहुंचोगे, तुम पृथ्वी के हजारों चक्कर लगा लो। आकाश कहीं छूता नहीं, सिर्फ छूता मालूम होता है। वासना कभी तृप्त नहीं होती, सिर्फ दूर तृप्त मालूम होती है। वह मृगमरीचिका है।

विज्ञान कहता है: समय को बढ़ा लो। धर्म कहता है: समझ को जगा लो। विज्ञान कहता है: उम्र लंबी हो, सब ठीक हो जाएगा। धर्म कहता है: बोध गहरा हो, सब ठीक हो जाएगा। वासना समय की लंबाई से न कटेगी, बोध की गहराई से कटेगी।

पूरब भी पृथ्वी पर विचार करता है—कारण बड़े अलग हैं, तुम्हें जगाने को, चौंकाने को, मृत्यु की बात करता है कि तुम होश में आ जाओ। शायद मृत्यु का खयाल तुम्हें जगा दे, तिलमिला दे। पश्चिम मृत्यु का विचार करता है, ताकि तुम्हें और गहरी नींद में सुला दे, ताकि तुम फिक्र ही छोड़ दो, ताकि ये बुद्ध, महावीर और फरीदों की बात सुनने की जरूरत ही न रह जाए, सब पागल सिद्ध हो जाएं! ये चिल्ला-चिल्ला कर कहते हैं कि इस जीवन में वासना तृप्त न होगी। विज्ञान चाहता है सिद्ध कर दे कि हम तुम्हें इतना अनंत जीवन देते हैं कि कैसी भी वासना तृप्त करनी हो कर लो।

विज्ञान की लड़ाई बहुत गहरे में धर्म से है। विज्ञान कभी ऐसा कर न पाएगा। हो सकता है, जीवन लंबा जाए—सत्तर साल की जगह आदमी सात सौ साल जीने लगे। मेरे हिसाब में तो ये सात सौ साल जीने से आदमी की वासना पूरी तो होगी नहीं; बुद्ध और फरीद के वचन ज्यादा सही मालूम होने लगेंगे।

इसलिए मैं भयभीत नहीं हूं इससे कि विज्ञान जो कर रहा है वह नहीं करना चाहिए। करो, क्योंकि हम मानते हैं कि जितना लंबा समय होगा उतना ही तुम्हें समझ में आएगा कि समय की लंबाई से कुछ भी नहीं होता। ययाति को दस हजार साल में पता चल गया। हजार साल में पता चल गया। जो बात सौ साल में पता न चली वह हजार साल में धीरे-धीरे उसको भी समझ में

आ गई कि यह तो मैं बार-बार मांगता हूं, बात तो वहीं की वहीं खड़ी है; मेरी वासना इंच भर भी समाप्त नहीं होती।

विज्ञान अगर किसी दिन तैयार हो गया, समर्थ सफल हो गया और आदमी के जीवन को लंबा कर लिया तो मैं नहीं मानता कि इससे धर्म को कोई खतरा है। विज्ञान सोचता होगा; वह गलती में है। इससे तो बुद्ध और फरीद के वचन और भी सही हो जाएंगे। तब उनको तर्क भी देने की जरूरत न रह जाएगी। तुम्हारी जीवन की व्यवस्था ही तुम्हें बता देगी कि कुछ हल नहीं होता। जीवन सात सौ साल को हो तो भी क्षणभंगुर है। समय ही क्षणभंगुर है। समय के बाहर जाना है शाश्वत को पाने के लिए। समय की लंबाई का नाम शाश्वतता नहीं है। समय के बाहर, अतिक्रमण का नाम शाश्वतता है। समय तो कितना ही लंबा हो तो भी क्षणभंगुर है। उम्र तो कितनी हो, समाप्त होगी; मौत पर ही समाप्त होगी। बीच का फासला कितना ही कर लो बड़ा—सात साल हो, सत्तर साल हो, सात हजार साल हो, सात लाख साल हो; मगर जीवन अंत होगा मौत पर ही। और जितना लंबा होगा, उतना ही बोध स्पष्ट होगा कि यह तो कुछ हल नहीं होता, लंबाई से कुछ हल नहीं होता।

तो, मैं तो मानता हूं विज्ञान सफल हो जाए तो अच्छा लंबा करने में। उस दिन हमें चीजें और भी साफ दिखाई पड़ने लगेंगी, जैसे किसी ने दूरबीन हाथ में दे दी और दूर के दृश्य दिखाई पड़ने लगें; या जैसे किसी ने खुर्दबीन हाथ में दे दी और जो नंगी आंख से नहीं दिखाई पड़ता था, वह खुर्दबीन से दिखाई पड़ने लगेंगी।

विज्ञान सोचता हो कि धर्म से मुक्ति हो जाएगी, लेकिन धर्म से मुक्ति असंभव है। धर्म से छुटकारा असंभव है। धर्म का अंत नहीं हो सकता है। क्योंकि धर्म मनुष्य की आत्यंतिक नियति है। वह तुम्हारे भीतर छिपा है। मोक्ष तुम्हारा खोजना ही होगा। जीवन और मृत्यु के पार का दर्शन करना ही होगा। इसलिए धर्म से कोई बचने का उपाय नहीं है। धर्म से तुम अपने को बचाने की चेष्टा कर सकते हो। सभी चेष्टाएं असफल होती हैं—होंगी। इसलिए पूरब और पश्चिम की मृत्यु की विचारणा में बड़ा भेद है।

दूसरा प्रश्नः आप कहते हैं, प्रार्थना मांग नहीं है, मात्र धन्यवाद देना है, अहोभाव प्रकट करना है, लेकिन वेद, उपनिषद, बाइबिल, कुरान आदि अन्य धर्मग्रंथों में सैकड़ों प्रार्थनाएं मांग जैसी मिलती हैं। क्या प्रभु से प्रकाश और प्रज्ञा मांगना भी अनुचित है?

धर्मग्रथों में सभी कुछ धर्म नहीं है, क्योंकि धर्मग्रंथ प्रज्ञावान पुरुषों का बोध और अप्रज्ञावान संग्राहकों की अबुद्धि, दोनों का जोड़ है।

कृष्ण ने गीता कही। एक तो कहने में ही, जो भीतर जाना है वह पूरा प्रगट नहीं होता, वह बहुत बड़ा है शब्दों से। उपनिषद कहते हैं, वहां से शब्द भी वापस लौट आते हैं, गिर-गिर पड़ते हैं वापस, उतनी उड़ान नहीं भर पाते शब्द। शब्द ऐसे हैं जैसे मुर्गी की उड़ान; वह कोई दूर सूरज तक नहीं पहुंच पाती; ऐसा एकाध दीवाल छलांग लगानी हो, थोड़ा-बहुत उछलना-कूदना हो—ठीक है। पंख होने से यह मत सोचना कि मुर्गी उड़ सकती है। छलांग लगा लेती है। शब्दों के पंख इतने ही समर्थ हैं कि थोड़ी-सी छलांग लगा लेते हैं। उनकी कोई ज्यादा सामर्थ्य नहीं है।

तो, पहले तो कृष्ण जब कहते हैं तभी उतना नहीं रह जाता जितना वे जानते हैं। जो कृष्ण जानते हैं वह कहने में हजार सीढ़ियां नीचे गिर जाता है। फिर अर्जुन सुनता है। जो अर्जुन सुनता है वह समझ नहीं पाता। कान तो सुन लेते हैं जो कहा गया, लेकिन कान में थोड़े ही समझ है, समझ तो मस्तिष्क में है। फिर अर्जुन उसकी व्याख्या करता है। तो जो अर्जुन समझता है वह उतना नहीं है जितना सुना, वह सुनने से बहुत कम है। फिर अर्जुन भी लिखता नहीं। संजय, तीसरा ही व्यक्ति, वह अंधे धृतराष्ट्र को सुनाता है।

यह जरा कहानी बहुत अर्थपूर्ण है। सभी धर्मग्रथों का जन्म इसमें छिपा है। जानने वाले ने कहा, कहने में जानना बहुत छोटा हो गया; न जानने वाले ने सुना, जितना सुना था, समझना उससे बहुत छोटा हो गया। फिर किसी तीसरे ने, जो न कहने वाला था न सुनने वाला था, सिर्फ गवाह था, उसने इकट्ठा किया। उसने जो इकट्ठा किया वह और भी नीचे गिर गया। और फिर उसने अंधे धृतराष्ट्रों को कहा—अंधों को, जो न जानने वाले थे न सुनने वाले थे, न देख सकते थे। ऐसे धर्मग्रंथ नीचे उतरता जाता है। फिर उसने अंधे धृतराष्ट्रों को कहा—अंधों को, जो न जानने वाले थे न सुनने वाले थे, न देख सकते थे। ऐसे धर्मग्रंथ नीचे उतरता जाता है। फिर धृतराष्ट्र ने जो समझा वही तुम्हारी समझ है। फिर हजारों साल बीतते हैं और धृतराष्ट्र धृतराष्ट्रों को सुनाते चले जाते हैं। अंधों अंधा ठेलिया! फिर अंधे अंधों को मार्गदर्शन देते रहते हैं, व्याख्याएं-टीकाएं होती रहती हैं। अगर कृष्ण लौट आएं तो पहचान भी न सकेंगे कि ये बातें मैंने ही कही थीं। असंभव है।

तो, पहली बात, धर्मग्रथों में सभी कुछ धर्म नहीं है। यह अड़चन होती है हमें मानने में, लेकिन सचाई ऐसी है। अड़चन हो न हो, कुछ किया नहीं जा सकता। अगर वेदों में धर्म खोजना हो तो एक प्रतिशत भी मिल जाए तो बहुत, निन्यानबे प्रतिशत कचरा है। होना ही चाहिए, क्योंकि वेद सबसे पुरानी किताब है। जितनी पुरानी उतनी ही धूल इकट्ठी हो गई। जितनी पुरानी उतनी हाथों में सरक गई। जितनी पुरानी उतनी गंदी हो गई। उतना जुड़ता चला गया, जुड़ता चला गया । कौन रोकेगा, किसको रोकेगा? हजारों साल तक वेद तो सिर्फ कंठस्थ थे, लिखे नहीं गए थे। जब कंठस्थ थे तो बड़ा मजा था। कंठ-कंठ की बात थी, अपना-अपना जोड़ था। इसलिए वेदों की कई प्रतियां हैं कई ढंग हैं। कुछ सूत्र एक में मिलते हैं, कुछ सूत्र दूसरे में मिलते हैं, कुछ सूत्र कहीं नहीं मिलते। वेद के कई पाठ हैं। हर घराने का अपना वेद था। उसी तरह तो चतुर्वेदी, त्रिवेदी पैदा हुए। जिनको चारों वेद कंठस्थ थे जिनके परिवार में, वे चतुर्वेदी! जिनके घर में तीन वेद कंठस्थ थे वे त्रिवेदी। जिनके घर में दो वेद कंठस्थ थे वे द्विवेदी।

फिर वे लिखे गए।

जो चीज कही जाती है, उसमें और लिखने में बड़ा फर्क पड़ जाता है।

मैं तुमसे यहां बोल रहा हूं: जब मैं बोल रहा हूं तो मैं शब्द का भी उपयोग कर रहा हूं, मेरे हाथ भी इशारा दे रहे हैं, मेरे कंठ की लय में फर्क पड़ता है। अगर किसी शब्द पर मुझे जोर देना है तो मैं और ढंग से कहता हूं। कभी मैं थोड़ा चुप रह जाता हूं ताकि शून्य भी शब्द के साथ जुड़ जाए; सीधा-साधा न हो तो भी कम से कम शब्द के आसपास हो। कभी तुम्हारी तरफ देखता हूं ताकि जो शब्द से नहीं कहा जा सकता, हाथ से इशारा नहीं किया जा सकता, उसे आंख में उंडेल दिया जाए। मेरी पूरी भावभंगिमा, मेरा होना, सब उसमें समाहित है। जब तुम इसे लिखोगे तब कोरे शब्द रह जाएंगे। उन शब्दों में कोई हाथ हिल कर तुम्हें इशारा न करेंगे, कोई आंखें उन शब्दों से तुम्हें झांकेंगी नहीं। उन शब्दों में कोई लयबद्धता न होगी। वे एक-से सपाट होंगे। कभी स्वर ऊंचा, कभी नीचा न होगा। उन शब्दों के बीच शून्य न होगा। वे शब्द बहुत कुछ खो देंगे, मुर्दा हो जाएंगे। अभी जीवित हैं। यही होंगे शब्द, लेकिन मुर्दा हो जाएंगे। यहां जब तुम मुझे सुनते हो, जब यहां तुम मेरे निकट हो तो सुनते वक्त तुम चुप हो गए होते हो। जब तुम पढ़ोगे इन्हीं शब्दों को, चुप होने की जरूरत न होगी। कारण? जब तुम मुझे सुन

रहे हो, अगर तुम चुप न हुए, एक शब्द भी चुक गया तो दुबारा सुनने का कोई उपाय नहीं है—गया, गया! तुम्हें तत्पर होना होगा। तुम ध्यानस्थ हो जाओगे। तुम एक-एक शब्द को पकड़ोगे कि कहीं कोई चूक न जाए, क्योंकि एक शब्द चूका तो शृंखला बिगड़ जाएगी, फिर आगे का तुम न समझ पाओगे। लेकिन किताब पढ़ने में क्या ध्यान देने की जरूरत है? अगर चुक गया पूरा पन्ना, फिर से पढ़ लेंगे, पूरी किताब फिर से पढ़ लेंगे। इसलिए किताब पढ़ते वक्त कोई ध्यानस्थ नहीं हो पाता। होने की जरूरत नहीं है। जब जरूरत ही नहीं है तो कौन परेशान होता है? सुनते वक्त ध्यान की गरिमा उपलब्ध होती, ध्यान का भाव उपलब्ध होता है।

तो जब सुने गए, कहे गए शब्द लिखे जाते हैं, तब और खो जाता है। फिर जो लिखते हैं वे अपना जोड़ जाते हैं। शायद हित के लिए ही जोड़ते हों। उनको लगता है, इससे लाभ होगा। कुछ छोड़ देते हैं, उनको लगता है, इससे हानि होगी। शुभेच्छा से ही करते हैं।

जब भारत आजाद होने के करीब हुआ तो गांधी ने एक लेख लिखा कि खजुराहो, कोणार्क और पुरी के मंदिरों को मिट्टी से ढांक कर दबा देना चाहिए, क्योंकि इनमें अश्लील प्रतिमाएं हैं। यह गांधी के मन में विचार तो बहुत पुराना था। उन्नीस सौ बीस से यह उनके मन में खयाल था कि जब शक्ति हाथ में आए तो यह होना चाहिए। वह शुभेच्छा से; यद्यपि अज्ञानपूर्ण है। क्योंकि जिन्होंने खजुराहो के मंदिर बनाए थे, उन्होंने किसी विज्ञान को मंदिर के पत्थरों में खोदा है, पूरा तंत्र खोदा है। अश्लील नहीं हैं वे मंदिर, अश्लील तुम्हें दिखते होंगे, क्योंकि तुम्हारी धारणाएं बहुत कुंठित और गंदी हैं। मंदिरों का अश्लील होने से कोई लेना-देना नहीं है। अगर गांधी को भी अश्लील दिखाई पड़ते हैं तो सिर्फ गांधी के मन की खबर देते हैं, मंदिरों का कुछ लेना-देना नहीं है।

जिन्होंने मंदिर बनाए थे, बड़े पूजा के भाव से बनाया थे और उनके पीछे बड़ा राज था। खजुराहो की एक-एक मूर्ति पर ध्यान करने से तुम्हारे मन की कामवासना क्षीण हो जाती है। हां, ऐसे ही तुम देखने वाले की तरह पहुंच गए; देखने वालों के लिए वे मंदिर बनाए न गए थे कि दिन भर के लिए गए, पूरे खजुराहो के तीस-बत्तीस मंदिर देख डाले, बैठे अपनी बस में और लौट आए, तो तुम्हें तो वे और ज्यादा परेशान कर जाएंगे; तुम्हारे भीतर वासना को जगा देंगे। वे मंदिर थे ध्यानियों के लिए- वे सभी के लिए उपलब्ध न थे। वे उनके लिए थे जिनको गुरु कहता कि

जाओ और मंदिर की इन-इन प्रतिमाओं पर, इन-इन मुद्राओं पर बैठ कर चित्त को एकाग्र करो। जिस व्यक्ति के मन में कामवासना की जो वृत्ति बहुत प्रबल होती, उसी तरह की प्रतिमा पर उसे ध्यान करने भेजा जाता। उस प्रतिमा पर ध्यान करते-करते जो उसके भीतर अचेतन में दबा है वह उभर कर चेतन में आ जाता। सारा मनोविश्लेषण इतना ही है कि जो तुम्हारे भीतर दबा है वह उभर कर बाहर आ जाए। उसी का प्रतिबिंब सामने बनाया गया था।

इसलिए खजुराहो में ऐसी प्रतिमाएं भी हैं कि जो भरोसे के योग्य नहीं हैं। जैसे शीर्षासन करते हुए दो स्त्री-पुरुष संभोग कर रहे हैं—ऐसा कहीं होता है? यह कोई आसान है। यह कोई ढंग है? किसके लिए यह बनाया होगा? ऐसा होता नहीं है? लेकिन इस तरह के स्वप्न होते हैं। ऐसा वस्तुतः नहीं होता, लेकिन इस तरह के विकार मन में होते है। तुमने स्वप्न में तो इस-तरह की मुद्राएं ली हैं कामवासना की, जो कि तुम यथार्थ में पूरा न कर सकोगे। खजुराहो के मंदिर पर तुम्हारा एक-एक स्वप्न खुदा है। मैंने एक-एक मूर्ति बहुत गौर से देखी है और मैंने पाया कि खजुराहो में जो है उससे ज्यादा मनुष्य के स्वप्न में कभी भी नहीं हुआ। मनुष्यों के सपनों में जो भी हुआ है उस सबके प्रतीक खजुराहो की मूर्तियों में खुदे हैं। तो वे प्रत्येक व्यक्ति के भीतर छिपी हुई वासनाओं को, विकृतियों को बाहर लाने के उपाय हैं।

गांधी ने कहाः इनको दबा दो। इनको मिट्टी में ढांक दो। कभी किसी विशेष व्यक्ति को दिखाना हो, कोई सम्राट आए, कोई राष्ट्रपति आए, तो वह मिट्टी हटवा दी, साफ करवा दिया- अन्यथा आम जनता को देखने की बात नहीं है। जैसे कि राष्ट्रपति आम जनता नहीं है! आम जनता से भी आम! गए-बीतों से भी गए-बीते! क्योंकि नेता होने के लिए अनुयायियों से भी बदतर होना जरूरी है; नहीं तो तुमको नेता कौन बनाएगा?

रवींद्रनाथ ने विरोध किया कि इस तरह की कल्पना मत बांधी जाए; ये मंदिर ढांके न जाएं। हालांकि उनके बचाव का कारण भी दूसरा था; वह भी ज्ञानपूर्ण नहीं था बहुत। उनका कारण यह था कि प्रतिमाएं बहुत सुंदर हैं, अनूठी हैं, सौंदर्य के प्रतीक हैंः इनको मिट्टी में न दबाया जाए। दबानेवाला भी गलत था, बचानेवाला भी गलत था; क्योंकि न तो इन प्रतिमाओं का सौंदर्य से कुछ लेना-देना है, न इन प्रतिमाओं का अश्लीलता जन्में; ये तो बनाई गई थीं तंत्र की विधियों की तरह ताकि लोग कामवासना से मुक्त हो जाएं।

लेकिन दोनों की शुभेच्छा है।
फिर शास्त्र में से जोड़ना शुरू होता है। शुभेच्छु लोग हेर-फेर करते हैं, बदलाहट करते हैं, कुछ जोड़ते हैं, कुछ घटाते हैंः विकृति इकट्ठी होती चली जाती है।
तो, धर्मशास्त्र में सभी कुछ धर्म नहीं है। अगर धर्मशास्त्रों में एक प्रतिशत धर्म मिल जाए तो बड़ी असंभव घटना है; क्योंकि कितने हजारों साल से कितने हजारों लोगों ने जोड़ा है! उसका आज हिसाब लगाना मुश्किल है।
ऐसा ही समझो कि जैसे गंगा निकलती है गंगोत्री से तो जरा-सा झरना निकलता है; फिर तुम उसी गंगा को देखो, सागर में गिरते वक्त कैसी विराट हो जाती है। यह इतनी विराट गंगा नहीं हो गई है; इसमें जो करोड़ों-करोड़ों झरने आ कर मिल गए हैं, दूसरी दुनिया मिल गई हैं, नाले मिल गए हैं, नालियां मिल गई हैं—उन सबका परिणाम है।
अगर वेद का मूल खोजा जाए तो गंगोत्री में मिलेगाः जरा-सा झरना होगा; लेकिन शुद्ध स्फटिक होगा। इसलिए तो गंगोत्री की यात्रा का मूल्य है। वह प्रतीक यात्रा है। कोई गंगोत्री जाने की जरूरत नहीं है, लेकिन जब भी किसी शास्त्र में उतरना हो तो गंगोत्री की यात्रा करना। खोजना मूल को। लेकिन उस मूल को तुम खोजोगे कैसे, पहचानोगे कैसे? अगर तुम्हें अपना मूल मिल जाए तो पहचान लोगे, नहीं तो न पहचान सकोगे।
जिसने स्वयं शास्त्र को पढ़ लिया उसके लिए ही शास्त्र सुगम होता है। वहीं शास्त्र में देख पाता हैः कितना शास्त्र है, कितना अशास्त्र है; कितना धर्म है, कितना अधर्म है। और कोई उपाय भी नहीं है, और कोई कसौटी भी नहीं है।
इसलिए निश्चित, प्रश्न ठीक है।
धर्मग्रंथों में भी ऐसी प्रार्थनाएं हैं जिनमें मांग है। और मांग तो प्रार्थना से कोई भी संबंध नहीं हो सकता। इसलिए जहां-जहां मांग हो, समझना कि मांगने वालों ने जोड़ दिया है।
ज्ञानी मांगता नहीं; ज्ञानी धन्यवाद देता है। इतना मिला ही हुआ है पहले से ही कि अब और क्या मांगना? मांगने को कुछ बचा ही नहीं है। जो दिया है वह इतना अनंत है कि उसमें मांग कर और जोड़ने का सवाल नहीं है। बिन मांगे इतना मिला है कि अब मांग कर और अपनी दीनता प्रकट करनी है, अपनी मूढ़ता प्रकट करनी है?
कबीर ने कहा हैः बिन मांगे मोती मिलें मांगे मिले न चुन। मांग-मांग कर तो रोटी भी नहीं मिलती, आटा भी नहीं मिलता; और बिना मांगे मोतियों कि वर्षा होती है, यह प्रार्थना के लिए

कहा है।
मांगोगे, कुछ न पाओगे, क्योंकि तुम मांगोगे भी कचरा ही।
मांगोगे क्या?—कि दो साल और जिंदा रह जाएं?—कि जरा
लड़की का विवाह हो जाए? मांगोगे क्या?—कि इंस्पैक्टर हैं,
जरा और ऊपर चले जाएं?—स्कूल में मास्टर हैं, हेड मास्टर हो
जाएं? मांगोगे क्या?—एक रुपये के दो रुपये हो जाएं?
तुम्हारी मांग भी तो तुम्हारी ही मांग होगी। तुम मांगोगे भी तो
क्षुद्र।
नहीं प्रार्थना मांग नहीं है। प्रार्थना चुप हो जाना है। प्रार्थना
उसके द्वार पर अहोभाव से सिर को झुका देना है; उसे धन्यवाद
देना है कि तूने बिना मांगे इतना दिया, और हम धन्यवाद देने के
योग्य भी नहीं। हम किस मुंह से तुझे धन्यवाद दें, हमारी उतनी
भी तो कोई अर्जित संपदा नहीं है। हम बस आनंद से नाच सकें,
यह तेरी प्रार्थना हो सकती है।
और बिन मांगे मोती मिलें—और तब तुम्हारे चारों तरफ और
भी मोतियों की वर्षा होने लगेगी। तुम्हारा धन्यवाद, तुम्हारा
अहोभाव और बढ़ता जाएगा। निश्चित ही मांगना बुरा है।
तब सवाल उठ सकता है कि क्या प्रभु से प्रकाश और प्रज्ञा
मांगना भी अनुचित है?
मांगना ही अनुचित है। क्या तुम मांगते हो—यह बड़ा
सवाल नहीं है। अगर तुम जागोगे तो पाओगे, प्रज्ञा तो दी हुई है,
प्रकाश तो उपलब्ध है; तुम आंख बंद किए बैठे हो : तुम प्रार्थना
कर रहे हो कि हे प्रभु, प्रकाश दो! अगर प्रभु तुम्हारी प्रार्थना
सुनता होगा तो उसका सिर अभी तक खराब हो गया होगा कि
अब तुम और चाहते क्या हो? प्रकाश है, आंख है; आंख
खोलते ही नहीं, हाथ जोड़े बैठे हैं कि प्रभु प्रकाश दो! और क्या
चाहिए? और अगर आंख ऐसी दे दी जाए कि बंद न हो सके तो
भी कष्ट पाओगे; क्योंकि तब प्रकाश अतिशय हो जाएगा,
विश्राम भी चाहिए। इसलिए पलक है आंख पर कि जब चाहो
बंद करो और अंधेरे का आनंद लो; जब चाहो खोलो और
प्रकाश का आनंद लो। क्योंकि अगर प्रकाश ही प्रकाश हो जाए
तो तुम प्रार्थना करने लगोगे कि है परमात्मा, अंधेरा दो, क्योंकि
यह प्रकाश जरा ज्यादा हुआ जा रहा है, अब यह सहा नहीं
जाता। इसलिए ऐसी आंख दी है कि चाहो तो खोलो, चाहो तो
बंद करो! आंख का मतलब इतना है कि वह तुम्हारी स्वतंत्रता
है।
जो तुम मांगते हो वह सब मौजूद है। वह तुम्हारे मांगने के
पहले तुम्हारे भीतर छिपा दिया गया है। अब तुम व्यर्थ शोरगुल

मत मचाओ। तुम जरा शांत हो कर बैठो और अनुभव करो, क्या तुम्हें मिला है।

इसलिए मैं कहता हूं, तुम जरा पहले यह खोज लो कि क्या-क्या तुम्हें मिला ही हुआ है। छोड़ो परमात्मा की भी फिक्र थोड़ी देर को; अपने भीतर ही जरा देखो कि क्या-क्या मुझे मिला है। तुम धीरे-धीरे पाओगे कि यहां तो कुछ भी कमी नहीं है; सभी पाया हुआ है। उस दिन तुम्हारे मन से एक अहोभाव उठेगा; तुम झुकोगे प्रार्थना में। तुम कहोगे: धन्यवाद तेरा! मांगा नहीं और तूने दिया। बिन मांगे दिया।

और जो मांग कर मिले, उसमें मिलने का मजा भी चला जाता है। उसमें देने वाले का भी गौरव नहीं है, लेने वाले का भी गौरव है, अंगुलियां तुम्हारी तैयार हैं: जरा तारों को छेड़ो। अब तुम कहते हो: हे परमात्मा संगीत दे। वीणा रखी है, हाथ रखे बैठे वीणा पर, हो सकता है तकिया ही लगाए हों वीणा पर ही, सिर टेके बैठे हैं: हे परमात्मा संगीत दे!

थोड़ा छेड़ो। थोड़ा खोजो। जिसने तुम्हें संगीत की आकांक्षा दी है उसने संगीत का उपाय दे ही दिया होगा।

इसे मैं एक बुनियादी बात कहता हूं: जिसने तुम्हें प्यास दी है उसने पानी पहले दे दिया होगा, अन्यथा प्यास का क्या मतलब था? तुम्हें तड़फाना है? वह कोई दुष्ट प्रकृति का, कोई दुखवादी है? अस्तित्व कोई सैडिस्ट है कि तुम्हें सताना है, कि प्यास दे दी और पानी नहीं दिया? भूख दी है तो भोजन है।

अगर यह खयाल दिया है कि प्रज्ञा मिलनी चाहिए तो प्रज्ञा दी ही होगी। अगर आनंद पाने की आकांक्षा दी है तो आनंद दीया ही होगा। इसके पहले कि आकांक्षा है, उसके पहले, उससे भी पहले तुम्हें संपदा दे दी गई है।

मैं तुमसे मांगने को नहीं कहता; मैं तुमसे जागने को कहता हूं, ताकि तुम्हारे जीवन में प्रार्थना का जन्म हो सके। कुछ भी मत मांगना। सब मांग भूल होगी। मांगोगे पछताओगे। क्योंकि मांगने में गलती हो गई शुरू में ही। दिया ही हुआ था, उसी को मांगने बैठ गए। इस व्यर्थ की यात्रा से बचो।

तीसरा प्रश्न: परमात्मा के प्रति प्रेमानुभूति से भरना, उसका वियोग अनुभव करना और अंततः उससे मिलने के लिए बावला हो जाना—ये सब शायद उन्नत, श्रेष्ठ आत्माओं की संभावनाएं हैं! कृपया बताएं कि पिछड़ी आत्माएं भक्ति की यात्रा आरंभ कैसे करें?

श्रेष्ठ और पिछड़ी आत्माएं, ऐसा कोई विभाजन है नहीं। एक विभाजन जरूर है: जागी और सोई। श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ, ऐसा

कोई विभाजन नहीं है। वे गलत, वे कोटियां ही गलत हैं। वे अहंकारियों ने बनाई है कोटियां। श्रेष्ठ आत्माएं यानी उसकी आत्माएं! श्रेष्ठ आत्माएं, पिछड़ी—यानी दूसरों की आत्माएं! पुण्यात्माओं की आत्माएं श्रेष्ठ क्योंकि उन्होंने धर्मशाला बनाई, मंदिर को दान दिया, अस्पताल खोला! और उनकी आत्माएं अश्रेष्ठ, जो अस्पतालों में भरती हैं, बीमारों की तरह पड़े हैं; स्कूलों में पढ़ रहे हैं, जिनको उन्होंने दान; मंदिरों में पूजा कर रहे हैं, जिनको उन्होंने बनाया!

अहंकारी का विभाजन है: श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ। आत्माएं तो सभी श्रेष्ठ हैं। आत्मा का स्वभाव श्रेष्ठता है। कोई आत्मा निकृष्ट तो होती नहीं। कृत्य भला निकृष्ट हो तो भी निकृष्ट नहीं होती। किसी आदमी ने चोरी की तो एक कृत्य निकृष्ट होता है, उसकी आत्मा निकृष्ट नहीं होती। किसी आदमी ने बेईमानी की तो उसका वह कृत्य निकृष्ट हुआ, उसकी आत्मा निकृष्ट नहीं होती। इसलिए तो हम कहते हैं: कर्म से मुक्त हो गए कि तुम श्रेष्ठ हो; क्योंकि कर्म ही निकृष्ट होते हैं, तुम निकृष्ट नहीं होते, तुम्हारा होना तो सदा परिशुद्ध है।

जैसे दर्पण पर धूल जम जाए, तो धूल जम गई तो दर्पण में प्रतिबिंब नहीं बनता; लेकिन दर्पण निकृष्ट नहीं हो गया। जरा हवा का झोंका, जरा पोंछ दो, पानी की बुहार—और दर्पण ताजा है।

तुम्हारे ऊपर कृत्यों की धूल भला जम जाए, लेकिन तुम दर्पण ही हो। धूल में भी दबे तुम बिलकुल शुद्ध हो। जैसे हीरा गिर जाए कीचड़ में, कीचड़ में दब जाए चारों तरफ कीचड़ लिपट जाए, तो भी क्या फर्क पड़ता है? हीरा निकृष्ट नहीं होता। हीरा फिर भी हीरा है। कबीर ने कहा है: हीरा हेराइल कीचड़ में। तो भी हीरा तो हीरा ही है, कीचड़ नहीं हो सकता। कीचड़ कीचड़ है, हीरा हीरा है। दोनों कितने ही निकट हो जाएं तो भी हीरा हीरा है, कीचड़ कीचड़ है; कीचड़ हीरे पा जम जाए, पर्त-पर्त बैठ जाए, हीरा हजार मील नीचे जमीन में खो जाए, तो भी हीरा हीरा है; हीरे में कण भर भी कीचड़ नहीं प्रविष्ट हो जाएगी। किसी भी दिन तुम खोज लोगे, धो लोगे नदी में: हीरा मुक्त है!

श्रेष्ठता आत्मा का स्वभाव है। इसलिए मैं श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ, इस तरह की आत्माएं नहीं बांटता। पापी और पुण्यात्मा अहंकारियों का विभाजन है। नर्क और स्वर्ग शरारतियों का विभाजन है। पर एक विभाजन जो कि स्वभावगत है, अहंकारगत नहीं, वह है: सोया और जागा। सोये में भी आत्मा श्रेष्ठ है; जागे में भी उतनी ही श्रेष्ठ है। जागे हुए आदमी की आत्मा सोये

हुए आदमी से ज्यादा श्रेष्ठ नहीं है, उतनी ही श्रेष्ठ है। फर्क क्या है फिर? फर्क इतना है कि जागा हुआ जानता है कि मैं कौन हूं; सोया हुआ सोया है और नहीं जानता कि मैं कौन हूं। खजाना दोनों के पास बराबर है: एक को पता चल गया, एक को अभी पता नहीं है; खजाने में जरा भी फर्क नहीं है, फर्क इतना है कि बुद्ध को अपना खजाना दिखाई पड़ गया, तुम आंखें बंद किए खड़े हो। तुम भिखमंगे बने हो; खजाना भीतर बने लिए हो; हाथ बाहर फैलाए खोज रहे हो।

श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ नहीं। श्रेष्ठता सभी का स्वभाव है। लेकिन तुम सोए हो सकते हो। जागना है! और जो जाग गया वह वही पा लेता है जो सोये में भी मिला था; लेकिन अभी होश से पा लेता है। बस इतना ही फर्क है। बड़ा छोटा फर्क है; बड़ा भारी फर्क भी है

तो यह तो पूछो ही मत कि कौन श्रेष्ठ, कौन अश्रेष्ठ, और पिछड़ी आत्माएं क्या करें। कोई पिछड़ी आत्माएं क्या करें? कोई पिछड़ी आत्मा नहीं है बस दो तरह की आत्मा है: बुद्ध और अबुद्ध; सोयी हुई जागी हुई। सोयी हुई आत्माएं जागें, और तो कुछ करने को नहीं है।

जागने के मैंने तुमसे दो उपाय कहे। एक तो है ध्यान जो जागने की सीधी प्रक्रिया है। और एक है प्रेम, जो जागने की परोक्ष प्रक्रिया है। ध्यान प्रत्यक्ष उपाय है, प्रेम परोक्ष उपाय है। अगर सीधे जाग सको, सीधे जाग जाओ। कान को सीधा पकड़ना हो—ध्यान। कान को हाथ से घुमा कर सिर के पीछे से ला कर पकड़ना हो—प्रेम; प्रेम जरा लंबी यात्रा है; ध्यान सीधी चोट है। अगर जल्दी हो तो ध्यान; अगर जल्दी न हो तो प्रेम; अगर सिर्फ पहुंचना ही हो तो ध्यान।

ऐसा ही समझो कि एक आदमी हवाई जहाज में बैठता है। यात्रा का कोई मजा नहीं आता। निकृष्ट से बैठा और लंदन उतर जाता है। यात्रा का क्या मजा है? न पहाड़, न हरियाली, न झरने, न पक्षी—न, यात्रा का कोई मजा नहीं है। यात्रा हो जाती है: एक बिंदु से छलांग लगा ली, दूसरे बिंदु पर पहुंच जाता है—सीधी! कभी वायुयान और भी तीव्रगति के हो जाएंगे, तो तुम बैठ भी न पाओगे कि उतरने का वक्त आ जाएगा। तुम सम्हाल कर बैल्ट-पट्टी बांधोगे और परिचारिकाएं घोषणाएं करेंगी कि अब बस बैल्ट-पट्टी खोलिए, उतरने का वक्त आ गया। यह तो समय जल्दी कम हो जाएगा।

लेकिन फिर एक ट्रेन से सफर है: दोनों तरफ के पहाड़ हैं, झरने हैं; पर ट्रेन भी बड़ी गति से जा रही है। फिर एक बैलगाड़ी

का सफर है, पर बैलगाड़ी थोड़ी तो जल्दी जाएगी। फिर एक पैदल आदमी की यात्रा है। इसलिए तो तीर्थयात्रा को हम पैदल करते थे कि वह मंजिल का थोड़े ही मजा है, मार्ग का भी मजा है। जल्दी पहुंच जाने की क्या है? देखते हुए पहुंचना है; आंख को खूब हरियाली से भरना है; हृदय को खूब पक्षियों के गीत से भर लेना है; पहुंचते-पहुंचते खुद भी तीर्थ बन जाना है—तब पहुंचना है।

ध्यान तो सीधी त्वरित प्रक्रिया है। प्रेम जरा लंबी यात्रा है। इसलिए मैंने कहा कि ध्यान प्रत्यक्ष; प्रेम परोक्ष। मगर प्रेम जल्दी में भी नहीं है; क्योंकि प्रेम कहता है, जो मजा इंतजारी में है, जो मजा प्रतीक्षा में है वह मिलन में भी कहा! जो मजा विरह में है, वह मिलन में भी कहा! प्रेम की कीमिया अलग है, वह कहती है, चलेंगे, नाचते हुए चलेंगे, थोड़ी देर से पहुंचेंगे माना, लेकिन जो मजा नाचते हुए चलने में है, वह पहुंच जाने में कहां! और एकदम से पहुंच भी गए, उसका भी क्या अर्थ है? नाचते हुए पहुंचेंगे!

प्रेम मार्ग को भी मूल्य देता है। ध्यान सिर्फ सिद्धि है। वह मार्ग की बिलकुल फिक्र नहीं है। वह एक छलांग है। प्रेम बड़ा क्रमिक है। ध्यान बड़ा त्वरित है।

जागने के दो उपाय हैं, जो जिसको रुचे, जिसको जैसा रुचे। वह रुचि की बात है। उसमें भी ध्यान रखना कि कोई श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ नहीं है; रुचि की बात है। किसी को गुलाब का फूल रुचता है, तो इसमें कोई अश्रेष्ठ नहीं हो गया है, श्रेष्ठ भी नहीं हो गया है। किसी को चमेली में ही मजा आता है, तो इसमें कोई अश्रेष्ठ-श्रेष्ठ नहीं है। कोई कमल का दीवाना है। यह रुझान है। ये रुचियां हैं। इसमें कोई नीचा-ऊंचा नहीं होता। तुम यह नहीं कह सकते कि अरे, तुम गुलाब के, मैं कमल का भक्त हूं—कमल कितना बड़ा, गुलाब इतना-सा! तुम अभी गुलाब में ही अटके हो?

गुलाब और कमल से लेना-देना नहीं है। वह गुलाब वाला कहेगा कि तुमने क्या बकवास लगा रखी है? कहां गुलाब की कोमलता, कहां गुलाब की गंध! होगा कमल बड़ा लेकिन विस्तार से क्या लेना-देना है! कहां गुलाब की गहराई! राजा तो गुलाब है।

मगर इसमें कोई झगड़ा नहीं है। जब भी हम कहते हैं रुझान, तो इसका मतलब यह है कि व्यक्तिगत रुचि की बात है। तो दो रुचियां हो सकती हैं। ध्यान—किसी को जल्दी पहुंचना है; यात्रा का कोई प्रयोजन नहीं है, मंजिल। ठीक! किसी को धीरे-धीरे

जाना है, पदयात्रा करनी है—बिलकुल ठीक! नदी-नालों में स्नान करने हैं, झरनों से मुलाकात करनी है, पर्वतों से मिलना है—पहुंचेंगे! उसके लिए प्रेम।

जागने के ये दो उपाय हैं। और आत्माएं दो तरह की हैं, जागी हुई। न तो गैर-जागी हुई। न तो गैर-जागी हुई आत्मा जागी हुई आत्मा से निकृष्ट है न श्रेष्ठ है; दोनों बिलकुल समान हैं। एक को पता है, एक को पता नहीं है। लेकिन यह भी तुम्हारी मौज है। अगर तुमको अपना खजाना खोए रखना है, विस्मरण रखना है, अगर यही तुमने तय किया है तो कुछ हर्जा नहीं है। कौन ऊपर तुम्हें थोपने को है कि तुम जागो ही? पर इतना ही मेरा कहना है कि अगर सोते भी हो तो मर्जी से सोओ। फिर सोने की पीड़ा मत लो। फिर चिल्लाओ मत, दुखी मत होओ कि मैं सो क्यों रहा हूं, फिर सोने का ही आनंद लो। विस्मरण का भी सुख हो सकता है। लेकिन वह भी होशपूर्वक हो। अगर खजाने को नहीं देखना है तो वह भी होशपूर्वक हो कि अभी जल्दी नहीं है, अभी नहीं देखना है; पता तो है कि यह रहा खजाना पीछे पर अभी थोड़े दिन भीख मांगने का मजा लेना है। कोई हर्जा नहीं है।

मैं किसी की निंदा नहीं करता हूं। मेरे लिए सभी स्वीकार है। बस जो भी वे कर रहे हैं, उससे उन्हें आनंद मिले, इतना पर्याप्त है। आनंद पुण्य है और दुख पाप है। तुम दुखी हो तो तुम पापी हो। तुमसे पुराने धर्मगुरुओं ने कहा है कि तुम दुखी इसलिए हो कि तुम पापी हो। मैं तुमसे कहता हूं कि तुम पापी इसलिए हो कि तुम दुखी हो। बड़ा क्रांतिकारी फर्क है। मैं तुम्हारे पाप के विरोध में नहीं हूं, तुम्हारे दुख के विरोध में हूं। मैं तुम्हें पुण्यात्मा नहीं बनाना चाहता हूं; मैं तुम्हें आनंदित, अहोभाव से भरा हुआ बनाना चाहता हूं।

चौथा प्रश्नः आपने कहा कि झुकने भाव ही परमात्मा तक पहुंचा देता है, लेकिन अंधविश्वास और शोषण पर खड़े मंदिरों और धर्माचार्यों के चरणों में कैसे झुका जाए? स्वामी नारायण, श्री नाथजी, राधास्वामी, जलाराम, सत्यसांई बाबा आदि के प्रति झुकने का क्या प्रयोजन होगा? मैं एक ऐसे वैष्णव आचार्य के कुटुंब से परिचित हूं जो सभी तरह के व्यसन और अतिचारों में गर्त है, फिर भी हजारों लोग रोज उनके चरणों में गिरते हैं और लाखों का धन चढ़ाते हैं। क्या ऐसे स्थानों पर भी झुकना शुभ हो सकता है?

यह प्रश्न है चंद्रकांत का। चंद्रकांत भाव से तो समाजवादी हैं, प्रेम से मेरे साथ जुड़ गए हैं। इसलिए उनकी अड़चन साफ है।

जब मैं कहता हूं, झुकने में आनंद है तब यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि क्या ऐसे लोगों के चरणों में भी झुका जाए जो गलत हैं; या उन चरणों में झुका जाए जो सही हैं? जटिल सवाल है; क्योंकि तुम कैसे तय करोगे कि कौन-से चरण सही हैं और कौन से गलत हैं? जो हजारों लोग कहीं झुक रहे हैं वे सही मान कर झुक रहे हैं, नहीं तो वे भी न झुकते। तुम्हें गलत दिख रहा है, इसलिए झुकने में अड़चन मालूम हो रही है। तुम मेरे पास झुक गए हो; लेकिन हजारों लोग तुम्हें मिल जाएंगे जो कि मुझे गलत मानते हैं और मेरे चरणों में नहीं झुक सकते हैं। तो, क्या ऐसा कोई मापदंड है जिस पर तराजू हो, तुल जाए और तय हो जाए कि कौन सही है; एक दफे तय हो जाए, सब वहीं झुक जाएं; या तय हो जाए कि कौन गलत है? यह तो असंभव है। यह तय हो नहीं सकता। इसके तय होने का कोई उपाय नहीं है। मनुष्य इतना रहस्यपूर्ण है कि कोई कसौटी उसे कस नहीं पाती; वह सोने की तरह उथला नहीं है कि कस लिया और पता चल गया।

फिर एक को जो व्यसन मालूम पड़ता है, दूसरे को व्यसन न मालूम पड़े।

मैं एक अघोरपंथी संन्यासी को जानता हूं तो शराब पीने में अति कुशल हैं और जिंदगी करीब-करीब प्रार्थना में नहीं, वेश्याओं के नृत्य देखने में गुजरी। लेकिन वह ब्रह्मचारी हैं, यह भी मैं जानता हूं और उन जैसा ब्रह्मचारी मैंने देखा नहीं। और वेश्याओं का नृत्य वह इसलिए देखते रहे हैं—वह उनकी साधना का हिस्सा है। शराब वे पीते हैं और डट कर पीते हैं; लेकिन उनको कभी किसी ने बेहोश नहीं देखा। वह उनका साधना का अंग है कि शराब प्रभावित न करे; ध्यान इतना गहन हो जाए कि शराब शरीर को भला डुबा दे, ध्यान को न डुबा पाए, ध्यान शराब के सागर के ऊपर भी पृथक खड़ा रहे, अतिक्रमण करता रहे। ये पुराने तंत्र के प्रयोग हैं। साधारणतः ऊपर से देखने में बड़ी कठिनाई होगी।

बनारस में वे रहते हैं। मैं एक मित्र के घर मेहमान था। मैंने उनसे कहा कि उनके पास मुझे ले चलो, या उन्हें खबर कर दो तो वे चले आएंगे। उन्होंने कहाः यह तो आप कृपा करें। उनको यहां तो हम बुला न सकेंगे। मुहल्ले-पड़ोस में...। हम गृहस्थ आदमी हैं— और उनका नाम आप जानते हैं, किस तरह बदनाम हैं! और इधर हमारे घर में आएंगे तो आपकी भी बदनामी होगी, हमारी भी बदनामी होगी। और हम तो सलाह देते हैं कि आप भी वहां न जाएं। फिर भी आपको जाना हो तो ड्राइवर

आपको ले जाएगा, मैं साथ नहीं आ सकता।
मुझे तो जाना था, उनसे मिलना था, बहुत वर्ष हुए मिला नहीं था—तो गया। मगर उस दिन से जिनके घर मैं रुका था, उनसे मेरा संबंध टूट गया, क्योंकि मैं गलत हो गया! जब गलत आदमी के पास मैं गया और उनके चेताने पर गया तो सारा फर्क हो गया। लौट कर घर आया, उस घर में मेरा कोई सम्मान न रहा।
कैसे तय करोगे? तय करने का क्या उपाय है? किसी को एक बात ठीक लगती है, किसी को ठीक नहीं लगती।
जैन मुनि हैं! दिगंबर जैन मुनि के पास तुम बैठ न सकोगेः शरीर से बदबू आती है, क्योंकि वह स्नान नहीं करता; मुंह से बास आती है, क्योंकि दतौन नहीं करता। दिगंबर जैन इसको बड़े अहोभाव से स्वीकार करते हैं। अगर उनको अपने मुनि के मुंह से बास न आए तो उनकी श्रद्धा टूट जाएगी कि इसने दिखता है दतौन कर ली है। दतौन करने का तो मतलब है कि यह अपने मुंह को सुंदर बनाना चाहता है; लोगों के लिए रुचिकर, प्रीतिकर बनाना चाहता है; यह शरीरवादी है! अगर मुनि के शरीर से बास न आती हो, [illegible] न आती हो तो उसका मतलब है कि इसने या तो स्नान कर लिया, या कम से कम गीले कपड़े से शरीर पर स्पंज कर लिया होगा। यह तो बात गलत है। यह तो शरीर का सजाना हो गया। तो दिगंबर को तो यह परीक्षा है कि उसमें जितनी बदबू आए उतना ही वह महात्यागी है। अब दूसरा अगर जाएगा तो उसको घबड़ाहट होगी; उसे लगेगा कि इस गंदगी के पास कहा जाना है! यह गंदगी भी कोई त्याग है? इस गंदगी को तुम संन्यास कहते हो? संन्यास तो स्वच्छता है। साधु तो स्वच्छ होना चाहिए। यह कोई स्वच्छता है? यह तो हद हो गई! यह तो असाधुओं से गई-बीती बात हो गई।
कैसे तय करोगे?
महावीर नग्न खड़े हो गए। निश्चित ही अशोभन रहा होगा। गांव-गांव से भगाए गए; क्योंकि लोगों ने कहाः यह क्या पागलपन है? घर में स्त्रियां हैं बच्चे हैं, लड़कियां हैं। यह तो सब अनाचार फैल जाएगा। आदमी नग्न खड़ा है! लेकिन बहुतों ने उनकी पूजा की, क्योंकि उनकी नग्नता में बच्चों का निर्दोष भाव पाया।
करोगे क्या? कौन निर्णायक है कि बच्चों का निर्दोष भाव था, कि एक नग्न उन्मत्त आदमी की दशा थी? कौन तय करेगा?

महावीर अपने बाल उखाड़ लेते थे हर वर्ष, ताकि कोई जूं पड़ गए हों तो छुरा या उस्तरा चलाने से तो वे मर जाएंगे, वे न मर जाएं, तो अपने बाल नोच लेते थे। अनेकों ने उनकी पूजा की कि ऐसा तपस्वी...! लेकिन मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बाल उखाड़ने की वृत्ति एक खास तरह के पागलपन में पैदा होती है। जब आदमी में खास तरह का पागलपन होता है तो वह बाल उखाड़ता है। पागलखानों में तुम जा कर देखो। तुम्हें भी कभी-कभी सनक आई होगी बड़े क्रोध में कि उखाड़ ला बाल। कम से कम स्त्रियों को तो बाती है। और अपने उखाड़ने की न आई हो होगी तो कम से कम पत्नी के उखाड़ लो, इसकी तो आई ही होगी। पर बाल उखाड़ने की सनक आती है पागलपन में; एक मौका आता है क्रोध का जब नोच डालो बाल!

महावीर केश लुंच करते थे। यह उनके पागलपन का हिस्सा था या उनकी अहिंसा का—कौन निर्णय करेगा? कैसे होगा निर्णय?

बुद्ध ने छह वर्ष तक तपश्चर्या की, फिर भोजन स्वीकार कर लिया। जो भक्त थे उनके, वे इस बीच छोड़ कर चले गए तत्क्षण कि यह आदमी भ्रष्ट हो गया ः इतने दिन तक उपवास किया और अब भोजन कर लिया! और भोजन भी साधारण न था, खीर थी! यह तपस्वी को शोभा नहीं देता। और खीर भी एक शूद्र की बनाई हुई थी। यह ज्ञानी को शोभा देता है कि शूद्र स्त्री के हाथ से बनाई गई खीर और बुद्ध ने स्वीकार कर ली! और खीर भी दिन में नहीं ली गई थी, रात में खाई गई, जो कि बिलकुल बात गलत है। रात्रि-भोजन! जो पांच उनके अनन्य भक्त थे उन्होंने उसी रात त्याग कर दिया कि यह आदमी भ्रष्ट हो गया! यह गौतम भ्रष्ट हो गया! वे भाग गए।

और उसी रात बुद्ध को ज्ञान हुआ!

अब बड़ा मुश्किल है ये जो पांच छोड़ कर चले गए, इनका भाव ठीक था? बुद्ध को उसी रात ज्ञान हुआ तो बुद्ध इतने निर्मल और सरल हो गए कि न रात का फर्क रहा न दिन का फर्क रहा; न खीर का पता रहा न रूखी-सूखी रोटी का पता रहा; न ब्राह्मण का बोध न रहा न शूद्र का बोध रहा। उसी रात ज्ञान उत्पन्न हुआ, और उसी रात शिष्य छोड़ कर चले गए जो सालों से पीछा कर रहे थे! बहुत मुश्किल है। कौन निर्णय करेगा?

तो, मैं तुमसे न कहूंगा कि तुम निर्णय करो। अगर तुम निर्णय करने में लगे कि जहां हमें ठीक लगेगा वहीं झुकेंगे तो एक बात समझ लेना कि तुम अपने ही सामने झुक रहे हो; क्योंकि तुम्हें

ठीक लगा, इसलिए झुक रहे हो। ठीक किसको लगा? ठीक तुम्हें लगा, तुम्हारी धारणा को जमा। तुम अपनी ही धारणा के सामने झुक रहे हो। अगर मैं तुम्हें ठीक लगता हूं, इसलिए तुम झुकते हो तो तुम झुके ही नहीं हो। ठीक के सामने कोई झुकता है। तुम अपने ही अहंकार कर पूजा कर रहे हो मेरे माध्यम से। नहीं। तो क्या मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि जहां-जहां तुम्हें गलत लगे वहां झुक जाना? यह भी नहीं कह रहा हूं। क्योंकि गलत लगेगा तो तुम झुकोगे कैसे? और अगर जबरदस्ती झुक भी गए तो खोपड़ी झुक जाएगी, अहंकार तो नहीं झुकेगा। तुम्हारे भीतर तो कोई कहता रहेगाः कहां झुक रहे हो? बिलकुल गलत है। लेकिन चूंकि मैंने कहा कि झुको, इसलिए झुक रहे हैं। मगर वह भी कोई झुकना न होगा; क्योंकि जो झुकना सरल न हो, सहज न हो, वह कोई झुकना है? तो फिर मैं क्या कह रहा हूं? मैं यह कह रहा हूं कि तुम इसकी फिक्र छोड़ दो कि तुम किसके सामने झुक रहे हो; मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि तुम झुकने की कला सीखो।

वृक्ष के सामने झुक जाओ अगर आदमियों के सामने झुकने में तुम्हें अड़चन आती हो। पत्थरों के सामने झुक जाओ, पहाड़ों के सामने झुक जाओ। मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि तुम झुकने की कला सीखो। और अगर तुमने झुकने की कला सीख ली तो तुम हैरान होओगेः सत्यसाइ बाबा में भी तुम्हें थोड़ा परमात्मा तो मिल ही जाएगा। झुकने के लिए काफी सहारा होगा मदारी भी है वहां, उसके सामने मत झुकना, मगर मदारी के भीतर भी परमात्मा तो है ही, तुम परमात्मा के सामने झुको; मैं यह कह रहा हूं कि अगर तुमने झुकने की कला सीख ली तो तुम्हें हर जगह परमात्मा दिख जाएगा।

झुकने की कला आंख है। तुम सत्यसाइ बाबा में भी परमात्मा देख लोगे कि परमात्मा जरा भटका हुआ हैः राख वगैरह निकालता है हाथ से, निकालने दो इससे अपना क्या लेना-देना है! राख ही निकाल रहा है, किसी का कोई नुकसान भी नहीं है इसमें। तुम राख निकालने के सामने झुकोगे। उससे कोई लेना-देना नहीं है। परमात्मा थोड़ा मदारी का व्यवहार कर रहा हैः लीला बहुत ढंग की है, यह भी एक हिस्सा है, करने दो। तुम झुकोगे, झुकने के रस के लिए। मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि झुकने में सार है। किसके सामने झुके, इसका सवाल ही नहीं है; झुकना असली गणित है। और अगर तुम झुक गए तो तुम बुरे से बुरे में शुभ को देख लोगे; तुम अंधेरे से अंधेरे में प्रकाश की किरण देख लोगे; तुम व्यसन से व्यसन में डूबे हुए में भी

परमात्मा की छवि देख लोगे। वह असंभव है फिर। वह तुम्हें दिखाई पड़ेगी ही। वह तुम झुके, उसमें ही दिखाई पड़ जाती है। और शेष सबसे तुम्हें क्या लेना है? प्रयोजन नहीं है

तो मेरा जोर तुम्हारे झुकने पर है; किसके सामने झुकना, इस पर नहीं है। वह तुम विचार ही मत करो। अगर वह तुमने विचार किया तो तुम कभी न झुक पाओगे। क्योंकि तुम शुभ से शुभ के भीतर भी खोज ही लोगे कुछ न कुछ गलत; अगर खोज जारी ही रखी तो मिल ही जाएगा कुछ न कुछ गलत। क्यों? क्योंकि अहंकार झुकना नहीं चाहता है और न झुकने के लिए वह बहाने खोज लेता है निरहंकार झुकना चाहता है। वह बहानों के लिए फिक्र ही नहीं करता। वह कहता है, इतना ही काफी है कि तुम हो, हम झुकते हैं।

और फिर मजा यह है कि तुम किसके सामने झुके, इससे तुम्हें उपलब्धि नहीं होती; तुम झुके, इससे उपलब्धि होती है। इसलिए तो पत्थरों के सामने झुकने वालों ने भी पा लिया; वृक्षों के सामने झुकने वालों ने भी पा लिया; नदियों के सामने झुकने वालों ने भी पा लिया। नदियों के सामने झुकने वालों ने भी पा लिया। नदियां क्या देंगी—खाक? गंगा क्या दे सकती है? पहाड़-पत्थर क्या देंगे? काशी-काबा क्या देंगे? लेकिन मिला है बहुत लोगों को इसमें कोई शक नहीं है। वह जो मिला है, वह उनको झुकने से मिला है।

ये तो बहाने हैं, खूंटियां हैं। कोई भी खूंटी काम दे जाती है। तुम्हें कोट टांगना हो तो तुम इसकी बहुत फिकर नहीं करते कि खूंटी सोने की है कि लकड़ी की है; खूंटी नहीं भी मिली तो खीली पर टांग देते हो; खीली नहीं मिलती तो दरवाजे पर ही टांग देते हो। कोट टांगना है तो सोने की और लोहे की कौन फिक्र करता है!

तुम झुकना सीखो। मैं तुमसे यह थोड़ा ही कह रहा हूं कि तुम खोज-खोज कर सत्यसाइ□ बाबा, जलाराम इत्यादि को जा कर झुको; मैं तुमसे कह रहा हूं की कला सीखो। इतने सत्यसाइ□ बाबा घूम रहे हैं, इन्हीं के सामने झुकने लगो।

राह पर चलते अजनबी के सामने झुको। घर आए मेहमान के सामने झुको, अपनी पत्नी के सामने झुको। झुकना सीखो। तुम झुकने में पारंगत हो जाओ और तुम पाओगे कि तुम्हें परमात्मा दिखाई पड़ जाएगा। परमात्मा तो है ही; थोड़े उलटे-सीधे खेल में लगा होगा। यह परमात्मा जाने, तुम्हें क्या लेना-देना है? तुम तो धन्यवाद दोगे कि तुमने हमें एक मौका दिया झुकने का—धन्यवाद! हम अपनी राह चले। अब तुमने विचार करना

छोड़ दिया कि कौन ठीक है, कौन गलत है; अब तो तुमने यही
सोचा कि जहां-जहां अहंकार को उतार की रखने में सहारा मिल
जाता है, उन-उन सभी को धन्यवाद!
ऐसी दशा है भक्त के भाव की। भक्त भगवान के सामने
नहीं झुकता; झुकना सीख जाता है, सब जगह भगवान को पा
लेता है।
आज इतना ही।
सूत्र
किझु न बूझै किझु न सूझै, दुनिया गुझी भाहि।
साई□ मेरै चंगा कीता, नाहीं त हंभी दझां आहि।।
फरीदा जे तू अकलि लतीफ, काले लिखु न लेख।
आपनड़े गिरीबान महि, सिरु नीवां करि देख।।
फरीदा जो तैं मारनि मुकीआं, तिन्हा न मारे घुंमि।
आपनड़े घर जाईए, पैर तिन्हादे चुंमि।।
फरीदा जा तउ खट्टण वेल तां तू रत्ता दुनि सिउ।
मरग सवाई नीहि, जां भरिआ तां लदिआ।।
देखु फरीदा जु थीआ, दाड़ी होई भूर।
अगहु नेड़ा आइआ पिछा रहिआ दूर।।
देखु फरीदा जु थीआ सकर होई विसु।
साइ□ बाझहु आपणे, वेदणु कहीऐ किसु।।
फरीदा कालीं जिन्हीं न राविआ धउली रावै कोइ।
करी साइ□ सिउ पिरहरी, रंगु नवेला होइ।।
साइ□ मेरे चंगा कीता

एक तिब्बती कहावत है: जो जानते हैं कि जानते हैं और जानते नहीं, वे मूढ़ हैं; उनकी छाया से भी दूर रहो। जो जानते हैं कि नहीं जानते और नहीं जानते हैं, वे शिक्षा के योग्य हैं; उन्हें सिखाओ। जो जानते हैं कि जानते हैं और जानते हैं, वे गुरुजन हैं; उनसे सीखो। और जो जानते हैं कि नहीं जानते, फिर भी जानते हैं, वे संतजन हैं; उनकी छाया का सत्संग भी अमृत है।

ज्ञान बड़ी पहेली है। सिर्फ जानने से जो जान लिया जाता है, वह बहुत गहरा नहीं है। जिसे जानने से ऐसा खयाल पैदा हो जाता है कि जान लिया, वह अज्ञात है, यह अज्ञेय नहीं है। जिसे जानने से ऐसी मन की धारणा बन जाती है कि पहचान लिया, जान लिया वह सीमित है, असीम नहीं है। जिसे तुमने जान लिया वह असीम कैसे होगा? वह तुम्हारी मुट्ठी में आ गया। वह विराट आकाश न रहा; वह तुम्हारे हाथ में बंद आकाश है। घड़े में बंद आकाश है। घड़े में बंद भी जो है वह आकाश है; लेकिन उसमें पक्षी उड़ न सकेंगे, उससे मुक्ति न मिलेगी। घड़े में बंद जो है वह भी आकाश है; लेकिन उस घड़े में सूर्य का उदय न होगा। वह आकाश से टूट गया आकाश है; एक पतली मिट्टी की दीवाल दोनों के बीच आ गई है। कोई बहुत बड़ी दीवाल नहीं है, टूट सकती है; लेकिन दीवाल है।

घड़े का आकाश भी आकाश है; लेकिन उसमें अषाढ़ के बादल न उठ सकेंगे, बिजलियां न कड़केंगी, वर्षा न होगी, उत्तप्त भूमि की प्यास न बुझेगी, मोर न नाचेंगे, पक्षी गीत न गाएंगे, वृक्ष हरे न होंगे। घड़े का आकाश रूखा-सूखा आकाश है। उसमें जीवन नाममात्र को है। नाममात्र को ही वह आकाश है।

जिसने जान लिया कि मैंने जान लिया,उसका ज्ञान घड़े में बंद ज्ञान हो गया। लेकिन जिसने जाना और जाना कि नहीं जाना, उसका ज्ञान मुक्त आकाश की तरह है; कोई सीमा नहीं है उसके ज्ञान की। इसलिए जिन्होंने जाना है, जो परम ज्ञानी हैं, उन्होंने जानने का दावा नहीं किया। जिन्होंने दावा किए वे ज्ञानी होंगे, लेकिन परम ज्ञानी नहीं हैं। उनसे तुम कुछ थोड़ा-बहुत सीख सकते हो। उनके साथ थोड़ी दूर तक यात्रा हो सकती है; लेकिन उनके साथ तुम परमात्मा के मंदिर तक न पहुंच पाओगे। परमात्मा के मंदिर तक तुम उनके साथ पहुंचोगे, जिन्होंने जाना भी है और यह भी जाना है कि क्या खाक जाना! सब जानना दो कौड़ी का है। जिन्होंने जानने की सीमा जान ली, उन्होंने ही असीम को जाना है। जिन्होंने जानने की परिधि पहचान ली, उन्होंने जो परिधि के पार है उससे सत्संग किया है।

जिनके भीतर जानने का अहंकार नहीं उनका ज्ञान ही मुक्तिदाई होगा।

फरीद कहता हैः मैं कुछ जानता नहीं!

'किझु न बुझै किझु न सुझै'—न कुछ जानता हूं न कुछ दिखाई पड़ता है। अंधा हूं बिलकुल। समझ नाममात्र को नहीं है।

यह परम ज्ञानी का लक्षण है। इससे छोटे पर राजी मत होना। इससे छोटे पर राजी हुए तो खेल-खिलौने में भटक जाओगे। बहुत ढंग के खेल-खिलौने हैं। जिन्हें तुम शास्त्र कहते हो, वे भी खेल-खिलौने हैं। उनमें भी तुम डूब सकते हो। उनसे भी तुम्हारी परिधि बन जाएगी। उनसे भी तुम क्षुद्र हो जाओगे, विराट न हो सकोगे।

शास्त्र के पार जाना, क्योंकि ज्ञान शास्त्र के पार है। शब्द के पार जाना, क्योंकि बोध शब्द के पार है। जो कहा जा सके उस पर मत रुकना; जो कहा ही न जा सके उसी को खोजना। क्योंकि, शून्य में ही पूर्ण विराजमान है।

किझु न बुझै किझु न सूझै—न मुझे कुछ सूझता, न मुझे कुछ दिखाई पड़ता।

ऐसे ही व्यक्ति को सूझता है और ऐसे ही व्यक्ति को दिखाई पड़ता है।

फरीद परम ज्ञानी की भाषा बोल रहा हैं।

बड़ी मीठी कथा है! फरीद यात्रा पर थे। शिष्यों के साथ तीर्थयात्रा को निकले थे। रास्ते में काशी के करीब से गुजरते थे तो किसी शिष्य ने कहाः कबीर का आश्रम करीब है। हम वहां दो दिन रुकें। तुम दो ज्ञानियों की बातें होंगी, हम पर तो अमृत की वर्षा हो जाएगी। तुम्हारे दो शब्द हम सुन लेंगे आपस में बोलते हुए, हमें तो हीरे मिल जाएंगे, और विश्राम भी हो जाएगा।

फरीद हंसे। फरीद ने कहाः बात तो ठीक ही है, रुकें। ऐसी ही खबर कबीर आश्रम के वासियों को भी लग गई थी कि फरीद आता है; उन्होंने ही कबीर को कहा कि फरीद को रोक ही लें। दो दिन साथ आपका हो जाए...। तुम्हारे सत्संग में हमें परमात्मा का दर्शन होगा। तुम दोनों मिलोगे, उस मिलन में द्वार खुल जाएंगे। हम कुछ सुन लेंगे। रूखा-सूखा भी अगर हमारे हाथ लग गया तो हमारे लिए जीवनदायी हो जाएगा। दो ज्ञानियों की वार्ता अनूठी घटना होगी।

कबीर हंसे। उन्होंने कहाः बात तो ठीक ही है। रोको।

कबीर लेने आए फरीद को गांव के बाहर। दोनों गले मिलें। एक-दूसरे की आंखों में झांका, मुस्कुराए, लेकिन बोले कुछ भी नहीं। दोनों के शिष्य थोड़े बेचैन होने लगे। आश्रम भी आ गया। सोचा था कि चलो, रास्ते पर न बोलते होंगे। आश्रम में दोनों आकर बैठ भी गए, विश्राम भी हो गया; पर वे दोनों हैं कि बैठे ही हैं, न बोले सो न बोले। दो दिन बीत गए। दोनों के शिष्य घबड़ा गए और ऊब गए। क्योंकि शब्द को ही पहचानते हैं, शून्य को तो पहचानते नहीं है। बोलने में जो आ जाए—वही हमें ज्ञान है। बोलने में जो न आए वह तो हमारे लिए है ही नहीं; उसका तो होना न होने के बराबर है।

कबीर और फरीद के बीच बहुत कुछ बहा, बड़ा लेन-देन हुआ—होगा ही—लेकिन दिखाई न पड़ा, पकड़ में न आया; क्योंकि वह निःशब्द का लेन-देन था। वह शास्त्र का लेन-देन नहीं था। दो पंडित होते तो खूब चर्चा होती, बड़ी गंभीर चर्चा होती, बड़े सिद्धांतों की बाल की खाल निकाली जाती। लेकिन यह दो शून्यों का मिलन था। जब दो शून्य मिलते हैं तो एक ही शून्य हो जाता है—वार्तालाप कैसे होगा? दो शून्य दो तो हो ही नहीं सकते; मिलते ही, पास आते ही एक हो जाते हैं—जैसे पानी की दो बूंदें सरकते-सरकते पास आती हैं, फिर एक ही बूंद हो जाती है। नदी सागर में गिरती है। एक नदी दूसरी नदी में गिरती है, एक ही नदी हो जाती है।

पर मैं समझ सकता हूं, तुम भी समझ सकते हो कि अगर दो दिन तुम्हें यहां मेरे पास चुपचाप बैठे रहना पड़े और उस चुप्पी में बड़ी अपेक्षा होगी कि अब, अब कुछ होता है, और कुछ न हो, सारी अपेक्षा खाली चली जाए, तो तुम ऊब ही जाओगे,घबड़ा ही जाओगे।

वे दो दिन बड़े लंबे मालूम हुए। वे काटते ही न थे। सोचा था बड़ा आनंद होगा, लेकिन बड़ी पीड़ा हुई।

ऐसी अंधों की कथा है। अंधे आदमी की यह मुसीबत है। उसे दिखाई नहीं पड़ता, जो दिखाई पड़ना चाहिए। उसे सुनाई नहीं पडता, जो सुनाई पड़ना चाहिए। उसे वही दिखाई पड़ता है जो देखने योग्य ही न था। उसे वही सुनाई पड़ता है जो न कभी सुनते तो चल जाता।

पर दोनों गुरुओं के सामने कुछ कहना मुश्किल था। दो दिन बाद फिर गले मिले, आंखों से आंसुओं की धाराएं बहीं। बड़े प्रेम से और गदगद भाव से विदा दी। जैसे ही दोनों अलग हुए, अब शिष्टाचार की कोई जरूरत भी न थी, जैसे अपना ही गुरु बचा—फरीद के शिष्यों ने कहाः यह क्या पागलपन है? दो दिन खराब हुए। ऐसा ही था तो पहले कह देते तो दो दिन यात्रा और हो जाती। कहीं आगे पहुंच गए होते। दो दिन ऐसे ही गए, नाहक खराब हुए। आप कुछ बोले क्यों नहीं?

फरीद ने कहाः जा सामने था वह बिना बोले समझ सकता था। तुमसे मैं बोलता हूं, क्योंकि तुम बिना बोले न समझोगे। कबीर से बोलता तो मैं नासमझ सिद्ध होता। इसलिए चुप रहा। और बड़ा लेन-देन हुआ, नासमझो, तुम्हें दिखाई न पड़ा? कितनी किरणें यहां से वहां गई, वहां से यहां आई ! कितना हम एक दूसरे में डूबे!

उन्होंने कहाः हमें कुछ दिखाई न पड़ा, कुछ सुनाई न पड़ा। हम तो थे गए। दो दिन काटे न कटे।

कबीर के शिष्यों ने भी पूछा कि यह क्या हुआ? ऐसा तो कभी नहीं होता। और भी पंडितों को हमने आते देखा है, बड़ी बात होती है।

तो कबीर ने कहाः दो अज्ञानी मिलें तो खूब बात हो सकती है; हालांकि उस बात में कुछ अर्थ नहीं होता। दो ज्ञानी मिलें, बात बिलकुल नहीं हो सकती; लेकिन उस बेबात में बड़ा अर्थ होता था। एक ज्ञानी और अज्ञानी मिलें तो बात थोड़ी होती है, उसमें थोड़ा अर्थ भी होता है। दो अज्ञानी मिलें, खूब चर्चा होती है; चर्चा ही चर्चा होती है; चुप रह ही नहीं सकते दो अज्ञानी , बोले ही चले जाते हैं; हालांकि बोलने को कुछ नहीं होताः बिना बात के बात चलती है, बात में से बात चलती है। न बोलते तो कुछ हर्ज न था, बोले तो कुछ लाभ नहीं है। दो ज्ञानी मिले चुप रह जाते है। शून्य में ही संवाद होता है। हां एक अज्ञानी मिले और एक ज्ञानी मिले तो थोड़ी बात चलती है। वह बात ज्ञानी इसलिए चलाता है ताकि तुम भी शून्य हो जाओ। वह तुम्हें शून्य की तरफ शब्दों से इशारा देता है। अज्ञानी इसलिए चलाता है ताकि उसे कुछ शब्द पकड़ में आ जाएं, ताकि वह और थोड़ा ज्ञानी हो जाए।

जब एक अज्ञानी और ज्ञानी मिलता है तो दोनों के मतलब अलग-अलग होते हैं। जब गुरु और शिष्य का मिलन होता है तो तुम यह मत सोचना कि शिष्य उसी लिए मिलता है गुरु से, जिस लिए गुरु शिष्य से मिलता है। दोनों के मिलन का अलग अर्थ होता है। शिष्य चाहता है कुछ सीख ले; गुरु चाहता है कुछ सीखा है इसने, वह भी इसका छीन लिया जाए, छुड़ा दिया जाए। शिष्य आया है कुछ ज्ञान बटोरने; गुरु कोशिश करता है इसका

ज्ञान बिखर जाए तो इसका खुला आकाश इसे उपलब्ध हो जाए। शिष्य कूड़ा-कर्कट बीनने आया है; गुरु इससे छीन लेगा।

गुरु वही है जो तुम्हारे ज्ञान को मिटा दे, क्योंकि तभी परम ज्ञान का जन्म होता है। गुरु वही है जो तुम्हारी दिये की टिमटिमाती पीली-सी ज्योति को फूंक दे, बूझा दे; क्योंकि उसके बुझते ही तुम्हारा आंखें महासूर्य की तरफ उठती हैं। उस टिमटिमाती ज्योति में अटके रहे, छोटे-से क्षुद्र ज्ञान में उलझे रहे तो विराट तुम्हारे द्वार पर नहीं आ पाता।

और ध्यान रखना, एक छोटी-सी किरकिरी, एक छोटा-सा रेत का टुकड़ा आंख में चला जाए तो विराट आकाश दिखाई पड़ना बंद हो जाता है, क्योंकि आंख बंद हो जाती है। उतनी-सी किरकिरी हटाते ही आंख खुल जाती है, विराट आकाश फिर से उपलब्ध हो जाता है। तुम्हारा ज्ञान आंख की किरकिरी है। इसलिए तुम सोचते हो कि किरकिरी तुम्हारा ज्ञान हैः उसके कारण तुम अंधे हो। जिन्होंने जाना है उन्होंने कहा हैः हमने कुछ जाना नहीं है।

किझु न बूझै किझु न सूझै—न मैं कुछ जानता न मैं कुछ देखता।

दुनिया यह गोया धधकती हुई आग है—'दुनिया गुझी भाहि।'

मेरे साइ□ ने अच्छा किया कि मुझे चेता दिया, नहीं तो मैं भी इसमें जलबल गया होता।

'साइ□ मेरे चंगा कीता, नाहीं त दझां आहि।'

न मुझे कुई दिखता, न मुझे कुछ सूझता; न मैं कुछ जानता हूं, और यह दुनिया धधकती हुई आग है। अंधे की तरह चलूंगा—जलूंगा; बिना जाने जलूंगा, बिना सूझे-बूझे चलूंगा-गिरूंगा। अगर नहीं गिर पाया हूं तो इसमें मेरी कोई कृतार्थता नहीं है। अगर नहीं गिर पाया हूं तो यह कोई मेरा कोई कृत्य नहीं है।

यह भक्त की भाव-दशा है। इससे समझने की कोशिश करें। यह बहुत नाजुक, कोमल, फूल की तरह कोमल है। इसे तर्क से नहीं समझा जा सकता; इसे बहुत हार्दिकता में ही भीतर उतारेंगे, बड़ी गहन सहानुभूति में, तो ही समझ में आएगा।

मेरे साइ□ ने अच्छा किया कि मुझे चेता दिया।

अज्ञानी को जब कुछ लग जाता है हाथ तो वह कहता हैः मैंने पाया। ज्ञानी को जब कुछ हाथ लगता है तो वह कहता हैः साइ□ ने अच्छा किया। अज्ञानी को कुछ भी मिल जाए, उससे उसका अहंकार ही बढ़ता है। ज्ञानी को परम भी मिल जाए, परम धन मिल जाए, परम पद मिल जाए, परमात्मा हो जाए, तो भी उसे ऐसा भाव नहीं उठता कि मैंने कुछ किया, मैंने कुछ पाया। वह तो जानता है कि मेरे रहते तो न कुछ पा सकता था, न कुछ कर सकता था।

किझु न बूझै किझु न सूझै—न तो मुझे कुछ सूझता है, न मुझे कुछ दिखाई पड़ता है। कर्ता मैं हो ही कैसे सकता हूं? हां जितनी बार गिरा, मैं गिरा; और जितनी बार उठाया, तूने उठाया।

इसे थोड़ा समझ लें।

जितनी बार भूला, मैं भूला। जितनी बार चेताया, तूने चेताया। जितने कांटे गड़े मेरे कारण; जितने फूल मिले, तेरी कृपा से! सब पाप मरे, सब पुण्य तेरा।

यह भक्त की भाव-दशा है। और अगर तुम्हारा पुण्य भी तुम्हारा ही हो तो जानना कि अभी भक्ति कि द्वार पर तुम नहीं आए। अगर तुम कहते हो कि मैंने इतनी पूजा की है, इतने त्याग, इतनी तपश्चर्या, इतने मंदिर बनाए, तो तुम समझना कि तुमने पुण्य के नाम पर भी पाप ही किए। क्योंकि एक ही पाप है, सब पापों का मूल एक ही पाप है, वह है—मेरेपन का भाव, मैंने किया!

एक बुद्ध का बड़ा अनुयायी बोधिधर्म चीन गया। चीन का सम्राट उसका स्वागत करने आया। चीन के सम्राट ने स्वभावतः सम्राट की भाषा में बात की। उसने आकर बोधिधर्म को कहा कि आप आए, स्वागत! मैंने

हजारों बुद्ध-विहार बनवाए; लाखों छायादार वृक्ष रास्तों पर खड़े किए ताकि राहगीरों को विश्राम मिले; अनेक भोजनालय खोल दिए हैं, हजारों लोग मुफ्त भोजन लेते हैं; हजारों भिक्षु राज्य से पोषण पाते हैं; स्कूल खोले; आश्रम बनवाए; हजारों शास्त्रों को छपवाया, बंटवाया। इस सब पुण्य का अंतिम क्या फल होगा?

बोधिधर्म ने नीचे से ऊपर देखा और कहाः क्षमा करें। सीधे नरक जाएंगे आप। सम्राट तो चौंक गयाः ऐसी बात तो कभी किसी ने कहा न थी। शिष्टाचार भी ध्यान में रखता है कोई। सीधे नरक!

उसने कहाः तुम पागल तो नहीं हो? मैंने इतने पुण्य किया और मैं नरक जाऊंगा!

बोधिधर्म ने कहा। क्या तुमने किया, इससे कोई नरक नहीं जाता; क्या तुमने किया, इससे कोई स्वर्ग नहीं जाता; जब तक कर्ता मौजूद है तब तक तुम नरक जाते हो। तुमने क्या किया, यह बात असंगत है। उसकी तो चर्चा ही मत छेड़ो। तुमने किया, बस इतना काफी है। इतना मैंने जान लिया कि तुमने बनवाए! परमात्मा ने तुम्हारे भीतर से कुछ नहीं किया; तुमने किया! तुम उपकरण न बने, तुम उसके हाथ न बने। तुम अपनी अहम्ता में घिर गए। तुम नरक जाओगे।

सम्राट वू ने—चीनी सम्राट ने—फिर कोशिश की, क्योंकि उसका मन मानने को तैयार नहीं होता था। क्योंकि अब तक तो जो भिक्षु आए थे, उन सबने यही समझाया था कि पुण्य करो, पुण्य करो, दान करोः करोड़ गुना पाओगे। उसने कहाः छोड़ो, स्वर्ग-नरक की बात छोड़ो, क्योंकि कौन देख आया है, न तुम गए न मैं गया। इतना कहो कि मुझे कि मैंने जो किया वह पवित्र कार्य है या नहीं?

बोधिधर्म ने कहाः पवित्र? इससे ज्यादा अपवित्र और क्या होगा? क्योंकि क्या तुमने किया, इससे कोई संबंध नहीं है। तुमने कियाः पवित्र नहीं रहा—उसने कियाः पवित्र हो गया!

इसलिए तो बहुत अनूठी बात गीता में कृष्ण अर्जुन से कह सके हैं कि अगर तू निमित्त हो जा, इन सारे लोगों को काट भी डाल तो भी कोई पाप न लगेगा, क्योंकि करने वाला तू नहीं है। और तू भाग खड़ा हो, संन्यास ले ले, जंगल में चला जा, जटाजूट बढ़ा ले, बैठ जा वहां, पक्षी तेरे जटाजूट में घोंसले बना लें; ऐसा तू अपरिग्रही हो जा, और ऐसा विरागी हो जा; लेकिन अगर तुझे खयाल है कि तूने युद्ध न किया, तो सारे कर्मों का फल तेरे ऊपर है।

कर्म किसी को नहीं दबाता, कर्ता का भाव दबाता है। कर्म नहीं छोड़ने हैं। और जिन्होंने भी तुम्हें सिखाया है कि कर्म छोड़ने हैं, उन्होंने नासमझी की बात सिखाई है, उन्हें कुछ पता न होगा। जाननेवालों ने कहा हैः कर्ता का भाव छोड़ना है। फिर करने दो उसे कर्म। इतना विराट कर्म परमात्मा कर रहा है। तुमने कितनी बड़ी दुकान चलाई है? तुम्हारी दुकान का क्या मूल्य है? परमात्मा की दुकान बड़ी विराट है, चल रही है। अगर तुम छोटी-सी दुकान के कर्म में उलझ के नरक भोगते हो तो परमात्मा तो महानरकों में पड़ेगा।

तुमने किया ही क्या है? एक छोटा-मोटा मकान बना लिया होगा। अगर मकान बनाने से पाप हुआ है तो इस पूरी सृष्टि को बनाने से तो महापाप हुआ है। तुम्हारे मकान की सीमा क्या है, सामर्थ्य क्या है? एक तरफ तुम कहते होः परमात्मा ने सृजन किया सारे जगत का; कभी तुमने सोचा कि इतना सृजन करने के बाद परमात्मा परमात्मा है; क्योंकि वह कर्ता नहीं है। वहां कोई करने वाला नहीं है।

इसलिए मैं कभी नहीं कहता कि परमात्मा स्रष्टा है। मैं कहता हूंः परमात्मा सृजन की ऊर्जा है; एक क्रिएटिव फोर्स है, क्रिएटर नहीं। बनाया है उसने, ऐसा कुछ बनाने वाला नहीं बैठा है—बन रहा है उससे! जैसे पक्षी गीत गा रहे हैं, वृक्षों में खिल रहे हैंः कोई वृक्ष यह थोड़े ही दावा करता है कि मैंने फूल लगाए; कोई पक्षी जा कर राष्ट्रपति से प्रार्थना थोड़े करता है कि पद्मभूषण कब दोगे? इतने दिन से गीत गा रहा हूं...! टुटपूंजिए गायक पदम्भूषण हुए जा रहे हैं। फिल्म अभिनेता पदम्भूषण हुए जा रहे हैं और मैं गा कोई कोयल नहीं कहती; कोई मोर नाचता हुआ नहीं जाता कि यह क्या अन्याय हो रहा है? हम कब से नाच रहे हैं! टुटपूंजिए नाचने वाले पद पा रहे हैं, हमारी कोई फिक्र नहीं।

मोर को मतलब नहीं है। राष्ट्रपति पद्मभूषण लेकर भी जाएं तो वह चौंकेगा, वह हंसेगा। वह कहेगाः इस कागज का हम क्या करेंगे? तुम्हीं संभालो। इसका बोझ और लेकर कहां जाएंगे? नाचने में अड़चन आएगी।

कृत्य का भाव नहीं है। आदमी को हटा दो, फिर तुम खोजने जाओ, तुम्हें कर्ता न मिलेगा कहीं भी, कर्म तो विराट मिलेगा। चांद-तारे चल रहे हैं, सूरज घूम रहा है। मौसम आते हैं जाते हैं। सृष्टि होती है, प्रलय होती है। बनता है, मिटता है। अनंत काल तक सब चलता रहता है! उसका कोई अंत ही नहीं आता। लेकिन कर्ता को तुम कहीं न पाओगे।

और तुम्हारी एक बुनियाद भूल भी तुम्हें खयाल में दिला दूं कि चूंकि तुम परमात्मा को भी कर्ता की तरह देखते हो, इसलिए तुम्हें परमात्मा कहीं नहीं मिलता और कहीं मिलेगा भी नहीं। और परमात्मा को तुम कर्ता की तरह देखते हो, क्योंकि तुम अपने को कर्ता की तरह मानते हो। तो तुम परमात्मा को भी अपनी ही एक विराट प्रतिमा समझते हो; जैसे तुम करने वाले हो, वह बड़ा करने वाला होगा। मात्र का भेद है, गुण का कोई भेद नहीं है। तुम छोटे करने वाले, तो वह होगा बड़ा करने वाला। हमारी दुकान जरा छोटी है, तुम बड़े पंसारी हो। तुम्हारी दुकान बीच बाजार में है, हमारी बाजार के कोने पर है। हम छोटी पान-सिगरेट चाय की दुकान लगाए हुए हैं; तुमने सोने-चांदी, हीरे-जवाहरात बेचे। बाकी हैं हम भी दुकानदार!

ऐसा हुआ, अमेरिका का एक बहुत बड़ा अरबपति ऐंडरु कारनेगी एक दिन घूमने निकला। एक छोटी-सी दुकान लोहे-लंगड की—उस पर तख्ती लगी हैः कारनेगी ब्रदर्स! कारनेगी बंधु। और नीचे कोष्ठक में लिखा हैः ऐंडरु कारनेगी के रिश्तेदार। ऐंडरु कारनेगी बहुत बड़ा अरबपति—अमरीका का सबसे बड़ा धनपति! उसको बड़ी नाराजगी आई कि यह क्या मामला है! उसने फौरन जाकर अपने वकील से कहा कि नोटिस दो, मेरा कोई रिश्तेदार नहीं है। और यह तो मेरा अपमान है। यह कबाड़ी की दुकान और उस पर तख्ती लगा दी है! कारनेगी होगा उसका सरनेम; लेकिन मेरा कोई रिश्तेदार नहीं है।

वकील ने नोटिस दिया। आठ-पंद्रह दिन बाद कारनेगी फिर वहां से निकालता था। उसने गौर से देखा कि तख्ती बदल दी गई है। वहींः कारनेगी ब्रदर्स! कारनेगी बंधु। और नीचे कोष्ठक में लिखा हैः ऐंडरु कारनेगी के कोई रिश्तेदार नहीं। मगर क्या फर्क पड़ता है? वे ऐंडरु कारनेगी को घुसाए ही हुए हैं। पहले रिश्तेदार थे, अब नीचे लिख दिया कि कोई रिश्तेदार नहीं है—बात खत्म; बाकी ऐंडरु कारनेगी की याद वे दिला रही ही रहे हैं। उसको बड़ा गुस्सा आया। वह अंदर गया और दुकानदार को कहा कि तुम्हें समझ नहीं आती? वकील ने नोटिस दिया है।

उसने कहाः सब समझ में आती है। तुम होओगे बड़े दुकानदार, हम छोटे दुकानदार! हम लोहा-लंगड़, कबाड़ बेचते हैं; लेकिन तुम जो चीजें बनाते हो उनसे ही यह कबाड़ बनता है। तुम बड़े-बड़े कारखाने चलाते हो, हम छोटा चलाते हैं; बाकी रिश्तेदार तो हम हैं ही। दुकानदार हम भी, तुम भी दुकानदार। वह तो झंझट है कि अदालत में हम जाना नहीं चाहते, इसलिए लिख दिया कि कोई रिश्तेदार नहीं।

तुम्हारे मन में भी जो परमात्मा की धारणा है वह अपने ही को कई गुणित बड़ा करके बना दी गई है। तुम ही हो बहुत बड़े होकर। अगर तुम गौर से देखोगे तो तुम अपने को ही अपनी परमात्मा की प्रतिमा में पाओगे। मात्रा का भेद होगा, गुण का भेद न होगा। इसलिए तुम कर्ता हो, तुम अहंकारी हो तो तुम्हारा परमात्मा भी अहंकारी और कर्ता है। तुम सीमित हो, तुम्हारा परमात्मा भी सीमित है। तुम्हारी देह है, तुम्हारे परमात्मा की भी देह है। तुम जैसे अपने को देखते हो ऐसे ही तुम परमात्मा को खोजने चले जाते हो।

मेरे पास भी लोग आते हैं। वे कहते हैंः परमात्मा को पाना है; कहां खोजें? मैं उसने पूछता हूं कि तुमने कोई ऐसी जगह देखी है जहां वह न हो? बजाय परमात्मा को खोजने के तुम यह खोजो कि वह कहां नहीं है, ज्यादा ठीक होगा।

ना कानों सुना ना आंखों देखा

नानक मक्का गए, मदीना गए। वे मक्का में सो गए काबा के पत्थर की तरफ पैर करके। पुजारी नाराज हुए। क्रोध में आकर उन्होंने नानक को कहा कि हमने तो सुना है तुम एक ज्ञानीपुरुष हो; और तुम परमात्मा के मंदिर की तरफ पैर करके सो रहे हो? नानक ने कहा कि मैं भी बड़ी चिंता में पड़ा था, जब सोने को गया। मैंने सब तरफ पैर करके देखे, पाया, सभी जगह वहीं है। तो तुम ऐसा करो कि तुम वहां मेरे पैर कर दो जहां वह न हो। ये पैर रहे, मैं कोई बाधा न डालूंगा; तुम पैर उठाओ और कर दो।

मैं मानता हूं कि कहानी इतनी ही है, लेकिन और थोड़ी आगे बढ़ गई है; वह कविता मालूम होती है, लेकिन अर्थपूर्ण है। कहते हैं पुजारियों ने उनके पैर जहां-जहां किए , वहीं काबा का पत्थर घूम गया। यह बात थोड़ी अतिशय हो गई है। कविता तक ठीक है। लेकिन मतलब तो सही है। मतलब इतना ही है कि कहीं भी पैर करो वहीं काबा का पत्थर है। सभी पत्थर काबा के हैं, क्योंकि सभी पत्थरों में परमात्मा है। वह जिन मूर्तियों को तुमने खोद लिया है, उनमें ही नहीं है; अनगढ़ पत्थरों में भी वही है। अभी खुदा न होगा, कभी कोई कारीगर मिल जाएगा, शोद देगा; लेकिन है तो मौजूद।

एक बहुत बड़े चित्रकार और मूर्तिकार माइकल ऐंजलो से किसी ने पूछा कि तुम इतने अदभुत हो कि अनगढ़ पत्थरों में से चीजें निकाल देते हो! उसने कहाः मैं निकालता नहीं; वे तो वहां मौजूद हैं। मैं तो सिर्फ जो बेकार पत्थर है उसको झाड़ देता हूं; छैनी उठा कर, जो-जो नहीं चाहिए उस पत्थर को अलग कर देता हूं। मूर्ति तो वहां मौजूद थी ही सदा से, सिर्फ चाहती थी कि कोई आ कर कचरे को अलग कर दे, सार्थक प्रगट हो जाएगा।

परमात्मा सब जगह है। परमात्मा ही है। परमात्मा सब में है, ऐसा नहीं है; सब ही परमात्मा है। उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

ज्ञानी को जिस दिन समझ में आता है कि न मेरा कोई कर्तृत्व है, उस दिन परम घटना घटती है।

न मैं कुछ जानता हूं, न देखता हूं। दुनिया धधकती हुई आग है। अपने से चलता तो जरूर गिरता। और जब जब अपने से चला तो बराबर गिरा। अपने से चलना ही गिरना है।

मेरे साइ ने अच्छा किया कि मुझे चेता दिया।

चेतावनी उसकी है, अज्ञान मेरा है, दिन उसका है। अंधकार मेरा है, सूरज उसका है।

यह भाव की दशा है! और यह भाव की दशा बड़ी महत्वपूर्ण है, बड़ी गहरी है। जिसने इस दशा को ठीक से पकड़ लिया, उसे कहें जाने की जरूरत नहीं है; परमात्मा स्वयं उसके पास चला आएगा। जैसे-जैसे यह भाव-दशा गहरी होगी, वैसे-वैसे परमात्मा तुम पाओगे कि पास ही था, उघाड़ना था। और परदा भी उसने नहीं डाला था; तुम्हारी ही नासमझी का परदा था उसके ऊपर। अच्छा हो कहना कि उसके ऊपर परदा था ही नहीं; तुम्हारी नासमझी का परदा तुम्हारे ही ऊपर था।

मेरे साइ ने अच्छा किया, मुझे चेता दिया; नहीं तो मैं इसमें कभी का जल-बल गया होता।

साइ मेरे चंगा कीता...।

यहां एक बात और समझ लेनी चाहिए कि भक्ति परमात्मा से निजी संबंध जोड़ता है। मेरे साइ! वे सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि फरीद, साइ ने अच्छा किया कि मुझे चेता दिया; लेकिन वे कहते हैंः मेरे साइ!

इसे थोड़ा समझ लेना चाहिए। क्योंकि परमात्मा से दो तरह के संबंध हो सकते हैं जैसा मैंने बार-बार कहा। एक ध्यान का संबंध है और एक प्रेम का संबंध है। प्रेम में परमात्मा मेरा है। ध्यान में परमात्मा परमात्मा नहीं, सिर्फ सत्य मात्र है। ध्यानी का जो शब्द है परमात्मा के लिए, वह सत्य है। सत्य रूखा-सूखा शब्द है, गणित और तर्क का है; उसमें कहीं कोई रसधार नहीं है। सत्य शब्द को तुम कहीं से भी खोजो, उसमें तुम कहीं फूल खिलते न पाओगे; क्योंकि उससे कोई मेरे हृदय का नाता ही नहीं जुड़ता। सत्य शब्द को ही सोचने बैठो तो

तुम कोई कविता पैदा होते सत्य में से न देखोगे, कोई नाच पैदा न होगा, कोई धुन न बजेगी, कोई बांसुरी न बजेगी। सत्य कोरा-कोरा है। उससे कोई संबंध जोड़ना असंभव है। तुम कितने ही पास आ जाओ, तुम सत्य में डूब न पाओगे; उसमें डुबाने की सामर्थ्य नहीं है। सत्य सिद्धांत बन जाएगा, लेकिन सत्य कभी तुम्हारी आंतरिक सिद्धि न बनेगा। जैसे ही मेरे का संबंध जुड़ता है, सत्य का नहीं रह जाता, परमात्मा प्रगट होता है। परमात्मा यानी प्रीतम, साइ।

भक्त अपने को तोड़ देता है और परमात्मा से जोड़ लेता है। वह कहता है: मैं तो नहीं हूं, तुम्हीं हो। तुम्हीं मेरे मैं हो। तुम्हारे अतिरिक्त मेरा कुछ भी नहीं है। सब गंवा देता है, परमात्मा को पकड़ लेता है।

मेरे साइ ने अच्छा किया कि मुझे चेता दिया।

'फरीदा, अगर तू तेज अकल रखता है, तब दूसरे के खिलाफ काले अंक मत लिख। अपना सिर झुका और अपने ही गरेबां की तरफ देख।'

'फरीदा जे तू अकलि लतीफ, काले लिखु न लेख। आपनड़े गिरीबान महि, सिरु नीवां करि देख।।'

फरीदा, अगर तू तेज अकल रखता है...।

अब यह जरा सोचने जैसा है। कृष्णमूर्ति निरंतर लोगों से कहते हैं: माइंड इज़ मीडियाकर। जिसको तुम बुद्धिमान कहते हो, वह बड़ी साधारण है, मध्यमवर्गीय है, करीब-करीब मूढ़ता जैसी है। तुम्हारे बुद्धिमानों को भी तुम वहीं पाओगे जहां तुम अपने मूढ़ों को पाते हो। हो सकता है, मूढ़ पहली सीढ़ी पर बैठा हो, बुद्धिमान आखिरी सीढ़ी पर बैठा हो; लेकिन तुम उनकी मंजिल में फर्क न पाओगे। तुम्हारे मूढ़ और तुम्हारे बुद्धिमान एक सीढ़ी के पायदान हैं; अलग-अलग नहीं हैं। तारतम्य मूढ़ थोड़ा कम बुद्धिमान है, तुम्हारा बुद्धिमान थोड़ा कम मूढ़ है; पर इतना ही फर्क है—डिग्री का। उन दोनों के बीच एक तारतम्य है, श्रृंखला कहीं टूटती नहीं, सिलसिला एक ही है। तुम्हारा मूढ़ और तुम्हारा पंडित एक ही लकीर के दो छोर हैं। इसलिए जिसको तुम पांडित्य कहते हो, बुद्धिमत्ता कहते हो, वह कोई बुद्धिमत्ता नहीं है, वह केवल मूढ़ता को छिपा लेने की कुशलता है।

मूढ़ता को छिपा लेना बहुत आसान है, मिटाना बहुत कठिन है। छिपा लेने का मतलब ऐसा ही है जैसे एक घाव है, उस पर मल्हमपट्टी कर ली, ऊपर से सुंदर कपड़े पहन लिए, छिप गया। दूसरों को दिखाई न पड़ेगा, लेकिन तुम्हारे भीतर तो सड़ांध बढ़ती ही रहेगी। दूसरों को पता भी न चलेगा, लेकिन तुम्हें कैसे पता होना बंद हो जाएगा? और छिपाया हुआ घाव सूखता भी नहीं है, क्योंकि सूखने के लिए भी खुली सूरज की रोशनी चाहिए, हवा का प्रवाह चाहिए; और भी सड़ता है, नासूर हो जाएगा, कैंसर बनेगा, तुम्हारे तन-प्राण में सब तरफ फैल जाएगा, मवाद ही मवाद हो जाएगी । देर लगेगी, आज कुछ आज नहीं हो जाएगी, वर्षों लगेंगे, शायद तुम इतना छिपाओ कि किसी को भी पता न चले लेकिन तुम एक घाव की तरह जीवित रहोगे, घाव की तरह ही मरोगे। तुम्हें तो पता ही होगा। अपने को तुम कैसे धोखा दोगे?

कहावत है अगर कोई व्यक्ति दूसरों को धोखा देना चाहे, थोड़े दिन तक दे सकता है; सदा के लिए नहीं। मैं मानता हूं कि कोई अगर दूसरों को धोखा देना चाहे, सदा के लिए दे सकता है; क्योंकि जो थोड़े दिन संभव है, वह सदा संभव क्यों नहीं है? थोड़ी और कुशलता चाहिए तो मैं कहावत को बदल दिया हूं। मैं कहता हूं: दूसरों को धोखा देना हो, तुम सदा के लिए दे सकते हो; लेकिन अपने को धोखा तुम एक क्षण के लिए भी नहीं दे सकते हो। कैसे दोगे अपने को धोखा ? कौन देगा धोखा और किसको देगा? वहां भीतर तुम एक हो।

मूढ़ता छिपाई जा सकती है। शास्त्रों को लपेट लो अपने चारों तरफ, मूढ़ता छिप जाएगी। वेद को कंठस्थ कर लो, मूढ़ता छिप जाएगी। गीत दोहराने लगो, रोज पाठ करने लगो, मूढ़ता छिप जाएगी। लंबे शब्द सीख लो तर्क की थोड़ी व्यवस्था सीख लो, विश्लेषण की कला सीख लो—मूढ़ता छिप जाएगी।

तुर्गनेव की एक छोटी-सी कहानी है। एक गांव में एक महामूर्ख था। गांव भर उस पर हंसता था। वह जो भी कुछ कहता, लोग फौरन हंस देते—बिना ही सुने कि वह क्या कह रहा है, क्योंकि लोगों को पक्का ही था

कि वह महामूर्ख है, वह कहेगा ही मूर्खता की बाम। वह खड़ा ही होता कि लोग हंसने लगते, अभी उसने कुछ कहा ही नहीं था। वह बड़ा परेशान था। एक फकीर गांव में आया था, उससे उसने जा कर कहा कि आप अकेले आदमी मैंने जीवन में पाए जो मेरी बात सुन कर हंसते नहीं, बल्कि गंभीर हो जाते हैं, सोचने लगते हैं। पूरा गांव हंसता हैं। मैं घबड़ा गया हूं। मेरा बड़ा अपमान होता रहता है। आप कोई तरकीब बताएं।

उस फकीर ने कहा। तरकीब आसान है। अब तू एक काम कर—कोई भी कुछ बोल रहा हो...वह कह रहा हो कि बाइबिल बड़ी अदभुत किताब है, तो कहनाः क्या, क्या रखा है बाइबिल में? कौन-सी अदभुत बात लिखी है? हजारों शास्त्र हैं जिनमें वहीं बात लिखी है। कौन-सी नई बात कही है, बोलो? कोई कहे, सूरज बहुत सुंदर है? आग का गोला है। सौंदर्य कहा है? कोई कहे, चांद देखो, कैसा सुंदरी के मुख जैसा! तो फौरन खड़े हो जाना, कहना, यह जरा जरूरत से ज्यादा बात हो रही है। कहां सुंदरी का मुख और कहां चांद! इनमें कोई संबंध है? चांद कितना बड़ा, सुंदरी का मुख कितना छोटा! बस तू खंडन कर सात दिन तक, फिर मेरे पास आना। तू किसी चीज में हां तो भरना ही मत; ना करना।

उसने सात दिन तक यही किया। गांव में खबर फैल गई कि यह महामूर्ख तो महाज्ञानी हो गया! इसके सामने कुछ भी कहो, फौरन खंडित कर देता है! तुम कहो यह कविता सुंदर है, वह कहता हैः इसमें क्या सखा है? यह सब शब्दों की बकवास है। शब्द जोड़ कर रख दिए, इसमें क्या रखा है?

ध्यान रखना जीवन में अगर कोई खंडन करने लग जाए तो तुम कुछ भी सिद्ध न कर सकोगे। खंडन करना बहुत आसान है। सिद्ध करना करीब-करीब असंभव है। इसलिए तो नास्तिक को कोई भी आस्तिक कभी भी राजी नहीं कर पाता; क्योंकि नास्तिक को कुल खंडित करना है, आस्तिक को कुछ सिद्ध करना है। सिद्ध करना बहुत कठिन है; मिटाने में कितनी देर लगती है? ताजमहल बनाने में कितनी देर लगी? मिटाने में कितनी देर लगेगी? एक बम पटक दो और मिट जाएगा एक आदमी मिटा देगा, एक क्षण भर में मिटा देगा। बनाने में कहते हैं चालीस वर्ष लगे। हजारों मजदूर काम करते रहे। लाखों लोग संयुक्त रहे। हजारों कारीगर रहे। वर्षों लगे । कहते हैं तीन पीढ़ीयां लग गई लोगों की। पहली पीढ़ी काम करने आई थी, वह खत्म हो गई, तब कहीं बन कर तैयार हो पाया। मगर मिटाने में कितनी देर लगेगी?

खंडन मिटाना है। इसलिए तुम पंडितों को हमेशा खंडन करते हुए पाओगे। संतों को सदा सिद्ध करते पाओगे पंडितों को सदा खंडन करते पाओगे। संतों को सदा कुछ बनाते पाओगे पंडितों को सदा मिटाते पाओगे। वह सरल काम है। उससे मूढ़ता बड़ी आसानी से छिप जाती है, और कोई भी तुम्हें सिद्ध नहीं करके बता सकता। अगर तुम कह दो कि कमल के फूल में कौन-सा सौंदर्य है, सिद्ध करो, तो कौन सिद्ध करेगा? या तो सौंदर्य दिखाई पड़ता; सिद्ध करने का क्या उपाय है? क्या रास्ता है, कैसे सिद्ध करोगे?

सौंदर्य तो एक अनुभूति है। कोई हाथ में निकाल कर बताया नहीं जा सकता कि यह रहा सौंदर्य। सौंदर्य है; लेकिन तुम अगर देखने को राजी नहीं तो दुनिया भर की आंखें भी इकट्ठी हो जाएं, तो भी तुम्हें दिखाया नहीं जा सकता।

परमात्मा है, अगर तुम उसको देखने को राजी हो। इसलिए तो संत कहते हैं, श्रद्धा के बिना उससे कोई संबंध नहीं जुड़ता। लेकिन नास्तिक कहता है, पहले दिखा दो तो श्रद्धा करने को हम तैयार हैं। और बिना श्रद्धा के वह दिखाई नहीं पड़ता। सौंदर्य का बोध हो तो सौंदर्य दिखाई पड़ता है चांद में, फूल में; सौंदर्य का बोध ही न हो तो नहीं दिखाई पड़ता।

तो, एक तो मूढ़ता को छिपा लेना। शास्त्र बड़े सुगमता से उपलब्ध हैं। उनको पढ़ डालो, उनके शब्द सीख लो, सिद्धांत सीख लो—तुम्हारा अज्ञान दब जाएगा, मिटेगा नहीं। हां, दूसरे के सामने तुम अपने को ज्ञानी सिद्ध कर सकते हो।

ना कानों सुना ना आंखों देखा

मैंने सुना है कि रामतीर्थ अमेरिका से लौटे। अमेरिका में उनका बड़ा स्वागत हुआ था। लोग पागल हो गए थे। रामतीर्थ की वाणी में कुछ खूबी थी। हृदय के स्वर थे। ऐसे बुद्धि से न आए थे, प्राणों से जन्मे थे। रामतीर्थ की मस्ती एक ताजगी लिए हुई थी। बोलते थे तो फूल झरते थे तो फूल झरते थे। और जीवन तर्क का नहीं था, बड़े गहन काव्य का था।

एक बगीचे में बैठे थे तो किसी से पूछ लिया आकर कि हमने सुना है कि कृष्ण ने जब बांसुरी बजाई तो दूर-दूर से गोपियां और गोप भागे चले आते हैं। मेरी नग्नता में क्या रखा है, कृष्ण की बांसुरी की बात ही क्या कहनी! जब वह बजेगी तब तुम जानोगे। जब तक नहीं बजी, तब तक तुम न जानोगे।

लोग पागल थे।

अमेरिका का प्रेसिडेंट रामतीर्थ को मिलने आया था और बड़ा आनंदित हुआ था, क्योंकि रामतीर्थ अपने को कहते ही बादशाह थे। वे कहते थेः बादशाह राम! उन्होंने एक किताब लिखी थी, उसका नाम हैः बादशाह राम के छह हुक्मनामे। वे अपने को बोलते ही नहीं थे, मैं तो कहते ही नहीं थे। वे यह कहते थे कि राम बादशाह! सम्राट अपने को कहते थे। था कुछ भी नहीं पास में—एक लंगोटी, एक भिक्षापात्र! अमेरिका के प्रेसिडेंट ने कहाः और सब तो मेरी समझ में आता है, लेकिन अपने को बादशाह क्यों कहते हैं? आपके पास तो कुछ भी नहीं।

रामतीर्थ ने कहाः इसलिए! जिसके पास कुछ है, अभी उसकी बादशाहत में कमी है। जो कुछ पकड़े हुए है वह गरीब है। पकड़ता गरीब है। सारी दुनिया मेरी है। चांद-तारे मैंने बनाए; इनको मैं ही चलाता हूं। पकड़ना क्या है? मेरी कोई चाह नहीं है, इसलिए बादशाह हूं।

वे लौटे अमेरिका से। बड़े गहरे आनंद में थे। स्वभावतः उनको लगा काशी जाऊं; जो अमरीका में घटना घटी है, काशी के समझदार उसे समझ पाएंगे। और तो कौन समझेगा भारत में? जो घटा है, जो अपूर्व घटा है, लाखों लोगों के हृदय में जो एक धुन बज गई है, काशी में लोग समझ पाएंगे। काशी के पंडित...। उनसे भूल हो गई। वे जब काशी गए और उन्होंने अपना पहला प्रवचन दिया, कोई परिणाम न हुआ, बल्कि लोग बेचैन मालूम पड़े। और जब वे बोल चुके तो एक पंडित ने खड़े हो कर कहा—जो काशी का उस समय का सबसे बड़ा पंडित था—उसने कहा कि संस्कृत ही नहीं आती है? रामतीर्थ ने कहा कि नहीं, संस्कृत तो नहीं आती। वह हंसने लगा। उसने कहाः क्या खाक ब्रह्मज्ञान आएगा जब संस्कृत ही नहीं आती? पहले संस्कृत की व्याकरण सीखो।

इतना कुल परिणाम काशी में हुआ! जहां कोई कुछ न जानता था, वहां लोगों ने इतना प्रेम और इतना अहोभाव दिया! काशी में जहां उनको खयाल था, जानने वाले हैं, वहां उन्होंने मूढ़ पाए, जो भाषा और व्याकरण से उलझ हैं। उन्होंने काशी छोड़ दी।

पांडित्य मूढ़ता को छिपाने का ढंग है। व्याकरण,भाषा, शास्त्र बड़ा आसान है। ज्ञान बड़ा कठिन है। ज्ञान बाहर से भीतर नहीं आता, पांडित्य बाहर से भीतर आता है। ज्ञान भीतर से बाहर जाता है। उनकी यात्राएं अलग हैं।

फरीद कहते हैंः फरीदा जे तू अकलि लतीफ—अगर सच में ही तेरे पास बुद्धि हैं, सच में ही अगर तू अक्ल-लतीफ है—क्योंकि झूठी बुद्धियां तो चारों तरफ दिखाई पड़ रही हैं, उनकी बात ही मत करो; झूठी बुद्धियों ने तो इतनी ही बुद्धिमत्ता जुड़ाई है कि अज्ञान को छिपा लिया है—लेकिन अगर तू सच में ही बुद्धिमान है तो फिर पहला काम बुद्धिमानी का यह है कि तू दूसरे के खिलाफ काले अंक मत लिख, तू दूसरे की बुराई मत देख।

यह बुद्धिमान का पहला लक्षण है; क्योंकि दूसरे की बुराई देखने से क्या होगा? और थोड़ा सोचना कि हम दूसरे की बुराई देखने में इतनी आतुरता, इतनी उत्सुकता क्यों लेते हैं? दूसरे की बुराई देखना स्वयं की बुराई छिपाने का ढंग है। उसके पीछे बड़ा आयोजन है। दूसरे की बुराई देख कर तुम्हें राहत मिलती है।

रोज सुबह तुम अखबार पढ़ लेते होः देख लेते हो, इतने डाके पड़े, इतनी हत्याएं की गइ, तुम्हारे मन में बड़ा भाव पैदा होता है कि हम ही भले, न डाका डालते हैं, न हत्या करते हैं। कभी किसी की थोड़ी जेब काट ली, इतना छोटा-मोटा तो करना ही पड़ेगा, जब दुनिया में इतना सब हो रहा है! जब दुनिया में इतना सब हो रहा है...! बुराई देख कर तुम्हें राहत मिलती है कि मेरी बुराई क्या है, कुछ भी नहीं हैः चलने दो, कोई हर्जा नहीं है। इस दुनिया में जीना है तो इतना तो चलाना ही पड़ेगा, नहीं तो मारे जाओगे। यह तो व्यावहारिक है। हम कोई बहुत बड़े काम नहीं कर रहे हैं, कुछ भी नहीं कर रहे हैं। अब छोटा-मोटा तो चलेगा कि ग्राहक से पांच रुपये की जगह साढ़े पांच रुपये ले लिए, आठ आने के पीछे क्या हमको नरक भेजोगे! और अगर यह सब दुनिया में चल रहा है तो नरक में हमको जगह न मिलेगी? सब लोग नरक में होंगे। हमारा क्यू में नंबर आनेवाला भी नहीं है।

दूसरे की बुराई को देख कर खुद की बुराई छोटी हो जाती है। इसलिए तुम दूसरे की बुराई भी देखते हो और दूसरे की बुराई को बड़ा करके भी देखते हो। वह तरकीब है सांत्वना की। फिर क्रांति की कोई जरूरत नहीं , तुम्हें बदलने की कोई जरूरत नहीं; जब दुनिया बदलेगी तब...! इस बुरी दुनिया में तो थोड़ा बुरा होना ही पड़ेगा। यहां शुद्ध होने का उपाय नहीं है। यहां संत हो गए तो मूढ़ सिद्ध होओगे, लोग लूट लेंगे। इतनी व्यवहार-कुशलता तो चाहिए ही!

तो अपनी बुराई व्यवहार-कुशलता मालूम होने लगती है, जब सबकी बुराई दिखाई पड़ती है।

संत अगस्तीन एक ईसाई फकीर हुआ। उसने कहा हैः हे परमात्मा, जब मैं दूसरों की बुराई देखता हूं तो मुझसे पुण्यात्मा, कोई जगत में नहीं दिखाई पड़ता। और जब मैं अपनी बुराई देखता हूं तो मुझसे बड़ा पापी कोई दिखाई नहीं पड़ता। अब मैं क्या करूं? मैं किस तरफ देखूं?

मूढ़ दूसरे की तरफ देखेगा; क्योंकि वह मुफ्त में पुण्यात्मा हो जाने का मजा है; बिना पुण्यात्मा हुए पुण्यात्मा हो जाने की सुविधा है उसमें—दूसरे का पाप देखो...!

तुमने कहानी सुनी है, अकबर ने एक लकीर खींच दी अपने दरबार में और कहा अपने दरबारियों को, इस लकीर को बिना छुए छोटी कैसे हो? दरबारियों ने बहुत सिर पचाया, वह न हो सके। बीरबल उठा और उसने एक बड़ी लकीर खींच दी। उस लकीर को छुआ भी नहीं, बड़ी लकीर नीचे खिंचते ही वह छोटी हो गई।

जो बीरबल ने किया, वही तुम कर रहे हो, वही पूरा संसार कर रहा है। अपनी लकीर को छोटा दिखाने के लिए दूसरे की लकीर को बड़ा खिंच दो—इतना बड़ा खिंच दोः सारे दुनिया के पापों का पता लगा लो, फिर तुम्हें अपने पाप दिखाई न पड़ेंगे; तुम तो करीब-करीब शुद्ध-बुद्ध मालूम होने लगोगे, क्योंकि पाप या पुण्य तुलनात्मक हैंः अगर सारा जगत अंधकार में डूबा है, तो तुम्हारा टिमटिमाता मिट्टी का दिया भी काफी प्रकाश है। अगर सारा जगत सूर्य के प्रकाश में है, तुम्हारा मिट्टी का दीया प्रकाश नहीं है, अंधकार है। तुलना की बात है।

फरीद कहता है—उसने ठीक सूत्र दे दिया है—वह बुद्धिमान आदमी के लिए असली सूत्र है। जो यह न कर रहे हों, वे बुद्धू हैं।

फरीदा जे तू अकलि लतीफ—अगर तू सच में ही बुद्धिमान है, अगर तू तेज अक्ल रखता है, तो दूसरे के खिलाफ काले अंक मत लिख; क्योंकि वह अपने को धोखा देने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। और फिर जितना ही हम दूसरे के खिलाफ काले अंक लिखते हैं, उतना ही धीरे-धीरे ऐसा अहसास होता है कि मेरी कमियों के लिए भी दूसरे जिम्मेवार नहीं हो। क्या करोगे तुम? जहां शोषण चल रहा है, वहां तुम्हें चोर होना ही पड़ेगा।

मार्क्स ने चोरों के मन को बड़ी राहत दे दी। ईर्ष्या तो स्वाभाविक है। जहां कुछ लोगों के पास कम है वहां ईर्ष्या तो होगी ही। इसलिए ईर्ष्या से छुटकारे का कोई उपाय नहीं है, जब तक कि संपत्ति का समान वितरण न हो जाए।

मार्क्स ने मनुष्य के मन की बहुत-सी बीमारियों को सुरक्षा दे दी, सहारा दे दिया।

बुद्ध कहते हैंः महत्वाकांक्षा छोड़ो। मार्क्स कहता हैः महत्वाकांक्षा छूट कैसे सकती है जहां और शेष सारा जगत महत्वाकांक्षी है; तुम ही पिट जाओगे। बुद्ध कहते हैंः ईर्ष्या न करो। मार्क्स कहता हैः ईर्ष्या तो होगी ही, जब तक कि संपत्ति का विभाजन नहीं हो जाता। तब तक किसी के पास ज्यादा है तब तक कैसे मैं शांत हो सकता हूं? अशांति तो रहेगी।

फिर मार्क्स ने जो किया उससे भी बड़ा काम फ्रायड ने किया। फ्रायड लोगों को बताया कि तुम क्या कर सकते हो; तुम्हारे मां-बाप ने जन्म के साथ ही तुम्हारे मन को संस्कारित कर दिया है, जिम्मेवारी उनकी है। अगर तुम हत्यारे बन गए तो इसका कारण जरूर तुम्हारे मां और पिता के संस्कारों में है। हो सकता है, मां ने तुम्हें भरपूर दूध नहीं दिया, तुम्हें क्रोध पैदा करवा दिया। हो सकता है, मां-बाप ने तुम्हें बचपन में नहीं प्रेम दिया; और जिस बच्चे को प्रेम नहीं मिलता उसकी विध्वंस की आकांक्षा पैदा हो जाती है। तो कसूर तो तुम्हारे मां-बाप का है। और मां-बाप से भी पूछो तो उनका भी क्या कसूर है, वह उनके मां-बाप का है, और उनके मां-बाप का उनके मां-बाप का। कसूर किसी का भी नहीं है। अगर इसको ठीक से समझो तो अगर परमात्मा ने संसार बनाया है तो उसी का कसूर है, क्योंकि वही पहला बाप है।

मार्क्स ने कहा कि अगर किसी बच्चे को बदलना हो तो उसके परदादाओं को बदलना जरूरी है। अब यह तो हो ही नहीं सकता। तो किसी बच्चे को बदलना हो तो तुम्हारे बाप के बाप और उनकी मां और मां के बाप और मां की मां—उनको बदलना पड़ेगा। वे तो कब्र में होंगे। अगर उनको कब्र से भी निकाल लो तो बदलने को राजी न हों। अगर जिंदा भी हों तो वे आखिरी घड़ी में होंगे, जहां कि बदलाहट नहीं होती । और मार्क्स ने कहा कि सात साल की उम्र तक तो सब संस्कार तय हो जाते हैं, फिर कुछ किया नहीं जा सकता। इसलिए फ्रायड ने और सहारा दे दिया। उन्होंने कहाः तुम चोर हो तो तुम चोर ही हो सकते थे। हत्यारे हो, हत्यारे ही हो सकते थे।

इन दो व्यक्तियों ने पिछले सौ साल में पश्चिम का मनोविज्ञान निर्मित किया और वही मनोविज्ञान अब सारी दुनिया पर फैल गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि कोई आदमी अपनी बुराई के लिए स्वयं को जिम्मेवार नहीं समझता है।

और जिस व्यक्ति के जीवन में यह खयाल न हो कि मैं जिम्मेवार हूं, उसके जीवन में रूपांतरण नहीं हो सकता। रूपांतरण होगा ही कैसे? तब तो सारी दुनिया बदलेगी तब मैं बदलूंगा। यह कभी होनेवाला नहीं है; और कभी होगा भी तो मैं न रहूंगा।

फरीदा जे तू अकलि लतीफ—अगर तू सच में ही बुद्धिमान है फरीद तो एक काम कर। यह बुद्धिमान का पहला लक्षण हैः तू दूसरे के खिलाफ काले अंक मत लिख; क्योंकि जिसने अपने को बदलने की कुंजी हाथ में आ गई।

अगर मेरे दुख के लिए मैं ही जिम्मेवार हूं तो मेरे सुख के लिए भी मैं रास्ता बना सकता हूं। अगर मैं आज दुखी हूं, मैंने ही अपने दुख के बीज बोए हैं तो कल मैं सुखी हो सकती हूंः मैं सुख के बीज बो सकता हूं। लेकिन अगर तुमने बीज बोए हैं और फसल मुझे काटनी पड़ती है तो फिर मेरे हाथ के बाहर बात है। फिर तुम ही जब सुख की फसल बोओगे तभी मैं काट सकूंगा। तब तो यह बात अंधकार में पड़ गई, मेरे हाथ में न रही।

धर्म और अधर्म के चिंतन में सही फर्क है। धर्म कहता हैःव्यक्ति जिम्मेवार है। अधर्म कहता हैः कोई और जिम्मेवार हो—अर्थशास्त्र जिम्मेवार हो, राजनीति जिम्मेवार हो, मनोविज्ञान जिम्मेवार हो, लोग समाज, संस्कृति, भूगोल, इतिहास, जिम्मेवार हो—व्यक्ति भर जिम्मेवार नहीं है। और जैसे ही व्यक्ति जिम्मेवार नहीं, वैसे ही व्यक्ति की आत्मा खो जाती है।

ना कानों सुना ना आंखों देखा

तुम्हारा उत्तरदाईत्व तुम्हारी आत्मा है। तुम्हारा उत्तरदाईत्व तुम्हारी स्वतंत्रता है। तुम्हारा उत्तरदाईत्व तुम्हारा मोक्ष है, मुक्ति है। यद्यपि यह मैं जानता हूं कि जब कोई अपना उत्तरदाईत्व समझता है तो पहले बड़ी पीड़ा होती है, इसलिए तो हम दूसरे पर टालते हैं हम दूसरे पर इसीलिए टालते हैं कि अपना उत्तरदाईत्व मानने से बड़ी पीड़ा होती है, कि मैंने ही अपना दुख बनाया, यह कैसे हो सकता है।

छोटा बच्चा टकरा जाता है फर्नीचर से घर में आ कर, वह कुर्सी को मारता है, टेबल पर गुस्सा निकालता है कि यह टेबल मुझसे टकरा गई। क्योंकि छोटे बच्चे के अहंकार को भी यह ठीक नहीं लगता कि मैं इससे टकराया : तब तो फिर जिम्मेवारी मेरी है, तब तो चांटा मुझ ही पर पड़ना चाहिए। टेबल ने मारा, वह तो ठीक ही है; मां भी मारे, लेकिन बच्चा टेबल को मारता है। और बच्चे को राजी करने के लिए मां को भी टेबल को अभिशाप देना पड़ता है। लेकिन यह बचपन जिंदगी भर जारी रहता है। जब भी तुम्हें कोई गाली देता है, तुम निश्चित मानते हो, उसकी जिम्मेवारी है। तुमने कुछ भी नहीं किया था, तुम तो बिलकुल भोले-भाले हो।

एक घर में मैं मेहमान था। एक छोटा बच्चा रोता हुआ आया। वह पड़ोस में किसी से लड़ कर आया है। उसकी मां ने कहा कि फिर झंझट हुई? किसने शुरू की? झगड़ा किसने शुरू किया? उस लड़के ने कहा : मैंने शुरू नहीं किया। जब उस लड़के ने मेरे चांटे का उत्तर दिया, तभी शुरू हुआ।

कोई शुरू नहीं करता। जब कोई तुम्हारे चांटे का उत्तर देता है तब झंझट शुरू होती है। सदा ही ऐसा होता है। ऐसा ही दूसरा भी मानता है। इसलिए दो लड़ने वालों में कभी भी तय करना असंभव है, किसने शुरू किया। और यह कोई छोटे-मोटे लोगों की बात नहीं है; बड़े-बड़े राष्ट्र भी यही करते हैं। कभी तय नहीं हो पाता कि किसने झगड़ा शुरू किया—चीन ने, कि हिंदुस्तान ने, कि पाकिस्तान ने—कभी तय नहीं हो पाता। तुम्हारे छोटे बच्चे और तुम्हारे बड़े राजनीतिज्ञ एक से मूढ़ हैं, कोई फर्क नहीं है।

मूढ़ता का लक्षण है कि वह कहती है दूसरा जिम्मेवार है—वह कोई भी हो, मैं जिम्मेवार नहीं हूं। और इसलिए मूढ़ आदमी सदा के लिए मूढ़ रह जाता है। जब अपनी जिम्मेवारी ही नहीं, तो अपने हाथ में कुछ न रहा; तुमने अपने हाथ से अपनी स्वतंत्रता खो दी।

धार्मिक व्यक्ति कहता है : अगर किसी ने गाली दी हो, उसकी फिक्र छोड़ो; तुमने किस तरह चांटा शुरू किया था, तुम अपनी फिक्र कर लो। तुम इतना ही देख लो कि तुमने कौन-सी भूल की थी, उसे तुम हटा लो। अगर नहीं हटाना है, गाली स्वीकार करा लो—कि स्वाभाविक है। लेकिन इस बात कि स्मरण में आते ही कि मैं जिम्मेवार जरूर हूं, हर हालत में कुछ न कुछ मेरी जिम्मेवारी होगी तुम्हारे जीवन में एक मुक्ति की संभावना शुरू हो जाएगी, तुम हलके हो जाओगे। पहले पीड़ा होगी, अहंकार को चोट लगेगी; लेकिन उसी पीड़ा से आनंद का जन्म होता है। वह प्रसव-पीड़ा है।

फरीद ने ठीक सूत्र दे दिया है।

फरीदा जे तू अकलि लतीफ, काले लिखु न लेख। किसी के संबंध में काले लेख मत लिख। अपना सिर झुका कर तू अपनी गरेबां की तरफ देख। आपनड़े गिरीबान महि—झुक कर अपने ही भीतर झांक। जब भी जीवन में दुख हो, अपने भीतर कारण को खोज। जब भी जीवन में अशांति हो, अपने भीतर कारण को देख।

एक सज्जन मेरे पास आए। कहने लगे : बड़ा अशांत हूं, कोई शांति का उपाय बताएं। मैं अरविंद-आश्रम गया, रमण-आश्रम गया, ऋषिकेश गया, यहां गया वहां गया—सब बेकार है। सब ढोंग है, कहीं कोई शांति नहीं है।

मैंने उनसे पूछा : अशांति सीखने कहां गए थे?

वे थोड़े चौंके। शांति सीखने अरविंद-आश्रम गए, रमण आश्रम गए, वह सब ढोंग साबित हुआ; क्योंकि वे कोई भी शांति न दे पाए। अशांति सीखने कहा गए थे?

उसने कहा : मैं अशांति सीखने कहीं भी नहीं गया था।

तो मैंने कहाः तुम खुद ही अशांति सीख लिए। तो जब तुमने खुद अशांति सीखी, तुम्हें शांति कौन सिखाएगा? अब इसमें तुम आश्रमों को जिम्मेवार मत समझो कि सब धोखाधड़ी है, सब फिजूल है, बकवास है, सब पाखंड है, कोई शांत नहीं कर पाया। तुम अपने अशांत होने के कारणों को समझो। शांत तुम्हें कौन कर पाएगा, अगर तुम्हारे कारण जारी रहे? तुम अगर इ धन डालते गए चूल्हे में और आग की लपटें उठ रही हैं और तुम दूसरे से कह रहे हो कि बुझाओ और तुम इ धन लगाए जा रहे हो, तुम घी डाले जा रहे हो आग में और किसी दूसरे से कह रहे हो, पढ़ो, मंत्र, बुझाओ आग; अगर न बुझा पाए तो तुम्हारा मंत्र ढोंग-धतूरा है, सब पाखंड है।

मैंने कहा कि अगर तुम यही धारणा ले कर यहां भी आए तो अभी नमस्कार कर लेता हूं, नहीं तो मैं भी पाखंड हो जाऊंगा; क्योंकि मैं देख रहा हूं तुम आग में तो घी डाले जा रहे हो। तुमने मूल बात तो समझी ही नहीं। कोई दुनिया में शांत होने का थोड़े ही उपाय है; सिर्फ अशांति को समझने का उपाय है। और जो अशांति को समझ लेता है, वह अपने हाथ खींच लेता है; वह अशांति को पैदा नहीं करता, बात खत्म हो गई। शांति को पाने के लिए कुछ भी करने की जरूरत नहीं है; सिर्फ अशांति मत पैदा करो।

शांति तो अभाव है। सिर्फ संसार में मत उलझो। परमात्मा को पकड़ने का कोई उपाय नहीं है; सिर्फ संसार में मत उलझो, परमात्मा तो मिला ही हुआ है।

जिसे तुमने कभी नहीं खोया, वही परमात्मा है। जो तुम्हारा आंतरिक स्वभाव है, वही शांति है। उसे पाने की कोई जरूरत नहीं है। मगर हम अजीब पागल हैंः अशांति को पैदा करते हैं, फिर हम सोचते हैं, अब शांति पैदा करनी है!

शांति लेकर तुम ही आए थे। तुमने कभी खोई नहीं है। वह तुम्हारे भीतर अभी भी बज रही है। लेकिन तुमने चारों तरफ अशांति इकट्ठी कर रखी है।

मैंने पूछाः तुम मुझे अशांति का कारण कहो। उसने कहा कि वह लंबी कथा है। उसमें क्या सार है? आप शांति का उपाय बता दें। मैं कोई शांति का उपाय जानता नहीं; एक ही उपाय जानता हूं, और वह यह कि तुमने अशांति पैदा कि है, उसे ठीक से समझना होगा। और अब आगे पैदा मत करो।

अशांति ऐसे ही है जैसे आदमी साइकल चलाता है, पैडल मारता हैः पैडल मारो तो साइकल चलती है, मत मारो तो रुक जाती है, अपने-आप गिर जाएगी। अशांति को भी पैडल मारने पड़ते हैं।

एक बात ठीक से खयाल में आ जाए कि मैं ही मेरे होने का जिम्मेवार हूं, तुम्हारे जीवन में क्रांति का पहला कदम उठ गया। फिर तुम्हें कोई बदलने से रोक नहीं सकता।

अपनी तरफ देखना जरूरी है। आंखों को खर्च मत कर डालो दूसरों को देखने में। आंखों को अपने गरेबां की तरफ लगाओ। अपने को पहचानो। आंख का पहला उपयोग अपने को पहचानना है। अपने को जिसने पहचान लिया वह सभी को पहचान लेगी; और जो अपने को पहचान न पाया वह किसी को भी न पहचान पाएगा।

अभी, हमारी सारी चेष्टा क्या है? सारी चेष्टा यह है कि दूसरे की बुराई को देखें और अपनी भलाई को दिखाएं। जो भलाई नहीं है वह दिखाएं, और जो बुराई नहीं है उसको भी देखें—अब हमारी चेष्टा यह है। बड़ी मूढ़तापूर्ण स्थिति है।

फरीदा जे तू अकलि लतीफ, काले लिखु न लेख। आपनड़े गिरीबान महि सिर नीवां करि देख।।

'फरीदा जो तैं मारनि मुकिआं, तिन्हा न मारे घुमिं।'

फरीद, लोग अगर तुझे मुक्कों से मारें तो बदले में तू उन्हें मत मार। तू तो उनके कदमों को चूम कर अपने घर चला जा।

'आपनड़े घरि जाईए, पैर तिन्हादे चुंमि।'

जीसस हों कि बुद्ध कि फरीद, सभी सयानों का एक मत है। सबै सयाने एक मत! और वह है कि अगर दूसरा तुम्हें मारे तो पहले तो तुम यह समझ लेना कि जाने-अनजाने तुमने उसे तार दिया होगा। तुम्हें शायद पता भी न हो कि किस ढंग से तुमने उसे मारा, लेकिन मार दिया होगा; अन्यथा किसको फुर्सत है तुम्हें तारने की, किसको जरूरत है? कई बार तो ऐसा होता है कि तुम किसी की भलाई भी करते हो और उसमें भी तुम मार देते हो।

एक मित्र मेरे पास आते हैं। मैं मध्यप्रदेश में वर्षों तक था। वे वहां के सबसे बड़े करोड़पति हैं—उस प्रदेश के। उन्होंने मुझसे कहा कि मेरी समझ में नहीं आता, मैं सबके साथ भलाई करता हूं...और वे आदमी भले हैं—मेरे जितने रिश्तेदार हैं, सबको मैंने धनपति बना दिया। रिश्तेदारों के रिश्तेदार को भी मैंने रुकावट नहीं डाली; जो भी सहायता मैं कर सकता हूं, मैंने की है। लेकिन मुझे कोई धन्यवाद देता नहीं मालूम पड़ता। उलटे, पता नहीं लोग क्यों मेरे विरोध में हैं? मेरे अपने लोग जिनको मैंने सब सहारा दिया है, जिनको मैंने खड़ा किया है, जिनके लिए मैंने अपनी तिजोड़ी कभी बंद नहीं कि हैं, वे भी मुझसे नाराज हैं!

मैंने उनसे कहाः एक बात मैं आपसे पूछता हूं, कभी आपने किसी दूसरे को भी मौका दिया है कि आपकी सहायता कर सके?

उन्होंने कहाः इसकी जरूरत ही नहीं है। मौके का क्या सवाल है? इसकी जरूरत ही नहीं है। मेरे पास सब है। मैंने कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाए।

तो मैंने कहाः मैं समझ गया, अड़चन कहां है। जब भी तुमने किसी को दिया होगा, तब तुम्हारी यह अकड़ कि मैंने कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाए; मैं सदा देने वाला हूं, लेनेवाला नहीं—यह अकड़ मार गई। उस आदमी के मन में इतनी पीड़ा तुम छोड़ दिए हो। दिया तुमने बहुत है, इसमें कोई शक नहीं है। मुझे भी पता है। तुम्हारे रिश्तेदारों को भी मैंने कहा मैं जानता हूं। उनको तुमने दिया है, यह वे भी स्वीकार करते हैं; लेकिन तुम्हारे देने में इतनी अकड़ थी और अहंकार था; तुम्हारे देने में तुम इतने ऊंचे थे और तुमने उनको कीड़े-मकोड़े कर दिया! तुमने कभी उन्हें अवसर न दिया कि वे भी कभी ऊपर हाथ उठा कर तुम्हें कुछ दे पाते। कोई छोटी चीज, कि तुम बीमार पड़े होते और तुमने उन्हें कहा होता कि जाओ, दो घड़ी मेरे पास बैठ जाओ, तुम्हारे बैठने से मुझे राहत मिलती है; कि तुम्हें कोई काम होता, छोटा-मोटा काम कि तुम मेरे लिए कर देना, कोई दूसरा न कर सकेगा, मुझसे नहीं होता। तुमने कभी छोटे-मोटे मौके उन्हें दिए होते कि वे भी सहायता कर सकते। तुमने उन्हें भिखारी बना दिया है। दिया तुमने बहुत है; लेकिन देने के माध्यम से तुमने उन्हें भिखारी बना दिया। वे उसका बदला लेते हैं तुमसे। वे बदला ले कर रहेंगे। तुम उनके दुश्मन हो।

कहावत हैः नेकी कर और कुएं में डाल। उसका मतलब इतना ही है कि भलाई करना, लेकिन याद रखना कि भलाई की। भलाई करना, करते वक्त खयाल भी मत लाना कि भलाई कर रहे को। वस्तुतः भलाई करना, लेकिन यह भी अपेक्षा मत करना कि दूसरा धन्यवाद दे। और भी अगर तुम ठीक से समझो तो भलाई करना और उसको धन्यवाद देना कि तेरी बड़ी कृपा है कि तूने सेवा का एक मौका दिया। और यह बातचीत न हो, यह हार्दिक हो। नहीं तो भलाई भी चांटा मार जाती है। उसका भी बदला मिलेगा।

जिंदगी बड़ी उलझी है और आदमी बड़ा अंधा है। सभी बुद्धपुरुषों ने यह कहा है।

फरीदा जो तैं मारनि मुकीआं, तिन्हा न मारे घुंमि।

जो तुम्हें मारें, उन्हें घूम कर जवाब मत देना, उन्हें मारना मत। क्यों क्योंकि वे मुझे मार ही रहे हैं इसलिए कि तूने किसी जाने;अनजाने क्षण में उन्हें कभी मारा होगा—इस जन्म में, किसी और जन्म में। कथा लंबी है। हम यहां नए नहीं है। हम पहली दफा यहां नहीं है, बहुत बार यहां रहे हैं। जिनसे हम संबंधित हैं उनसे हमने बहुत तरह के संबंध बनाए मिटाए। उनको भी बदला मिलेगा।

जिंदगी बड़ी उलझी है और आदमी बड़ा अंधा है। सभी बुद्धपुरुषों ने यह कहा है।

फरीदा जा तैं मारनि मुकिआं, तिन्हा न मारे घुंमि।

जो तुम्हें मारें, उन्हें घूम कर जवाब मत देना, उन्हें मारना मत। क्यों? क्योंकि वे तुझे मार ही रहे हैं इसलिए कि तूने किसी जाने-अनजाने क्षण में उन्हें कभी मारा होगा—इस जन्म में, किसी और जन्म में। कथा लंबी है। हम यहां नए नहीं है। हम पहली दफा यहां नहीं है, बहुत बार यहां रहे हैं। जिनसे हम संबंधित हैं उनसे हमने बहुत तरह के संबंध बनाए और मिटाए। उनको कभी तूने मारा होगा।

बुद्ध बैठे हैं एक शिलाखंड के पास और देवदत्त ने—उनके चचेरे भाई ने—उन्हें मारने की व्यवस्था की है। उसकी बड़ी पीड़ा थी। वह सोचता था, मैं खुद बुद्धपुरुष हूं। और उसे बड़ी अड़चन थी क्योंकि बड़ा चचेरा भाई था, बुद्ध से उम्र ज्यादा थी। और यह बुद्ध अचानक गुरु हो गया, हमारे देखते-देखते गुरु हो गया! और इसको क्या पता है जो हमको पता नहीं है?

और वह पंडित था। और अगर दोनों परीक्षा देते तो शायद बुद्ध हारते और वह जीतता। शास्त्र का उसे ज्ञान था। बुद्ध का शास्त्र का ज्ञान न के बराबर है; अपना ज्ञान परम है, शास्त्र का ज्ञान कुछ खास नहीं है। उसकी जरूरत नहीं है। जिसके पास हीरे हैं वे कंकड़-पत्थर क्यों इकट्ठे करे? लेकिन देवदत्त को बड़ा शास्त्रीय ज्ञान था। वह चाहता था, बुद्ध को मिटा दे, तो वह एकछत्र गुरु हो जाए। उसके भी कुछ शिष्य मिल गए थे उसको। दुनिया में इतने मूढ़ हैं कि मूढ़ से मूढ़ आदमी को भी शिष्य मिल जाते हैं। इसलिए उसमें कुछ परेशान होने की बात नहीं है। कुछ बड़ा ज्ञानी होने की जरूरत नहीं है शिष्य पाने को, सच तो यह है कि अगर तुम ज्ञानी हो तो शिष्य मिलना थोड़ा मुश्किल हो जाएगा; क्योंकि शिष्य को भी तुम्हारी तरफ यात्रा करनी पड़ेगी। अगर तुम मूढ़ हो, तुम उनके साथ ही खड़े हो; कहीं यात्रा नहीं करनी है। अगर तुम मूढ़ हो, तो मूढ़ शिष्यों से तुम्हारा ठीक संबंध बैठ जाएगा; क्योंकि तुम्हारे कृत्यों में और उनकी समझ में तालमेल होगा।

देवदत्त को भी शिष्य मिल गए थे। उसने आकर एक पत्थर ऊपर से सरका दिया पहाड़ से। बड़ी चट्टान थी। करीब-करीब बुद्ध के करीब से पत्थर गुजर गया; दो इंच और इस तरफ कि बुद्ध समाप्त हो जाते। शिष्यों ने बुद्ध से कहाः अब यह जरा अति हो गई! अब कुछ करना पड़ेगा।

बुद्ध ने कहाः चुप! करने की बात ही मत सोचना, पहले मैंने किया था, उसका फल भोग रहा हूं। अब और आगे करने का हिसाब मत रखो, नहीं जो फिर आना पड़ेगा। यह निपटारा हुआ। मेरा मन हलका हुआ। कभी मैंने इस देवदत्त को बहुत दुख दिया था। यह तो सिर्फ हिसाब-किताब पूरा हो रहा है।

बुद्ध न मरे तो उसने एक पागल हाथी बुद्ध के खिलाफ छोड़ दिया। वह पागल हाथी बिलकुल पागल था। उसको बस में करना मुश्किल था। वृक्षों को उखाड़ कर फेंक देता लोगों को कुचल डालता। उसको छोड़ दिया। लेकिन वह पागल हाथी बुद्ध के सामने आकर झुक कर खड़ा हो गया। बुद्ध के शिष्यों ने कहाः यह तो बड़ा चमत्कार है!

बुद्ध ने कहा कुछ चमत्कार नहीं है। इस हाथी के साथ कभी मैंने भला किया था। किन्हीं अतीत जन्मों की बात है। यह भी चुकतारा हो गया; क्योंकि बुरा भी बांधता है, भला भी बांधता है। जब तक इस हाथी से लेन-देन पूरा न हो जाता तब तक फिर मुझे रहना पड़ता। इस जिंदगी में सबसे निपटारा कर लेना है ताकि फिर आने की कोई जरूरत न रह जाए।

फरीदा जो मैं मारनि मुकीआं, तिन्ही न मारे घुंमि।

लौट कर मत मारना; क्योंकि पहले ही तूने मारा है, उसका ही तो यह बदला है।

लोग तुझे मारें तो बदले में मत मार। तू अनेक कदमों को चूम कर अपने घर चला जा।

तू उन्हें धन्यवाद दे। हिसाब-किताब पूरा हो गया। अब तुम भी मुक्त, मैं भी मुक्त। तू चूम कर उनके पैरों को अपने घा चला जा। हिसाब-किताब को समाप्त करते वक्त बड़े प्रेमपूर्ण ढंग से समाप्त कर दे। क्योंकि जरा भी तूने प्रतिक्रिया की ताक फिर सिलसिला शुरू हो जाता है।

यह बड़ा बहरा गणित है, जीवन के शास्त्र का गणित है। अगर कोई तुम्हें दुख दे रहा है, तुमने दिया होगा। अब चुपचाप निपटारा कर लो। अब नई शृंखला मत बनाओ। उसे धन्यवाद दो कि निपटारा हो गया। हमने तेरे साथ किया, तूने हमारे साथ किया, बात पूरी हो गई! अब हम विदा हो सकते हैं! अब हमारे बीच कोई धागा नहीं बंधा हुआ है।

फरीद, जब तेरे कमाने के दिन थे तब तो तो तू दुनिया के रंग में रंगा हुआ था। मौत की नींव लेकिन मजबूत है। खेप के भरते ही वह लादनहार लेकर चल देगा।

फरीदा जा तउ खट्टन वेल—जब तू जवान था, युवा था, शक्ति से भरा था! जब तेरे कमाने के दिन थे—कौन-सी कमाई? परमात्मा को कमाने की कमाई—परमात्मा को कमाने के जब तेरे दिन थे, वे तो दुनिया के रंग में गंवा दिए। अब बहुत थोड़े पल बचे हैं, अब इनको लड़ने-झगड़ने में मत उलझा। अब कोई गाली देता है, इसके कारण तू अपनी प्रार्थना को व्यथित मत होने दे। अब कोछ गाली देता है, इसके कारण तू अपनी प्रार्थना में बाधा मत डाल! इसके कारण तू प्रार्थना को व्यथित मत होने दे। अब कोई पत्थर मारता है, इस कारण तू अपनी आत्मा को डुबाने में मत लग जा। अब इन छोटी बातों में उलझने का समय न रहा। जब दिन थे, समय था, शक्ति थी, तब तो तू दुनिया कि रंग में रंगा रहा! अब तो विदाई का वक्त आ गया। मौत मजबूत है। वह करीब आ रही है।

खेप के भरते ही वह लादनहार ले कर चल देगा।

खेप भरने के करीब है, किसी भी क्षण यात्रा शुरू हो जाएगी। अब वक्त नहीं है कि गालियों के जवाब गालियों से दिए जाएं, कांटों के जवाब कांटों से दिए जाएं। अब वक्त नहीं है। मौत करीब आ गई है। ऐसे तो जिंदगी राग-रंग में बिता दी है, परमात्मा को न कमा पाया; अब इन आखिरी क्षणों को व्यर्थ के लेन-देन उलझाव में मत लगा। कोई गाली दे, कोई मारे, तम पैर चूम कर अपने घर आ जा।

'फरीद जा जउ खट्टन वेल तां तू रत्ता दुनी सिउ। तब तू सारी दुनिया में रह रहा, उलझा रहा।'

'मरग सवाई नीहि—अब मौत करीब आती है। और मौत बड़ी मजबूत है! उससे बचने का उपाय नहीं है।

'जां भरिआ तां लदिआं'—और जब लदना पूरा हो जाएगा, मौत की नाव फर जाएगी—यात्रा शुरू हो जाएगी।

'देखु फरीदा जु थीआ, दाड़ी होई भूर।'

फरीद देख तो जरा, यह क्या हुआ? तेरी दाढ़ी सफेद हो गई है।

'अगहु नेड़ा आइआ, पिछा रहिआ दूर।।

आगा नजदीक आ गया, पीछा बहुत पीछे छूट गया। जन्म तो बहुत पीछे छूट गया, मौत करीब आ गई।

देख फरीदा, क्या हुआ? तेरी दाढ़ी सफेद हो गई। फल पक गए। जीवन पूरा होने के करीब आया। अब समय ही है छोटी-छोटी बातों में उलझाव करने कर। अब गालियों के उत्तर देने का मौका नहीं है, न घूम कर मारने की सुविधा है। वह सब हो गया। अब तू जाग!

देखु, फरीदा जु थीआ, दाढ़ी होई भूर! अगहु नेड़ा आइआ, पिछा रहिआ दूर।।

'फरीदा, देख तो जरा यह क्या हुआ? शक्कर भी विष हो गई! अपने स्वामी को छोड़ कर अब मैं और किसे अपना दुखड़ा सुनऊं?'

'देख फरीदा जु थीआ सकर होई विसु। साई बाझहु आपने, वेदणु कहिए किसु।।'

जिस-जिस को भी अमृत समझा जीवन में वह सब विष हो गया। जहां-जहां मिठास पाई, वहां-वहां जहर हो गया। जिन-जिन को सुख जाना, वहां-वहां दुख के सिवाय कुछ भी न मिला। जहां स्वर्ग समझ कर दरवाजे खटखटाए, वहां नरक पाया।

देख फरीदा, यह क्या हुआ? शक्कर भी विष हो गई। अब अपने स्वामी को छोड़कर और किसे अपना दुखड़ा सुनाऊं!

यहां तो कोई दुखड़े को समझेगा भी नहीं। यहां तो किससे कहना? यहां तो अंधों से प्रकाश की चर्चा हो जाएगी। यहां तो मैं दुखड़ा रोऊंगा तो लोग हंसेंगे कि पागल हुआ है। यहां तो लोग कहेंगेः खाओ-पीओ, मौज करो—यही तो जीवन है। और परमात्मा कहां है? किस दुख के लिए रो रहे हो? किस सुख की बात कर रहे हरे? किस शांति की यात्रा पर चले हो? यहां कोई तीर्थ नहीं है। चार दिन की जिंदगी है, जितनी जल्दी भोग लो, जितना ज्यादा भोग लो, उतना उचित है। ये सपनों की बातें मत करो।

फरीद जैसे लोग सदा ही सांसारिकों को पागल मालूम पड़े हैं। स्वाभाविक भी है! क्योंकि वे जिस सुख की बात करते हैं, उसका हमें कोई स्वाद नहीं है। वे जिसको दुख कहते हैं उसको ही वे सुख मान कर अभी जी रहे हैं। जब हमें होश आएगा, तब शायद हमको भी समझ में आए— लेकिन तब तुम भी पागल की हालत में हो जाओगे। अपनों को भी समझाओगे, वे भी सुनेंगे।

बाप-बेटे को समझाता है, कुछ सार नहीं है इन बातों में! लेकिन बेटा समझ नहीं पाता। क्योंकि बेटे को भी जब अनुभव होगा तभी समझ आएगी। बल्कि बेटा मन में यह सोचता है, खुद तो खूब भोग कर बैठ गए, अब दूसरों को समझा रहे हो कि सार नहीं है! बाप को भी इसके बाप ने समझाया था कि कुछ सार नहीं है! यह भी ऐसे ही बेरुखे मन से सुना था।

जवानों को बूढ़ों की शिक्षा ठीक नहीं मालूम पड़ती। ठीक तो दूर, अरुचिकर मालूम पड़ती है! अरुचिकर भी दूर, बड़ी अपमानजनक मालूम पड़ती है। जवान बूढ़ों से बात नहीं करना चाहते! क्योंकि जवानी की भाषा औरः आंखों में इंद्रधनुष समाए हैं! मन में बड़े सपने हैं—रोआं-रोआं पागल है वासना से! और तुम परमात्मा की बात करो, प्रार्थना की बात करो, मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे की बात करो, जंचती नहीं है। अभी दुनिया से मन भर कहा है!

तो फरीद कहता हैः जो हालत हमारी हो गई है, वह यह है कि जीवन तो ऐसे ही गंवा दिया, यह दाढ़ी सफेद हो गई, मरने का वक्त आ गया। कब लड़ाई पूरी हो जाएगी, लादनहार चल पड़ेगा—कुछ कहा नहीं जा सकता; किसी भी क्षण यह घटना घट सकती है। एक बात निश्चित है—वह मौत है। जीवन में सब अनिश्चित है मृत्यु के अतिरिक्त। और सब हो भी, न हो भी; मगर मौत होगी ही।

अब ऐसी घड़ी में—देख फरीद जु थीआ, सकर होई विसु। साइ□ बाझहु आपणे, वेदणु कहिए किसु।।

यह वेदना किससे कहें, सिवाय अपने स्वामी के? वही समझ सकेगा।

जब तुम्हारे जीवन में समझ आती है तो सिवाय परमात्मा को छोड़ कर और किसी से बात करने में अर्थ नहीं रह जाता।

प्रार्थना का यही अर्थ हैः तुम अपने परमात्मा से बात करते हो वह समझेगा। अगर वह न समझेगा, फिर तो कोई भी न समझेगा।

भक्त जब भगवान के सामने बैठता है तब वह अपनी सब बातें हृदय खोल कर कहता है; तब वह दुख रोता है उसका जो बीत गया; पछताता है उस सबके लिए जो जा चुका; उस सबकी बात करता है जो आ रहा है। वह अपने जीवन के सपनों की बात कहता है जो झूठे सिद्ध हुए; और उन सत्यों की बात कहता है जिनकी झलक अब मिलनी शुरू हुई है। परमात्मा के अतिरिक्त ये बातें किसी से कही नहीं जा सकती।

धन्यभागी हैं वे लोग जिन्हें कोई गुरु मिल जाए। गुरु का अर्थ हैः मनुष्य के रूप में परमात्मा। वह मनुष्य भी है—वह तुम्हारी भूलों और तुम्हारे दुख को भी समझ पाएगा; और वह परमात्मा भी हैः वह तुम्हारे दुख और भूलों को केवल समझ ही न पाएगा, केवल तुमसे सहानुभूति ही न कर पाएगा, बल्कि तुम्हें मार्गदर्शन भी दे सकेगा। लेकिन अगर गुरु न मिले, जो कि आसान नहीं है; क्योंकि सौ गुरुओं के द्वार खटखटाओगे, निन्यानबे

गलत सिद्ध होंगे। बिलकुल स्वाभाविक है। संसार में जहां असली सिक्के होते हैं, खोटे सिक्के भी चलते हैं, और खोटा ज्यादा चलता है। तुम्हारे खीसे में भी अगर एक असली सिक्का हो और एक खोटा, तो तुम पहले खोटे को चलाने की कोशिश करते हो। असली तो कभी चल जाएगा। इसलिए अर्थशास्त्री कहते हैं, खोटे सिक्कों को चलने की बड़ी धुन होती है, वे पहले चलते हैं। असली तो तिजोड़ी में छिप जाता हैं, नकली बाजार में चले जाते हैं। वही हालत सभी असली चीजों की है। असली गुरु की भी वही हालत है। तुम उसे बाजार में न पा सकोगे; वह तो हट जाता है। बाजार में तुम्हें वह मिल जाएगा जो तुम्हारी राह देख रहा था। वह तुम्हारे दरवाजे के सामने ही बैठा मिल जाएगा। उसे पाने के लिए तुम्हें कोई भी चेष्टा न करनी होगी, कुछ भी खर्च न करना पड़ेगा; उलटे, वह तुम्हें प्रसाद भी देगा, ताकि प्रसाद के लोभ से आ जाओ। वह सब तरह से तुम्हें उलझाएगा।

गुरु खोजना बड़ी कठिन बात है। मिल जाए, सौभाग्य। तब उस के सामने रोया जा सकता है। वह तुम्हारे आंसुओं को समझेगा। तुम्हारे आंसुओं को बहते देख कर वह यह न समझेगा कि तुम दीन-हीन हो; तुम्हारी आंसू की गरिमा उसे समझ में आएगी। तुम्हारे आंसू उसके लिए बड़े पवित्र होंगे। तुम रो कर उसके सामने छोटे न होओगे; तुम रो कर उसके सामने बड़े हो जाओगे। तुम्हारे आंसू तुम्हारी महिमा की खपा देंगे। तुम्हारे पछतावे तुम्हें दीन न करेंगे। तुम अपने पछताओं की बात करके पछताओं से मुक्त हो जाओगे। उससे तुम अपने दुख कह कर हलके हो जाओगे।

लेकिन अगर यह न हो सके, जो कठिन है कि गुरु मिल जाए, तो परमात्मा तो सब तरफ उपलब्ध है; उसे तो खोजने कहीं नहीं जाना है। तुम एक वृक्ष के पास बैठ कर वृक्ष को ही उसका संदेशवाहक बना सकते हो। आकाश में चलते बादल को देख कर तुम मेघदूत बना सकते हो उसी बादल को। तुम उससे ही कह दे सकते हो अपना रोना कि जा रहे हो परमात्मा की तरफ, कह देना मेरा खबर।

गुरु न मिले तो परमात्मा तो सब तरफ उपलब्ध है लेकिन यह भी कठिन बात है कि गुरु न मिले तो कौन तुम्हें जगाए, कौन तुम्हें कहे कि परमात्मा चारों तरफ है? गुरु मिल जाए तो सुगम हो जाती है बात। क्योंकि गुरु तुम्हारे जैसा ही होता है—एक अर्थ में; और एक अर्थ में तुमसे बिलकुल भिन्न होता है। गुरु तुम्हारे और परमात्मा के बीच में लगे द्वार की भांति होता है।

मगर जीवन बहुत जटिल है—जटिल ऐसा है जैसे कोई अगर पूछे कि मुर्गी पहले या अंडा पहले, ऐसा जटिल है। अगर तुम कहो, मुर्गी पहले तो मुसीबत है, क्योंकि तत्क्षण मन कहता हैः मुर्गी आएगी कहां से? अंडा चाहिए।

तुम कहो, अंडा पहले, तो मुसीबत; मन तत्क्षण कहेगाः अंडा आएगा कहां से? मुर्गी रखेगी तभी न?

परमात्मा और गुरु का मामला भी मुर्गी-अंडे जैसा है। अगर गुरु मिल जाए तो परमात्मा मिल जाए। अगर परमात्मा मिल जाए तो गुरु मिल जाए। कौन पहले है? बहुत मुश्किल है। जो पहले मिल जाए, तुम उसी को पहले मान कर चल पड़ना। वस्तुतः दोनों करीब-करीब साथ-साथ मिलते हैं, युगपत मिलते हैं। क्योंकि मुर्गी है क्या, सिर्फ अंडे के लिए एक मार्ग है। अंडा क्या है, मुर्गी के लिए एक मार्ग है। अंडा मुर्गी होने के रास्ते पर है। मुर्गी अंडा होने के रास्ते पर है। वे दोनों संयुक्त हैं।

गुरु परमात्मा के लिए एक मार्ग है; परमात्मा गुरु के लिए एक मार्ग है। जो मिल जाए, जो पहले मिल जाए, जिसकी समझ तुम्हें पहले आ जाए, वहीं से चल पड़ना। वहीं तुम अपने को हलका कर पाओगे। इस संसार में तो तुम लोगों के सामने दुखड़ा मत रोना—जो तुम रोज करते हो।

तुम कभी सोचते नहीं। तुम अकल के दुश्मन हो। तुम उन लोगों से दुख रो रहे हो, जो खुद ही तुमसे ज्यादा दुखी हैं। और वे अगर तुम्हारी बात भी सुनते हैं तो सिर्फ इसीलिए कि तुम्हारे दुख सुन कर उनको अपने दुख छोटे मालूम पड़ते हैं। और वे अगर तुम्हारी बात सुनते हैं तो भी इसीलिए कि तुम चुप हो जाओ तो वे अपना दुखड़ा तुम पर रो दें। लेन-देन है।

लेकिन दुख एक-दूसरे को सुना कर क्या होगा? इससे भी थोड़ा-सा हलकापन मिलता है कि किसी ने भी सहानुभूति से सुन लिया। पश्चिम में तो किसी के भी पास इतना समय नहीं कि दुख सुने, तो एक नया व्यवसाय पैदा हो रहा है—मनोचिकित्सक का, साइकोएनालिस्ट का। उसका कुल धंधा इतना है कि वह तुम्हारा दुख सुनता है, उसके पैसे लेता है। क्योंकि आगे किसी के पास फुर्सत नहीं है—न पति के पास फुर्सत है कि पत्नी को रोना सुने, क्योंकि दिन भर का थका-मांदा भागा-दौड़ा किसी तरह घर आता है, और यह दिन भर का राग लिए बैठी है। न फुर्सत है कि पति की सुने...तो एक पेशेवर सुनने वाला है।

मनोवैज्ञानिक जो है वह कुछ नहीं करता; वह तुम्हें लौटा देता है एक कोच पर, पीछे बैठ जाता है, तुमसे कहता हैः जो दिल में आए, कहो। लोग सालों तक मनोचिकित्सा करवाते हैं और उससे उन्हें हलकापन लगता हैः कम से कम कोई इतनी गंभीरता से तो सुन रहा है; कोई इतने ध्यान से सुन रहा है। हालांकि सुन नहीं रहा मनोवैज्ञानिक; उसको क्या लेना-देना है?

मैंने फ्रायड के संबंध में सुना है कि वह सुबह नौ बजे से ले कर रात नौ बजे तक पचासों मरीजों को मिलता था, सुनता था; बूढ़ा हो गया, तब भी। एक जवान मनोवैज्ञानिक जो उसके पास शिक्षण ले रहा था, उसने एक दिन कहा कि हम तो दो-मरीजों के बाद थक मरते हैं, क्योंकि वही रोना, वही राग—कहां का गंदा कचरा सब निकालते हैं! आप नौ बजे रात भी ताजे रहते हैं!

फ्रायड ने कहाः सुन। सुनता कौन है? वह अपनी सुना रहा है, हम अपनी भीतर सुनते हैं। उसको सुनाने से सुख मिलता है, सुना देना सुना-सुना कर लोग हलके हो जाते हैं।

बड़ा मंहगा धंधा है। मनोवैज्ञानिक इस समय सबसे ज्यादा तनख्वाह और रुपये कमाता है पश्चिम में, क्योंकि लोगों के मन में इतनी तकलीफ हो गई है, कोई सुननेवाला नहीं है। कोई आत्मीयता से सुननेवाला नहीं है। रास्ते पर लोग नमस्कार करने में डरते हैं कि कोई कुछ सुनाने न लगे। किसी के घर जाना हो तो ऐसा नहीं कि जैसा हिंदुस्तान में पहुंच गए बोरिया-बिस्तर ले कर, मेहमान बन गए,महीनों टिके रहे। कहीं जाना हो तो खबर देकर जाना पड़ता है, पूछ कर जाना पड़ता है; फिर भी जहां तक संभावना है, वह होटल में ठहरवाएगा। क्योंकि कौन तुमसे खोपड़ी पचाएगा? होटल में ठहरो, कभी खाने पर बुला लेगा, ठीक है।

रवींद्रनाथ टैगोर ने लिखा है कि एक मित्र ने—वे इंग्लैंड में थे—अपनी शादी के लिए उन्हें बुलाया, खुद की शादी के लिए बुलाया। वे बड़े प्रसन्न हुए। उनको पता नहीं था। नए-नए थे, ठीक जगह न खोज पाए। तो पहुंचना था दस बजे रात, पहुंचे बारह बजे। वहां तो सब काम समाप्त हो चुका था,शादी-वादी हो चुकी थी, पार्टी-वार्टी हो चुकी थी। जब दरवाजा खटखटाया, मित्र बाहर आया। उसने कहाः आप तो बहुत देर से आए।

तो उन्होंने कहाः तो अब क्या करूं? मैं तो परिचित नहीं हूं। मुझे तो खोजने में देर लग गई है।

तो उस मित्र ने कहाः यह होटल का नाम है, आप वहां जा कर खोज लें। अगर कोई जगह हो तो रुक जाएं।

उसने यह भी नहीं कहा कि यहां रुक जाएं रात भर। आए उसकी शादी के लिए थे। उसने कहाः आप रुक जाए होटल में और सुबह आप, वहीं से स्टेशन करीब है, गाड़ी पकड़ लेना।

उन्होंने लिखा है कि मेरा पहला अनुभव पश्चिम का हुआ यह कि पश्चिम में किसी को फुर्सत नहीं है, न सुविधा है, न इतना बोझ किसी के लिए लेता है। अपना ही बोझ काफी है। अपना ही रोना काफी है।

दूसरे के सामने रोना रोना भी मत; उसका रोना बहुत है, उसको बढ़ाओ मत। और उसको कुछ समझ भी नहीं है तुम्हारे रोने की; वह भी तुम जैसा ही है। वह ऐसे ही है जैसे एक बीमार दूसरे बीमार की चिकित्सा कर रहा हो।

मैंने सुना है कि एक आदमी को दमे की तकलीफ थी। कई इलाज करवाए, ठीक न हुआ। फिर किसी ने कहा कि एक हकीम है यूनानी, वह ठीक कर देगा। बड़ा गहरा खोजी है और जीवन भर बड़े अध्ययन किए हैं

उसने। तो यह आदमी गया। उसने कहा कि मैं थक मरा हूं दमा से। हजारों चिकित्सक देख लिए, इलाज करवा लिए, सब तरह की दवा-दारू कर ली, कुछ फायदा नहीं होता, हालत बिगड़ती जी रही है। क्या मैं पूछ सकता हूं, आपको कोई अनुभव है इस बीमारी का?

उसने कहाः अनुभव? चालीस साल से हम खुद ही मरीज हैं दमा के। तुम बिलकुल बेफिक्र रहो। चालीस साल से हम खुद ही मरीज है दमा के। अनुभव की क्या बात कर रहे हो?

अब दमा का मरीज दमे के मरीज को ठीक कर रहा है! और यह अनुभव है उसके चालीस साल का। वह कह रहा है, इसलिए बिलकुल बेफिक्र रहो; तुम किसी गैर अनुभवी के हाथ नहीं पड़ गए हो।

दुखी के सामने दुख रोना व्यर्थ है। अगर रोना हो तो परमात्मा के सामने रोना। और अगर तुम परमात्मा के सामने रोना सीख जाओ तो तुम्हें प्रार्थना आ जाएगी। सच तो यह है कि परमात्मा से धीरे-धीरे कहने को कुछ भी नहीं रह जाता, सिर्फ आंसू रह जाते हैं।

प्रार्थना की तीन सीढ़ीयां हैं। पहली सीढ़ी : जब तुम अपने परमात्मा के सामने सिर्फ रोते हो, लेकिन आंसुओं में अब दुख नहीं होता, एक हलकापन होता है। आंसू अब पीड़ा के प्रतीक नहीं होते, एक शांति की खबर लातें हैं। फिर एक तीसरी दशा हैः जब आंसू भी विदा हो जाते हैं। अब तुम सिर्फ परमात्मा के सामने होते हो, न तो कुछ कहते हो, न कुछ करते हो। आंसू तक भी नहीं बहते, अब तुम सिर्फ होते हो। इस तीसरी दशा में प्रार्थना पूरी हो जाती है। इस में वहां परमात्मा यहां तुमः दोनों के बीच कोई शब्द, कोई कृत्य नहीं रह जाता। न तो तुम घंटी बजाते हो, न पूजा के फूल चढ़ाते हो—ये सब बच्चों की बातें हो गई हैं। अब परमात्मा के समक्ष तुम नग्न खड़े होते हो; बस तुम्हारा होना होता है। इस होने में ही अवतरण होता है। इतनी शून्यता में ही उस पूर्ण का आगमन होता है।

फरीद, देख तो जरा, यह क्या हुआ? शक्कर भी विष हो गई। अपने स्वामी को छोड़कर अब मैं और किसे अपना दुखड़ा सुनाऊं?

देखु फरीदा जु थीआ सकर होई विसु। साइ बाझहु आपणे वेदणु कहिए किसु।। 'फरीदा कालीं जिन्हीं न राविआ, धउली रावै कोइ। करी साइ सिउ पिरहरी, रंगु नवेला होई।।'

'फरीद, क्या किसी स्त्री ने, जब उसके केश काले थे, स्वामी के साथ रमण न कर तब रमण किया जब उसके केश पक कर श्वेत हो गए?

फरीद कहता हैः चूक तो गए हैं, इसलिए बहुत हिम्मत से तेरे द्वार पर दस्तक भी नहीं दे सकते; क्योंकि वह वक्त गया जब बाल काले थे, शरीर सुंदर था। तब प्रीतम के द्वार जाते तो चलने में एक मस्ती होती, चलने में एक नृत्य होता, चलने में एक शान होतीः कुछ ले कर आ रहे थे; अब तो हाथ खाली हैं; अब तो सूखी हड्डियां रह गई हैं; अब तो बाल सफेद हो गए हैं; अब तो सौंदर्य झुर्रियों में दब गया; अब तो एक भिक्षा पात्र की तरह तेरे द्वार पा आते हैं। किस शान से आएं? द्वार पर आते हैं। किस शान से आएं? द्वार खटखटाने में भी डर लगता हैः यह भी कोई वक्त है मिलने का? लेकिन मजबूरी है, अब कोई उपाय भी नहीं है।

फरीदा कालीं जिन्हीं न राविआ—जब बाल काले थे, तब प्यारे को न खोजा।

धैली रावै कोइ—और कभी इतने कुरुप हो कर, एक खंडहर की भांति, किसी प्रेयसी ने अपने प्रेमी को खोजा है? लेकिन तू जाननेवाला है, तू क्षमा कर सकेगा। नासमझी में हमने जो गंवाया है, उसे तू हमारी परीक्षा मत बनाना। हम समय पर नहीं आए, देर हो गई है—यह हमारी भूल है। लेकिन तुझ पर हमें भरोसा है, तेरी करुणा का भरोसा है।

'खैर, साइ से तू अब भी प्रीति कर जिससे कि तेरे केशों का रंग भी फिर नया हो जाए।'

हम जानते हैं कि तेरी कृपा की दृष्टि हुई तो केश क्या, आत्मा का रंग फिर नया हो जाएगा!

'करी साई सिउ पिरहरी, रंगु पनेला होइ।।'

तू हमें पुनर्जन्म दे देगा। हम तेरे भीतर से फिर पैदा हो जाएंगे। एक नए रूप में अविर्भाव होगा। तुझ पर भरोसा है। अपने तो पैर डगमगाते हैं। कुछ संपदा ले कर नहीं आ रहे हैं, कुछ दान करने को नहीं है, कुछ भेंट करने को नहीं है। मन कंपता है, पैर डगमगाते हैं, योग्यता कोई नहीं है, पात्रता कोई नहीं।

यही भक्त की भाव-दशा है। कुछ ले कर नहीं आ रहा है; सिर्फ रोते हुए आ रहे हैं। आंसुओं की भेंट हैं।

मैं यहूदी फकीर मजीद के वचन पढ़ रहा था। उसके हर वचन में वह परमात्मा से कहता है कि आज मेरे सिर में दर्द है, यही तुझे भेंट करता हूं, और तो मेरे पास कुछ नहीं है; आज मेरे पैर में तकलीफ है, यही तुझे भेंट करता हूं, और तो मेरे पास कुछ नहीं है; आज बूढ़ा हो गया हूं, देह जर्जर है, आज यह जर्जर देह तुझे भेंट करता हूं, और तो मेरे पास कुछ नहीं है।

जिस दिन तुम समझोगे कि तुम्हारे पास कुछ नहीं है, उसी दिन तुम्हारे पास जो भी है, वह स्वीकार हो जाएगी। जब तक तुमने समझा है कि तुम्हारे पास कुछ है, अकड़ बाकी रही; रस्सी जल गई, अकड़ बाकी रही—तब तक तुम चाहे दुनिया का साम्राज्य ले कर भी जाओ, वह भेंट स्वीकार न हो सकेगी। अहंकार जिस भेंट के साथ जुड़ा है, वह अपवित्र हो जाएगी।

बुद्ध के जीवन में एक उल्लेख है। एक सम्राट आया बुद्ध को मिलने। स्वभावतः सम्राट था तो उसने एक बहुमूल्य कोहिनूर जैसा हीरा अपने हाथ में ले लिया। चलते वक्त उसकी पत्नी ने कहा कि पत्थर ले जा रहे हो। पत्नी ज्यादा समझदार होगी। स्त्रियां अक्सर पुरुषों से ज्यादा भावपूर्ण होती हैं। भाव की एक समझ होती है। पत्नी ने कहाः पत्थर ने जा रहे हो। माना कि कितना ही मूल्यवान है; लेकिन बुद्ध के लिए इसका क्या मूल्य? जिसने सब साम्राज्य छोड़ दिया, उसके लिए पत्थर ले जा रहे हो। यह भेंट कुछ जंचती नहीं। अच्छा तो हो कि अपने महल के सरोवर में पहला कमल खिला है मौसम का, तुम वही ले जाओ। वह कम से कम जीवित तो है। और बुद्ध कमलवत हैं। उनके जीवन का फूल खिला है। उसमें कुछ प्रतीक भी है। इस पत्थर में क्या है? यह तो बिलकुल बंद है, जड़ है।

बात तो उसे जंची, तो उसने सोचा कि एक हाथ खाली भी है; पत्थर तो ले ही जाऊंगा, क्योंकि मुझे तो इसी में मूल्य है। तो वही चढ़ाऊंगा जिसमें मुझे मूल्य है। लेकिन तू कहती है, तेरी बात भी हो सकती है कि ठीक हो। और बुद्ध को मैं जानता भी नहीं कि किस तरह के आदमी हैं।

तो फूल भी ले लिया। एक हाथ में कमल है, एक हाथ में हीरा, ले कर वह सम्राट बुद्ध के चरणों में गया। जैसे ही बुद्ध के पास पहुंचा और हीरे का हाथ उसने आगे बढ़ाया, बुद्ध ने कहाः गिरा दो।

मन में तो बड़ी चोट लगी। चढ़ा दो नहीं, बुद्ध ने कहा, गिरा दो। अभी हाथ जरा-सा बढ़ाया ही था, मगर जब बुद्ध ने कहा, गिरा दो, चोट तो लगी अहंकार को कि बहुमूल्य हीरा है, गिराने की चीज नहीं है। ऐसा हीरा दूसरा पृथ्वी पर खोजना मुश्किल है।यह मेरे खजाने का सिरमौर है।

मगर अब तो समझ के बाहर हो गई बात कि यह आदमी कुछ भी नहीं समझता। न बुद्धि की बात समझता है, न हृदय की बात समझता है। बुद्धि के लिए हीरा था; गणित था उसमें, हिसाब था, धन था। प्रेम कमल है, भाव हृदय है—और इसको भी कहता है, गिरा दो! मेरा पत्नी तो इसके चरणों में बहुत आती है। वह इसे पहचानती है। और यह उसको भी नहीं समझ पाया। मगर अब जब कहता है...। और जब हीरा गिरा दिया तो अब इस कमल में क्या रखा है, दो कौड़ी का है।

उसने गिरा दिया। तब वह खाली हाथ बुद्ध की तरफ झुकने लगा, बुद्ध ने कहाः गिरा दो। तब तो उसने समझा कि यह आदमी पागल है। अब कुछ है ही नहीं गिराने को। दोनों हाथ खाली हैं।

उसने कहाः अब क्या गिरा दूं?

बुद्ध तो चुप रहे; बुद्ध के एक भिक्षु ने, सारिपुत्त ने कहाः अपने को गिरा दो! शून्यवत हो जाओ तो ही उन चरणों का स्पर्श हो पाएगा। तुम बचे, चरण दूर; तुम मिटे, चरण पास।

तब कहते हैं, उस सम्राट को उसी क्षण बोध हुआ। वह गिर गया। वह सच ही गिर गया। जब वह उठा तो दूसरा आदमी था। वह महल की तरफ वापस न गया। वह भिक्षु हो गया! यह संन्यस्त हो गया! उसने कहाः जब गिरा ही दिया तो आग वापस जाने वाला न बचा। बहुत दूसरों ने समझाया कि इतनी कोई जल्दी नहीं। उसने कहाः अब बात ही नहीं, जब मैं ही न रहा तो कौन वापस जाए? जो आया था वह अब नहीं है। अब बुद्ध मुझ में समा गए। उनकी बांसुरी मुझे सुनाई पड़ी! जरा-सा सुर इतना मधुर है, तो पूरे संगीत का कैसा आनंद होगा!

फरीद कहता हैंः खैर, साइ से तू अब भी प्रीति कर ले।

उसके दरबार में देर कभी भी नहीं है। जब भी तू आया, आया—यही काफी है। खाली हो कर आया—खाली हो कर आना ही उपाय है! यह साइ चमड़ी पर पड़ी हुई झुर्रियों को नहीं देखता; न बूढ़े की झुक गई कमर को देखता है; न युवा, जवानी की तरंगों को देखता है। यह साइ तो उस शून्य मन को देखता है जो सब गंवा कर आया है। जो यह मान कर आया है कि सब व्यर्थ है—वही झांकने में समर्थ हो कर आया है।

फरीदा कालीं जिन्हीं न राविआ, धउली रावै कोइ। कहर साइ सिउ पिरहरी, रंगु नवेला होई।।

और झुक जा और चढ़ा दे अपने को। यह तेरा डर ठीक है कि तेरे पास कुछ नहीं है। यह डर स्वाभाविक है। यह डर शुभ है कि तेरे पास चढ़ाने को कुछ नहीं है। लेकिन यही तो भक्त की भाव-दशा है, यही तो चढ़ाने की कला है कि कुछ चढ़ाने को नहीं है और चढ़ाता हूंः खाली हाथ हूं! परमात्मा तुझे भर देगा और नया कर देगा।

एक जन्म है जो मां-बाप से मिलता है, वह शरीर का जन्म है। एक जन्म है जो चैतन्य से मिलता है; वह आत्मा का जन्म है।

जो परमात्मा के सामने झुका वही आत्मवान हुआ। जब तक तुम उसके सामने नहीं झुके हो तब तक आत्मा सिर्फ एक सिद्धांत है। तुम्हें उसका कोई पता नहीं। तुम्हारे भीतर अभी उसका अविर्भाव नहीं हुआ। अभी तुम आत्महीन हो। अभी तुम शरीर हो, मन हो, पर आत्मा नहीं। अभी तो बीज टूटा ही नहीं। अभी बीज अंकुर नहीं बना। अभी बीज पर वृक्ष नहीं आया। अभी वृक्ष पर फूल-फल नहीं लगे। अभी आत्मा संभावना है तुम्हारी, वास्तविकता नहीं।

जो शून्य हो कर परमात्मा के सामने झुका, वह पूर्ण हो जाता है—परमात्मा प्रविष्ट हो जाता है। जहां तुमने अहंकार को बिठा रखा था, उसी जगह उसका सिंहासन बन जाता है। ऐसी क्रांति का नाम ही धार्मिक क्रांति है। और धार्मिक क्रांति एकमात्र क्रांति है, बाकी सब क्रांतियां क्रांति के धोखे हैं।

आज इतना ही।

न कानों सुना न आंखों देखा

छठवां प्रवचन

प्रश्न सार

फरीद जैसे संत हर पद में अपना नाम क्यों जोड़ते हैं?

भगवान श्री जैसी श्रेष्ठ मनीषा राजनीति और सत्ता की ओर ध्यान क्यों नहीं देती?

देश जब आपात और संकट की स्थिति में हैं, तब भी क्या भगवान श्री का भगवद्‌भजन का एकतारा बजाए जाना उचित है?

माता, पिता, गुरु और भगवान से मांगने में क्या संकोच करना चाहिए?

धार्मिक क्रांति की शुरुआत—व्यक्तिगत जिम्मेवारी अथवा परस्पर-तंत्रता का बोध?

प्रेम की पीड़ा और प्रेम के आनंद का रहस्य?

शासन और आश्रम के बीच किसी सहयोग का सुझाव?

धर्मः एकमात्र क्रांति

पहला प्रश्नः फरीद जैसे संत अपना नाम हर पद में समेट कर क्यों चलते हैं? इसका क्या राज है?

फरीद जैसे व्यक्तियों का कोई नाम नहीं, इसलिए अपना नाम लेने में उन्हें कोई संकोच नहीं। तुम्हें संकोच है, क्योंकि नाम के पीछे तुम्हारा अहंकार है। जिसका अहंकार बिखर गया, उसे अपना नाम और पराया नाम समान है। वह अपने नाम से उतने ही दूर हो गया है जितने किसी और के नाम से।

इसलिए तो कृष्ण कह सके गीता में : सर्व धर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणम् व्रज। तू सब धर्मों को छोड़ अर्जुन, मेरी शरण आ!

यह कोई अहंकारी न कह सकता था। अहंकारी चाहता यही कि लोग, सभी लोग उसकी शरण आ जाएं। लेकिन अहंकारी यह कह नहीं सकता; क्योंकि अहंकारी भलीभांति जानता है कि यह तो अहंकार की घोषणा होगी। यह वक्तव्य तो परम निरहंकारिता से ही आ सकता है; जिसका कोई मैं-भाव नहीं, वही जा सकता है।

फरीद बार-बार अपना नाम लेता है--फरीदा जे तू अकलि लतीफ; फरीदा जा तउ खट्टण वेल; फरीदा, फरीदा, फरीदा...! फरीद दोहराए चला जाता है। तो एक तो कारण यह है कि फरीद मिट गया है।

दूसरा कारणः फरीद किससे कहे, किसका नाम ले कर कहे? फरीद तो मिट गए है, तुम नहीं मिट गए हो। अगर तुम्हारा नाम ले कर कहे तो तुम्हें चोट लगेगी।

फरीदा जे तू अकली लतीफ--फरीद अगर तू बड़ा अकलमंद है; अगर तुम्हारा नाम ले कर कहे कि तुम अगर बड़े अकलमंद हो, तो तुम्हें चोट लगेगी। फरीद तुमसे कहता है, नाम अपना लेता है।

देखु फरीदा जु थीआ, सकर हो गई विसु--जरा होश से देख फरीद, शक्कर विष हो गई। जिसे सुख जाना था वह दुख हो गया।

अगर वह तुमसे सीधा-सीधा कहे तो शायद तुम अपनी आत्मरक्षा में लग जाओ; तुम शायद तर्क दो कि नहीं, ऐसा नहीं है; तुम शायद अपने प्रमाण इकट्ठा करो कि नहीं, शक्कर शक्कर है, कौन कहता है, जहर हो गई है? तुम अपनी नींद में अपने सपनों की रक्षा करोगे। फरीद तुम्हें बीच में नहीं लेता। कहता तुमसे है, नाम अपना लेता है।

जब फरीद अपने से ही कहता है कि फरीद, अगर तू बड़ा अकलवान है, तुम्हें कोई अड़चन नहीं होती, तुम शांति से सुन लेते हो कि यह अपना ही नाम ले रहा है, अपने से ही कह रहा है। कहता तुमसे है।

तीसरा कारणः फरीद जैसे व्यक्तियों के भीतर साक्षी का जन्म हो गया है। वे अपने को, अतीत होने को, अपने से दूर देखने लगे हैं। जब फरीद कहता हैः देखु फरीदा जु थीआ, सकर हो गई विसु--तो वह कह रहा है, यह साक्षी कह रहा है; यह जो जाग गया है भीतर कह रहा है अपने सोए हुए रूप से; यह वर्तमान कह रहा है अपने अतीत से; रोशनी कह रही है अंधकार से; ज्ञान कह रहा है अंधेरे रास्तों से, भटके हुए जीवन से कि देख फरीदा, जिसको तूने अमृत समझा था वह विष हो गया! तुम्हारे भीतर भी कभी ऐसी घटना घटेगी तब समझ पाओगे, जब तुम तुमसे ही अलग हो जाओगे।

स्वामी राम अपना नाम उपयोग करते थे। अगर कोई गाली देता वे हंसते; अपने पास के मित्रों से कहतेः आज रोम को खूब गाली पड़ी। नए-नए अमरीका गए, तो उनका ढंग तो वही रहा। किसी ने कहीं अपमान किया, क्रोध किया, लौट कर घा आए, जिसके घर में ठहरे थे, खूब हंसने लगे और कहाः आज राम की बड़ी फजीहत हुई! लोग बड़ा मजाक करने लगे।

गेरुआ वस्त्र फकीर का अमरीका में नया-नया थाः लोग कंकड़-पत्थर फेंकने लगे।

'--राम बड़ी मुश्किल में पड़े। मैंने भी कहाः भोगो अब।'

तो वे जिसके घर ठहरे थे, उन्होंने कहाः आप कह क्या रहे हैं? होश में हैं? किसकी बाबत कर रहे हैं बात? राम यानी कौन?

तो उन्होंने कहाः यह राम जो सामने खड़ा है, दिखाई नहीं पड़ता? जैसे तुम्हें दिखाई पड़ता है ऐसे मुझे भी दिखाई पड़ता है। यह तुम्हारे ही सामने नहीं खड़ा है, मेरे सामने भी खड़ा है। हम खड़े देखते रहे। हमने कहा अब हुई फजीहत!

जिस दिन तुम्हारे भीतर साक्षी जगेगा, तुम भी कह सकोगेः फरीदा जे तू अकलि लतीफ—अगर तू बड़ा अकलमंद है फरीद, तो लक्षण दिखा। लक्षण यह है कि दूसरे में बुराई मत देख। अपने ही गरेबां में झांक। यह अकलमंद का लक्षण है। अगर दूसरे की बुराई देखता है, यह तो बुद्धू का लक्षण है।

फरीदा जा तउ खट्टण वेल—फरीद, जब तक जवानी थी, ताकत थी, समय था, उसे तो तूने व्यर्थ चीजों के कमाने में गंवाया। अब जब सब चुक गया, रिक्त हो गया, तब तू परमात्मा की बात करने चला है। जब देने को कुछ था, तब तो तूने संसार के दरवाजे खटखटाए। अब जब देने को कुछ भी नहीं बचा, खाली हाथ है, भिखारी है, अब तू परमात्मा के द्वार खटखटाने चला है!

यह साक्षी है, अपने अतीत से कह रहा है।

ये तीन कारण हैं।

जो कारण तुम सोचते हो वह बिलकुल नहीं हैं। तुम सोचते हो, अपना नाम हर पंक्ति में दोहराना, अपने हस्ताक्षर हर जगह किए जाना—यह तो बड़ा अहंकार है।

तुम्हारी तकलीफ भी मैं समझता हूं। तुमने अगर अपना नाम लिया होता हर लकीर में तो उसका कारण अहंकार होता। तुम संकोच भी करते; हर लकीर में न लेते, तुम जरा ढंग से लेते, छिपा कर लेते ऐसी हर लकीर देख फरीदा, ऐसी शुरू न होती। तुम तरकीब से लेते। तुम छिपा कर लेते। तुम कहते : मैं तो चरणों की धूल हूं। और देखते दूसरे की तरफ कि वह कहे,नहीं-नहीं, आप तो सम्राट हैं, सिंहासन पर विराजमान हैं, आपसे श्रेष्ठ कौन? और तुम भीतर प्रसन्न होते कि तरकीब काम कर गई। यही तो तुम सुनना चाहते थे। इसलिए तुमने कहा था, मैं तुम्हारे चरणों की धूल हूं, ताकि कोई तुम्हें सिर पर रख ले क्योंकि तुम भलीभांति समझ गए हो अहंकार की राजनीति।

अहंकार की राजनीति यह है कि अगर तुम अपने अहंकार की घोषणा करो तो दूसरे उसका खंडन करेंगे। अगर तुम्हें चाहिए कि दूसरे तुम्हारा समर्थन करें, तुम उसका खंडन करो। इसलिए जिनको तुम विनम्र पाते हो वे विनम्र होंगे, ऐसा जरूरी नहीं है। अक्सर तो तुम्हारे विनम्र पुरुषों में सौ में निन्यानबे परम अहंकारी होते हैं। वे कहते हैं, मैं तो कुछ भी नहीं हूं; लेकिन उनकी आंखों में देखो! वे कहते हैं, मैं तो ना-कुछ हूं; लेकिन जरा उनके सिर की अकड़ में देखो! वे कहते हैं, मैं तो तुम्हारे चरणों में पड़ा हूं; लेकिन तुम गौर से देखोः कह वे कुछ रहे हैं, कर वे कुछ रहे हैं और कर रहे हैं कोशिश कि तुम उनके चरणों में गिर जाओ।

जब कोई आदमी तुमसे कहे कि मैं तो तुम्हारे चरणों की धूल हूं तो तुम उससे राजी हो जाना, फिर देखना। तुम कहना कि बिलकुल ठीक कह रहे हैं आप, यह तो मुझे पहले से ही पता थाः आप हैं ही चरणों की धूल। तब उसके चेहरे पर देखना। तत्क्षण तुम पहचान लोगे कि यह विनम्रता से कही गई बात थी या अहंकार से। वह आदमी नाराज हो जाएगा। वह कहेगाः समझा क्या है तुमने अपने-आप को? शिष्टाचार की भाषा भी नहीं समझते? यह हमारा मतलब नहीं है। कौन कहता है कि हम चरणों की धूल हैं? यह तो संस्कारवश, कुलीन घर में हम पैदा हुए हैं, इसलिए ऐसा कहते हैं।

तुम्हें झुकना सिखाया गया है ताकि तुम दूसरों को झुका सको। यह कूटनीति है।

फरीद जैसे व्यक्तियों के जीवन में कोई कूटनीति राजनीति नहीं है। वह सीधे-साफ हैं। उन्हें जो ठीक लगता है, वह कह रहे हैं; और इतनी सरलता से कह रहे हैं, वह सबूत है कि पीछे अहंकार नहीं हो सकता। अन्यथा अहंकार तो हमेशा सजावट करता है, छिपाता है। क्योंकि अहंकार भलीभांति जानता है कि तुम्हारा ही थोड़े अहंकार है, सबका अहंकार है। तुमने अगर ज्यादा घोषणा की तो दूसरे के अहंकार को चोट लगने लगती

है। और दूसरे को चोट पहुंचाई तो वह तुम्हें चोट दुगुनी चोट से लौटाएगा। इसलिए अहंकार कहता हैः दूसरे को फुसलाना, चोट मत खाना, मक्खन लगाना, प्रसन्न करना दूसरे को। जब तुम दूसरे को प्रसन्न करोगे, दूसरा तुम्हें प्रसन्न करेगा। यह सीधी सी बात है। यह सीधा सा गणित है।

फरीद जैसे लोग इन बातों कि फिक्र नहीं करते। उनके भीतर जो जाग गया है वहां अब कोई अंधकार नहीं है। उन्होंने अपने को जाना है, अब कोई, अत्ता कोई अहंकार नहीं है। और फिर तुमसे क्या कहें? तुमसे बात करनी ही मुश्किल है। तुमसे कहो कुछ, तुम समझते कुछ हो। इसलिए फरीद जैसे लोग अपने से कहते हैं।

यह पुराने संतों का एक ढंग था और बड़ा बहुमूल्य ढंग था। कबीर भी यही करते हैं, दादू भी यही करते हैं, मीरा भी यही करती हैं। बड़ा कारगर ढंग था। अपने से कहते हैं; तुम बहाने से सुन लेते हो। तुम इतने जटिल हो, इतने पागल हो कि तुमसे सीधा कहने में भी मुश्किल है। तुमको अगर अंधा भी कहना हो—अंधे तुम हो—तो फरीद को अपने को ही धंधा कहना पड़ता है; शायद उससे तुम्हें थोड़ी सी समझ आ जाए; शायद इतने परोक्ष कही गई बात से तुम उद्विग्न न होओ, लड़ने-झगड़ने को खड़े न हो जाओ। क्योंकि तुम कहोगे, फरीद अपने से ही कह रहा है। लेकिन फरीद के नाम से बहाने उसने सारे संसार से कह दिया, उन सब फरीदों से जो अभी भी सोए हैं।

दूसरा प्रश्नः कल आपने कहा कि धार्मिक क्रांति ही एकमात्र क्रांति है। क्या देश और समाज के प्रति हमारा कोई दाईत्व नहीं है? इस संबंध में कुछ मित्रों का कहना है कि आप जैसी श्रेष्ठ मनीषा को समाज, राजनीति और सत्ता पर ध्यान देना चाहिए, ताकि एक बेहतर मनुष्यता का उदय हो सके।

देश एक झूठी इकाई है। समाज केवल संज्ञा है। समाज का कोई अस्तित्व नहीं है। तुम कहीं समाज को पा न सकोगे। खोजने जाओगे, व्यक्ति मिलेंगे, समाज नहीं। टकराओगे व्यक्तियों से, समाज से नहीं। लेकिन शब्द बड़े घातक हो सकते हैं। और शब्दों की आड़ में बड़े असत्य छिपाए जा सकते हैं। और अगर शब्दों को तुमने ठीक से न समझा तो बड़ी उलझनें हो सकती हैं।

मैं कल ही देख रहा था। जापान में दूसरे महायुद्ध के दिनों में, हिरोशिमा और नागासाकी बच सकते थे, एटम बम न गिरा होता। एक छोटे से शब्द ने दिक्कत दे दी। अमरीकन जर्नल ने जापान की सरकार को पत्र भेजा, लेकिन पत्र का अनुवाद जापानी में किया गया। एक ऐसा शब्द अनुवाद हो जाने से उसके दो अर्थ हो गए। जापानी में दो अर्थ हैं उस शब्द के। उसमें एक अर्थ जो दुर्भाग्यवश सरकार ने स्वीकार किया कि यह अर्थ के कारण हिरोशिमा, नागासाकी पर एटम बम गिरा। अगर उसका दूसरा अर्थ लिया गया होता तो वे दो लाख मरने से बच गए होते, वह दुर्घटना बच गई होती।

शब्द कभी-कभी बड़े भयानक और खतरनाक सिद्ध होते हैं।

समाज, धर्म, राष्ट्र, मनुष्यता—ये शब्द इतनी बार तुमने सुने हैं कि तुम भूल ही गए कि ये कोरे शब्द हैं, इनके पीछे कोई भी नहीं है। कहां है मनुष्यता? मनुष्य हैं, मनुष्यता कहीं भी नहीं। कहा है राष्ट्र? झूठी आदमी की खींच गई सीमाएं हैं जिनको न तो पृथ्वी स्वीकार करती है, न आकाश स्वीकार करता है। कहां आकाश समाप्त होता है भारत का, और कहां शुरू होता है चीन का आकाश?

लेकिन राजनीतिज्ञ बिना सीमाएं निर्धारित किए नहीं जी सकता। राजनीति का सारा खेल सीमा का है, झगड़ा सारा सीमा का है। इसलिए राजनीतिज्ञ सीमा पर बड़ा जोर देता है कि सीमा होनी चाहिए, सुनिश्चित होनी चाहिए। सारे झगड़े दुनिया में चलते हैं, वे सीमा के हैं, कि दो इंच उस तरफ सीमा।

धर्म है असीम। राजनीति है सीमा का झगड़ा। दोनों का कोई तालमेल नहीं है। राजनीति है माया का हिस्सा; धर्म है जागरण का, होश का। दोनों का कोई तालमेल नहीं है। सो कर तुम जो सपने देखते हो, जाग कर तुम पाओगे, वे थे ही नहीं। तुम्हें राष्ट्र दिखाई पड़ता है, मुझे नहीं दिखाई पड़ता। जाग कर मैंने पाया, न कोई

राष्ट्र है, न कोई समाज है, न कोई मनुष्यता है; व्यक्ति हैं। और व्यक्ति की निजता परिपूर्णता है। उसे समूहों में बांधने की कोई जरूरत नहीं। जैसे ही हम समूहों में बांधते हैं, वैसे ही हम व्यक्ति की हत्या कर देते हैं। समूह व्यक्ति की आत्महत्या पर खड़ा होता है।

मैं तो चाहूंगा एक ऐसा संसार, जहां व्यक्ति तो हों, परिपूर्ण सौंदर्य में हो, पूरे खिले हों; लेकिन कोई समाज न हो, कोई संप्रदाय न हो, कोई राष्ट्र न हो। इसलिए मैं राजनीति का मूलतः विरोधी हूं। इस राजनीति का विरोध हूं, उसका विरोधी नहीं हूं—ऐसा नहीं है; राजनीति मात्र का विरोधी हूं। क्योंकि राजनीति इस जगत का सबसे भ्रांत गोरखधंधा है। और मनुष्य बिना राजनीति के बड़े मजे से रह सकता है। सच तो यह है कि राजनीति के कारण ठीक से नहीं रह पाता। झगड़े राजनीति खड़े करती रहती है।

राजनीतिज्ञ बिना झगड़े के नहीं जी सकता। बिना युद्ध के राजनीतिज्ञ का क्या मूल्य है? अगर लोग शांत हों, आनंद से जीते हों, तो राजनीतिज्ञ गिर जाएगा अपनी प्रतिष्ठा से। अगर लोग परम आनंदित हों तो राजनीति को लोग भूल ही जाएंगे, राजनीतिज्ञ को भूल जाएंगे। तो राजनीतिज्ञ कोशिश करता है, सीमाओं के झगड़े बने रहें; सदा संकट की दशा बनी रहें, घबड़ाए रहें। जब लोग डरे होते हैं तभी वे नेता के पीछे चलते हैं। जब लोग अभय होते हैं, कौन किस नेता की फिक्र करता है? इसलिए हर नेता हर राष्ट्र को डरवाए रखता है: खतरा है! पाकिस्तान कहता है, हिंदुस्तान से खतरा है; हिंदुस्तान कहता है, पाकिस्तान से खतरा है। ये सब मौसेरे-चचेरे भाई-बहन हैं। ये दोनों एक-दूसरे के सहारे जीतें हैं। पाकिस्तान में वे चिल्ला देते हैं, भेड़िया आया! लोग लाइन लगा कर खड़े हो जाते हैं। और जब भी देखता है नेता कि अब निश्चिंत हुए जा रहे हैं, अब मेरी फिक्र नहीं करते, अब मेरी तरफ उनका ध्यान नहीं—तभी वह चिल्ला देता है, भेड़िया आया!

और कितनी बार राजनीतिज्ञ चिल्लाते रहे इतिहास में। हमारी नींद अदभुत है। साधारण नींद न होगी; मूर्च्छा है, टूटती ही नहीं। मनुष्य-जाति के तीन हजार सालों के इतिहास में निरंतर युद्ध होता रहा है। कहीं न कहीं पृथ्वी के किसी न किसी कोने पर युद्ध जारी है। आदमी काटा जा रहा है। राजनीति का देवता बड़ा बलिदान मांगता है। वह नरमेध-यज्ञ है। राजधानियां खूनों पर बनी हैं, रक्त की धारों पर बनी हैं। राजधानियां के पत्थर-पत्थर में न मालूम कितने लोगों के खून के दाग हैं।

लेकिन हमें दिखाई नहीं पड़ता। और दिखाई हमें नहीं पड़ता क्योंकि बचपन से हमें संस्कारित किया जाता है कि तुम किसी समाज के हिस्से हो। तुम्हें सह कभी नहीं कहा गया कि तुम्हारी अपनी कोई निज-गरिमा है। तुम्हें यही कहा गया है, तुम समाज के हिस्से हो; जब समाज को जरूरत हो, तुम बलि के बकरे बन जाना। तुम्हारा उपयोग यही है।

मैं हिटलर का जीवन पढ़ता था कुछ दिन पहले। जब जर्मन सेनाएं काटी जाने लगीं और युद्ध हारने की तरफ मुड़ने लगा, जर्मनी मौत और हार की तरफ बढ़ने लगा, और खबरें पहुंचीं कि जर्मन युवक बुरी तरह काटे जा रहे हैं। जर्मन युवक, हत्या की जा रही है उनकी, जैसे घासपात काटा जा रहा हो। हिटलर ने सिर ऊपर उठाया और कहा: युवक और किसलिए हैं? युवकों का और उपयोग क्या हैं?

हिटलर ईमानदार राजनीतिज्ञ है, दूसरा राजनीतिज्ञ इतना ईमानदार नहीं होगा; क्योंकि हिटलर बिलकुल पागल है। पर सभी राजनीतिज्ञ यही जानते हैं कि युवक का और उपयोग क्या है; उसका उपयोग है कि मेरे देश के लिए, राष्ट्र के लिए।

जीने के लिए तुम पैदा हुए हो; किन्हीं क्षुद्र बातों के लिए लड़ने के लिए तुम पैदा हुए हो! और छोटी-छोटी बातें हैं कि तुम चकित होओगे, जिनके लिए आदमी लड़ाया जा सकता है। और आदमी को होश नहीं आता। नाम, कोरे नाम.....भारतभूमि संकट में है! भूमि वही की वही है; लेकिन अब अगर कराची संकट में होगा, तुम न मरोगे—अब वह भारतभूमि नहीं है। भूमि वही कि वही है; लेकिन अब अगर कराची संकट में

होगा तो तुम प्रसन्न होओगे, तुम उत्सव मनाओगे। उन्नीस सैंतालीस के पहले अगर पूना नष्ट होता तो कराची के लोग दुखी होते; अब अगर पूना नष्ट होगा, कराची के लोग मिठाई बांटेंगे, बताशे बांटेंगे कि अच्छा हुआ।

उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले तुम एक थे, सैंतालीस ने एक लकीर खींच दी। और ये लकीरें छोटी होती चली जाती हैं। ऐसा नहीं है कि हिंदू और मुसलमान ही लड़ते हैं, गुजराती-मराठी लड़ते हैं, हिंदी-गैर-हिंदी लड़ते हैं। लड़ने का मामला ऐसा है कि छोटी से छोटी सीमाएं बनानी पड़ती हैं; क्योंकि छोटे-छोटे राजनीतिज्ञ हैं, उनको भी तो लड़ाई के लिए कोई उपाय चाहिए। नर्मदा चाहिए। नर्मदा के जल पर लड़ते हैं कि वह गुजरात का है कि मध्यप्रदेश का । तुम्हें हंसी आएगी कि यह क्या पागलपन है! कोई एक छोटा जिला महाराष्ट्र में रहे कि मैसूर में जाए, उसके लिए लड़ते हैं। छुरेबाजी हो जाती है। तुम्हें थोड़ा चकित होना पड़ेगा कि यह तो कम से कम एक ही मुल्क है, इसके भीतर क्यों झगड़ा है।

राजनीतिज्ञ जी ही नहीं सकता बिना झगड़े के। बड़ा राजनीतिज्ञ बड़े झगड़े पर जीते हैं; वे कहते हैं, हिंदुस्तान-पाकिस्तान का झगड़ा है। और छोटा राजनीतिज्ञ है : वह कहता है, मैसूर और महाराष्ट्र का झगड़ा है। फिर मैसूर में भी छोटे राजनीतिज्ञ हैं। एक जिले के दूसरे जिले से झगड़े हैं कि यूनिवर्सिटी इस में बने के दूसरे जिले में बने, कारखाना यहां खुले कि दूसरे गांव में खुले! फिर गांव-गांव के राजनीतिज्ञ हैं। छोटे राजनीतिज्ञ चाहते हैं, छोटे-छोटे प्रांत हो जाए, उतने ज्यादा चीफ मिनिस्टर होंगे। बड़ा राजनीतिज्ञ चाहता है प्रांत न बंटे, क्योंकि जितना बंट जाता है उतनी उसकी सत्ता बंट जाती है। छोटा राजनीतिज्ञ चाहता है बंटाव हो जाए, ताकि मेरे हाथ में भी कुछ पड़ जाए। लेकिन ऊपर के राजनीतिज्ञ की सत्ता कटती है; वह चाहता है मुल्क इकट्ठा हो। लेकिन सारा खेल इस बात का है कि मेरी सत्ता कायम हो। फिर वे अच्छे-अच्छे शब्दों का उपयोग करते हैं : देश-प्रेम, राष्ट्र, समाज, धर्म, इतिहास, अतीत, परंपरा—बड़े अच्छे शब्द हैं, और सब थोथे हैं जिनके भीतर तुम जरा भी कुछ न पाओगे; निचोड़ोगे, कुछ भी हाथ न लगेगा। घास-पात! और इनके नाम पर जीवित आदमी बलिदान किया जाता है।

नहीं, मेरी कोई चेष्टा, कोई रत्ती भर भी उत्सुकता राजनीति में नहीं है। अगर मैं भी कुछ बोलता हूं तो वह केवल व्यंग्य है, वह केवल मजाक है। उसमें भी राजनीतिज्ञ को नीचा दिखाने की कोई चेष्टा नहीं, क्योंकि मेरी उतनी भी उत्सुकता नहीं है। अगर मैं कभी राजनीतिज्ञ का व्यंग्य भी करता हूं और राजधानियों का मजाक भी करता हूं, तो सिर्फ तुम्हें समझाने को कि तुम इस पागलपन में मत पड़ जाना। राजनीतिज्ञ को नीचा दिखाने का मेरा कोई मन नहीं, क्योंकि इससे नीचे अब वह और हो भी नहीं सकता। उसको नीचे दिखाने का कोई सार भी नहीं है। वह आखिरी गर्त में पड़ा है; उससे और नीचा कोई गड्ढा होता नहीं जिसमें उसको धकाया जा सके। उस पर दया आती है। उसको और धकाने का क्या उपाय है? उसकी मैं बात भी नहीं कर रहा हूं।

मैं तुमसे बात कर रहा हूं कि तुम्हारे भीतर राजनीति का स्वर बज सकता है; क्योंकि वह सभी अहंकार के भीतर छिपा है।। जब तक अहंकार है तब तक तुम किसी न किसी तरह राजनीति के खेल में लगे रहोगे। अहंकार ही गिर जाए तभी राजनीति गिरती है।

तो, मेरा तो सारा उपाय इतना है कि तुम्हारे भीतर भी राजनीति न रहे, तभी तुम्हारे भीतर धर्म का जन्म होगा। धर्म और राजनीति का कहीं मिलना नहीं होता। और अगर कहीं तुम उन्हें मिलता देखो तो तुम पाओगे कि राजनीति जीत जाएगी, धर्म हार जाएगा।

इसे थोड़ा समझ लो। जब भी एक श्रेष्ठ चीज और निकृष्ट चीज में समझौता होता है तो निकृष्ट जीत जाता है, श्रेष्ठ हार जाता है। सब समझौते में निकृष्ट जीतता है। इसके कारण हैं।

समझो कि तुम्हारे पास दूध रखा है, मटकी भर दूध है। इसमें कोई मटकी भर गोबर डालोगे तब यह खराब होगा? इसमें एक बूंद गोबर डालने से खराब हो जाएगा। मटकी भर गोबर रखा है, इसमें क्या तुम एक

बूंद दूध डाल दोगे तो यह शुद्ध हो जाएगा? इसमें तुम सागर भी ले आओ दूध का डालने, तो भी शुद्ध न कर पाओगे। एक बूंद लहर की सब नष्ट कर देती है।

तो जब भी तुम राजनीति और धर्म में समझौता होते देखो, तुम पाओगे धर्म हार गया। फिर वहां धर्म कहते हो—हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख—सब राजनीति के शिकार हो गए, सब राजनीति के पीछे चलने लगे। क्योंकि राजनीति ने कहा कि हम तुम्हें ताकत देंगेः तुम्हारे मंदिर बड़े हो जाएंगे; तुम्हारी मस्जिदों में सोना चढ़वा देंगे; धर्म-गुरु का सिंहासन बड़ा ऊंचा होगा।

राजनीति धर्म के कंधे पर सवार होना चाहती थी, तो राजनीति ने कहा कि तुम महान हो। बड़े से बड़ा राजनीतिज्ञ भी जाता है और संतों के चरण छू आता है। तुम यह मत सोचना कि वह संतों के चरण छूता है। संतों से उसे क्या लेना-देना? क्योंकि जिसको संतों के चरण छूना होता, वह खुद ही संत हो सकता था। संतों के चरण छूने जाता है—कई कारणों से। एक कि आशीर्वाद मिल जाए उसके पागलपन के लिए कि वह जो कर रहा है, जो दीवानगी है उसके मन में महत्वाकांक्षा की, वह पूरी हो जाए। शायद संतों के आशीर्वाद से सहारा मिले। दूसरा वह जाता है पैर छूने कि संतों के आसपास जो भीड़ है लोगों की, वह देख ले कि यह राजनीतिज्ञ कितना धार्मिक है; क्योंकि इस भीड़ के ही वोट उसे राजनीति में चाहिए।

तो, राजनीतिज्ञ मंदिरों में भी जाता है, मस्जिदों में भी जाता है, गुरुओं के पास भी जाता है, पैर छू कर झुकता है कि लोग देख लें, तस्वीरें खींच लें कि यह आदमी विनम्र है। क्योंकि विनम्रता की सीढ़ियों से ही चढ़ कर अहंकार के शिखर पर पहुंचा पाएगा, और कोई उपाय नहीं है। राजनीतिज्ञ को न मंदिर से मतलब है, न मस्जिद से; तुम जहां बुलाओ वह वहां हाजिर है। वह देखता है अपनी राजनीति को कि कहां से मेरी सीढ़ियां ठीक बनेगी।

मेरी कोई उत्सुकता राजनीति में नहीं है; क्योंकि मैं मानता हूं कि राजनीति एक मानसिक विकार है। स्वस्थ आदमी उसमें उत्सुक होता ही नहीं। हो ही नहीं सकता। स्वस्थ आदमी अपने आनंद में, अपनी शांति में उत्सुक नहीं होता। महत्वाकांक्षा पैदा ही होती है हीनता की ग्रंथि से। वह इनफिरियारिटी कांपलेक्स का परिणाम है। तुम्हारे भीतर जितना हीनता का भाव होता है उतनी ही तुम्हारे भीतर महत्वाकांक्षा होती है। तुम जब राष्ट्रपति न हो, प्रधानमंत्री न हो जाओ, तब तक तुम्हें लगता ही नहीं कि तुम आदमी हो। तब तक तुम्हें लगता है, सिद्ध न कर पाए कि मैं भी कुछ हूं। सिद्ध करना है कि मैं कुछ हूं! यह सिद्ध करने की आकांक्षा ही इसलिए पैदा होती है कि तुम्हें भीतर लगता है, तुम नाकुछ हो। लेकिन जिसको भीतर लगता हो, मैं सब कुछ हूं, अब उसको सिद्ध करने को कुछ भी न बचा।

जिसके भीतर से हीनता चली गई, उसके बाहर से राजनीति चली गई। जिसके भीतर सब उपलब्ध हो गया, उसे बाहर पाने को कुछ भी न रहा।

इसलिए मैं कहता हूं, धार्मिक क्रांति ही एकमात्र क्रांति है। क्योंकि उसी से तुम परत संपदा को उपलब्ध होओगे, परम रूपांतरण को, तुम्हारा नया जन्म होगा, तुम द्विज बनोगे।

देश और समाज के प्रति तुम्हारा कोई दायित्व नहीं है। अगर दायित्व है तो मनुष्य के प्रति नहीं। अगर दायित्व है तो व्यक्ति के प्रति, समाज के प्रति नहीं। क्योंकि समाज शब्द धोखे का है। और समाज के नाम पर तुमसे वह करवाया जाता है जो तुमने कभी न किया होता अगर तुम्हें इस बात का बोध होता। व्यक्ति के प्रति तुम्हारा दायित्व है।

समझो, तुम्हारी पत्नी है, तुम्हारा छोटा बच्चा है। तुम जानते हो कि तुम छोड़ कर इन्हें चले गए तो ये भूखों मरेंगे; लेकिन राजनीतिज्ञ कहता है, देश खतरे में है। देश है क्या? इसी तरह के छोटे-छोटे घरों के इकट्ठे समूह का नाम देश है। इसी तरह की घर में बैठी पत्नियों के जोड़ का नाम देश है। इसी तरह के छोटे-छोटे घरों के इकट्ठे समूह का नाम देश है। राजनीतिज्ञ कहता है, देश खतरे में है। तुम कहते होः लेकिन मेरी पत्नी है,

छोटा बच्चा है। वह कहता हैः क्या कायरता की बातें कर रहे हो? बलिदान कर दो। जब देश खतरे में है तो न कोई पत्नी है, न कोई बच्चा है! युद्ध पर जाओ।

ऐसे न मालूम कितने घरों से न मालूम कितने व्यक्तियों की हत्या के ऊपर देश पर कुर्बानी होगी।

और यह दूसरे देश का राजनीतिज्ञ अपने देश में समझा रहे है। जो वहां युद्ध के मैदान पर लड़ने को खड़े हो जाते हैं, वे एक जैसे लोग हैं, उनकी एक दूसरे से कोई दुश्मनी नहीं है। किसी ने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं है। किसी ने किसी को देखा तक नहीं था पहले। और जब एक देश के लोग दूसरे देश के सैनिकों की छाती में छुरा भोंकते हैं या बम फेंकते हैं, या गोली दागते हैं तो उन्हें पता नहींः हिंदू थोड़े ही मरता है, मुसलमान थोड़ेही मरता है—व्यक्ति मरते हैं। हिंदुस्तानी थोड़े ही मरता है, पाकिस्तानी थोड़े ही मरता है—मनुष्य मरते हैं। और जब तुम एक पाकिस्तानी की छाती में छुरा भोंकते हो, जब तुमने एक नन्हें बच्चे के, जो घर में भूखा रहेगा, जिसकी पत्नी को अब रोटी नहीं मिलेगी, या हो सकता है कि पत्नी की बेइज्जती होगी, कोई बलात्कार करेगा, कोई बचाने वाला न होगा—तुमने उस पत्नी और बच्चे की छाती में छुरा भोंक दिया। और वह भी तुम्हारी छाती में छुरा भोंक रहा था। उसे भी पता नहीं है कि तुम घर में एक रोती हुई मां को छोड़ आए हो।

व्यक्तियों की हत्या की जाती है, जो कि वास्तविक हैं। समाजों और राष्ट्रों को बचाया जाता है, जो कि झूठ हैं।

मैं तुमसे कहता हूं, मनुष्यता को भूल कर प्रेम मत करना, मनुष्य को प्रेम करना। क्योंकि मेरे अनुभव में यह आया है कि जो-जो लोग मनुष्यता की बात करते हैं, वे लोग असमर्थ हैं मनुष्य को प्रेम करने में। जब तुमसे मनुष्य से प्रेम करने में कठिनाई पड़ती है,...मनुष्य को प्रेम करना बड़ा कठिन है। कठिन है, क्योंकि अहंकार को गिराना पड़ेगा। कठिन है,क्योंकि मनुष्य एक यथार्थ है। यथार्थ के साथ जीने में संघर्ष है। तुम कहते होः नहीं, मनुष्यों से मुझे कोई मतलब नहीं है; मैं मनुष्यता को प्रेम करता हूं।

अब मनुष्यता तुम्हें कहीं न मिलेगी। न कोई झगड़ा-झंझट होगा। यह मनुष्यता तुम्हारा खयाल है। मनुष्यता कहीं भी नहीं है, तुम्हारे विचार के अतिरिक्त। राष्ट्र कहां है, तुम्हारे विचार के अतिरिक्त? और इन राष्ट्रों, देशों के नाम पर आदमी को अब तक जलाया-भुनाया गया है।

कब जागेगा आदमी? कब उसे होश आएगा कि सारे मनुष्य एक जैसे हैं; सारे मनुष्यों की तकलीफें एक जैसी है; सारे मनुष्यों को भूख लगती है, सिर में दर्द होता है, दवा की जरूरत होती है; सब बच्चे-बच्चे हैं; सब स्त्रियां स्त्रियां हैं, पुरुष पुरुष हैं, न कोई हिंदू है, न कोई मुसलमान है, न कोई ईसाई, न कोई हिंदुस्तानी है, न कोई पाकिस्तानी है।

जिस दिन ऐसे विचार का जन्म होगा, और तुम मनुष्य को प्रेम करोगे, और मनुष्य को किसी भी दूसरी चीज के लिए कुर्बान न करोगे, उसी दिन दुनिया में शांति होगी, उसके पहले नहीं।

लेकिन राजनीतिज्ञ कहता हैः अगर तुमने हमारी न सुनी, तो दुनिया में अशांति हो जाएगी। हम शांति के रक्षक हैं। हम युद्ध भी करते हैं तो शांति के लिए करते हैं। हम मारते भी हैं तो बचाने के लिए। हमारी हिंसा भी अहिंसा की सुरक्षा का उपाय है।

वह तुम्हें धोखे दे रहा है। युद्ध की तैयारी करता है, शांति की बात करता है। तो, हिटलर भी वही कहता है, मुसोलिनी भी वही कहता है। सारे युद्धखोर यही कहते हैं कि हम शांति के लिए लड़ रहे हैं। इनके विरोधाभास को ठीक से समझ लेना।

शांति के लिए लड़ने की जरूरत कहां है? शांति के लिए शांत होने की जरूरत है। शांति के लिए तो युद्ध छोड़ देने की जरूरत है।

मेरी चेष्टा है कि तुम जागो। तुम जागोगे तो तुम्हें चीजें दिखाई पड़नी शुरू हो जाएंगी कि यह क्या पागलपन हो रहा है! तुम किस गहरी नींद में खोए थे?

और राजनीतिज्ञ तुम्हारी नींद कर शोषण करता है। वह नहीं चाहता कि तुम जागो। वह चाहता है कि तुम गहरी नींद में रहो, क्योंकि तुम्हारी नींद में ही वह तुम्हारी छाती पर बैठ सकता है। तुम्हारी नींद में ही वह अपने पद, प्रतिष्ठाएं, अपनी शक्ति का संग्रह कर सकता है। तुम जाग जाओ तो उसे छाती से उतार दोगे।

इसलिए कोई राजनीतिज्ञ नहीं चाहता कि दुनिया में आदमी का बोध गहरा हो। इसलिए राजनीतिज्ञ हमेशा संत के विपरीत हैं। अगर कोई संत हो तो राजनीतिज्ञ सदा विरोधी हैं उसके। हां अगर कोई संत न हो तो राजनीतिज्ञ उसके चरण छूता है। वह कहता हैः आप राष्ट्र-संत हैं! वह कहता हैः आपके आशीष चाहिए! क्योंकि वह देखता है कि इस आदमी के माध्यम से जो धर्म के नम पर लोग इकट्ठे हो गए हैं, उनको भी राजनीति की मूढ़ता में संलग्न किया जा सकता है।

नहीं, मैं तुमसे कहता हूं, समाज के प्रति तुम्हारा कोई भी दायित्व नहीं है। इसका तुम यह मतलब मत समझना कि मैं समाज का दुश्मन बनता हूं। जब मैं कहता हूं, समाज के प्रति तुम्हारा कोई दायित्व नहीं है, मनुष्य के प्रति दायित्व है, तब मैं तुमसे कह रहा हूं कि मनुष्य के प्रति अपने से पूरा हो जाएगा, तुम्हें उसका विचार भी करना जरूरी नहीं है। क्योंकि समाज व्यक्तियों का जोड़ है।

यहां तुम आए हो अगर मैं तुमको एक-एक बिठा कर भोजन करा दूं, तुम्हारी सबकी भूख मिट जाए, तो इस समूह की भूख मिट जाएगी या नहीं? लेकिन मैं कहूंः नहीं, तुम्हारी भूख से मुझे कोई मतलब नहीं, मुझे तो इस समूह की भूख को मिटाना है। अगर तुम तो भूखे भी रहो इस समूह की भूख को मिटाने में तो कोई हर्जा नहीं, कुर्बान करो अपने को, शहीद हो जाओ--लेकिन समूह की भूख मिटानी है।

समूह का कोई पेट है, कि समूह की कोई भूख है? व्यक्ति का पेट है, व्यक्ति की भूख है। समाज की कोई आत्मा है। व्यक्ति की आत्मा है। लेकिन व्यक्ति से राजनीति का कोई संबंध नहीं है।

धर्म का संबंध व्यक्ति से है। राजनीति समाज की क्रांति है, धर्म व्यक्ति की क्रांति है। और मैं तुमसे कहता हूं, धर्म ही एकमात्र क्रांति है, क्योंकि क्रांति वही हो सकती है जहां आत्मा जीवंत हो। जहां आत्मा ही नहीं वहां क्रांति कैसे होगी? जहां चेतना ही न हो वहां रूपांतरण कैसे होगा? जहां भूख ही न हो, वहां भूख के बाद, भोजन के बाद, जो तृप्ति मिलती है, वह तृप्ति कैसे होगी?

झूठे शब्दों से सावधान! शब्दों ने आदमी को बहुत भरमाया है।

और स्वभावतः मित्रों को ऐसा लग सकता है कि मैं अपनी बुद्धि को समाज, राजनीति और सत्ता पर क्यों नहीं लगाता? तो मैं तुमसे यही कहूंगा जो फरीद कह रहा हैः फरीदा जे तू अकलि लतीफ--अगर फरीद, तुझमें थोड़ी भी बुद्धि हो तो समाज, राजनीति, सत्ता, उनसे दूर रहना। वह तो बुद्धिहीनों का धंधा है। नहीं तो बुद्ध पागल थे? महावीर पागल थे? मुझे तो अगर लगाना हो राजनीति पर बुद्धि को तो दिल्ली की यात्रा करनी पड़े। वे तो दोनों ही राजाओं के बेटे थे, सिंहासन पर बैठे ही थे। अपनी प्रतिभा का उपयोग कर सकते थे, भलीभांति; लेकिन दोनों ने छोड़ दिया सिंहासन, हट गए। क्योंकि प्रतिभा की पहली लक्षणा यह है कि उसे आकांक्षा नहीं होती। वह तो प्रतिभा नहीं होती, तब पद की आकांक्षा होती है। पद सब्स्टीटयूट है प्रतिभा का। प्रतिभा जब नहीं होती तब तुम दिखाना चाहते हो किसी भांति अपनी श्रेष्ठता--वह पद मिल सकता है। जब तुममें प्रतिभा नहीं होता तब तुम अपनी जेब बड़ी करके दिखाना चाहते हो, तिजोड़ी बड़ी करके दिखाना चाहते हो, तुम अपना सिंहासन ऊंचा करके दिखाना चाहते हो। लेकिन प्रतिभा अगर हो तो तुम राह पर भी खड़े रहो तो भी प्रतिभा का सूर्य चमकता है, उसके लिए दिल्ली जाने की कोई जरूरत नहीं है।

नहीं मैं तो कहता हूं कि अगर तुममें प्रतिभा हो तो वही गारंटी है कि राजनीति में तुम्हारी उत्सुकता न होगी। मैंने राजनीति में सिर्फ थर्ड क्लास, बिलकुल तृतीय श्रेणी की बुद्धि के लोगों को देखा है। प्रथम कोटि के लोग उस तरफ उत्सुक नहीं होते। प्रथम कोटि का आदमी चुपचाप वहां से हट जाता है। क्योंकि वहां वह

अनुभव करता है कि यह तो हीन लोगों की प्रतिस्पर्धा है। जो कुछ भी नहीं हैं, वे कुछ होने के दिखावे में लगे हैं। आत्मवंचना है!

लेकिन इसका मतलब नहीं है कि मनुष्य से मेरा कोई प्रेम नहीं है। मनुष्य से मेरा प्रेम है, इसलिए मेरी उत्सुकता राजनीति में नहीं है; क्योंकि राजनीति सबसे बड़ा जहर है और मनुष्य अगर राजनीति से मुक्त हो जाए तो संसार स्वर्ग बन सकता है। लेकिन राजनीति दिक्कत देती है।

पिछले अनेक वर्षों में अमेरिका को बहुत बार अपने गेहूं को समुद्रों में डुबाना पड़ा है। रूस को कुछ वर्ष अपना गेहूं रेल के इंजनों में कोयले की जगह जलाना पड़ा है। राजनीति! क्योंकि अगर अमेरिका अपने उस गेहूं को मुफ्त बांट दे जो फेंकने योग्य है और उसकी कोई जरूरत नहीं है, जरूरत से ज्यादा है—अगर वह उसे मुफ्त बांट दे तो उसकी ताकत कमजोर होती है। तो बेहतर है नष्ट कर देना, लेकिन देना बेहतर नहीं है!

दुनिया में सब कुछ है; अगर राजनीति के घेरे न हों तो सभी को सभी कुछ उपलब्ध हो सकता है। विज्ञान ने इतनी खोज कर ली है कि किसी को भूखे मरने की कोई जरूरत नहीं है; लेकिन राजनीति के कारण बड़े अड़ंगे हैं। आधी दुनिया भूखी मरती है। वह तब तक मरेगी जब तक राजनीति की सीमाएं नहीं टूट जातीं। हजारों, लाखों, करोड़ों लोग बीमार हैं, स्वस्थ नहीं हो पाते, दवाइयां बंद पड़ी हैं मुल्कों के पासः लेकिन उनको जरूरत नहीं है दवाओं की, जिनको जरूरत है उन तक राजनीति के कारागृह हैं, वहां तक पहुंच नहीं सकती।

मनुष्य अगर राजनीति से मुक्त हो जाए—और जो कठिन बात है, क्योंकि उसका अर्थ यह है कि मनुष्य तभी राजनीति से मुक्त हो सकता है जब वह अपने में तृप्त हो जाए।

तो, मेरी सारी चेष्टा राजनीति से मुक्त करने की भी नहीं है, सारी चेष्टा तुम्हें तृप्त करने की है। मेरे उपाय विधायक हैं। तुम शांत हो जाओ, तुम प्रफुल्लित हो जाओ तो तुम्हारी आंख में वह गुण आ जाएगा जो चीजों को आरपार देखने लगे; तुम्हें चीजें साफ दिखाई पड़ने लगेंगी।

और पूछा है कि आपको इन चीजों पर ध्यान देना चाहिए ताकि एक बेहतर मनुष्यता का उदय हो सके!

इन्हीं के कारण तो बेहतर मनुष्यता का उदय नहीं हो पा रहा है, सारी चेष्टा तुम्हें तृप्त करने की है। मेरे उपाय विधायक हैं। तुम शांत हो जाओ, तुम प्रफुल्लित हो जाओ तो तुम्हारी आंख में वह गुण आ जाएगा जो चीजों को आरपार देखने लगे; तुम्हें चीजें साफ दिखाई पड़ने लगेंगी।

और पूछा है कि आपको इन चीजों पर ध्यान देना चाहिए ताकि एक बेहतर मनुष्यता का उदय हो सके!

इन्हीं के कारण तो बेहतर मनुष्यता का उदय नहीं हो पा रहा है। अगर लोग राजनीति से ध्यान हटा लें तब बेहतर मनुष्यता का जन्म बहुत दूर नहीं है। अब यह बहुत जटिल है बात, क्योंकि राजनीति का संस्कार बड़ा गहरा है। सारे अखबार उसी की बातें करते हैं। रेडियो उसकी बात करता है। टेलीविजन उसी की बात करता है। लोग उसी की चर्चा करते हैं। लोग एक दूसरे को दोहराते हैं। उसकी पुनरुक्ति इतने जोर से होती है कि मन में वह बैठता चला जाता है। तुम्हारे भीतर की लकीरें तय हो जाती हैं; तुम मुक्त नहीं रह जाते सोचने को।

अगर कभी कोई मंगलग्रह से कोई यात्री आए और तुम्हारे ढंग देखे तो बड़ा हैरान होगा कि यह आदमी कैसा पागल है! किसी ने किसी का झंडा नीचा कर दिया—उसको तो झंडा नहीं दिखाई पड़ेगा; वह तो देखेगा कि डंडे पर कपड़ा लटकाया हुआ है, रंगीन है, कई तरह के रंग लगाए हैं—किसी ने किसी का झंडा नीचा कर दिया, बस छुरे-तलवार निकल आए, झंडा नीचा हो गया! झंडा ऊंचा रहे हमारा! अब झगड़ा, युद्ध; मार डालेंगे लाखों को, क्योंकि झंडा नीचा हो गया! उसकी समझ में ही नहीं आएगा कि ये आदमी क्या पागल हैं यहां! इसमें मामला क्या हो गया, किसी ने किसी का कपड़ा नीचा कर दिया?

लेकिन राजनीतिज्ञ कहते हैंः यह कोई चीथड़ा नहीं है! प्राण चले जाएंगे! यह झंडा है!

तुम थोड़ा सोचो कि तुम्हारे मन को किस भांति सम्मोहित किया गया है। झंडा नीचा हो गया! झंडे में है क्या? और झंडा नीचा हो गया, इसमें क्या अड़चन है? फिर से ऊंचा कर लो। इसमें मरने-मारने का कहां सवाल है?

नहीं, लेकिन तुम बिलकुल मूर्च्छित हो। झंडा तुम्हारा अहंकार है। वह कपड़ा नहीं है, उसमें तुमने बड़े भारी अपने अहंकार को नियोजित किया हुआ है। झंडा नीचा हो गया, अब मुल्क खतरे में है। झगड़ा होगा, लाखों लोग कटेंगे!

फिर यह चल रहा है पूरे इतिहास से। किसी ने किसी मंदिर की मूर्ति तोड़ दी; किसी ने किसी मस्जिद के सामने बाजा बजा दिया झगड़ा हो गया!

अगर मंगल ग्रह का कोई यात्री ऊपर से देखे तो वह देखेगा के यह पूरी पृथ्वी पागल है, विक्षिप्त है। क्योंकि तुम्हारा कोई ढंग उसकी समझ में न आएगा। तुम्हारा ढंग समझने योग्य नहीं है। तुमको समझ में आता है, क्योंकि तुम्हें उसी तरह की शिक्षा दी गई है तो तुम्हें समझ में आता है। अगर तुम थोड़े भी जाग जाओ तो तुम्हें भी दिखाई पड़ेगा: यह क्या हो रहा है? इसकी जरूरत क्या है? इसमें कहीं बुद्धिमानी नहीं दिखाई पड़ती। इससे ज्यादा और बुद्धिहीनता क्या होगी?

लोग नेताओं के पीछे चले जा रहे हैं। एक नेता दूसरे नेता को नीचे उतारने की कोशिश करता है। किसी को जीवन की असली समस्याओं से कोई प्रयोजन नहीं है। समस्या एक ही है कि मेरे हाथ में सारी ताकत होनी चाहिए। ताकत का तुम क्या करोगे? ताकत को पा भी लोगे तो होगा क्या? कितने सिकंदर, कितने नेपोलियन, कितने हिटलर, कितनी बड़ी ताकत के लोग थे! क्या हुआ? ताकत से सिर्फ विध्वंस हुआ है। क्योंकि ताकत चाहने वाला जो आदमी है वह आदमी गलत है। ताकत उसके हाथ में हो जो ताकत नहीं चाहता, तो शायद कुछ लाभ भी हो। लेकिन जो ताकत चाहता है उससे लाभ नहीं हो सकता। क्योंकि उसकी महत्वाकांक्षा का कोई अंत न होगा; उसे और ताकत का पूरा मजा नहीं आ सकता।

तुम अपने राजनीतिज्ञों के चित्रों को गौर से देखो। तुम चकित होओगे। तुम उनकी कार्यवाहियों को गौर से देखो। तुम जरा अपने को दूर करो उस सारी कंडीशनिंग से, संस्कारों से, जो तुम पर पड़े हैं, और फिर तुम गौर से देखो: तुम हंसोगे कि यह क्या हो रहा है! पृथ्वी पूरी एक बड़ा पागलखाना है।

नहीं, मनुष्यता का उदय राजनीति से अगर होता तो कभी का हो गया होता। राजनीति तो बड़ी पुरानी है। मनुष्यता का उदय—मनुष्यता के उदय से मेरा मतलब मनुष्य का उदय—सिर्फ एक ढंग से हो सकता है: वह सत्ता नहीं है, वह शून्यता है; शक्ति नहीं है, शांति है; दूसरे पर कब्जा नहीं है, अपनी मालकियत, अपना स्वामी हो जाना पर्याप्त है। और प्रत्येक व्यक्ति अगर अपना स्वामी हो तो इस संसार में एक स्वामित्व की सुगंध होगी; हरेक अपना मालिक होगा।

राजनीति है दूसरे को गुलाम बनाने की चेष्टा, दूसरे का मालिक होने की चेष्टा; धर्म है अपना मालिक होने की चेष्टा।

मालिक तो मैं भी तुम्हें बनाना चाहता हूं, लेकिन अपना ही। तुम्हीं तुम्हारे गुलाम, तुम्हीं तुम्हारे मालिक! तुम्हीं तुम्हारी प्रजा, तुम्हीं तुम्हारे राजा! तुम्हीं तुम्हारा देश, तुम्हीं तुम्हारे सत्ताधिकारी। अगर तुम अपने इस छोटे से भीतर के विश्व को सम्हाल लो तो तुमने सारे विश्व को सम्हालने का सूत्रपात कर दिया। एक आदमी संगीत से भर जाए, तो वह अपने पड़ोस में संगीत की लहरें पहुंचाने लगता है।

निश्चित ही, मनुष्यता कैसे बेहतर हो, इसकी चेष्टा मैं भी कर रहा हूं; लेकिन वह चेष्टा राजनीति की चेष्टा नहीं है। मैं तुम्हें समस्त राजनीतियों से मुक्त करना चाहता हूं। मेरा कोई चुनाव नहीं है कि जयप्रकाश की राजनीति के पक्ष में रहो कि तुम इंदिरा की राजनीति के पक्ष में रहो; मेरे लिए दोनों समान हैं। राजनीति गलत है। वह किसकी है, इसका कोई मूल्य नहीं है। तुम राजनीति से मुक्त हो जाओ। और लोग अगर मुक्त होते चले

जाएं तो राजनीतिज्ञ अलग हो जाएंगे, पर खड़े हो जाएंगे। उन्हें खुद भी अपने संघर्ष की नासमझी दिखाई पड़ने लगेगी। लेकिन तुम्हारी भीड़ उनके साथ होती है, तो उनका भी नशा नहीं उतारता। उनको भी समझ में नहीं आता कि हम गलत हो सकते हैं, क्योंकि इतने करोड़ों लोग साथ हैं।

और तुम्हारे साथ का कोई भरोसा नहीं है, तुम किसी के भी जुलूस में साथ हो जाते हो। तुम्हें जुलूस का मजा आ रहा है; लेकिन तुम्हें पता नहीं कि वह जो जुलूस के आगे झंडा ले कर चल रहा है, वह पागल हुआ जा रहा है—वह देख कर कि लाखों लोग मेरे साथ हैं। तुम यूं ही हो लिए थे; तुम मजा देखने जा रहे थे कि पता नहीं, क्या होने वाला है। तुम कल उसके विरोध में जुलूस में भी तुम्हीं सम्मिलित हो जाओगे। लेकिन तुमने दोनों को नशा दे दिया।

भीड़ शराब है। जब कोई अपने पीछे बड़ी भीड़ देखता है, होश खो देता है। उसको लगता है, अब मेरे हाथ में सब है; अब मैं जो चाहूं, करके दिखा दूंगा।

तुम राजनीतिज्ञों के मस्तिष्क को खराब करते हो। तुम उनकी छोटी-छोटी बुद्धियों के गुब्बारे में खूब हवा भरते हो। तुम उनको वहां तक ले जाते हो जहां वे फूट जाते हैं। तुम्हारे सभी राजनीतिज्ञ उस दशा में पहुंच जाते हैं। उनसे तुम अपना हाथ हटा लो।

मैं तुमसे कहता हूं के एक शिक्षक बच्चों को समझा था। दुनिया का नक्शा उसने कई टुकड़ों में काट दिया और बच्चों से कहा कि अब तुम इसे जमा कर बताओ। बच्चे बड़ी मुश्किल में पड़ गए। कोई सौ टुकड़े कर दिए उसने दुनिया के नक्शे के मुश्किल था— टिंबकटू की जगह मैडगास्कर चला गया, मैडगास्कर की जगह टिंबकटू आ गया। कठिनाई मालूम होने लगी कि कहां स्पेन को रखें, कहां तिब्बत को; क्योंकि टुकड़े-टुकड़े कर दिए। लेकिन एक युवक ने, एक छोटे बच्चे ने, उस नक्शे के गत्तों को उलटा कर देखा। उसे तरकीब मिल गई। दूसरी तरफ आदमी जमता गया उस तरफ दुनिया जम गई।

वहीं मैं तुमसे कहता हूं। आदमी जम जाए तो सारी दुनिया जम जाएगी। तुम दुनिया को जमाते रहो—आदमी भी न जमेगा। दुनिया भी न जमेगा। दुनिया को जमाने की कुंजी आदमी की तस्वीर है। उस तस्वीर को जमाने कहें भी नहीं जाना है, क्योंकि तुम भी वही कुंजी हो। तुम अपने से शुरू कर दो।

राजनीति सदा दूसरे से शुरू होती है, धर्म सदा अपने से।

तो न तो मैं किसी की राजनीति के पक्ष में हूं, न किसी की राजनीति के विरोध में हूं। मैं राजनीति मात्र के विरोध में हूं।

तीसरा प्रश्नः फरीद और आप दोनों कहते हैं कि जीवन की जो श्रेष्ठतम अवस्था है, उसे ही प्रभु के प्रेम में लगा दो; क्योंकि धर्म ही सार है, शेष सब कुई असार है। इस संदर्भ में कुछ मित्र देश-प्रेम की बात करते हैं। पूछते हैं कि जब देश आपात और संकट की स्थिति से गुजर रहा है, तब भी क्या भगवान श्री के लिए भगवत-भजन का एकतारा बजाए जाना उचित है।

और कोई संगीत ही नहीं है; बस एकतारा है भगवान का।

और आपात की स्थिति आज नहीं है, सदा से है। ऐसा कोई क्षण ही नहीं रहा मनुष्य के इतिहास में जब संकट न हो। अगर तुम संतों को ही देखते रहो तो बुद्धों का पैदा होना बंद हो जाएगा।

बुद्ध के समय संकट नहीं था? बहुत संकट था। राजनीतिज्ञ तो ऐसी व्याख्या करते हैं कि बुद्ध घर छोड़ कर गए ही इसलिए कि बुद्ध के राज्य में और पड़ोसी राज्य में संघर्ष था। कहीं झंझट में न उतराना पड़े, इसलिए वे चुपचाप घर से निकल गए। राजनीतिज्ञों की व्याख्या बुद्ध की वही है।

राजनीतिज्ञ महावीर के संबंध में भी यही कहते हैं कि घर छोड़ा उन्होंने, धर्म के लिए नहीं; राज्य मिल गया उनके बड़े भाई को—वे छोटे भाई थे, राज्य मिल नहीं सकता था—यही दंश...उन्होंने घर छोड़ दिया।

राजनीतिज्ञ की अपनी व्याख्याएं हैं। वह हरि चीज में राजनीति खोजता है। यह छोटे भाई कि दुखी अवस्था कि मुझे तो मिलता नहीं है राज्य, क्या सार है राज्य में! मिलता तो सार होता; जब मिला ही नहीं तो सार नहीं था। अंगूर खट्टे समझ कर महावीर घर छोड़ कर चले गए।

बुद्ध को लगा कि यह तो बड़ा उपद्रव होने का है, झंझट होगा, युद्ध होगा। कायर रहे होंगे। घबड़ा गए होंगे। छोड़ कर भाग गए।

संकट कब नहीं था?

जीसस के समय में संकट न था? यहूदी गुलाम थे। रोतन राज्य था। उचित तो यह हुआ होता कि जीसस भी देश-प्रेमियों में सम्मिलित हो गए होते। भजन का एकतारा फेंक दिया होता, और राजनीति की बंदूक उठा ली होती। छाती छेदने लगते। हृदय के गीत गाने बंद कर दिए होते। तो तुम्हें एक सैनिक और मिल जाता, एक पागल और मिल जाता। लेकिन पागलों कि तुम्हें ही क्या कमी है? इस पागल से और कुछ तुम्हारी संख्या न बढ़ जाती। लेकिन जीसस अपना एकतारा बजाते रहे। बुद्ध अपना एकतारा बजाते रहे।

मीरा के समय में संकट न था? मुसलमान मुल्क पर छाए थे, कब्जा उन्होंने कर लिया था। हिंदू-धर्म संकट में था और मीरा भगवत भजन के गीत गाती, नाचती रही।

देशद्रोही मालूम पड़ते हैं ये सब लोग। जब भी संकट है तभी अपना भजन गाते हैं।

तुलसीदास भी क्या बैठे खाक रामायण लिखते रहे! यह कोई वक्त रामायण लिखने का था? उठा लेते छुरा और कूद पड़ते देश प्रेम में मर जाते।

तुम थोड़ा सोचो, संकट कब नहीं था। आदमी जैसा है, संकट सदा रहेगा ही। ऐसे आदमी का संकट ही बना रहेगा। ऐसा आदमी संकट के बाहर नहीं हो सकता। अगर इस संकट को देखकर ही चलता रहे तो फिर इस संकट के बाहर जाने का कोई उपाय नहीं। इस संकट के बाहर जाने का उपाय उस एकतारे की धुन सुन लेना है। तुम्हारी भीड़, तुम्हारे बाजार के पास ही एकतारा बजाए चला जाता है, वह संकट के बाहर है।

मैं तुमसे कहता हूं, मैं संकट के बाहर हूं, आपात स्थिति के बाहर हूं। तुम मुझे हथकड़ियों में बांध कर काल कोठरी में डाल दो, तो भी मैं तुम्हारी हथकड़ियों के बाहर हूं। तुम मेरी गर्दन को काट दो तो भी मैं तुम्हारी हत्या के बाहर हूं। तुमने अगर मेरे एकतारे को सुना, तुम भी बाहर हो जाओगे। उस एकतारे की धुन को सुन कर चल पड़ना ही बाहर हो जाने का उपाय है। अगर तुमने कहा कि पहले संकट को निपटा लेने दो; पहले आपात स्थिति को टल जाने दो; पहले सारी दुनिया ठीक हो जाए, फिर हम भी चाहते हैं बजाए यह गीत और नाचें और मीरा की तरह और चैतन्य की तरह प्रसन्न हो; पर ठहरा, अभी बहुत सी चीजें उलझी हैं, अभी इनको सुलझा लेने दो। क्या तुम सोचते हो, ऐसी कभी घड़ी आएगी जिस दिन तुम सुलझा पाओगे? क्या सुलझाना तुम्हारे हाथ के भीतर है? तुम उलझे ही उलझे मर जाओगे। तुम सोच लो। उलझे ही मर जाना हो, उलझे ही मर जाओ। लेकिन इस भ्रांति में मत रहो कि तुम सुलझा कर किसी दिन, फिर उस एकतारे को सुनोगे जो परमात्मा का है। तो तुम गलती में हो। तो यह कभी भी न होगा।

जिसे जाना है बाहर, उसे आज जाना होगा। आज के अतिरिक्त और कहीं मार्ग नहीं है। इस क्षण उसे जागना होगा। क्योंकि क्षण-क्षण हाथ से बीते चले जाते हैं।

फरीद कह रहा है: फरीदा जा तउ खट्टण वेल—जब युवा था, शक्ति भरी थी, तब तूने मिट्टी में गंवा दी।

देख फरीदा जु थीआ सकर होई विसु—और जिस-जिस को तूने सुख समझा था, वह देख फरीदा, सब दुख हो गया।

इसके पहले कि ऐसा रुदन का क्षण आए, जाग जाओ।

निश्चित ही मैं एकतारा बजा रहा हूं। एकतारा है वह क्योंकि उसमें एक ही स्वर है। उसमें सिर्फ परमात्मा का डर है। इतनी बातें सब कहता हूं, इतना बातें थोड़े कहता हूं; एक ही बात कहता हूं। इतनी बातों में एक ही

बात कही जा रही है। एकतारा है। उसमें सात स्वर भी नहीं है। वह इंद्रधनुष की तरह सात रंगों वाला नहीं है; बल्कि वह जहां इंद्रधनुष के सात रंग मिलकर एक ही प्रकाश बन जाता है। इंद्रधनुष के सात रंगों में खंडित हो गई है एक ही प्रकाश की धारा।

भौतिक से पूछो तो भौतिक शास्त्र कहता है कि प्रकाश का रंग तो श्वेत है, शुद्धतम श्वेत है; फिर जब प्रकाश पानी की बूंद से गुजरता है तो सात हिस्सों में टूट जाता है, इसलिए इंद्रधनुष बन जाता है। हवा में लटके हुए पानी के कणों से सूरज की गुजरती किरण सात रंगों में टूट जाती है। छोटे-छोटे बच्चों के लिए, स्कूल में समझाने के लिए एक गोल वर्तुलाकार, जैसे कि एक चरखे का चाक होता है, ऐसा चाक होता है, उसमें सात रंग बने होते हैं। उस चाक को जोर से घुमाते जाओ, धीरे धीरे सात रंग खो जाते हैं, और शुभ्र रंग प्रकट हो जाता है।

सात स्वर हैं। वे उस परमात्मा के एक ओंकार पाद के खंड हैं। सात दिन हैं। वे उस परमात्मा की अखंड अनंतता के ही सात रूप हैं।

एकतारा ही है। मैं एक ही आवाज, एक ही ओंकार की आवाज को कहे चले जाता हूं। बहुत रूप देता हूं उसे, बहुत रंग देता हूं, बहुत वस्त्र पहनाता हूं; लेकिन जब भी तुम भीतर झांकोगे, तुम एक ही आवाज पाओगे। और मैं मानता हूं कि वही एकमात्र उपाय है जिससे तुम आपात की स्थिति के बाहर जाओगे। अन्यथा मनुष्य के जगत का कारबार तो सदा ही संकट में है। कभी एक उपद्रव है, कभी दूसरा उपद्रव है। अपने उपद्रवी हैं, तुम सोच भी नहीं सकते कि कभी ऐसा हो सकता है कि उपद्रव न होगा। तुम्हें इस अवस्था की चिंता न करके स्वयं को बाहर कर लेना होगा।

और मैं तुमसे कहता हूं, अगर तुम बाहर हो गए तो जगत का एक बहुत बड़ा बहुमूल्य हिस्सा बाहर हुआ। तुम भीतर थे तब तुम नाकुछ थे, भीड़ के हिस्से थे, सोए हुए लोगों का एक अंग थे। जब तुम बाहर हुए तो तुम जागरण का हिस्सा हुए; तुम एक बहुत महत्वपूर्ण घटना घट गए। और तुम्हारे जागरण की छाया दूसरों पर पड़ेगी।

एक जागा हुआ आदमी को जगा सकता है, लाखों को जगा सकता है। तुमने भी अगर एकतारा उठा लिया और लोगों को जगाने लगे तो शायद कुछ और लोग आपात की स्थिति के बाहर आ जाएं।

तो दो उपाय हैं। एक तो यह है कि पहले सारा संकट मिट जाए, दुनिया में समाजवाद आ जाए, समता हो जाए, सारे लोग सुखी हो जाएं, कोई बीमारी न रहे, कोई भूखा न रहे, कोई युद्ध न रहे, सारा रामराज्य हो जाए, तब तुम परमात्मा का एकतारा उठाओगे। तब मैं सोचता हूं, तुम्हें अनंत काल तक प्रतीक्षा करनी होगी। फिर भी आश्वासन नहीं दे सकता कि तब भी तुम उठा पाओगे।

दूसरा रास्ता है कि तुम अभी बाहर हो जाओ। तुम गीत गाना शुरू का दो। शायद तुम्हारे गीत को सुन कर और सोए हुए लोग भी कुछ जाग जाएं, बाहर आ जाए।

नहीं, मेरी कोई उत्सुकता देश प्रेम, आपात स्थिति और इस तरह की बातों में नहीं है। मेरी उत्सुकता तुममें है। मेरी उत्सुकता व्यक्ति में है। और मैं जानता हूं कि सिर्फ व्यक्ति बदला जा सकता है और काई बदला नहीं जा सकता।

कितनी क्रांतियां हो गइ और सब व्यर्थ गइ, फिर भी तुम होश में नहीं आते। हर क्रांति ने लोगों को यही कहा कि बस इस क्रांति के बाद स्वर्ग आ जाएगा। क्रांति आ गई, स्वर्ग तो बिलकुल न आया, और बड़ा नर्क आ गया।

कितनी स्वतंत्रताएं मिल गई लोगों को! और हर बात यही कहा कि स्वतंत्रता के बाद सब ठीक हो जाएगा। स्वतंत्रता के बाद लोगों ने पाया, यह तो हम और बड़े गड्ढे में गिर गए।

कितने सुधार हो गए! सब सुधारवादी मानते थे कि बस इसके बाद स्वर्ग है, इसके बाद और कुछ बचता ही नहीं है बात सुलझाने को। लेकिन चीजें उलझती ही चली गई। इतिहास सुलझ नहीं रहा है, उलझ रहा है, भीड़

सुलझने की तरफ नहीं है, उलझने की तरफ है। हर उलझाव नए उलझाव पैदा कर देता है। और जिसको तुम सुलझाव कहते हो, वह भी सुलझाव सिद्ध नहीं होता, वह भी उलझाव सिद्ध होता है।

जागने की जरूरत है। जागना एकमात्र सुलझाव है। तुम्हारा सुलझाव एकमात्र सुलझाव है। तुम सुलझ जाओ तो शायद तुम संक्रामक हो जाओ। जैसे बीमारी लगती है वैसे स्वास्थ्य भी लगता है। जैसे मूर्च्छा लगती है वैसे होश भी लगता है।

तुमने कभी खयाल किया?—एक आदमी जम्हाई लेने लगे, दूसरे लोग जम्हाई लेने लगते हैं, नींद पकड़ती है। एक आदमी खांस दे, दूसरे आदमी के गले में खुजलाहट शुरू हो जाती है। एक आदमी लघुशंका को चला जाए, बाकी भी चले!

आदमी में संक्रामक घटनाएं घटती हैं। तुममें से एकतारे को सुन ले और बाहर जाए, दूसरे भी सुनने लगेंगे। तुम्हें बाहर आता देख कर उनके लिए भी एक द्वार खुलता है, कौन जाने! और अगर तुम्हारे जीवन में आनंद की घटना घटी हो, वर्षा हुई हो अमृत की, तो लोग कितने ही सोए हों, इतने नहीं सोए हैं कि जब किसी को आनंद घटे तो उन्हें दिखाई न पड़े; जब कोई नाचने लगे तो उन्हें उसके घूंघर सुनाई न पड़े। जब किसी कंठ से गीत उठे तो उनकी नींद में भी कुछ स्वरलहरियां पहुंच जाती हैं।

न मैं तो अपना एकतारा बजाए जाऊंगा। और उन थोड़े से लोगों के लिए ही मेरी चेष्टा है जो जागने को उत्सुक हैं। भीड़ के लिए मेरी कोई उत्सुकता नहीं है।

चौथा प्रश्नः कहावत है कि माता-पिता गुरु और भगवान से मांगने में संकोच नहीं करना चाहिए, और न ही इसमें कोई दोष है। क्या यह कहावत सही है?

इस कहावत में दो शब्द हैंः संकोच और मांग। अगर तुमने संकोच पर जोर दिया तो कहावत सही है; अगर मांग पर जोर दिया तो कहावत गलत है।

मैं फिर से पढ़ता हूं। कहावत है कि माता-पिता, गुरु और भगवान से मांगने में संकोच नहीं करना चाहिए। जोर संकोच पर है कहावत का; क्योंकि संकोच अहंकार का हिस्सा है। तुम संकोच ही तब करते हो जब तुम्हें लगता है कि यह तो मांगने में अपने अहंकार को चोट लगेगी। कोई क्या कहेगा? मांगना उचित नहीं है। मांगना तो चाहते हो; लेकिन मांगने वाले नहीं बनना चाहते हो; लेकिन किसी को कानोंकान खबर न हो कि मैंने मांगा। क्योंकि मांगने में तो भिखारी हो जाता है आदमी, और भिखारी के अहंकार को चोट लगती है। इस चोट को जगाने के लिए ही तो बुद्ध ने अपने संन्यासियों को भिखारी बना दिया; कहा—भिक्षु! तुम भिक्षु हुए, मांगो। जो दे उसको अभिशाप दो, तो यह भिखारी के पीछे अहंकार खड़ा है।

संकोच मत करना मांगने में, यह जोर है कहावत का। माता-पिता, गुरु और भगवान के सामने भी अहंकार है तो फिर तुम अहंकार छोड़ोगे? फिर तो संसार में कोई शरण न रही। वहां तुम संकोच मत करना, यह जोर है कहावत का। बिना संकोच किए खड़े हो जाना।

और बड़े मजे की बात यह है कि अगर तुम बिना संकोच खड़े हो जाओ तो मांगने की जरूरत ही नहीं रह जाती; बिना मांगे मिल जाता है। क्योंकि जिसके मन में संकोच न रहा, अहंकार न रहा, वह मिलने के योग्य हो गया, वह पात्र हो गया। उसका हृदय ही कह देता है। प्राण से प्राण कह देते हैं। कुछ शब्दों की जरूरत नहीं रही जाती। मांगना इसीलिए पड़ता है कि भीतर संकोच है। मांगो नहीं तो भी तुम्हारी मांग दिखाई पड़ती रहती है तुम चाहते हो, कोई दे दे और मांगने का कष्ट भी उठाना न पड़े।

कहावत यह कह रही है, कम से कम मां, पिता, गुरु, भगवान—माता-पिता जिन्होंने तुम्हें जन्म दिया; गुरु जिससे तुम्हारा दूसरा जन्म होगा; परमात्म जो कि तुम्हारा ही आत्यंतिक स्वरूप है—अगर इनसे भी तुम संकोच करते हो, फासला रखते हो, तो फिर तुम कहां शरण पाओगे? इनके सामने तो सब संकोच छोड़ देना।

इनके सामने नग्न हो जाना—यह अर्थ है कहावत का। इनके सामने क्या छिपाना है? माता-पिता के सामने क्या छिपाना है? नग्न तुम पैदा हुए थे। वे भलीभांति तुम्हें जानते हैं।

गुरु से क्या छिपाना है? अगर गुरु से छिपाया तो रूपांतरण किसके द्वारा होगा फिर? जो तुम छिपाओगे, वह बच जाएगा, रूपांतरित न होगा। गुरु के सामने तो पूरा खुल जाना है। सब वस्त्र उघाड़ देने हैं। कुछ बचाना नहीं है भीतर। कुछ भी छिपाना नहीं है भीतर। चेतन-अचेतन सब परतें सामने कर देनी हैं कि अब जो तेरी मर्जी। अब जो तू चाहे, कर।

और परमात्म से क्या छिपाना? छिपाने से भी क्या परमात्मा से छिपेगा?

संकोच मत करना। इसका यह अर्थ नहीं है कि निस्संकोच मांगना। अगर इसे तुम समझो तो इसका अर्थ है कि जिसने संकोच छोड़ दिया, उसे तो बिन मांगे मिल जाता है, मांगने की जरूरत नहीं होती। जिसका अहंकार चला गया, उसे क्या कमी रह जाएगी?

अहंकार ही कमी है। अहंकार के कारण ही तुम छोटे हो, सीमित हो। अहंकार गया कि तुम असीम हुए। घड़ा टूट गया, तो घड़े के भीतर आकाश बाहर के आकाश के साथ एक हो गया। अहंकार की मिट्टी गिर गई। तो तुम असीम के साथ एक हो गए। मांगने को कुछ बचता नहीं। निःसंकोच मन को मिल जाता है, मांगना नहीं पड़ता। संकोची मन मांगता भी है, मांगना नहीं भी चाहता, और कभी पाता भी नहीं।

पांचवां प्रश्नः कल आपने कहा कि धार्मिक क्रांति की शुरुआत इस बोध से होती है कि जो कुछ भी मैं हूं, उसके लिए मैं ही पूर्णतः जिम्मेवार हूं। फिर अन्यत्र आप कहते हैं कि जीवन सत्य है परस्पर-तंत्रता।

कृपया बताएं कि उपरोक्त दो विपरीत दिखाई पड़ने वाले बोध वचनों में क्या अंतस□बंध है?

वे विपरीत नहीं हैं।

जो भी है, उसके लिए मैं ही पूर्णतः जिम्मेवार हूं—यह धार्मिक क्रांति की शुरुआत है, प्रथम चरण है।

साधारणतः अधार्मिक आदमी की यह धारणा होती है कि जो भी मैं हूं, उसके लिए सारी दुनिया जिम्मेवार है, मुझे छोड़ कर मैं एक शोषित, संस्कारित, परतंत्र व्यक्ति हूं। सभी लोगों ने मेरी ऐसी हालत बना दी है। अगर गरीब हूं तो लोगों ने मुझे चूस लिया है। अगर पढ़ा-लिखा नहीं हूं, बुद्धिमान नहीं हूं, तो मुझे बुद्धि के अवसर नहीं दिए गए। अगर सुंदर नहीं हूं तो मां-बाप सुंदर नहीं थे इसलिए सुंदर नहीं हूं। अगर अस्वस्थ हूं तो समाज दरिद्र है, दिन है, इसलिए अस्वस्थ हूं।

दूसरे लोग जिम्मेवार हैं, मुझे छोड़ कर—यह अधार्मिक व्यक्ति की भाव दशा है। इसलिए अधार्मिक व्यक्ति कहता है, पहले सबको बदलेंगे तभी मेरी बदलाहट हो सकती है। इतिहास, भूगोल, समाज, अर्थतंत्र, सब बदल जाए, तभी मैं बदलूंगा, क्योंकि मैं इन पर निर्भर हूं।

धार्मिक व्यक्ति की शुरुआत है कि जो भी मैं हूं, उसके लिए मैं पूर्णतः जिम्मेवार नहीं हूं तो बदलना कैसे है, बदलना किसको? अगर मैं ही जिम्मेवार हूं मेरे दुखों के लिए; अगर मैंने ही ये बीज बोए हैं, मैं ही फसल काटता हूं, तो अब मैं आगे बीज बोने में बदलाहट कर सकता हूं। चाहूं तो न बोऊं बीज। और अब तक अगर जहर के बीज बोए थे तो अब अमृत के बो सकता हूं। फसल मुझे काटनी पड़ती है, बीज भी मैं बोता हूं। तो अब मेरे हाथ में है। जो मुझे होना है मैं हो सकता हूं। मेरा भाग्य मैं हूं।

यह धार्मिक व्यक्ति की शुरुआत है। लेकिन मैं कहता हूं, शुरुआत है, यह अंत नहीं है।

और फिर मैंने बहुत बार कहा है कि जीवन का परम सत्य है परस्पर तंत्रता, इंटरडिपेंडेंस। यह धार्मिक व्यक्ति की पूर्ण अनुभूति है। अधार्मिक व्यक्ति मानता है, सब जिम्मेवार हैं, मैं जिम्मेवार नहीं। धार्मिक व्यक्ति शुरू में मानता है कि मैं जिम्मेवार हूं, कोई जिम्मेवार नहीं; अंत में पाता है कि न मैं हूं, न दूसरे हैं। जीवन परस्पर-तंत्रता हैः यह तो अहंकार के मिटने पर पाता है।

अहंकार की दो दृष्टियां हो सकती हैं। दूसरे जिम्मेवार हैं—अहंकार को बचा लिया। मैं जिम्मेवार हूं—अहंकार पर पूरा दोष थोपा। पहला व्यक्ति अधार्मिक रहेगा, दूसरा व्यक्ति धार्मिक हो जाएगा। और एक तीसरी घड़ी हैः अहंकार के पार, जहां मैं बिलकुल मिट जाता है, सिर्फ चैतन्य बचता हैः वहां दिखाई पड़ता हैः यह परस्पर-तंत्रता है। यहां दो हैं ही नहीं, यहां एक ही तंत्र है। उसी को तो हमने परमात्मा कहा, ब्रह्म कहा, अद्वैत कहा। दो नहीं हैं, एक ही अस्तित्व है। और यहां वृक्ष को हिलाओ—आकाश के तारे हिलते हैं। सब जुड़ा है। पत्थर फेंको झील में, जरा सी जगह में गिरता है, पर लहर उठती है और अनंत तक चली जाती है। दूर-दूर के किनारे भी उस लहर से अपरिचित न रहेंगे। वह लहर जा कर अनंत काल में अनंत दूरियों को छुएगी।

जो मैं तुमसे बोल रहा हूं, वह तुमसे ही बोला गया, ऐसा नहीं। जो शब्द आज पैदा हुआ, वह अब कभी मिटेगा नहीं; अब वह चलता रहेगा; उसकी तरंग चलती रहेगी; दूर के तारों से अनंत काल में टकराती रहेगी। कुछ भी मिटता नहीं है। सब शाश्वत है और सब एक है।

यह अंतिम अनुभूति है। यह अनुभूति उसी को होगी जो यह मान कर चला कि मैं जिम्मेवार हूं। मैं जिम्मेवार हूं यह प्राथमिक धारणा है। यह बुनियादी धारणा है। यह सिद्ध की अवस्था नहीं है; यह साधक की ,शुरुआत है। सिद्ध तो कहता है, एक ही है; कौन जिम्मेवार; कौन गैर जिम्मेवार; दो नहीं हैं, अद्वैत है।

छठवां प्रश्नः जीसस कहते हैंः प्रेम परमात्मा है। फरीद गाते हैंः अकथ कहानी प्रेम की। और आप भी कहते हैंः प्रेम है आनंद, प्रेम है मुक्ति, प्रेम है समाधि की सुवास।

फिर क्या कारण है कि मीरा गाती हैः जो मैं ऐसा जानती प्रेम किए दुख होय। जगत ढिंढोरा पीटती, प्रेम न कीजै कोय।।

एक पहलू फरीद कह रहे हैं, दूसरा पहलू मीरा कह रही है। और दोनों ही प्रेम की प्रशंसा के गीत गा रहे हैं।

मीरा कहती हैः जो मैं ऐसा जानती प्रेम किए दुख होय। यह विरह की अवस्था है। प्रेम जब होता है तो पहली अवस्था तो विरह है। जिसको प्रेम होता है, उसी को विरह होता है। जिसको प्रेम ही न हो उसको तो विरह नहीं होगा।

तुमने भी अगर कभी प्रेम नहीं किया तो विरह की पीड़ा तुम न जानोगे। विरह की पीड़ा का सौभाग्य तो उसी को मिलता है जिसने प्रेम किया। मैं कहता हूंः सौभाग्य; क्योंकि उसी पीड़ा के पीछे फिर मिलन का आनंद छिपा है। मीरा विरह के क्षण में कह रही हैः जो मैं ऐसा जानती प्रेम किए दुख होय। जगत ढिंढोरा पीटती, प्रेम न कीजै कोय।। मगर यह तो पहले पता न था, तो प्रेम कर बैठे। अब लौटने का तो कोई उपाय नहीं।

प्रेम से कोई लौट नहीं सकता। उससे पीछे जाने का उपाय ही नहीं है। अगर बचना हो तो पहले ही बचना। उतरना ही मत उस नदी में, अन्यथा वह बहा ले जाएगी। और बड़ी पीड़ा है; क्योंकि जितना प्रेम बढ़ता है उतना प्यारा दूर मालूम पड़ता है। जितना प्रेम बढ़ता है उतना एक-एक क्षण प्रतीक्षा करना कठिन हो जाता है। जितना प्रेम बढ़ता है उतनी ही अभीप्सा की आग जलती है; उतना ही परमात्मा अब मिले, अब मिले, चैन खो जाता है।

जो मैं ऐसा जानती प्रेम किए दुख होय। जगत ढिंढोरा पीटती, प्रेम न कीजै कोय।।

यह पहली दशा है विरह की, यात्रा का प्रारंभ। फिर फरीद कहते हैंः अकथ कहानी प्रेम की। फिर नानक, कबीर, दादू, जिन्होंने भी प्रेम जाना है वे सभी यही करते हैंः ढाई आखर प्रेम के, पढ़ै सो पंडित होय। जिसने पढ़ लिए ढाई अक्षर प्रेम के, वह ज्ञान को उपलब्ध हो गया। पर यह मिलन की बात है। विरह की रात जा चुकी, मिलन की सुबह हो गई।

और मीरा जो कह रही है, ध्यान रखना यह कोई शिकायत नहीं है। यह कोई प्रेम के विरोध में कही गई बात नहीं है। यह तो अत्यंत प्रेम में कही गई बात है। यह तो प्रेमी परमात्मा से लड़ रहा है। वह तुमसे नहीं कह रही है यह बात; वह अपने प्रभु से कह रही है कि जो मैं ऐसा जानती कि तुम ऐसे दगेबाज, कि तुम ऐसे धोखेबाज कि इतनी देर लगा दोगे, कि ऐसे तड़फाओगे कि जैसे मछली तड़फती हो पानी के बाहर, और तुम दूर हटते चले जाओगे। और जितना मैं आती हूं पास, उतना ही पाती हूं, तुम दूर!

जो मैं ऐसा जानती—यह एक प्रेमिका की शिकायत है प्रेमी से। यह संसार से नहीं कर रही है वह।

जो मैं ऐसा जानती, प्रेम किए दुख होय। जगत ढिंढोरा पीटती , प्रेम न कीजै कोय।। तो मैं सबको समझा आती। मैं सबको कह देती कि बचो, सावधान रहो इस छलिया से। इससे दूर रहना। यह धोखेबाज है। यह बुलाता है पास और दूर हटता चला जाता है। यह तड़पाता है, जैसे कि तड़फाने में इस तरह में इसे कोई सुख आता हो।

यह शिकायत है परमात्मा से प्रेमी की, पर बड़ी प्रेम पूर्ण है। यह झगड़ा है प्रेमी का प्रेमी से। यह कोई खंडन नहीं है प्रेम का, वह प्रेम के गीत गा रही है। लेकिन विरह के क्षण में प्रेमी का प्रेमी से। यह कोई खंडन नहीं है प्रेम का, वह प्रेम के ही गीत गा रही है। लेकिन विरह के क्षण हैं। विरह के क्षण में प्रेमी ऐसा पाता है, इससे तो अच्छा होता, प्रेम ही न करते। इससे तो अच्छा होता कि ये प्रेमी की अंगुलियां कभी हमारे हृदय की वीणा को न छेड़तीं। हम ऐसे ही रेगिस्तान की तरह मर जाते, वह अच्छा था। यह तो बड़ी पीड़ा हो गई।

लेकिन जितनी बड़ी पीड़ा है उतना ही बड़ा आनंद है पीछे। यह विरह की पीड़ा प्रसव की पीड़ा है। वह तो जब एक बच्चा पैदा होता किसी स्त्री को और कोई स्त्री मां बनती है, तब बहुत बार उसके मन में भी आता है, जब बच्चा पैदा होता है कि यह तो अच्छा हुआ होता अगर मुझे पहले ही पता होता कि इतनी पीड़ा होनी थी, तो यह जन्म देने का उपद्रव हाथ में ही न लेते। नौ महीने तक बच्चे को गर्भ में ढोना, फिर पीड़ा उसके जन्म की—जैसे मौत आती हो, जैसे मरने-मरने को हो जाती हो।

कभी प्रसव-पीड़ा में किसी स्त्री को देखा? जैसे प्राणों की गहराई से रुदन उठता है! पूरा तन-प्राण कंप हो जाता है! उस वक्त उसके मन में न होता होगा कि अच्छा हुआ होता कि इस उपद्रव में ही न लेते। नौ महीने तक बच्चे को गर्भ में ढोना, फिर पीड़ा उसके जन्म की—जैसे मौत आती हो, जैसे मरने-मरने को हो जाती हो।

कभी प्रसव-पीड़ा में किसी स्त्री को देखा? जैसे प्राणों की गहराई से रुदन उठता है! पूरा तन-प्राण कंप जाता है! उस वक्त उसके मन में न होता कि अच्छा हुआ होता कि इस उपद्रव में ही न पड़े होते लेकिन फिर बच्चे का जन्म हो गया। फिर स्त्री के चेहरे पर आई हुई आनंद की आभा देखी है! फिर वह जिस शांति और प्रेम और लगन से बच्चे की तरफ देखती है! बच्चे का ही थोड़े जन्म होता है, उसी दिन मां का भी जन्म होता है उसके पहले वह मां न थी; उसके पहले एक साधारण स्त्री थी, अब मां है। मां की बात ही और है। मां का अर्थ है, अब वह सृजनदात्री है; अब उसने जन्म दिया जीवन को। अब वह ऐसी सीप है जिस में मोती पला। अब वह साधारण देह नहीं है; वह परमात्मा का माध्यम बनी।

स्त्री अपने परम सौंदर्य को उपलब्ध होती है मां बन कर। लेकिन प्रसव की पीड़ा है। विरह की भी बड़ी पीड़ा है। उसी विरह की पीड़ा से गुजर कर, निखर कर,आग से छनकर व्यक्ति कुंदन बनता है, स्वर्ण बनता है। फिर मिलन का महासुख है।

मीरा कह रही है प्रारंभ की बात। फरीद कह रहे हैं अंत की बात। उन दोनों में कोई विरोध नहीं है। वे दोनों एक ही मंजिल के दो छोर हैं।

आखिरी प्रश्नः पश्चिम में अभी धर्म के लिए अभूतपूर्व प्यास पैदा हो रही है। उसके चलते देश-देश से हजारों की संख्या में धर्म-पिपासु भारत आ रहे हैं, विशेषकर आपके पास पहुंच रहे हैं। पर शासकीय

नियम-निषेध के कारण इन पाश्चात्य साधकों को अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। यद्यपि आर्थिक दृष्टि से भारत के पर्यटन-व्यवसाय को उनसे लाभ ही लाभ है। इस दिशा में क्या आप शासन और आश्रम के बीच किसी सहयोग का सुझाव देने की कृपा करेंगे?

मेरे और शासन के बीच तो कोई समझौता बन नहीं सकता; आश्रम और शासन के बीच शायद कभी बन जाए। आश्रम एक संस्था है। शासन भी एक संस्था है। कोई समझौता बन सकता है। मेरे और शासन के बीच कोई समझौता बन नहीं सकता। मेरे और मेरे आश्रम के बीच ही समझौता बड़ा मुश्किल है।

मेरा ढंग मूलतः संस्था-विरोधी है। अगर आश्रम भी चलता है तो मजबूरी है। वह छोटी से छोटी बुराई है, और है तो बुराई ही। है तो संस्था ही। व्यवस्था! व्यवस्था में मेरी रुचि नहीं है। लेकिन अव्यवस्था के लायक तुम्हारी योग्यता नहीं है। इसलिए मजबूरी है। बीच का रास्ता खोजना पड़ता है।

रही पश्चिम से आने वाले साधकों की असुविधाएं और उनकी बात, उसे वे प्रसव की पीड़ा समझें। समझौता मैं राज्य से कोई बनाऊंगा नहीं। बन सकता है बड़ी आसानी से। अड़चन कुछ भी नहीं है। लेकिन मुझमें अड़चन है, मेरे होने में अड़चन है। सत्य साइ बाबा का बन सकता है, मुक्तानंद का बन सकता है, तो मेरा क्यों नहीं बन सकता? न बनने की अड़चन है। न तो मैं किसी चीफ मिनिस्टर को बुलाता, न किसी प्रधानमंत्री को, न राष्ट्रपति को—शिलान्यास करो आश्रम का, उदघाटन करो। इस आश्रम में उनका आना-जाना नहीं है और उनके आने-जाने का एक उपाय है : शिलान्यास करवाओ, पत्थर रखवाओ, पत्थर उखड़वाओ, कुछ करवाओ, उनको सम्मान दो। और जो मैं कहता हूं, उस हिसाब से वे पागल हैं, विक्षिप्त हैं, उनके पत्थर मैं रखवा नहीं सकता। तुमसे रखवा लूंगा; उनसे नहीं रखवा सकता। मेरे मन में उनका कोई सम्मान नहीं है। स्वभावतः उनसे मेरा कोई तालमेल नहीं बैठ सकता। निरंतर मैं उनकी विक्षिप्तता की घोषणा करता हूं, वे सब खबरें उन तक पहुंचती हैं। वे सब हिसाब रखते हैं। उनकी नाराजगी भी स्वाभाविक है। अगर वे नहीं निकाल पाते, यह भी उनकी सज्जनता हैं; उनको आसानी से फंसा लेते हैं।

लेकिन संन्यासियों को अपनी असुविधा को अपनी साधना का हिस्सा मानना चाहिए, बजाय इसके कि हम राज्य से कोई समझौता करें। क्योंकि उस समझौते में तो मैं ही नहीं बचूंगा। मेरे होने की जो विशेषता है, वही समाप्त हो जाएगी। फिर तुम मुक्तानंद के पास गए कि मेरे पास गए, बराबर होगा। फिर कोई भेद न रहा। फिर जैसे और आश्रम हैं, वैसा ही यह भी एक आश्रम होगा।

यह आश्रम विशिष्ट है। यह राजनीति के धुएं से बिलकुल पार है। इसलिए अड़चन तो झेलनी पड़ेगी। क्योंकि राज्य सुविधा नहीं देगा; राज्य असुविधा देगा। मेरे पास जो आएंगे उन पर सब तरह की रुकावटें डाली जाएंगी। उनको न आने दिया जाए, इसकी चेष्टा की जाएगी। मेरी बात उन तक न पहुंचे, इसकी चेष्टा की जाएगी। लेकिन यह स्वाभाविक है। इसमें कुछ आश्चर्य करने की बात नहीं है।

मुझसे पूछते हो तो मैं यही कहूंगा कि जो भी असुविधा हो, उसे सह लेना। समझौते की बात मत उठाना। उसे सह लेने सक तुम्हें लाभ होगा। सुविधा से कहीं कोई ऊपर उठा है? पीड़ा को स्वीकार कर लेना। मान लेना कि वह मेरे पास आने का सौदा है। उतना चुकाना पड़ेगा, तो मेरे पास आकर भी क्या करोगे? एक झूठे आदमी के पास आने का कोई अर्थ न रह जाएगा। मुझे तुम सच्चा रहने दो। चाहे उसके कारण तुम्हें असुविधा हो, उसे झेल लेना। तुम्हारी असुविधा और मेरी सच्चाई का ही तालमेल रहे। तुम्हारी सुविधा के लिए तुम मुझसे कभी भूल कर मत कहना कि मैं कुछ व्यवस्था करूं—तो ही तुम्हारे लिए मैं तुम्हारे विकास में सहयोगी हो सकता हूं। इससे अन्यथा कोई उपाय नहीं है।

आज इतना ही।

न कानों सुना न आंखों देखा

सातवां प्रवचन

सूत्र

फरीदा जिन लोइण जगु मोहिआ, से लोइण मैं डिठु।

काजल रेख न सहदिआ, से पंखी सुए बहिठु।।

फरीदा खाकु न निंदीए; खाकु जेडु न कोइ।

जीऊंदियां पैरा तलै, मुइआ उपरि होइ।।

फरीदा जा लबु ते नेहु किआ, लबु ते कूड़ा नेह।

किचरु झति लंघाईऐ, छपरि तुटै मेहु।।

फरीदा जंगलु जंगलु किआ; भवहि वणि कंड़ा मोड़ेहि।

वसी रबु हिआलिऐ, जंगलु किआ ढूंढहि।।

फरीदा इनी निकी जंधीऐ, थल डूगर भवि ओम्हि।

अजु फरीदै कूजड़ा, सै कोहां थीओमि।।

फरीदा रातीं बाड़ीआं, जिन्हां विडाणी आस।।

धर्म मोक्ष है

जीवन तुम्हारा एक पुनरुक्ति है—एक अंधी पुनरुक्ति! उठते हो, चलते हो, काम-धाम करते हो; लेकिन कहां हो, क्या कर रहे हो—इसका कोई भी होश नहीं। कौन हो—इसका भी कोई पता नहीं। क्यों है तुम्हारा होना यहां—इसका कोई उत्तर नहीं। भिर दिन आते हैं, रातें आती हैं, समय बीतता चला जाता है—और जीवन ऐसे ही उजड़ जाता है, बिना किसी फूलों को उपलब्ध हुए। जीवन में हाथ कुछ भी नहीं लग पाता, जिसको तुम संपदा कह सको; जिसको तुम कह सको कि आना व्यर्थ न हुआ—

खाली हाथ आदमी पैदा होता है और खाली हाथ ही मर जाता है। लेकिन कुछ हैं तो खाली हाथ पैदा होते हैं और भरे हाथ मरते हैं। कबीर नानक, फरीद ऐसे कुछ लोग हैं तो आए तो तुम्हारी ही तरह थे; आते समय कोई भेद न था; तुम्हारे हाथ जैसे खाली थे, उनके हाथ भी खाली थे—लेकिन जाते समय तुम भिखारी की तरह जाओगे; वे सम्राट की तरह गए। उन्होंने जीवन की धारा का नियोजन कर लिया; जीवन की उर्जा का सृजनात्मक उपयोग कर लिया।

जीवन दो ढंग के हो सकते हैं। एक तो ऐसा ही बहता चला जाए, परिणाम कुई भी न हो, निष्पत्ती कोई न मिले, पहुंचना कहीं न हो, कोई मंजिल पास न आए। और एक जीवन, कि प्रतिपल माला के बिखरे हुए फूलों की भांति न हो, बल्कि किसी लक्ष्य, किसी गहरे प्रयोजन, किसी गहरी प्रार्थना के धागे में पिरोया हुआ हो। ऐसे फूलों का ढेर भी लगता है; उन्हीं फूलों की माला बन जाती है।

अधिक लोगों का समय जीवन समय का एक ढेर है। उसमें कोई संगीत नहीं है। उसमें कोई रेखाबद्ध विकास नहीं है। उसमें कोई सोपान नहीं है।

कुछ लोगों का जीवन धागे में पिरोए हुए फूलों की भांति है; प्रत्येक फूल एक सीढ़ी है, और फूल एक नया द्वार है, और जीवन एक श्रृंखला हैः कहीं पहुंचता हुआ मालूम होता है; कहीं पहुंच जाता है।

और समय रहते जाग जाओ तो ठीक। क्योंकि जो समय हाथ से चला गया उसे वापस नहीं लौटाया जा सकता। जो क्षण गीत गए, वे बीत ही गए; उन्हें फिर से जीने की कोई सुविधा नहीं है। समय कोई ऐसी संपत्ती नहीं है जिसे तुम खो कर फिर पा सकोगे। इस संसार में सभी चीजें खो कर पाई जा सकती हैं, समय नहीं पाया जा सकता। इसलिए समय इस संसार में सबसे ज्यादर बहुमुल्य हैः गया, तो गया। और उसी के संबंध में हम सबसे ज्यादा लापरवाह हैं। लापरवाह नहीं हैं; लोग बैठ कर ताश खेल रहे हैं, शराब पी रहे हैं। पूछो, क्या कर रहे हो; वे कहते हैं, समय काट रहे हैं समय काटे नहीं कटता।

समय तुम्हें काट रहा है, पागलो! तुम समय को न काट सकोगे। समय को तुम क्या काटोगे? तुम समय को कैसे काटोगे? समय पर तो तुम्हारी कोई पकड़ ही नहीं है। समय तुम्हें काट रहा है; तुम सोचते हो समय तुम्हें काट रहे हो। अखीर में पाओगे, समय तो नहीं कटा, तुम ही कट गए। अक्षीर में पाओगे, समय तो नहीं मरा, तुम्ही मर गए।

ध्यान रखना, समय नहीं बीत रहा है, तुम ही बीत रहे हो। समय नहीं जा रहा है, तुम ही बहे जा रहे हो। समय तो एक अर्थ में वहीं का वहीं हैः लेकिन तुम आते हो, चले जाते हो; तुम्हारी सुबह होती है, तुम्हारी सांझ होती है; तुम्हारा जन्म होता है, तुम्हारी मृत्यु होती है।

इसे ठीक से समझ लेना। समय को काटना अपने को ही काटना है। और समय का सम्यक उपयोग कर लेना, अपने जन्म देने का आयोजन कर लेना है। स्वयं को जन्माना होगा, तो ही तुम्हारा नया रूप, तुम्हारा परमात्म-रूप, तुम्हारा भगवत-रूप प्रकट होगा। वह समय के पार है। तुम्हारा वास्तविक स्वरूप समय के पार है। समय तो सिर्फ एक स्थिति है जिसमें समयातीत को जानना है। समय तो एक परिस्थिति है जिसमें अपने भीतर कालातीत को पहचानना है।

भारत में समय और मृत्यु के लिए हमने एक ही शब्द का प्रयोग किया है, वह हैः काल। अगर तुम ठीक से पहचानो तो समय तुम्हारी मौत है। अगर तुम ठीक से न पहचानो तो समय को तुम अपनी जिंदगी समझते हो। अगर तुम ठीक से पहचान लो तो समय मृत्यु हो जाती है, और तुम उस जीवन की खोज में लग जाते हो जो कालातीत है। क्योंकि उसे पाए बिना तो कुछ भी पाया, पाया सिद्ध न होगा।

लेकिन जैसी साधारण आदमी की कथा है—साधारण आदमी की कथा यानी तुम्हारी कथा, सोए हुऐ आदमी की कथा—वह वही किए चला जाता है जो उसने कल भी किया था, परसों भी कुछ पाया न था। आज भी तुम वही कर रहे हो। परसों भी किया था। परसों भी कुद पाया न था, कल भी कुछ पाया न था। आज भी तुम वहीं कर रहे हो। परसों भी आशा बांधी थी; आज भी आशा बांध रहे हो। आशा ही बांधे चले जाते हो। कभी सोचते भी नहीं कि आशा कितनी पुरानी है, हर बार असफल हुई है। फिर-फिर तुम बांधने लगते हो। उसी आशा के सहारे तुम गलत बने रहे हो। तुम कब निराश होओगे? कब तुम्हारे जीवन में हताशा आएगी कब तुम समझोगे कि यह दौड ही व्यर्थ है, किसी और आयाम को खोजना है। यह पूरा का पूरा सिलसिला ही गलत है। ऐसा नहीं है कि इस सिलसिले को थोडा ठीक-ठीक जमा लेना है। ऐसा नहीं है, इसको थोड़ा रंग-रोगन करके सुंदर बना लेना है, कुछ सजावट कर लेनी है। नहीं यह पूरा सिलसिला ही गलत है।

एक और भी जीवन का ढंग है। वह समय के भीतर कालातीत को जीने का ढंग है; क्षणभंगुर के भीतर शाश्वत को जीने का ढंग। रहो क्षणभंगुर में, मगर तुम्हारे पैर शाश्वत में जम जाएं। रहो समय की धारा में, लेकिन तुम्हारे प्राणों की गहनता अनंत से जुड़ जाए। रहो बाजार में, लेकिन तुम्हारे गहन में बाजार न हो। क्षुद्र चारों तरफ घेरे रहे, कोई चिंता नहीं; तुम्हारे भीतर विराट का संबंध, विराट से संसर्ग हो जाए।

फरीद के ये वचन उसी तरफ इशारे हैं।

'फरीदा जिन लाइण जगु मोहिआ'—फरीदा, मैंने उन नयनों को देखा है, जिन्होंने दुनिया को मोह लिया था, जो काजल की रेख भी सहन न कर पाते थे। इतने कोमल थे। अब चिड़ियां उनमें अपने अंडे रख रही हैं। मैंने उन आंखों को देखा है जो बड़ी कोमल थीं, जिनसे कमल शरमाते, काजल की रेख जिन्हें बरदाश्त न होती थी, काजल की रेख भी जिनके लिए बोझरूप थी , काजल की रेख भी जिन्हें कांटए जैसी गड़ती—मैंने उन आंखों को देखा है। और अब, उन्हीं आंखों में पक्षियों ने अपने घोंसले बना लिए हैं।

च्वांगत्सु निकलता है एक मरघट से। एक खोपड़ी पड़ी है। पैर टकरा जाता है। सांझ हो गई है और अंधेरा घिर गया है। वह उस खोपड़ी को उठा कर ले आता है। उसके शिष्य कहते हैंः इस खोपड़ी का क्या करेंगे? इसे किसलिए ला रहे हैं?

च्वांगत्सु कहता है कि राह चलता था, अंधेरे में पैर लग गया इस सिर को। और ध्यान रखना, वह मरघट कुछ छोटे लोगों का मरघट न था, बड़े लोगों का मरघट था। सम्राट वहां दफनाए गए हैं। प्रधानमंत्री वहां दफनाए गए हैं। यह खोपड़ी कोई साधारण खोपड़ी नहीं है। और भूल से मेरा पैर लग गया है।

शिष्य हंसने लगे। उन्होंने कहाः तुम पागल तो नहीं हो गए हो? अब यह चाहे सम्राट की खोपड़ी हो कि प्रधानमंत्री की, इससे क्या फर्क पड़ता है? अब तो यह धूल में मिलेगी। अब तो यह भिखारियोंके पैरों की ठोकर खाएगी। अब तो यह कुछ भी न कर सकेगी। फेंको इसे। इस कूड़े-कर्कट को मत लाओ।

च्वांगत्सु ने कहाः मैं संभाल कर रखूंगा। इसलिए संभाल कर रखूंगा ताकि मुझे याद बनी रहे कि आज नहीं कल च्वांगत्सु, तेरी खोपड़ी भी ऐसे ही कहीं पड़ी होगी। लोग पैरों की ठोकर मारेंगे। तू उनको कुछ कह भी न पाएगा। और जब यह होना ही है तो एक अर्थ में हो ही गया।

तो वह अपने पास ही खोपड़ी जीवन भर रखे रहा। अगर कोई उसये गाली दे जाता तो वह खोपड़ी की तरफ देख कर हंसने लगता। अगर कोई उसका अपमान करता और कोई उसके ऊपर पत्थर फेंक देता तो वह खोपड़ी की तरफ देखता, पत्थर फेंकने वाले की तरफ नहीं। एक बार तो एक आदमी ने पत्थर फेंका उसके ऊपर क्योंकि वह आदमी पुराने ढर्रे का धार्मिक आदमी था; वह समझता था, च्वांगत्सु धर्म का विरोध कर रहा है। वह समझता था, च्वांगत्सु जो बातें कर रहा है, ये तो लोगों के जीवन से धर्म को नष्ट कर देंगी। उसने बड़े क्रोध से पत्थर फेंका था। च्वांगत्सु ने उसकी तरफ देखा भी नहीं,खोपड़ी की तरफ देखा और कहाः धन्यवाद तेरा! तेरे रहते मुझे कोई विचलीत नहीं कर सकता।

वह भी चौंका। उसने पूछाः क्या कहते हो? किससे बात करते हो? होश में हो?

च्वांगत्सु ने कहाः होश में हूं, इसलिए इस खोपड़ी से बात करता हूं। अगर बेहोश होता तो तुझे मजा चखा देता। अभी जिंदा हूं। अभी पत्थर का उत्तर बड़े पत्थर से दे सकता था। इस खोपड़ी की वजह से अब वैसी नासमझी नहीं होती। आज नहीं कल, यह मेरी खोपड़ी पड़ी ही रहेगी। भिखारी इस पर चलेंगे, ठोकर मारेंगे तब मैं कुछ भी न कर पाऊंगा। जब कल कुछ न कर पाऊंगा तो आज करने की झंझट कौन करे? बात समाप्त हो गई। मैं जीते जी मर गया हूं।

फरीदा जिन लोइण जगु माहिआ—फरीदा, जिन आंखों ने जगत को मोह लिया था,'से लोइण मैं डिठु'—मैंने उन आंखों को देखा है। उन आंखों से मेरी पहचान रही है।

काजल रेख न सहदिआ—काजल की पतली रेखा भी जिन आंखों के लिए बोझिल हो जाती थी,'से पंखी सुए बहिठु'—अब उन्हें में पक्षी बैठे हैं, घोंसले बना रहे हैं।

बड़ा प्राचीन बौद्ध कथा है। एक बौद्ध भिक्षु गांव से गुजरता है।

अक्सर ऐसा होता है कि संन्यास एक तरह का सौंदर्य दे देता है जो इस जगत का नहीं है। संन्यास एक तरह की गरिमा दे देता है जो इस पृथ्वी पर अजनबी है। संन्यास पैरों को एक चाल दे देता है, एक मस्ती दे देता है, जो साधारण सांसारिक में दिखाई नहीं पड़ सकती। सांसारिक तो बंधा है जंजीरों से; संन्यासी के जीवन में एक मुक्ति की सुवास उठती है।

एक संन्यास गुजरता था राह से—अपनी मस्ती में मस्त, अपना गीत गुनगुनाता है। एक बौद्ध भिक्षु। एक वेश्या ने उसे देखा। उसने बहुत सुंदर लोग देखे थे। सम्राट उसके द्वार पर पंक्तिबद्ध खड़े रहते थे। बड़े-बड़े धनपतियों को मुश्किल से उसके द्वार पर प्रवेश मिलता था। वह उस जमाने की सबसे ज्यादा जानी-मानी वेश्या थी। उसकी ख्याती दूर-दूर तक थी। उसके सौंदर्य के लोग गीत गाते थे; उसके दर्शन को तरसते थे। लेकिन वह वेश्या इस संन्यासी पर माहित हो गई। उसके मन को कभी किसी ने मोहा न था। संबंध थे, वे धन के थे। नाता था, वह आर्थिक था। पहली बार प्रेम उसके हृदय में उठा। वह भागी और उसने स भिक्षु का हाथ पकड़ लिया और उसने कहा कि आओ मेरे घर आज मेरे मेहमान हो जाओ।

भिक्षु ने कहाः आऊंगा जरूर; जब जरूरत होंगी तब आऊंगा। अभी मेरी जरूरत भी क्या है? अभी तुम जवान हो। अभी बहुत तुम्हारे प्रेमी हैं। तुम्हारे कीर्तिगान मैंने भी सुने हैं। तुम्हारी सुंदरता की प्रशंसा मुझ तक भी पहुंची है। धन्यवाद की तुमने आज मुझे राह पर रोका और घर आने का निमंत्रण दिया। अभी तो मैं किसी यात्रा पर हूं। अभी तो कहीं मुझे पहुंचना है। लेकिन जिस दिन भी जरूरत होगी, तुम भरोसा रखना, मैं आ जाऊंगा।

वेश्या को बहुत पीड़ा हुई। यह चोट गहरी थी, यह अपमानजनक थी। इसके पहले कभी किसी को निमंत्रण न दिया था। पहला ही निमंत्रण असफल हुआ था। उसे पता था बहुत लोगों को द्वार से वापस लौटा देने का; उसे यह पता न था कि कोई उसे भी द्वार से वापस लौटा सकता है।

बात आई-गई हो गई। घाव की तरह उसके मनमें वह बात चुभती तो रही। सपनों में वह भिखारी आता रहा। जब कभी सुविधा मिलती, एक क्षण को उस भिक्षु की याद उसे पकड़ लेती। वह एक कांटे की तरह, एक मीठी चुभन की तरह भीतर चुभता रहा। ऐसे बहुत वर्ष बीत गए और जो घड़ी आनी थी, जो आती ही है सदा, वह आ गई। उसे कोढ़ हो गया। उसका शरीर गलने लगा। गांव के लोगों ने उसे बाहर निकाल दिया। वह अत्यंज हो गई। अब उसे गांव में रखा नहीं जा सकता।

अमावस की अंधेरी रात है। वह गांव के बाहर मर रही है प्यास से। तप्त गर्मी की रात है। चारों तरफ अंधेरा है। वह पानी के लिए पुकारती है, लेकिन कोई पानी देनेवाला नहीं है। कौन उसे आज पानी देगा? जो सदा अमृत पात्रों में पानी पीती रहती थी, स्वर्ण पात्रों से घिरी थीः आज काई मिट्टी के सकोरे में भी पानी देने को नहीं है। आज उसके पास कोई आने को तैयार नहीं है। उसके शरीर से दुग□ध आती है। तभी अचानक उसने देखा कि किसी का हाथ उसके माथे पर आया। कोई पानी का प्याला भर के ले आया है। उसने पानी पिया। उसने पूछा अंधेरे मेंः तुम कौन हो? उस भिक्षु ने कहाः मैं आ गया हूं। तीस वर्ष पहले तुमने मुझे बुलाया था। लेकिन तब मेरी कोई जरूरत न थी; तब तुम्हारे चाहने वाले बहुत थे। तब मैं भी हजार चाहने वालों में एक होता। मेरे बीना भी तुम्हारा काम चल रहा था। आज तुम्हारा चाहने वाला कोई भी नहीं है। आज केवल मैं ही तुम्हें पहचान सकता हूं। तुम्हारी चमड़ी की देह से मुझे लेना-देना नहीं है। तुम्हारी हड्डी-मांस-मज्जा से मेरा कोई नाता नहीं। मैं तुम्हें पहचानता हूं; मैं तुम्हारी आत्मा को पहचानता हूं। तुम्हारे प्रेम का निवेदन मेरे पास है।

कहते हैं, वेश्या उस रात जिस आनंद और शांति से मृत्यु को उपलब्ध हुई, वैसा कभी किसी को सौभाग्य मिलता है। कहते हैं, वह मुक्त हो गई। वह दुबारा संसार में शरीर ले कर नहीं आई। इस घटना ने उसके जीवन में एक क्रांति उपस्थित कर दी।

रवींद्रनाथ ने इस पर एक बहुत अदभुत कविता लिखी है। उनकी सभी कविताएं अदभुत हैं, लेकिन इस कविता जैसी कोई अदभुत नहीं है।

फरीदा जिन लोइण जगु मुहिआ, से लोइण मैं डिठु।

मैं उन आंखों को भलीभांति जानता हूं, देखा है मैंने उन आखों को, जिन्होंने जगत को मोह लिया था। वे दिन मुझे भूले नहीं। वे सुखद स्मृतियां मुझे याद हैं। काजल की रेखा भी बोझिल थी, गड़ती थी। अब उनमें चिड़ियों ने अपने घोंसले रख लिए हैं; चिड़ियां ?बैठी हैं, अपने अंडे रख रही है। अब वे आंखें केवल गड्ढे रह गई हैं हड्डियों के। सौंदर्य जा चुका, कोमलता जा चुकी।

सभी के जीवन में यह घड़ी आती है। सौभाग्यशाली हैं वे जो आने के पहले सजग हो जाते हैं और तैयारी कर लेते हैं। अभीगे हैं वे, जो इस खयाल में डूबे रह जाते होंगे; यह हमारी आंख के साथ थोड़े ही होने वाला है; हम अवपाद हैं।

जिसने इस जगत में अपने को अपवाद समझा वह अभागा है। जगत में कोई भी अपवाद नहीं है। और मनुष्य का अज्ञान अपने को अपवाद मान कर ही मूर्च्छित बने रहने में सफल हो जाता है।

तुम ध्यान रखना, कभी भूल कर अपने को अपवाद मत मानना। जब सड़क पर किसी को भीख मांगते देखो, तब इस बात की संभावना को इनकार मत करना कि कल तुम भी भीख मांग सकते हो। यह मत सोचना कि तुम अपवाद हो, यह अभागा है। और जब तुम अंधे को राह पर टकराते देखो तो यह मत सोचना कि तुम सौभाग्यशाली हो, यह अभागा है। कल तुम भी अंधे हो सकते हो। जहां आंख है, वह अंधापन हो सकता है। जहां संपदा है वहां भिखमंगापन हो सकता है। जहां जीवन है, वहां-वहां मौत भी होगी। अभी दीयर जलता है, इससे जरूरत से ज्यादा अहंकार से मत भर जाना; क्योंकि सभी दीये बुझते हैं। सभी तरह के तेल चुक जाते हैं। जीवन का तेल भी चुक जाता है।

जब राह से तुम एक मुर्दे को निकालते देखो तो गौर से देखना, यह अरथी में बंधे कल तुम भी निकलोगे। तब तुम देखने के लिए दूर खड़े न बचोगे। तब कुछ करने का उपाय न रहेगा। अभी तुम जाग सकते हो।

लेकिन आदमी के जीवन की बड़ी से बड़ी अंधकार को संभालने वाली जो प्रक्रिया है, वह है स्वयं को अपवाद मानना। तुम कहते हो : यह मेरे लिए थोड़े ही है। ऐसा दूसरों के साथ होता है। सदा कोई मरता है। मैं तो सदा जिंदा हूं। मैंने सदा दूसरों को मरते देखा है; मुझे तो कभी मरते देखा नहीं। कोई दूसरा भीख मांगता है। कोई अंधा हो जाता है। कोई बूढ़ा हो जाता है। कोई जराजीर्ण है। मैं तो सदा ठभक हूं।

इसी अपवाद के भीतर छिपता है अज्ञान।

जगत में कोई भी अपवाद नहीं है। जिसने ऐसा जान लिया, उसके जीवन में मूर्च्छा टूट ही जाएगी। जो किसी को भी घटा है, वह तुम्हें भी घट सकता है। ठीक से समझो तो जो किसी को भी घट रहा है, वह तुम्हें ही घट रहा है—जरा दूर; थोड़े दिन में पास आ जाएगा। मनुष्य मात्र को जो घट सकता है, वह तुम्हारी भी संभावना है। तुम मनुष्य हो, तो जो-जो मनुष्य के जीवन में हो सकता है, वह सब तुम्हारे जीवन में हो सकता है।और सब बातों में थोड़े-बहुत हेर-फेर भी हो जाएं, लेकिन मृत्यु के संबंध में तो कोई हेर-फेर न होगा। मृत्यु तो एकमात्र सुनिश्चित घटना है। हो सकता है, तुम अंधे न होओ; हो सकता है, तुम बहरे न होओ; हो सकता है, तुम्हारा शरीर गले न—लेकिन मौत तो होगी। और शरीर अंधा हो कि न अंधा हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? अंत सुनिश्चित है। जो अंत को ध्यान में रख कर जीता है, जो मृत्यु की तरफ बोधपूर्वक जीता है, उसका जीवन रूपांतरित हो जाता है। जो मृत्यु को भूल कर जीता है, वह बेहोशी में जीता है। मौत के प्रति जाग जाना जीवन को बदलने की किमिया है।

फरीदा जिन लोइण जगु मोहिआ—जिन आंखों ने सारे संसार को सम्मोहित कर लिया था, से लोइण मैं डिठु—देखी हैं मैंने वे आंखे। मैं अपरिचित नहीं हूं। संसार से भलीभांति परिचित हूं। सौंदर्य को परखा है, जाना है।

काजल रेख न सहदिआ, सं पंखी सुए बहिठु।

और अब पक्षी उनमें घोंसले बनाते हैं, अंडे रख रहे हैं।

'फरीदा खाकु न निंदीए, खाकु जेडु न कोई।'

'फरीदा, मत खाक की निंदा कर। धूल की भी निंदा मत कर। खाक के बराबर कोई चीज नहीं। खाकु जेडु न कोई।'

जीते-जी हमारे पैरों के तले है वह, और मर जाने पर हमारे ऊपर।

'फरीदा खाकु न निंदीए, खाकु जेडु न कोई।'

मत निंदा कर खाक की भी राख की भी धूल की भी।

धूल बड़ी अनूठी है: जब तुम जिंदा हो, तब तुम्हारे ऊपर छो जाती है। जीवन भर तुम्हारी शैया और जीवन के बाद तुम्हारी चादर।

'जीऊंदियां पैरा तले, मुइआ ऊपरि होइ।'

और तुम भी खाक से ज्यादा नहीं हो। तुम भी खाक के ही खेल हो। मिट्टी ही है आदमी। मिट्टी का ही जोड़ है, कल मिट्टी में ही गिर जाएगा। मिट्टी से ही उठना है, मिट्टी में ही चो जाना है। बीच में थोड़ी-सी घड़ी कर राग-रंग है। जैसे कोई पक्षी तुम्हारे कमरे में आ जाए, एक वातायन से फड़फड़ाए क्षण भर को और दूसरी खिड़की से बाहर हो जाए—ऐसे ही खाक में जीवन का आना है, क्षण भर को फड़फड़ाना है और दूसरी खिड़की से बाहर जाना है।

थोड़ी देर को तुम्हारी आत्मा के संपर्क में खाक भी जीवित हो उठती है। वह जीवन उधार है। इसे मैं फिर से दोहरा दूं, क्योंकि यह सत्य बहुत गहरे में सम्हाल कर रख लेना जरूरी है। शरीर तुम्हारा जीवन नहीं है; तुम्हारे कारण शरीर में जीवन है। वह झलक है तुम्हारी। जैसे कोई दीया जला है और पास में एक दर्पण रखा हो, तो दर्पण से भी दीये की ज्योति दिखाई पड़ने लगे, दर्पण में भी दीये की ज्योति झलके और दर्पण से भी प्रकाश का विकीर्णन हो ठीक ऐसे ही तुम्हारे भीतर जीवन का एक सूत्र उतरा है, एक पक्षी आत्मा का! उसके संपर्क में, उसके सान्निध्य में मिट्टी भी तुम्हारी देह की जीवित मालूम होती है। शरीर के दर्पण में उसकी ज्योति झलकती है। यह क्षण भर का खेल है। इसमें तुमने अगर शरीर को ही जीवन मान लिया तो तुम भटक जाओगे, और अगर तुमने पहचान लिया कि जीवन का मूल स्त्रोत कहां है, तो तुम शरीर का उपयोग कर लोगे। शरीर के तुम मालिक रहोगे। शरीर तुम्हारा मालिक न हो पाएगा।

फरीदा खाकु न निंदीए—फरीद कहता है, निंदा मत करो शरीर की। सभी ज्ञानियों ने कहा है। और जिन्होंने इससे विपरीत कहा हो, वे ज्ञानी नहीं हैं। शरीर की निंदा करने वाले लोग ज्ञानी नहीं हैं। क्यों? क्योंकि शरीर की निंदा का मतलब ही यह है कि तुम शरीर से अभी मुक्त नहीं हो पाए। निंदा हम उसी की करते हैं जिससे हम भयभित होते हैं। निंदा हम उसी की करते हैं जिसमें हम जकड़े होते हैं और छूट नहीं पाते। निंदा हम उसी की करते हैं, जो बलवान मालूम पड़ता है, शक्तिशाली मालूम पड़ता है, और हम पर कब्जा किए होता है। निंदा हम उसी की करते हैं जिससे हम हार-हार जाते हैं। निंदा हम उसी करते हैं जिसको हम समझे नहीं पाते, जो बेबूझ है, और जिसके साथ हमारी पराजय की कथाएं लिखी हैं। निंदा हारे हुए आदमी का रोष है।

तो जिन्होंने शरीर की निंदा की है, समझ लेना कि वे शरीर से ड़रे हुए हैं, शरीर की वासना से भयभीत हैं, शरीर की कामना से शरीर की तृष्णा से, उनके हाथ-पैर कंप रहे हैं, उनका प्राण डांवांडोल है। वे जानते हैं कि शरीर ने अगर पुकार दी तो वे उसके पीछे चल कर रहेंगे। आत्मा की आवाज उन्हें सुनाछ नहीं पड़ती। अगर किसी जरह उन्होंने अपने को शरीर से रो भी रखा है तो वह रोकना जबरदस्ती का है, बोध का नहीं है। वह रोकना किसी समझ से पैदा नहीं हुआ है। वह रोकना किसी लोभ से पैदा हुआ है। वे निरंतर शरीर की निंदा करेंगे। वे शरीर को गाली देंगे। वे शरीर की दुश्मनी सिखाएंगे। वे तुमसे कहेंगे ः लड़ो शरीर से, हार मत जाना।

शरीर से लड़ना पागलपन है। शरीर तो खाक है। यह तो ऐसे ही है जैसे दर्पण में झलकी हुई ज्योति से कोई लड़े। निपट पागलपन है। वहां कुछ है ही नहीं लड़ने को। शरीर ने तुम्हें कभी भरामाया नहीं है, भटकाया नहीं है। अगर तुम भटके हो, भरमाए गए हो तो अपनी ही मूर्च्छा के कारण कि तुमने शरीर को सब कुछ समझ लिया। इसमें शरीर का कोई कसूर नहीं है; तुम्हारी ही भूल है।

ज्ञानियों ने, परम ज्ञानियों ने शरीर की बड़ी निंदा नहीं की, बल्कि उन्होंने शरीर की प्रशंसा की है। उन्होंने तो शरीर को मंदिर कहा है। उन्होंने तो कहा है, शरीर अदभुत है, बड़ा रहस्य है। मिट्टी है, फिर भी सत्तर तक जीवन की लीला का खेल चलता है। नाकुछ है, खाक है; फिर भी बड़े फूल खिलते हैं।

फरीदा खाकु न निंदीए—मिट्टी की निंदा मत करो। मत करना। मिट्टी के बराबर और क्या है? खाकु जेडू न कोइ।

जीते जी हतारे पैरों के तले, मरने के बाद हमारी छाती के ऊपर। और दोनों के बीच-बीच तुम जो बचोगे, वह भी तो खाक है। नीचे भी खाक, ऊपर भी खाक, बीच में भी खाक। वह पक्षी जो आत्मा का है, वह तो उड़ चुका होगा।

शरीर घर है। थोड़ी देर का विश्राम है वहां। रात भर को रुक कहे हैं। सुबह मुर्गा बांग देगा और चल पड़ेंगे। जिसने शरीर को विश्राम से ज्यादा समझा, वह भूला। जिसने शरीर को रात का विश्राम समझा, एक सराय मानी, उसके जीवन से प्रकाश ज्यादा दूर नहीं है।

इब्राहीम की कथा है, मुझे बड़ी प्रीतिकर है। वह बैठा है अपने सिंहासन पर और एक आदमी आ कर द्वार पर झगड़ा करने लगा है। एक फकीर। उसे आवाज सुनाई भी पड़ने लगी। वह फकीर यह कह रहा हैः रास्ता दो मुझे। तुम रोकने वाले कौन हो?

वह पहरेदार से झंझट कर रहा है।

'मैं रुक कर रहूंगा। इस सराय में मैं आज रात विश्राम करूंगा।'

पहरेदार ने उसे कहा कि तुम पागल हो, नासमझ हो, अजनबी हो। यह महल है सम्राट का, निवासगृह है, कोई सराय नहीं है। सराय भी है; तुम बस्ती में जा कर खोज लो।

पर वह जिद किए है। आखिर सम्राट को भी उत्सुकता हुई कि यह आदमी है कौन, जो सुनता ही नहीं है और कहे चला जाता है, और उसकी आवाज में भी बड़ी मिठास है, और उसकी आवाज में कोई एक गहरा आकर्षण है। सम्राट ने कहा, इस आदमी को भीतर आने दो।

वह आदमी भीतर आया। उसकी चाल में भी बड़ी खूबी है। उसकी शान और है! फकीर की शान! निरहंकारी की शान! विनम्र की शान! वह आ कर खड़ा हो गया। सम्राट भी फिका लगा उसके सामने, बैठा था सिंहासन पर। उसने कहाः तुम क्यों जिद कर रहे हो? क्या मामला है? यह महल है, मेरा निवास स्थान है। तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता है? पहरेदार कहे जा रहा है...!

उस फकीर ने सम्राट को गौर से देखा! उसकी आंखें सम्राट को आरपार भेद गइ। उसने कहा कि इसके पहले भी मैं आया था, तब मैंने इसी सिंहासन पर किसी और को बैठ देखा था।

सम्राट ने कहाः तुम्हारा कहना ठीक है। वे मेरे पिता थे। उनका स्वर्गवास हो गया।

उस फकीर ने कहाः मैं उसके पहले भी आया था, तब मैंने किसी और को बैठे देखा था।

सम्राट ने कहाः वह भी ठीक है। तुम आदमी पागल नहीं हो। वे मेरे पिता के पिता थे। वे जा चुके।

वह फकीर हंसने लगा और उसने कहाः जब मैं दुबारा आऊंगा, तुम्हें पक्का है कि तुम मुझे यहां बैठे मिलोगे? तुम्हारा बेटा तो न मिलेगा, कि कहेगा कि वे मेरे पिता जी थे? इसलिए तो मैं इसको सराय कहता हूं। तीन बार आया, अलग-अलग लोगों को ठहरे पाया। इसको मैं निवास कैसे कहूं?

कहते हैं, इब्राहीम ने घर छोड़ दिया। इब्राहीम फकीर हो गया। लोग उससे पूछते कि मत रहो घर में, कम से कम बस्ती में रहो। वह कहताः बस्ती में ही रह रहे हैं, क्योंकि यहां जो बसा है, कभी नहीं उजाड़ता। और तुम जिसे बस्ती कहते हो, वह मरघट है, मरने वालें की भीड़ लगी है। वहां सबकी मौत आने को है। सब प्रतीक्षा कर रहे हैं। वह तो मरने वालों की कतार है, क्यू है। लोग मर रहे हैं। तुम जिसे बस्ती कहते हो, वह मरघट है, और यहां मैंने बस्ती पाई। अपनी अपनी कब्र में लोग सोए हैं, कभी कोई हटता नहीं। सब बसे हैं। अब इसको कोई उजाड़ न सकेगा। वहां तो प्रतिदिन उजाड़ना होता रहेगा। कोई मरेगा, कोई आएगा, कोई जाएगा—उसे तुम क्या बस्ती कहते हो?

'फरीदा खाकु न निंदीए, खाकु जेडु न कोइ।'

मिट्टी की निंदा मत कर फरीद, मिट्टी जैसा और कुछ भी नहीं है।

'जीऊंदियां पैरा तले, मुइआ ऊपरी होइ।'

जिंदा-जिंदा पैरों के नीचे, मरने के बाद सिर के ऊपर। यही है बिछावन, यही है ओढ़नी। इसी से है उठना, इसी में है खो जाना।

इसकी न्रिंछज्ञ मत कर। इसको पहचान।

और यह तुम समझ लो, जिसकी तुम निंदा करोगे, उसे तुम पहचान न पाओगे। निंदा का धुआं ही आंख को अंधा कर देता है। निंदा का भाव ही समझ को धुंधला जाता है।

तुमने कभी दुश्मन को गौर से देखा? दुश्मन को गौर से देखने का मन ही नहीं होता। तुमने कभी दुश्मन की आंख में आंख डाल कर देखा? नहीं, आंख में आंख तो लोग प्रेमियों की डालते हैं। दुश्मन से तो तुम बच कर गुजर जाना चाहते होख वह दिखाई ही न पड़े। तुम आंख बचा लेते हो। जिस राह से दुश्मन निकलता हो, तुम उस राह से लौट आते हो। तुम उसकी गंध भी नहीं पड़ने देना चाहते अपनी नाक में। तुम उसकी छाया भी नहीं छूना चाहते।

और यही भीतर की दशा है : जिसकी भी तुमने निंदा की और जिसको तुमने शत्रु समझा, तुम्हारी पीठ हो जाएगी उसकी तरफ। और जब समझना हो तो सन्मुख होना जरूरी है। पीठ कर लोगे, विमुख हो जाओगे—समझोगे क्या खाक?

जिस चीज को भी समझना हो, निंदा मत करना। निंदा करने से नामसमझी घनीभूत होती है, टूटती नहीं।

मनुष्य जाती ने कामवासना की निंदा की है और कामवासना ने मनुष्य जाति को पकड़ लिया गर्दन से। मनुष्य को कामवासना की कोई समझ नहीं है। निंदा है। निंदा के कारण ही समझ नहीं है। जब समझ नहीं है तो कामवासना और जोर से पकड़ती है, और जोर से पकड़ती है, तो मन में और निंदा का स्वर उठता है। निंदा का स्वर बढ़ता है, समझ कम होती चली जाती है।

और लोभ को आदमी ने पकड़ा है, निंदा के कारण। और निंदा के कारण लोभ ने आदमी को पकड़ा हुआ है। क्रोध ने आदमी को पकड़ा हुआ है, निंदा के कारण।

एक बात अत्यंत मूलभूत है : जीवन में मुक्ति आती है समझ से। समझ आती है वस्तुओं के साक्षात्कार से। निंदाभरी आंख नहीं चाहिए। बुरा-भला मत कहना। चीजों को देखना जैसा उनका स्वभाव है। उनके वस्तुरूप में उन्हें पहचानना। अगर तुमने उनको ठीक से पहचान लिया, उसी पहचान से तुम्हें पंख लग जाएंगे मुक्ति के।

महावीर का बड़ा प्रसिद्ध वचन है। किसी ने पूछा है कि हम क्या समझें, क्या है धर्म जिसकी तुम सदा चर्चा करते हो? तो महावीर ने कहा : बत्थु सहाओ धम्म। वस्तु का स्वभाव समझ लेना धर्म है। वह आदमी कुछ समझा नहीं कि वस्तु का स्वभाव समझ लेना धर्म है। तो महावीर ने कहा, जिसका तुम स्वभाव समझ लो, उसी से मुक्त हो जाते हो।

धर्म मोक्ष है। समझते जाओ। कामवासना समझ ली—गिर गई। क्रोध समझ लिया—गिर गया। शरीर को समझ लिया—शरीर के तुम भीतर रहते हुए बाहर हो गए, शरीर में होते हुए पार हो गये।

'फरीदा खाकु न निंदीए, खाकु जेडु न कोइ। जीऊंदियां पैरा तलै, मुइआ ऊपरि होइ।'

मत निंदा कर शरीर की। मत निंदा कर मिट्टी की। मत निंदा कर राख की। उसके बराबर और कुछ भी नहीं है। वही तेरा चादर, वही तेरा बिछावन।

'फरीदा जा लबु ते नेहु किआ, लबु ते कूड़ा नेह।'

फरीदा कहते हैं जहां लोभ है, वहां प्रेम कहां से होगा? लोभ होगा तो प्रेम वहां झूठा होगा। टूटे छप्पर के नीचे वर्षा में तू आखिर कितने दिन गुजारेगा।?

'किचरु झति लंघाईऐ, छपरि तूटै मेहु'।

यह वचन बड़ा वैज्ञानिक है। इसका ठीक से विश्लेषण करें।

फरीद कहते हैंः जहां लोभ है, वहां प्रेम कहां से होगा? तुम अगर परमात्मा के द्वार पर भी गए हो तो लोभ के कारण गए हो; हालांकि तुम प्रेम के गीत गाते गए हो। तुम्हारे गीत झूठे हो गए हो। तुम्हारे गीत झूठे हो गए; क्योंकि जहां लोभ है वहां प्रेम होता ही नहीं। तुमने अगर पत्नी को, पति को, बेटे को, भाई को प्रेम किया है तो लोभ के कारण किया है। कोई अपेक्षा है। कोई दूर की आशा है जो पूरी हाने की संभवाना है। कोई मांग है। तुम्हारी कोई वासना है। तुम कुछ पाना चाहते हो। बस लोभ आया, प्रेम असंभव हो गया। क्योंकि लोभ और प्रेम की यात्रा विपरीत है। लोभ मांगता है; प्रेम छीनता है; प्रेम बांटता है। लोभ कब्जा करता है; प्रेम समर्पण करता है। लोभ मालकियत चाहता है; प्रेम मालकियत देता है। लोभ झुकाता है; प्रेम झुकता है। लोभ दूसरे को तोड़ता है, मिटाता है; प्रेम दूसरे को बनाता है, संवारता है। लोभ अपने लिए दूसरे को मिटाने को तैयार होता है; प्रेम दूसरे के लिए अपने को मिटाने को तैयार होता है। उन दोनों की यात्राएं बड़ी भिन्न हैं। वे विपरीत स्वभावी हैं।

जब तक लोभ है, फरीद कहते हैं, वहां प्रेम न हो सकेगा। प्रेम की संभवाना ही तब है जब लोभ गिर जाए। जिसने लोभ को पहचान लिया और लोभ को गिरा दिया, उसके जीवन में प्रेम का अविर्भाव होता है। प्रेम लोभ का अभाव है। इसलिए तुम लोभी आदमी को कभी प्रेमपूर्ण न पाओगे, कृपण को कभी तुम प्रेमपूर्णः न पाओगे। जिसकी धन पर पकड़ है, उसको तुम प्रेमपूर्ण पाओगे? असंभव! जिसकी पद की आकांक्षा है, उसे तुम प्रेमपूर्ण पाओगे? कोई उपाय नहीं। महत्वकांक्षी प्रेम कर ही नहीं सकता। वह कहता है, पहले महत्वकांक्षा पूरी हो जाए, फिर देख लेंगे; यह प्रेम वगैरह अभी रुक सकते हैं, अभी कोई जल्दी नहीं है। दुनिया में और भी बहुत काम हैं। यह प्रेम तो ऐसा है, देख लेंगे, निपट लेंगे अखीर में। ज्यादा से ज्यादा एक मनोरंजन होगा। लेकिन बड़ी महत्वकांक्षाएं हैं, वे पहले पूरी करनी हैं; वे पूरी हो जाएं फिर प्रेम कर लेंगे।

सिकंदर प्रेम नहीं कर सकता; पहले दुनिया जीतनी है; जीत लेगा,तब...। नेपोलियन प्रेम नहीं कर सकता; यद्यपि नेपोलियन बड़े प्रेम पत्र लिखता है। उसने बड़े सुंदर प्रेम पत्र लिखे हैं। उसने अपनी पत्नी जोसेफाइन को जैसे प्रेम पत्र लिखे हैं, शायद ही किसी पति ने कभी लिखे हों। लेकिन वे सब झूठे हैं। जोसेफाइन उनके धोखों में नहीं पड़ी। रोज युद्ध के मैदान से, चाहे आधी रात को उसे समय मिले, वह रोज पत्र लिखता है जोसेफाइन को। उसमें कभी भूल-चूक नहीं होती; वह नियम से लिखता है। रोज नगर जीतता है नए और जोसेफाइन के पैरों में चढ़ाता है। पत्रों में लिख देता है, आज यह नगर जीता, तेरे पैरों में समर्पित। लेकिन जोसेफाइन को इससे धोखा न हुआ। वह किसी और के प्रेम में पड़ गई—एक साधारण सिपाही के प्रेम में पड़ गई। जब नेपोलियन वापस लौटा तो उसे भरोसा न आया कि जिस स्त्री के लिए मैंने सारी दुनिया को जीत कर चरणों में चढ़ाने की कोशिश की, वह किसी साधारण सिपाही को प्रेम कर सकती है! उसने जोसेफाइन को पूछा। जोसेफाइन ने कहा कि तुम्हारे प्रेम पत्र तो सुंदर हैं; लेकिन लोभी महत्वकांक्षी प्रेम कर नहीं सकता। वह सब बातचीत है। मजा तो तुम्हें नगर जीतने का हैं, मैं तो बहाना हूं। मैं न भी होऊं तो भी तुम नगर जीतोगे। यह तो सिर्फ बातचीत है। यह तो कहने का ढंग है, एक शैली है—तेरे चरणों में! जीत तो तुम रहे हो। तुम संसार को जीतने के लिए मुझे छोड़ कर चले गए हो। तुम मुझे पाने के लिए संसार को छोड़ कर नहीं आ सकते हो। तुम कहते हो, आऊंगा, आऊंगा, अभी थोड़ी जीत और बाकी है। यह एक देश हड़प लूं तब आता हूं। लेकिन अगर तुमने मुझे प्रेम किया होता तो तुम कहते, सारी दुनिया व्यर्थ है; तुम मेरे पास हुए होते; तुमने मुझे प्रेम दिया होता।

लोभ प्रेम कर ही नहीं सकता। लोभ दिखावा बहुत करता है। पति हीरे-जवाहरात ले आता है पत्नी के लिए। वह कहता हैः देखो कितना प्रेम करता हूं! इतने हीरे-जवाहरात तुम्हारे लिए लाया हूं और प्रेम क्या है!

लेकिन हीरे-जवाहरात, पत्थर हैं। हृदय का एक कण भी सभी हीरे-जवाहरातों से ज्यादा मूल्यवान है। उसका तो पति को कहीं पता नहीं चलता। वह बड़े महल खड़े कर देता है; लेकिन उसे प्रेम का कोई पता नहीं चलता...।

ये महल, ये हीरे-जवाहरात, यह पत्नी—यह सब महत्वकांक्षा की दौड़ है। पत्नी भी एक सजावट है महल में। पत्नी से कहता है, महल तेरे लिए बनाया है; अगर महल से बातचीत हो सकती हो तो वह कहता है कि पत्नी तेरे लिए लाए। और अगर उसके हृदय को समझा तो महल भी अपने अहंकार के बढ़ावे के लिए है, पत्नी भी अपने अहंकार के बढ़ावे के लिए है। वह सब खेल है।

महत्वकांक्षी का अर्थ हैः अहंकारी, जो कहता है, मैं बहुत बड़ा हो जाऊं, तभी मुझे तृप्ति मिल सकती है। प्रेम का अर्थ हैः झुकने को राजी, मैं इतना छोटा हो जाऊं कि मेरा पता ही न चले। जब तुम नाकुछ हो जाते हो तब प्रेम की तुम पर वर्षा होती है। जितने तुम ज्यादा होते जाते हो, घने जितना मजबुत पत्थर की तरह तुम्हारा अहंकार होता जाता है वर्षा तो तब भी होती रहती है, लेकिन बह जाती है, तूम सूखे के सूखे सह जाते हो।

फरीद कहते हैंः जहां लोभ है वहां प्रेम कैसे होगा? साधारण जीवन में भी यह सच है और धार्मिक जीवन में तो और भी गहराई से सच है। कभी मंदिर लोभ के कारण मत जाना। अगर लोभ के लिए ही जाना तो बाजार जाना, मंदिर जाने की क्या जरूरत है? लेकिन तुमने बाजार में ही मंदिर बनाके रखे हैं। तुम्हारे मंदिर तुम्हारे बाजार का ही विस्तार हैं। दुकान पर भी तुम लोभ के कारण जाते हो और मंदिर भी तुम लोभ के कारण ही जाते हो। तो मंदिर तुम्हारी दुकान का ही एक हिस्सा है। और अगर तुमसे कहा जाए, चुन लो, भूकंप आ रहा है, दुकान बचाओगे कि मंदिर तुम कहोगे कि दुकान बचाएंगे। तुमसे कहा जाए, चुन लो दो में से एक, तो तुम कहोगे, मंदिर तो हमारी दुकान का ही एक दफ्तर है, एक दुकान का ही विभाजन है। वह हमारे बैंक का ही एक कोना है; उसको क्या बचाने का सवाल है? बैंक को ही तुम बचाओगे।

तुम्हारे घर में आग लग जाए तो तुम शंकरजी की पिंड़ी को बचा कर बाहर भागोगे? शंकर जी की कौन फिक्र करेगा? दूसरा बाजार से खरीद लेंगे। और पिंड़ी ही है, उसका लेना-देना क्या है? तिजोड़ी तुम बचाओगे।

तुम थोड़ा सोचना अपने संबंध में। अगर तुम्हें लगे कि मंदिर तुम्हारे लोभ का ही विस्तार है तो मंदिर से तुमको अब तक कोई संबंध ही नहीं हुआ, तुम्हारी मंदिर की तरफ आंख ही नहीं उठी।

लोभ का प्रेम से कोई संबंध नहीं है। जहां लोभ नहीं है, वहीं प्रेम का अविर्भाव है। प्रेम अलोभी चित्त-दशा है। कुछ पाने की आकांक्षा नहीं है। जो मिला है उसका अहोभाव है

यही काम और प्रेम का फर्क है। काम में लोभ है। काम चाहता है, कुछ मिल जाए। वासना है। काम कहता है, अभी जितना हूं वह काफी नहीं हूं, थोड़ा और मिलना चाहिए। प्रेम कहता है, जितना हूं जरूरत से ज्यादा हूं, थोड़ा बांटूं, थोड़ा हलका हो जाऊं। प्रेम तो ऐसा है जैसा खिला हुआ फूल है, सुगंध को बिखर देता है; जला हुआ दीया है, रोशनी को बिखर देता है; सुबह का गीत गाता पक्षी है, बांटता है, अकारण बांटता है। क्योंकि कारण आया कि लोभ आया।

तुम कभी मंदिर गए हो?—अकारण, सहज आनंद-भाव से, कुछ मांगने नहीं, सिर्फ परमात्मा को धन्यवाद देने कि तूने बहुत, बहुत पात्रता से बहुत ज्यादा दिया है! कभी ऐसे ही गए हो मंदिर में चुपचाप बैठने को?—न कुछ मांगने को था, न कुछ कहने को था, दो घड़ी बिताने उसके सान्निध्य में; कोई लेन-देन का संबंध नहीं। तब तुम्हें पहली दफा प्रार्थना का, प्रेम का थोड़ा-सा स्वाद अनुभव आएगा। और तब तुम्हें कोई फर्क न पड़ेगा—मस्जिद में चले जाओगे तो भी, मंदिर गए तो भी, गुरुद्वार गए तो भी—कोई फर्क न पड़ेगा।

तुम मंदिर ही जाते हो, मस्जिद नहीं जाते, क्योंकि वह भी लोभ का ही हिस्सा है। तुम सोचते हो, हिंदू हो, हिंदू भगवान से ही कुछ मिल सकता है; यह मुसलमानों का अल्लाह है, तुम्हारी क्या खाक फिक्र करेगा! तुम्हारे लिए वह द्वार बंद है। तुम जैन हो तो तुम हिंदू के मंदिर न जाना चाहोगे। क्या फायदा है! अपने भगवान के पास

जाओ। जिससे नाता रिश्ता है, उससे कुछ मिलने की संभावना है। लोभ के कारण ही तुम्हारे मंदिरों के विभाजन है। अपने के पास जाओ, पराए से क्या मिलेगा! वैसे ही जैसे बच्चा भूखा हो तो अपनी मां के पास भागेगा, हर किसी की मां के पास थोड़े ही भागा जाएगा; क्योंकि बच्चा जानता है, अपनी मां के पास जाएगा तो दूध मिलेगा; दूसरे की मां के पास जाएगा, दुत्कारा जाएगा। बच्चा भी लोभ के कारण मां के पास जा रहा है।तुम हिंदू हो तो मंदिर जाते हो, मुसलमान हो तो मस्जिद जाते हो—पर लोभ के कारण ये भेद हैं। अगर तुम सिर्फ परमात्मा के पास होने गए हो, कुछ मांगने नहीं, सिर्फ धन्यवाद देने गए हो—तो क्या फर्क पड़ता है, हिंदू का परमात्मा कि मुसलमान का परमात्मा? तब परमात्मा एक है।

प्रेम के लिए परमात्मा एक है, लोभ के लिए परमात्मा अनेक है। क्योंकि लोभ को तो हिसाब बिठाना है, किससे मिल सकेगा—तो नाते-रिश्तेदारी जोड़नी है। प्रेम को कुछ प्रयोजन नहीं है; धन्यवाद देना है—कहीं से भी दे देंगे!

बड़ी अजीब मनोदशाएं हैं, उनका हमें पता भी नहीं होता।

एक मुसलमान मित्र मुझे मिलने आते थे। दूसरों को नमस्कार करते देखते तो वे भी नमस्कार करते। लेकिन मैं थोड़ा हैरान हुआ कि मुझे सदा ऐसा लगता है कि वे नमस्कार मेरी तरफ नहीं कर रहे हैं। उनका रुख ठीक मेरी तरफ न होता। तो मैंने उनसे एक दिन पूछा कि आप झुकते जरूर हैं, सिर भी झुकाते हैं; लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि मेरी तरफ नहीं झुकता सिर, कुछ दिशा अलग ही होती है। उन्होंने कहाः मैं मुसलमान हूं, काबा की तरफ सिर झुकाता हूं।

वे मेरे पास भी आए हैं, पर मेरे पास नहीं आ सकते। अगर मैं भी काबा की दिशा में पड़ जाऊं तो मजबूरी, तो उनो सिर झुक जाता है। अगर मैं काबा की दिशा में नहीं पड़ रहा हूं तो कठिनाई है। वे तो सिर्फ काबा कि तरफ झुक सकते हैं।

लोभ के कारण परमात्मा की भी दिशा हो जाती है; सीमा हो जाती है; रंग, ढंग रूप आकार हो जाता है; नाम, विशेषण हो जाता है; पता ठिकाना हो जाता है।

प्रेम के लिए कोई सीमा नहीं है। प्रेम झुकना जानता है, दिशा नहीं जानत। प्रार्थना धन्यवाद जानती है; रूप आकार नहीं जानती, निराकार जानती है।

फरीद कहते हैंः जहां लोभ है वहां प्रेम कहां? लोभ होगा तो प्रेम वहां झूठा होगा। दो में से एक ही सच हो सकता है; दोनों साथ-साथ सच नहीं हो सकते।

टुटे छप्पर के नीचे वर्षा में तू आखिर कितने दिन गुजारेगा? और यह लोभ के छप्पर के नीचे बैठा है और रो रहा है और परेशान हो रहा है। टूटे छप्पर के नीचे वर्षा में आखिर तू कितने दिन गुजारेगा? अब जाग। अब छप्पर को ठीक ही कर ले। ये लोभ के छेद समाप्त कर। अब प्रेम के छप्पर के नीचे हो जा। प्रेम का छप्पर है; वही शरण हैः उसके नीचे ही साया है और सुरक्षा है।

इसे थोड़ा समझो। जब भी तुम्हारे जीवन में प्रेम होता है, एक सुरक्षा का भवा होता है। जब भी तुम्हारे जीवन में प्रेम नहीं होता, एक असुरक्षा की बेचैनी होती है। इनसिक्योरिटी असुरक्षा का अनुभव ही तब होता है जब तुम प्रेम में नहीं होते। जब तुम प्रेम में होते हो, तब जैसे परमात्मा का वरदहस्त तुम्हारे उपर होता है। साधारण जीवन का प्रेम भी—एक स्त्री का प्रेम, एक पुरुष का प्रेम, एक मित्र का प्रेम—वे भी तुम्हें सुरक्षित कर देते हैं—प्रेम इतना बड़ा वरदान है कि उसके नीचे तुम पाते हो कि अब कोई मृत्यु नहीं है। तुम मरने को भी राजी हो सकते हो—जानते हुए कि अब कोई मृत्यु नहीं है। तुम खतरे में जा सकते हो, आग में उतर सकते हो—जानते हुए कि अब तुम्हें कोई जला नहीं सकता। प्रेम तुम्हें अमृत्व का बोध देता है। वह सुरक्षा है। और जिस आदमी के जीवन में प्रेम न होगा वह सदा असुरक्षित और घबड़ाया हुआ और डरा हुआ और बेचैन और

सदा भयभीत! उसे सब तरफ खतरा है; क्योंकि उसे सिवाय मौत के और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, अमृत की कहीं कोई किरण दिखाई नहीं पड़ती।

टूटे छप्पर के नीचे वर्षा में तु आखिर कितने दिन गुजारेगा?

'फरीद जंगलु जंगलं किआ; भवहि वणि कंडा मोड़ेहि।'

फरीद कहते हैं, शाखों और कांटों को तोड़ता हुआ तू एक जंगल से दूसरे जंगल में भटकता फिरता है। रब तो मेरे हृदय में बस रहा है। परमात्मा तो तेरे भीतर है। फिर जंगल में उसे क्यों ढूंढ रहा है?

'वसी रबु हिआलीऐ जंगलु किआ ढूंढिहि।'

जिसे तू खोज रहा है वह तेरे भीतर है। शाखाओं को काटता है, कांटों में भटकता है, खाई-खड्डों में भटकता है, दुख उठाता दूर दिखाई पड़ती है मंजिल। और लोभ भटकाता है, प्रेम पहुंचाता है; क्योंकि प्रेम आंख बंद हो जाना है। प्रेम में आदमी अपने भीतर डूब जाता है। जब दो प्रेमी गहराई में मिलते हैं, तो एक दूसरे में थोड़े ही डूबते है। जब दो प्रेमी सच्ची गहराई में मिलते है तो अपने-अपने डूब जाते हैं। इसी को वे एक-दूसरे में डूबना कहते हैं। दो प्रेमी जब पास होते हैं तो एक दूसरे के कारण इतने सुरक्षित हो जाते हैं; एक दूसरे पर साया बन जाते हैं; एक दूसरे को ढांक लेते हैं। अपने अहोभाव, आनंद भवा में, एक दूसरे की मंगल कामना से भरे हुए, उनके लिए मृत्यु विसर्जित हो जाती है। उस शांत क्षण में अपने अपने में डूब जाते हैं।

प्रेम भीतर जो छिपा है उसका अनुभव देता है। लोभ बाहर दौड़ता है। लोभ दौड़ है; प्रेम विश्राम है।

शाखों-कांटों को तोड़ता हुआ फरीद तू एक जंगल से दूसरे जंगल में क्यों भटकता फिरता है? रब तो तेरे हृदय में बस रहा है, फिर जंगल में उसे क्यों ढूंढ रहा है।

और कितने दिनों से ढूंढ रहे हो तुम! यह कोई कथा नयी है? कितने जन्मों से तुम भटक रहे हो! कितने कांटे छिद गए हैं। घाव ही घाव हो गए हैं। तन प्राण सब चीथड़ों जैसे हो गए हैं। लेकिन तुम पागल की तरह भटकते हो। एक जंगल में नहीं पाते तो दूसरे जंगल में भटकते हो। दूसरे जंगल में नहीं मिलता तो दूसरे जीसरे जंगल में भटकते हो। एक लोभ में नहीं मिलता तो दूसरे लोभ, एक पद में नहीं मिलता तो दूसरे पद की आकांक्षा। यहां नहीं मिलता तो वहां। भाग रहे हो! और एक जगह भर तुमने कभी नहीं खोजा कि तुम बैठ गए होते; आंख बंद की होती; थिर हुए होते; जीवन की चेतना को विश्राम में उतारा होता और अपने भीतर झांका होता।

खोजने वाले में छिपा है वह जिसकी खोज चल रही है। इसलिए बाहर तुम उसे न पा सकोगे।

फरीद कहते हैं, इन पतली जांघों और पिंडलियों को देखता हूं तो भरोसा नहीं आता कि मैंने कितने ही मैदानों और पहाड़ों को पार किया; परंतु आज फरीद के लिए अपना कूजा उठाना भी मानों सैकड़ों कोस की मंजिल तय करना हो गया है।

फरीद कहते है, इन पतली जांघों और पिंडलियों को देखता हूं तो भरोसा नहीं आता कि मैंने कितने जंगल, पहाड़ पार किए। अपनी तरफ देखता हूं तो भरोसा नहीं आता कि कितने जन्मों से यात्रा चल रही है। इतना कमजोर हूं, इतनी लंबी यात्रा चल रही है, फिर भी थका नहीं मालूम पड़ता! फिर भी जागा नहीं।

तुम अगर अपनी तरफ देखोगे तो तुम्हें हिंदूओं की इस धारणा पर विश्वास ही न आएगा कि अनंत जन्म हुए हैं। तुम कहोगे, कभी के थक गए होते; कभी के गिर गए होते; कभी का होश आ गया होता। नहीं आया है।

वासना दुष्पूर है। वासना की कला यही है, उसका जादू यही है कि एक वासना पूरी भी नहीं हो पाती कि वासना के स्वप्न उठने शुरू हो जाते हैं। वह तुम्हें कभी मौका नहीं देती विश्राम का कि तुम सोच लो, देख लो रुक कर, कि कुछ भी नहीं मिला, अब बंद कर दें यात्रा— इतना समय नहीं देती वासना। वासना दौड़ाए रखती है। एक जगह से दूसरी जगह आंखे भटकती रहती हैं। और आंखों के भीतर छिपा है वह जिसकी तलाश चल

रही है। मंजिल तुम हो और नासमझी से खोजी बन गए हो। भीतर जाने की बात ही भूल गई है; बाहर जाना ही याद रहा है।

इप पतली जांघों और पिंडलियों से मैंने कितने मैदानों और पहाड़ों को पार किया; परंतु आज फरीद के लिए अपना कूजा उठाना भी मानों सैकड़ों कोस की मंजिल तय करना हो गया है।

लेकिन अब हताशा आ गई है।

इस संसार में कुछ भी सार नहीं है। यह पूरी दौड़ व्यर्थ मालूम होती है। चित्त उदास है। इसी को वैराग्य कहा है।

संसार से हो वैराग्य तो ही परमात्मा से राग पैदा होता है। बाहर से हो वैराग्य तो भीतर की धुन सुनाई पड़ती है। बाजार से मन ऊबे तो घर आना होता है। दूसरे से वासना टूटे तो आत्मा से नाता जुड़ता है। आंखे बाहर के दृश्य देखने से थक जाएं तो बंद होती हैं और भीतर के दर्शन शुरू होते हैं।

आज अपना कूजा उठाना भी मुश्किल हो गया; सैकड़ों कोस की मंजिल तय करना मालुम होता है। अब चलने की कोई इच्छा न रही।

इसी अवस्था में बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे बैठ गए हैं। चलने की कोई इच्छा न रही। चल-चल कर देख लिया, व्यर्थ पाया। सब दिशाएं खोज लीं, कहीं कोई, कहीं कोई सार न मिला।

दस दिशाएं हैं, सब में दौड़ लिया अब ग्यारहवीं दिशा शुरू होती है। आदमी आंख बंद कर लेता है। शरीर शून्य हो जाता है। अब भीतर उतरता है—अपने ही कुएं में; अपने ही चेतना की अतल गहराई में।

फरीद कहते हैं, रातें लंबी हो गई हैं। पसलियों में हूक उठ रही है। दर्द से करवटें बदलनी पड़ रही हैं। धिक्कार है उनके जीने का जो विरानी आस में जी रहे हैं।

फरीद कहते हैं, मैं थक गया, टूट गया। रातें लंबी हो गई हैं। अंधेरा अब काटे नहीं कटता मालूम पड़ता। एक-एक क्षण दूभर है।

कभी तुमने खयाल किया—समय की सापेक्षता का, रिलेटिविटी का? अगर तुम प्रसन्न हो, समय जल्दी कट जाता है। अगर तुम उदास हो, समय लंबा हो जाता है। समय घड़ी में थोड़े ही चलता है; समय तुम्हारे मन में चलता है। आइंसटीन ने जब पहली दफा सापेक्षता के सिद्धांत का विज्ञान के जगत में प्रवेश किया तो उसे जगह-जगह सवाल पूछे जाते थे, सापेक्षता, रिलेटिविटी क्या? अब वह इतना कठिन सिद्धांत है कि कहते हैं कि बारह आदमी ही पृथ्वी पर थे जो उसे ठीक से समझते थे। इसलिए आम आदमी को तो समझना असंभव। निश्चित ही जटील है। और जटील ही नहीं है, करीब-करीब असंभव है। क्योंकि उसके भीतर ऐसे विरोधाभास हैं कि उन विरोधाभासों को पकड़ने के लिए बड़ी धार्मिक रहस्यवादी बुद्धि चाहिए- बड़ी काव्य की ऊंची उड़ान चाहिए। अगर तुम्हारा तर्क मजबूत है तो तुम न समझ पाओगे।

जैसे उदाहरण के लिए, आइंसटीन ने कहा कि समय कोई स्थिर वस्तु नहीं है और समय सभी के लिए समान नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति का समय अलग-अलग है। क्योंकि समय तुम्हारे मन की अवस्था पर निर्भर है। हम तो जानते हैं कि अभी साढ़े नौ बजे हैं, तो सबके लिए साढ़े नौ बज गए हैं। आइंसटीन कहता है, नहीं।

यहां भी जो मेरी बात को समझ रहे हैं; जिनको मेरी बात से धुन बंध गई है; जिन्हें मेरा गीत पकड़ में आ रहा है; जो मेरे साथ बह रहे हैं—उनके लिए समय जल्दी बीत जाएगा। डेढ़ घंटा कहां चले गए, उन्हें पता न चलेगा। लेकिन कोई आ गया है, पुलिस का जासूस समझो, वह भी बैठा है, उसको भी मैं देख रहा हूं, वह बड़ा बेचैन है। उसकी कुछ पकड़ में नहीं आ रहा है। उसकी कुछ समझ में नहीं आता। उसकी घबड़ाहट है कि कब खत्म हो, कि वह भागे यहां से! यह उसकी बुद्धि के पार है। उसके लिए डेढ़ साल जैसा लगेगा। तुम्हें डेढ़ घंटा डेढ़ क्षण जैसा लगेगा, आया-गया हवा का झोंका! तुम मस्ती में नाच भी न पाए और झोंका जा चुका।

तो आइंसटीन लोंगों को समझाता कि ऐसा समझो, तुम अपनी प्रेयसी के पास बैठे हो तो घड़ी भर क्षण भर में बीत जाते है। और तुम्हें एक तपते हुए तवे पर बिठा दिया गया है, तो क्षण भर घंटों जैसा लंबा मालूम होता है। तुम्हारे भीतर समय सापेक्ष है, रिलेटिव है। तुम्हारी मनोदशा पर निर्भर है। घर में मेहमान आया है, बहुत दिन की प्रतिक्षा थी, रात जागते बातचीत करते बीत जाती है, पता नहीं चलता। फिर घर में कोई मर रहा है, कोई वृद्ध विदा हो रहा है। चिकित्सक कहते हैं, बचना नहीं है, सुबह होते-होते विदा हो जाएगा। रात भर तुम जागे बैठे रहे हो। रात बड़ी लंबी मालूम होती है, कटती ही नहीं। ऐसा लगता है कि कटेगी भी कि नहीं कटेगी अब! यह रात पूरी होगी, सुबह बड़ी जल्दी भागता मालूम पड़ता है।

लेकिन जिस व्यक्ति के जीवन की महत्वकांक्षाएं उजड़ गइ; जिसे दिखाई दिया कि दूर के ढोल सुहावने हैं, पास आने पर व्यर्थ हो जाते हैं; इंद्रधनुष हैं, दिखते हैं, पास आओ कुछ मिलता नहीं; मुट्ठी बांधो, हाथ में कुछ आता नहीं; इनको घर बांध कर नहीं लाया जा सकता है; ये सिर्फ दिखाई पड़ते हैं, सपने हैं उसके लिए समय बहुत धीमी गति से ले लेता है।

फरीद कहते हैं, रातें लम्बी हो गई हैं। अब कोई महत्वकांक्षा नहीं है। कहीं जाने को, कहीं पहुंचने को नहीं है। कुछ पाने को नहीं है। अब रात बड़ी लंबी मालूम पड़ती है।

पसलियों में हूक उठ रही है और अब तक जो भागते रहे थे नशे में वासना के कि कभी ध्यान ही न दिया था कि शरीर कितना थक गया है, अब पता चल रहा हैः हड्डी-हड्डी रो रही है। रोआं-रोआं दर्द और पीड़ा से भरा है। पसलियों से हूक उठ रही है। दर्द से करवटें पड़े रहना मुश्किल हो गया है।

धिक्कार है उनको जीने का जो बिरानी आस में जी रहे हैं। और फरीद कहता है, हमारी यह जो दशा है, यह जो हताशा की, यह फिर भी तुमसे बेहतर है। क्योंकि तुम अभी भी उस आशा में जी रहे हो जो कभी पूरी न होगी। हमारी वह आशा टूट गई। क्योंकि हमने जान लिया, वह कभी पूरी हो नहीं सकती। माना कि रात अंधेरी लग रही है और हड्डीयों में दर्द है और बड़ी गहरी व्यथा है, थकान है जन्मों-जन्मों की; लेकिन फिर भी हम सौभाग्यशाली हैं। अभागे हैं वे जो अभी भी उसी दौड़ में चल रहे हैं, सपनों के पीछे भागे जा रहे हैं। एक दिन वे भी गिरेंगे। रात तब उन्हें लंबी मालूम पड़ेगी। हड्डियां राएंगा। रोआं-रोआं पीड़ित होगा। करवटें और आशा जब टूटती है तो तुम ही टूट जाते हो; क्योंकि तुम ही अब तक आशा को ही सहारा-सहारा मान कर जिए थे। आशा की भूमि हट जाती है, पैर के नीचे कोई भूमि नहीं रह जाती। इसलिए तो तुम एक आशा मिटे,उसके पहले दूसरी आशा जगा लेते हो। कुछ सहारा चाहिए जीने का।

डूबता तिनके को भी पकड़ लेता है; नाव की कल्पना कर लेता है; सपने देखने लगता है कि नाव में बैठा है, बच जाएगा। सब नावें कागज की हैं। कामना की नाव ही कागज की नाव है।

फरीद कहते है, अभागे हैं वक लोग जो अभी भी आशा में दौड़े चले जा रहे हैं। उनसे तो हमारी दशा बेहतर है। कम से कम एक बात तो घट गईः आशा टूट गई— बाहर की दौड़ बंद हो गई। दूसरी घटना के लिए हम तैयार हो गए। दूसरी घटना के द्वार पर हम खड़े हो गए।

पहले वैराग्य संसार से, व्यर्थ से, असार से। थोड़ी देर को जो संक्रमण का काल होता है उसकी बात कर रहे हैं फरीद। जब संसार से वैराग्य हो जाता है और परमात्मा से राग अभी जगा नहीं होता; रात तो चली गई, सूरज अभी उगा नहींः वह जो भोर का क्षण है, वह क्षण बड़ी मुश्किल का है। जो था वह खो गया और जो मिलना है वह अभी मिला नहींः वह बीच का क्षण है, संक्रमण की बेला है।

रातें लंबी हो गई हैं। पसलियों में हूक उठ रही है। दर्द से करवटें बदलनी पड़ रही हैं।

'फरीदा राती बड़ीआं, धुखि उठानि पास। धिगु तिन्हांदा जिविआ, जिन्हां विडाणि आस।।'

मगर एक बात साफ है कि गलत गलत दिखाई पड़ गया अब ज्यादा देर नहीं है कि ठीक ठीक की तरह दिखाई पड़ जाए।

असत्य को असत्य की तरह जान लेना सत्य को सत्य की तरह जान लेने का पहला कदम है, अनिर्वाय है, अनिर्वाय कदम है। झूठ को झूठ की तरह पहचान लेना सच को सच की भांति पहचानने की तैयारी है। मगर एक संक्रमण का काल है और वही काल सर्वाधिक दुख का काल है। हिरे-जवाहरात नहीं थे, हाथ में कंकड़-पत्थर थे; लेकिन मान रखा था, हीरे-जवाहरात हैं। चित्त तो प्रसन्न था। खुश थे। झूठ थी खुशी। किसी न किसी दिन टूटती।

फरीद ठीक कहते हैं, अभागे हैं वे। हालांकि वे प्रसन्न हैं, खुश हैं उनके पास हीरे-जवाहरात हैं।

मैंने एक कहानी सुनी हैं। दो फकीर एक जंगल से गुजरते हैं। वह जो बूढ़ा है, जो गुरु है, वह एक झोली टांगे हुए है। वह बार-बार अपनी झोली में हाथ डाल कर कुछ देखता है। शिष्य थोड़ा हैरान है कि क्या मामला है। न केवल वह झोली में हाथ डाल-डाल कर देखता है, बल्कि बड़ी तेजी से चल रहा है। ऐसा उसने उसे कभी चलते देखा नहीं। बूढ़ा आदमी! वह कहता भी है कि इतनी जल्दी क्या है? वह (बूढ़ा) कहता है, तुझे पता नहीं! फिर वह कई बार पूछता है कि हम रास्ता भटक तो नहीं गए? गांव दिखाई नहीं पड़ता, सांझ होने के करीब आ रही है। कोई खबर नहीं लगती गांव की। कहीं हम रास्ता जंगल में भटक तो नहीं गए?

वह युवक बड़ा परेशान है। वह कहता है: आपको मैंने कभी चिंतित नहीं देखा क्या जंगल और क्या गांव—फकीर के लिए क्या फर्क पड़ता है। लेकिन आज कुछ बात अलग है।

अंततः वे एक कुएं पर रुके—सूरज ढल गया है—पानी पीने के लिए। सदा बूढ़ा अपने झोले को उतार कर रख देता था, पानी पी लेता था, हाथ-मुंह धो लेता था; आज उसने झोला युवक को दिया और कहा संभाल कर रख।

युवक ने कहा, जरूर झोलें में ही कोई उपद्रव है। उसने झोले के भीतर हाथ डाला, देखा कि एक सोने की इ□ट है। तो वह समझ गया कि आज बूढ़े की परेशानी क्या है। उसने सोने की इ□ट तो निकाल कर डाल दी कुएं में और एक पत्थर उसी वजन का उठा कर रख दिया अंदर। जब बूढ़ा हाथ-मुंह धो कर तैयार हो गया, उसने जल्दी से झोला लिया, टटोल कर झोले के ऊपर से देखा कि इ□ट है या नहीं, है। कंधे पर टांग ली और दोनों चल पड़े। फिर वह पूछने लगा कि रात उतरती आ रही है, गांव का पता नहीं चलता, दिए तक दिखाई नहीं पड़ते, कहीं पास गांव है या नहीं है? दो-तीन मील चलने के बाद युवक हंसने लगा। उस बूढ़े ने कहा: तू हंस क्यों रहा है? मामला क्या है? उसने कहा: अब तुम बिलकुल फिक्र न करो। गांव पहुंचे कि न पहुंचे, कोई डर ही नहीं है।

उसने कहा: क्या मतलब तेरा?

उसने फिर इ□ट टटोल कर देखी, इ□ट थी। उसने कहा: क्या मतलब है तेरा? उसने कहा: अब जिसको टटोल रहे हो, उसमें कोई डर नहीं है।

तब उसने घबड़ा कर इ□ट बाहर निकाल कर देखी, वह पत्थर है। लेकिन इस तीन-चार मील, वह इस पत्थर को ही सोने की इ□ट समझा रहा और परेशान रहा। तब वह भी हंसने लगा। उसने वह इ□ट किनारे फेंक दी। उसने कहा: अब फिक्र छोड़ इसी वृक्ष के नीचे रात विश्राम करें। अब कोई झंझट न रही।

तुम जिस इ□ट को लिए चल रहे हो झोले में, वह फरीद को दिखाई पड़त्ती है कि अभागे हो, पत्थर की इ□ट ढो रहे हो। पर तुमने सोने की समझी है। तुम प्रसन्न हो। तुम बड़े संलग्न हो उसको बचाने में। फरीद पहचान गया कि इ□ट पत्थर की है। उसने पत्थर की इ□ट तो नीचे डाल दी है; साने की इ□ट अभी नहीं मिली। इसलिए वह कहता है, रातें बहुत लंबी हो गई हैं। हड्डी-हड्डी से दर्द उठ रहा है। जन्मों-जन्मों की पीड़ा है चलने की। झोले को टांगे-टांगे कंधा भी थक गया है। और आज सब व्यर्थ हो गया अचानक। एक संक्रमण की बेला आ गई है। एक जीवन समाप्त हुआ, दूसरा अभी शुरू नहीं हुआ; बीच की घड़ी है। यह बीच की घड़ी का नाम वैराग्य है। और जो वैराग्य के द्वार से गुजरा, वही परमात्मा के राग को उपलब्ध न हो सकेगा।

संसार से छुटकारा, उसकी तरफ आंखों का ऊठना है। यहां से हाथ खाली होते हैं, तो वहां हाथ भरने शुरू हो जाते हैं। जो इधर संसार की तरफ विमुख होता है, वह परमात्मा की तरफ सन्मुख हो जाता है।

परमात्मा का मंदिर बाजार में नहीं है। और परमात्मा के मंदिर को तुम भूल कर भी बाजार का हिस्सा मत बना लेना। यह तो हो सकता है कि परमात्मा के मेदिर में ही सब बाजार हो; लेकिन परमात्मा का मंदिर बाजार में नहीं हो सकता। यह तो हो सकता है कि तुम्हारी दुकान भी मंदिर का हिस्सा हो जाए; लेकिन यह की नहीं हो सकता कि उसका मंदिर तुम्हारी दुकान का हिस्सा हो जाए। इस पहेली को तुम ठीक से समझ लेना। यह तो हो सकता है कि दुकान पर बैठे-बैठे भी तुम्हारे लिए प्रार्थना और पूजा का अविर्भाव हो जाए। ग्राहक में ही तुम्हें राम दिखाई पड़ने लगे। दुकान ही तुम्हारी तपश्चर्या हो जाए। यह हो सकता। लेकिन मंदिर दुकान नहीं हो सकता।

लेकिन अब तुम्हारी चेष्टा यह रही है कि मंदिर दुकान हो जाए। तुमने परमात्मा को भी संसार का अंग बना लेना चाहा। इसलिए तुम वंचित हो। इससे जागो।

संसार को भर आंख देख लो। ठीक से देखते ही तुम पहचान जाओगे कि वहां कुछ भी नहीं है। और जिस दिन तुम्हें दिख जाए, संसार में कुछ नहीं है, उसी दिन तुम्हें पहली बार समझ आएगी कि परमात्मा में कुछ है।

लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, परमात्मा कहां है? मैं उनसे कहता हूं, जब तक संसार है तब तक परमात्मा कहीं भी नहीं है। तुम दोनों एक साथ न देख पाओगे। जब तक संसार दिखता है, वही परमात्मा है।

आंख पर एक धुंध है—संसार के राग की, लोभ की। उस धुंध को घटना काटना है। एक जाली है। उस जाली को काटना है। और उसके भीतर प्रेम का अविर्भाव संभावित है।

फरीद कहते हैंः अभागे हैं वे जो व्यर्थ की आशा में जी रहे हैं। मेरी आशा टूट गई। मैं निराश हूं। रात लंबी है, अंधेरी है; फिर भी डर नहीं है—क्योंकि अंधेरी रात के बाद सुबह का आगमन है।

आज इतना ही।

न कानों सुना न आंखों देखा

आठवां प्रवचन

प्रश्न-सार

प्रेम और मृत्यु का अंतस□बंध क्या?

प्रेम, काल और ध्यान हमारे लिए इतने बेबूझ क्यों?

अकथ कहानी प्रेम की—उसका अंत होता हुआ क्यों नहीं दिखता?

अकथ कहानी प्रेम की भांति अकथ कहानी ध्यान की क्यों नहीं कही जाती?

सब सयानों का प्रेम पर ही जोर क्यों?

नकली प्रेम का गोरखधंधा बंद क्यों नहीं होता?

दर्शन के समय कंपकंपी और भय की स्थिति का रहस्य?

जीवन प्रयोजनरहित है तो खाली हाथ जाएं या भरे हाथ—क्या अंतर?

भगवान श्री राजनीति के विपक्ष में क्यों? क्या अराजकवादी हैं? क्रांति के अगुआ क्यों नहीं बनते?

प्रेम महामृत्यु है

पहला प्रश्नः आप जब भी प्रेम पर चर्चा करते हैं तब अनिवार्यतया, मृत्यु को क्यों जोड़ लेते हैं?

क्योंकि मृत्यु प्रेम का स्वरूप है; क्योंकि प्रेम महामृत्यु है। जिसने मृत्यु को समझा, वह प्रेम को भी समझा न पाएगा। जिसने प्रेम को न समझा, वह मृत्यु से सदा के लिए अपरिचित रह जाएगा। मृत्यु है स्वेच्छा से मरने की बात, तो ही समझी जा सकती है। स्वेच्छा से तो कोई प्रेम में ही मरता है। मृत्यु में स्वेच्छा से मरना तो बहुत कठिन होता। जिसने प्रेम में मरना सीखा; जिसने मिटने का मजा ले लिया; जिसे मिटने का स्वाद आ गया—वह शायद मृत्यु में भी मिटने को स्वेच्छा से राजी हो जाए।

तो प्रेम पाठशाला है। उस पाठशाला में मिटना सीखना है। और मिटे बिना कोई प्रेम को उपलब्ध नहीं होता। तुम जब तक हो तब तक प्रेम न हो सकेगा। तुम्हारा सिंहासन जब खाली हो जाता है तभी प्रेम का सम्राट उतरता है। इसलिए मिटने की तैयारी हर हालत में जरूरी है। उसे ही तुम प्रेम को जानोगे। उससे ही तुम मृत्यु को जानोगे। उसी से तुम परमात्मा को जानोगे।

प्रेम कुंजी है। और उस एक कुंजी से सभी ताले खुल जाते हैं। इसलिए तो फरीद कहते हैं अकथ कहानी प्रेम की चर्चा की और मृत्यु के बाद दी, उसकी प्रेम की चर्चा व्यर्थ है, अधूरी है; उसमें कोई गहराई नहीं है। वह ज्यादा से ज्यादा आदमी की वासना की बात कर लेगा; कामना की बात कर लेगा; लेकिन प्रेम की गहराई छुई भी न जा सकेगी। तुम्हें विरोधाभास लगता है, क्योंकि तुम तो सोचते होः प्रेम यानी जीवन। और मैं तुमसे कहता हूंः प्रेम यानी मृत्यु— तुम्हें विरोधाभास लगता है, क्योंकि न तो तुम जीवन को जानते, न तुम मृत्यु को। जीवन की गहनतम गहराई मृत्यु में है। जीवन को भी जानता हो तो भी डूबना पड़ेगा। जैसे बूंद सागर में खो जाती है, ऐसे तुम्हें जीवन के महासागर में खो जाना पड़ेगा।

जीसस के जीवन की कथा का यही सार है। इधर सूली लगी, उधर पुनरुज्जीवित हुए। ईसाइयत भूल गई उस बात को, ठीक से समझ न पाई; क्योंकि प्रेम को और मृत्यु को जोड़ना ईसाइयत को भी मुश्किल पड़ा। जीसस को मानने वाले, जीसस के सूली चढ़ते वक्त सोचते थे, जीसस मरेंगे नहीं। कोई चमत्कार होगा। मृत्यु से बचा लिए जाएंगे। क्योंकि वे भी मृत्यु से डरे थे। उन्हें पता ही न था कि प्रेम की आखिरी गहराई तो मृत्यु है, क्रास है, सूली है। और जब तीन दिन बाद, कथा कहती है, जीसस देखे गए जीवित, तो अनुयायी भरोसा न कर सके। क्योंकि यह हो ही कैसे सकता है? जो मर गया, जो मर गया सूली पर, वह पुनरुज्जीवित कैसे? असंभव! फिर चूक गए।

प्रेम की गहराई मृत्यु है और मृत्यु से पुनरुज्जीवन है, नया जीवन है।

यह जीसस की पूरी कथा इतनी ही है। ऐसा कभी हुआ या नहीं, यह बात महत्वपूर्ण नहीं है। कोई सूली पर लटका, फिर चलो जमीन पर, यह बात महत्वपूर्ण नहीं है। यह तो एक बोध-कथा है। सूली के बाद महाजीवन है। और इस कथा में एक बात समझ लेनी जैसी है। उनके जो खास-खास शिष्य थे—ल्यूक, मार्क, थामस—वे कोई पहचान न सके। उनको पहचाना उनकी एक प्रेम करने वाली शिष्या ने। वह शिष्या भी असाधारण थी। वह एक वेश्या थी—मेरी मैगदलिन। ईसाइयत इसको झुठलाने की कोशिश करता रहती है, इस बात को छिपाती है, क्योंकि यह बात जमती नहीं। बड़े-बड़े अनुयायी, संत जिन्हें ईसाइयत कहती है, वे न पहचान सके—और पहचाना एक वेश्या ने।

यह बात भी मैं मानता हूं कारगर है, अर्थपूर्ण है, प्रेम ही पहचानेगा। वेश्या का प्रेम भी पहचान लेता है। संत का पांडित्य भी नहीं पहचान पाता है। प्रेम की ऐसी महिमा है वेश्या का प्रेम भी पहचान लेगा। वेश्या के प्रेम

में कितनी अपवित्रता हो तो भी प्रेम की एक पवित्र किरण तो मौजूद है। और संत के तथाकथित पांडित्य में कितनी पवित्रता की धारणाएं हों की एक भी, जीवित किरण नहीं है।

मस्तिष्क न पहचान सका, हृदय ने पहचाना। पुरुष न पहचान सके, स्त्री ने पहचाना। यह बात सोच लेने जैसी है, सोच-विचार काम न आया। हृदय की अंधी आंखें काम आ गइं।

प्रेम की कहानी बड़ी महत्वपूर्ण है। पर मृत्यु को समझोगे तो ही समझ में आएगी। और जो प्रेम में मरने को राजी है, उसे परमात्मा हजार रूपों में जिला देता है।

दूसरा प्रश्नः जो भी अस्तित्वगत है—प्रेम, काल, ध्यान—वह सब बेबूझ क्यों है हमारे लिए?

अस्तित्व रहस्य है। बेबूझ होना उसका स्वभाव है। बेबूझ होना कोई घटना नहीं है, कोई उलझन नहीं है, जिसको तुम सुलझा सकोगे। बेबूझ होना अस्तित्व का स्वभाव है।

इस भेद को ठीक से समझ लो।

ये कपड़े मैंने पहन रखे हैं—यह मेरा स्वभाव नहीं है। मैं दूसरे कपड़े पहन सकता हूं। मैं नग्न हो सकता हूं। मैं कपड़ों का त्याग कर दे सकता हूं। ऊपर की घटना है। संयोग है, स्वभाव नहीं है। पहना हूं तो ठीक; उतार दूं तो कोई कपड़े जबरदस्ती न कर सकेंगे कि हम उतरते नहीं।

लेकिन फिर मेरी चमड़ी है, चमड़ी को उतारना बड़ा कठिन पड़ेगा, यद्यपि उतारी जा सकती है। संयोग वह भी है; थोड़ा गहरा संयोग है। लेकिन फिर भी संयोग है। चमड़ी भी खींची जा सकती है, उतारी जा सकती है। फिर उसके भीतर मैं हूं। उस मैं को तो मुझसे अलग नहीं किया जा सकता। कोई उपाय नहीं है। कोई प्लास्टिक सर्जरी काम नहीं आएगी। वह मेरा स्वभाव है।

जो भी मुझसे अलग किया जा सके, वह मेरा स्वभाव नहीं है, संयोग है। कोई संयोग बहुत गहरा नहीं होगा। लेकिन सब संयोग तोड़े जा सकते हैं। नदी-नाव संयोग हम कहते हैं। कोई अनिवार्य नहीं है कि नदी में रहे। ऐसा भी अनिवार्य नहीं है कि नाव में नदी रहे ही या नाव नदी में रहे। कोई अनिवार्यता नहीं है। नाव को तुम नदी से उठा लो तो कोई अड़चन नहीं है। नदी में बहाव न हो तो तालाब हो जाएगी, नदी नहीं रहेगी, फिर सड़ेगी। जिस नदी में बहाव न रहा, वह सागर की तरफ जाना बंद हो गई। वह उसका स्वभाव था। उसके बिना वह नदी ही न रही। फिर तुम्हें उसे कुछ और नाम देना पड़ेगा—सरोवर कहो, कुछ और कहो; नदी न कह सकोगे। उसका बहाव ही खो गया।

फिर जल है नदी का—जल ही खो जाए तो भाषा में हमें इस तरह के प्रयोग करने पड़ते हैं—हम कहते हैं, सूखी नदी। यह बिलकुल पागलपन की बात है। सूखी कहीं कोई नदी हो सकती है? सूखी नदी तो केवल नदी के न होने का नाम है। कभी यहां नदी बहती थी, अब सिर्फ सूखा पाट रह गया है। मत कहो कि यह नदी है। इतना ही कहो कि कभी यहां नदी बहती थी। अब तो नदी का बिलकुल अभाव है, इसको तुम सूखी नदी कहते हो। यह भाषा का गलत उपयोग है। क्योंकि नदी और गीली न हो तो नदी कहां? नदी सूखी कैसे हो सकती है? उसका कोई उपाय नहीं है।

अस्तित्व का स्वभाव है बेबूझता, रहस्य। कोई भी उपाय नहीं है कि हम उसे उतार कर अलग कर दें। साइंस कितनी चेष्टा करती है—यही चेष्टा है कि किसी तरह बेबूझपन मिट जाए; किसी तरह बात समझ में आ जाए; व्याख्या हो जाए; कोई सिद्धांत बन जाए तो जीवन को सुलझा दे। लेकिन विज्ञान ने जितने उपाय किए हैं उतनी ही मुसीबत बढ़ी है। चीजें सुलझी नहीं हैं, और उलझ गइं। जितना विज्ञान गहरा गया है उतना ही उसने पाया कि और गहराइयां खुल गइं। एक रहस्य को लगता था सुलझा रहे हैं, दस नए रहस्य उलझ गए।

बहुत बड़े वैज्ञानिक एडिंग्टन ने लिखा है कि सौ वर्ष पहले वैज्ञानिक सोचते थे, हम बिलकुल अब द्वार के करीब हैं, रहस्य का द्वार आया, आया, अब खुला अब खुला, जरा समय की देर है, थोड़े प्रयोग और, थोड़ी

चेष्टा और। बड़े आश्वस्त थे। लेकिन इस सदी के प्रारंभ में आश्वासन डगमगा गया। द्वार पर आ गए, द्वार खुल भी गया; पता चला, और नए द्वार हैं। जैसे प्याज को छीलो, एक पर्त निकली और दूसरी पर्त आ गई। प्याज तो कभी छील भी जाएगा पूरा और हाथ में कुछ भी न बचेगा। लेकिन जीवन का ढंग ऐसा है, अस्तित्व का ढंग ऐसा है—पर्त पर पर्त है। कभी छिल नहीं पाएगा। तुम उघाड़ते जाओगे, उघड़ने को शेष रहेगा।

तुमने महाभारत की कथा सुनी है; वह कथा महाभारत की नहीं है, विज्ञान और अस्तित्व की है। द्रौपदी का वस्त्र उघाड़ गया है, वह बढ़ता चला जीता है। वे जो वस्त्र उघाड़ रहे थे, वे द्रौपदी को नग्न करने को उत्सुक हुए थे। विज्ञान प्रकृति को नग्न करने को उत्सुक हुआ है: जान लेना है पूरा।

कथा है कि कृष्ण वस्त्र को बढ़ाते चले गए। यह तो कथा है। कोई ऐसा कृष्ण बैठे नहीं। द्रौपतियां निश्ंचित न रहें। वस्त्र छीना जाने लगे तो कुछ करें, कोई कृष्ण बैठे नहीं कहीं जो वस्त्र को बढ़ा देंगे।

नहीं लेकिन कहानी बड़ी महत्वपूर्ण है। उसको यथार्थ मत समझना, उसको प्रतीक समझना। वह यह है कि परमात्मा का ढंग ऐसा है, उसका होना ऐसा है, स्वभाव ऐसा है: कि तुम उघाड़ो, वह ढंकता ही चला जाता है। तुम जितना उघाड़ते हो उतना तुम ही थकते हो।

एडिंग्टन ने लिखा है कि हम सोचते थे पहले कि पदार्थ समझ लिया गया, पदार्थ का स्वरूप समझ लिया गया। हम सोचते थे, संसार यंत्रवत है; लेकिन अब, हालत उलटी हो गई है। पदार्थ तो बिलकुल खो गया। वैज्ञानिक कहते हैं, पदार्थ जैसी तो कोई चीज ही नहीं है। और अस्तित्व का विचार जैसा मालूम होने लगा, वस्तु जैसा नहीं। और भी रहस्य बढ़ गया।

आइंस्टीन ने मरते वक्त कहा है कि जब मैंने शुरू की थी यात्रा खोज की, विज्ञान की, तो मैं सोचता था, कुछ न कुछ हाथ लग जाएगा। कुछ हाथ नहीं लगा। इतना ही जान पाया हूं कि जानना असंभव है। इतना ही जान पाया हूं कि जीवन रहस्य को कभी पूरा खोला न जा सकेगा।

आइंस्टीन, एडिंग्टन, प्लांक, बड़े वैज्ञानिक दिनों में कविता की भाषा तक न पहुंच पाए, समझना कि मीडियाकर है, थोड़ा मध्यम बुद्धि का है, बहुत गहरे नहीं जा सका। जो भी गहरे गए हैं उन्हें तो थाह मिली ही नहीं। उन्होंने तो कहा, अथाह है। हां जो किनारे पर ही बैठे रहे, वे कहते हैं, थाह है। जो गए गहरे में उन्होंने थाह न पाई। जो जितना गहरा गया उतना अथाह पाया।

इसलिए तो फरीद कहते हैं: अकथ कहानी प्रेम की। कहता हूं, लेकिन कही न जा सकेगी। थाह लेता हूं, लेकिन अथाह है। चेष्टा करूंगा; जानता हूं, यह होगा नहीं।

अस्तित्व का स्वभाव है रहस्य।

अस्तित्व कोई समस्या नहीं है जिसको हल करना है, जिसे तुम हल कर सकते हो। अस्तित्व एक रहस्य है: तुम जीयो तो जी सकते हो: नाचना चाहो, नाच सकते हो अस्तित्व को; गाना चाहो, गा सकते हो; हल करने भर की कोशिश मत करना। यह भ्रांत चेष्टा है।

और होना भी यही चाहिए कि यह चेष्टा भ्रांत हो। क्योंकि तुम अस्तित्व के अंग हो; अंग पूर्ण को कैसे जान सकेगा? बूंद सागर को कैसे जान सकेगी? तुम अंशी हो; अंश अंशी को कैसे जान सकेगा? अस्तित्व तुमसे पहले है, तुमसे बाद भी रहेगा। तुम अस्तित्व की एक लहर हो! आए और गए। तुम नहीं थे तब भी अस्तित्व था। तुम नहीं होगे तब भी अस्तित्व रहेगा। तुम कैसे इस अनंत को जान सकोगे?

तुम तो जागरण की एक छोटी-सी घटना हो। जरा-सी चेतना उठी है। जरा-सा होश आया है। एक किरण उतरी है। इस किरण के सहारे तुम इस विराट को कैसे जान सकोगे? असंभव है। और अगर यह अहंकार तुम्हारे मन में आ जाए कि इसे जान कर रहेंगे तो तुम्हें एक अवसर मिला था आनंद का, वह भी तुम खो दोगे।

ज्ञान मत खोजना, आनंद खोजना। फर्क धर्म और विज्ञान का है। विज्ञान कहता है, आनंद खोजेंगे। विज्ञान कहता है, उस आनंद का अर्थ ही क्या, जिसका हमें ज्ञान न हो?

ना कानों सुना ना आंखों देखा

सुकरात ने सिलसिला शुरू किया पश्चिम में विज्ञान की। सुकरात ने कहा हैः अपरीक्षित जीवन जीने योग्य नहीं है—अनएग्जामिन्ड लाइफ इज़ नाट वर्थ लिविंग। इससे शुरुआत हुई विज्ञान की। यह बीज है। जीवन को जब तक ठीक से न समझ लिया जाए, व्याख्या न हो जाए, उसका परीक्षण न हो जाए—तब तक जीने में क्या सार है?

धर्म कहता है, ज्ञान का क्या करोगे अगर उससे आनंद उपलब्ध न हो? ज्ञान का ढेर लगा लोगे। ज्ञान के पहाड़ भी इकट्ठे हो जाएं तो भी आनंद की एक बूंद भी तो उससे नहीं निचुड़ सकती। ज्ञान का करोगे क्या? ज्ञान किसलिए? अगर तुम गौर करोगे तो ज्ञान का खोजी भी कहेगा कि ज्ञान पाकर मैं आनंदित होऊंगा। तो धर्म कहता है, जब आनंदित ही होना है तो इतने ऊहापोह की क्या जरूरत है? और ज्ञान कभी किसी को हुआ नहीं। हां, जो आनंद को उपलब्ध हो गए उनका अज्ञान मिट गया है। ज्ञान कभी किसी को हुआ नहीं। जो आनंद को उपलब्ध हो गए उनका अज्ञान मिट गया है। उनके भीतर से यह भाव ही गिर गया कि कुछ जानना है; सारे प्रश्न मिट गए। उत्तर मिल गए हैं, यह मैं नहीं कह रहा हूं। सारे प्रश्न गिर गए हैं। वे निष्प्रश्न हो गए हैं। और जहां प्रश्न गिर गए, जहां कोई खोजने की बात न रही—वहां जीवन की पुलक, जीवन का अहोभाव उठता है।

जब तक तुम दौड़ते हो, खोजते हो, तब तक नाचने की फुर्सत कहां? जब कोई दौड़ नहीं रह जाती, कोई खोज नहीं रह जाती, कहीं जाने का सवाल नहीं रह जाता, तुम जहां हो वहीं मंजिल होती है—तब तुम नाचते हो। नाचने वाला पैर, यात्रा पर जाने वाले पैर से बिलकुल अलग है। नाचने वाले पैर की अगर वैज्ञानिक परीक्षा करोगे तो उसमें और दुकान की तरफ जाने वाने पैर की परीक्षा में कोई फर्क न पाओगे। क्योंकि दोनों में मसल्स की गति होगी, खून बहेगा, ऊर्जा व्यय होगी, विद्युत प्रवाहित होगी, खर्च होगा। अगर तुमने भौतिकवादी की तरह दुकान की तरफ जाने वाले पैर की और मंदिर के द्वार पर नाचने वाले पैर की परीक्षा की, तो दोनों में तुम्हें कोई फर्क न मिलेगा। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं और तुम भी समझोगे कि फर्क है। मंदिर के द्वार पर नाचने वाला पैर कहीं भी नहीं जा रहा, सिर्फ अहोभाव प्रकट कर रहा है—कि मैं हूं धन्यभाग मेरे कि आज श्वास है और मैं गीत गा सकता हूं; कि आज पैर युवा हैं और मैं नाच सकता हूं।

कोई मंजिल नहीं है। धार्मिक व्यक्ति कि लिए यात्रा ही मंजिल है। तीर्थयात्रा है। कहीं पहुंचना नहीं है। पहुंचे तो हुए ही हैं पहले से ही। उस परमात्मा में विराजमान ही है पहले से। उससे बाहर कभी जाना हुआ नहीं। घर लौट कर आना नहीं है। घर के बाहर कभी गए नहीं; क्योंकि घर के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

ऐसे आनंद के अहोभाव में जो डूब जाता है। उसका अज्ञान गिर जाता है। अज्ञान के गिर जाने को हमने परम ज्ञान कहा है। और ज्ञान की खोज तो विराट अस्तित्व की टेबल पर जो भोजन चल रहा है, नृत्य अहोभाव चल रहा है, उसके टेबल से गिर गए रूखे-सूखे रोटी के टुकड़े हैं, उनको कोई जोड़ ले, इकट्ठा कर ले उसको तुम जीवन मत समझना।

ज्ञान कचरा है। उस ज्ञान को मैं कचरा कहता हूं जिससे अज्ञान मिट न जाता हो। और ऐसा कोई ज्ञान नहीं है जिससे अज्ञान मिटता है। अज्ञान तो अपनी जगह बना रहता है; ज्ञान को कचरा इकट्ठा होता जाता है। तुम कितना ही जान लो, जब तक तुम्हारे जीवन में पुलक न आएगी आनंद की, तब तक तुम्हारे जानने का क्या सार है?

धर्म कहता है,नाचो। विज्ञान कहता है, ज्ञान मिलेगा तो हम आनंदित होंगे। धर्म कहता है, आनंदित होते ही ज्ञान मिल जाता है। इसलिए हमने परमात्मा की आखिरी व्याख्या में आनंद शब्द को सखा है—सच्चिदानंद । वह आखिरी है। आनंद के पार फिर कुछ भी नहीं है। वह आखिरी आकाश है; आखिरी गंतव्य है; आखिरी अर्थ और प्रयोजन और नियति है!

अस्तित्व का बेबूझ होना स्वाभाविक है।

इसलिए संतपुरुष बेबूझ मालूम पड़ते हैं, क्योंकि उनसे अस्तित्व बोलता है। उनकी वाणी अटपटी मालूम पड़ती है उनकी वाणी में अतर्क्य कुछ छिपा हुआ मालूम पड़ता है। भारत में तो साधुओं कि वाणी को हमने अलग ही नाम दे रखा हैः सधुक्कड़ी। वह कोई साधारण भाषा नहीं है; सधुक्कड़ी है। उसका कुछ पक्का नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं और क्या कहना चाह रहे हैं और क्या कह गए हैं।

कबीर के वचनों को हमने उलटबांसी कहा है। वे सीधे-सीधे वचन नहीं हैं उलटे मालूम पड़ते हैं।

कबीर कहते हैंः एक अचंभा मैंने देखा, नदिया लागी आग! मैंने एक अचंभा देखा है कि नदी में आग लगी है।

क्या मतलब होगा? यह बात तो बड़ी बेबूझ है। पर संतों से अस्तित्व बोलता है, बात बेबूझ हो जाती है।

कबीर ठीक कह रहे हैं, जो कभी नहीं हो सकता, वह होते देख रहा हूं। तुम परमात्मा को पाए हो और खोज रहे हो—नदिया लागी आग! तुम आनंद के घर में बैठे हो और रो रहे हो, जार-जार आंसू गिर रहे हैं—नदिया लागी आग! एक अचंभा मैंने देखा, तुम कभी न मरोगे और मौत से कंप रहे हो—नदिया लागी आग!

पर संत की वाणी बेबूझ है। उसको ऊपर से देखो तो उलटबांसी है। अगर जीवन समझो तो उसकी उलटबांसी तत्क्षण सीधी हो जाती है।

यही हुआ है। तुम हो अचंभे। मैं भी तुम्हें देखता हूं तो कबीर ठीक मालूम पड़ते हैं।

किसको खोज रहे हो? जिसको तुम खोजने निकले हो उसको कभी खोया था कि चल पड़े खोजने? किसकी तरफ हाथ जोड़कर आकाश में तुम प्रार्थना करते हो? यह प्रार्थना करनेवाले को तो जरा गौर से देख लो कहीं यह ही न हो जिसकी तुम प्रार्थना कर रहे हो। कहां जा रहे हो? किस दिखा में? किसलिए? कहीं ऐसा न हो कि जिसे तुम खोजते हो वह तुम्हारे भीतर बैठा हो।

फरीद ने कहा है, वह रब, वह परमात्मा तेरे भीतर है। तू कहां जंगल-जंगल भटकता है? तू किसे खोजता है? खोज ही व्यर्थ है। खोज करनेवाले में, जिसकी खोज चल रही है, वह छिपा बैठा है। जैसे बीच में वृक्ष है, ऐसे व्यक्ति में परमात्मा है। तब कबीर ठीक लगते हैं—नदिया लागी आग। और इसलिए तो तुम कितना ही खोजो, पा न सकोगे। पाने का संबंध तुम्हारी खोज से नहीं है। पाने का संबंध इस बात से है कि पहले तुम ठीक से पता लगा लो, कभी खोया था?

कई बार ऐसा हो जाता है, खासकर जो लोग चश्मा लगाते हैं उनको हो जाता है, चश्मा लगा है, और वे भूल जाते हैं और वे टेबल पर इधर-उधर चश्मा देखने लगते हैं। तब अचानक उनको खयाल आता है, कि चश्मा नाक पर है। बस ऐसा ही कुछ हुआ है—नदिया लागी आग।

तुम्हें कई दफे ऐसा हुआ होगा। कलम कान में खोस ली है—और सब तरफ खोजते फिर रहे हो। कोई छोटा बच्चा हंसने लगता है। वह कहता है, कलम कान में लगी है, तब तुम्हें याद आता है।

परमात्मा खोया नहीं है, सिर्फ विस्मरण हुआ है, ऐसा कहना भी शायद ठीक नहीं है; तुम किसी और गोरखधंधे में अति व्यस्त हो गए हो, इसलिए उसकी सूझ भूल गई है, बस। तुम्हारा मन इतना उलझा गया है किसी धंधे में कि तुम भूल ही गए कि चश्मा आंख पर रखा है। याद ही न रही।

बहुत बार ऐसा होता है। जब तुम बहुत जल्दी में होते हो, तब देर होने लगती है। ट्रेन पकड़नी है। चाबी नहीं जाती ताले में। रोज चली जाती थी, आज नहीं जाती है। आज तुम कंप रहे हो। आज तुम भागे हुए हो। असल में तुम यहां हो ही नहीं। तुम आधे स्टेशन की तरफ जा चुके हो। बटन लगाते हो, नीचे की बटन ऊपर लग जाती है। कभी ऐसा नहीं होता था। और आज देर में और देर हुई चली जाती है। तुम यहां हो नहीं। तुम्हारा मन कहीं और व्यस्त हो गया है।

परमात्मा को कोई कभी खोया नहीं है, किसी गोरखधंधे में व्यस्त हो गया है। धन है, पद है, प्रतिष्ठा है—इसकी दौड़ इतनी हो गई है कि तुम्हें चैन नहीं कि तुम थोड़ी देर बैठ कर देख पाओ कि तुम्हारी भीतरी संपदा क्या है।

अस्तित्व बेबूझ है। उसी के कारण संतों के वचन बेबूझ मालूम पड़ते हैं। और जहां तुम्हें बेबूझ वचन सुनाई पड़ जाएं, उस जगह को शरण मान लेना। वहां से भागना मत। तुम्हारा तर्क तो कहेगा कि यह बात तो कुछ समझ में आती नहीं। जो बात तुम्हारी समझ में आ जाती है, वह तुम्हें उठा न सकेगी। जो तुम्हारी समझ में आ गई, वह तुम्हारी समझ से नीची है। तुम्हारे सिर के ऊपर से निकल जाए, समझ में न आए—वही समझना कि सीढ़ी है, कुछ ऊपर उठने की संभावना है।

पंडितों की बातें बिलकुल समझ में आ जाती हैं। संतों की बातें समझ में नहीं आती। पंडितों से तुम्हें कुछ भी न मिलेगा। उनसे तुम कुछ भी न पा सकोगे।

मैंने सुना है, इंग्लैंड की लार्ड्स-सभा का अध्यक्ष किसी गांव की यात्रा पर गया था, रास्ता भटक गया। कोई पास दिखाई नहीं पड़ता था तो उसने गाड़ी रोक दी। एक किसान चला आ रहा था जंगल से घास बांध कर। उसने उससे पूछा कि भाई, तुम मुझे बता सकते हो कि मैं कहां हूं? सीधा प्रश्न है। वह यह पूछ रहा है कि मैं किस जगह हूं, कौन-सा गांव पास है? उसने पूछा, तुम मुझे बता सकते हो कि मैं कहा हूं? उस किसान ने नीचे से ऊपर तक देखा। उसने कहा; बिलकुल, कार में बैठे हुए हो।

उस लार्ड्स-सभा के अध्यक्ष ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि उसका उत्तर बिलकुल पार्लियामेंटेरियन था। उसने उत्तर भी दिया और तुम जो जानते थे पहले उससे रत्ती भर जानने में बढ़ती न हुई। उत्तर तो बिलकुल ठीक दिया। ऐसा ही तो मंत्रीगण उत्तर देते हैं राज्य-सभाओं में, पार्लियामेंट्स में। उत्तर तो बिलकुल ठीक देते मालूम पड़ते हैं, लेकिन उत्तर से कुछ मिलता नहीं। तुम जितना जानते हो, उसमें रत्ती भर जुड़ता नहीं है। तुम उतना पहले ही जानते थे कि तुम कार में बैठे हो। उस किसान ने उत्तर दिया, वह बिलकुल धारा-सभा का उत्तर था।

पंडित तुम्हें जो उत्तर देते हैं, वे सब धारा-सभा के उत्तर हैं उनसे तुम्हें कुछ मिलता नहीं। तुम जानते ही थे वही तुमसे कह देते हैं, शायद थोड़े अच्छे ढंग से कह देते होंगे, लफ्फाजी में कुशल होंगे। जो तुम हिंदी में कहते, वे संस्कृत में कह देते होंगे। मगर तुम्हारे जीवन में कुछ भी जुड़ता नहीं।

संत तुम्हारे जीवन को अस्तव्यस्त कर देता है। वह तुम्हारे जीवन में कोई क्रांति की घड़ी ले आता है। अगर संत के वचन को समझने की तुमने चेष्टा की, उसी चेष्टा में तुम सीढ़ियां चढ़ने लगोगे। जहां तुम बेबूझ को पाओ वहां रुक जाना, जल्दी मत करना। शायद वहां से कोई रास्ता अस्तित्व के लिए खुलता हो।

तीसरा प्रश्नः अकथ कहानी प्रेम की—कबीर, नानक, दादू, फरीद, मीरा, चैतन्य आप कहते हैं, कहते ही चले जाते हैं। कहानी आगे बढ़ती जाती है। उसका अंत आता हुआ नहीं मालूम होता। क्या कोई अंत है या नहीं?

प्रेम का प्रारंभ है, अंत नहीं।

इसे थोड़ा समझना पड़े।

प्रेम का प्रारंभ है, अंत नहीं; घृणा का अंत है, प्रारंभ नहीं। तुमने घृणा कब प्रारंभ की, तुम्हें कुछ पता है? तुम बता सकोगे, फलां दिन, फलां तारीख कैलेंडर में, उस दीन घृणा शुरू हुई? घृणा तुम ले कर ही आए हो जैसे। उसका कोई प्रारंभ नहीं है, अंत है। मोक्ष का प्रारंभ है, अंत नहीं है। ठीक कही है बात। मोक्ष का भी अंत हो जाए तो वह क्या मोक्ष होगा? संसार का अंत है, लेकिन प्रारंभ नहीं है। कब संसार शुरू हुआ, बता सकोगे? पूछो महावीर से, बुद्ध से, कब संसार शुरू हुआ? वे कहेंगेः कभी शुरू नहीं हुआ, बस है। पर इतना वे कह

सकते हैं कि एक घड़ी आई जब अंत हुआ। चालीस वर्ष के थे बुद्ध, तब एक रात अंत हो गया संसार का, मोक्ष शुरू हुआ। अब तुम पूछो कि मोक्ष का अंत होगा कभी? कभी नहीं होगा।

जीवन में जो पाप है, उसका प्रारंभ नहीं होता, अंत होता है। और जीवन में तो पुण्य है, उसका प्रारंभ होता है और अंत नहीं होता।

अकथ कहानी प्रेम की! वह शुरू तो होती है। एक दिन वीणा के तार बजने शुरू होते हैं, उसके पहले भनक भी नहीं थी। फिर वीणा बजती ही चली जाती है। सब समाप्त हो जाता है, पर वीणा के स्वर फिर गूंजते ही रहते हैं। वह गूंज अनंत की है, शाश्वत की है। वह गूंज समय का हिस्सा नहीं है, समय के पार है।

तो एक दिन तुम जागते जरूर हो, लेकिन फिर तुम कभी सोते नहीं। जो प्रेम में जाग गया, जाग गया। इसलिए तो हमने प्रेम को शाश्वत कहा है। और जब तक प्रेम शाश्वत न हो तब तक प्रेम का धोखा रहा होगा। जो प्रेम पैदा हो और समाप्त हो जाए, उसे तुम कुछ और कहना, कृपा करके प्रेम मत कहना। और नाम खोज लेना, लेकिन प्रेम मत कहना। क्योंकि प्रेम की तो परिभाषा यही है कि जो शुरू हो और समाप्त न हो। प्रेम इतना विराट है कि तुम ही उसमें समाप्त हो जाते हो; तुम उसे कैसे समाप्त कर पाओगे!

एक कहानी मुझे सदा प्रीतिकर रही है। रामकृष्ण कहते थे। मेला भरा था समुद्र के तट पर। बड़ा विवाद चल रहा था कि समुद्र अथाह है या नहीं। भीड़ इकट्ठी हो गई थी। बड़े पंडित शास्त्र खोलकर बैठे थे। बड़ी उत्तेजना फैल गई थी कि कौन जीतता, कौन हारता! बैठे सब किनारे पर थे। सागर में कोई उतर न रहा था। बैठकर ही चर्चा हो रही थी। शब्दों की मार चल रही थी। बाल की खाल खींची जा रही थी। कोई कहता था, अथाह है, क्योंकि अब तक किसी ने भी नहीं कहा कितनी थाह है। अगर थाह होती तो कोई नाप लेता। दूसरे कह रहे थेः चूंकि अब तक नापा नहीं गया, तुम कैसे कह सकते हो कि अथाह है? नाप हो जाए, और पता चले कि नाप नहीं हो पाता, तो ही अथाह कहना।

अब इसमें बड़ी जटिलता थी। नाप अब तक हुई नहीं है, तो थाह तो कह ही नहीं सकते अथाह भी नहीं कह सकते। पर किसी को यह खयाल नहीं आ रहा था कि उतरें और कूद जाएं। कहते हैं, नमक के दो पुतले भी उस भीड़ में खड़े थे। उनको जोश आ गया। उन्होंने कहाः रुको जी। विवाद से क्या होगा? हम पता लगाकर आते हैं।

वे दोनों कूद गए। वे जैसे-जैसे नीचे जाने लगे, वैसे-वैसे बड़े हैरान हुए कि सागर की गहराई का तो अंत नहीं होता, खुद पिघलते जा रहे हैं! नमक के पुतले थे। कहते हैं, वे पहुंच भी गए बड़ी गहराई में; लेकिन जब लौटने का खयाल आया तो वे थे ही नहीं; वे तो जा चुके थे। नमक पानी में घुल चुका था, सागर का हिस्सा हो चुका था।

ऐसा कई दिनों तक लोग घाट पर प्रतीक्षा करते रहे और उन्होंने कहा कि फिजूल है मेहनत अब और रुके रहना। शास्त्र का अर्थ फिर से शुरू किया जाए, यह बेकार मेहनत गई। यह समय ऐसे ही गया। इस बीच तो हम शास्त्र से ही निर्णय कर लेते।

फिर विवाद शुरू हो गया। और वे जो डूब गए गहराई में; वे कभी लौटे नहीं कहने, थाह है या नहीं।

कहानी अभी भी वहीं उलझी है—थाह है या नहीं है? विवाद घाट पर अब भी अपनी-अपनी बातें कर रहे हैं। ये जो दो नमक के पुतले हैं, ये संतों के प्रतीक हैं, ये संतत्व के प्रतीक हैं। जैसे सागर में नमक का पुतला घुल जाता है, ऐसे ही हम परमात्मा में घुल जाते हैं, उसके प्रेम में घुल जाते हैं। दो क्यों चुने प्रतीक? क्योंकि जब तक हम घुले नहीं तब तक दो मालूम होते हैं। घुल गए तो दो भी नहीं रह जाते, एक भी नहीं रह जाता; अद्वैत रह जाता है। फिर लौटकर कहे कौन? बताए कौन? थोड़ी देर राह पर बैठे हुए, घाट पर बैठे हुए पंडित प्रतीक्षा करते हैं; फिर वे कहते हैं, ये भी गए, कोई लौटकर बताता नहीं; हम अपना शास्त्रार्थ फिर शुरू करें। वे फिर विचार में लीन हो जाते हैं।

निर्विचार में जाना जाता है। विचार में सिर्फ विवाद है। शून्य में पहचान है। शब्द में केवल सिर-फोड़ है। लेकिन जो शून्य में उतरता है, वह प्रेम को समाप्त नहीं कर पाता, स्वयं समाप्त हो जाता है। इसलिए—अकथ कहानी प्रेम की!

चौथा प्रश्न। इस प्रवचन माला के प्रारंभ में आपने कहा, प्रेम और ध्यान दो मार्ग हैं। पर अकथ कहानी प्रेम की भांति अकथ कहानी ध्यान की क्यों नहीं कही जाती?

कहानी के लिए कम से कम दो की जरूरत है। तो प्रेम की तो कहानी हो सकती है, ध्यान की नहीं हो सकती। ध्यान तो एक का ही एक में प्रवेश है; कहानी के लायक जगह नहीं है। कम से कम कहानी के लिए दो तो चाहिए, तो कुछ कहानी बने। तीन हों तो और भी अच्छी बन जाती है, ट्राएंगल बन जाता है। और ज्यादा हों तो कहानी और बढ़ती चली जाती है।

ध्यान में तो अकेला एक ही व्यक्ति बचता है।

तुम थोड़ा ऐसा सोचो कि एक आदमी जन्में और ध्यान में डूब जाए; सौ साल जीए और ध्यान में ही रहे—तुम उसकी कुछ कहानी कह सकोगे? उसके जीवन में कुछ घटा ही नहीं। न लड़ा, न झगड़ा, न अदालत गया, न प्रेम किया, न बच्चे पैदा किए, न इलेक्शन लड़ा, न नेता बना, न कुछ किया—कुछ भी नहीं किया। वस्तुतः तुम उस आदमी को पहचान ही न पाओगे कि वह कौन है, उसका नाम-धाम क्या है। क्योंकि ध्यानी का कोई नाम-धाम है, कोई पता-ठिकाना है? लोग उसे भूल ही जाएंगे कि वह है भी। किसी को उसका पता भी न रहेगा। वह कब आया और कब गया; लहर की तरह चला जाएगा। भीतर पीछे कोई रेखा भी न छूटेगी, कोई चरण-चिह्न भी न छूटेंगे—कहानी क्या होगी?

कहावत है फ्रांस में कि कहानी बुरे आदमी की होती है, अच्छे आदमी की नहीं। और यह बात सच है। अच्छे आदमी में कहानी ही क्या है न चोरी की, न जुआ खेले, न शराब पी, न हत्या की, न मारा, न मारे गए—अच्छे आदमी की कहानी क्या है? अच्छे आदमी की कहानी लिखने को कुछ नहीं, कागज कोरा है।

सूफियों की एक किताब है। उस किताब का नाम हैः दि बुक ऑफ दि बुक्स। उसमें कुछ भी हल हुआ नहीं है। वह कोरी है। उस किताब की तो कहानी है, लेकिन किताब में कोई कहानी नहीं है। किताब किसने बनाई, किस सम्राट के महलों में रही, किन तिजोड़ियों में संभाल गई—इसकी तो कहानी है; लेकिन किताब के भीतर कोई कहानी नहीं है। किताब कोरी है, बिलकुल खाली है।

वह अच्छे आदमी की, ध्यानस्थ आदमी की बात है।

प्रेम की कहानी हो सकती है। मीरा नाचेगी, रोएगी—विरह में, पीड़ा में, आनंद में; परमात्मा से निवेदन करेगी; कुछ कहेगी, कुछ सुनेगी; कुछ समझेगी, कुछ समझाएगी—खेल चलेगा, एक लीला होगी। बुद्ध के पास कोई भी खेल न होगा। किससे कहना है? न कोई परमात्मा है, न कोई भक्त है, न कोई भगवान है—एक ही बचा, मरुस्थल जैसा सन्नाटा है; कोई वृक्ष नहीं उगते; कोई फूल नहीं लगते; कोई पक्षी गीत नहीं गाते। मरुस्थल की क्या कहानी है? मरुस्थल कह दिया, कहानी पूरी हो गई।

ध्यानी की कोई कहानी नहीं है।

बहुत बड़ा झेन फकीर हुआ, रिंझाई से किसी ने पूछा कि मैं जरा जल्दी में हूं, एक शब्द में बता दो—क्या करने योग्य है? तो वह चुप बैठा रहा। उस आदमी ने कहाः जल्दी करो, चुन क्यों बैठे हो?

उसने कहाः कह दिया जो कहना था। क्योंकि जो कहना था, वह चुप्पी है। बोलने से खराब हो जाएगी। समझ गए तो समझ गए। नहीं समझे तो और कहीं समझ लेना।

उस आदमी ने कहा कि लुभाते हो तुम। तुम्हें देखकर रुकने का मन होता है, पर मैं जल्दी में हूं। और इतनी-सी बात और अटकाएगी। मैं और चिंतित रहूंगा कि पता नहीं, क्या मतलब था! तुम संक्षिप्त में एक शब्द तो बोल दो।

तो रिंझाई ने कहाः ध्यान।

उस आदमी ने कहाः चलो कुछ तो तुम बोले; लेकिन इतने से कुछ बहुत साफ नहीं होता। ध्यान यानी क्या? रिंझाई ने कहाः ध्यान यानी ध्यान। उस आदमी ने कहाः अब और पहेलियां मत उलझाओ। पहेलियां मत बूझो। मुझे जाना है, जल्दी में हूं, और तुम उलझाए चले जा रहे हो? ध्यान यानी ध्यान—इसका क्या मतलब?

रिंझाई ने कहाः अब तुम इतना ही पूछो, ध्यान यानी ध्यान और ध्यान यानी ध्यान—ऐसे ही मैं दोहराता चला जाऊंगा; क्योंकि ध्यान यानी ध्यान, और कुछ है नहीं। अब करो और जानो।

अब अगर तुम रिंझाई के ऊपर कुछ शास्त्र बनाना चाहो तो क्या बनाओगे? खाक? गीता लिखना चाहो रिंझाई के ऊपर, क्या लिखोगे? ध्यान यानी ध्यान गीता समाप्त। एक पोस्ट-कार्ड भी बहुत बड़ा हो जाएगा। और यह भी रिंझाई को पसंद न पड़ेगा इतना लिखना कि ध्यान यानी ध्यान; यह भी मजबूरी में, यह आदमी जिद्दी था इसलिए कहा। नहीं तो वे चुप ही थे। खाली पोस्ट-कार्ड भेज देते।

ध्यान की कोई कहानी नहीं है। प्रेम की कहानी है। और इसलिए तो मैं कहता हूं, प्रेम का एक रस है। ध्यान से तुम्हारा संबंध जरा मुश्किल है, क्योंकि कहानी में अभी तुम्हारा रस है। अभी तुम कहानी सुनना चाहोगेः न सही संसार की, परमात्मा की; न सही इस लोक की, उस लोक की। अभी तुम गीत गाना चाहोगेः न सही यहां के, वहां के। भगवद्गीता ही सही, पर गीत...। अभी तुम नृत्य देखना चाहोगेः न ही संसार का नृत्य, मीरा का।

तुम्हारे लिए प्रेम करीब होगा। उससे कुछ तुम्हारे तार जुड़ जाएंगे। प्रेम भी आखिर में ध्यान पर पहुंच देता है, पर आखिर में। ध्यान तो सीधी छलांग है। प्रेम तो क्रमिक उपाय है। ध्यान छलांग है। ध्यान बड़ा दुस्साहस मांगता है—अंधेरे में कूद जाने का। प्रेम धीरे-धीरे फुसलाता है, आ जाओ। आश्वासन देता है, घबड़ाओ मत, साथ हूं मैं। प्रेम सुगम है। ध्यान दुर्गम है।

और ध्यान की कहानी नहीं है—न अकथ और न कथ, कोई कहानी नहीं है।

पांचवां प्रश्नः आपने कहा, प्रेम पदयात्रा है; और ध्यान, जैसे वायुयान की यात्रा। फिर सभी सयाने और आप भी प्रेम पर ही जोर देते हैं। क्या सभी सयाने लंबी यात्रा के पक्ष में थे?

न मेरा बस चले तो मैं तो यात्रा के बिलकुल पक्ष में नहीं हूं। मैं तुमसे यही कहता हूं कि यात्रा करनी ही नहीं, तुम वहीं हो; पर तुम नहीं सुनते। तुम कहते हो कि ठीक है, पर थोड़ा कुछ तो बताएं—कैसे चलें? कुछ आलंबन चाहिए। कोई सहारा चाहिए। ऐसा एकदम से पहुंचा देने में तो जंचती नहीं बात।

तुम भरोसा ही नहीं करते कि तुम, और इसी वक्त परमात्मा हो सकते हो। तुमने अपनी इतनी निंदा की है इतने कालों तक; तुमने अपने-आपका इतना अपमान किया है इतने अनंत जन्मों में! तुम महानिंदक हो अपने। तुमने कभी अपने को स्वीकार नहीं किया। तुम सदा अपने को इच्छा बनाने की चेष्टा में रहे हो, और जाना तुमने सदा है कि तुम बुरे हो। जाना तुमने कि तुम पापी हो, और पुण्यात्मा होने की तुमने कोशिश की है। मैं आज अचानक तुमसे कहता हूं कि तुम पापी नहीं हो। तुम चाहो तो भी पापी नहीं हो सकते हो। पाप तुम्हारा भ्रम है और पुण्य तुम्हारा स्वभाव है। तुम सुन लेते हो लेकिन बात जंचती नहीं। तुम्हारी आदत के विपरीत तुम सब सुन-सुनाकर फिर कहते होः ठीक कहते हैं आप, कुछ आत्मसुधार का मार्ग बताइए।

मेरे पास रोज लोग आते हैं। मैं कहता हूं, कुछ करना नहीं है; तुम जैसे हो, परम सुंदर हो। वे इधर-उधर देखते हैं। वे कहते हैंः मान नहीं सकते। चाहे मेरी बात सुनकर चुप भला हो जाएं, लेकिन राजी थोड़े होते हैं।

कैसे मान सकते हैं कि मैं जैसा हूं, परम सुंदर हूं? मैंने अपनी शक्ल देखी है आईने में। मैंने अपना व्यवहार देखा है।

और पंडितों ने तुम्हें इतना ज्यादा निंदित किया है कि उनके शब्द तुम्हारे भीतर गूंजते रहते हैं कि तुम पापी, महापापी। तुम और परमात्मा? परमात्मा बहुत दूर है। हजारों साल की यात्रा है, तब तुम पहुंच पाओगे। इंच-इंच बदलना है। तपश्चर्या करनी है।

मैं तुमसे कहता हूं कि तुम अभी वही हो, इसी क्षण। एक क्षण भी खोने की जरूरत नहीं है।

लेकिन उससे तुम राजी नहीं होते। वह ध्यान का मार्ग है। वह तत्क्षण जगा देता है। पर वह इतनी जल्दी होती है उसमें कि तुम भरोसा ही नहीं करते कि इतनी जल्दी हो सकती है। तुमने तो धीरे-धीरे करके भी नहीं पाया, इतनी जल्दी कैसे पाओगे? तुम तो जनम-जनम चल कर भी नहीं पहुंचे हो; और मैं कहता हूं, बिना चले पहुंच जाओगे—तुम्हारे तर्क को बात जमती नहीं, तुम्हारे गणित में बैठती नहीं। तुम कहते होः हो गया होगा तुम्हें, कोई प्रभु-कृपा से, किन्हीं पुण्य फलों से; या किसी पीछे की द्वार से तुम प्रविष्ट हो गए होओगे; यह अपने लिए नहीं है।

तुम बुद्ध को कहते हो।ः तुम अवतार हो, तुम्हारी बात और; हम साधारण जन हैं।

कृष्ण को तुम कहते होः तुम तो उसी के रूप हो; तुम्हें हो गया होगा। तुम परमात्मा से जरा करीब से नाते-रिश्ते में बंधे हो, सगे-संबंधी हो, भाई-भतीजा हो—तुम्हें हो गया होगा।

जीसस को तुम कहते होः तुम उसके इकलौते बेटे हो; लेकिन हम पापी हैं। हमें होना तो चाहिए नर्क में; हम यहां पृथ्वी पर कैसे हैं, इस पर ही भरोसा नहीं आता। और तुम कहते हो कि स्वर्ग में इसी क्षण प्रवेश के अधिकारी हो!

यह तुम्हारा मन हिम्मत नहीं कर पाता। तुम डरते हो। तुम भयभीत हो। इससे अड़चन है। मैं तो चाहूं कि तुम अभी बिना चले पहुंच जाओ। और मैं तुमसे कहते हूं, तुम पहुंचे ही हुए हो—इस बात को होश भर चाहिए। तुम वहीं सो रहे हो जहां परमात्मा है; सिर्फ आंख खोलनी है और उठकर बैठ जाना है। जरा चाय पीओ और चारों तरफ देखो आंख खोलकर। थोड़ा मुंह धो डालो। एक क्षण को भी तुम और कहीं गए नहीं। वह जो तुमने पाप किए, पुण्य किए—सब सपना था। तुम कहीं मर सकते हो? तुम कहीं जन्म सकते हो? तुम्हारा न कोई जन्म है ना मृत्यु है। तुम शाश्वत हो।

पर यह बात तो तुम्हें जमेगी नहीं। तुम कहोगे, होगी जन्मों-जन्मों के बाद हमें भी होगी, तब शायद समझ में आएगी।

इसलिए सयानों की भी मजबूरी है। वे तुमसे कहते हैं ठीक है, तुम्हें लंबा रास्ता चाहिए, लंबा रास्ता बताते हैं। लंबे रास्ते पर तुम्हें आसानी मालूम पड़ती है। तुम कहते होः यह हम संभाल लेंगे। एक-एक सीढ़ी चलना है। इतनी ही हमारी पैर में सामर्थ्य है, हम धीरे-धीरे चल लेंगे।

ज्ञानी तो यही चाहेंगे कि तुम अभी हो जाओ वहीं। तुम राजी नहीं हो। तो फिर क्या किया जाए? तो थोड़ा चक्कर लगाकर आओ।

प्रेम थोड़ा लंबा मार्ग है; परमात्मा से होकर अपने पर ही लौटता है, जाता कहीं नहीं। अपना ही कान पकड़ना है; हाथ घुमाकर पकड़ना है; सिर के पीछे से पकड़ना है।

ध्यान सीधा है, एकदम सीधा है, इतना सीधा है कि क्षण भर की भी स्थगन की कोई जरूरत नहीं। इसलिए प्रेम...!

और प्रेम के और भी कारण हैं। तुम्हारी तैयारी उसके लिए आसानी से हो सकेगी।

अगर अपनी तरफ देखूं तो लगता है, क्यों व्यर्थ तुम्हारा समय खराब हो; ध्यान! तुम्हारी तरफ देखूं तो सोचता हूं, ध्यान को समझाऊंगा, तो मेरा समय व्यर्थ होगा; प्रेम। ध्यान तुम्हारी पकड़ में न आएगा। ध्यान

आखिर में घटेगा तुम्हें। तब तुम भी हंसोगे कि अच्छा पागलपन हुआ; यह तो बिना चले भी पहुंच जाते। लेकिन बिना चले तुम्हें यह समझ नहीं आती। तुम्हें थोड़ा परदेश में घूमना पड़ेगा, तभी तुम अपने देश को पहचान पाओगे।

जो जगत के बड़े प्रसिद्ध यात्री हुए हैं, उन सबका यह कहना है कि जब तक कोई व्यक्ति दूसरे देशों में नहीं भटकता, तब तक अपने देश का सुख और शांति अनुभव नहीं होती। जब तुम दूसरे देशों में भटक लेते हो और लौट कर थके-मांदे घर आते हो, तब अपना झोपड़ा भी महल जैसा मालूम पड़ता है, रूखी-सूखी रोटी भी बड़ी सुखद मालूम पड़ती है।

वह जो लंबी यात्रा है वह तुम्हें इतना दिखा देती है कि अपने अपने घर से ज्यादा विश्राम कहीं भी नहीं है। पराए महल भी पराए महल हैं। बड़ी राजधानियां भी सिर्फ शोरगुल, उपद्रव हैं। शांति तो अपने घर में है। जहां अपनेपन का चारों तरफ फैलाव है वहीं विश्राम है।

लेकिन यह जानने के लिए भटकना जरूरी है। यह तुम अपने घर में बैठे-बैठे न जान सकोगे। घर में बैठे-बैठे तो बड़ी बेचैनी होती है कि जीवन व्यर्थ जा रहा है, यहीं बैठे हैं, ऊब रहे हैं, परेशान हो रहे हैं। सारी दुनिया मजे कर रही है, लोग जा रहे है; हम ही यहां बैठे हैं—दीन-हीन, इसी घर से बंधे, यही खंभे में जिंदा रहे, इसी में मर जाएंगे!

तब तुम्हें बड़ी बेचैनी लगती है।

भटकना जरूरी है घर पहुंचने के लिए। प्रेम जरूरी है ध्यान तक आने के लिए। और प्रेम की भाषा तुम्हारी समझ में आ जाती है, क्योंकि तुम्हारे संसार की भाषा से थोड़ी शृंखला है।

तुमने पत्नी को प्रेम किया है। न किया होगा बहुत गहरा, फिर भी किया है। न पाई होगी पूरी-पूरी एकात्मता, फिर भी किन्हीं क्षणों में, कभी-कभी, क्षण भर को ही सही, दोनों हृदय एक साथ धड़के हैं, दोनों श्वास एक साथ चली हैं। क्षण भर को आभास ही सही, हुआ हो, एक होने का आभास हुआ है। उसकी भाषा तुम्हें समझ में आती है।

तुमने अपने बच्चे को प्रेम किया है। उसकी आंखों में झांका है। तुमने अपने मित्र को प्रेम किया। कभी किसी जोश के क्षण में तुम अपने मित्र के लिए मरने को भी राजी हो गए हो। मरे नहीं, समझ आ गई, सोच-विचार आ गया, हिसाब लगा लिया! बाकी कभी किसी क्षण में, जोश और उत्साह में, तुमने मरने की भी हिम्मत, कम से कम कल्पना तो की है। उससे तुम्हें थोड़ा प्रेम की भाषा समझ में आ जाती है।

कबीर, नानक, फरीद, मीरा, चैतन्य तुम्हारे पास खड़े मालूम पड़ते हैं। बुद्ध और तुम्हारे बीच अनंत आकाश का फासला लगता है। वे किसी और लोक की भाषा बोल रहे हैं, जिसका अनुवाद भी मुश्किल है, जो तुम तक आते-आते, आते-आते विकृत ही हो तुम जब तक समझो, समझो तब तक बात ही बिगड़ जाती है। जो बुद्ध कहते हैं, वह सुनने में नहीं आता; जो तुम सुनते हो, वह बुद्ध ने कहा नहीं है।

प्रेम संसार को स्वीकार करके, संसार की भाषा को स्वीकार करके धीरे-धीरे परिशुद्धि की तरफ ले जाता है। सीढ़ी-सीढ़ी वह यात्रा है। ध्यान छलांग है—आकस्मिक; एक क्षण में क्षणातीत।

सयाने तुम्हारी तरफ देखते हैं तो कहते हैं—प्रेम; अपनी तरफ देखते है तो कहते हैं—ध्यान। अगर तुम सयानों की मानो तो ध्यान; अगर तुम न मान सको तो समझौता है—प्रेम। और कुछ जल्दी भी ऐसी नहीं है कि अभी हो ही जाए; कल भी हुआ तो क्या हर्ज है! इस अनंत काल में दिन दो दिन की देरी-अबेर का कोई अंतर नहीं।

छठवां प्रश्नः आपको इतना सुनने के बावजूद नकली प्रेम का गोरखधंधा ठप्प क्यों नहीं होता है?

अभी सुना नहीं। अभी सुनने की सिर्फ शुरुआत है। कानों ने सुना होगा, तुमने नहीं सुना। कान के सुन लेने से क्या होगा? कान की कोई समस्या थोड़े है। कान की समस्या होती, हल हो जाती। समस्या हृदय की है; हृदय सुनेगा तभी हल होगी।

इतना सुनने का तो सवाल ही नहीं है। एक शब्द भी तुमने सुन लिया होता, एक इशारा भी सुन लिया होता, तो भी बात हो गई होती! क्योंकि मैं वही कह रहा हूं बहुत-बहुत रूपों में। मैं कोई वीणा नहीं बजा रहा हूं; एकतारा है; एक ही तार है, उसी को छेड़े चला जा रहा हूं। थोड़े ढंग बदलता हूं कि तुम ऊब न जाओ, कहीं तुम्हारा रस ही न खो जाए। अन्यथा मुझे जो बजाना है, जो गाना है, वह तो एक ही बात है। ध्यान यानी ध्यान। प्रेम यानी प्रेम। बहुत रूपों से उसकी प्रतिमा तुम्हारे लिए सजाता हूं कि किसी दिन शायद तुम सुन लोगे, किसी दिन जागोगे और देख लोगे; किसी सौभाग्य के क्षण में मेरा और तुम्हारा शायद मिलन हो जाए।

पर ऐसा मत सोचो कि आपको इतना सुनने के बावजूद...। अभी सुना ही नहीं है क्योंकि सुनते ही घटना हो जाएगी।

यह तो ऐसा ही हुआ कि तुम कहो, आग में इतना हाथ डालने के बावजूद मैं जलती क्यों नहीं, जलता क्यों नहीं। तो डाला ही न होगा हाथ। हाथ डाल दो तो फिर जलोगे नहीं? जलोगे ही। कोई उपाय नहीं है बचने का। हाथ न डाला होगा। दूर ही दूर हाथ को रखा होगा। या सपने में किसी आग में हाथ डाला होगा कि सुबह जागकर पाया जाता है कि नहीं, हाथ जला नहीं। या तो आग झूठी रही होगी या हाथ डाला ही न होगा।

ये ही दो संभावनाएं हैं। या तो मैं जो कहता हूं, वह आग ही न होगी, तो तुम्हारा हाथ नहीं जलता। या फिर तुमने हाथ ही न डाला होगा। और मैं तुमसे कहता हूं, आग झूठी नहीं हो सकती, क्योंकि उसमें मैं जल गया। कोई कारण नहीं है कि तुम क्यों न जल जाओ।

तुम दूर-दूर से, खेल में लगे हो। सुनते तुम हो; सुनते कहां हां? सुनते मालूम पड़ते हो; सुनते कहां हो? सुनते हो, ऐसा मान लेते हो; सुनते कहां हो?

सातवां प्रश्नः दर्शन के लिए जाते हुए तैंतीस नंबर के फाटक पर से ही मुझे कंपकंपी होने लगती है, जब कि कुछ और मित्र डट कर जाते हैं, और बातचीत करते हैं। सिर्फ मुझे ही ऐसा भय क्यों होता है?

वे जो डटकर बातचीत करते हैं, वे भी भयभीत हैं।

भय के दो रूप हैं। या तो कंपकंपी लगती है या आदमी डटकर खड़ा हो जाता है। वे दोनों ही भय के रूप हैं।

कायरता और बहादुरी भय के दो सिक्के हैं; उनमें कोई फर्क नहीं है बड़ा। बहादुर से बहादुर भी कायर होता है और कायर से कायर भी भीतर बहादुर होता है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

सामान्य, स्वाभाविक जो बात है, और न डटकर तुम खड़े होते हो। डटकर किसके खिलाफ खड़े होना है? डटकर अपनी ही कंपकंपी के खिलाफ खड़े हो रहे हो। भय क्या है? डटना दर्पण तुम्हारी असलियत तुम्हें दिखाएगा। इसमें तुम भयभीत हो।

यह एक ढंग है।

दूसरे हैं जो अकड़कर आ जाते हैं दर्पण के सामने, खड़े हो जाते हैं कि अकड़े रहेंगे, जरा भी शिथिल न होंगे, दर्पण को मौका ही न देंगे कि वह असलियत बता दे। हमारा अकड़ापन ही दर्पण में झलकेगा; हमारी असलियत न दिखाई पड़ेगी।

दोनों तरह के लोगों को मैं जानता हूं। कुछ हैं जो आकर बहुत बातचीत करने लगते हैं, वे इतनी बातचीत करने लगते हद कि मैं देखता हूं, बातचीत कर-करके वे मुझे टाल रहे हैं। वे मुझे सुनने को नहीं आए हैं। वे घबड़ाए हैं कि वे अगर चुप हुए और मैं कुछ बोला तो मुसीबत होगी। तो वे कहे ही चले जाते हैं। वे मेरी तरफ

देखते तक नहीं। वे नीचे देखते हैं। वे कहे चले जाते हैं। न मालूम, जरूरी, गैरजरूरी बातें बड़ी लंबी करके कहते हैं, जिनका कोई सार नहीं है, जिनको मेरे पास लाने का कोई प्रयोजन नहीं है। वे अपने चारों तरफ एक सुरक्षा का उपाय करते हैं शब्दों को खड़ा करके, कि मेरा कोई शब्द उनके भीतर प्रविष्ट न हो जाए। वे तुम्हें लगेंगे कि बिलकुल डटकर बात कर रहे हैं।

दूसरे हैं तो कंपते हैं। वे बोल ही नहीं पाते। उनसे मैं पूछता हूं: कैसे आए, क्या कहना है, क्या है मन की पीड़ा? वे कहते हैं, कुछ भी कहना नहीं है। वे भी कंप रहे हैं। दोनों ही डरे हुए हैं। एक तीसरा सामान्य, सरल, स्वाभाविक व्यक्तित्व है, संतुलित—तो कहना है कह देता है; जो सुनना है सुन लेता है; जो देखना है देख लेता है; जो सच्चाई है उसे पकड़ने की कोशिश करते हैं।

न, तुमसे मैं नहीं कहता कि तुम डटकर आने लगो। अगर कंपकंपी आती है, वह भी गलत है। डटकर आए वह भी गलत। डटकर आने का मतलब है कि कंपकंपी न आने देंगे, अकड़े रहेंगे। दोनों ही गलत हैं।

संतुलन चाहिए।

मुझसे भय क्या है? मैं तुमसे छीन क्या लूंगा? तुम्हारे पास है क्या जिसे मैं छीन लूंगा। तुम मेरे पास से कुछ लेकर ही जा सकते हो; देने को तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। तुमसे मैं छीन क्यों लूंगा? ज्यादा से ज्यादा तुम्हारा भिखमंगापन छीन सकता हूं। तुमसे मैं छुड़ा क्या लूंगा? तुम्हारे पास काश कुछ होता! कुछ भी नहीं है।

तुम्हारी दशा वैसी है जैसे भिखारी रात भर जागकर बैठा रहता है कि कोई चोरी न कर ले। कुछ है ही नहीं; एक भिक्षापात्र है।

या मैंने सुना है—तुमने भी कहावत सुनी होगी—कि नंगा नहाता नहीं है, क्योंकि डरता है, फिर निचोड़ेगा कहां? कपड़े कहां सुखाएगा? कपड़े हैं ही नहीं। स्नान नहीं करता।

तुम्हारे पास है क्या? तुम भयभीत क्यों हो? तुम अगर गौर से देखो कि तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है, सारा भय चला गया। भय तो खोने का भय है। लेकिन तुमने कुछ मान रखा है कि तुम कुछ हो, इसलिए भय है। उस मान्यता को गौर से देखो। क्या हो तुम? तुम्हारे देखने में ही तुम्हारी मान्यता तिरोभूत हो जाएगी। तब तुम सहज भाव से मेरे पास आ सकोगे।

न तो डटकर आओ। क्योंकि डटकर तुम क्या करोगे? क्या फायदा है? अगर तुम भयभीत हो रहे हो तो अपनी सुरक्षा में लगे हो। वह भी तुमने व्यर्थ गंवाया।

थोड़ी देर मैं तुम्हारे साथ हूं, उसका तुम उपयोग कर लो। पीछे पछतावा बहुत होगा। पर पीछे पछताने से कुछ भी नहीं होता। पाछे पछताए होत का, जब चिड़ीया चुग गई खेत!

मैं सदा तुम्हारे पास नहीं रहूंगा; तुम सदा तुम्हारे पास रहोगे। फिर पीछे घबड़ा लेना, डट लेना, अकड़ लेना, कंपकंपी कर लेना, जो करना हो कर लेना। थोड़ी देर मैं तुम्हारे पास हूं, उसका उपयोग कर लो। यह दर्पण फूट जाएगा; फिर तुम अपना चेहरा इसमें न देख सकोगे। हालांकि मैं जानता हूं, फिर तुम फूटे दर्पण की चौखट को रखे पूजा करोगे। उसमें कुछ भी दिखाई न पड़ेगा। लेकिन तब तुम बिलकुल निश्चिंत आओगे।

मैंने देखा है लोगों को मंदिर में जिस निश्चिंत भाव से जाते हैं, उस निश्चिंत भाव से उनको बुद्ध के पास जाते नहीं देखा है। मंदिर की प्रतिमा से डर क्या है? न कंपकंपी लगती, न डटकर जाते। मंदिर की प्रतिमा है ही नहीं; चौखट बची है, दर्पण तो कभी का जा चुका।

इसके पहले कि वैसी घड़ी आए, उपयोग कर लो। अपने को देखने का मौका मिला है, उसे खोओ मत—न घबड़ाने में न अकड़ने में। सरल सामान्य बनो। सहज बनो।

आठवां प्रश्न। आपने पूर्व में कहा है, जीवन प्रयोजन-रहित है। फिर खाली हाथ जाए या भरे हाथ, इससे क्या फर्क पड़ता है।

यही समझ में आ जाए तो हाथ भर गए। यही समझ में आ जाए कि खाली हाथ जाएं कि भरे हाथ, कोई फर्क नहीं पड़ता—हाथ भर गए। इसको ही मैं हाथ भरना कहता हूं। यही समझ में न आए और चेष्टा चलती रहे कि हाथ भरे जाऊंगा: तुम हाथ खाली जाओगे। सफलता और असफलता समान दिखाई पड़ने लगे: तुम सफल हो गए; सफल ही नहीं, सुफल भी हो गए। जीत और हार बराबर हो जाए: जीत गए तुम। अब तुम्हें कोई न हरा सकेगा। यही जीत है।

प्रयोजन, निष्प्रयोजन तराजू पर समान तुल जाएं: तुमने जीवन का अर्थ पा लिया, प्रयोजन पा लिया। कुछ और ज्यादा पाने को नहीं है। लेकिन इससे ज्यादा और पाने को हो भी क्या सकता है? इस घड़ी में ही तो तुम्हारे जीवन का कमल खिल जाता है—जब न कोई प्रयोजन है, न कोई प्रयोजन नहीं है, न कोई सार है, न कुछ असार है। जीवन को तुमने बिना द्वंद्व के स्वीकार कर लिया। हार न जीत, सफलता न असफलता, अंधेरा न प्रकाश, जीवन न मृत्यु—तुमने द्वंद्व छोड़ दिया; जीवन को तुमने जैसा स्वीकार कर लिया, अनन्य भाव से! वहीं तुम्हारे जीवन का कमल खिल जाता है। हाथ तुम्हारे भर गए। दुनिया तुम्हारे हाथ भला खाली देखे, दुनिया से क्या लेना-देना है? तुम जानोगे कि तुम्हारे हाथ भरे हैं। तुम नाचते जाओगे। तुम रोते न जाओगे। तुम्हारे आंसू भी गिरेंगे, तो उन आंसुओं में गीत होंगे। आनंद का अहोभाव होगा। तुम मरोगे भी, तो तुम एक सुगंध छोड़ जाओगे; जैसा फूल गिर जाता है भूमि में और सुगंध आकाश में उड़ जाती है। तुम्हारी मृत्यु भी एक परम उत्सव का क्षण होगी। हाथ भर गए!

यही मेरा अर्थ है।

आखिरी प्रश्न: क्या बताने की कृपा करेंगे कि:

एक: राजनीति के आप इतने विपक्ष में क्यों हैं?

जहर के मैं विपक्ष में क्यों हूं—ऐसा क्यों नहीं पूछते?

राजनीति जहर है। उससे जीवन का कोई लेना-देना नहीं। वह मरघट है। राजनीति का अर्थ क्या है?

राजनीति का अर्थ दूसरे पर काबू पाने की चेष्टा। राजनीति का अर्थ है दूसरे के मालिक हो जाने का ख्वाब। और जब भी कोई व्यक्ति दूसरे का मालिक होना चाहता है, तभी वह परमात्मा-विरोधी है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर परमात्मा है। उतना ही परमात्मा है जितना तुम्हारे भीतर। तुम हो कौन किसी और के मालिक हो जाने वाले? तुम अपने मालिक हो जाओ—इतना काफी है।

राजनीति का अर्थ है दूसरे पर मालकियत। धर्म का अर्थ है अपने पर मालकियत। मैं राजनीति के विपक्ष में नहीं हूं; धर्म के पक्ष में हूं। धर्म के पक्ष में होने के कारण अनिवार्यतः राजनीति का विपक्ष पैदा हो जाता है। उससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। राजनीति इतना व्यर्थ है कि विपक्ष में होने तक की मुझे सुविधा नहीं है। कंकड़-पत्थरों के खिलाफ बोलना पड़ता है तो इसलिए कि तुमने कंकड़-पत्थरों को हीरे-जवाहरातों के पक्ष में बोलता हूं। और अगर कभी कंकड़-पत्थरों के खिलाफ बोलना पड़ता है तो इसलिए कि तुमने कंकड़-पत्थरों को हीरे समझ रखा है।

जब मैं राजनीति के विरोध में बोलता हूं, तो राजनीतिज्ञों के विरोध में नहीं बोल रहा हूं। वे दया के पात्र हैं। उनके विरोध में क्या बोलना? वे वैसे ही दुख के मारे हैं। उनके खिलाफ क्या बोलना है?

जब मैं राजनीतिज्ञों के विरोध में बोलता हूं तो मैं तुम्हारे भीतर छिपे राजनीतिज्ञ के खिलाफ बोल रहा हूं। मुझे तुमसे प्रयोजन है।

हर व्यक्ति के भीतर राजनीतिज्ञ छिपा है—छोटा हो, बड़ा हो। सिकंदर छोटे हों, बड़े हों, इससे क्या फर्क पड़ता है। जहर तुम बालटी भर कर पी जाओ कि चुल्लू भर पीयो—इससे क्या फर्क पड़ता है? जहर मारेगा।

तुमने कभी खयाल किया? तुम पति हो: पत्नी से तुम्हारा संबंध धर्म का है या राजनीति का? तुम पाओगे कि सौ में निन्यानबे मौके पर संबंध राजनीति का है, धर्म का नहीं। तुम कहोगे के पति और पत्नी के बीच क्या राजनीति का सवाल? है। तुम्हारे बच्चे से तुम्हारा संबंध धर्म का है या राजनीति का? तुम बाप की तरफ इस तरह देखते हो कि अकड़ से बोलते हो या परमात्मा की सृजन की प्रक्रिया में एक विनम्र भागीदार हुए, इस तरह बोलते हो बेटे से? तुम बेटे की तरफ इस तरह देखते हो कि परमात्मा तुम्हारे माध्यम से संसार में आया, या तुम इस भांति देखते हो कि तुझे मैंने पैदा किया है—जो मैं कहूं वह कर; मैं जानता हूं तू अज्ञानी है! तुम बेटे को नियंत्रित करने की कोशिश करते हो या सहारा देते हो? तुम बेटे को सदा के लिए बांध लेना चाहते हो, पंगु बनाना चाहते हो, या चाहते हो, उसे मुक्त आकाश मिले?

—चाहे वह मुक्त आकाश कभी तुम्हारे विपरीत ही क्यों न पड़े।

तुम पत्नी को प्रेम किए हो या प्रेम केवल फांसी लगाने का उपाय है? या प्रेम केवल बहाना है, राजनीतिक चाल है?

जब मैं राजनीतिज्ञ के खिलाफ बोलता हूं तो दिल्ली में बैठे राजनीतिज्ञों से मुझे क्या लेना-देना है? मैं तुम्हारे भीतर बैठे राजनीतिज्ञ के खिलाफ बोल रहा हूं। उतना ही तुम ध्यान से समझना। और वह भी इसलिए बोल रहा हूं उसके खिलाफ कि अगर तुम उसमें उलझे रहे हो तो कभी धार्मिक न हो सकोगे।

धर्म का अर्थ है अपना मालिक होना। धर्म का अर्थ है न तो किसी को अपना मालिक होने देना और न किसी के मालिक होने की चेष्टा करना। धर्म परम स्वतंत्रता की चेष्टा है। और राजनीति?—दूसरे को परतंत्र करने का उपाय है। जितने ज्यादा लोग तुम्हारे परतंत्र हो जाएं, राजनीतिक मन उतना ज्यादा प्रसन्न होता है। अगर तुम महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री हो तो महाराष्ट्र के ऊपर तुम्हारा कब्जा है। अगर तुम भारत के प्रधानमंत्री हो जाओ तो कब्जा और बड़ा हो गया।

आदमी कब्जे की कोशिश में लगा है: कब्जा बढ़ता जाए। करोड़ों-करोड़ों लोग मुट्ठी में हो जाएं! यह बहुत पीड़ित आदमी की मनोदशा है। यह विक्षिप्त चित्त की दशा है। इसको मैं पागलपन कहता हूं।

तुम अपनी ही मुट्ठी में नहीं हो, तुम किसको मुट्ठी में करने चले हो? सच तो यह है कि तुम जितना ही अपने को कम मुट्ठी में पाते हो उतनी ही कमी-पूर्ति करते हो दूसरे लोगों को मुट्ठी में करके। इससे एक वहम पैदा होता है कि हम शक्तिशाली हैं।

एक ही शक्ति है, और वह स्वयं के मालिक हो जाने की है; बाकी सब अशक्ति को छिपाने के उपाय हैं।

एक ही शक्ति है, और वह स्वयं के मालिक हो जाने की है; विपक्ष में राजनीति के नहीं हूं; धर्म के पक्ष में हूं।

दूसरा: क्या आप अराजकवादी हैं, अनारकिस्ट हैं?

वादी मैं बिलकुल नहीं हूं। किसी वाद में मेरी उत्सुकता नहीं है, अराजक में भी नहीं।

लेकिन, इतना जरूर मैं जानता हूं कि दुनिया में राज्य जितना कम हो उतना अच्छा होगा। राज्य बिलकुल मिट जाएगा—ऐसा मैं नहीं सोचता। बिलकुल मिटना असंभव है। क्योंकि जहां एक से ज्यादा लोग हैं, वहां उनके संबंधों को तय करने के लिए कोई माध्यम चाहिए होगा, व्यवस्था चाहिए होगी।

तो मैं कोई क्रोपाटकिन जैसा अराजकवादी नहीं हूं। मेरी कोई मान्यता नहीं है कि राज्य मिट जाना चाहिए। मेरी इतनी ही दृष्टि है कि राज्य कम से कम होना चाहिए। राज्य ऐसे होने चाहिए जैसे पोस्ट आफिस है, रेलवे है। जरूरत है, रेलवे की व्यवस्था करनी पड़ेगी। अगर रेलवे की कोई व्यवस्था न हो तो असंभव है कि बंबई से पूना ट्रेन कैसे आएगी, कि चिट्ठी तुमने जो डाली पोस्ट आफिस में, वह पहुंचेगी कहीं कि नहीं पहुंचेगी। व्यवस्था करनी चाहिए।

राज व्यवस्थापक होना चाहिए, नियंत्रक नहीं। राज्य का उपाय-उपयोगिता व्यवस्था-आधारित होनी चाहिए। लोगों के जीवन में कितनी सुविधा आ सके, उसके लिए राज्य को फिक्र करनी चाहिए। और राज्य को बाधा नहीं देनी चाहिए लोगों के जीवन में। बाधा तभी देनी चाहिए जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे के जीवन में बाधा दे रहा हो, अन्यथा नहीं।

मेरी राज्य की धारणा का अर्थ ही यह है कि राज्य बड़ा गौण होना चाहिए। जैसे कि तुम्हारे घर में रसोइया है, तो रसोइये की तुम पूजा करते हो कि फूलमाला पहनाते हो? अच्छा खाना बनाता है तो तुम उसकी प्रशंसा करते हो; बुरा खाना बनाता है तो तुम कहते हो यह गलत है तेरा काम, ठीक सुधार कर। तुम्हारे खाद्यमंत्री की हैसियत भी राष्ट्र के रसोइए से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। इससे ज्यादा क्या प्रयोजन है? बड़े रसोइया हो...।

तुमने घर पर एक पहरेदार लगा रखा है, तो उसका काम है, वह उसका काम है, वह उतना काम करता है। राज्य की व्यवस्था पहरेदारी की होनी चाहिए। लेकिन राजनेताओं को सिर पर उठा कर चलने का कोई कारण नहीं है। पागलपन है।

राजनीति इतनी प्रमुख नहीं होनी चाहिए। जीवन में बड़ी बहुमूल्य चीजें हैं जो प्रमुख होनी चाहिए। राजनेता को सिर पर ले कर तुम चलोगे, उससे राजनेता तो ऊंचा नहीं होता, तुम नीचे होओगे। राजनेता के तो ऊंचे होने का कोई उपाय नहीं है। वह तो खुद पागल है। और जो उसकी अरथी को ढो रहे हैं, वे भी पागल हैं। लेकिन तुम ऊंचे हो जाओगे। वे चरण तुम्हारे लिए पारस सिद्ध होंगे; तुम लोहे से सोना हो जाओगे।

तुमने अगर संगीत को ऊपर उठाया तो तुम्हारे हृदय में ऊंचाइयों की लहरें उठेंगी। तुमने अगर राजनीति को ऊपर उठाया तो तुम गंदे हो जाओगे। तुमने अगर गीतकार को ऊपर उठाया, संगीतज्ञ को ऊपर उठाया, कवि को ऊपर उठाया, चित्रकार को पूजा—तो तुम्हारे जीवन में सुगंध के हजार-हजार रास्ते खुल जाएंगे; तुम्हारे जीवन में एक सजावट आ जाएगी। तुमने अगर राजनेता को ऊपर उठाया तो सिवाय युद्ध, हिंसा, इसके अतिरिक्त तुम कुछ भी न पाओगे।

पूरी मनुष्य-जाति का इतिहास हिंसा और युद्धों का इतिहास है। वह राजनेता को सिर पर लेकर चलने के कारण है। मैं अराजकवादी नहीं हूं। लेकिन राज्य जरूरत से ज्यादा अधिकारी हो गया है; उतने अधिकार की आवश्यकता नहीं है। व्यक्ति परम मूल्य है। राज्य व्यक्ति का सेवक है, मालिक नहीं। बस सेवक की हैसियत से काम करे, ठीक है। उससे ज्यादा उसका मूल्य नहीं होना चाहिए।

अखबार राजनीति से ही नहीं भरे होने चाहिए। आखिरी पन्ने पर उनकी जगह होनी चाहिए। मगर वे पहले पन्ने को घेरे हुए हैं। सारी सुर्खियां अखबार की राजनीतिज्ञों के नाम से घिरी हैं। इससे अगर जीवन विकृत हो, विध्वंस की तरफ उन्मुख हो, तो स्वाभाविक है।

अखबार की सुर्खियां तो किन्हीं और सुंदर चीजों से भरनी चाहिए। थोड़ा सौंदर्य का बोध होना चाहिए। राजनीतिक नेताओं के चित्रों की बजाय तो किसी के बगीचे में गुलाब के अच्छे फूल खिले हों, उनके चित्र भी ज्यादा उपयोगी होंगे। किसी के बगीचे में हरियाली हो, उसके चित्र ज्यादा उपयोगी होंगे। किसी ने मधुर गीत गाया हो, उसके मधुर गीत की मधुरिमा काम की होगी।

राजनीतिज्ञों कि बकवास, एक-दूसरे के प्रति गाली-गलौज, छीछालेदर, कीचड़ का फेंकना—वही तुम्हारा भोजन हो गया है। सुबह उठ कर तुम गीता नहीं पढ़ते, कुरान नहीं पढ़ते; अखबार पढ़ते हो। अभागे दिन हैं। इससे तो अच्छा था, तुम कुरान ही पढ़ते, गीता ही पढ़ते। कम से कम कुरान की आयत की तरन्नुम तुम्हें घेर लेता। कम से कम गीता का शायद कोई दूर का भूला-भटका स्वर तुम्हारे हृदय में घोंसला बना लेता।

तुम सुबह उठे नहीं कि तुम अखबार पढ़ते हो। आंख खोलते नहीं कि अखबार टटोलते हो। अखबार तुम्हारी गीता है। राजनैतिक विक्षिप्त व्यक्ति तुम्हारे प्रतिमान हैं, तुम्हारे आदर्श हैं।

मैं अराजकवादी नहीं हूं। लेकिन राज्य की शक्ति क्रमशः न्यून होती जाए...।

इसे तो एक स्वप्न ही मानना चाहिए कि कभी ऐसा होगा कि राज्य की बिलकुल जरूरत न रह जाएगी। मुश्किल है। थोड़ी-बहुत जरूरत रहेगी। थोड़ी-बहुत तो जहर की भी जरूरत होती है, कभी-कभी औषधि के भी काम पड़ता है। थोड़ी-बहुत तो जहर की भी जरूरत होती है; कभी-कभी किसी को बेहोश भी करना पड़ता है—सर्जरी के लिए, आपरेशन के लिए। उतनी ही जरूरत राज्य की होनी चाहिए जितनी जहर की है। बस उससे ज्यादा जरूरत नहीं होनी चाहिए।

और राज्य का मुख्य काम इतना ही होना चाहिए कि वह एक व्यक्ति को तो रोकता ही नहीं दूसरे के जीवन में दखल देने से, खुद ही दोनों के जीवन में दखल देता है।

व्यक्ति की स्वतंत्रता चरम मूल्य है। राज्य, राजनीति, राजनेता सेवक से ज्यादा नहीं होने चाहिए। कहते तो वे भी यही हैं कि हम सेवक हैं मगर यह वे कहते हैं जब वे इलेक्शन में खड़े होते हैं। इलेक्शन के बाद फिर तुम्हें कहना पड़ता हैं; याद रखना, सेवक को भूल मत जाना। यही उन्होंने तुमसे कहा था, जब वे ताकत में न थे।

तो, सेवा जैसे माध्यम है सत्ता में पहुंचने का। जैसे कोई किसी के पैर दबाना शुरू करे और धीरे-धीरे पहुंच कर गर्दन पकड़ ले; शुरू मालिश से की थी कि पैर दबा रहे हैं—फिर जब गर्दन पकड़ ली, तब तुम्हें होश आया कि यह तो बहुत मुश्किल हो गई है, छुड़ाना मुश्किल है। जब कोई पैर पकड़े तभी जरा गौर से देखना कि हाथ गर्दन की तरफ तो नहीं जा रहे हैं।

लेकिन सभी सत्ताधारी सेवा का बहाना करते हैं, सत्ता की आकांक्षा है।

सत्ता उनके हाथ में होनी चाहिए जिनको सत्ता की आकांक्षा न हो। पर यह तो असंभव है। इसलिए यही हो सकता है कि सत्ता न्यून हाथ में रह जाए; इतनी कम रह जाए कि कोई नुकसान न पहुंचा सके।

राज्य कम से कम हो—वही राज्य श्रेष्ठतम है।

तीसरा: समाज और राज्य से आपने स्वयं को इतना अलग-थलग क्यों कर लिया है?

कर लिया है—ऐसा नहीं है। तुम भी जागोगे तो ऐसे ही अलग-थलग हो जाओगे। कर लिया है—ऐसा नहीं है; ऐसा हो गया है।

ऐसा ही समझो कि तुम सोए हो और जाग जाओगे—तब क्या मैं तुमसे पूछूंगा कि तुमने अपने सपनों के राज्य से, सपनों की भीड़ से इतना अलग-थलग क्यों कर लिया? तुम कहोगे, अलग-थलग किया नहीं; नींद खुल गई, सपने खो गए!

जागते ही समाज और राज्य सपने हो जाते हैं; सत्य तो एक परमात्मा ही रह जाता है। बाकी सब खेल-खिलौने हो जाते हैं। कोई अलग नहीं करता, अपने को अलग पाता है।

चौथा: संन्यास और राजनीति का क्या संबंध है?

संबंध हो ही नहीं सकता। जिसके भीतर से राजनीति मर गई, उसी के भीतर तो संन्यास फलता है। संबंध तो हो ही नहीं सकता। राजनीति की राख पर ही तो संन्यास का अंकुर उभरता है। तो संन्यास का तो अर्थ ही यही होता है कि तुम्हारे भीतर अब कोई राजनीति न रही।

आप अपने संन्यासियों से क्या अपेक्षा रखते हैं?

मैं कोई अपेक्षा किसी से नहीं रखता, और न चाहता हूं कि कोई मुझसे कोई अपेक्षा रखे; क्योंकि अपेक्षा एक-दूसरे को गुलाम करने की विधि है, ढंग है।

नहीं, मेरी तुमसे कोई अपेक्षा नहीं है। मैं नहीं चाहता कि तुम ऐसा करो, वैसा करो। मैं, तुम क्या करो, यह तो कह नहीं रहा हूं। मैं तो तुम्हें इतने ही इशारे दे रहा हूं कि अगर तुम सोए तो राजनीति में रहोगे, अगर जाग

गए तो धर्म में आ जाओगे। अगर जाग गए तो तुम्हारे भीतर से दूसरे की मालकियत का जो पागलपन है, वह खो जाएगा, और अपनी ही मालकियत का आनंद उसकी जगह स्थापित हो जाएगा। तब तुम दूसरे कि सिर पर न बैठना चाहोगे; क्योंकि तुम पाओगे, तुम्हारे भीतर का सिंहासन परम सिंहासन है, परम पद है—इसके ऊपर कोई पद नहीं, न कोई राष्ट्रपति, न कोई प्रधानमंत्री।

मेरी तुमसे कोई अपेक्षा नहीं है, सिर्फ निर्देश हैं कि अगर तुम्हारे मन में अभी भी राजनीति हो तो ध्यान रखना कि तुम संन्यासी नहीं हो। यह सीधी वैज्ञानिक परिभाषा कर रहा हूं। तुमसे की नहीं रहा हूं कि राजनीति से संबंध मत रखो; इतना ही कह रहा हूं कि राजनीति जहर है—अगर मरना ही हो, आत्महत्या ही करनी हो, डटकर पी लो, भर पेट पी लो। इतना ही कह रहा हूं कि यह जहर है—मरना हो तो ही पीना; अगर न मरना हो तो इससे जरा सावधान रहना। हालांकि जहर के दुकानदारों ने जहर पर अमृत के लेबल लगा रखे हैं। लेबल पर मत जाना। डब्बे के ऊपर क्या लिखा है—इसकी बहुत फिक्र मत करना; डब्बे के भीतर क्या है—इसका बहुत निरीक्षण कर लेना।

आपके संन्यासी राजनीतिक आंदोलनों में सम्मिलित हों या न हों?

अगर उनके भीतर अभी राजनीतिक आंदोलनों में सम्मिलित होने की आकांक्षा बची है, तो वे संन्यासी नहीं हैं; कम से कम मेरे संन्यासी तो नहीं हैं, किसी और के होंगे।

पांचवांः क्या संन्यास एक प्रकार का पलायन नहीं है?

एक अर्थ में कह सकते हो, है। जैसे घर में आग लग जाए और तुम भागकर बाहर आ जाओ—भीड़ कह सकती हैः तुम पलायनवादी हो, एस्केपिस्ट हो, घर से भागकर बाहर निकले? जब घर में आग न लगी थी तब तो बड़े मजे से रहे; अब जब आग लगी, मुसीबत का क्षण आया घर को तो तुम बाहर निकल कर आ गए? जाओ अंदर! कायर हो!

तो तुम क्या कहोगे? तुम कहोगेः पागल नहीं हूं। जब घर में लगी हो तो भागना ही उपाय है।

कोई गड्ढे में गिर जाए और निकलने की कोशिश करे, क्या तुम उससे कहोगे, पलायनवादी हो, गड्ढे से भागने की कोशिश कर रहे हो? रहो वहीं! हिम्मतवर हो, डटे रहो! कहां जीना है?

संसार गड्ढा है, बीमारी है। संसार आग-लगा घर है। जिनको थोड़ा बोध है वे बाहर निकलेंगे। वे असल में घर छोड़ कर नहीं भाग रहे हैं। घर रहने योग्य ही न था। अब तक कैसे रहे—यही सवाल है। अब तक क्यों दिखाई पड़ी ये लपटें जब दिखाई पड़ गइ, तभी सवेरा है। इसलिए बाहर आ रहे हैं।

एक अर्थ में तुम कह सकते हो, संन्यास पलायन है। एक अर्थ में तुम कह सकते हो, संन्यास जागरण है। मैं तो उसे जागरण ही कहता हूं। घर में आग लगी हो तो वही आदमी घर के भीतर रह सकता है जो साया हो या शराब पीकर खड़ा हो। जागा हुआ आदमी तो बाहर आ जाएगा। न केवल जागा हुआ आदमी खुद बाहर आएगा, सोए को जगाने की कोशिश करेगा कि भाई, जागो! शराबी के मुंह पे पानी छिड़केगा, घसीटेगा कि निकल आओ तुम भी। हालांकि शराबी कहेगाः क्या ऊधम मचा रखा है? शांति से सोने दो। क्या सुबह-सुबह जगा रहे हो? कहां आग लगी है? कहीं कोई आग नहीं लगी है। कोई सपना देखा होगा।

फिर भी जो जागा है उसके जागरण के कारण ही, उस पर एक उत्तरदाईत्व आ गया—वह उत्तरदाईत्व है कि जो सोए हैं आसपास, उनको भी हिला के जगा दे। इसलिए बुद्धपुरुष इतनी चेष्टा करते हैं कि तुम जागो; क्योंकि तुम जहां हो वहां लपेटें हैं आसपास, लेकिन तुम कहते हो, यह तो पलायन है। और तुम्हारी भीड़ ज्यादा है। जागता एक है; हजार सोए हैं घर में। वे हजार अपनी निंदा में ही बडबड़ाते हैं। वे कहते हैं कि हम ही ठीक हैं; हमारी भीड़ जो कह रही है वह ठीक है, कि एक आदमी जो कह रहा है वह ठीक है? यह तो डिक्टेटरशिप हो

गई, तानाशाही हो गई। एक आदमी कह रहा है, घर में आग लगी है और हजार आदमी कह रहे हैं, मत दे रहे हैं कि नहीं लगी, हम सोए हैं मजे से, गड़बड़ मत करो; और वह गड़बड़ किए चला जा रहा है। लेकिन संत की अपनी मजबूरी है। तुम चाहे हजार हो, चाहे लाख हो—इससे सही नहीं होते। जाग कर देखा गया जो है वही सत्य है। यह कोई लोकतंत्र नहीं है सत्य का कि वहां वोट से तय होता है, कौन सत्य है। हाथ और सिर नहीं गिनने हैं; यहां आत्माएं गिनी जाती हैं; यहां भीतर का बोध गिना जाता है। एक भी सत्य हो सकता है; करोड़ गलत हो सकते हैं। सवाल करोड़ का और एक का नहीं है—सवाल जागे होने का है।

और छठवांः आप क्रांति के अगुआ बनें, ऐसी हजारों ही आकांक्षा थी, लेकिन आपने क्यों उनकी आकांक्षाओं को ठुकरा दिया?

जैसे मैंने कहा, न तो मैं यहां किसी की आकांक्षाएं पूरा करने को हूं, न कोई और मेरी आकांक्षाएं पूरा करने को है। मैं स्वयं होने को हूं यहां; तुम स्वयं होने को हो यहां। दूसरे पर आकांक्षाएं थोपना उचित नहीं है।

अगर हजारों की आकांक्षाएं थीं कि मैं क्रांति का अगुआ बनूं, तो वे सोए हुए लोगों की आकांक्षाएं थीं। उनकी आकांक्षाओं का कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि क्रांति यानि क्या?

घर में आग लगी है, तुम फर्नीचर बदल रहे हो, टेबल यहां से हटाकर कुर्सी लगा रहे हो, बिस्तर की जगह बदल रहे हो, रंग-रोगन पोत रहे हो, चित्र-फोटो लटका रहे हो! घर में आग लगी है, तुम क्रांति कर रहे हो!

सारी क्रांति फर्नीचर की बदलाहट है।

क्रांति मात्र, आज तक जिसको लोगों ने कहा है, वह कोई क्रांति नहीं है।

क्रांति तो सिर्फ एक है—वह है इस जीवन में लगी आग को देख लेना और किसी नए जीवन में उठ जाना; इस घर को छोड़ देना, और किसी नए घर को बना लेना। बाकी सब क्रांतियां तो इसी घर के भीतर बदलाहट हैं। इस दीवाल में थोड़ा-सा लीपा-पोती करके रंगरोगन कर दिया—इससे लपट थोड़े ही मिटेगी। इससे बाहर जो आग लगी है वह लगी ही रहेगी।

क्या हुआ?

रूस में क्रांति हुई उन्नीस सौ सत्रह में—क्या हुआ?

जो मालिक थे वे उतार दिए गए; जो उतरे थे वे मालिक हो गए; मालकियत जारी रही। फर्नीचर बदल गयाः कुर्सी नीचे थी वह ऊपर आ गई। जो ऊपर थी वह नीचे आ गई। वही उपद्रव जारी रहा, कोई फर्क न पड़ा। अमीर अमीर न रहा, गरीब गरीब न रहा; लेकिन अब एक नया वर्ग पैदा हो गया—सत्ताधिकारियों का और गैर-सत्ताधारियों का। साधारण जनता और कम्युनिस्ट पार्टी अब ये दो वर्ग पैदा हो गए।

वर्ग जारी रहा, नाम बदल गए। पहले कोई दूसरे लोग शोषण करते हैं—शोषण जारी है; सत्ता जारी है; परतंत्रता जारी है।

दुनिया की सारी क्रांतियां मिट्टी हो गई हैं।

नहीं, मैं तुम्हारी किसी मूढ़ता का अगुआ नहीं होना चाहता। मुझे कोई उत्सुकता नहीं है तुम्हारे फर्नीचर बदलने में।

और बड़ा मजा है! राजनीति एक बड़ा गहरा षड्यंत्र है!

इंग्लैंड में दो पार्टियां हैं। इंग्लैंड बड़ा कुशल मुल्क हैः होना भी चाहिए; राजनीति का उसका अनुभव बड़ा पुराना है। बड़े होशियार लोग हैं! एक पार्टी सत्ता में होती है, दूसरी उसकी निंदा करती है। स्वभावतः किसी भी सत्ता सुंदर नहीं है, लेकिन जनता को एक भ्रम बना रहता है। एक पार्टी सत्ता में है, दूसरी पार्टी निंदा करती है

मुल्क में, भूल-चूक बतलाती है। दस साल एक पार्टी सत्ता में रहती है, बढ़ती जाती है। मुल्क क्रोध में भरता जाता है। जो सत्ता में नहीं हैं, लोग उनके प्रेम में पड़ने लगते हैं कि ये लोग ठीक मालूम पड़ते हैं।

और जनता की स्मृति बड़ी कमजोर है। दस साल बाद वे पहली पार्टी को नीचे उतार देते हैं, उस पार्टी को ऊपर बिठाल देते हैं। दूसरी पार्टी पहले काम में लग जाती है—इनकी निंदा में।

इनसे भी कुछ होता नहीं। लेकिन दस साल में जनता फिर भूल जाती है। वे जो सत्ता में होते हैं, उनकी भूल दिखाई पड़ती है। जो सत्ता में नहीं होते, उनकी तो भूल दिखाई कैसे पड़ेगी?—क्योंकि भूल तो वे कोई करते नहीं। वे कुछ करते ही नहीं, वे सिर्फ निंदा करते हैं। दस साल में फिर जनता उनके प्रेम में पड़ जाती है; उनको सत्ता में बिठा देती है, सत्तावालों को नीचे बुला लेती है।

जिनको तुम विरोधी पार्टियां कहते हो, वे सब आपसी षड्यंत्र में हैं। वे एक-दूसरे के सहारे हैं। वे विरोधी वगैरह नहीं हैं। भला एक-दूसरे को जेल में डालें, भला उनको भी पता न हो—मगर वे विरोधी वगैरह नहीं हैं। वह सब एक-दूसरे की साजिश है, वह पूरा खेल है।

जब एक सत्ता में होता है तब जनता को यह पता नहीं चलता कि भूल वस्तुतः सत्ता में एक पार्टी की हो रही है या भूल ऐसी है जो हमारी जीवन-चेतना की है। दुख इसलिए है कि हमारी जीवन-चेतना सोई है। जीवन में इतना पीड़ा इसलिए है कि हम बेहोश हैं। यह नहीं दिखाई पड़ पाता। यह दिखाई पड़ता है कि ये लोग हट जाएं। दूसरी पार्टी सपने बता रही है, झंडे उठा रही है। वह कहती है, हम सब ठीक कर देंगे। वह आश्वासन दे रही है। उस पर भरोसा आ जाता है।

अ का भरोसा ब पर चला जाता है। फिर ब से भरोसा अ पर चला जाता है। कभी अपनी याद नहीं आ पाती कि यह भूल कहीं हमारी है। ऐसे जीवन सदियों तक चलता रहा है। विरोधी आपस में ऐसा लड़ते हैं कि तुम्हें ऐसा लगता है कि यह तो बिलकुल एक-दूसरे के विपरीत हैं। और अगर इनको हम ताकत में पहुंचा देंगे तो सब ठीक हो जाएगा।

कभी ठीक कुछ नहीं होता।

क्रांतियां सब असफल हो गई हैं। एक ही क्रांति कभी असफल नहीं हुई, वह व्यक्ति की क्रांति है। कोई नींद से जागता हैः बुद्ध हो जाता है, कृष्ण हो जाता है, फरीद हो जाता है, मुहम्मद, नानक...बस वही एकमात्र क्रांति है।

तो, तुम्हारी अपेक्षाओं से मैं तुम्हारी अगुआ नहीं हो सकता। मेरी दृष्टि से ही मैं कुछ कर सकता हूं। मेरी दृष्टि यही है कि तुम जागो—यही एकमात्र क्रांति है। तुम्हारे घर के फर्नीचर को यहां से वहां हटाने की मेरी उत्सुकता नहीं है। धूल-धवांस झाड़ने का मेरा मन नहीं है। तुम्हारी भूल, तुम्हारी बेहोशी है—वही टूट जानी चाहिए। तब तुम अगर अमीर भी न हुए, गरीब भी रहे, तो भी आनंद की वर्षा तुम्हारे घर पर होगी। सब तुम्हारे पास दो जोड़ी वस्त्र भी रहे, तो भी नाच सकोगे। तुम्हें रूखा-सूखा भी खाने को मिला तो भी तुम्हारे कंठ से गीत का जन्म हो सकेगा।

और मनुष्य-जाति उसी दिन सुखी होगी, जिस दिन व्यक्ति सुखी होता है, और समाज की भ्रांति छूट जाती है कि हम समाज को सुखी कर सकते हैं। समाज कभी सुखी नहीं हो सकता। समाज है ही नहीं। समाज तो एक संज्ञामात्र है, एक नाममात्र है। जहां भी तुम पाओगे, व्यक्ति को पाओगे धड़कते हुए व्यक्ति के हृदय को पाओगे। व्यक्ति की आत्मा की क्रांति एकमात्र क्रांति है।

मेरा राजनीति में कोई रस नहीं है। ऐसे प्रश्न तुम न पूछो तो अच्छा। तुम अपनी बदलाहट की कुछ पूछो।

आज इतना ही।

न कानों सुना न आंखों देखा

नौवां प्रवचन

सूत्र

सरव पंखी हेकड़ो, फाहीवाल पचास।

इहु तन लहरी गडु थिआ, सचे तेरी आस।।

कवणु सु अखरु कवणु गुणु, कवणु सु मड़िआ मंतु।

कवणु सु वेसो हउ करि, जितु वसी आवै कंतु।।

निवणु सु अखरु खवणु गुणु, जिहवा मणीआ मंतु।

एत्रै भैणे वेस करि, ता वसि आवी कुतु।।

मति होंदी होइ इआणा, तान होंदे होइ निताणा।

अणहोंदे आपु वंडाए, कोइ ऐसा भगतु सदाए।।

इक फिक्का ना गालाई, सभना मैं सचा धणी।

हिआउ न कैही ठाहि, माणिक सभ अमोलवै।।

सभना मन माणिक, ठाहणु मूलि म चांगवा।

जे तउ पिरी आसिक, हिआउ न ठाहे कहीदा।।

इसी क्षण उत्सव है

सैमुआल बैकेट, पश्चिम का एक बहुत बड़ा विचारक और नाटककार, पेरिस की एक गली से गुजर रहा था। सांझ हो गई थी। एक भिखारी जैसा दिखने वाला आदमी उसके पास आया—ऐसे हाव-भाव से जैसे भीख मांगना चाहता हो। लेकिन इसके पहले कि बैकेट उसे कोई उत्तर दे, उसने जेब से छुरा निकाला और बैकेट की छाती में भोंक दिया। बैकेट बेहोश हो कर गिर गया और वह आदमी पकड़ लिया गया। पंद्रह दिन बाद बैकेट जब अस्पताल से बाहर निकला, चोट घातक थी। लेकिन पंद्रह दिन अस्पताल में वह यही सोचता रहा कि इस आदमी ने चोट की क्यों? न कोई दुश्मनी; दुश्मनी तो कोई दूर, कोई जान-पहचान भी नहीं। इस आदमी को इसके पहले कभी देखा ही न था। एक जिज्ञासा उसके मन में चलती रही, अस्पताल से छूटूं तो सीधा जेलखाने गया। आज्ञा ले कर आधिकारियों से वह उस कैदी के पास पहुंचा और कहा कि मुझे कोई शिकायत नहीं है। न तुम्हारे अपराध की निंदा करने आया हूं। न तुमसे यह कहने आया हूं कि तुम ऐसा न करते। ये सब सवाल नहीं है। एक ही मेरे मन में सवाल है कि तुमने मुझे छुरा मारा क्यों? कारण क्या है?

उस आदमी ने बैकेट की तरफ गौर से देखा और कहाः कारण तो मुझे भी पता नहीं। तुम ही परेशान हो, ऐसा मत सोचो; मैं भी पंद्रह दिन से यही सोच रहा हूं कि मैंने छुरा मारा क्यों? न कोई जान, न कोई पहचान, न कोई दुश्मनी। तुमने हां-ना भी न कहा था। मैं भी अपने से यही पूछ रहा हूं। तुम तो मेरे पास पूछने आ गए, मैं किसके पास पूछने जाऊं कि मैंने छुरा मारा क्यों?

बैकेट का सारा जीवन बदल गया उस घटना से।

आदमी मूर्च्छित है।

क्यों का कोई उत्तर तुम्हारे पास भी नहीं है। किसी के प्रेम में पड़ गए—क्यों? किसी को देखते ही दुश्मनी हो जाती है, देखते ही विकर्षण होता है—क्यों? किसी को देखते ही श्रद्धा आ जाती है। कोई कारण नहीं है। एक अचेतन, एक मूर्च्छित दशा है; जैसे कोई स्वप्न में चलता हो, या नशे में चलता हो।

घटनाएं घटती चली जाती हैं, तुम उनके मालिक नहीं हो। घटनाएं घटती है। तुम्हारे भीतर इतनी होश की किरण भी नहीं है कि तुम कह सको, मैंने ऐसा क्यों किया।

ना कानों सुना ना आंखों देखा

बैकेट विद्यार्थी था दर्शनशास्त्र का, लेकिन उस घटना के बाद दर्शन से उसकी आस्था उठ गई। क्योंकि दर्शन की तो सारी खोज यही हैः क्यों, ऐसा क्यों है? उस दिन के बाद उसने जो कविताएं लिखीं, नाटक लिखे, वे बड़े असंगत हैं, एब्सर्ड। उनमें झेन फकीरों की झलक है, लेकिन कोई तुक नहीं है।

घटनाएं घटती हैं, लेकिन कोई कारण नहीं है।

उसकी बड़ी प्रसिद्ध किताब हैः वेटिंग फॉर गोडोट, गोडोट की प्रतीक्षा। पूरी किताब पढ़ जाने के बाद यह पता नहीं चलता कि गोडोट है कौन, जिसकी प्रतीक्षा हो रही है।

दो व्यक्ति हैं। बस बैठे हैं। और ऐसा उनकी खयाल है, गोडोट आने वाला है। ऐसी उनकी धारणा है कि उसने आश्वासन दिया है कि मैं आऊंगा। और वे एक-दूसरे से बात करते हैं कि अभी तक गोडोट आया नहीं। वह दूसरा भी इधर-उधर देखता है। वह कहता है, पता नहीं क्यों देर हो गई है! और इस तरह बात चलती है। पूरा नाटक, बस ये दो आदमी बैठे हैं एक कबाड़खाने के पास, और इनकी बात चलती है। बड़े ऊब जाते हैं, थक जाते हैं। एक उनमें से कभी-कभी क्रोधित हो जाता है। वह कहता हैः अब मैं जाता हूं, बहुत हो गई। कब तक प्रतीक्षा करेंगे?

वह दूसरा भी कहता हैः चलो चलें। लेकिन जाते-करते कहीं नहीं, बैठे वहीं है। जाएं भी कहां? जाने को है भी कहां? करें भी क्या, अगर प्रतीक्षा न करें.

तो फिर प्रतीक्षा करते हैं। फिर दूसरा दृश्य आता है नाटक का। फिर वे बैठे हैं। फिर वे प्रतीक्षा कर रहे हैं कि आज तो आना ही चाहिए, आज तो बिलकुल पक्का है। फिर समय निकल जाता है। फिर वह नहीं आता। बस उसी की बात चलती है। ऐसे-ऐसे प्रतीक्षा ही होते-होते नाटक पूरा हो जाता है।

जब इस वेटिंग फॉर गोडोट की फिल्म बनी तो जो उसका डायरेक्टर था, उसने बैकेट को पूछ कि आखिर यह तो बताओ, यह गोडोट है कौन? उसने कहा कि अगर मुझे ही पता होता तो मैंने नाटक में ही बता दिया होता। यह तो मुझे भी पता नहीं।

पर यह गोडोट शब्द अच्छा है; यह गॉड से मिलता-जुलता है। इसमें कुछ गॉड की भनक है, ईश्वर की।

तुम किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो? प्रतीक्षा तुम भी कर रहे हो और तुम्हें ऐसा लग रहा हैः कोई आने वाला है, कुछ होने वाला है, कुछ हो कर रहेगा। लेकिन किसकी? नहीं होता, तुम भी नाराज हो जाते हो। कहने लगते होः सब बेकार है, छोड़ो-छाड़ो! पर जाओ कहां? छोड़-छाड़ कर भी कहां जाओगे, वहां भी यही होगा। वहां भी प्रतीक्षा करनी होगी। प्रतीक्षा किसकी हो रही है, इसका भी कुछ ठीक-ठाक पता नहीं है। लेकिन बिना प्रतीक्षा किए भी कैसे रहोगे? उसके सहारे समय गुजर जाता है। गोडोट सही, अ ब स कोई भी सही। मोक्ष, निर्वाण, ईश्वर कोई भी सही। लेकिन यह दशा है।

यह बैकेट का नाटक, वेटिंग फॉर गोडोट, पूरी मनुष्यता की कथा है। आदमी की यह स्थिति है।

एक प्रतीक्षा है, पता नहीं किसकी। होना हो गया है; क्यों हो गया है—इसका कोई पता नहीं। कृत्य भी घट रहे हैं, लेकिन क्यों तुम कर रहे हो—इसका कोई जवाब न दे सकोगे। तुम्हारे होने का भी तुम्हारे पास कोई जवाब नहीं हैः तुम क्यों हो? तुम अपने कंधे बिचकाओगे। तुम कहोगे, पता ही होता...।

इस अंधेरी दशा में, दो संभवानाएं हैं। एक संभावना तो यह है कि तुम कोई कल्पित अर्थ अपने जीवन को दे दो। तुम किसी गोडोट की प्रतीक्षा करने लगो, जिसका तुम्हें न पता है, न जिससे तुम्हारा कभी मिलना हुआ है, न तुम ठीक से जानते हो कि वह कौन है। कोई ऐसे अर्थ की तुम अपने जीवन में कल्पना कर लो, उस अर्थ के सहारे जीना हो जाएगा। जीना तो क्या होगा, आराम से मरना हो जाएगा। ऐसे धीरे-धीरे मर जाओगे। कभी पता न चलेगा कि भीतर खालीपन था। वे अर्थ जो तुमने कल्पित कर लिए थे, उनके सपने तुम्हें घेरे रहेंगे। और इसी तरह के अर्थ के सपने अपने आसपास खड़े कर लिए हैं।

बाप मेरे पास आता है, वह कहता है, बेटे के लिए जी रहा हूं। इसका बाप इसके लिए जी रहा था। इसका बेटा अपने बेटे के लिए जीएगा। कौन किसके लिए जी रहा है?

पत्नी से पूछो, वह पति के लिए जी रही है। पति से पूछो, वह कहता है कि परेशान हो रहे हैं, मेहनत कर रहे हैं, श्रम कर रहे हैं—पत्नी के लिए जीना है! छोटे बच्चे हैं, उनका विवाह करना है, शादी करनी है, पढ़ाना-लिखाना है। वे क्या करेंगे? वे भी यही करेंगे। उनके छोटे बच्चे होंगे, उनको पढ़ाएंगे-लिखाएंगे, उनकी शादी-विवाह करेंगे।

अगर तुम आदमी की जिंदगी को गौर से देखो तो तुम जो भी कारण से जी रहे हो, तुम पाओगे वह कल्पित है। लेकिन बिना शादी-विवाह करेंगे।

अगर तुम आदमी की जिंदगी को गौर से देखो तो तुम जो भी कारण से जी रहे हो, तुम पाओगे वह कल्पित है। लेकिन बिना कल्पना के जीना भी तो बहुत कठिन है।

नीत्शे ने कहा है: उस आदमी को मैं आदमी कहूंगा जो बिना कल्पना के जीने में समर्थ हो; जो जीवन की सच्चाई के साथ जीने को समर्थ हो—सच्चाई कोई भी हो; किसी कल्पना के ताने-बाने न बुने।

पर ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है।

फ्रायड ने एक किताब लिखी है धर्म के ऊपर: दि फ्यूचर ऑफ एनइल्यूजन, एक भ्रम का भविष्य। उसमें उसने सिद्ध करने की कोशिश की है, धर्म बिलकुल मनुष्य की भ्रमण है, मन का ही खेल है।

किसी ने फ्रायड को पूछा कि अगर ऐसा है तो एक न एक दिन मनुष्य भ्रम से मुक्त हो जाएगा और धर्म से मुक्त हो जाएगा? फ्रायड ने कहा कि वह मैं नहीं कह सकता; क्योंकि मनुष्य कभी भ्रम के बिना जीने को राजी होगा, यह बात संदिग्ध है। मनुष्य बिना भ्रम के जी कैसे सकेगा? साधारण उपाय एक ही है कि तुम कोई भ्रम खड़ा कर लो, कोई इंद्रधनुष खींच लो आकाश में—जो कभी मिलता भी नहीं है, लेकिन जिसके मिलने की आशा बनी रहती है। ऐसे तुम खिंचते चले जाते हो। ऐसे मौत करीब आ जाती है, एक दिन तुम डूब जाते हो।

करोड़ में एक को छोड़ कर अधिक लोग ऐसे की जीते हैं। उनका संसार भी सपना है, उनका धर्म भी सपना है। उनके सिद्धांत भी सपने हैं, उनके शास्त्र भी सपने हैं। उनकी गृहस्थी भी सपना है। उनका संन्यास भी सपना है। सपने का कोई संबंध नहीं है वस्तु से। सपने का कारण विज्ञान से पूछें: आदमी रात सपने क्यों देखता है? तो वे कहते हैं, इसलिए देखता है कि अगर सपने न देखे तो नींद टूट जाए। तुम उलटा सोचते होओगे, तुम सोचते होओगे रात भर सपने चलते रहे, इसलिए ठीक से सो न पाए। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर सपना न चले तो तुम बिलकुल न सो पाओगे। सपना तुम्हारी नींद को बचाता है।

तुमको रात की नींद में भूख लगी। अगर सपना न हो तो नींद टूट जाएगी। भूख नींद तोड़ देगी। तुम सपना देखते हो कि पहुंच गए अपने फ्रिज के पास, सामान निकाल लिया—सपने में। तृप्ति भर भोजन कर लिया—सपने में! लेकिन इस सपने में नींद को नहीं टूटने दिया—नींद की भूख को झूठे भोजन में छिपा दिया।

अलार्म की घंटी बजी, नींद टूट जाएगी; लेकिन सपने में तुम सुनते हो, मंदिर की घंटी बज रही है। एक सपना आ गया: मंदिर की घंटी बज रही है।

अब नींद के टूटने की कोई जरूरत नहीं। तुमने अलार्म को भी सपने में समाविष्ट कर लिया। अब तुम मजे से करवट ले कर सो जाओ।

वैज्ञानिक कहते हैं: सपना नींद को बचाता है।

सपने तो उन्हीं के समाप्त होते हैं जिनकी नींद समाप्त हो जाती है।

कृष्ण ने गीता में कहा है: या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागृति संयमी। जो सबकी रात है, योगी - संयमी तब भी जागता है।

स्वप्न तो किसी बुद्धपुरुष के ही समाप्त होते हैं; क्योंकि उसकी नींद को तोड़ कर जीना। झूठे अर्थ नहीं, अपने मनोकल्पित अर्थ नहीं। जगह खाली है माना, लेकिन गोडोट की प्रतीक्षा नहीं; क्योंकि जिसको हम जानते ही नहीं उसकी प्रतीक्षा क्या करनी? उसकी प्रतीक्षा में माना कि समय भरा हुआ निकल जाएगा, लेकिन हाथ क्या आएगा? उसकी प्रतीक्षा में माना कि ज्यादा बेचैनी न लगेगी, कुछ करने को लगता रहेगा, खाली न मालूम पड़ोगे, भरे रहोगे; लेकिन उस भरावट का भी क्या मूल्य है, जो कभी घटने वाली नहीं?

जागे हुए पुरुष का एक और जीवन है। उस जीवन का संबंध कोई अर्थ निर्मित करने से नहीं है, वरन जागने से है। जागते ही उस अर्थ की प्रतीति होनी शुरू होती है जो अस्तित्व में छिपा है। फिर तुम आंख भर देखते हो। कहना ठीक नहीं कि देखते हो; उसे तुम अनुभव करते हो, क्योंकि तुम भी वही हो।

तुम वही अर्थ हो जो छिपा है वृक्षों में। तुम वही अर्थ हो जो छिपा है पहाड़ों में, पर्वतों में। तुम वही अर्थ हो जो बहता है झरनों में, गाता है पक्षियों में। तुम वही अर्थ हो जिसका नाम परमात्मा है।

वह अर्थ तुमसे दूर नहीं है। तुम उसकी कल्पना नहीं करते, तुम उसका सपना नहीं देखते, तुम उसका प्रक्षेपण नहीं करते—तुम तो मौन और शून्य और शांत हो जाते हो! उस शांति में, जो है, वह प्रकट होता है। तुम तो अपने भीतर बिलकुल खाली हो जाते हो। तुम तो कहते होः न कुछ करने को है, न कुछ जानने को है, न कुछ खोजने को है। तो तुम चुप हो जाते हो, मौन हो जाते हो। उसी मौन में अचानक एक गूंज उठती है। यह गूंज तुम्हारे मन की नहीं है। एक गीत पैदा होता है। यह गीत तुम्हारा आयोजित नहीं है। तुम पाते हो कि तुम स्वयं इस गीत की लहर हो, तुम इस गीत की ही एक कड़ी हो। गीत तुमसे पहले भी चलता था, गीत तुम्हारे बाद भी चलता रहेगा। तुम बस बीच की एक श्रृंखला हो, एक कड़ी हो।

जिस दिन ऐसी प्रतीति होती है, उस दिन मोक्ष है। फरीद के शब्दों में कहें, उस दिन है प्यारे से मिलन। उसके पूर्व अंधेरे में टटोलना है।

और ये दो दिशाएं हैं। अंधेरे में टटोलते-टटोलते तुम घबड़ा जाओ, तो मन की कल्पनाएं कर लो, मन की कल्पनाओं में ही डूबे रहो—यह सांसारिक व्यक्ति की अवस्था है।

किसे मैं गृहस्थ कहता हूं?—वह जो सपनों में खोया है। तुम्हारे घर के कारण मैं तुम्हें गृहस्थ नहीं कहता; न तुम्हारी पत्नी न तुम्हारे बच्चों के कारण तुम्हें गृहस्थ कहता हूं। तुम गृहस्थ हो अगर तुमने सपनों के घर बनाए हैं। तुम्हें मैं संन्यस्त कहूंगा अगर तुमने सपनों के घर छोड़ दिए।

अगर तुम यथार्थ में जीना शुरू हो गए तो तुम्हारे जीवन में संन्यास का प्रादुर्भाव हुआ। तब किसी की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। जो घटना है वह अभी घट रहा है। कल की फिर कोई जरूरत नहीं है। जो हो रहा है वह अभी हो रहा है। इसी क्षण जीवन की महाघटना मौजूद है। इसी क्षण अस्तित्व अपने शिखर पर है।

अस्तित्व सदा ही शिखर पर है। उससे नीचे अस्तित्व होना जानता नहीं। इसी क्षण नाच चल रहा है। इसी क्षण उत्सव है; कल नहीं, आने वाले क्षण में नहीं।

तो, इसको तुम कसौटी समझना। अगर तुम आने वाले क्षण के लिए जी रहे हो कि कल कुछ होगा, तो वेटिंग फॉर गोडोट, तो तुम गोडोट की प्रतीक्षा कर रहे हो, जिसका तुम्हें कुछ भी पता नहीं है। अगर तुम अभी जी रहे हो, इस क्षण जो हो रहा है उसमें जी रहे हो, तो तुमने सारी प्रतीक्षा छोड़ दी, तुम जीवन को उपलब्ध हो गए।

इस जीवन को ही परमात्मा कहा है। वह एक शब्द है परमात्मा, इस जीवन की तरफ इशारा है। वह शब्द तुम्हें ठीक न लगे—क्योंकि इस सदी में उस शब्द की सार्थकता धीरे-धीरे खो गई है—तो तुम दूसरा शब्द चुन लेना। कहना अस्तित्व; कहना जीवन, महाजीवन; या जो तुम्हें रुचिकर लगे। किसी शब्द पर मेरा कोई आग्रह नहीं है, क्योंकि शब्द तो इशारे हैं। किस शब्द से तुम परमात्मा को पुकारोगे, इससे क्या फर्क पड़ता है? तुम कोई भी शब्द दे देना।

लेकिन परमात्मा अभी और यहीं है। और संसार कल, और कहीं और है। संसार यानी भविष्य। परमात्मा यानी वर्तमान।

और तुम दो ढंग से जी सकते होः भविष्य के सहारे या वर्तमान में। वर्तमान में जो जीता है वह संन्यस्त है। वही है भक्त। वही है धार्मिक। भविष्य में जो जीता है वह संसारी है। वही है अज्ञानी। वही है भटका—स्वप्न में, तंद्रा में, निद्रा में, बेहोशी में।

फरीद के इन आखिरी वचनों को ध्यान से समझने की कोशिश करो।

'सरवर पंखी हेकड़ो—अकेला है पक्षी और जाल हैं पचास फंसाने के। बचना मुश्किल मालूम होता है। बचना करीब-करीब असंभव मालूम होता है।

थोड़ा सोचो। कितने जाल हैं! धन का जाल है। पद का जाल है। यश का जाल है। कितने जाल हैं—वासनाओं के, आसक्तियों के, लोभ के, क्रोध के, मोह के! कितने जाल हैं—शरीर के, मन के! चारों तरफ फंसाने के उपाय हैं। और पक्षी है अकेला, और जाल है पचास। एक से बचो, दूसरे में उलझना हो जाता है। इधर बच नहीं पाते खाई से कि कुएं में गिरना हो जाता है। इसलिए जो बहुत सजग है वही बच पाएगा। बच वही पाएगा जो एक जाल से नहीं बच रहा, बल्कि जो जाल के रहस्य को समझ गया, उससे बच रहा है। एक जाल से बचने में कोई कठिनाई नहीं है, तुम बच सकते हो।

समझो, तुम्हारे जीवन में कामवासना है। बड़ा जाल है। बड़े से बड़ा जाल है। उद्दाम उसका वेग है। स्वाभाविक है, क्योंकि कामवासना से ही मनुष्य पैदा होता है। शरीर का कण-कण कामवासना से ही निर्मित होता है। मां के पेट में जो तुम्हारा पहला अणु था, वह तुम्हारे पिता और तुम्हारी मां की वासना के दो अणुओं का मेल था। फिर उसी का विस्तार हो कर तुम्हारा पूरा शरीर बना, तुम्हारा मन बना, तुम बने। तुम्हारे रोएं-रोएं में वासना है। स्वाभाविक है। उसका वेग इतना है, तुम लाख कसमें खाओ, व्रत नियम संयम बनाओ, टूट-टूट जाते हैं। पछताओ कितने ही, फिर-फिर उलझ जाते हो। लेकिन अगर तुम जबरदस्ती करो तो बच सकते हो।

फिर बहुत-से संन्यासी, साधु, भिक्षु जबरदस्ती अपने को रोक लेते हैं। तुम चाहो तो रोक सकते हो जबरदस्ती; क्योंकि कामवासना कुछ ऐसी वासना नहीं है कि उससे जीवन संकट में पड़ जाए। अगर तुम भूख को जबरदस्ती रोको तो ज्यादा से ज्यादा तीन महीने जिंदा रह सकोगे। अगर प्यास को जबरदस्ती रोको तो दो-चार दिन भी जिंदा रहना मुश्किल हो जाएगा। अगर श्वास को जबरदस्ती रोको तो घड़ी भर भी जिंदा रहना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन कामवासना को तुम जबरदस्ती रोको तो पूरी जिंदगी तुम मजे से जी लोगे। कोई अंतर नहीं आएगा। तुम मर न जाओगे।

इसलिए कामवासना को रोकने की चेष्टा लोगों को बहुत आकर्षित करती है। भूख को रोको तो अड़चन है, मौत खड़ी है। प्यास को रोको तो अड़चन है, मौत खड़ी है। श्वास को रोको तो अभी मरे, कल की बात ही नहीं है। कामवासना को रोना आसान मालूम पड़ता है। रोके रहो, तुम नहीं मर जाओगे; क्योंकि कामवासना का तुम्हारे जीवन से कोई संबंध नहीं है। कामवासना से तुम्हारे बच्चों के जीवन का संबंध है; तुम्हारे जीवन का संबंध नहीं। तुम्हारा जीवन तो तुम्हारे मां-पिता की वासना से शुरू हो गया। अब कोई अड़चन नहीं है, अब तो तुम यात्रा पूरी करोगे।

तो कामवासना को लोग रोक लेते हैं। कामवासना के रुकते ही दूसरा जाल शुरू हो जाता है। जिन-जिन ने कामवासना को रोका, तुम पाओगे उनके जीवन में क्रोध अतिशय हो जाएगा। इधर रोका काम, उधर क्रोध का जाल उलझा। इसलिए साधु-संन्यासियों को तुम क्रोधी ज्यादा पाओगे। तुम्हें ऋषि-मुनियों की कथाएं मिल जाएंगी जो अभिशाप देने को तैयार ही बैठे हैं; जरा-सी भूल-चूक हो जाए और अभिशाप दे दें, और यह जन्म ही न बिगाड़ें, अगले जन्म भी बिगाड़ दें।

तुमने कभी सोचा कि ऋषि-मुनियों के जीवन में तो अभिशाप होना ही नहीं चाहिए। उसकी वाणी पर अभिशाप का स्वर आना ही नहीं चाहिए। उसके जीवन से तो सदा ही आशीर्वाद के फूल गिरने चाहिए। अभिशाप के कांटे!...

लेकिन जिन्होंने कहानियां लिखी हैं उन्होंने कल्पना नहीं लिखी, सच्चाई लिखी है। जिनको तुम ऋषि-मुनि कहते हो, उनमें से सौ में निन्यानबे ने कामवासना को जबरदस्ती रोक लिया है। स्वभावतः क्रोध बढ़ जाएगा; क्योंकि जो वेग काम से निकलते थे, अब वे कहां से निकलेंगे? तुमने एक द्वार बंद कर दिया वेग के निष्कासन का, वे कहीं और दूसरी जगह से द्वार खोज लेंगे। झरने को तुमने रोक दिया, झरना कहीं और से फूट कर निकलेगा। तुमने बीमारी एक तरफ से रोकी, बीमारी दूसरी तरफ से पकड़ लेगी।

अगर तुम क्रोध को भी रोक दो, क्रोध भी रोका जा सकता है। थोड़े ही श्रम की जरूरत है तो क्रोध भी रुक जाएगा। तो तुम पाओगे, कहीं और से निकलना शुरू हो गया। जो लोग क्रोध को रोक देंगे उनके जीवन में लोभ बढ़ जाएगा, भयंकर लोभ बढ़ जाएगा। लोभ को रोको, कुछ और बढ़ जाएगा।

जाल हैं पचास, जान है एक! एक जाल से बचे नहीं कि दूसरे में उलझ जाओगे। और कई बार तो तुम समझोगे कि एक जाल से बचने का उपाय ही यही है कि दूसरे जाल में उलझ जाओ, तो पहले जाल से बच जाओगे। खाली तो तुम भी न रह सकोगे।

तो जिस व्यक्ति को जीवन में क्रांति ही लानी हो, सच में ही क्रांति लानी हो, वह एक जाल से दूसरे जाल में नहीं उलझता; वह रुक कर सोचता है कि सभी जालों का मूल आधार क्या है। मूल आधार से बचने की फिक्र करना। पत्ते-पत्ते मत जाना, जड़ काटना।

महावीर से कोई पूछता है: साधु कौन? तो महावीर कहते हैं:असुत्ता—जो सोया हुआ नहीं, जागा हुआ है। पूछता है कोई: असाधु कौन? तो महावीर कहते हैं: सुत्ता—जो सोया हुआ है। महावीर ने न क्रोध की बात कही, न काम की बात कही, न लोभ की; जड़ की बात कही—सोना और जागना; होश और बेहोशी- चैतन्य और अचेतना। यह जड़ है।

तो माना कि जाल पचास हैं, लेकिन हर जाल का बुनियादी सूत्र एक है।

'सरवर पंखी हेकड़ो, फाहीवाल पचास।'

फंसाने को पचास जाल लगे हैं और सरोवर में पक्षी अकेला है। एक जाल से बचने की कोशिश करके तुम दूसरे में फंस जाओगे।

एक मित्र हैं मेरे। हिंदू थे, ईसाई हो गए। मैंने उनसे पूछा कि क्या कारण? उन्होंने कहा: देख लिया हिंदू धर्म का असार रूप। कुछ नहीं सब धोखाधड़ी है!

मैंने कहा: यही आंख खुली अगर रखी तो ईसाइयत भी धोखाधड़ी दिखाई पड़ेगी। तुम एक जाल से बच गए, यह ठीक- लेकिन दूसरे फंस गए।

उन्होंने कहा कि नहीं, यह कभी नहीं होगा। मैं बहुत सोच-समझ कर गया हूं।

वर्ष भर बाद मुझे मिलने आए, कहने लगे: ठीक ही कहा था। यह तो वही का वही जाल है। नाम भर अलग है। मंदिर नहीं है, चर्च है। शंकराचार्य नहीं है तो पाप है। धोखाधड़ी वही है। माल भीतर वही है, सिर्फ डब्बे के ऊपर रंग-रोगन का फर्क है, लेबल अलग-अलग हैं। मैं तो फंस गया। अब आप ही मुझे बताएं कि मैं किस धर्म में सम्मिलित हो जाऊं?

मैंने कहा: मैं कुछ भी न कहूंगा। मैं तुमसे पूछता हूं: तुम यह क्यों नहीं देखते कि सभी संप्रदाय जान हैं? तुम ऐसा क्यों नहीं देखते कि धर्म का संगठन से कोई संबंध नहीं है।

धर्म निजी है और वैयक्तिक है। धर्म का भीड़ से क्या लेना-देना है? भीड़ कभी समाधिस्थ हुई है, कि भीड़ कभी स्वर्ग गई है, कि भीड़ ने कभी मोक्ष के द्वार पर दस्तक दी है? जब भी कोई गया, अकेला गया है।

यह आकांक्षा कि मैं किसी भीड़ का हिस्सा हो जाऊं, किसी समूह-संगठन का अंग बन जाऊं—यह आकांक्षा मूर्च्छित है। जागा हुआ व्यक्ति अकेला है, सोए हुए व्यक्तियों की भीड़ है। सोया हुआ आदमी सहारे मांगता है, अकेला नहीं हो सकता। अकेले होने से डर लगता है। जागा हुआ आदमी पाता है कि अकेला होना स्वभाव है। अकेले होने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

इसलिए महावीर जैसे जागे व्यक्ति ने कहा—मोक्ष को जो नाम दिया, स्वर्ग को, परम अवस्था को जो शब्द दिया वह कैवल्य है, कि वहां पहुंचते-पहुंचते व्यक्ति बिलकुल अकेला नहीं हो जाता है, केवल मात्र, अस्तित्व मात्र बचता है। वहां दो नहीं रह जाते। इसलिए शंकर ने अद्वैत शब्द का उपयोग किया, वहां एक ही बचता है।

कबीर ने कहाः प्रेम गली अति सांकरी, तामे दो न समाये। वहां दो नहीं समाते। जहां दो नहीं समाते वहां बस बीस करोड़ हिंदुओं की भीड़ कहा समाएगी, वहां साठ करोड़ मुसलमान कहां समाएंगे, वहां सौ करोड़ ईसाई कहां समाएंगे? वहां तो एक-एक ही गुजरता है और यात्रा करता है। वह गली बड़ी संकरी है।

मैंने उनसे कहा कि अब और झंझट में न पड़े। जिंदगी ऐसे ही आधी गंवा दी, अब तो जागो! अब और नए जाल की कोशिश कर रहे हो!

पर ऐसा ही होता है। तुम एक जगह से छूट नहीं पाते कि छूटने की कोशिश में ही तुम दूसरे जाल का सहारा पकड़ने लगते हो। इसके पहले कि तुम छूटो, तुम नए जाल में उलझ गए हो। होश ही बचाएगा। जाल बदलने से कुछ न होगा।

'सरवर पंखी हेकड़ो, फाहीवाल पचास।'

सरोवर में तो पक्षी तो अकेला है और फंसाने के जाल पचास हैं।

'यह शरीर लहरों में डूब रहा है। ऐ सच्चे मालिक, मुझे अब एक तेरी ही आशा है।'

'इहु तन लहरी गडु थिआ, सचे तेरी आस।'

फरीद कहते हैंः यह शरीर डूब रहा है।

यह थोड़ा सोचने जैसा है। फरीद यह नहीं कहते कि यह आत्मा डूब रही है। फरीद कहते हैंः यह शरीर डूब रहा है। ये जाल पचास हैं, पक्षी अकेला हैं। यह शरीर डूबा जा रहा है।

क्या तुम भी यह कह सकोगे, यह शरीर डूब रहा है? अगर तुम अपनी तरफ देखोगे तो तुम पाओगे कि हम तो पूरे ही डूब रहे हैं। शरीर ही नहीं डूब रहा, आत्मा भी डूब रही है। शरीर ही नहीं डूब रहा है। अगर चैतन्य भी डूब रहा है। अगर चैतन्य भी डूब रहा है, तब फिर बचने का उपाय बहुत मुश्किल है; क्योंकि प्रार्थना भी कौन करेगा, पुकारेगा भी कौन? उस परमात्मा की तरफ हाथ भी कौन उठाएगा?

यह शरीर लहरों में डूब रहा है। फरीद इसे देख रहे हैं कि यह शरीर लहरों में डूब रहा है। यह देखना ही होश है। इसी होश से प्रार्थना के द्वार खुलते हैं।

तुम बेहोश प्रार्थना न कर सकोगे। यद्यपि तुमने बेहोशी में कई बार प्रार्थनाएं की हैं, पर उन प्रार्थनाओं पर बेहोशी का धुआं था। और वे प्रार्थनाएं तुम्हारे कंठों में ही दबी रह गइ, आकाश तक पहुंची नहीं हैं।

तुम्हारी प्रार्थनाएं ऐसी हैं जैसे तुमने कभी दुखस्वप्न देखा हो, नाइटमेयर कि रात तुमने अनुभव किया कि कोई तुम्हारी छाती पर चढ़ा बैठा है। तुम लाख उपाय करते हो, तुम हिल-डुल नहीं पा रहे हो। तुम हाथ उठाना चाहते हो, हाथ नहीं उठता, लकवा लग गया है। सपनों में ही! तुम चिल्लाना चाहते हो, लेकिन कंठ अवरुद्ध है, आवाज नहीं निकलती।

तुम्हारी प्रार्थनाएं बेहोशी में ऐसी हैं। तुमने कभी भी तो भी आवाज निकली नहीं। तुमने हाथ जोड़े तो भी सिर न झुका। शरीर झुका, पर तुम बिन झुके रह गए। मंदिर तक तुम पहुंचे, लेकिन वे मंदिर तुम्हारे ही बनाए हुए मंदिर थे, परमात्मा के मंदिर की तुम्हें कोई झलक न मिली।

शरीर डूबता हो और तुम देखने वाले साक्षी हो, तो ही, तो ही तुम कह सकोगे कि ऐ सच्चे मालिक, मुझे अब एक तेरी ही आशा है।

यह थोड़ा गौर से समझ लेने की बात है। सिर्फ होश से ही प्रार्थना वास्तविक हो सकती है। और मजा यह है कि अगर होश आ जाए तो प्रार्थना न की तो भी सुन ली जाएगी। और अगर होश न हो तो तुमने प्रार्थना जन्मों-जन्मों तक दोहराई तो भी न सुनी जाएगी। होश सुना जाता है, प्रार्थना नहीं सुनी जाती। प्रार्थना में कुछ भी नहीं है। तुम्हारे हृदय में, जहां से प्रार्थना आती है, जागरण हो, जागरण की सुगंध हो, जागरण की धूप जलती हो, तो ही उस धूप पर यात्रा करती है प्रार्थना। और तब तो एक ही प्रार्थना रह जाती है, और कुछ तो कहने को रह नहीं जाता—ऐ सच्चे मालिक, मुझे अब एक तेरी ही आशा है! अपने से तो बहुत करके देख लिया। हर बार पाया कि जो भी मैं करता हूं, वह एक जाल से तो बचा देता है, लेकिन दूसरे जाल में उलझा देता है। काम से बचा तो क्रोध में उलझ गया। संसार से बचा तो संन्यास में उलझ गया। घर से छोड़ कर भागा तो मंदिर में फंस गया। बाजार से छोड़ कर जंगल गया, जंगल में ही आसक्ति हो गई। धन छोड़ा, लंगोटी पकड़ ली। पकड़ न छूटी। ऐसे भागता रहा, बचता रहा; लेकिन हर बार आखिर में पाया कि कोई झंझट खड़ी हो गई। क्योंकि मेरे भीतर से तो मूर्च्छा टूटी नहीं, तो मैंने जो भी किया, वही संसार खड़ा हो गया।

संसार मूर्च्छा से पैदा होता है, वह मूर्च्छा की संतति है। तुम मूर्च्छित हो, तुम जो भी करोगे वह संसार होगा। तुम होश से भरने से धर्म करता है। संसार छोड़ने से कोई जागता नहीं; जागने से संसार छूटता है।

'इहु तन लहरी गडु थिआ, सचे तेरी आस।'

अब एक तेरी आशा है, अपने पर आशा छोड़ते हैं। अपने को बचा-बचा कर देख लिया, बचा न पाए, अब तू ही बचा!

यह बड़ा गहरा अनुभव है जीवन का; जिसे उपलब्ध हो जाता है वह प्रौढ़ हो गया। जब तक ऐसा अनुभव न उपलब्ध हो तब तक समझना, अभी बालपन चल रहा है, प्रौढ़ता न आई। बालपन का मतलब ही यही है कि तुम सोचते हो, अपने किए हो जाएगा। समस्या बड़ी है, तुम बहुत छोटे हो। समस्या विराट है; तुम्हारे हाथों की इतनी पहुंच नहीं। आंखें बड़ी छोटी हैं, देखने को विराट है। हाथ बड़े छोटे हैं, पकड़ने को आकाश है। नहीं, यह पकड़ नहीं हो पाएगी।

तुमने अपनी तरफ से कोशिश की तो वह सारी कोशिश तुम्हारी अहमता, अस्मिता और अहंकार ही होगी। तुमने तप भी किया तो अहंकार ही होगा। तुमने पूजा की तो भी अहंकार होगा। तुम मंदिर गए तो भी इसलिए जाओगे कि उससे अहंकार की तृप्ति होती है—लोग कहते हैंः बड़े धार्मिक हो।

तुमने कभी खयाल किया, अपने ही ऊपर कभी खयाल किया कि आदमी कैसे खेल खेलता है? तुम मंदिर में खड़े हो, कोई देखने वाला नहीं तो प्रार्थना में कुछ मजा नहीं आता। भीड़ इकट्ठी है, लोग देख रहे हैंः तुम्हारे स्वर एकदम तेज हो जाते हैं, आरती में गति आ जाती है; पैर थिरकने लगते हैंः तुम परमात्मा के लिए नाच रहे हो या इन दर्शकों के लिए नाच रहे हो। जब देखने वाले होते हैं तो प्रार्थना बड़ी लंबी हो जाती है। और ऐसा समझो कि सम्राट भी आया हो देखने तब तो तुम्हारी प्रार्थना में ऐसी लवलीनता लगेगी, आंख से आंसू झरेंगे। तुम्हें देख कर ऐसा लगेगा, तुम बिलकुल समाधिस्थ हो गए।

लेकिन वह सब झूठ है। प्रार्थना का तुम्हें कोई रस नहीं, रस कोई और है रिसपैक्टेबिलिटी, आदर-सम्मान, लोग धार्मिक समझते हैं।

मैंने सुना है, एक बिलकुल बहरा और अंधा आदमी रोज चर्च जाता था—एक बच्चे का सहारा ले कर। किसी ने उससे एक दिन पूछा कि तू किसलिए आता है? न तो तुझे कुछ दिखाई पड़ता, न तो तुझे कुछ सुनाई पड़ता। चर्च में पादरी क्या समझता है, वह तुझे सुनाई नहीं पड़ता। कौन-सी प्रार्थनाएं होती हैं, गीत गाए जाते हैं, वे तुझे सुनाई नहीं पड़ते। तू क्यों रोज इतना परेशान होता है?

उसने कहाः यह सवाल नहीं है। यह सवाल नहीं है सुनने और देखने का। क्या तुम सोचते हो, जिनको दिखाई पड़ता है, वे देखने आते हैं; और जिनको सुनाई पड़ता है वे सुनने आते हैं? कोई इसलिए नहीं आता, देखने और सुनने। लोग दिखाने आते हैं कि देखो मैं चर्च में आया हूं, मैं धार्मिक हूं! मैं भी दिखाने की आता हूं। देखना किसको है? आंख का प्रयोजन है? सुनना किसको है? सुन ही लिया होता हो फिर आने कि जरूरत क्या रहती? नहीं, मैं तो यह दिखाना चाहता हूं कि ताकि लोग जान लें कि मैं भी धार्मिक हूं, और ताकि परमात्मा भी देख ले कि हर रविवार को मौजूद रहा हूं; कभी एक रविवार को मौजूद रहा हूं; कभी एक रविवार चूका नहीं, यद्यपि अंधा था, बहरा था। आना मुश्किल था, कठिनाई थी; लेकिन बराबर आया हूं।

यह तो एक दावेदारी है।

तुम पुण्य के लिए मंदिर जाते हो। मंदिर जाने में तुम्हें आनंद नहीं है। तो तुम एक से बचोगे...घर से बचोगे, मंदिर में फंसोगे। क्योंकि तुम्हारे होने का ढंग ही ऐसा है कि तुम फंस सकते हो, मुक्त नहीं हो सकते। मूर्च्छा में कभी कोई मुक्त नहीं होता।

यह शरीर को अपने से अलग करके देखना होश की तरफ पहला कदम है। यह शरीर मैं नहीं हूं, ऐसी प्रतीति गहन होने लगे। चलते समय देखना कि शरीर चल रहा है, मैं नहीं। भूख के समय देखना, शरीर को भूख लगी है, मुझे नहीं। प्यास कंठ को तड़फाए, तब जानना कि शरीर को बड़ी जरूरत है जल की, मुझे नहीं। नींद आने लगे, कहना, शरीर विश्राम चाहता है। शरीर सोए, शरीर चले, शरीर भूखा हो, तृप्त हो—तुम जरा दूर-दूर रहना; तुम जरा फासला साधना। तुम जानोगे कि शरीर बीमार पड़ा है, मैं जानने वाला हूं। तभी यह संभव है कि फरीद की तरह तुम भी कह सकोः इहु तन लहरी गडु थिआ, यह शरीर तो डूब रहा है लहरों में, लेकिन मैं देख रहा हूं। और यह जो मैं देख रहा हूं, यह जो मैं साक्षी हूं—यही साक्षी तो प्रार्थना है।

ऐ सच्चे मालिक , मुझे अब एक तेरी ही आशा है। अपनी तरफ से सब किया, डूबने के अतिरिक्त कुछ भी न पाया। बहुत नदियों में डूबे, बहुत घाटों पर उतरे; लेकिन हर जगह डूबना ही हुआ। आखिर में हाथ कुछ न लगा, सिर्फ मौत लगी। आखिर में सिवाय दुख के और कुछ भी न पाया। अशांति, बेचैनी, विषाद! अपनी तरफ से करके चुक चुके, अब कुछ और करने को नहीं रहा। ऐ सच्चे मालिक, मुझे अब तेरी ही आशा है।

जो फरीद का वचन है, वह अनुवाद से भी सुंदर हैः सच मेरी आस! वह इतना ही कह रहा है, तू सच है। सचे तेरी आस! और अब सच्चे की ही आस है। अपने तइ रह कर देख लिया, वह झूठे के साथ आशा थी। मैं ही झूठा था, तो उसके साथ जितनी आशाएं बांधीं, वे सब डूबीं। मैं ही झूठा था, तो उस नाव में जितनी यात्राएं कीं, वे सब व्यर्थ गइ। वह कागज की नाव थी। वह हमेशा मझधार तक पहुंचते-पहुंचते डूब गई, गल गई। सच तेरी आस! अब तो मैं तेरी तरफ देखता हूं। तू सच्चा है, मैं झूठा हूं।

यह भक्त का भाव है। मैं सच्चा हूं, तू झूठा है—यह सांसारिक का भाव है। बस इतना-सा ही फर्क है, पर कितना बड़ा फर्क है! लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैंः ईश्वर कहा है? दिखाई नहीं पड़ता।

जो लोग ईश्वर पर भी संदेह करते हैं, वे कभी अपने पर संदेह नहीं करते कि मैं कहां हूं, मैं दिखाई पड़ता हूं? नहीं, उस पर कभी संदेह नहीं आता, वह सच्चा है। परमात्मा झूठा है। जब तीर बदल जाता है—सच्चाई परमात्मा की तरफ हो जाती है और झूठ अपनी तरफ हो जाता है—तब भक्त का जन्म होता है। तब भक्त कहता हैः तू तो सब तरफ दिखाई पड़ता है, मैं कहीं दिखाई नहीं पड़ता। सचे तेरी आस! झूठ था मैं, इसलिए जालों में उलझा। मैं खुद ही झूठ था। जालों ने उलझाया, यह कहना ठीक नहीं, मैं झूठ था, इसलिए उलझा।

मैं एक गांव में गया। एक संन्यासी मेरे पहुंचने के पहले उस गांव में थे। बड़ी चर्चा थी। उस संन्यासी ने एक आदमी को धोखा दे दिया। धोखा यह दिया कि उस संन्यासी ने कहा कि मैं सोने को दुगना कर देता हूं, सौ रुपए का नोट उसने दो करके दिखा दिया, भरोसा आ गया। तो सारे घर का जो कुछ भी था—सोना, चांदी, सब इकट्ठा कर दिया। उसको डबल करना है, दोहरा करना है। उसने कहाः सब रख दो, दोहरा हो जाएगा। उसने

एक मटकी में सब रखवा लिया। काफी आधी रात तक उसने मंत्र-तंत्र किए और फिर कहा कि अब इस मटकी को ले कर मरघट चलना पड़ेगा। कोई दस-बारह हजार रुपए को सोना था, तो मरघट जाने को भी तैयार हो गया। फिर उसने रास्ते में मरघट के भय बतलाए कि घबड़ाना मत, अगर कोई गर्दन पकड़ ले; घबड़ाना मत, अगर कोई अस्थिपंजर एकदम खड़ा हो जाए, क्योंकि भूत-प्रेत आएंगे। वह फंस ही गया। मरघट के बाहर-बाहर पहुंच कर उसने कहाः ऐसा करो महाराज, आप ही अंदर चले जाओ, मुझे तो बहुत डर लग रहा है।

उसने कहा कि अगर डर लगा तो डबल तो होगा ही नहीं सोना, सोना मिट्टी हो जाएगा। उस गृहस्थ ने यह भी कहा कि भई वापस ही लौट चलो, जितना है उतना ही रहने दो। उसने कहा कि बीच में तो कभी हो ही नहीं सकता वापस। तो वह मरघट के बाहर रह गया, और वह मरघट के भीतर गया तो लौटा ही नहीं, वह ले कर मटकी उनकी नदारद हो गया। उन्होंने पुलिस में रिपोर्ट की। सारे गांव में संन्यासी की निंदा थी। वे मेरे पास भी आए। दूसरे ही दिन मैं उस गांव पहुंचा। रोने लगे। कहने लगे कि ऐसा-ऐसा हो रहा है। संन्यास के नाम पर ऐसा धोखा चल रहा है। धर्म के नाम पर ऐसी बेईमानी चल रही है। ऐसे चालबाज और गुंडे और बदमाश धर्म की आड़ में छिपे हैं।

मैंने उनसे कहाः उस संन्यासी की बात बाद में करेंगे, क्योंकि वह तो यहां मौजूद नहीं। तुम कोई भले आदमी नहीं हो। तुम फंसे हो अपनी चालबाजी से। तुम दोहरा करना चाहते थे सोना! तुम सोचते हो, तुम सज्जन हो, तुम सज्जन आदमी हो? तुम उस संन्यासी की शरारत से नहीं फंसे हो, तुम अपनी बेईमानी से फंसे हो। अगर तुम ईमानदार आदमी होते तो तुम कहतेः मुझे करना भी नहीं है; सौ के दो नोट मुझे बनाने नहीं हैं, क्योंकि यह तो गैर-कानूनी है। संन्यासी तो जब पकड़े जाने चाहिए, तुम तो कम से कम उपलब्ध हो। तुमने सौ रुपये के डबल बनाना चाहे, तुम बारह हजार का सोना चौबीस हजार का करना चाहते थेः तुम हो बेईमान! तुम फंसे अपनी बेईमानी से।

अरब में एक कहावत है कि सच्चे आदमी को धोखा देना मुश्किल है। मैं भी इसमें भरोसा करता हूं। तुम सच्चे आदमी को धोखा कैसे दोगे? क्योंकि धोखा देने के लिए जो उपाय करते हो, वे सिर्फ झूठे आदमी पर काम आते हैं। ईमानदार आदमी के साथ बेईमानी करनी असंभव है। और तुम कर भी लोगे बेईमानी तो तुम को ही लगेगा कि तुमने की है; ईमानदार आदमी को पता भी न चलेगा। ईमानदारी की महिमा ऐसी है कि उसको बेईमानी छूती ही नहीं; ऐसे है जैसे सूरज को कभी अंधेरा नहीं छूता। कोई उपाय नहीं है। कितना ही अंधेरा हो, सूरज को कभी नहीं छूता। सूरज को तो छोड़ दो, छोटे से मिट्टी के दिए को भी नहीं छू पाता। जर-सी लौ जलती है, उसको भी नहीं छू पाता।

फरीद फंसता है अपने भीतर के झूठ के कारण।

फरीद यह कह रहे हैं कि वे पचास जाल हैं, माने; लेकिन असली जाल तो यह है कि मैं झूठा था उसको मैं सच्चा समझता था। अब वह झूठ होता है। बीमारियों के हजार ढंग हैं, करोड़ ढंग हैं। बीमारियों की कोई संख्या है—असंख्य हैं। लेकिन स्वास्थ्य? स्वास्थ्य बस एक ही ढंग का होता है—हिंदू का हो, मुसलमान का हो, ईसाई का हो, काले का हो, गोरे का हो, स्त्री हो, पुरुष हो। स्वास्थ्य का स्वाद एक है।

झूठ अनेक होते हैं, सत्य एक है।

सच तेरी आस!

जब तक तुम झूठ में फंसते हो, तुम भी भीतर अनेक को पकड़े हो, एक को नहीं पकड़ा है तुमने। इसलिए अनेक तुम्हें फंसा लेते हैं। भीतर की माया ही बाहर की माया से मिल जाती है, तुम फंस जाते हो। भीतर एक झूठ बाहर के झूठ से उलझ जाता है, तुम फंस जाते हो। भीतर का झूठ न रह जाए, बस बात समाप्त हो गई।

एक झेन फकीर रात सोने के ही करीब था कि चोर उसके घर में आ गया। गांव से दूर था घर। फकीर को बड़ी बेचैनी हुई की बेचारा चोर! इतनी रात अमावस की, अंधेरी रात में, इतने दूर चल कर आया और झोपड़े में

कुछ है ही नहीं। सिर्फ एक कंबल है जो वह खुद ही ओढ़े है। तो वह चुपचाप कंबल को एक कोने में रख कर सरक गया अंधेरे में, कि यह कुछ तो ले जाए; अन्यथा इतनी दूर आया और खाली हाथ जाए! ऐसा हमारा सौभाग्य कहां कि यहां चोर आएं। चोर तो धनियों के घर जाते हैं। पहली दफे तो यह भाग्य आया कि चोर ने में यह सम्मान दिया, और इसको भी हम अधूरा हाथ, खाली हाथ भेज दें! तो सरका कर अपने कंबल को एक कोने में हट गया। चोर कुछ डरा कि मामला क्या है! वह अंधेरे में खड़ा देख रहा है। और जब यह कंबल को छोड़ कर हट गया तो उसे और भी भय लगा कि यह फंसाने की तरकीब तो नहीं है, क्या मामला है? घर में कुछ है भी नहीं, आदमी भी अजीब है! कुछ भी नहीं है घर मेंः बस यह कंबल ही एकमात्र दिखता है,खुद नंगा मालूम होता है। तो वह निकल कर भागना चाहा। और उसने सोचा कि इसका कंबल भी किस मतलब का होगा; हजार छेद होंगे, सड़ा-गला होगा! जिसके पास कुछ भी नहीं उसके कंबल का भी क्या भरोसा!

भागने को था कि उस फकीर ने आ कर दरवाजे पर रोक लिया और कहा कि ऐसी ज्यादती मत करो, वह कंबल ले जाओ; नहीं तो मन में सदा के लिए पीड़ा रह जाएगी कि तुम आए भी, खाली हाथ गए। कौन आता है अंधेरी रात में? और हम फकीरों के घर तो कभी कोई आता ही नहीं। तुमने तो हमें धनी होने का सम्मान दिया। अब तुम ऐसा न करो, जल्दी न करो; ले जाओ कंबल, अन्यथा हमें बड़ी पीड़ा रह जाएगी। और दुबारा आओ तो जरा खबर कर देना, हम इंतजाम पहले से कर देंगे, कुछ मिलेगा जरूर। पता ही न हो तो हम भी क्या कर सकते हैं? ऐसे अतिथि की तरह मत आना, एक चिट्ठी डाल देना।

वह आदमी तो घबड़ा गया था। घबड़ाहट में उसे कुछ सूझा नहीं, उसने सोचा, लो कंबल और निकल जाओ; यह आदमी तो कुछ आदमी जैसा नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि या तो पागल है या फिर किसी और लोक का है। जब वह कंबल ले कर भागने लगा तो उस फकीर ने कहा कि देख भाई, दरवाजा अटका दे; और ध्यान रख, कभी भी किसी के घर जाए, दरवाजा जब खोलते हो तो अटका कर जाना चाहिए।

वह चोर भी सोचा कि कहां के आदमी से पाला पड़ गया। और जब वह दरवाजा अटकाने लगा तो उस फकीर ने कहा कि देख धन्यवाद दे दे, पीछे काम पड़ेगा। हमने तुझे कंबल दिया, नाहक चोर क्यों बन रहा है? धन्यवाद दे दे, बात खत्म हो गई।

तो उसने धन्यवाद दिया और भागा। वह पकड़ा गया बाद में। और चोरियां पकड़ीं, यह कंबल भी पकड़ा गया। मजिस्ट्रेट ने इस फकीर को बुलाया; क्योंकि अगर यह फकीर कह दे कि हां, यह चोरी करने घर में आया था तो बस काफी है। इसके वचन को तो भरोसा था मुल्क में। फिर कोई और खोजबीन की जरूरत नहीं, यह निष्णात चोर है। लेकिन उस फकीर ने कहा कि नहीं, इसने चोरी नहीं की, मैंने भेंट दिया था; और इसने भेंट के बाद धन्यवाद भी दिया था, इसलिए बात खत्म हो गई थी।

फकीर तो अदालत से बाहर निकल आया, चोर भी छोड़ दिया गया। वह आकर फकीर के पैर पकड़ लिया, उसने कहा कि मुझे भी साथ ले चलो। अब जब तक तुम जैसा न हो जाऊं तब तक चैन न मिलेगी। तुम भी आदमी गजब के हो। तुमने मेरी इतनी फिक्र की उस रात, कंबल भी दिया और भविष्य की भी चिंता ली कि धन्यवाद भी मुझसे दिलवा लिया कि मैं चोर न रह जाऊं।

उस फकीर ने कहाः जब से हम साधु हो जाओगे तो तुम्हारे लिए कोई चोर न रह जाएगा। और जब तक तुम्हारे लिए कोई चोर है, तब तक जानना कि भीतर कोई चोर मौजूद है। चोर से ही चोर की पहचान होती है। साधु से साधु की पहचान होती है। तुम साधु हो तो तुम चोर में भी साधु को देख लोगे। तुम चोर हो तो तुम साधु में भी चोर को देख लोगे।

आदमी फंसता है, जाल के कारण नहीं; भीतर के मोह, भीतर की माया, भीतर के असत्य, भीतर की मूर्च्छा के कारण।

ना कानों सुना ना आंखों देखा

ऐ सच्चे मालिक, मुझे अब एक तेरी ही आशा है! वह झूठ का मैंने सहारा छोड़ दिया; अब उस कागज की नाव पर यात्रा नहीं करता। सचे तेरी आस!

'कवणु सु अखरु कनणु गुणु, कवणु सु मड़ीआ मंतु। कवणु सु वेसो हउ करी, जितु वसी आवै कंतु।।'

'वह कौन-सा शब्द है फरीद, वह कौन-सा गुण है फरीद, वह कौन-सा अनमोल मंत्र है, कौन-सा वेश मैं धारण करूं मेरे मालिक जिससे कि मैं तुझे अपने बस में कर लूं?'

कौन से कपड़े पहनूं, कौन सा गुण धारण करूं, कौन सा मंत्र पढूं कि मैं अपने स्वामी को बस में कर लूं—

अब और सबको बस में करके देख लिया, भिखारी से भिखारी से भिखारी होता गया। साम्राज्य जीत कर देख लिए, संपत्ति हाथ न लगी। अब तो तुझ मालिक को ही, तुझ मालिक को ही पाना है, और कुछ पाने जैसा न रहा।

जीसस का एक बड़ा प्रसिद्ध वचन है। एक आदमी निकोडेमस जीसस के पास आया और उसने कहा कि मुझे आशीर्वाद दो कि मेरे धन में बढ़ती हो, मेरी समृद्धि बढ़े, मेरे सौभाग्य में हजार गुनी गति हो।

जीसस ने कहाः सीक यी फर्स्ट दि किंगडम ऑफ गॉड, दैन ऑल एल्स शैल बी ऐडेड अनटू यू। तू सिर्फ परमात्मा को खोज, परमात्मा के राज्य को खोज; शेष सब अपने-आप पीछे चला आएगा।

और इससे उलटी बात भी ध्यान रखना, जिसने शेष को खोजा, उसने कभी कुछ न पाया; शेष तो खोया ही, परमात्मा भी खोया। जिसने परमात्मा को खोजा उसने परमात्मा को तो पाया ही, शेष सब भी पा लिया; क्योंकि उसके बाहर और क्या है?

फरीद कहता हैः कौन सा शब्द है, जो तेरे कानों को मीठा हो, मैं वही गाऊं गुनगुनाऊं? कौन-सा गुण है जो मैं ओढ़ लूं, और तेरे प्रेम की नजर मेरी तरफ हो जाए? कौन-सा अनमोल मंत्र है जो कुंजी बन जाए और तेरे हृदय के द्वार मेरे लिए खुल जाएं? कौन-सा वेश धारण करूं? कौन-सा वेश तुझे प्रिय है? मैं वही वेश धारण करने को राजी हूं। लेकिन अब बस तुझे ही बस में करने का खयाल है। और सब दौड़ दौड़ कर देख जी, व्यर्थ पाई।

'कवणु सु अखरु कवणु गुणु....!

'निवणु सु अखरु खवणु गुणु, जिहवा मणीआ मंतु!'

'दीनता वह शब्द है, धीरज वह गुण है, शील वह मंत्र है। तू इसी तीन के वेश को धारण कर बहन, तेरा स्वामी मेरे बस में हो जाएगा।'

'एत्रै भैणे वेस करि, ता वसि आवी कंतु।।'

ये तीन शब्द गौर से समझें।

दीनता वह शब्द है।

जीसस ने कहा हैः ब्लैसिड आर दि मीक। धन्य हैं वे जो दीन हैं।

लाओत्सु के सारे वचन दीनता की महिमा को गाते हैं। धन्य हैं वह जो सबके पीछे है, क्योंकि वही आगे हो जाएगा। धन्य है वह जिसके पास कुछ भी नहीं हैं, क्योंकि सभी कुछ उसका है।

दीनता वह शब्द है।

दीनता का क्या अर्थ है?

दीनता का अर्थ है कि मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं जिसके कारण मैं अकड़ सकूं। न बुद्धि है, न ज्ञान है, न त्याग है, न तपश्चर्या है—मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं जिसके कारण मैं अकड़ सकूं।

अकड़ अहंकार है। और अहंकार के लिए सहारे चाहिए। धन हो तो अकड़ हो सकती है। पद हो तो अकड़ हो सकती है। ज्ञान हो तो अकड़ हो सकती है। त्याग हो तो अकड़ हो सकती है। ऐसा कुछ भी नहीं मेरे पास जिससे मैं अकड़ सकूं। मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे मैं कह सकूं कि मैं हूं। मैं बिलकुल रिक्त हूं।

ध्यान रखना आदमी का मन इतना चालाक है कि वह दीनता के कारण भी अकड़ सकता है। वह यह कह सकता हैः मैं बिलकुल दीन हूं देखो; मैं तुमसे ज्यादा दीन हूं, मुझसे ज्यादा दीन और कोई भी नहीं! तो फिर दीनता ही धन हो गई।

मैंने सुना है, चार ईसाई फकीर एक चौराहे पर मिले। उन चारों के चार बड़े आश्रम थे जंगल में। चारों लौटते थे शहर से उपदेश करके, राह में मिलना हो गया। विश्राम करते थे वृक्ष के नीचे बैठ कर। पहले ईसाई फकीर ने कहा कि तुम्हें पता होना चाहिए कि हमारी जो मोनेस्ट्री है, हमारा जो आश्रम है, उसने आज तक जितने बड़े दार्शनिक दुनिया को दिए; उतने तुम्हारे किसी आश्रम ने नहीं दिए।

दूसरे ने कहाः यह बात बिलकुल ठीक है, जितने बड़े दार्शनिक तुम्हारे आश्रम से पैदा हुए, किसी आश्रम से पैदा नहीं हुए। लेकिन जितने बड़े त्यागी हमने पैदा किए हैं हमारे आश्रम से, उतने बड़े त्यागी तुम्हारे आश्रम या किसी भी आश्रम से कभी पैदा नहीं हुए।

तीसरे ने कहाः यह बात भी सच है; लेकिन पांडित्य में तो तुम हमारा कोई मुकाबला न कर सकोगे। जैसे शास्त्र के जानकार और जैसी बाल की खाल निकालने वाले कुशल चिंतक हमने पैदा किए हैं, किसी ने पैदा नहीं किए।

तीनों पे चौथे की तरफ देखा, जो चुपचाप बैठा था। उसे चुप देख कर उन्होंने कहाः तुम कुछ बोलते नहीं?

उसने कहा कि जहां तक हमारे आश्रम का संबंध है, जैसे दीन, ना-कुछ विनम्र व्यक्ति हमने पैदा किए हैं, उसका कोई मुकाबला नहीं। वी आर दी टॉप इन ह्यूमिलिटी।

टॉप इन ह्यूमिलिटी! शिखर पर हैं विनम्रता के! मगर विनम्रता का कोई शिखर होता है? शिखर ही कि कारण तो विनम्रता नहीं होती। जहां विनम्रता है वहां विनम्रता का भाव भी नहीं हो सकता। विनम्रता का भाव भी हो तो विनम्रता नष्ट हो गई। विनम्रता बड़ी नाजुक बात है। विनम्रता का भाव भी नष्ट कर देता है उसे। उससे ज्यादा बारीक और कमल कोई तंतु नहीं है।

दीनता का अर्थ हैः मैं कुछ भी नहीं हूं। जैसे ही यह घड़ी घटती है कि मैं कुछ भी नहीं हूं, वही परमात्मा सब कुछ हो जाता है। जब तक मैं कुछ हूं तब तक परमात्मा सब कुछ नहीं हो सकता। जितना मैं हूं उतना परमात्मा से कटा रहेगा। जिस दिन मैं शून्य हूं उस दिन परमात्मा पूर्ण है। जब तक मैं पूर्ण हूं तब तक परमात्मा शून्य है।

वही कौन-सा शब्द है?

दीनता वह शब्द है।

वह कौन-सा गुण है?

धीरज वह गुण है।

धीरज को भी समझें। धैर्य का अर्थ होता हैः मिलना निश्चित है; मिलना इतना निश्चित है कि जल्दी क्या है? जल्दी तो इसलिए होती है कि मिलना अनिश्चित है। तुम्हें पक्का भरोसा नहीं कि मिलना होगा, इसलिए तुम जल्दी में होते हो। जब मिलना बिलकुल ही निश्चित हो, जब उसमें रत्ती भर संदेह न हो तो फिर जल्दी क्या? जब मिले, तब मिले। जब मिले तभी जल्दी है।

धीरज का अर्थ हैः चाहता तो हूं इसी क्षण तू मिल जाए; लेकिन अगर अनंत काल में भी मिला तो भी शिकायत नहीं है। अनंत काल भी तेरी प्रतीक्षा में मधुर हो जाएगा। तेरी प्रतीक्षा का ही काल होगा, बेचैनी का नहीं होगा। तेरी राह पर आंखें बिछा कर बैठे रहेंगे। वे क्षण भी सुख के ही क्षण होंगे। तू आनेवाला है!

और अगर धीरज परिपूर्ण हो तो मिलन इसी क्षण हो जाता है। यह बड़ी विरोधाभासी बात है। इसे ऐसा समझने की कोशिश करेंः जितनी तुमने जल्दी की उतनी देर हो जाएगी। क्योंकि तुम्हारी जल्दी बेचैनी और अशांति की खबर है। और जितनी तुमने जल्दी न की उतनी जल्दी हो जाएगी; क्योंकि तुम्हारा जल्दी न करना तुम्हारे शांत, प्रफुल्लित होने का लक्षण है। अगर तुम्हारा धैर्य अनंत है तो इसी क्षण परमात्मा मिल जाएगा। अगर तुम्हारे धैर्य में थोड़ी कमी है—उतनी ही देर लगेगी। जितनी धैर्य में कमी है उतनी देर लगेगी। जितनी धैर्य में कमी है उतनी ही देर लगती है।

मैं एक बहुत पुरानी कहानी तुमसे कहूं जो मैं निरंतर कहता रहता हूं। नारद जाते हैं स्वर्ग की तरफ। एक बूढ़ा फकीर, बड़ा पुराना तपस्वी, वृक्ष के नीचे अपनी तपश्चर्या कर रहा है। नारद उसके पास से गुजरते हैं अपनी वीणा बजाते, तो वह कहता हैः कहां जाते हैं? परमात्मा की तरफ जाते हैं? अगर जाते हों तो पूछ लेना कि मेरे संबंध में अब और कितनी देर है? तीन जन्म हो गए मुझे तपश्चर्या करते। किसी चीज की सीमा होती है, हद होती है। अब यह बात बेहद हुई जा रही है। धैर्य का गुण ठीक है, लेकिन कब तक? जरा पूछ लेनाः और कितनी देर है?

नारद ने कहाः जरूर पूछ लूंगा। हंसी तो नारद को बहुत आई कि यह बात भी कोई प्रार्थना से भरे चित्त की बात है! प्रार्थना से भरे चित्त की कभी कोई धैर्य की सीमा आती है? यह भी कोई प्रेमी का लक्षण है? लेकिन अब ठीक है, पूछ लेंगे।

एक दूसरे वृक्ष के नीचे एक युवक संन्यासी नाच रहा था, अपना एकतारा लिए, उससे उन्होंने मजाक में ही पूछा कि भई, तुझे तो नहीं पूछना कि कितनी देर है? तेरी भी पूछ लेंगे इन्हीं के साथ।

लेकिन उसने जवाब न दिया, वह नाचता ही रहा। थोड़ा नारद को भी हैरानी हुई। कहाः सुनते नहीं, बहरे हो? जा रहा हूं परमात्मा की तरफ, तुम्हारी भी पूछ लूंगा।

लेकिन उसने कोई जवाब न दिया, वह नाचता ही रहा।

कुई दिन बाद नारद वापस लौटे। उस बूढ़े आदमी से कहा...वह बैठा था तैयार; माला का मनका भी हाथ में घूमता रुक गया था। उसने पूछाः पूछा? क्या बोले?

नारद ने कहा कि क्षमा करें, उन्होंने कहा, तीन जन्म और लग जाएंगे। उसने माला फेंकी। लात मार कर मूर्ति हटा दी। पूजा के फूल बिखरा दिए और कहाः बस हो गया बहुत! यह तो अंधेरा है। तीन जन्म से धक्के खा रहे हैं। और तीन जन्म! नहीं, अब नहीं सहा जाता।

नारद उस युवक फकीर के पास गए जो अभी भी नाच रहा था तंबूरा लिए। कहा कि भाई, डर लगता है तुझसे कहें कि न कहें क्योंकि तीन जन्म की बात से ही बूढ़ा संन्यासी इतना नाराज हो गया कि डर था कहीं हमला न कर दे हम पर, जैसे हमारा कोई कसूर हो! लेकिन जब पूछ ही लिया है तो कह देना उचित है। तुम्हारे संबंध में भी पूछा था। नाराज मत होना। परमात्मा ने कहा कि जितने उस वृक्ष में पत्ते हैं जहां वह नाच रहा है युवक संन्यासी, उतने जन्म लगेंगे।

वह संन्यासी और जोर से नाचने लगा। उसने कहाः तब तो पा ही लिया! इतने से पत्ते! संसार में कितने पत्ते हैं! सिर्फ इतने ही पत्ते जितने इस वृक्ष में हैं! जीत लिया, मामला हल हो गया! धन्यवाद!

और कहते हैं, यह कहते ही वह संन्यासी मुक्त हो गया। क्योंकि जिसकी इतनी प्रतीक्षा हो; जो कह सके इतने से पत्ते इस वृक्ष में। पृथ्वी अनंत पत्तों से भरी है, इतने में ही पा लूंगा, तो तो यह किनारा पास ही है। मिल ही गया, अब इसमें देर क्या रही!

जो इस भाव से भरा हो उसे क्षण भर की देर न लगेगी।

इसलिए फरीद कहते हैंः धीरज वह गुण है। दीनता वह शब्द है। धीरज वह गुण है। शील वह अनमोल मंत्र है।

प्रतीक्षा करो अनंत की, लेकिन तैयारी ऐसे रखो जैसे वह अभी आया, अभी आया। शील का यही अर्थ है। जैसे मेहमान घर में आता है तो तुम ताजे तकिए लगाते हो, बिस्तर बनाते हो, घर की सफाई करते हो। तुमको अगर पता हो, आएगा कभी तो कोई आज तो सफाई न करोगे। जब आएगा तब देखेंगे। लेकिन जैसे आता हो अभी, तो तुम घर साफ कर लिए हो। बंदनवार बांध दिए हैं। घी का दीया जला दिया है। वह चाहे अनंत काल में आए, लेकिन तुम्हारे लिए तो अभी आ रहा है। अनंत काल खानी अभी।

यह तो धीरज का लक्षण हुआ; लेकिन सिर्फ धीरज रखकर बैठे रहने से कुछ भी न होगा, क्योंकि धीरज भी आलस्य हो सकता है। तुम आलस्य को धीरज का नाम दे सकते हो कि हम धैर्य वाले हैं, जब जाएगा तब ठीक। लेकिन यह उदासी न हो।

शील का अर्थ हैः तैयारी। शील का अर्थ हैः अपने हृदय के मंदिर को पवित्र करना। शील का अर्थ हैः अपने पात्र को योग्य बनाना। शील का अर्थ हैः अमृत की वर्षा होगी तो स्वर्ण का पात्र तो तैयार कर लूं; परमात्मा घर आएगा, तो मैं उसके योग्य तो हो जाऊं। धीरज करूंगा, धीरज रखूंगा, जब आएगा तब ठीक है; लेकिन मेरी तरफ से तैयारी अभी है। तेरी तरफ से तू अनंत काल में आना, कोई शिकायत नहीं है, लेकिन मेरी तरफ से मैं अभी तैयार हूं। दीन हूं,कुछ भी नहीं है मेरे पास। दावा कुछ भी नहीं कर सकता कि तू अभी आ। दावा तो उसके पास होता है जिसके पास कुछ बल हो, कोई बल मेरे पास नहीं है। प्रतीक्षा अनंत तक करूंगा दिन हूं राह तेरी चाहूंगा। जब भी आएगा तभी धन्यभाग मेरे। तभी अनुग्रह मानूंगा, अहोभाव से नाचूंगा। लेकिन तैयार अपने को रखा है जैसे तू अभी आता है।

पुरानी लाओत्सु की कहावत हैः सीखो ऐसे जैसे यह आखिरी दिन हो, और जीयो ऐसे भी जैसे सदा रहना हो। बड़ा कठिन है! जीयो ऐसे जैसे यह आखिरी दिन हो। कल पर मत टालो। जो भी करना है आज कर लो अभी कर लो। यही क्षण एकमात्र क्षण है। हाथ में बस यही है। कल की सोचकर मत टालो। जायो ऐसे जैसे आज आखिरी दिन हो; यह सूरज ढलेगा और तुम भी ढलोगे।

और लाओत्सु उसी के साथ यह भी कहता हैः जीयो ऐसे भी जैसे सदा यहां रहना हो। तो जल्दी भी मत करो। करने में तो अभी कर लो, लेकिन प्रतीक्षा अनंत की रखो। बीज तो अभी बो दो, लेकिन फल जब आएंगे तभी ठीक है। कोई जल्दी नहीं है; जैसे अनंत तक यहां रहना हो; जैसे कभी यहां से जाना हो।

परमात्मा के मिलने के लिए तैयारी तो ऐसी करो जैसे अब आया; अब आया; द्वार पर दस्तक पड़ती है; उसके चरणचिह्न सुनाई पड़ने लगे चरण की आवाज आने लगी, पदचिह्न पड़ने लगे द्वार पर; पगध्वनि आ गई; अभी आ ही रहा है—तैयार तो ऐसे रहो। और प्रतीक्षा इतनी रखो कि अनंत काल में भी आएगा तो भी तुम्हारे भीतर शिकायत न होगी।

'दीनता वह शब्द है, धीरज वह गुण है, शील वह मंत्र है—इन तीन के ही वेश को धारण कर बहिन।'

फरीद अपने से ही कह रहा है, क्योंकि अब वह स्त्री हो गया है। अब वह पुरुष नहीं है। अब वह परमात्मा पर आक्रमण नहीं कर रहा है। अब तो स्त्री की तरह अपने हृदय के द्वार को खोलकर प्रतीक्षा कर रहा है।

इन तीन के वेश को धारण कर बहिन, तेरा स्वामी तेरे बस में हो जाएगा।

'मति होंदी होइ इआणा, तान होंदे हाइ निताणा।'

प्रभु के ऐसे विरले ही भक्त हैं तो बुद्धिमान होते हुए भी सरल हैं।

'अणहोंदे आपु वंडाए, कोई ऐसा भगत सदाए।'

जो बलवान होते हुए भी निर्बल हैं और जो अकिंचन होते हुए भी अपना सर्वस्व दे डालते हैं।

एक भी अप्रिय बात मुंह से न निकाल, क्योंकि सच्चा मालिक हर प्राणी के भीतर है। किसी के दिल को तू मत दुखा, क्योंकि हर दिल एक अनमोल रत्न है।

'इक फिक्का ना गालाई, सभना मैं सचा धणी। हिआउ न कैही ठाहि, माणिक सभ अमोलवै।।'

हर दिल एक रत्न है; उसे दुखाना किसी भी तरह अच्छा नहीं है। अगर तू प्रीतम का आशिक है तो किसी के भी दिल को मत दुखा।

'सभना मन माणिक, ठाहणु मूलि म चांगवा। जे तउ पिरी आसिक, हिआउ न ठाहै कहीदा।।'

एक-एक शब्द को गौर से समझें।

प्रभु के ऐसे विरले ही भक्त हैं जो बुद्धिमान होते हुए भी सरल हैं। बुद्धू होकर सरल होना आसान है। इसलिए सरल व्यक्ति बुद्धू जैसा मालूम होता है। और बुद्धू से भी सरल होने का धोखा होता है। लेकिन होना ऐसा चाहिए कि बुद्धिमान होते हुए कोई सरल हो।

बुद्धि बड़ी चालाक है। इसलिए बुद्धि जैसे ही शिक्षित होती है, दीक्षित होती है, चालाकी प्रविष्ट हो जाती है। इसलिए शिक्षा जितनी दुनिया में बढ़ती है, लोग उतने चालाक, बेईमान, धोखेबाज होते चले जाते हैं। अशिक्षित आदमी सरल होता है, क्योंकि बुद्धू होता है। शिक्षित आदमी जटिल हो जाता है, क्योंकि बुद्धू नहीं रह जाता, उसकी सरलता खो जाती है।

लेकिन फरीद ठीक कह रहा है। वह कह रहा है, सरलता अगर बुद्धू होकर हो तो वह भी क्या सरलता? और अगर बुद्धिमान होकर चालाक हो गए तो वह कैसी बुद्धिमानी? बुद्धिमानी होकर कोई सरल हो—कभी कोई बुद्ध पुरुष ऐसा ही होता है: बुद्धिमान होकर सरल! बुद्धिमत्ता अप्रतिम होती है, आखिरी होती है; लेकिन चालाकी नहीं होती। सरलता ऐसी होती है छोटे बच्चे जैसी, बुद्धिमानी ऐसी होती है बूढ़े जैसी। प्रौढ़ता वृद्ध की, सरलता बच्चे की।

प्रभु के ऐसे विरले ही भक्त हैं जो बुद्धिमान होते हुए सरल हैं। और यही साधना है। साधना है बुद्धि को, चैतन्य को, होश को; लेकिन सरलता नहीं खो देनी है, सरलता को भी साथ में बचाते चलना है। अन्यथा मंहगा हो जाएगा। बुद्धिमान तो हो जाओगे, सरलता खो गई—पंडित ही रही जाओगे, प्रज्ञावान न हो पाओगे। अगर बुद्धिमत्ता के साथ सरलता भी बच गई तो प्रज्ञा का आविर्भाव होता है।

जो बलवान होते हुए निर्बल हैं...।

निर्बल होकर तो निर्बल होने में कोई खास बात नहीं है, लेकिन जो बलवान होते हुए भी निर्बल हैं, उनकी निर्बलता की एक खूबी है, एक महिमा है।

अगर तुम कायर हो, इसलिए निर्बल हो; अगर भयभीत हो, इसलिए भगवान के सामने झुके हो; अगर तुम्हारा भगवान तुम्हारे भय से पैदा हुआ है तो दो कौड़ी का है।

नहीं, भगवान तुम्हारे अभय से पैदा होना चाहिए। डर के मत झुकना, प्रेम से झुकना। निर्बल होकर मत झुकना; क्योंकि निर्बलता में तो कोई भी झुक जाता है। और जब निर्बलता में तुम झुकते हो तो तुम झुकते हो तो झुकने में आनंद नहीं होता, झुकने में एक पीड़ा होती है कि निर्बल हूं, इसलिए झुक रहा हूं।

नहीं, बलवान होते हुए भी निर्बल होना।

बलवान होते हुए निर्बल होने का अर्थ है: बलवान होने की अकड़ मत लेना। तो निर्बलता तुम्हारा भाव रहेगी, बलवान तुम्हारी स्थिति होगी।

'और जो अकिंचन होते हुए भी अपना सर्वस्व दे डालते हैं...।'

यह बड़ी कठिन बात है। यह तीसरी बात सबसे ज्यादा कठिन है, अकिंचन होते हुए अपना सर्वस्व दे डालते हैं।

जिनके पास कुछ है, वे तो कुछ दे सकते हैंः धन है, धन दे सकते हैं। लेकिन जिनके पास कुछ भी नहीं है, वे क्या देंगे अकिंचन, दानी—उसके मुंह से फिर किसी के प्रति अप्रिय बात नहीं निकलती।

एक भी अप्रिय बात मुंह से न निकले, क्योंकि सच्चा मालिक हर प्राणी के अंदर है—तब तो फिर उसे सब जगह उसी की झलक दिखाई पड़ने लगती है।

एक ही ज्योति जल रही है सभी दीयों में। और एक ही प्राण प्रज्वलित है सभी घंटों में।

किसी के दिल को तू मत दुखा, क्योंकि हर दिल एक अनमोल रत्न है। और हर दिल एक रत्न है, उसे दुखाना किसी भी तरह अच्छा नहीं। अगर तू प्रीतम का आशिक है तो किसी के भी दिल को मत दुखा, किसी के दिल को मत सता।

भक्ति फरीद की बढ़ते-बढ़ते महावीर की अहिंसा हो जाती है। भक्ति बढ़ते-बढ़ते बुद्ध की करुणा हो जाती है। शुरू हुआ प्रेम परमात्मा से, अंत होता है प्रेम समस्त से, सर्व से। शुरू तो हुई थी गंगोत्री, बड़ी क्षीण धार थी; जब सागर में गिरती है तो गंगा बहुत बड़ी हो जाती है।

शुरू तो होता है ऐसे ही जैसे आशिक का माशूक से, माशूक का आशिक से; लेकिन जैसे-जैसे प्रेम की धारा गहरी होती है, सभी में वही परमात्मा दिखाई पड़ने लगता है।

और एक ऐसी घड़ी आती है कि उसके सिवाय कोई भी दिखाई नहीं पड़ता। सभी घर उसके मंदिर हो जाते हैं। और हर आंख में वही झांकता है। और हर प्राण में वही धड़कता है। और जिस दिन भक्ति इस ऊंचाई पर पहुंचती है, उस दिन भक्त भगवान हो गया। उस दिन भक्त और भगवान में कोई भेद नहीं।

ऐसी यह प्रेम की कथा है! अकथ कहानी प्रेम की!

आज इतना ही।

न कानों सुना न आंखों देखा

दसवां प्रवचन

प्रश्न-सार

दीनता, धीरज और शील को कैसे साधें?

प्रकृति के कण-कण की भगवत्ता और बुद्धत्व की भगवत्ता के गुणधर्म में क्या फर्क है?

क्या कभी भगवान भी भक्त होता है?

सार-असार की सीमा-रेखा कहां है?

स्वप्नों से रहित जीवन भी रसपूर्ण कैसे होता है?

फरीद जैसे संत हमें इतने आत्मीय क्यों लगते हैं?

परमात्मा ने हमें बनाया—फिर भी उसका विस्मरण क्यों?

समाधि समाधान है

पहला प्रश्नः संत फरीद ने दीनता, धीरज और शील की बात कही, और आपने उनकी व्याख्या करते हुए उन्हें बहुत महत्वपूर्ण बताया। कृपापूर्वक बताएं कि क्या ये गुण बाहर से सीखे जा सकते हैं, बाहर से साधे जा सकते हैं?

धर्म को बाहर से सीखने का कोई उपाय नहीं है। और जिसने धर्म को बाहर से सीखना चाहा, वह धर्म के नाम पर सिर्फ अपने को धोखा देगा।

धर्म तो आविर्भूत होता है भीतर से। वह तुम्हारे भीतर के जागरण का परिणाम है।

धर्म आचरण नहीं है। भूल कर भी धर्म को आचरण मत समझना। इसका यह अर्थ नहीं है कि धर्म से आचरण रूपांतरित नहीं होता; रूपांतरित होता है, लेकिन आरोपित नहीं किया जाता। तुम बदलते हो इसलिए तुम्हारा व्यवहार बदल जाता है। तुम नए हो जाते हो इसलिए तुम्हारे व्यवहार में नई गंध आ जाती है। लेकिन तुम्हारा व्यवहार बदलने से तुम न बदलोगे। तुम तुम्हारे व्यवहार से बहुत बड़े हो। तुम जो करते हो, उससे तुम्हारा होना बहुत विराट है। तुम्हारा कृत्य तुम्हें न छू सकेगा। कृत्य तो ऐसा है जैसा वृक्षों पर लगे पत्ते हैं, हजारों हैं। और ध्यान रखना, वृक्ष के पत्ते को तुम रंग डालो, इससे कुछ फर्क न पड़ेगा; वृक्ष में जब नए पत्ते आएंगे तब फिर वे उसी रंग के होंगे जिस रंग के थे। तुम्हारे रंगे पत्ते दिन-दो-दिन के लिए धोखा दे दें, इससे ज्यादा काम के नहीं है। वृक्ष की जड़ में ही कोई रूपांतरण हो, जड़ से ही बदलाहट हो, तो वृक्ष में नए रंग, नए ढंग आ सकते हैं।

जीवन को बदलने के दो उपाय हैं। एक है कि तुम बाहर से जीवन पर रंग-रोगन कर लो। नीति यही करती है। इसलिए नीति के पास तुम धर्म के संबंध में सभी झूठे सिक्के पाओगे। जैसे धर्म कहता हैः दीनता! अगर भीतर से आएगी तो इस दीनता में कोई भी अहंकार न होगा; अगर बाहर से रोपोगे तो इस दीनता में अहंकार होगा। बाहर से तुम दीनता को रोपोगे तो तुम दिखलाना चाहोगे कि तुम दीन हो। तुम चाहोगे कि लोग जानें कि तुम दीन हो। तुम जगह-जगह उछालते फिरोगे अपनी दीनता को। प्रदर्शन होगा उसका।

एक फकीर सुकरात को मिलने आया। वह बड़ा दीन फकीर था। उसके कपड़े फटे थे। और सुकरात से जब वह बात करने लगा तो सुकरात थोड़ा हैरान हुआ, क्योंकि आदमी के कपड़े तो फटे थे लेकिन अहंकार बिलकुल ताजा था,साबुत था। कपड़ों में तो छेद थे, जराजीर्ण थे, ऊपर से तो गरीबी थी; लेकिन कपड़ों के छेदों से तुम्हारा अहंकार ही झलक रहा है, और कुछ भी नहीं।

अगर दीनता तुमने ऊपर से थोपी तो तुम्हें दीनता की अकड़ पैदा होगी। लेकिन अगर दीनता भीतर से आई, तो तुम्हारे अहंकार को पूरा बहा ले जाएगी। तुम भूल ही जाओगे कि तुम दीन हो। तुम्हें याद ही न रहेगी कि तुम दरिद्र हो। तुम इसकी घोषणा न करते फिरोगे। कौन घोषणा करेगा? भीतर एक शून्य छा जाता है।

तो एक तो शून्य की दीनता है, शून्य से उपजी दरिद्रता है, जिसको जीसस ने पुअर इन स्प्रिट कहा है—वे जो अपने भीतर से आत्मा से दीन हो गए हैं। और एक तुम्हारे तथाकथित साधु, संन्यासी, मुनियों की दीनता है, जो उन्होंने ऊपर से थोप ली है। उनकी आंखों में जरा आंख डाल कर देखना और तुम वहां अहंकार को ही झांकता पाओगे।

फरीद कहता हैः धीरज! भीतर से जो धीरज आएगा, उस धीरज में परम शांति होगी, कोई तरंग भी न उठेगी बेचैनी की। बाहर से जो धीरज होगा, वह केवल धीरज का आश्वासन होगा। बाहर से जो धीरज होगा वह धीरज कम, एक तरह की सांत्वना होगी। तुम कहोगेः घबड़ाओ मत, ज्यादा देर नहीं है, बस अब आने ही आने को हुआ प्रीतम; अब प्यारा आता ही होगा; थोड़ा धीरज और रख मन, बस अब आने में देर नहीं है।

ऐसा तुम समझाओगे। तुम्हारा धीरज समझावत होगी। तुमने अपने को समझा-बुझा कर बिठा लिया है, लेकिन भीतर से तो तुम्हारा अधैर्य जगता रहेगा। और तुम्हारे बाहर क्या है, यह परमात्मा नहीं देखता; तुम्हारे भीतर क्या है, वही कसौटी है।

धीरज जिसके भीतर फलित हुआ है वह तो फिक्र ही छोड़ देता है, वह आएगा कि नहीं आएगा; समझाता भी नहीं कि अब आता ही होगा। जिसको धीरज भीतर से आना हो ही गया। वह तो उसके धीरज में ही आ गया,

अब कुछ और अलग से आने की बात नहीं है। अब न आए अनंत तक तो भी भक्त पीछे लौट कर न देखेगा, अब तक आए नहीं। शिकायत न होगी।

और दोनों धीरज में बड़ा फर्क है। एक धीरज दिखावा है, एक धीरज सत्य है।

शील!—फरीद कह रहा है। शील का अर्थ है: पवित्रतम आचरण।

तो एक तो पवित्रता होती है, जो तुम्हें समाज सिखलाता है: क्या करो, क्या न करो। हर समाज की पवित्रता की धारणाएं अलग हैं। हिंदू किसी बात को पवित्र मानते हैं, मुसलमान किसी बात को पवित्र मानते हैं और जैन किसी तीसरी बात को पवित्र मानते हैं। अगर तुम जैन घर में पैदा हुए तो तुम्हारी पवित्रता और तुम्हारा शील और आचरण मुसलमान से भिन्न होगा, हिंदू से भिन्न होगा, बौद्ध से भिन्न होगा; क्योंकि वह तुमने सिखा है। लेकिन अगर भीतर से शील आया तो तुम अचानक पाओगे, तुम्हारे आचरण का न तो हिंदू से, न मुसलमान से, न ईसाई से कुछ लेना-देना है। अब तुम्हारे भीतर एक आचरण पैदा हुआ जो तुम्हारा अपना है। शील तुम्हारा होगा तब। तब संस्कार न होगा। तब तुम्हारे अनुबोध से आएगा, तुम्हारी समझ से आएगा। तुम ठीक करोगे, क्योंकि तुम्हारे पास ठीक देखने का ढंग होगा। दूसरे लोग कहते हैं, क्या ठीक है, इस कारण नहीं, तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि क्या ठीक है। सम्यक दृष्टि होगी तुम्हारे पास।

इन तीनों गुणों को बाहर से साधने का कोई उपाय नहीं, भीतर से ही साधा जा सकता है। बाहर से साधने का अर्थ है, तुम उत्सुक हो कि दूसरे लोग तुम्हें कैसा मानते हैं। भीतर से साधने का अर्थ है कि तुम उत्सुक हो कि तुम भीतर से कैसे हो। दूसरों से क्या लेना है, क्या प्रयोजन है? दूसरे समझते हों कि तुम अधैर्यवान हो, और तुम धैर्यवान हो—क्या अंतर पड़ता है? क्या समझाने जाना है उनको? उनसे क्या प्रयोजन? दूसरे समझते हैं, तुम आचरणहीन हो। तुम आश्वस्त हो अपने आचरण से, अब तुम किसी को समझाने, दावा करने, प्रमाण देने तो नहीं जाओगे। क्या प्रयोजन है? कौन किसको समझा पाया है? और जब तुम आचरणवान हो, बात समाप्त हो गई।

परमात्मा यह नहीं पूछेगा कि दूसरे तुम्हारे संबंध में क्या कहते थे; परमात्मा के सामने जब तुम खड़े होओगे, तुम्हारा अंतस झलकेगा।

कैसे इन्हें भीतर से साधें? बाहर से साधना आसान है। भीतर से साधना बड़ा कठिन है। क्योंकि बाहर से साधने में बदलना तो पड़ता नहीं। तुम तो तुम ही रहते हो, ऊपर से थोड़ा कपड़े बदल लेते हो। तुम तो तुम ही रहते हो, तुम्हारी कुरूपता तो कुरूपता ही रहती है, ऊपर से थोड़ा सुगंध छिड़क लेते हो।

बाहर से साधना तो बिलकुल आसान है। वह ता नाटक है। वह तो अभिनय है। भीतर से साधना तो कठिन है; क्योंकि तुम्हें बदलना होगा। इंच-इंच बदलाहट करनी होगी। नए को जन्म देना होगा, पुराने को विदा करना होगा। क्रांति होगी। आग से गुजरोगे।

भीतर से कैसे साधोगे? और क्या आधार होगा भीतर के साधने का।

दो आधार हैं, जैसा मैंने तुमसे फरीद की चर्चा में बार-बार कहा। एक आधार प्रेम है और एक आधार ध्यान है। जिसको भीतर से साधना है, या तो वह परमात्मा के गहन प्रेम में पड़ जाए। क्योंकि जब तुम उसे वस्तुतः प्रेम करने लगते हो, तो वही प्रेम तुम्हें बदल देगा। तुमने प्रेम किया और तुम बदले। क्योंकि जिसे तुमने प्रेम किया, उसे तुम धोखा तो न दे सकोगे। और जिसे तुमने प्रेम किया, चाहा, पूरे मन से चाहा, तुम उसके लिए अपने को तैयार भी करोगे। जिसको बुलाया है, उसके पात्र भी होना पड़ेगा। निमंत्रण भेजा है तो शील भी निर्मित होगा। लेकिन इसे तुम्हें कुछ करना न होगा; तुम्हारा प्रेम ही कर लेगा।

तो या तो तुम प्रेम में पड़ जाओ अस्तित्व के, तब तुम में फूलों जैसी गंध, सुबह की ओस जैसी ताजगी अपने आप विदा होने लगेगी। और एक अनंत धैर्य तुममें आ जाएगा। क्योंकि उसकी याद भी जब इतना सुख देगी, उसका स्मरण भी जब तुम्हें इतनी पुलक और नृत्य से भर जाएगा, तो उसके मिलन की तो बात ही क्या

कहनी! उसके मिलन का खयाल भर काफी होगा; मिलन तो बहुत दूर हो तो भी कोई अंतर नहीं पड़ता। उससे मिलना होने वाला है—बस इतना काफी होगा। इससे ही तुम धैर्य से भर जाओगे। तुम्हारे मन की झील पर कोई लहर न उठेगी, सब लहरें सो जाएंगी। सन्नाटे में चुप हो कर तुम उसकी प्रतीक्षा करोगे। मौन होकर प्रतीक्षा करोगे : कहीं बेचैनी में वह आए और तुम चूक न जाओ। कहीं ऐसा न हो कि तुम विचारों में उलझे रहो, वह द्वार पर दस्तक दे और तुम पहचान न पाओ। कहीं ऐसा न हो कि वह किसी ऐसे रूप में आए और तुम उसकी प्रत्यभिज्ञा न कर सको। वह तो आता है हजार रूपों में : हजार बहानों से तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता है; बहुत-बहुत रूपों से तुम्हें पुकारता है, बुलाता है, रिझाता है। तुम ही अपने भीतर इतने बेचैन हो, और उलझे हो कि तुम्हें ये बातें समझ में नहीं आतीं। तुम कुछ का कुछ समझ लेते हो।

तो जैसे ही तुम उसके प्रेम से भरोगे, तुम सन्नाटे से भर जाओगे।

तुमने कभी दो प्रेमियों को पास बैठे देखा है? वे चुप हो जाते हैं। बोलना भी बाधा मालूम पड़ती है। बोलने से भी यह जो सन्नाटा दोनों के बीच चल रहा है, टूट जाएगा। शब्द उपद्रव करेंगे। वे चुप हो जाते हैं। एक गहन मौन में उनका मिलन होता है।

यह तो साधारण प्रेमियों की बात है। जब तुम अस्तित्व के प्रेम में पड़ोगे, परमात्मा के, तब तो तुम बिलकुल चुप हो जाओगे। उसका प्रेम ही तुम्हें उठा लेगा तुम्हारे गर्त से। उसका प्रेम ही सेतु बन जाएगा, सहारा बन जाएगा। तुम अपनी गहरी अंधेरी खाइयों के बाहर चले आओगे। सूरज की तरफ आंख उठाते ही तुम्हारे जीवन की यात्रा प्रकाश की तरफ हो जाती है।

एक तो मार्ग है प्रेम। एक मार्ग है ध्यान। अगर तुम प्रेम न कर पाओ; तुम कहो, किसे प्रेम करें; तुम पूछो, कहां है वह, पहले पता हो तभी तो प्रेम करेंगे; अगर तुम अज्ञात को प्रेम न कर पाओ—और सब प्रेम अज्ञात का प्रेम है। जब तुम किसी साधारण व्यक्ति के भी प्रेम में पड़ जाते हो तो तुम जानते हो, कौन है वह? पहचानते हो? कुछ पता ठिकाना है? शकल-सूरत पहचानने से क्या होता है; कौन है भीतर? वहां तो अजनबी छिपा है। एक स्त्री के प्रेम में पड़ो, एक पुरुष के प्रेम में पड़ो, एक छोटे बच्चे से लगाव लग जाए—कौन है वहां भीतर? पहचाने हो? ठीक-ठीक पता कर लिया? प्रेम जैसा गहन संबंध बांधने चले हो, पहचान ठीक से कर ली है या नहीं?

तो भीतर तो अजनबी है। सभी प्रेम अज्ञात का प्रेम है। प्रेम अज्ञात की ही घटना है।

तो अगर तुम पूछो कि कहां है परमात्मा, पहले पता हो, पहले पता हो, पहले ठीक से जांच परख कर लें, पुलिस में जा कर पुलिस के बहीखातों में देख लें कि इस आदमी के संबंध में क्या-क्या लिखा है, कोई काले करनामे तो नहीं हैं, औरों से पूछ लें जो इसके प्रेम में पड़े हैं कि पड़ कर कुछ पाया है कि गंवाया है—अगर तुमने इतनी होशियारी बरतनी चाही तो तुम प्रेम में न पड़ सकोगे। इतना विचार, इतनी चालाकी : प्रेम के लिए दरवाजा बंद हो जाता है।

प्रेम तो निर्दोष मन की प्रार्थना है। वह तो भोलेपन का भाव है। वह तो एक छोटे बच्चे के साथ, जैसे छोटे बच्चा बाप का हाथ पकड़ कर चल पड़ता है, बिना फिक्र किए कि बाप फिक्र किए कि बाप कहां ले जाएगा। गड्ढे में गिराएगा, क्या करेगा—वैसा ही है। प्रेम तो एक ट्रस्ट, एक श्रद्धा है।

अगर वह न हो सके तो ध्यान मार्ग है। घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं। प्रेम न हो सके तो जबरदस्ती करने की कोशिश में मत पड़ना; क्योंकि जबरदस्ती प्रेम होता ही नहीं। न हो तो समझना कि वह द्वार तुम्हारे लिए नहीं है। लेकिन कुछ चिंता की बात नहीं है; और भी एक द्वार है। और यह मेरी प्रतीति है कि जो भी प्रेम में असमर्थ पाता है, ध्यान में एकदम समर्थ है। जो ध्यान में असमर्थ पाता है, प्रेम में समर्थ है। परमात्मा ने तुम्हें कितने ही दूर भेजा हो, दरवाजे बंद नहीं कर लिए हैं। और तुम कितने ही दूर चले आए होओ उसकी तरफ पीठ करके,

लेकिन उस तरफ पहुंचने के द्वार सदा ही खुले हैं। हां, गलत द्वार पर दस्तक मत देना, अपना द्वार ठीक से पहचान लेना।

अगर प्रेम न कर सको तो ध्यान।

ध्यान का अर्थ है: शांत हो जाना अपने में, बिना किसी के सहारे के; मौन हो जाना बिना किसी की मौजूदगी के; अपने तइं मौन हो जाना; अपने एकांत में ही लीन हो जाना। फिर न तो किसी की प्रतीक्षा करनी है, इसलिए धीरज का सवाल नहीं है। प्रतीक्षा ही नहीं करनी है तो अधैर्य कहां से होगा? तुम ही हो, तुम काफी हो—बस इसी से धीरज पैदा हो जाता है। इसको धीरज कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि इसमें अधैर्य को भी मिटाने की भी बात नहीं है। कोई आने को ही नहीं है, किसी के लिए तैयारी ही नहीं है। लेकिन तुम जब अपने भीतर उतरते हो तो तुम पाते हो, जितने तुम पवित्र होते हो उतने आनंदित होते चले जाते हो। अब शील परमात्मा को पाने का उपाय नहीं है; अब तो शील भीतर का आनंद है। तुम जितने पवित्र होते हो उतना ही मधुर संगीत बजने लगता है। पवित्रता की गीत पैदा होता है; वह तुम्हें खींचता चला जाता है। शील बढ़ता चला जाता है।

किसी और के लिए अच्छे होने के लिए नहीं, अपने ही प्रति अच्छे होने की बात है। और जैसे-जैसे तुम शांत होते हो, शील बढ़ता है, धैर्य उपलब्ध होता है—तुम अचानक पाते हो, भीतर एक शून्य उतरने लगा। पूर्ण तो तुम्हें नहीं उतरेगा; क्योंकि तुम्हारी भाषा में ध्यानी की भाषा में, परमात्मा का नाम शून्य है, पूर्ण नहीं। प्रेमी की भाषा में शून्य का नाम पूर्ण है तो वह शून्य मालूम होता है। प्रेमी जब उसे देखता है तो वह पूर्ण मालूम होता है। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ये देखने के ढंग पर निर्भर हैं।

इसलिए बुद्ध, महावीर शून्य की बात करते हैं। कृष्ण, मीरा, चैतन्य, पूर्ण की बात करते हैं। इनमें कुछ विरोध नहीं है, हो ही नहीं सकता। शब्द कितने ही विपरीत हों, इनकी अनुभूति तो एक है।

तो या तो अपने भीतर उतरते जाओ, धीरे-धीरे तुम शून्य होओगे, दीन हो जाओगे। लेकिन उस दीनता अहोभाग है। उस शून्य में कुछ भी न बचेगा, सब खो जाएगा। तुम परिपूर्ण दीन हो जाओगे। लेकिन उस दीनता से बड़ी कोई संपदा नहीं है। उस दीनता में ही धैर्य होगा, क्योंकि न कहीं जाना है, न कहीं कुछ पाना है। स्वयं को तो पाए ही हुए हो। वह मिली ही हुई बात है। वहां तो तुम पहुंच ही गए हो। वह मंदिर तो सदा तुम्हारे साथ ही था; तुमने आंख न फेरी थी उस तरफ, बस इतनी ही बात थी। अब आंख देख ली मोड़ कर, पहचान गए। अब धैर्य है। अब एक शील की सुगंध उठनी शुरू होती है।

तो चाहे प्रेम चाहे ध्यान—पर घटनाएं भीतर से बाहर की तरफ बहेंगी, बाहर से भीतर की तरफ नहीं। जैसे गंगोत्री से गंगा बहती है, ऐसे ही तुम्हारे भीतर की गंगोत्री से गंगा बहेगी तुम्हारे जीवन की। गंगा गंगोत्री की तरफ नहीं बहती है। तो बाहर से तुम्हारे भीतर के स्रोत की तरफ आचरण न बहेगा। वैसा आचरण पाखंड है। और वैसे आचरण से कोई कभी रूपांतरित नहीं होता; उलटे, जो समय रूपांतरण के काम आ जाता, वह व्यर्थ गंवा दिया जाता है। हां, पाखंड से तुम चाहे दूसरों को धोखा दे लो, अपने को धोखा न दे पाओगे। और जिसने अपने को धोखा न दिया, वह व्यक्ति आज नहीं कल क्रांति में से गुजर ही जाएगा।

दूसरा प्रश्न: एक भगवत्ता है जो प्रकृति के कण-कण में, नदी, झरने में, वृक्ष, पक्षी के गीत में बसती है; और एक भगवत्ता है जो किसी मनुष्य के बुद्धत्व के माध्यम से प्रकट होगी है। क्या दोनों एक ही हैं या उनके गुणधर्म में कुछ फर्क है?

दोनों एक ही हैं। गुणधर्म में कोई फर्क भी नहीं है। लेकिन अभिव्यक्ति में भेद है।

पक्षी गाते हैं, बुद्धपुरुषों के कंठ से भी एक गीत पैदा होता है। लेकिन पक्षी बेहोशी में गाते हैं। बुद्धपुरुष का गीत परिपूर्ण होश का है, जागरण का है।

पक्षी गाते हैं, उन्हें पता है कि वे गाते हैं।

तो एक तो गीत सोए हुए प्राणों से पैदा हो रहा है बौर एक गीत जाग्रत पैदा हो रहा है। गुणधर्म में तो कोई फर्क नहीं है, क्योंकि गीत एक ही स्रोत से आ रहा है वह जो चैतन्य की गंगोत्री है वहीं से आ रहा है। लेकिन अभिव्यक्ति में फर्क है।

जैसे तुम कभी रात सो गए और तुमने नींद में गुनगुनाया, तुमने एक गीत की कड़ी गाई, या प्रार्थना का स्वर उठाया—यह हो सकता है कि उसी समय मंदिर में जाग कर कोई कड़ी को दोहराता हो। उन कड़ियों में कोई भेद न होगा। जहां से आती हैं वहां से भी कोई भेद नहीं है। तुम नींद में गुनगुनाओ या जाग कर—तुम ही गुनगुनाते हो। लेकिन अभिव्यक्ति में फर्क है। तुम नींद में गुनगुना रहे हो, तुम्हें पता नहीं तुमने क्या गुनगुनाया। तुम्हें यही पता नहीं कि तुमने गुनगुनाया। सुबह उठ कर तुम भूल ही जाओगे। कोई दूसरा तुम्हें याद दिलाएगा तो भी तुम मानोगे न कि यह कैसे हो सकता है कि मैं नींद में गुनगुनाऊं; नहीं, ऐसी ही अफवाह उड़ा दी होगी किसी ने।

लेकिन जिसने जाग कर गुनगुनाया...!

ऐसा समझो कि तुम्हें इस बगीचे में लाया गया। तुम शराब पीए बेहोश थे। फूलों की गंध तुम्हारे नासापुटों को छुएगी। वृक्षों की हरियाली तुम्हारी आंखों को स्पर्श देगी। बगीचे की ठंडक तुम्हारे रोएं-रोएं को शीतल करेगी। पक्षियों के गीत भी तुम्हारे कानों से टकराएंगे। लेकिन तुम्हें कुछ भी पता न होगा, तुम शराब पीए बेहोश हो। फिर दूसरे दिन तुम होश में आए, शराब नहीं पीए थे, भीतर जलता हुआ होश का दिया था—वे ही पक्षी थे, वे ही वृक्ष थे, वही फूल थे, वही आकाश था; लेकिन अब बात ही और है।

बुद्धपुरुषों से जो प्रकट होता है वह वही होता है जो झरनों और पहाड़ों से प्रकट हो रहा है। लेकिन बुद्धपुरुषों में झरने और पहाड़ जाग गए हैं। बुद्धपुरुषों में पक्षी और वृक्ष होश से भर गए हैं। पक्षी और वृक्षों में बुद्ध सोए हुए हैं। चट्टान से चट्टान में भी भविष्य का कोई बुद्ध सोया है। परम बुद्धत्व में भी अतीत की कोई चट्टान जागी है। इसलिए चट्टान पर भी सम्हाल कर पैर रखना, पवित्र भूमि है। क्षमा मांगना जब पैर रखो। और चट्टान जब तुम्हें पार करने का मार्ग बने, सीढ़ी बने तो धन्यवाद देना, क्योंकि कोई बुद्धपुरुष सोया है।

चट्टानों में और बुद्धपुरुषों में फासला है—फासला गुण का नहीं है, फासला केवल सोने और जागने का है।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा है, भक्त ही भगवान हो जाता है। क्या कभी भगवान भी भक्त होता है?

भगवान तो भक्त हुआ ही नहीं है, अन्यथा भक्त आएगा कहां से?

तुम भगवान हो! तुम्हें पता न हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

भगवान तो भक्त हुआ ही है वह घटना तो घटी ही है, उसको घटने की अब और कोई जरूरत नहीं है। वह तो प्रतिपल वही घट रही है। अब तो दूसरी घटना को पूरा करना है कि भक्त भगवान हो। भगवान ही है—अनेक-अनेक रूपों में, अनंत-अनंत अभिव्यक्तियों में। गहरे खोजोगे तो सदा उसी को पाओगे। जैसे हर लहर में खोजोगे तो सागर को पाओगे, ऐसे हर अभिव्यक्ति में खोजोगे तो उसी को पाओगे।

जीसस ने कहा हैः उठाओ पत्थरों को, मुझी को छिपा पाओगे।

वह तो मौजूद ही है। भगवान तो भक्त हो ही गया है। श्रृंखला पूरी हो जाएगी, अगर भगवान जैसे भक्त हुआ, वैसे भक्त पुनः भगवान हो जाए—तो यात्री अपने घर वापस लौट जाएगा; तो यात्रा पूरी हो जाएगी।

चौथा प्रश्नः आज हमें जो सारपूर्ण लगता है वही कल असार हो जाता है। सार और असार के बीच सीमा-रेखा कहां है? क्या आप बुद्धपुरुषों को सार-असार साथ-साथ दिखते हैं?

जो तुम्हें आज सार लगता है, कल असार हो जाता है। जो आज असार हो जाता है। जो आज असार लगता है, कल सार हो सकता है। क्यों क्योंकि तुमने जाग कर नहीं देखा है। बिना जागे जो तुम देखते हो, वह देखना अधूरा है।

अंधेरी रात है, तुम एक राह से गुजरते होः दूर दिखता है कि कोई चोर छिपा है अंधेरे में, डरते हो, घबड़ाते हो। वही प्रतिक्रिया होती है जो चोर को छिपे देख कर होगीः रास्ता निर्जन है, निकलना जरूरी है, पार तो होना है—छुरा निकाल लेते हो, सम्हल जाते हो, हमले की तैयारी कर लेते हो। लेकिन जैसे-जैसे पास आते हो, पाते हो कि नहीं, चोर नहीं है; यह तो वर्दी पुलिस वाले की मालूम होती है, कोई पुलिस वाला खड़ा है। छुरे को वापस रख लेते हो। फिर निश्चिंत चलने लगते हो, गीत गुनगुनाने लगते होः कोई डर नहीं है। और पास आते हो, पाते हो कि पुलिस वाला भी नहीं है, वृक्ष का ठूंठ है। अंधेरे में धोखा हो गया। फिर बिलकुल पास आ जाते हो। फिर वृक्ष छू कर देखते हो, टार्च जला लेते हो, सब तरफ से पहचान लेते हो। अब कोई फर्क न पड़ेगा। अब तुम दूर भी चले जाओ, और फिर अंधेरे में तुम्हें भ्रम होने लगे कि कहीं पुलिस वाला तो नहीं खड़ाः तुम खुद ही हंसोगे। तुम कहोगेः वह ठूंठ है; कहीं कोई चोर नहीं छिपा है। तुम खुद ही हंसोगे। तुम कहोगे वह पुराना ठूंठ है। हमने उसे पास से देख लिया है।

आज जो सार है, कल असार हो जाता है। आज जो असार है, कल सार हो जाता है। क्योंकि तुमने दूर से देखा है, बड़े दूर से देखा है।

दूरी क्या है? दूरी है बेहोशी की। तुमने ठीक-ठीक आंख खोल कर नहीं देखा। तुमने तंद्रा में देखा है, मूर्च्छा में देखा है। जिस दिन तुम परिपूर्ण होश से भर कर देखोगे, उसी दिन बात समाप्त हो जाएगा। उस दिन जो जैसा है वैसा ही दिख जाएगा। फिर सार सार ही रहता है, असार असार ही रहता है।

इसलिए हमने इस देश में जो कसौटी बनाई है, वह यह है कि जब तुम उस चीज को जान लो जो बदलती न हो, तभी जानना कि सत्य से पहचान हुई। जो बार-बार बदल जाती हो वह कामचलाऊ है।

इसलिए तुम चकित होओगे जान कर कि भारत में हमने ज्ञान के दो विभाजन किए थे। एक को हम कहते हैं विद्या और एक को कहते हैं अविद्या। तुम शायद सोचते होओगे कि अविद्या का अर्थ अज्ञान है तो तुम गलती में हो। अविद्या ज्ञान का एक विभाजन है, अज्ञान को नहीं। अविद्या ऐसी विद्या है जो थिर नहीं है; जो बदलती चली जाती है; जो आज कुछ, कल कुछ, परसों कुछ वैज्ञानिक दावे से नहीं कह सकता कि मैं जो कह रहा हूं वह सत्य है? इतना ही कहता है। करीब-करीब!

करीब-करीब सत्य का क्या अर्थ होता है? तुम कभी किसी से कहते हो कि मैं तुम्हें करीब-करीब प्रेम करता हूं? भूल कर मत कहना; नहीं तो दूसरा कहेगाः अपने रास्ते पर लगो। करीब-करीब प्रेम का क्या मतलब होता है? करीब-करीब का अर्थ तो हुआः नहीं।

विज्ञान कहता हैः यह जो हम की रहे हैं, आज तक जो जाना है उसका निचोड़ है, कल यह बदल सकता है।

पिछले दो सौ वर्षों में विज्ञान ने जो भी कहा, वह हर बार बदलना पड़ा। इधर वैज्ञानिक कह नहीं पाता कि कोई दूसरा वैज्ञानिक उसे गलत सिद्ध करने को तैयार हो जाता है। तब तो विज्ञान कहता है कि कोई निर्णीत सत्य है ही नहीं; सभी सत्य कामचलाऊ हैं। जब तक काम चलता है ठीक है; जब बड़ा सत्य प्रकट होगा तो वे गिर जाएंगे।

इस बात को उपनिषदों ने, वेदों ने, अविद्या कहा है। अविद्या का अर्थ हैः अभी सार मालूम पड़ता है, फिर असार मालूम पड़ने लगता है। और कई बार ऐसा होता है कि वर्षों के बाद वह जो असार सिद्ध हो गया था, फिर से सार हो जाता है।

तुम्हारा मन ही डांवाडोल ही है। तुम्हारा मन चंचल है। उस चंचल मन के माध्यम से तुम जो देखते हो, वह सब डांवाडोल है, कंपता हुआ है। उस कंपते हुए में तुम सत्य को न पा सकोगे।

फिर सत्य कैसे पाओगे?

सत्य को पाने का सवाल वस्तु से नहीं है, आब्जैक्ट से नहीं है, विषय से नहीं है—सत्य को पाने का संबंध तुम्हारे भीतर के अहर्निश जागरण से है। तुम्हारी चेतना की लौ न कंपे, तुम्हारी चेतना की लौ निष्कंप हो जाए, जैसे कोई हवा का झोंका न आता हो, द्वार-दरवाजे बंद हों, और दिए की लौ अकंप जलती हो—उसको गीता ने स्थितप्रज्ञ की अवस्था कहा है, जहां प्रज्ञा की ज्योति स्थिर हो गई हो। उस स्थिर दशा में कोई भी चीज कंपती नहीं है। उस स्थिर दशा में तुम जो जानते हो, वह विद्या है। फिर तुम जैसा जानते हो, वैसा ही है; फिर वह सदा सदा के लिए वैसा है, फिर चिरकाल के लिए वैसा है।

इसलिए महावीर को, बुद्ध को हमने सिर्फ ज्ञानी कहा है; क्योंकि ज्ञानी तो कई बार बदलते देखे जाते हैंः आज कुछ कहते हैं, कल कुछ कहते हैं। हमने उनको त्रिकालदर्शी कहा है। यह सोचने जैसा है। त्रिकालज्ञ कहा है। इसका अर्थ है कि वे जो जानते हैं वह तीनों काल में, सत्य है—अतीत में, वर्तमान में, भविष्य में; किसी काल असत्य नहीं होगा। उन्होंने जो कहा है, बस ऐसा ही सदा काल में सदा-सदा सत्य होगा।

जिसकी प्रज्ञा थिर हो गई वह त्रिकालज्ञ है। उसका मतलब यह नहीं है कि तुम उससे पूछने जाओगे कि मेरे घर पत्नी गर्भवती है तो लड़का होगा कि लड़की, तो वह तुम्हें बताएगा कि लड़का होगा। त्रिकालज्ञ का मतलब तुम यह मत समझ लेना।

तुम तो जीवन की गहरी से गहरी चीज को बाजार में खींच लाते हो। तुम यह मत पूछने चले जाना कि नंबर लगा रहे हैं घोड़े पर, कौन सा घोड़ा आएगा, कि लाटरी की टिकट खरीद रहे हैं, अब बता ही दो जब त्रिकालज्ञ हो, तो नंबर लगा रहे हैं घोड़े पर, कौन सा घोड़ा आएगा, कि लाटरी की टिकट खरीद रहे हैं, अब बता ही दो जब त्रिकालज्ञ हो, तो नंबर बता दो वही खरीद लें, क्यों झंझट में पड़ें! त्रिकालज्ञ का अर्थ यह नहीं होता कि वह तुम्हें अतीत और भविष्य बताएगा।

त्रिकालज्ञ का अर्थ होता है कि उसने जो भी जाना है वह तीनों कालों में सत्य है। इस फर्क को ठीक से समझ लेना। नहीं तो जैनियों ने महावीर की फजीहत करवा डाली है। वे कहते हैंः त्रिकालज्ञ! तो फिर महावीर ने जो-जो कहा है वह भविष्यवाणी है। अगर वैसा न हो तो मुसीबत; क्योंकि उससे महावीर का त्रिकालज्ञ होना संदिग्ध होता है।

त्रिकालज्ञ का कुल अर्थ इतना ही है कि महावीर ने जो भी कहा है, जो भी उन्होंने अपने परम ज्ञान के प्रकाश में जाना है वह किसी काल में भी बाधित न होगा, वह हर समय सत्य होगा। इसका कोई संबंध इस आपाधापी के संसार से नहीं है। इसका कोई संबंध इतिहास, रोजमर्रा की घटनाओं से नहीं है। इसका संबंध जीवन के निगूढ़तम सत्यों से है। फिर जो सार है वह सार है, और जो असार है वह असार है।

और ठीक पूछा हैः ज्ञानी को, जाग्रत पुरुष को दोनों साथ-साथ दिखाई पड़ते हैं? अलग-अलग नहीं दिखाई पड़ते, दोनों साथ-साथ दिखाई पड़ते हैं। जब प्रज्ञावान व्यक्ति देखता है कि संसार झूठ, उसी क्षण देखता है युगपत—परमात्मा सत्य। ये दो बातें नहीं हैं कि पहले वह देखता है कि संसार झूठ, माया, और फिर वर्षों की खोज के बाद पाता है कि परमात्मा सत्य है। नहीं, जब देखता हैः संसार असत्य; उसी का दूसरा पहलू हैः परमात्मा सत्य। तुम जब देखते हो, परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता, उसका अर्थ है कि तुम्हें संसार दिखाई पड़ता है।

परमात्मा जब तक असत्य है, संसार सत्य है। जब तक संसार असत्य है तब तक परमात्मा असत्य है।

और अज्ञानियों ने भी बड़े अजीब-अजीब प्रश्न ज्ञानियों से पूछे हैं! जैसे शंकर के पास लोग पहुंच जाते हैं। वे कहते हैंः ठीक है, तुम कहते हो—संसार माया, ब्रह्म सत्य; हम तुमसे पूछते हैं, दोनों का संबंध क्या? प्रश्न बिलकुल ठीक मालूम पड़ता है। और प्रश्न बिलकुल गलत है। क्योंकि दो तो दिखाई ही नहीं पड़ते शंकर

को। जब संसार माया दिखाई पड़ता है, तभी तो परमात्मा सत्य दिखाई पड़ता है। ये एक ही बात के दो पहलू हैं, ये दो चीजें नहीं है।

ऐसा समझो कि एक रस्सी पड़ी है और तुमने अंधेरे में समझा कि सांप है; फिर तुम पास आए, दिया जलाया, देखा कि रस्सी है—तो जो सांप तुमने देखा था, माया हो गया, असार हो गया, असत्य हो गया; और जो रस्सी अब तक न देखी थी, वह सत्य हो गई। अब तुमसे कोई यह पूछे कि जो सांप तुमने पहले देखा था, और रस्सी तुम जो देख रहे हो, इन दोनों में संबंध क्या है—तो तुम क्या कहोगे? तो तुम कोई संबंध बता सकोगे? तुम कहोगेः पागल हो? दो हों तो संबंध हो सकता है; दो हैं कहां? जब तक मैंने सांप देखा तब तक रस्सी नहीं देखी थी—तब भी एक था। जब मैंने रस्सी देखी तब सांप नहीं दिखाई पड़ा—तब भी एक ही रहा। अब दोनों के बीच तुम संबंध पूछते हो? दो साथ हों तो संबंधित हो सकते हैं।

एक ही दिखाई पड़ता है। जिनको संसार दिखाई पड़ता है उन्हें ब्रह्म दिखाई नहीं पड़ता। जिन्हें ब्रह्म दिखाई पड़ता है उन्हें संसार दिखाई नहीं पड़ता।

तुम्हें जो दिखाई पड़ता है, उसमें, और मुझे जो दिखाई पड़ता है, उसमें क्या संबंध है? कोई संबंध नहीं है। वह तुम्हारा देखना है, यह मेरा देखना है। मैंने जो अज्ञान में देखा, उसमें, और मैंने जो ज्ञान में देखा, उसमें क्या संबंध है? वे दोनों एक साथ तो कभी आते ही नहीं, संबंध हो ही नहीं सकता।

इसलिए शंकर उत्तर देने की कोशिश भी करते हैं तो भी उत्तर जम नहीं पाता। और लोग पूछे चले जाते हैं तो उत्तर देना पड़ता है। नहीं तो लोग सोचते हैंः हमारी उपेक्षा हो रही है, उत्तर नहीं दिया जा रहा, और हम इतना कीमती सवाल पूछ रहे हैं, इतना महत्वपूर्ण, माया और ब्रह्म को जोड़ने वाला सवाल! और अगर जवाब न दे सको तो कुछ कमी है तुम्हारे ज्ञान में।

बुद्ध शंकर से ज्यादा हिम्मतवर हैं। शंकर ने तो कुछ न कुछ जवाब दिए, किसी न किसी तरह समझाने की कोशिश की; बुद्ध ने साफ कह दिया कि नहीं, ये सवाल ही मत पूछो, ये सवाल ही गलत हैं—उत्तर मैं न दूंगा।

भारत से बुद्ध का प्रभाव समाप्त हो गया—उसका कुल कारण इतना है कि भारत की आदत व्यर्थ के सवाल पूछने और उत्तर पाने की है। बुद्ध ने उस आदत का सहयोग न किया। लोगों ने कहाः तो फिर इनको पता ही नहीं होगा।

भारत पुराना पंडित है। यहां दुकान-दुकान पर बैठा, पान की दुकान पर बैठा, पान बेचने वाला भी पंडित है। यहां ब्रह्मज्ञान तो घर-घर में है। यहां हर आदमी को ब्रह्मज्ञानी मान सकते हो। सभी को पता है।

और जब बुद्ध ने कहाः नहीं, इसका कोई जवाब न देंगे, ये प्रश्न ही गलत हैं—तो लोगों ने कहाः पता ही न होगा इस आदमी को। अगर प्रश्न ही गलत थे तो वेद में क्यों उत्तर दिया गया है? उपनिषद में क्यों उत्तर है? सदा ज्ञानी उत्तर देते रहे हैं; यह आदमी कहता हैः प्रश्न गलत है। मामला मालूम होता है, इसे उत्तर पता ही नहीं है। और हमें पता है उत्तर, और उसको पता नहीं है।

बुद्ध का प्रभाव भारत से उठ गया! उसका कुल कारण इतना ही था, बुद्ध ने भारत की पांडित्यपूर्ण मनोदशा के साथ कोई सहयोग न किया।

जब असार दिखता है तभी सार दिखाई पड़ जाता है।

सार और असार दो चीजें नहीं है—एक ही प्रकाश का अनुभव है। एक चीज असार हो जाती है, दूसरी चीज सार हो जाती है। जो कल तक असार थी वह आज सार हो जाती है; जो कल तक सार थी, आज असार हो जाती है। लेकिन—अगर यह अनुभव निर्बाध हो, भविष्य में कभी खंडित न हो, तुम्हारी प्रज्ञा ने थिर होकर जाना हो तो फिर शाश्वत होगा, फिर बदलेगा नहींः मानी हुई बातें तो बदल जाएंगी, जानी हुई बातें भी बदल जाएंगी—सत्य को जीना है; सत्य के साथ एकरूप हो जाना है। तुम्हारी प्रज्ञा थिर होकर सत्य हो जाए। तुम्हारी

प्रज्ञा का कंपन खो जाए, ध्यानस्थ हो जाए, समाधिस्थ हो जाए—उस समाधि की दशा में जो समाधान तुम्हें मिलेगा, वह किसी काल में, किसी लोक में, खंडित नहीं होता है। उस अखंड को ही हम सत्य कहते हैं।

पांचवां प्रश्नः हमें तो स्वप्नों से रहित जीवन रसहीन लगता है। पर आप जैसे बुद्धपुरुषों कर जीवन तो स्वप्नों से रहित है, फिर भी इतना रसपूर्ण क्यों है?

तुम्हें जीवन रसहीन लगता है बिना स्वप्नों के, क्योंकि तुमने जीवन का रस तो जाना नहीं। तुम सपने का ही रस जानते हो और उसी से अपने को समझाए चले जा रहे हो।

ऐसा समझो, तुम्हें भूख लगी है और तुम्हें असली भोजन मिला ही नहीं, तो आंख बंद करके तुमने सपने के भोजन किए हैंः सुस्वादु थे, खूब दिल भर कर खाया, खूब चबाया, खूब जुगाली की, अपने को भी धोखा दे लिया भूख समाप्त हो गई; लेकिन सपने का भोजन असली भूख को न मिटा सकेगा। यह हो सकता है कि धोखा धीरे-धीरे इतना गहरा हो जाए कि असली भूख ही लगना बंद हो जाएः लेकिन शरीर सूखेगा कुम्हलाएगा। और जितना ही शरीर सूखेगा, कुम्हलाएगा, और जीवन से जड़े जितनी ही उखड़ी-उखड़ी होने लगेंगी, उतने ही ज्यादा सपने तुम्हें देखने पड़ेंगे, क्योंकि तब और सपनों की जरूरत पड़ेगी, ताकि तुम अपने को समझा लो कि नहीं, भोजन तो हम रोज कर रहे हैं, घंटों कर रहे हैं।

जीवन झूठे भोजन से नहीं भरता, और न ही रस सपनों से आ सकता है। सपने तो जीवन में तुम रस चूक रहे हो उसके परिपूरक हैं। झूठे परिपूरक हैं। ऐसा ही है जैसे कि छोटे बच्चे को हम चूसनी मुंह में दे देते हैं, वह सोचता है स्तन है मां का; वह चूसनी को चूसता है—सो जाता है। इससे कुछ पेट नहीं भरता, न पुष्टि मिलती है, न रक्त बनता, न हड्डियां बनतीं—लेकिन झपकी लग जाती है सोचते-सोचते कि दूध पी रहा हूं, सो जाता है। हमने बच्चे को धोखा दे दिया। बच्चा इस धोखे से कभी-कभी सम्हल ही जाएगा क्योंकि हमने दिया है। फिर जीवन में ऐसे भी धोखे हैं जो तुम खुद ही दे रहे हो, उनसे जागना बहुत मुश्किल हो जाता है।

तुमने कभी कुत्ते को देखा?—सूखी हड्डी को चबाता है और बड़ा रस लेता है! सूखी हड्डी में कोई रस है नहीं। सूखी हड्डी से कोई रस निकल भी नहीं सकता। होता क्या है? जब कुत्ता सूखी हड्डी चबाता है, तो सूखेपन के कारण, हड्डी की कठोरता के कारण, उसके मुंह में से खून निकलने लगता है। वह उसी खून को चूसता है और सोचता है कि हड्डी से रस आ रहा है। घाव बने रहे हैं मुंह में हड्डी से रस नहीं आ रहा है! नुकसान हो रहा है। हानि हो रही है। घातक है। लेकिन कुत्ते को कौन समझाए? अगर तुम हड्डी छीनना चाहो, कुत्ता मरने-मारने को उतारू हो जाएगा। क्योंकि कुत्ता सोच रहा है कि जा खून भीतर उसके कंठ से उतर रहा है वह हड्डी से निकल रहा है।

दूसरों के धोखे तो तोड़ देना आसान है; अब तुम खुद ही अपने को धोखा दो तो बहुत मुश्किल है।

जिनको तुम पागल कहते हो, वे कौन हैं? वे तुम्हारे जैसे ही लोग हैं, जिन्होंने सपना इतना देखा कि धीरे-धीरे सपना ही सच हो गया और जिंदगी पूरी झूठ हो गई। सपने में इस तरह खो गए हैं कि अब तुम उनको उस सपने के बाहर खींच कर नहीं ला सकते, तुम उन्हें जगा नहीं सकते। लेकिन तुम जानते हो कि पागल कितने ही मस्त दिखाई पड़े उनकी मस्ती झूठी है। इलाज की जरूरत है। पागलों के जीवन में कितना ही रस दिखाई पड़े, तुम जानते हो तुम इस रस को पागल हो कर लेने को राजी न होओगे।

पागलखाने में जाओ, तुम पागलों को साधारण लोगों से ज्यादा मस्त पाओगे। कारण क्या है? क्या उनको कोई मस्ती उपलब्ध हो गई है? नहीं, वे सपनों में इतने खो गए हैं कि अब जिंदगी के यथार्थ उनको चौंकाते भी नहीं। वे अपने सपनों में ही रहते हैं। किसी का प्रेम इजिप्त की रानी क्लिओपैत्रा से है। क्लिओपैत्रा को मरे हुए हजारों साल हो गए। लेकिन पागलखाने में कोई उसका प्रेमी है क्लिओपैत्रा का, वह क्लिओपैत्रा के साथ अपने

सपने में रह रहा है। वह उसी के साथ उठता है, बैठता है, बात करता है। वह क्लिओपात्रा के साथ ही जी रहा है। तुम सब हंसोगे, लेकिन वह प्रसन्न है। उसका जीवन बड़ा रसपूर्ण मालूम होगा।

तुम्हारे सपनों का रस भी ऐसा ही है। तुम बिना सपने के नहीं रह पाते; क्योंकि तुम्हारी जिंदगी में कुछ खालीपन है जो तुम सपनों से भरते हो। और ध्यान रखना, ऐसे अगर तुम अपने को धोखा देते गए, और झूठी चूसनी ही चूसते रहे, और झूठे भोजन में रस लेते रहे, और कल्पना के ताने-बाने बुनते रहे—तो धीरे-धीरे तुम्हारा यथार्थ से सारा संबंध टूट जाएगा, तब जागना बहुत मुश्किल होगा।

बुद्धपुरुषों के जीवन में जो रस दिखाई पड़ता है, वह सपनों का नहीं है, वह वास्तविक जीवन का है।

दुनिया में दो तरह के लोग मस्त दिखाई पड़ते हैं—या तो बुद्धपुरुष या पागल; या तो विक्षिप्त या विमुक्त। इसलिए कई बार तो बुद्धपुरुषों को भी लोगों ने पागल समझ लिया है; या तो विक्षिप्त या विमुक्त। इसलिए कई बार तो बुद्धपुरुषों को भी लोगों ने पागल समझ लिया है; क्योंकि उनमें एक बात समान दिखाई पड़ती है। और कई बार ऐसा भी हुआ है कि पागलों को बुद्धपुरुष समझ लिया है, क्योंकि उनमें भी समानता मालूम पड़ती है।

पूरब में ऐसा बहुत बार हुआ कि पागलों को लोगों ने परमहंस समझ लिया, क्योंकि मस्ती तो उनकी ऐसी लगती है जैसी बुद्धपुरुषों की है। और हमारे पास नापने-मापने का कोई उपाय नहीं है। और पश्चिम में ऐसा आज भी हो रहा है, कि बहुत-से ऐसे पुरुष जो पागल नहीं हैं, सिर्फ मस्त हैं अपनी मस्ती में, पागलखानों में पड़े हैं। क्योंकि पश्चिम कहता हैः और तो कोई कारण नहीं, सिर्फ पागल...! जैसे पूरब में पागल परमहंस हो गए बहुत बार, वैसा पश्चिम में बहुत-से परमहंस पागलखानों पड़े हैं। क्योंकि पूरब में एक तरह की भ्रांति थी कि जो भी मस्त हो गया वही ज्ञान को उपलब्ध है। सभी मस्त हो जाने वाले ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो जाते। बहुतों की मस्ती तो पागलपन की होती है, विक्षिप्तता की होती है।

तो दो तरह से रस संभव हैः या तो तुम पागल हो जाओ, या तुम जाग जाओ; या तो तुम मन में इस भांति खो जाओ कि बाहर निकलने की जगह ही न रह जाए; या मन बिलकुल खो जाए और मन के लौटने का रास्ता न रह जाए; या तो तुम मन में खो जाओ या मन तुम में पूरी तरह खो जाए; या मन बिलकुल खो जाए और मन के लौटने का रास्ता न रह जाए; या तो तुम मन में खो जाओ या मन तुम में पूरी तरह खो जाए। दो उपाय हैं। इन दोनों के बीच में साधारण आदमी जीता है। न तो वह पागल है न वह परमहंस है। वह थोड़ा-थोड़ा यथार्थ भी देखता है। उसका जीवन बड़ी दुविधा का है। वह बीच में फंसा है त्रिशंकु की भांति।

तुम भी सपने देखते रहते हो। दुकान पर बैठे हो, ग्राहक नहीं है—सपना आना शुरू हो जाता है कि अचानक रास्ते पा करोड़ो रुपये की थैली मिल गई है। अब तुम जानते हो, तुम भलीभांति जानते हो कि क्या पागलपन सोच रहे हो। कई बार तुमको समझ में भी आ जाता है कि यह क्या पागलपन है; लेकिन फिर भी रस मालूम होता है और सोचते हो कि चलो, कोई हर्जा नहीं, क्या करोगे अगर करोड़ रुपये मिल जाएं?—तो तुम मकान बना रहे हो, महल खड़े कर रहे हो। फिर भी तुम्हारे भीतर कोई कहे चला जाता है कि कर रहे हो; क्यों समय खराब कर रहे हो; क्यों व्यर्थ की बातों में पड़े हो? लेकिन फिर भी रस आता है! हड्डी से अपने ही मुंह का खून बहने लगता है। सपना झूठा है, यह जानते हुए भी, तुम्हारे जीवन में सच्चा भेजन इतना कम है कि झूठे भोजन में भी रस आने लगता है, तुम उसी रस में डूबने लगते हो। मैं जानता हूं, तुम्हारा प्रश्न ठीक है कि हमें तो स्वप्नों से रहित जीवन रसहीन लगता है। लगेगा ही, क्योंकि तुम्हें असली रस से कोई परिचय नहीं है।

'और आप जैसे बुद्धपुरुषों का जीवन स्वप्नों से रहित है, फिर भी इतना रसपूर्ण क्यों है?'—क्योंकि रस का पता है। और जितना जल्दी जाग सको तो सपनों से, चाहे जागने में कितनी ही रसहीनता पैदा हो, उसे झेलना पड़ेगा। वह तपश्चर्या है। वह साधना है। झूठे सपने को तोड़ना ही पड़ेगा, चाहे टूट कर तुम अचानक पाओ कि महल है ही नहीं, झोपड़े में बैठे हैं, महल केवल सपने में था। शायद सपना टूट कर तुम पाओ कि सामने

पत्थर-कंकड़ों के ढेर लगे हैं, ये हीरे-जवाहरात नहीं है। लेकिन इस यथार्थ से परिचित होना पड़ेगा; क्योंकि यथार्थ से परिचित हो कर ही कोई महायथार्थ की तरफ जा सकता है। अगर ये कंकड़-पत्थर हैं तो छोड़ो, हीरों की खोज में निकलो।

लेकिन जो आदमी कंकड़-पत्थरों का सपना देख रहा है कि हीरे हैं वह तो कभी हीरों की खोज में न जाएगा; उसे तो हीरे मिले ही हुए हैं। पीड़ा होगी। इसलिए पागलपन से परमहंस की तरफ जाने में, स्वप्न से सत्य की तरफ जाने में, एक संक्रमण का काल है, जब बड़ी पीड़ा होगी; जो-जो था वह छूटता मालूम पड़ेगा; जो-जो मान रखा था कि मिला ही है; अचानक जानना होगा कि कभी मिला न था, अपने को धोखा दे रहे थे; हाथ थोड़ी देर के लिए बिलकुल खाली हो जाएंगे; बड़ी रिक्तता पकड़ेगी।

ध्यान रखना; रिक्तता और शून्यता में यही फर्क है। रिक्तता का अर्थ हैः जो था नहीं, मान रखा था है, वह खो गया—तो रिक्तता, एंप्टीनेस— और जब कोई इस रिक्तता में रहने को राजी हो जाता है, तो धीरे-धीरे उसका अवतरण होता है जो है; जो सदा ही छिपा था और हम व्यर्थ में उलझे रहे, इसलिए उसकी तरफ नजर न गई—अब उसका अवतरण होता हो रहा है। उसका नाम शून्यता है।

शून्यता और रिक्तता में बड़ा फर्क है। रिक्तता है सपनों का टूट जाना। शून्यता है सत्य का उतर जाना। रस तो सत्य में है। रसो वै सः! रस तो बस उसी में ही है।

और किसी रस में अपने को मत उलझाना। और तुम जानते हो भलीभांति क्योंकि कितना ही धोखा दो, कैसे धोखा दे पाओगे? तुम जानते हो कि रस का दिखावा कर रहे हो कि मिल रहा है, लेकिन मिल नहीं रहा; अन्यथा तुम्हारे चेहरे इतने उदास क्यों हैं? कोशिश करते हैं हंसने की, मुस्कुराने की; लेकिन कंठ में कुछ अटक जाता है; लगता है व्यर्थ ही हंस रहे हो, हंसने योग्य कुछ नहीं है, शायद इसलिए हंस रहे हो, कहीं रोने न लगो, कहीं आंसू न आ जाएं; शायद आंसुओं को छिपा रहे हो मुस्कुराहटों में।

ये धोखे बंद करो। ये खेल किससे खेल रहे हो? ये खेल अपने से ही चल रहा है और आत्मघाती है। इस खेल को छोड़ो, तोड़ो इसके बाहर आओ। कितनी ही पीड़ा हो, बाहर आना ही होगा; क्योंकि तभी आनंद के द्वार खुल सकते हैं।

छठवां प्रश्नः फरीद जैसे संत हमें हमारे अपने इतने आत्मीय क्यों लगते हैं?

स्वाभाविक है कि वे आत्मीय लगें, क्योंकि वे तुम्हारे उस दुख को भी पहचानते हैं जहां तुम हो, और वे तुम्हारे उस आनंद को भी पहचानते हैं जहां तुम हो सकते हो। वे तुम्हारा वर्तमान भी बोलते हैं और तुम्हारा भविष्य भी। वे तुम्हारे आज के दुख की गाथा भी कहते हैं और कल के सुख का परम सौभाग्य भी।

फरीद में तुम अपने आज के यथार्थ को भी पाओगे और कल के सत्य को भी। फरीद एक सेतु हैं। वे तुम्हें खबरें देते हैं कि तुम कौन हो और कहां हो। वे तुम्हें जगाते हैं तुम्हारी नींद से और तुम्हें बुलाते हैं उस जागरण की ओर भी, जो तुम हो सकते हो, जो तुम्हारा स्वभावसिद्ध अधिकार है; जिसे खोने का कोई कारण नहीं है, सिर्फ जागने मात्र से जो मिल जाएगा; जिसे तुमने खोया है अपनी ही छोटी-सी भूलों के कारण, छोटी-छोटी भूलों के कारण खोया है। तुम अकारण ही भिखारी बने हो। वे तुम्हारे भिखारीपन का भी बोध देते हैं और तुम्हारे भीतर छिपे सम्राट की तरफ भी इशारा करते हैं। वे तुम्हें दुख भी देते हैं और तुम्हें महासुख की तरफ भी उठाते हैं।

इसलिए फरीद जैसे संत बहुत आत्मीय मालूम होंगे। फरीद जैसे व्यक्ति के साथ तुम्हें बड़ी निकटता मालूम होगा। वे कल तुम्हारे ही साथ थे—उन्हीं अंधेरी अंधी गलियों में भटकते थे जहां तुम हो; तुम्हारे जैसे ही पीड़ा और दुख और नर्क में जीते थे; तुम जहां खाइयों में पड़े हो, गड्ढों में पड़े हो—लंगड़े अपाहिज, अपंग—ऐसे ही वे भी थे। पर उन्होंने हिम्मत जुटाई। उन्होंने अपने को सम्हाला—उठे। राह उन्हें मिल गई। प्रकाश का अवतरण हुआ। अब वे तुम्हें पुकार रहे हैं।

तुम पंडितों की भाषा में इस तरह की आत्मीयता न पाओगे—यह फर्क है संत और पंडित की भाषा का। पंडित की भाषा में तुम पाओगे कि वह तुमसे कह रहा हैः तुम पापी हो, निंदित हो, बुरे हो। संत की भाषा में तुम पाओगे, वह कहेगा कि तुम बुरे नहीं हो, तुमने मान रखा है कि तुम बुरे हो; तुम भले हो। तुमसे भला और कुछ भी नहीं है। तुम परमात्मा हो स्वयं—पंडित कहेगाः तुम नारकीय हो, पापी हो, तुमने बहुत बुरे कर्म किए हैं। संत कहेगाः बुरे कर्म तुमसे हो ही कैसे सकते हैं! जरा जागो! हुए होंगे नींद में, सपने देखे होंगे। लेकिन पाप तुम्हें छू कैसे सकता है? तुम्हारे भीतर परमात्मा का कमल है; उसे पानी छूता नहीं, ऐसे तुम्हें पाप नहीं छूता है।

संत तो तुम्हें भरते हैं आश्वासन से; तुम जो हो सकते हो, उसकी तरफ इशारा है उनका—मुक्त आकाश की तरफ पंडित तुम्हें निंदा से भरते हैं; तुम जो अभी हो, उसकी तरफ उनका इशारा है। पंछी तुम्हीं डराते हैं, क्योंकि डरा कर ही तुम्हारा शोषण हो सकता है। तुम भयभीत हो जाओ तो तुम पंडित के पैर पकड़ लोगे, पुरोहित के पैर पकड़ लोगे, पुरोहित के पैर पकड़ लोगे कि अब कुछ करो; बीच बचाव करो, कुछ दलाली जो तुम्हें लेना हो ले लेना। हम तो पापी हैं। हमारे अपवित्र शब्द तरे उस तक न पहुंच पाएंगे। तुम पुण्यात्मा हो, तुम हमारे लिए प्रार्थना करो, आशीर्वाद दो। तुम परमात्मा से हमारे लिए तरफदारी करो, तुम हमारे वकील हो जाओ!

पंडित तुम्हें डरवाता है, कंपाता हैः नरक का भय, पापों की लंबी कथा! वह तुम्हें इतना कंपा देती है कि फिर तुम कभी जीवन में संभल न पाओगे, भीतर डर लगता ही रहेगा। उसी डर में तुम मंदिर में झुकोगे, मस्जिद में झुकोगे, गुरुद्वारे में जाओगे। उसी डर में कुरान पढ़ोगे, बाइबिल पढ़ोगे, वेद दोहराओगे। उसी डर में तुम्हारे सब क्रियाकांड, यज्ञ पैदा होंगे।

लेकिन भय से भगवान का क्या संबंध हो सकता है?

हां, पंडित तुम्हें चूसेगा, तुम्हारा शोषण करेगा, तुम्हारी मालकियत करेगा। पुरोहित तुम्हारे ऊपर छाती पर बैठ जाएगा।

संत को तुम्हारा कोई शोषण नहीं करना है। संत को तुम्हें जगाना है ताकि तुम्हारा शोषण ही असंभव हो जाए। संत तुम्हें किसी मंदिर का रास्ता नहीं बताता; वह कहता हैः तुम मंदिर हो! संत किसी परमात्मा की तरफ आकाश में तुम्हारी आंखें नहीं उठाता; वह कहता हैः करो आंखें बंद वह रब तुम्हारे भीतर है, वह परमात्मा तुम्हारे घट-घट में है—झांको वहां।

पांडित्य आलोचना सिखाता है, दूसरे की निंदा सिखाता है, और दूसरे की निंदा से तुम्हारे अहंकार को भरने के उपाय देता है। संत कहता हैः अपने गरेबां में देखो। जे तू अकलि लतीफ...फरीदा जे तू अकलि लतीफ—अगर तू बुद्धिमान है फरीद तो अपनी तरफ देख, दूसरे के खिलाफ काले अंक मत लिख; दूसरे की भूल मत देख, अपने गरेबां में झांक!

संत तुम्हें तुम्हारी तरफ मोड़ते हैं। संत तुम्हें तुम्हारे घर वापस ले आते हैं। इसलिए स्वभावतः संतों के वे वचनों में एक माधुर्य है। पंडितों के वचनों में एक कर्कशता है। पंडित के वचनों में तर्क हो भला, शास्त्र हो, शास्त्रीय शब्द हों—लेकिन हृदय का अंतर्नाद नहीं है। उधार है सब। बासा है। झूठा है। हजार-हजार ओंठों से चला है। गंदा है।

संत फिर से मूलस्त्रोत से खबर लाता है। संत वेद नहीं दोहराता; संत स्वयं वेद है। पंडित वेद दोहराते हैं। संत उपनिषद, कुरान, बाइबिल के लिए प्रमाण इकट्ठे नहीं करता; संत स्वयं प्रमाण है। सभी कुरान, सभी बाइबिल, सभी वेद उसके होने से सच हैं। संत में फिर से परमात्मा उतरता है—अभिनव रूप, फिर से नया और ताजा, सद्यःस्नात! इसलिए संत मधुर है, प्रीतिकर है। एक काव्य है संत में, जो तुम्हारे हृदय को गुदगुदाएगा। संत से तुम्हारी आत्मीयता सध जाएगी।

भगीरथ ने बड़ी साधना की। गंगा को रिझाया, राजी किया। गंगा राजी तो हो गई, लेकिन उसने कहा कि मेरे आघात को न झेल पाओगे। पवित्रता का आघात भी तो बड़ा है। जैसे पांच कैंडल के बल्ब में और हजार कैंडल की बिजली दौड़ जाए तो फ्यूज उड़ जाए, बल्ब टूट जाए, फूट जाए खतरा हो।

गंगा ने कहाः मैं स्वर्ग में बहती रही हूं, इतनी बड़ी पवित्रता, इतना स्वर्गीय पुण्य पृथ्वी न झेल सकेगी! मुश्किल हो जाएगी। तुम जाओ, किसी को राजी करो जो मुझे झेलने को राजी हो।

भगीरथ ने गंगा को तो आने को राजी कर लिया, लेकिन झेलेगा कौन? उन्होंने शिव की बड़ी प्रार्थना की, पूजा की कि तुम इसे रोक लो। कथा बड़ी मधुर है। शिव राजी हो गए। और कहते हैं, गंगा उतरी तो उनकी जटाओं में कई जन्मों तक भटकती रही। जटाओं में उतार लिया उसे। भटकती रही वहां। रास्ता ही मिलना मुश्किल हो गया उसे। मिटाने की तो बात दूर, पृथ्वी को डुबाने की बात दूर—उसे शिव की जटाओं से बाहर आने का रास्ता न मिले। तब तक उसका जो तूफानी रूप था, अंधड़ जो उसके प्राणों में था वह शांत हो गया। शिव ने उसे कोमल बना दिया। शिव ने उसे उम्र बना दिया। अकड़ चली गई।

पवित्रता की भी एक अकड़ है। स्वर्ग की गंगा थी! बड़ी अकड़ थी! अस्मिता थी! शिव के सिर में भटक कर वह अहंकार खो गया। दीन अनुभव हुई। फिर उतरी पृथ्वी पर।

शिवत्व का अर्थ, शिव का अर्थ है, ऐसे बुद्धपुरुष!

और जटाजूट की बात बड़ी ठीक है, क्योंकि जब पहली दफा परमात्मा उतरता है तो वह तुम्हारे सिर के भीतर, बाहर के जटाजूट में नहीं, भीतर के जटाजूट में उतरता है, भीतर जो अनंत नाड़ियों का जाल है, मस्तिष्क में जो कोई सात करोड़ सैल हैं—उनमें ही उतरता है, उनमें ही भटकता है, उनसे ही रास्ता खोजता है।

बुद्धपुरुष का मस्तिष्क जब जागता है तो परमात्मा उतरा! फिर शिव मिले स्वर्ग की गंगा को! फिर वर्षों लग जाते हैं वहां भटकने में। वहां सौम्य रूप ग्रहण होता है। जैसे तुम मिट्टी को सीधा न खा सकोगे, हालांकि रोज मिट्टी को खाते हो—कभी गेहूं की शक्ल में खाते हो, कभी अनार की शक्ल में खाते हो, कहीं अमरूद, आम की शक्ल में खाते हो—खाते मिट्टी को ही हो; पर मिट्टी को सीधा न खा सकोगे। पहले वृक्ष मिट्टी को खाता है, फिर वृक्ष मिट्टी को रूपांतरित करता है, फल बन जाता है। फिर फल तुम खा लेते हो। है मिट्टी है; लेकिन बीच में वृक्ष का माध्यम जरूरी था।

परमात्मा को तुम सीधा न खा सकोगे। वह तुम्हारे लिए बहुत मुश्किल हो जाएगा। कोई शिव पहले उसे पचाता है, फिर वह तुम्हारे योग्य हो जाता है। फिर तुम्हें छोटे-छोटे, जितनी तुम्हें जरूरत है, जितना तुम झेल सकोगे, पचा सकोगे, उस मात्रा में मिल जाता है। बुद्ध तो परमात्मा को पचा लेते हैं, फिर उनके एक-एक वचन में एक-एक फल की तरह वे तुम पर बरसने लगते हैं, एक-एक फूल में तुम्हारे पास आने लगते हैं। गंगा का तूफान तो शिव झेल लेते हैं, फिर गंगा सौम्य हो जाती है; फिर तुम उस पर तीर्थयात्रा कर पाते हो; फिर तुम घाट बना लेते हो; फिर मंदिर बना लेते हो; फिर तुम पूजा कर पाते हो।

संतपुरुष उस गंगा को बार-बार लाते हैं।

अतीत में भी वह गंगा हजारों बार उतरी है; लेकिन शास्त्रों में जो उसके संबंध में लिखा है, वह अब बहुत पुराना पड़ गया, उस पर बहुत धूल जम गई, उस पर शब्दों की पर्त दर पर्त इकट्ठी हो गई है। अब पहचानना मुश्किल है। उसकी ताजगी खो गई है। पंडित उसी को दोहराए चले जाते हैं। वे उसी पर और भी पर्तें जमाए चले जाते हैं—अर्थों की पर्तें—अर्थ और छिपता चला जाता है। पंडित जितनी टीका करते हैं, उतने ही शास्त्र बेबूझ हो जाते हैं। फिर बात इतनी कठिन हो जाती है कि उस तरफ से मार्ग ही नहीं रह जाता। फिर कोई संतपुरुष, कोई फरीद, कोई कबीर, कोई दादू, कोई सहजो फिर उतार लाती है।

स्वाभाविक है कि उनसे तुम्हें आत्मीयता लगे। न लगे तो समझना कि तुम रुग्ण हो, तुम्हारा चित्त विषाक्त है। आत्मीयता न लगे तो समझना कि स्वयं को स्वस्थ करना जरूरी है।

सातवां प्रश्न। परमात्मा ने हमें बनाया, और वही हमारा सुखकर्ता और दुखकर्ता है; फिर हमें जन्म के साथ उसका विस्मरण क्यों हो जाता है? परमात्मा हमें उसकी चिरंतन याद क्यों नहीं दिलाता है?

परमात्मा ने हमें बनाया, वही हमारा सुखकर्ता, दुखकर्ता है—ऐसा तुमसे किसने कहा? यह तुमने कैसे जाना? तुमने सुन लिया होगा। किसी ने कह दिया होगा। तुमने बात पकड़ ली।

दूसरों की बातों को मत पकड़ो, जब तक तुम्हें ही पता न हो; क्योंकि दूसरों की उधार बातों से जो तुम प्रश्न उठाओगे, वे तुम्हें कहीं भी न ले जाएंगे। प्रश्न तुम्हारे प्राणों से आना चाहिए। मुझसे उन प्रश्नों के उत्तर मांगो जो तुम्हारे प्राणों में उठते हों, जो कुछ लाभ होगा।

पहले तो प्रश्न ही झूठा है, क्योंकि तुम्हें पता ही नहीं कि परमात्मा ने बनाया। यही जिसको पता चल गया उसके क्या कोई प्रश्न शेष रह जाते हैं?

तुम्हें पता नहीं है कि परमात्मा दुखकर्ता-सुखकर्ता है। यही तुम्हें पता होता तो फिर और क्या बाकी रह जाता है जानने को? सुख और दुख में सभी आ गया। कुछ और बचा होगा, वह परमात्मा में आ गया। सब समाप्त हो जाता है।

नहीं, यह तुमने सुन लिया है। इसे तुमने सुना है, माना भी नहीं है। अभी तुम्हारे हृदय ने इसको स्वीकार भी नहीं किया है। तुम्हें संदेह बना है। लेकिन संदेह को भी सीधा पूछने की हिम्मत नहीं है। उसको भी तुम आस्तिक के ढंग से पूछते हो। नास्तिक के ढंग से पूछना बेहतर हैः कम से कम ईमानदार हो।

तो तुम कहते हो ऊपर सेः हमें परमात्मा ने बनाया; वही सुखकर्ता, दुखकर्ता! फिर हमें जन्म के साथ-साथ उसका विस्मरण क्यों हो जाता है?

अगर विस्मरण ही हो गया है तो किस परमात्मा की बात कर रहे हो जिसने तुम्हें बनाया? यह बकवास छोड़ो। सीधा कहो कि हमें परमात्मा का कोई स्मरण नहीं है—यह परमात्मा कौन है? कहां है? हमें तो कोई भी याद नहीं है। हम कैसे मानें कि उसने हमें बनाया? हम कैसे मानें कि उसने ही सुख, उसने ही दुख बनाए?

सीधी बात पूछो, तो रास्ता आसान हो जाता है। जब तुम उलटी-सीधी बातों में पड़ते हो, तो रास्ता और भी कठिन हो जाता है।

ठीक है बात, तुम्हें याद नहीं है, विस्मरण हो गया है। यह भी सवाल इसीलिए उठता है कि तुमने मान लिया कि कोई परमात्मा है जिसकी हमें याद नहीं है, जिसका हमें विस्मरण हो गया है। इस मान्यता की झंझट पड़ोगे तो प्रश्न के बाद प्रश्न उठते चले जाएंगे।

तुम मन की स्लेट कोरी करो। किसी की मत मानो। इतना ही कहो कि मैं हूं, इससे ज्यादा मुझे कुछ भी पता नहीं। यह ईमानदारी होगी। तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हें और क्या पता है? तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारी बाकी जितनी बातें हैं, सब मान्यताएं हैं।

मैं यहां बोल रहा हूं, यह भी पक्का नहीं हो सकता; क्योंकि हो सकता है, तुम स्वप्न देख रहे हो। कैसे तय करोगे कि मैं जो यहां बैठ कर बोल रहा हूं, वस्तुतः हूं, और तुम्हारा स्वप्न नहीं है? कैसे तय करोगे? क्या उपाय है? कभी-कभी तुमने स्वप्न में भी मुझे बोलते सुना है। जब स्वप्न में बोलते सुना है तब बिलकुल ऐसा लगा है सत्य है, सुबह जाग कर पाया कि यह बात झूठ थी। क्या तुम्हें पक्का है कि किसी दिन जाग कर तुम न पाओगे कि जो तुम सुन रहे थे, वह तुमने सुना ही नहीं था, तुम्हारे ही मन का खेल था?

दूसरे का भरोसा भी नहीं हो सकता। भरोसा तो सिर्फ एक चीज का हो सकता है—वह तुम्हारा अपना होना है। परमात्मा तो बहुत दूर है; पत्नी और पति का भी पक्का भरोसा नहीं हो सकता कि वे हैं। तुम्हारे पड़ोस में जो बैठा है, जिसे तुम छू सकते हो, उसका भी पक्का भरोसा नहीं हो सकता है। क्योंकि स्वप्न में भी तुमने कई बार लोगों को छुआ है और पाया है कि वे हैं। यह भी स्वप्न हो सकता है।

तो साधक को, खोज पर निकला है परमात्मा की, सत्य की, कोई भी नाम, या जीवन की—उसके लिए एक बात खयाल रखनी चाहिएः सुनिश्चित आधारों से शुरू करो यात्रा। एक ही चीज सुनिश्चित है कि मैं हूं और कुछ भी सुनिश्चित नहीं है। हां, इस पर संदेह असंभव है कि मैं हूं; क्योंकि इस पा संदेह करने के लिए भी मुझे होना पड़ेगा, नहीं तो कौन संदेह करेगा? अगर मैं कहूं कि पता नहीं मैं हूं नहीं—तो भी पक्का है कि मैं हूं; अन्यथा कौन कहेगा कि पता नहीं मैं हूं या नहीं? स्वप्न देखने के लिए भी तो एक देखने वाला चाहिए। झूठ दोहराने के लिए भी तो कोई चाहिए जो सचमुच हो, अन्यथा झूठ भी कौन दोहराएगा?

एक चीज सुनिश्चित है कि मैं हूं। अब बेहतर यही होगा कि मैं इसी को जानने चलूं कि यह मैं कौन हूं, क्या हूं!

जैसे ही तुम इसमें उतरने लगोगे सीढ़ी-सीढ़ी, वैसे ही वैसे तुम पाओगे कि यह तो बड़ी अनूठी बात होने लगी कि उतरते तुम अपने में हो, पहुंचते परमात्मा में हो! जानते अपने को हो, पहचान परमात्मा से होने लगती है। क्योंकि तुम परमात्मा हो। और जिस दिन तुम अपने भीतर पूरे उतर जाओगे, अपनी पूरी गहराई को छू लोगे और ऊंचाई को छू लोगे अपने पूरे विस्तार को स्पर्श कर लोगे, अपनी अनंतता के स्वाद से भर जाओगे, उस दिन तुम यह भी जानोगे कि उसे हमने भूला दिया हो, लेकिन हम भुला न पाए; भुलाने की कोशिश की हो, लेकिन सफल न हो पाए।

कोई मनुष्य परमात्मा को भुलाने में सफल नहीं हो पाया है। इसलिए तो इतने मंदिर हैं, इतनी मस्जिदें, इतने गिरजे, गुरुद्वारे हैं। ये इसी बात के सबूत हैं कि तुमने लाख कोशिश की है भुलाने की, भुला नहीं पाते।

परमात्मा को भुलाना असंभव है, क्योंकि वह तुम्हारा स्वभाव है। हां तुम चाहो तो उसकी याद न करो, यह हो सकता है। यह जरा जटिल होगा। मैं फिर से दोहरा दूंः परमात्मा को भुलाना असंभव है; हां चाहो तो याद न करो, यह हो सकता है। तुम अपनी याददाश्त को दूसरी चीजों से भरे रहो—धन है, पद है, प्रतिष्ठा है, घर है, संपत्ति है, दुकान है, बाजार है, तिजोड़ी है—इस सबसे भरे रहो अपनी याददाश्त को, तुम उसे जगह ही न दो प्रकट होने की, तुम मौका ही न दो कि वह तुम्हें याद आ जाए, बस इतना तुम कर सकते हो; परमात्मा को भूला नहीं सकते। हां, परमात्मा को दबा सकते हो, दूसरी याददाश्तों से भर सकते हो। लेकिन जिस दिन भी तुम चाहोगे, बस वही चाहिए। जिस दीन तुम चाहोगे, जिस दिन तुम ऊब जाओगे इस सब खेल से, इस बकवास से जिससे तुमने अपने को भर लिया है—उसी दिन एक क्षण में हटा दोगे यह कचरा, झांककर भीतर देखोगे, उसे तुम बैठा पाओगे। वह सदा मौजूद है, क्योंकि तुम ही वही हो।

कोई परमात्मा को कभी भूला नहीं है। नास्तिक भी नहीं भूलते हैं। उनके याद करने का ढंग अलग है। वे कहते हैं, परमात्मा नहीं है—यह उनके याद करने का ढंग है।

मैंने सुना है, एक ऋषि किसी पर नाराज हो गया, तो उसने अभिशाप दे दिया कि तुझे तीन जन्मों तक संसार में भटकना पड़ेगा। जिस पर नाराज हो गया था, उसने बड़ी ऋषि की सेवा की, तो वह प्रसन्न हो गया; लेकिन अभिशाप को काटा नहीं जा सकता, दे दिया, दे दिया। छूट गए तीर शब्द के, उन्हें वापस कैसे लौटाएगा? जो शब्द छूट गया छूट गया, अब उसे लौटाया नहीं जा सकता। जो हो चुका, हो चुका।

तो, ऋषि बहुत प्रसन्न हो गया। उसने कहाः मजबूरी है। अब मैं वापस नहीं लौट सकता, जो हो गया है। शाप तो दे दिया। तीन जन्म तू भटकेगा। अब तू कोई वरदान चाहता हो तो वह मैं दे सकता हूं। तू वरदान मांग ले।

तो उसने कहा कि तीन जन्म भटकूंगा, आप मुझे एक ही वरदान दे दें कि मैं परमात्मा को कभी भूलूं न। उस ऋषि ने बहुत सोचा। उसने कहाः अच्छा जा, तू नास्तिक हो जा।

वह आदमी बहुत घबड़ाया। उसने कहाः यह कैसा वरदान? यह तो अभिशाप हो गया। पहले से भी बुरा हो गया। तीन जन्म के बाद तो वापस लौटना हो जाता; अब ये तीन जन्म अगर नास्तिक रहे, तो फिर लौटना कैसे होगा? यह तो हद हो गई। अब आप कहोगे, ये शब्द भी निकल गए, वापस नहीं लौट सकते।

ऋषि ने कहाः मैं तुझे सोच अनुभव से कहता हूं। आस्तिक तो कभी-कभी भूल जाता है, नास्तिक कभी नहीं भूलता। वह कहता ही रहता है, ईश्वर नहीं है। चौबीस घंटे लड़ने को तत्पर है कि ईश्वर नहीं है। विवाद करने को हजार काम छोड़कर तैयार है। आस्तिक भी कहता है भई, अभी तो फुर्सत नहीं है, दुकान में लगे हैं। नास्तिक लड़ने को तैयार है। उसकी भी चेष्टा ईश्वर की याददाश्त की है; वह भुलाने की कोशिश कर रहा है, भुला नहीं पाता। वह चाहता है, ईश्वर न हो; लेकिन चाहने से क्या होता है? वह सिद्ध करता है कि नहीं है, लेकिन उसी को सिद्ध करने में लग जाता है।

नहीं, कोई उपाय नहीं है। न आस्तिक भूल सकता है न नास्तिक। भूल तो तुम नहीं सकते हो, लेकिन तुम दूसरी चीजों की याददाश्त से भर सकते हो।

ध्यान का कुल इतना अर्थ है कि तुम बाकी याददाश्त को हटा दो, उसकी याददाश्त आर्विभूत हो जाएगा—जैसे ज्वालामुखी फूट पड़े! वह तुम्हारे भीतर दबी है।

प्रेम का इतना ही अर्थ है कि तुम दूसरी याददाश्तों को हटा दोः अचानक तुम पाओगे कि उसके विरह का गीत उठने लगा। अचानक तुम पाओगे, तुमने उसे टटोलना शुरू कर दिया, खोजना शुरू कर दिया। और जब भी किसी ने पाया है—चाहे ध्यानी ने चाहे प्रेमी ने—सभी ने अपने को भीतर पाया है।

इसलिए तुम अलग नहीं हो जो उसे भूल जाओ। तुम वही हो। स्वयं को काई कैसे भूल सकेगा? हां, भूलने का खेल चाहे जितनी देर खेलना हो खेल लो। इसलिए संसार को हम लीला कहते हैं; वह परमात्मा की लुकाःछिपी है। उसमें जितनी देर खेलना है वह खेल ले सकता है। जिस दिन भी तुम्हारी अभीप्सा प्रगाढ़ होगी कि अब घर लौटना है, तुम लौट जाओगे।

अंत करना चाहूंगा बुद्ध की एक घटना से।

बुद्ध गुजर रहे हैं एक गांव से। नदी के तट पर उन्होंने कुछ बच्चों को रेत के घर बनाते देखा। वे खड़े हो गए। ऐसी उनकी आदत थी। भिक्षु भी चुपचाप, उनके साथ थे, वे खड़े हो गए। बच्चे खेल रहे हैं, रेत के घर बना रहे हैं नदी के तट पर। किसी का पैर किसी के घर में लग जाता है। रेत का घर बिखर जाता है। झगड़ा हो जाता है। मारपीट भी होती है, गाली-गलौज भी होती है कि तूने मेरा घर मिटा दिया। वह उसके घर पर कूद पड़ता है। वह उसका घर मिटा देते है। फिर अपना घर बनाने में लग जाते हैं। बड़े तल्लीन हैं! उनको पता भी नहीं है कि बुद्ध आकर चुपचाप खड़े हो गए हैं। वे घाट पर चुपचाप खड़े देख रहे हैं। वे बच्चे इतने व्यस्त हैं कि उन्हें कुछ पता भी नहीं है। घर बनाना ऐसी व्यस्तता की बात भी है। और फिर दुश्मन हैं, उनके ज्यादा अच्छा बनाना है, प्रतियोगिता है, जलन है, ईर्ष्या है, सब अपने-अपने घर को बड़ा करने में लगे हैं। और जितना बड़ा घर होता है उतनी ही जल्दी गिर जाने का डर भी होता है। उसकी रक्षा भी करनी है, यह सब हो रहा है। और तभी अचानक एक स्त्री ने आकर घाट पर आवाज दी कि सांझ हो गई, मां घरों में याद करती हैं, घर चलो। बच्चों ने चौंक कर देखा, दिन बीत गया, सूरज डूब गया, अंधेरा उतर रहा है। वे उछले-कूदे अपने ही घरों पर, सब मटियामेट कर डाला। अब कोई झगड़ा भी नहीं किसी दूसरे से कि तू मेरे घर पर कूद रहा है कि मैं तेरे घर पर। अपने ही घर पर कूदे। अब कोई लड़ा भी नहीं। कोई ईर्ष्या भी न उठी, कोई जलन भी न उठी। खेल ही खत्म हो गया! मां की घर से आवाज आ गईः वे सब भागते दौड़ते अपने घर की तरफ चले गए। दिन भर का सारा झगड़ा व्यवसाय ,मकान, अपना-पराया सब भूल गया। घर से आवाज आ गई!

बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा। ऐसे ही एक दिन जब घर से आवाज आ जाती है तब तुम्हारे बाजार, तुम्हारी राजधानियां ऐसी ही पड़ी रह जाती हैं। रेत के घर! जब तक खेलना हो खेलो, खेल रहे हो तब भी घर

भूल थोड़े ही गए हो। अगर भूल ही गए होते घर तो जब द्वार पर आकर कोई आवाज देता है कि मां घर याद करती है, चलो, तब तुम कैसे पहचानते होः कौन मां, कैसा घर?

अगर मैंने तुम्हें आवाज दी है और कहा है कि सांझ हो गई है, अब घर चलो—और अगर तुमने उस आवाज को सुना, और तुम अगर थोड़ा भी समझ पाए हो, तो उसका अर्थ यही है कि परमात्मा को भूल कर भी भूला नहीं जा सकता। भुलाने की कोशिश कर सकते हो; सफलता संभव ही नहीं है। हां, देर हो सकती है। लेकिन एक न एक दिन सांझ होगी, सूरज डूबेगा, तुम्हें आवाज सुनाई पड़ेगी। आवाज सुनाई पड़ते ही यह सारा संसार ऐसे ही हो जाता है जैसे रेत के घर-घोले। फिर उसमें पैदा हुए वैमनस्य, ईर्ष्या, संघर्ष—सब खो जाते हैं। अदालत, मुकदमे, बाजार, हिसाब-किताब सब व्यर्थ हो जाता है जब घर की याद आ जाती है! और घर को कोई कभी भूलता है? कोई कभी नहीं भूलता।

ठीक ऐसी ही घटना कबीर के जीवन में है। एक बाजार से गुजरते हैं। एक बच्चा अपनी मां के साथ बाजार आया है। मां तो शाक-सब्जी खरीदने में लग गई और बच्चा एक बिल्ली के साथ खेलने में लग गया है। वह बिल्ली के साथ खेलने में इतना तल्लीन हो गया है कि भूल ही गया कि बाजार में हैं; भूल ही गया कि मां का साथ छूट गया है; भूल ही गया कि मां कहां गई।

कबीर बैठे उसे देख रहे हैं। वे भी बाजार आए हैं, अपना जो कुछ कपड़ा वगैरह बुनते हैं, बेचने। वे देख रहे हैं। उन्होंने देख लिया है कि मां भी साथ थी इसके और वे जानते हैं कि थोड़ी देर में उपद्रव होगा, क्योंकि मां तो बाजार में कहीं चली गई है और बच्चा बिल्ली के साथ तल्लीन हो गया है। अचानक बिल्ली न छलांग लगाई। वह एक घर में भाग गई। बच्चे को होश आया। उसने चारों तरफ देखा और जोर से आवाज दी मां को। चीख निकल गई। दो घंटे तक खेलता रहा, तब मां की बिलकुल याद न थी—क्या तुम कहोगे?

कबीर अपने भक्तों से कहतेः ऐसी ही प्रार्थना, जब तुम्हें याद आती है और एक चीख निकल जाती है। कितने दिन खेलते रहे संसार में, इससे क्या फर्क पड़ता है? जब चीख निकल जाती है, तो प्रार्थना का जन्म हो जाता है।

तब कबीर ने उस बच्चे का हाथ पकड़ा, उसकी मां को खोजने निकले। तब कोई सदगुरु मिल ही जाता है जब तुम्हारी चीख निकल जाती है। जिस दिन तुम्हारी चीख निकलेगी, तुम सदगुरु को कहीं करीब पाओगे—कोई फरीद, कोई कबीर, कोई नानक, तुम्हारा हाथ पकड़ लेगा और कहेगा कि हम उसे जानते हैं भलीभांति; हम उस घर तक पहुंच गए हैं, हम तुझे पहुंचा देते हैं।

प्रार्थना का अर्थ हैः याद, कि अरे, मैं कितनी देर तक भूला रहा! प्रार्थना का अर्थ हैः स्मृति, कि अरे, मैंने कितनी देर तक विस्मरण किया! प्रार्थना का अर्थ हैः याद, कि अरे, क्या यह भी संभव है कि इतनी देर तक याद भूल गई थी! तब एक चीख निकल जाती है। तब आंखें आंसुओं से भर जाती हैं; हृदय एक नई अभीप्सा से! तब सारा संसार पड़ा रह जाता हैः रेत के घर-घुले हैं! फिर जो जब तक मां न मिल जाए, तब तक चैन नहीं।

इसलिए तो फरीद कहते हैं कि बड़ा विरह है, बड़े रो रहे हैं हड्डी-हड्डी इस लंबी यात्रा से थक गई है! पैर उठते नहीं। सब सपने धूल-धूसरित हो गए हैं। अब बस एक तेरी आस है! सच्चे, एक तेरी आस! यही प्रार्थना है। इस प्रार्थना के पीछे ही छिपा परमात्मा है। बस तुम प्रार्थना कर लो, शेष परमात्मा पर छोड़ दो। तुम पुकारो हृदय भर कर! और मैं तुमसे कहता हूं, कोई पुकार कभी खाली नहीं गई है।

आज इतना ही।

ग्यारहवां प्रवचन

ना कानों सुना ना आंखों देखा

मंगन से क्या मांगिए

सूत्र

मोर फकिरवा मांगि जाय,
मैं तो देखहू न पौल्यौं।
मंगन से क्या मांगिए,
बिन मांगे जो देय।
कहैं कबीर मैं हौं वाही को,
होनी होय सो होय।
चली मैं खोज में पिय की।
मिटी नहिं सोच यह जिय की।।
रहे नित पास ही मेरे। न पाऊं यार को हेरे।।
बिकल चहुं ओर को धाऊं। तबहु नहिं
कंत को पाऊं।।
धरों केहि भांति सों धीरा। गयौ गिर हाथ से हीरा।।
कटी जब नैन की झाइ□। लख्यौं तब गगन में साइ□।।
कबीर शब्द कहि त्रासा। नयन में यार को वासा।।
तन-मन-धन बाजी लागी हो,
चौपड़ खेलूं पीव से रे, तन-मन बाजी लगाया।
हारी तो पिय की भई रे, जीती तो पिय मोर हो।
चौसरिया के खेल में रे, जुग्ग मिलन की आस।
नर्द अकेली रह गयी रे, नहिं जीवन की आस हो।
चार बरन घर एक है रे, भांति भांति के लोग।
मनसा-बाचा कर्मना कोई, प्रीति निबाहो ओर हो।
लख चौरासी भरमत भरमत, पौ पे अटकी आय।
जो अबके पौ ना पड़ी रे, फिर चौरासी जाय हो।
कहैं कबीर धर्मदास से रे, जीती बाजी मत हार।
अबके सुरत चढ़ाय दे रे, सोई सुहागिन नार हो।

कबीर! संत तो हजारों हुए हैं, पर कबीर ऐसे हैं जैसे पूर्णिमा का चांद—अतुलनीय, अद्वितीय! जैसे अंधेरे में कोई अचानक दीया जला दे, ऐसा यह नाम है। जैसे मरुस्थल में कोई अचानक मरूद्यान प्रकट हो जाए, ऐसे अद्‌भुत और प्यारे उनके गीत हैं!मैं कबीर के शब्दों का अर्थ नहीं करूंगा। शब्द तो सीधे-सादे हैं। कबीर को तो पुनरुज्जीवित करना होगा। व्याख्या नहीं हो सकती उनकी, उन्हें पुनरुज्जीवन दिया जा सकता है। उन्हें अवसर दिया जा सकता है कि वे मुझसे बोल सकें।तुम ऐसे ही सुनना जैसे यह कोई व्याख्या नहीं है; जैसे बीसवीं सदी की भाषा में, पुनर्जन्म है। जैसे कबीर का फिर आगमन है। और बुद्धि से मत सुनना। कबीर का कोई नाता बुद्धि से नहीं। कबीर तो दीवाने हैं। और दीवाने ही केवल उन्हें समझ पाए और दीवाने ही केवल समझ पा सकते हैं। कबीर मस्तिष्क से नहीं बोलते हैं। यह तो हृदय की वीणा की अनुगूंज है। और तुम्हारे हृदय के तार भी छू जाएं, तुम भी बज उठो, तो ही कबीर समझे जा सकते हैं। यह कोई शास्त्रीय, बौद्धिक आयोजन नहीं है। कबीर को पीना होता है, चुस्की-चुस्की। जैसे कोई शराब पीए! और डूबना होता है, भूलना होता है अपने को, मदमस्त होना होता है।भाषा पर अटकोगे, चूकोगे; भाव पर जाओगे तो पहुंच जाओगे। भाषा तो कबीर की टूटी-फूटी है।

बे-पढ़े-लिखे थे। लेकिन भाव अनूठे हैं, कि उपनिषद फीके पड़ें, कि गीता, कुरान और बाइबिल भी साथ खड़े होने की हिम्मत न जुटा पाएं।भाव पर जाओगे तो. . .। भाषा पर अटकोगे तो कबीर साधारण मालूम होंगे। कबीर ने कहा भी—लिखा-लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात। नहीं पढ़ कर कह रहे हैं। देखा है आंखों से। जो नहीं देखा जा सकता उसे देखा है, और जो नहीं कहा जा सकता उसे कहने की कोशिश की है।बहुत श्रद्धा से ही कबीर समझे जा सकते हैं। शंकराचार्य को समझना हो, श्रद्धा की ऐसी कोई जरूरत नहीं। शंकराचार्य का तर्क प्रबल है। नागार्जुन को समझना हो, श्रद्धा की क्या आवश्यकता! उनके प्रमाण, उनके विचार, उनके विचार की अदभुत तर्कसरणी—वह प्रभावित करेगी। कबीर के पास न तर्क है, न विचार है, न दर्शनशास्त्र है। शास्त्र से कबीर का क्या लेना-देना! कहा कबीर ने—'मसि कागद छुओ नहीं'। कभी छुआ ही नहीं जीवन में कागज, स्याही से कोई नाता ही नहीं बनाया। सीधी-सीधी अनुभूति है; अंगार है, राख नहीं। राख को तो तुम सम्हाल कर रख सकते हो। अंगार को सम्हालना हो तो श्रद्धा चाहिए, तो ही पी सकोगे यह आग।कबीर आग हैं। और एक घूंट भी पी लो तो तुम्हारे भीतर भी—अग्नि भभक उठे—सोयी अग्नि जन्मों-जन्मों की। तुम भी दीए बनो। तुम्हारे भीतर भी सूरज ऊगे। और ऐसा हो, तो ही समझना कि कबीर को समझा, ऐसा न हो तो समझना कि कबीर के शब्द पकड़े, शब्दों की व्याख्या की, शब्दों के अर्थ जाने; पर वह सब ऊपर-ऊपर का काम है। जैसे कोई जमीन को इंच दो इंच खोदे और सोचे कि कुआं हो गया। गहरा खोदना होगा। कंकड़-पत्थर आएंगे। कूड़ा-कचरा आएगा। मिट्टी हटानी होगी। धीरे-धीरे जलस्रोत के निकट पहुंचोगे।ऐसी ही हम खुदाई आज शुरू करते हैं।

शब्द झरे अर्थ की लड़ी अर्थ झरे
एक फूल, पांच रंग, सात पंखुड़ी।
एक दर्द धूप से भरा हुआ
माथ चूम कर मुझे जगा गया
टूटता हुआ प्रणाम शाम का
गांठ नयी भोर की लगा गया
सिंधु तिरी प्यास की तरी
डूब गए
एक मंत्र, पांच दीप, सात अंजुरी।
एक वायु गंध से भरी हुई
अंग-अंग को परस गुजर गयी
एक मूर्च्छना चढ़ी हुई शिखर
मंत्र-मुग्ध पांव तक उतर गयी
गूंज से दिशा-दिशा भरी
रीत गए
एक गीत, पांच गान, सात पंखुड़ी।

तुम्हारे भीतर फूल झर जाएं, तो समझना कि कबीर को समझा। बांसुरी बज जाए, तो समझना कि कबीर को समझा। इंद्रधनुष प्रकट हो जाएं, तो समझना कि कबीर को समझा।

शब्द झरे अर्थ की लड़ी
अर्थ झरे एक फूल, पांच रंग, सात पंखुड़ी।

एक दर्द धूप से भरा हुआ! एक पीड़ा उठे! एक पीड़ा—प्रीति की, परमात्मा से विछोह की, आत्म-अज्ञान की। एक तीर चुभ जाए कि निकाले न निकले।

ना कानों सुना ना आंखों देखा

एक दर्द धूप से भरा हुआ
माथ चूम कर मुझे जगा गया
और वह पीड़ा तुम्हें जगा जाए, तो ही जानना कि कबीर को समझा।
टूटता हुआ प्रणाम शाम का
गांठ नयी भोर की लगा गया सुबह की तरफ यात्रा शुरू हो। सुबह की पुकार तुम्हारे प्राणों में गूंज उठे तो समझना कि कबीर को समझा।
सिंधु तिरी प्यास की तरी डूब गए
एक मंत्र, पांच दीप, सात अंजुरी
एक वायु गंध से भरी हुई! हां, ऐसे ही हैं कबीर—एक वायु गंध से भरी हुई! परमात्मा की सुगंध!
अंग-अंग को परस गुजर गयी। यहां सुनते-सुनते कबीर की गंध-भरी वायु तुम्हारे अंग-अंग को परस जाए, छू जाए। यह दरस-परस हो जाए तो ही जानना कि समझे।
एक वायु गंध से भरी हुई
अंग-अंग को परस गुजर गयी
एक मूर्च्छना चढ़ी हुई शिखर
मंत्र-मुग्ध पांव तक उतर गयी
और ऐसे पी लेना इस शराब को कि नख शिख सब डूब जाएं। कुछ अछूता न रहे, कुछ अनभीगा न रहे, सब भीग जाए, आर्द्र हो जाए—तो जानना कि कबीर को समझे।
गूंज से दिशा-दिशा भरी
रीत गए एक गीत, पांच गान, सात बांसुरी।
बजने लगें स्वर पर स्वर, उठने लगें गीत पर गीत! एक अभिनव नृत्य तुम्हारे भीतर प्रारंभ हो जाए! एक महोत्सव का यह निमंत्रण है!कबीर एक आमंत्रण हैं, एक पुकार, एक आवाहन! चल पड़ो तो समझोगे। किताब के पन्ने पलटते रहे, कुछ हाथ न लगेगा। किताबों में सिवाय राख के और कुछ भी नहीं। कुछ और हो भी नहीं सकता है। कुछ और की आशा भी नहीं करनी चाहिए।गाते हैं कबीर—
'मोर फकिरवा मांगि जाय,
मैं तो देखहू न पौल्यौं।
मंगन से क्या मांगिए,
बिन मांगे जो देय
कहैं कबीर मैं हौं वाही को,
होनी होय सो होय।।'कहते हैं : मैं फकीर हूं, मांगने जाता हूं, द्वार-द्वार भिक्षा का पात्र फैलाता हूं; लेकिन एक बड़ा चमत्कार देखा कि जो मिलता है वही फकीर है, सभी यहां मांगने वाले हैं! यहां देने वाला कौन? जब तक वासना है, तब तक भिखमंगापन है।कबीर कहते हैं : मैं तो फकीर हूं, भिखमंगा हूं, द्वार-द्वार भिक्षापात्र फैलाता हूं; लेकिन चकित हुआ हूं यह जानकर कि हर घर में मैंने भिखमंगों को बैठे देखा, और दूसरा कोई दिखायी पड़ता ही नहीं! बड़े-बड़े भिखमंगे हैं, धनी भिखमंगे हैं, सम्राट भिखमंगे हैं; मगर हैं सब भिखमंगे।जब तक वासना है तब तक भीख है। जब तक तुम कह रहे हो यह और मिल जाए, यह और मिल जाए, तब तक तुम मालिक नहीं हो। जब तक मांग शेष है तब तक मालकियत कैसी?'मोर फकिरवा मांगि जाय।' कबीर कहते हैं : मैं तो रहा फकीर, सो ठीक है कि मांगने जाता हूं। लेकिन सम्राटों के द्वार पर भी खड़े होकर, राज-सिंहासनों पर बैठे हुए लोगों को देखा और हैरान हुआ, समझ नहीं पाया इस पहेली को कि सभी फकीर हैं, सभी भिखमंगे हैं। यहां सभी मांगने में लगे हैं, तो फिर सोचा कि इनसे क्या मांगना! 'मंगन से क्या मांगिए' ! ये तो खुद ही भिखमंगे

हैं बेचारे, ये तो खुद ही दया के पात्र हैं। इन्होंने तो खुद ही अपनी वासना के अदृश्य पात्र फैला रखे हैं। मेरा पात्र तो छोटा, मुट्ठी दो मुट्ठी से भर जाए। इनके पात्र ऐसे हैं, दुष्पूर, कि लाख भरो, नहीं भरते, खाली के खाली! साम्राज्य पी जाते हैं, लेकिन उनका खालीपन नहीं भरता। इनसे क्या मांगूं? इनसे मांगने में शर्म आती है। यह जानकर तुम्हें हैरानी होगी कि कबीर जीवन भर कपड़ा ही बुनते रहे और बेचते रहे; जुलाहे थे, अपना काम जारी रखा। उनके शिष्यों ने बहुत बार कहा कि हमें शर्म लगती है, हमें संकोच होता है, हमें लाज आती है, हमें लज्जा पकड़ती है, लोग हमें उलटी-सीधी बातें कहते हैं कि जिसके हजारों शिष्य हैं, हजारों भक्त हैं, उसको कपड़ा बुनना पड़ता है, बाजार बेचने जाना पड़ता है! तो आप यह बंद क्यों नहीं कर देते? हम तो देने को राजी हैं—जो चाहिए; जितना चाहिए उससे ज्यादा देने को राजी हैं। क्या कमी है!लेकिन कबीर मुस्कुराते और अपना काम जारी रखा। मरते दम तक बुनते रहे कपड़ा, बेचते रहे कपड़ा। कारण यही था—'मोर फकिरवा मांगि जाय,
मैं तो देखहू न पौल्यौं।
मंगन से क्या मांगिए,
बिन मांगे जो देय।
कहैं कबीर मैं हौं वाही को,
होनी होय सो होय।।' कबीर कहते हैं कि इसीलिए नहीं। क्या मांगू? क्या तुम्हारे ऊपर निर्भर होऊं? तुम तो खुद ही भिखमंगे हो। तुम्हारी तो खुद ही आकांक्षाएं पूरी नहीं हुई हैं। इससे बेहतर यही है कि उससे ही मांग लूं, जो सबको देता है और जो बिन मांगे देता है।क्योंकि मांगो तो मजा चला गया, मांग कर कुछ मिला तो मजा चला गया। बिन मांगे मिल जाए तो सम्मान है, तो गौरव है, तो गरिमा है। 'बिन मांगे जो देय' !यहां तो मांगे-मांगे भी कौन देता है और मांग-मांग कर भी अगर कोई दे तो लाख एहसान जताता है। देता भी है तो किन्हीं और कारणों से देता है, दिखावे के लिए देता है, अहंकार की तृप्ति के लिए देता है। दानी, महादानी समझा जाए, इसलिए देता है। और जहां दान के पीछे कुछ भी आकांक्षा है, वहां दान विकृत हो गया, विषाक्त हो गया। दान तो तभी दान है जब अकारण है। यहां तो तुम दो पैसे भी देते हो तो पात्रता का पता लगाते हो, योग्यता का पता लगाते हो। देते हो दो पैसे, दो पैसे देने के लिए कितना शोरगुल मचाते हो!कबीर कहते हैं : ऐसे मांगने में मुझे रस नहीं। भिखमंगों से मांगने में मुझे खुद ही संकोच लगता है कि बेचारे वैसे ही दीन-हीन हैं और इनसे कुछ लेकर दो पैसे, इन्हें और दीन-हीन कर देना क्या उचित होगा?सिकंदर जब भारत आया तो डायोजनीज़ से मिला—एक नंगे फकीर से। डायोजनीज़ से बहुत प्रभावित हुआ—और सिकंदर ने कहा : 'डायोजनीज, कुछ मांग लो। जो चाहिए हो मांग लो।' डायोजनीज़ ने सिकंदर को नीचे से ऊपर तक देखा और कहा कि अभी तो तुम्हारी ही आकांक्षाओं का पात्र भरा नहीं, तुम मुझे क्या दोगे! तुमसे क्या मांगूं? फिर भी तुम्हें बुरा न लगे, फिर भी तुम्हारा अपमान न हो, फिर भी अशिष्टाचार न हो जाए, इसलिए इतना मांगता हूं कि जरा हट कर खड़े हो जाओ, क्योंकि मैं सुबह-सुबह सूरज की धूप ले रहा था और तुम बीच में आ कर खड़े हो गए हो। इतना ही दे दो। और इतनी ही प्रार्थना करता हूं कि यही खयाल रखना कि किसी व्यक्ति के और सूरज के बीच में खड़े मत होना। किसी की धूप मत छीनना, बस। इतना ही तुम कर सको तो बहुत है। वैसे तुम्हारे पास मैं कुछ देखता नहीं, जो मांगने योग्य हो। और तुम्हारी ऐसी दीन दशा देखता हूं। कि हो भी तुम्हारे पास, तो भी मैं मांग न सकूंगा।सिकंदर एक तरफ तो हतप्रभ हुआ, और एक तरफ चमत्कृत भी हुआ। पहली दफा जैसे किसी मनुष्य से मिलना
हुआ था। नहीं था कुछ उसके पास, नंगा था यूं। लेकिन कैसी अलमस्ती थी! सिकंदर से भी कुछ न मांगा। सिकंदर को भी दिखा दिया—कि तुम भिखमंगे हो।सूफी फकीर फरीद से उसके गांव के लोगों ने कहा, कि अकबर तुम्हारे पास आता है, तुम उससे प्रार्थना करो कि गांव के लिए एक मदरसा बनवा दे। फरीद कभी अकबर से मिलने नहीं गया था। अकबर ही आता था जब उसे मिलना होता था। लेकिन जब कुछ मांगना हो तो जाना उचित है, ऐसा मान कर फरीद अकबर से मांगने गया। सुबह-सुबह जल्दी गया। काम-धाम में उलझ जाए

अकबर, उससे पहले ही मिल आना ठीक है। पहुंचा महल, सम्मानपूर्वक उसे अंदर ले जाया गया। अकबर तब प्रार्थना कर रहा था, सुबह की नमाज पढ़ रहा था। फरीद पीछे खड़ा रहा। अकबर ने नमाज पूरी की, दोनों हाथ आकाश की तरफ फैलाए और परमात्मा से कहा हे प्रभु! मेरी धन-संपदा बढ़ा, मेरे राज्य को बढ़ा, मुझ पर कृपा कर!फरीद उलटे पांव लौट पड़ा। अकबर उठा तो फरीद जाता हुआ दिखाई पड़ा। दौड़ कर पैर पकड़ लिए और कहा : आए, पहली दफा आए और बिना एक शब्द बोले लौट चले जाते हो, बात क्या है? कुछ मुझसे भूल-चूक हो गयी है?'फरीद ने कहा : नहीं, तुमसे कुछ भूल-चूक नहीं हुई, भूल-चूक मुझसे हो गयी है। मैं भी कहां भिखमंगे से भीख मांगने आ गया! गांव के लोगों ने मुझसे बहुत बार कहा तो मैंने कहा चलो ठीक। वे कहते थे कि गांव में मदरसा खुलवा दो, एक स्कूल; उसी के लिए आया था लेकिन नहीं अब, अब नहीं मांगूंगा। तुम तो खुद ही अभी मांग रहे हो। तुम्हारी प्रार्थना तो अभी भिखमंगे की प्रार्थना है—और राज्य, और धन, और संपदा। नहीं, तुम्हें गरीब नहीं करूंगा। एक मदरसा खोलोगे तो कुछ पैसा तो लगेगा ही, उतना गरीब हो जाओगे। नहीं, मैं किसी को गरीब करने के लिए उत्सुक नहीं हूं। फिर रही बात मदरसे की तो गांव के लोगों से कह दूंगा कि हम उसी से ही क्यों न मांग लें जिससे अकबर खुद मांगता है। उसकी होगी मर्जी तो दे देगा; उसकी मर्जी नहीं होगी, तो उसकी मर्जी से ही राजी होना उचित है।'कबीर कहते हैं : 'मंगन से क्या मांगिए!' मांगना ही हो, तो सम्राटों के सम्राट से मांगो, उस मालिक से मांगो—'बिन मांगे जो देय!' और उससे मांगना भी नहीं पड़ता। यही मजा है। भक्त और भगवान के बीच जो संवाद चलता है, अनूठा है। भक्त मांगता नहीं और भगवान बरसाए चला जाता है—प्रसाद पर प्रसाद! भक्त ने मांगा कि संवाद रुक जाता है। मांगा कि बात टूट गयी। मांगा कि नाता छिन्न-भिन्न हो गया। सेतु गिर गया। क्योंकि मांगा तो तुमने यह बता दिया कि तुम्हें भगवान में उत्सुकता नहीं है; तुम्हारी उत्सुकता धन में है, पद में है, प्रतिष्ठा में है। भगवान तो केवल बहाना है। उसके माध्यम से मिल जाए धन, इसलिए भगवान की प्रार्थना भी कर रहे हो। लेकिन असली इच्छा धन की है। धन भगवान से बड़ा हो गया। भगवान साधन हो गया, धन साध्य हो गया।जिसने मांगा उसने भगवान का अपमान किया। अगर तुम्हारी प्रार्थनाओं में मांग है तो तुम भगवान का अपमान कर रहे हो।लोग मुझसे पूछते हैं कि हमारी प्रार्थनाएं पूरी क्यों नहीं होतीं?तुम्हारी प्रार्थनाएं परमात्मा तक पहुंच ही नहीं सकतीं; वे प्रार्थनाएं नहीं हैं, अपमान हैं; स्तुति नहीं हैं, गालियां हैं। क्योंकि जब भी तुम कुछ मांगते हो तभी तुम यह कह रहे हो कि भगवान से भी बड़ी कोई चीज है, जिसके लिए हम भगवान को भी साधन बना रहे हैं। अगर शैतान दे सकता हो, तो हम शैतान की प्रार्थना करेंगे। कहते हैं कि भगवान देता है, तो भगवान की प्रार्थना करते हैं।मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की अंतिम घड़ी आयी। तो धर्मगुरु उसे आखिरी प्रार्थना करवाने आया। मुल्ला ने कहा कि अभी तो मैं प्रार्थना खुद कर सकता हूं। आप बैठें, बिराजें! मैं प्रार्थना करता हूं। और उसने पहले तो परमात्मा से प्रार्थना की कि 'हे प्रभु! मुझे बचाओ। ये मृत्यु के दूत द्वार पर आकर खड़े हो गए हैं। मेरी रक्षा करो। और फिर कहा कि 'हे शैतान, मुझे बचा! ये मृत्यु के दूत मेरे द्वार पर आ कर खड़े हो गए हैं।'धर्मगुरु ने सुना कि वह शैतान से भी प्रार्थना कर रहा है! तो उसने कहा : नसरुद्दीन, तुम विक्षिप्त तो नहीं हो गए हो? मरते वक्त होश तो नहीं खो दिया है?'नसरुद्दीन ने कहा कि तुम मुझे समझाने की कोशिश मत करो। मर मैं रहा हूं कि तुम मर रहे हो? अब कौन जाने किसके हाथ में पड़ना पड़े! इसलिए दोनों से प्रार्थना कर लेनी उचित है। जिसके भी हाथ में पड़ गए उसी से कहेंगे कि भाई याद रखना, प्रार्थना तो की थी! इस आखिरी समय में यह झंझट मैं मोल नहीं ले सकता कि एक की प्रार्थना करूं और दूसरे को छोड़ दूं। अब पता नहीं किसके कब्जे में पडूंगा। और ज्यादा संभावना तो शैतान के कब्जे में ही पड़ने की है। इसलिए उसे भी राजी रखना उचित है।तुम उसकी ही प्रार्थना करते हो जिसे तुम्हारी आकांक्षाएं पूरी हो सकें; फिर वह परमात्मा हो कि शैतान हो। तुम्हें न परमात्मा से प्रयोजन है न शैतान से; तुम्हें अपनी आकांक्षा से प्रयोजन है। इनका तो तुम उपयोग कर रहे हो।इसलिए भक्त मांगता नहीं; बिन मांगे मिलता है, बहुत मिलता है, अकूत मिलता है! तौला नहीं जा सकता; इतना मिलता है। प्रसाद की सतत वर्षा होती रहती है।

लेकिन बिन मांगे! मांगा कि तत्क्षण वर्षा बंद हो जाती है।और तुमने तो जो प्रार्थना सीखी है, और तुम्हारे धर्मगुरुओं ने तुम्हें जो प्रार्थनाएं सिखायी हैं, वे सब मांगने की हैं। पानी न गिरे तो हवन, यज्ञ। तुम परमात्मा की याद ही तब करते हो जब तुम्हारी कोई जरूरत होती है; कोई काम अटक जाए तो खुशामद करने लगे। तुम्हारी प्रार्थना खुशामद से ज्यादा नहीं है। मजबूरी में करते हो। वह तुम्हारा आह्लाद नहीं है। तुम्हारा आनंद नहीं है। तुम्हारा उत्सव-गीत नहीं है। तुम्हारा धन्यवाद नहीं है। तुम्हारा आभार, अनुग्रह नहीं है। पानी नहीं गिरा तो यज्ञ-हवन शुरू, पंडित-पुरोहित शुरू। कोई अड़चन आयी, बीमारी आयी, तकलीफ आयी—तो प्रार्थना।एक छोटे-से बच्चे से स्कूल में पूछा उसके अध्यापक ने कि बेटा, रात प्रार्थना करके सोते हो न? उसने कहा कि जरूर, रोज प्रार्थना करके सोता हूं।'और सुबह प्रार्थना करते हो कि नहीं? उस लड़के ने कहा : 'सुबह! सुबह किसलिए ? रात तो अंधेरे में मुझे डर लगता है, इसलिए प्रार्थना करता हूं। सुबह तो रोशनी है, क्या मैं पागल हूं जो सुबह प्रार्थना करूं?'तुम्हारी प्रार्थनाएं भी उस लड़के की प्रार्थना से बहुत भिन्न नहीं हैं।कल ही मैं एक पंडित के संबंध में पढ़ रहा था कि उसने अपने सोने के कमरे की दीवाल पर, सुंदर अक्षरों में श्रेष्ठतम प्रार्थनाएं लिख रखी थीं—सभी धर्मों की! सर्व-धर्म-समभाव में उसका भरोसा था। और रोज रात सोने के पहले कहता था : हे प्रभु! कृपा करके प्रार्थनाएं पढ़ लेना!' और सो जाता था। होशियार आदमी, चालबाज आदमी! अब कौन झंझट रोज-रोज वही प्रार्थना दोहराने की करे! और फिर लिख तो दिया है। और परमात्मा के पास आंखें भी हैं और आशा की जाती है कि पढ़ा-लिखा भी होगा। 'पढ़ लेना खुद हीं' इतनी ही प्रार्थना करता था; हे प्रभु! प्रार्थना पढ़ लेना।हमारी प्रार्थनाएं हमारी वासनाओं का ही प्रक्षेपण हैं। और हमारी प्रार्थनाएं हमारे अज्ञान से आपूरित हैं। हमारी प्रार्थनाएं प्रार्थनाएं नहीं हैं, प्रार्थनाओं का धोखा है।कबीर ठीक कहते हैं : 'बिन मांगे जो देय!' उस परमात्मा की तरफ झुक भर जाओ और उसके मेघ चले आते हैं, उसकी वर्षा शुरू हो जाती है।स्मरण रहे कि जैसे जब वर्षा के मेघ आषाढ़ में उठते हैं, वर्षा के जल से भरे, तो बरसने को उतने ही आतुर होते हैं, जितनी पृथ्वी पीने को प्यासी होती है। पृथ्वी की प्यास, आतुरता और बादलों की बरसने की आकांक्षा—समान है। सिर्फ पृथ्वी ही प्यासी नहीं होती, बादल भी आतुर होते हैं बरसने को! यह स्वाभाविक है।तुम सिर्फ अपने हृदय को खोल दो। परमात्मा उतना ही बरसने को आतुर है। उसके पास बाढ़ है आनंद की। वह तुम्हारी तरफ हजार-हजार धाराओं में, सहस्त्र धाराओं में बहना चाहता है। सच तो यह है कि वह रोज तुम्हारे चारों तरफ परिभ्रमण करता है। तुम तो कभी-कभी मंदिर में जा कर परिक्रमा कर आते हो—झूठी! तुम्हारा मंदिर झूठा, तुम्हारी परिक्रमा झूठी, क्योंकि तुम झूठे। तुम्हारा मंदिर तुम्हारा बनाया हुआ। तुम्हारे मंदिर के पंडित-पुजारी तुम्हारे नौकर। तुम्हारी प्रार्थनाएं इन्हीं नौकरों के द्वारा गढ़ी हुई प्रार्थनाएं हैं।

तुम अपनी प्रार्थना भी अपने हृदय से नहीं उठने देते! क्या फिक्र कि प्रार्थना में सुंदर शब्द हों? फिक्र होनी चाहिए कि प्रार्थना हृदय से जन्मी हो। क्या चिंता कि भाषा सौष्ठव हो, व्याकरण शुद्ध हो? चिंता होनी चाहिए एक कि हार्दिकता हो, सहजता हो, स्वस्फूर्त हो। तुतलाहट से भी काम चल जाएगा। सुंदर से सुंदर प्रार्थनाएं, गायत्री के मंत्र भी काम नहीं आएंगे; शुद्ध से शुद्ध उच्चारण भी साथ नहीं देगा। लेकिन अगर तुम्हारे प्राणों से ही उठा हुआ भाव है, फिर चाहे वह तुतलाहट जैसा ही क्यों न मालूम हो, टूटा-फूटा क्यों न हो—सार्थक है। इसलिए सार्थक है कि तुम्हें खोलता है।परमात्मा तो तुम्हारी परिक्रमा कर ही रहा है। तुम्हें खुला हुआ पा जाए तो प्रवेश कर ले। तुम बिलकुल बंद हो। तुमने द्वार-दरवाजे, खिड़की, सब बंद कर रखे हैं। तुमने रंध्र भी नहीं छोड़ी है उसके प्रकाश के प्रवेश के लिए। तुम ऐसे भयभीत हो—कि तुमने जीवन को एक कब्र बना लिया है।

भर देते हो बार-बार, प्रिय, करुणा की किरणों से क्षुब्ध हृदय को पुलकित कर देते हो भर देते हो!

मेरे अंतर में आते हो, देव, निरंतर, कर जाते हो व्यथा-भार लघु बार-बार कर-कंज बढ़ा कर; भर देते हो!

अंधकार में मेरा रोदन सिक्त धरा के अंचल को करता है क्षण-क्षण—कुसुम-कपोलों पर वे लोल शिशिर-कण तुम किरणों से अश्रु पोंछ लेते हो,

नव प्रभात जीवन में भर देते हो।

भर देते हो!

तुम जरा खिड़की तो खोलो, झरोखा तो खोलो हृदय का—और उसका सूरज सदा तुम तैयार पाओगे! उसका सूरज क्या कभी डूबता है? उसकी सुगंध सदा तुम्हारे चारों तरफ डोल रही है। अवसर तो दो, उसके बादल बरसने को आतुर हैं! मगर तुमने अपने हृदय की पृथ्वी को छिपा रखा है। प्यासे हो, पीड़ित हो। मगर गलत दिशाओं में खोज रहे हो। भिखमंगों से मांग रहे हो। और जो दे सकता है, बिन मांगे दे सकता है, उसकी तरफ आंख नहीं उठाते! झोली फैलाओ, मांगो मत!कबीर कहते हैं : मैं तो उसी का हो गया।

'कहैं कबीर मैं हौं वाही को,

होनी होय सो होय।' और कबीर कहते हैं, अब मैं यह भी नहीं कहता कि ऐसा हो, वैसा हो; क्योंकि उसमें तो मांग आ जाएगी। फिर तो नियंता मैं, फिर तो परमात्मा पर मैंने शर्त लगा दी। फिर तो प्रार्थना में भी शर्तबंदी हो गयी। फिर तो प्रार्थना भी सौदा हो गयी। नहीं कोई शर्त, नहीं कोई आकांक्षा। 'होनी होय सो होय'! जो उसे करना हो, करे। वह जो करेगा, वही शुभ है। यह भक्त का भाव है।अभक्त कहता है : ऐसा करो, ऐसा मत करना। ऐसा करोगे, तो ही मैं तुम्हें मानूंगा। ऐसा नहीं करोगे, तो मैं मानने वाला नहीं हूं।एक मित्र मेरे पास आए। कोई पंद्रह वर्ष पहले की बात है। कहने लगेः 'मुझे ईश्वर पर भरोसा आ गया है।' मैंने पूछा : कैसे भरोसा आया? किस कारण भरोसा आया?' उन्होंने कहा कि मैंने अल्टीमेटम दे दिया था। अल्टीमेटम!. . .कि अगर पंद्रह दिन में मेरे लड़के की नौकरी नहीं लगी, तो समझ लेना कि फिर कभी जीवन में न पूजा करूंगा, न कभी पाठ करूंगा। समझ लेना कि मान लूंगा कि तुम हो ही नहीं! यह सब पाखंड है, परमात्मा के नाम पर जालसाजों ने फैलाया है। कोई परमात्मा नहीं है। और ठीक पंद्रह दिन के भीतर लड़के को नौकरी मिल गयी। अब तो पक्का भरोसा आ गया है कि परमात्मा है।मैंने कहा कि अब तुम एक काम करना, अब दुबारा अल्टीमेटम मत देना, क्योंकि इस बार तो बात बन गयी। लग गया सो तीर, नहीं लगता तो तुक्का हो जाता। संयोग की ही बात है, क्योंकि मुझे पक्का पता है कि परमात्मा ने तुम्हारे लड़के की नौकरी नहीं लगवायी है।उन्होंने कहा : 'आप कैसे कह सकते हैं?'मैंने कहा : 'मैं भी प्रार्थना कर रहा हूं। मैं उसको जानता हूं। लड़के की नौकरी लग गयी, यह संयोग की बात है। अब तुम दुबारा यह मत करना, नहीं तो तुम्हारा सब धर्म, तुम्हारी धार्मिकता, यह जो अहोभाव है, सब धूल-धूसरित हो जाएगा। और अगर तुम्हें परीक्षा करनी हो तो एक बार कोशिश कर लो। तुम्हारी पत्नी बहुत दिन से बीमार है, एक दफे और अल्टीमेटम दे दो।'और वही हुआ जो होना था, आखिर उन्होंने अल्टीमेटम दिया; जब एक दफा अल्टीमेटम सफल हो गया. . .। पत्नी ठीक नहीं हुई, उलटे मर गयी। वे मेरे पास आए कि आपने ठीक कहा था। मेरी सारी श्रद्धा खंडित हो गयी। मैंने तो कहा था बचाओ और मेरी पत्नी खतम ही कर दी! मेरी आस्तिकता अस्तव्यस्त हो गयी है!मैंने कहा : 'तुम्हारी आस्तिकता आस्तिकता थी ही नहीं। जो ऐसी सस्ती बातों पर टिकी हो, ऐसी आस्तिकता आस्तिकता होती है?—मेरे लड़के को नौकरी मिल जाए, कि मेरी पत्नी की बीमारी ठीक हो जाए! इस तरह कहीं कोई आस्तिक होता है! इनको तुम आस्तिक कहते हो!'मगर लोगों का भी क्या कसूर! तुम्हारे धर्मशास्त्र भी इसी तरह की मूढ़ताओं से भरे हुए हैं। जिन वेदों को तुम इतना पूजते हो, कभी उनके पन्ने भी पलटो और तुम चकित हो जाओगे कि जिन ऋषि-महर्षियों का गुणगान करते तुम थकते नहीं, उनकी प्रार्थनाओं में क्या है? उनकी प्रार्थनाएं ऐसी अभद्र हैं, ऐसी क्षुद्र हैं, ऐसी ओछी हैं, कि ऋषि-मुनि तो क्या, साधारण जन भी ऐसी प्रार्थना करने में झिझकता। कोई ऋषि प्रार्थना कर रहा है कि हे प्रभु, मेरे खेत में ज्यादा वर्षा हो और मेरे दुश्मन के खेत में ज्यादा वर्षा न हो! दोनों के खेत आसपास होंगे। दुश्मन अक्सर पड़ोसी होता है। दुश्मन कोई बहुत दूर तो होते नहीं। दुश्मनी करने के लिए भी तो थोड़ी निकटता चाहिए। पड़ोसी और दुश्मन अक्सर एक ही आदमी का नाम होता है। इनके खेत में ज्यादा वर्षा और पड़ोसी के खेत में कम वर्षा! क्षुद्रता की भी हद होती है। कोई ऋषि प्रार्थना करता है कि हे प्रभु, मेरी गाय के थन में दूध बढ़

जाए और मेरे दुश्मनों की गाय के थन बिलकुल सूख जाएं!इनको तुम प्रार्थनाएं कहोगे!वेदों में नब्बे प्रतिशत से ज्यादा इसी तरह का कचरा है। इसे कचरा कहो तो लोगों को दुख होता है। उनकी धार्मिक भावनाओं को चोट पहुंच गयी! मगर मजबूरी है, कचरे को कचरा कहना ही होगा। अगर तुम्हारी धार्मिक भावनाओं को चोट पहुंचती है तो कृपा करके अपनी धार्मिक भावनाओं को जरा मजबूत बनाओ। मुझ पर न मालूम कितने मुकदमे लोग चला देते हैं। अभी किसी ने छपरा में, बिहार में. . .मैं न कभी छपरा गया. . .किसी ने मुकदमा चला दिया है कि उसकी धार्मिक भावनाओं को चोट पहुंच गयी। समन्स आए हैं कि मुझे छपरा की अदालत में मौजूद होना चाहिए।धार्मिक भावना को चोट पहुंच जाए, ऐसी लचर-पचर, नपुंसक धार्मिक भावना रखते ही क्यों हो? धार्मिक भावना में कुछ तो बल होना चाहिए। मगर इस तरह के आधारों पर खड़ी हुई धार्मिक भावना में कोई दम तो होती नहीं; जरा एक लंगड़ी मार दो, चारों खाने चित्त! धार्मिक भावना क्या है? पैर इत्यादि तो है ही नहीं, हो सकता है लकड़ी का पैर हो, शायद किसी संयोग में काम आ जाए लकड़ी का पैर लेकिन परमात्मा तक नहीं पहुंचा पाएगा। ये झूठे पैर वहां काम नहीं आ सकते। तुम्हारी प्रार्थनाएं झूठी, तुम्हारी भावनाएं झूठी और फिर तुम सोचते हो कि बात क्या है, कहां कमी रह गयी, कहां चूक हो रही है! और तुम जब पूछते हो अपने पंडितों से, अपने पुजारियों से, अपने पुरोहितों से, तो वे तो होशियार हो गए हैं सदियों-सदियों तुम्हारे जैसे ही बेईमानों के साथ व्यवहार करते-करते। तो वे कहते हैं : पिछले जन्मों के कर्म, कर्मों का भार, भाग्य, विधाता, कोई जल्दी थोड़े ही होता है; जन्म-जन्म लगेंगे, करते रहो प्रार्थना! रसरी आवत जात है, सिल पर पड़त निशान। घिसते रहो रस्सी को, सिल पर भी निशान पड़ जाएगा। 'करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।'मैं तो नहीं समझता। जड़मति कितना ही अभ्यास करे, और जड़मति हो जाएगा। जड़मति कैसे अभ्यास करके सुजान हो जाएगा, यह तो जरा सोचो! जड़मति ही तो अभ्यास करेगा न! जड़ मति से ही तो अभ्यास करेगा न! जड़ मति ही तो अभ्यास करेगी, तो जड़मति अभ्यास करने से सुजान कैसे हो जाएगा? रस्सी आने-जाने से भला चट्टान पर निशान पड़ जाए, वह तो बात जंच सकती है, लेकिन अभ्यास करने से जड़मति सुजान नहीं होता।अभ्यास के पहले सम्यक बोध चाहिए। बीज ठीक चाहिए, तुम लाख उपाय करो, नीम के बीज बोओगे और कितना ही अभ्यास करो, कितना ही पानी सींचो, कितना ही खाद डालो, इससे कुछ आम पैदा नहीं हो जाएंगे। प्रार्थनाएं लोगों की झूठी हैं, इसलिए इस संसार में परमात्मा का प्रमाण नहीं मिलता। और प्रार्थना के झूठे होने का बुनियादी आधार है—तुम्हारी मांग। जब भी तुम कुछ मांगो तो समझना प्रार्थना झूठी। फिर प्रार्थना सच्ची कब होगी? सच्ची प्रार्थना बिन मांगे होती है। सिर्फ अपना समर्पण। अपने को दो, उससे मांगना क्या है? अपने को देना है।इसलिए जब मैं कहता हूं झोली फैला दो, तो मेरा अर्थ है कि कह दो कि मैं कुछ भी नहीं हूं, मात्र एक झोली हूं खाली। अब जो तेरी मर्जी! खाली रखना हो खाली रख, तो भी मैं नाचूंगा, क्योंकि तेरी मर्जी से खाली हूं। भरना हो तो भर दे, तो भी मैं नाचूंगा, क्योंकि तेरी मर्जी से भरा हूं। अब खालीपन में और भरेपन में कुछ भेद नहीं।जीसस ने सूली पर अपनी अंतिम प्रार्थना में कहा : हे प्रभु! तेरी मर्जी पूरी हो!कबीर के वचन का वही अर्थ है—'कहैं कबीर मैं हौं वाही को,

होनी होय सो होय।' —अब तो मैं उसका हो गया हूं, जो बिना मांगे देता है। अब जो होना हो वह हो।अब मैं हर हाल राजी हूं। अब मेरा अफना कोई संकल्प नहीं है। मैंने अपना सारा संकल्प उसी के चरणों में रख दिया है। अब मैं हूं ही नहीं। अब मेरे हाथों में वही है, मेरे पैरों में वही है। वही मेरे हृदय में धड़कता है, वही मेरे खून में गतिमान है, वही मुझमें बोले, वही मुझ में चुप हो, मैं तो मिट गया! मैंने तो अपने को विदा दे दी, मैंने अपने को बाद दे दी।'होनी होय सो होय!' इस मंत्र को खयाल रखना। इस एक मंत्र के द्वारा ही तुम्हारे जीवन में क्रांति घटित हो सकती है। सिर्फ यह छोटा-सा मंत्र—होनी होय सो होय! तुम्हारी सब गायत्रियां फीकी हैं। इतना कह सको तो बस पर्याप्त है। फिर तुम्हारे श्वास-श्वास से गायत्री उठेगी, गीता उठेगी, कुरान जगेगा

'चली मैं खोज में पिय की। मिटी नहीं सोच यह जिय की।।' कबीर कहते हैं : मैं उस प्यारे की खोज में निकला।

मगर कहीं हृदय में, कोई गहरे में बात एक खटकती रही।

'चली मैं खोज में पिय की। मिटी नहीं सोच यह जिय की।।' 'रहे नित पास ही मेरे।' वह तो पास है। 'न पाऊं यार को हेरे।' यहां वहां कितने ही हेरे-फेरे मारूं, उस यार को नहीं पा सकूंगा। यह बात मेरे प्राणों के प्राण में गूंजती ही रही है। तुम्हारे प्राणों में भी गूंज रही है। सुनो तब न ! तुम बाहर के शोरगुल से इतने भरे हो कि भीतर की धीमी-धीमी आवाज, कि भीतर का कल-कल नाद सुनाई नहीं पड़ता।

'चली मैं खोज में पिय की। मिटी नहीं सोच यह जिय की।।' कबीर कहते हैं : मैं खोजने तो चला, क्योंकि हम यही सुनते हैं कि परमात्मा को खोजना पड़ेगा—काबा में, काशी में, कैलाश में, गिरनार में, कहीं परमात्मा को खोजना पड़ेगा। परमात्मा को खोज बनाओ, खोजो। तो चला। कबीर कहते हैं : मैं खोजने चला। बहुत खोजा, मगर भीतर एक बात मेरे खटकती ही रही, कहीं एक बात मेरे हृदय में गूंजती ही रही। जिसने मेरा कभी पीछा न छोड़ा और वह बात यह थी कि 'रहे नित पास ही मेरे। न पाऊं यार को हेरे।' कोई मेरे भीतर कहता ही रहा : पागल, कहां जा रहा है? मैं तो तेरे भीतर बैठा हूं। मैं तो तेरे प्राणों के प्राणों में विराजमान हूं। तू मेरा मंदिर। तू जा कहां रहा है?' ऐसी धीमी-धीमी आवाज आती रही, धीरे-धीरे समझ में आने लगी। धीरे-धीरे साफ हुई।

'बिकल चहुं ओर को धाऊं। तबहु नहिं कंत को पाऊं।।' कोई कहता ही रहा; मैंने सुना, नहीं सुना, मगर कोई कहता ही रहा। कोई अंतरवाणी भीतर गूंजती ही रही कि चाहे कितना ही भागूं-दौड़ूं, आंपू-धांपू —तबहु नहीं कंत को पाऊं—फिर भी उस प्यारे को नहीं पा सकूंगा।

'धरों केहि भांति सों धीरा। गयौ गिर हाथ से हीरा।।' और अपने को कितना ही धीरज बंधाऊं, बंधाए-बंधाए भी धीरज बंधता नहीं, क्योंकि हाथ से मेरे हीरा गिर गया है। जिसका हीरा गिर गया है, उसको तुम लाख समझाओ, लाख सांत्वना धराओ, तुम्हारे शब्द सुन लेता है, मगर उस पर कोई परिणाम नहीं होता।कबीर कहते हैं : जब तक उसको पा न लूं, तब तक धीरज नहीं। साधु-संत समझाते हैं : धीरज रखो, धैर्य रखो, संतोष रखो। मगर कैसा संतोष, कैसा धीरज? जब तक उस प्यारे से मिलन न हो जाए, तब तक यह असंभव है, यह हो नहीं सकता। हां, ठीक है, बात जंचती है कि संतोष अच्छा है। कहते हैं, संतोषी सदा सुखी। तर्क समझ में आता है। मगर जिसके हाथ से हीरा गिर गया है, जिसका प्राण-प्यारा खो गया है, जिसको अपना भी पता नहीं है, वह किस भांति धीरज रखे?ऐसी ही आवाज तुम्हारे भीतर भी मौजूद है, सबके भीतर मौजूद है। यह अंतरनाद हम जन्म के साथ ही लेकर आए हैं। यह अंतरनाद सदियों-सदियों से हमारे साथ है। हम सुनें न सुनें, लेकिन परमात्मा पुकारता चला जाता है। यह प्रेम एक-तरफा नहीं है। कोई हम ही उसके प्रेम में दीवाने होते हैं, ऐसा नहीं है; वह भी हमारे प्रेम में दीवाना है। यह आग एक ही तरफ नहीं लगी है; यह आग दोनों तरफ लगी है।

दोनों ओर प्रेम पलता है।

सखि, पतंग भी जलता है ! दीपक भी जलता है!

सीस हिलाकर दीपक कहता—.

'बंधु, वृथा ही तू क्यों दहता?'

पर पतंग पड़कर ही रहता! कितनी विक्रलता है। दोनों ओर प्रेम पलता है।

बचकर हाय! पतंग मेरे क्या?

प्रणय छोड़कर प्राण धरे क्या?

जले नहीं तो मरा करे क्या? क्या यह असफलता है?

दोनों ओर प्रेम पलता है?

कहता है पतंग मन मारे,

'तुम महान, मैं लघु, पर प्यारे,

क्यों न मरण भी हाथ हमारे? शरण किसे छलता है।'

दोनों ओर प्रेम पलता है।

दीपक के जलने में आली,

फिर भी है जीवन की लाली,

किंतु पतंग-भाग्य लिपि काली, किसका वश चलता है?

दोनों ओर प्रेम पलता है।

जगती वणिग्वृत्ति है रखती, उसे चाहती जिससे चखती,काम नहीं, परिणाम निरखती, मुझे यही खलता है। दोनों ओर प्रेम पलता है।

सखि, पतंग भी जलता है ! दीपक भी जलता है!

पतंग ही नहीं जलता, दीपक भी जलता है। इसके पहले कि पतंग जले, दीपक को जलना होता है। इसके पहले कि तुम परमात्मा को पुकारो, वह तुम्हें पुकार रहा है। वह दीपक है, हम पतंग हैं। दोनों ओर प्रेम पलता है। इसलिए तुम्हारे भीतर अहर्निश उसकी पुकार आती रहती है—किसी अज्ञात मार्ग से! लेकिन तुम भीतर देखते नहीं, भीतर सुनते नहीं; बाहर का शोरगुल तुम्हें इस तरह घेरे हुए है; विचारों, वासनाओं के प्रचंड तूफान में तुम ऐसे घिरे हो। कहां फुरसत, कहां समय, कहां अवकाश कि घड़ी भर शांत बैठो, कि घड़ी भर भीतर झांको!

'कटी जब नैन की झाई। लख्यौं तब गगन में साई।।' कबीर कहते हैं : जब आंख की जाली कटी. . .आंख की जाली यानी जो बाहर देखने की यह जो जन्मों-जन्मों की आदत थी, यह जो बाहर देखने का ही अभ्यास हो गया था और भीतर देखने की भाषा भूल गयी थी 'कटी जब नैन की झाई। लख्यौं तब गगन में साई।।'. . .तब भीतर के ही आकाश में—गगन भीतर के आकाश की तरफ इशारा है—शून्य गगन में, उस भीतर के शांत शून्य निराकार में, 'लख्यौं तब गगन में साईं', तब मालिक वहां भीतर विराजमान देखा। कितने गए काबा, कितने गए काशी, कहां-कहां नहीं भटके! नहीं पाया उसे। और जब पाया तो अपने भीतर पाया ।

'कबीर शब्द कहि त्रासा। नयन में यार को वासा।।' खूब भटके, व्यर्थ भटके। शब्दों ने खूब भरमाया, शब्दों ने खूब त्रास दिया। 'नयन में यार को वासा।' और जिसे खोजते थे वह आंखों के भीतर ही बसा था।प्रत्येक मनुष्य 'उसका' मंदिर है। कहीं और मंदिर खोजने मत जाना, नहीं तो असली मंदिर से वंचित रह जाओगे। सुनना हो वेद को, कुरान को, तो सुनो भीतर। वहीं से उठते हैं उपनिषद, वहीं से उठती है वास्तविक भगवत-वाणी! और जिसने वहां नहीं सुनी वह लाख शब्दों को याद कर ले, भगवत गीता कंठस्थ कर ले, बस वह तोते के जैसी बात है, उसका कोई भी मूल्य नहीं है।'तन-मन-धन बाजी लागी हो।' और जिसको भीतर जाना हो उसे जरा साहस जुटाना पड़ता है। क्योंकि उस शून्य गगन में प्रवेश करना, इस जीवन का सबसे बड़ा साहस है, दुस्साहस है। 'तन-मन-धन बाजी लागी हो।' सब बाजी पर लग जाता है।संन्यास का अर्थ त्याग नहीं है; संन्यास का अर्थ बाजी है। संन्यास का अर्थ भागना नहीं है; संन्यास का अर्थ सब दांव पर लगा देना है। 'तन-मन-धन बाजी लागी हो!'

'चौपड़ खेलूं पीव से रे, तन-मन-बाजी लगाया।' कबीर कहते हैं : चौपड़ खेल रहा हूं प्यारे के साथ, सब दांव पर लगा दिया है। और बड़ी अदभुत बात कहते हैं, सम्हाल कर रख लेना। कोहिनूरों में भी तौलो तो भी तौली न जा सकेगी।

'हारी तो पिय की भई रे, जीती तो पिय मोर हो।'

यह अदभुत बाजी है, यहां हारो तो भी जीत होती है, जीतो तो भी जीत होती है! यहां हार होती ही नहीं। प्रेम में कभी कोई हारा है? प्रेम में जो हारा सो जीता जो जीता सो तो जीता ही। 'हारी तो पिय की भई रे।' अगर मैं हार गया तो सब कुछ प्रिय हो जाएगा, तन-मन-धन सब लगा दिया है, कुछ पीछे बचाया नहीं। पूरा-पूरा दांव फर रख दिया है। हार गया तो मैं सब कुछ उसका हो जाऊंगा और इससे बड़ा और क्या सौभाग्य—जीती तो पिय मोर हो! और उसने भी कुछ बाजी में कमी नहीं की है, पूरा का पूरा दांव पर वह भी लगा है। अगर मैं जीत गया

तो प्यारा मेरा हो जाएगा। दोनों हालत में दो मिट जाएंगे, एक ही बचेगा। फिर चाहे प्यारा बचे या मैं बचूं, क्या फर्क पड़ता है! कहने की बात है फिर।ज्ञानियों ने कहा : अहं ब्रह्मास्मि। ज्ञानी कहते हैं : मैं ही बच गया, परमात्मा मेरे साथ एक हो गया। महावीर और बुद्ध यही कहते हैं कि आत्मा ही बच गयी, परमात्मा उसी में लीन हो गया। और भक्त कहते हैं : आत्मा खो गयी, परमात्मा में लीन हो गयी। ये कहने के भेद हैं। नदी सागर में उतरी, अब तुम चाहो तो कह दो कि नदी सागर हो गयी और चाहो तो यह कह दो कि सागर नदी हो गया। तुम्हारी मौज। असली बात यह है कि अब दो नहीं रहे, एक बचा। अब एक को तुम क्या कहना चाहते हो, तुम्हारी मर्जी। नाम का ही भेद है।भक्त कहते हैं : मैं मिट जाता है, तू बचता है। ज्ञानी कहते हैं : तू मिट जाता है, मैं बचता है। सच तो यह है : न मैं बचता है, न तू बचता है; जो बचता है उसे अब मैं और तू में कहने का कोई उपाय नहीं। वह अव्याख्य है, अनिर्वचनीय है। हारी तो पिय की भई रे, जीती तो पिय मोर हो!

'चौसरिया के खेल में रे, जुग्ग मिलन की आस।' चौसर के खेल में जब दो गोटियां एक जगह इकट्ठी हो जाती हैं, उसकी आशा में ही भक्त भीतर-भीतर उतरता जाता है। लगाता जाता है सब दांव पर।

'चौसरिया के खेल में रे, जुग्ग मिलन की आस।बस एक ही आशा है कि कोई घड़ी तो आएगी जब दोनों गोटें एक जगह मिल जाएंगी; जहां मैं और तू का मिलन होगा। 'नर्द अकेली रह गई रे, नहिं जीवन की आस हो।' अगर गोटी अकेली रह गयी तो फिर जीवन व्यर्थ है, फिर जीवन में कुछ आशा नहीं है। जीवन में सारी आशा परमात्मा की मौजूदगी से है और जीवन का सारा रस हम कितने उससे ओतप्रोत हो जाएं इसमें छिपा है। जीवन का सारा अर्थ, महिमा परमात्मा में डुबकी लगाने में है। अपने को मिटा दो तो तुम हो जाओगे। ऐसा उलटा सूत्र है जीवन का, ऐसा महागणित है जीवन का! 'चार बरन घर एक है रे, भांति भांति के लोग।' यहां इतने वर्ण हैं, चार वर्ण हैं; मगर घर एक है। चाहे शूद्र हो, चाहे ब्राह्मण हो, चाहे क्षत्रिय हो, चाहे वैश्य हो, इनमें कुछ भेद है क्या? ये घरों के भेद हैं। और घरों में क्या भेद? सब मिट्टी के भांडे हैं। तुम क्या किसी हड्डी को, डाक्टर के पास ले जाकर जांच करवा सकते हो कि यह शूद्र की है या ब्राह्मण की? कोई डाक्टर दुनिया का बताने में समर्थ नहीं हो सकता कि यह शूद्र की हड्डी है या ब्राह्मण की। शूद्र और ब्राह्मण की तो फिकिर छोड़ दो, कोई डाक्टर यह भी नहीं बता सकता कि यह हड्डी राम की है, कृष्ण की है, बुद्ध की है, कि रावण की है, कंस की है कि जुदास की है, यह भी नहीं बता सकता। यह हड्डी किसी संत की है, महात्मा की है, कि हत्यारे की है, यह भी नहीं बता सकता । घर तो घर है। घर के भीतर कौन रहा, इससे घर में कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन हम घर को बड़ा महत्व दे रहे हैं, बड़ा शोरगुल मचाया हुआ है।शरीर को इतना मूल्य दे दिया है! और इस मूल्य को हम धार्मिकता कहते हैं। लोगों को चार हिस्सों में बांट दिया है। बीसवीं सदी में भी, अभी हरिजन जलाए जाते हैं, जिंदा! और यह भारत जैसे महान धार्मिक देश में घटता है। धर्म के नाम पर भी कैसे-कैसे पाप पलते हैं! सुविधा से पलते हैं। अच्छी आड़ मिल जाती है, बहाना मिल जाता है।

'चार बरन घर एक है रे, भांति भांति के लोग।' ऊपर-ऊपर के भेद हैं, भीतर तो एक ही बसा है। 'मनसा-बाचा कर्मना कोई, प्रीति निबाहो ओर हो।' इन छोटी-छोटी बातों को धर्म मत समझ लेना। असली धर्म तो हैः मनसा-बाचा कर्मना, प्रीति को निबाहना। मन से, वचन से, कर्म से जो परमात्मा के प्रति अपनी प्रीति को निभाए; जो ऐसे जिए, ऐसे उठे, ऐसे बैठे, ऐसे बोले, जिसके जीवन के अंग-अंग में परमात्मा की मौजूदगी की छाप हो। जैसे परमात्मा प्रतिक्षण उसके साथ है, छाया की तरह साथ है।'मनसा-बाचा कर्मना कोई, प्रीति निबाहो ओर हो। लख चौरासी भरमत भरमत, पौ पे अटकी आय।' 'पौ' कहते हैं : जीत का दांव-विशेष। वह घड़ी खेल की जब इस पार या उस पार तय हो जाता है। 'लख चौरासी भरमत भरमत, पौ पे अटकी आय।' मनुष्य का यह जो जन्म है, यह पौ की घड़ी है। कितनी यात्राओं के बाद यह अपूर्व अवसर मिला है! 'जो अबके पौ ना पड़ी रे, फिर चौरासी जाय हो।' अगर अबकी बार भी न जीते तो फिर लंबी यात्रा है। फिर लंबी भटकन है।

वह प्रदीप जो दीख रहा है झिलमिल, दूर नहीं है;

थक कर बैठ गए क्यों भाई! मंजिल दूर नहीं है।
चिंगारी बन गयी लहू की
बूंद गिरी जो पग से;
चमक रहे, पीछे मुड़ देखो,
चरण-चिन्ह जगमग-से।
शुरू हुई आराध्य-भूमि यह,
क्लांति नहीं रे राही;
और नहीं तो पांव लगे हैं
क्यों पड़ने डगमग-से?
बाकी होश तभी तक, जब तक जलता तूर नहीं है;
थक कर बैठ गए क्यों भाई! मंजिल दूर नहीं है।
अपनी हड्डी की मशाल से
हृदय चीरते तम का, फ्रांसिस सारी रात चले तुम दुख झेलते कुलिश निर्मम का। एक खेय है शेष, किसी विध पार उसे कर आओ; वह देखो उस पार चमकता है मंदिर प्रियतम का। आकर इतना पास फिरे, वह सच्चा शूर नहीं है, थककर बैठ गए क्यों भाई! मंजिल दूर नहीं है। दिशा दीप्त हो उठी प्राप्त कर पुण्य-प्रकाश तुम्हारा, लिखा जा चुका अनल-अक्षरों में इतिहास तुम्हारा। जिस मिट्टी ने लहू पिया, वह फूल खिलाएगी ही, अंबर पर घन बन छाएगा ही उच्छ्वास तुम्हारा। और अधिक ले जांच, देवता इतना क्रूर नहीं है। थककर बैठ गए क्यों भाई! मंजिल दूर नहीं है। मनुष्य से निकटतम है परमात्मा। क्यों? क्योंकि अकेला मनुष्य ही एकमात्र प्राणी है जो अंतर्मुखी हो सकता है। और सारे पशु-पक्षी हैं, उनमें भी इतना ही परमात्मा है, जितना हम में है, लेकिन वे अंतर्मुखी नहीं हो सकते, वे भीतर नहीं मुड़ सकते। मनुष्यों में भी सभी मनुष्य कहां भीतर मुड़ पाते हैं। कभी लाखों-करोड़ों में एकाध मुड़ता है। कभी कोई एक बुद्ध, कोई कबीर, कोई नानक, कोई दादू, कोई रैदास, कोई मलूक, कभी एकाध! लेकिन जो भीतर मुड़ता है उसने ही मनुष्य जीवन का ठीक-ठीक उपयोग किया। उस भीतर मुड़ने को ही मैं ध्यान कहता हूं। प्रार्थना चाहो उसे प्रार्थना कहो। उस भीतर मुड़ने को ही जो अपने जीवन का लक्ष्य बना लेता है, उसे मैं संन्यासी कहता हूं। नहीं कि वह भाग जाता है संसार से, बल्कि जीवन को एक दिशा दे देता है—एक गंतव्य, एक लक्ष्य। सारी जीवन-ऊर्जा एक तीर की तरह भीतर की यात्रा पर निकल पड़ती है। अपनी खोज में जो संलग्न हो जाता है, वही संन्यासी है।और मनुष्य-जीवन एकमात्र जीवन है, जहां से हम भीतर की यात्रा कर सकते हैं। यह एक चौराहा है जहां से भीतर की तरफ रास्ता जाता है। चूक गए यह चौराहा तो फिर न मालूम कितने-कितने जन्मों के बाद मिले यह अवसर, मिले न मिले! फिर बात बहुत लंबी हो जाएगी। इतने करीब आ कर गंतव्य के चूकना उचित नहीं, नासमझी है।

'लख चौरासी भरमत भरमत, पौ पे अटकी आय।' अब तो बिलकुल आ गए किनारे, यह लगी नाव, यह रहा किनारा। अब भटकते हो? सब तूफान पार कर आए, अंधेरे को पार कर आए, सुबह होने के करीब है, और अब सोने की तैयारी कर रहे हो? अब सूरज फूटने को है, भोर होने लगी और तुम चादर तानकर सोने का इंतजाम कर रहे हो?

'जो अबके पौ ना पड़ी रे, फिर चौरासी जाय हो।
'कहैं कबीर धर्मदास से रे, जीती बाजी मत हार।'

धर्मदास कबीर के एक शिष्य हैं, जिनको संबोधन करके ये वचन उन्होंने कहे हैं।

'कहैं कबीर धर्मदास से रे, जीती बाजी मत हार।' बात जीत ही गयी। निन्यान्बे प्रतिशत जीत गयी—मनुष्य होने में ही निन्यान्बे प्रतिशत तो तुम जीत गए। बस एक प्रतिशत जीत के लिए चूकना है?जरा-सी बात बची है,

जरा-सा उपाय, थोड़ा सा श्रम, थोड़ा-सा बोध— और क्रांति घट जाएगी। सब मौजूद है। तेल मौजूद है, बाती मौजूद है, दीया मौजूद है, चकमक पत्थर मौजूद है; जरा दोनों पत्थरों को रगड़ देना है। जरा-सी रगड़—और आग पैदा हो जाएगी, और दीया जल जाएगा और सदियों-सदियों का अंधेरा कट जाएगा। कहते हैं कबीर : मत हारो ऐसी जीती बाजी को।

मरा हूं हजार मरण
पायी तब चरण-शरण।
फैला जो तिमिर-जाल
कट-कट कर रहा काल,
अंसुओं के अंशुमाल,
पड़े अमित सिताभरण।
मरा हूं हजार मरण
पायी तब चरण-शरण।
जल-कलकल-नाद बढ़ा
अंतर्हित हर्ष कढ़ा,
विश्व उसी को उमड़ा,
हुए चारु-करण सरण।
मरा हूं हजार मरण
फायी तब चरण-शरण।

यह अवसर हजारों बार मरकर मिला है और यूं चूके जाते हो!बुद्ध एक कहानी कहा करते थे। वे कहते थे : एक आदमी को एक सम्राट ने कारागृह में बंद कर दिया। लेकिन उस आदमी ने सम्राट की बड़ी सेवाएं की थीं और सम्राट दुःखी था कि उसे बंद करना पड़ा, क्योंकि उसने कुछ दगाबाजी की थी। मगर हजारों उसने सम्राट के उपकार भी किए थे, तो उसे एक विशेष तरह की सजा दी गयी। सम्राट का एक महल था, जिसमें एक हजार दरवाजे थे। उस आदमी की आंख पर पट्टी बांध दी गयी और उससे कहा गया कि तू महल में घूम, नौ सौ निन्यान्बे दरवाजे बंद कर दिए हैं और एक दरवाजा खुला है, अगर तू वह दरवाजा खोज लेगा और बाहर निकल आएगा, तो तू मुक्त है।वह आदमी आंख पर पट्टी बांधे टटोलता-टटोलता महल में भटकता है। नौ सौ निन्यान्बे दरवाजे बंद हैं। सोच सकते हो तुम उसकी हालत, थक जाता है, परेशान हो जाता है। मालूम है कि एक दरवाजा खुला है, और मालूम है कि हर घड़ी वह दरवाजा करीब आ रहा है, क्योंकि जितने दरवाजे बंद छूट गए पीछे उतने कम हो गए। ओर जब वह दरवाजा उसके करीब आया तो उसके सिर पर एक मक्खी आ बैठी, वह उस मक्खी को उड़ाने में दरवाजा पार कर गया—बिना टटोले। फिर नौ सौ निन्यान्बे दरवाजे! फिर लंबी यात्रा! बस आया-आया और चूक गया।बुद्ध कहते थे, ऐसी ही हालत मनुष्य की है। मनुष्य-जीवन एक खुला दरवाजा है। और कितने बंद दरवाजों को टटोल-टटोल कर तुम मनुष्य हो पाए! कहीं छोटी-मोटी बातों में मत चूक जाना। सिर पर मक्खी बैठ गयी और चूक गए! और ऐसी ही बातों में लोग चूक कर रहे हैं। कोई धन में अटक गया है; वह कोई सिर पर बैठी मक्खी से ज्यादा नहीं है मामला। कम भला हो ज्यादा तो नहीं है। कोई पद में चूका जा रहा है। कोई गरुर में अकड़ा हुआ है। छोटी-छोटी बातें, दो कौड़ी की बातें, जिनका कोई मूल्य नहीं।समझो कि यह आदमी आ गया फिर नौ सौ निन्यान्बे चक्कर लगा कर और कोई आदमी गाली दे दे उसको जब दरवाजा खुला उसके करीब आता हो; बस, क्रोध में भन्ना गया; उसी भन्नाने में निकल गया। फिर नौ सौ निन्यान्बे दरवाजे, फिर लंबी यात्रा है। और कई तरह की अड़चनें आ सकती हैं। और लोग ऐसे मूढ़ हैं कि उनके लिए चूकना आसान, चूकने का अभ्यास पुराना है। इसलिए चूकना उनका स्वभाव हो गया है। जगा रहे हैं

कबीर—'कहैं कबीर धर्मदास से रे, जीती बाजी मत हार।'

अबके सुरत चढ़ाय दे रे, सोई सुहागिन नार हो।' अबकी हो जाने दे विवाह, अबकी रच जाने दे, पड़ जाने दे भांवर। जरा-सी ही बात करनी है : सुरत को चढ़ा देना है ऊपर, स्मृति को, बोध को जगा देना है! बुद्ध ने जिसको सम्यक स्मृति कहा है—'सम्मासति'—उसी को कबीर ने सुरति कहा है। सुरति का अर्थ होता है—स्मरण। स्मरण इस बात का कि मैं कौन हूं। स्मरण अपने स्वभाव का, अपने स्वरूप का।

'अबके सुरत चढ़ाय दे रे, सोई सुहागिन नार हो।'अगर चढ़ जाए अबकी सुरत तो जन्मों-जन्मों का खोया सुहाग फिर से मिल जाए, प्यारा फिर से मिल जाए। फिर भांवर पड़े—शाश्वत के साथ, सनातन के साथ, अमृत के साथ! जागो, बहुत सो चुके हो!

बीती विभावरी जाग री! अंबर पनघट में डुबो रही तारा-घट उषा नागरी। खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा, किसलय का अंचल डोल रहा। लो, यह लतिका भी भर लायी मधु मुकुल नवल रस-गागरी। अधरों में राग अमंद पिए, अलकों में मलयज बंद किए, तू अब तक सोयी है आली! आंखों में भरे विहाग री! बीती विभावरी जाग री! अंबर पनघट में डुबो रही तारा-घट उषा नागरी।

सुबह आ गयी। मनुष्य का जन्म भोर का क्षण है। अभी चाहो और जाग जाओ, तो सूरज से मिलन हो जाए। कहीं दिन को भी सोने में मत गंवा देना। रात सोने में गयी, क्षमा किया जा सकता है। लेकिन दिन भी सोने में चला जाए तो अक्षम्य है।और जो बीत गया, उसकी फिकिर छोड़ो। जन्मों-जन्मों में जो भटकाव रहे, उनकी चिंताओं में न पड़ो। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैंः 'पिछले जन्मों की याद कैसे आए?'मैं उन से कहता हूं कि अभी तुम इस जन्म में क्या तुम्हारे जीवन का स्रोत है, उसकी याद करने में लगो। क्या करोगे जान कर कि पहले तुम एक बार कुत्ते थे कि बिल्ली थे? जान भी लोगे तो क्या करोगे, कि एक बार वृक्ष थे कि हाथी थे कि घोड़े थे? जान भी लोगे तो क्या करोगे? स्मृति भी आ जाएगी तो क्या खाक उसका कोई मूल्य है! पीछे की क्या फिकिर? इतना पक्का है कि तुम यहां अनंत काल से हो, क्योंकि जीवन में कुछ नष्ट नहीं होता। यहां केवल रूफ बदलते हैं, आकार बदलते हैं, कुछ भी नष्ट नहीं होता। फानी भाफ बन जाता है तो भी कुछ नष्ट नहीं होता। फिर बदली घिरेगी, फिर वर्षा आएगी, फिर पानी बरस जाएगा, फिर नदियां बहेंगी, फिर समुद्र में गिरेगा, फिर भाप बनेगा, फिर हिमालय पर बरसेगा। वर्तुलाकार है। फिर गंगा से बहेगा, फिर पहुंच जाएगा सागर, फिर उठेगा आकाश में।तुम घूमते रहे हो इस चक्कर में। अब इससे क्या फर्क पड़ता है कि इसका विस्तार जानो? इसका विस्तार जानने से कुछ प्रयोजन नहीं और विस्तार इतना बड़ा है कि जानने में कहीं इस जीवन को मत गंवा देना! विस्तार इतना बड़ा है, फाइलों पर फाइलें हैं कि तुम अगर उनमें खो गए और उसका हिसाब-किताब लगाने में बैठ गए तो यह जीवन छोटा-सा है, यह यूं चला जाएगा कि पता न चलेगा, यह आंख की पलक झपकते निकल जाएगा।कल की फिकिर छोड़ो। कुछ को फिकिर आने वाले कल की है। कुछ आ जाते हैं, वे कहते हैं कि मृत्यु के बाद क्या होगा? मैं उनसे कहता हूं : पागलो, इसकी फिक्र करो कि मृत्यु के पहले क्या हो रहा है। मृत्यु के बाद क्या होगा, यह जब मरो तब देख लेना, तब जान लेना; इसकी इतनी क्या जल्दी पड़ी है? अभी तुम जीवित हो, अभी क्या है तुम्हारे भीतर, उसकी चिंता लो। जो बीत गई सो बात गई जीवन में एक सितारा था, माना, वह बेहद प्यारा था, वह डूब गया तो डूब गया। अंबर के आनन को देखो, कितने इसके तारे टूटे, कितने इसके प्यारे छूटे,जो छूट गए, फिर कहां मिले;फर बोलो टूटे तारों परअब अंबर शोक मनाता है!जो बीत गई सो बात गई! जीवन में वह था एक कुसुम,थे उस पर नित्य निछावर तुम,वह सूख गया तो सूख गया; मधुवन की छाती को देखो, सूखीं इसकी कितनी कलियां,मुरझाइ कितनी वल्लरियांजो मुरझाइ, फिर कहां खिलीं,पर बोलो सूखे फूलों परकब मधुवन शोर मचाता है!जो बीत गई सो बात गई!

जीवन में मधु का प्याला था, तुमने तन-मन दे डाला था, वह टूट गया तो टूट गया;मदिरालय का आंगन देखो, कितने प्याले हिल जाते हैं गिर मिट्टी में मिल जाते हैं, जो गिरते हैं, कब उठते हैं, पर बोलो टूटे प्यालों पर कब

मदिरालय पछताता हैजो बीत गई सो बात गई!मृद-मिट्टी के हैं बने हुए, मधु-घट टूटा ही करते हैं, लघु जीवन लेकर आए हैं, प्याले फूटा ही करते हैं, फिर भी मदिरालय के अंदरमधु के घट हैं, मधु प्याले हैं जो मादकता के मारे हैं, वे मधु लूटा ही करते हैं, वह कच्चा पीनेवाला हैजिसकी ममता घट-प्यालों परजो सच्चे मधु से जला हुआकब रोता है, चिल्लाता है! जो बीत गई सो बात गई।जरा भीतर मुड़ो, वहां मधु की धार बह रही है—शाश्वत मधु की धारा बह रही है! वहां मधुमय विराजमान है। वहां अमृत का स्रोत है। उससे पहचान कर लो।और मनुष्य-जीवन में ही उससे पहचान हो सकती है। इसलिए कबीर ठीक कहते हैं कि बहुत बार हारे हो, इस बार बाजी मत हार जाना। एक बार भीतर देख लो, बस फिर जीवन का सारा दुःख कट जाता है, चिंता कट जाती है, संताप कट जाता है। आनंद की, अमृत की वर्षा हो जाती है! फिर एक और ही आयाम खुलता है। उस आयाम का नाम ही परमात्मा है। एक और ही द्वार, एक और ही रहस्यमय द्वार खुलता है। उस रहस्यमय द्वार का नाम ही परमात्मा है।और वह द्वार तुम्हारे भीतर है। कहीं और न खोजना, नहीं तो खोज व्यर्थ होगी। भीतर खोदो, भीतर खोजो!

आज इतना ही।

बारहवां प्रवचन

छाया मत छूना मन

प्रश्न सार

जब भी मैं किसी व्यक्ति के साथ आपकी करुणा और प्रेम-भाव के बारे में बातचीत करता हूं, तो आवाज रुंध जाती है, शब्द खो जाते हैं और पोर-पोर रोना आ जाता है, तब लगता है, मैं आपके अत्यंत निकट हूं। कृपया बताएं कि मैं आपकी अनंत अनुकंपा का ऋण कैसे चुकाऊं?

वर्षों से एक प्रश्न बार-बार मेरे मन में उठ रहा था। सोचा था, आपसे प्रश्न का समाधान मिल जाएगा, किंतु यहां आकर मेरा प्रश्न तो क्या, मैं ही खो गया हूं। ऐसा क्यों?

क्या तृष्णा-रहित जीवन ही भगवत्ता है? साथ ही आपसे जो सुख मिला है, उसके लिए धन्यवाद देता हूं।

पहला प्रश्न : भगवान! जब भी मैं किसी व्यक्ति के साथ आपकी करुणा और प्रेम-भाव के बारे में बातचीत करता हूं, तो आवाज रुंध जाती है, शब्द खो जाते हैं और पोर-पोर रोना आ जाता है। तब लगता है मैं आपके अत्यंत निकट हूं।कृपया बताएं कि मैं आपकी अनंत अनुकंपा का ऋण कैसे चुकाऊं? चंद्रकांत भारती! यह स्वाभाविक है। प्रेम के पास कोई भाषा नहीं। प्रेम की भाषा मौन है। लेकिन प्रेम बोलना चाहता है। एक गहन अभीप्सा है प्रेम में—स्वयं को अभिव्यक्त करने की। अभिव्यंजना का कोई उपाय नहीं, अभिव्यक्ति की प्रबल अभीप्सा है। इससे रोना आ जाता है। कहना चाहते हैं; बिना कहे नहीं रहा जाता है। बांटना चाहते हैं; बिना बांटे नहीं रहा जाता है।जैसे सूरज निकलेगा तो रोशनी बिखरेगी। जैसे फूल खिलेंगे तो सुगंध उड़ेगी। वैसे ही, जब प्रेम हृदय में घना होगा तो अभिव्यक्त होना चाहेगा। और अड़चन यह है कि प्रेम के पास अभिव्यक्ति का कोई उपाय नहीं है, कोई माध्यम नहीं। ऐसी दुविधा में उलझ कर, पोर-पोर रुदन उठे, आंखों से आंसू झरें तो आश्चर्य नहीं—विवशता के कारण; उस बेबसी के कारण, कि आज कहने को कुछ है और भाषा नहीं मिलती। कल जब कहने को कुछ भी नहीं था, कितनी भाषा थी। कल जब बांटने को कुछ भी न था, बांटने के सब उपाय उपलब्ध थे। आज बांटने को कुछ है, सब सेतु खो गए, सब उपाय खो गए, कोई विधि नहीं सूझती। क्यों ऐसा हो जाता है? इसलिए हो जाता है कि प्रेम शब्दों से बहुत बड़ा है। शब्द बड़े छोटे हैं। जैसे बूंद में कोई सागर को समाना चाहे, ऐसे शब्दों में प्रेम को भरने की चेष्टा है। प्रेम उतना ही बड़ा है जितना बड़ा परमात्मा है। उसकी कोई सीमा नहीं।मनुष्य के जीवन की गहराइयों में परमात्मा का अनुभव प्रेम की भांति ही होता है। 'परमात्मा' तो उसी अनुभव को नाम दिया है। परमात्मा तो मात्र नाम है, अनुभव तो प्रेम का है। अनिर्वचनीय है अनुभव! सब व्याख्याएं पीछे छूट जाती हैं। शब्द कामचलाऊ हैं—बाजार में, दुकान में, व्यवसाय में, रोजमर्रा की जिंदगी में

उनका उपयोग है। वस्तुओं के संबंध में उनका उपयोग है, अनुभूतियों के संबंध में उनका कोई उपयोग नहीं। शब्द विषयगत हैं, और प्रेम अंतरात्मा की प्रतीति है। प्रेम कोई विषय नहीं है। विषय होता तो कह पाते तुम और कह कर प्रसन्न हो पाते, आह्लादित होते, अपनी पीठ अपने हाथ ठोंक लेते। नहीं कह पाते हो, रोओगे नहीं तो क्या करोगे! लेकिन वे आंसू कुछ कह जाते हैं। जो शब्द नहीं कह पाते, वे आंसू कर जाते हैं। आंसू अपूर्व हैं! आंसू दुख के ही नहीं होते, महासुख के भी होते हैं। प्रेम में बहे आंसू प्रार्थनापूर्ण हैं। उनमें सुगंध प्रार्थना की है। उनमें हजारों आरतियां हैं, अर्चनाएं हैं। और अभिव्यक्ति है, जो जबान नहीं कह पाती, जिसके लिए जबान अचानक बेजुबां हो जाती है। आंखें उसे कहने लगती हैं।आंखें मनुष्य के पास सर्वाधिक संवेदनशील साधन हैं। आंखों से ज्यादा संवेदनशील हमारे पास और कुछ भी नहीं है। इसलिए अंधे पर जितनी दया आती है उतनी दया और किसी पर नहीं आती—लंगड़े पर नहीं आती, लूले पर नहीं आती, बहरे पर नहीं आती। अंधे पर जितनी दया आती है उतनी किसी पर नहीं आती। कारण? सर्वाधिक संवेदनशील जीवन की जो क्षमता थी, उस बेचारे के पास नहीं है। लंगड़े के लिए, लूले के लिए, बहरे के लिए, हमने कोई सुंदर शब्द नहीं बनाए। अंधे को अंधा कहने में हमें अड़चन होती है; उसे हम कहते हैं—सूरदास जी। उसे अंधा कहने में हमें पीड़ा होती है। अंधा कहने में भी लगता है : 'अब और इस मारे को क्या मारना! इस दीन को और क्यों दीन करना! लंगड़े को हम लंगड़ा ही कहते हैं। लूले को लूला ही कहते हैं। बहरे को बहरा ही कहते हैं। सिर्फ अंधे के लिए हमने नाम खोजा है—सूरदास। और भी एक सुंदर नाम खोजा है अंधे के लिए, उसको हम कहते हैं—प्रज्ञाचक्षु। प्रज्ञाचक्षु का अर्थ होता है, जिसके पास चमड़े की आंख तो नहीं, लेकिन चेतना की आंख है। सांत्वना दे रहे हैं कि मत घबड़ा नहीं है तेरे पास चमड़े की आंख, चिंता मत कर—बोध की आंख तो है, चेतना की आंख तो है! ढाढस बंधाते हैं उसे, साहस बंधाते हैं उसे।सबसे पीछे एक कारण है कि आंख मनुष्य के जीवन-अनुभव में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए जिन्होंने परमात्मा को जाना, उनको हमने द्रष्टा कहा, श्रोता नहीं कहा। क्यों द्रष्टा? आंख से क्यों जोड़ा? इस देश में तो हम तत्व शास्त्र को दर्शन कहते हैं। ठीक कहते हैं, वही ठीक शब्द है—देखने की कला। हमने उस परम अनुभूति की जो प्रतीति होती है, उस प्रतीति के लिए जो केंद्र माना, उसको तीसरी आंख कहा, शिव-नेत्र कहा।मनोवैज्ञानिक कहते हैं—शरीर शास्त्री भी उससे राजी हैं—कि मनुष्य को जितनी संवेदनाएं होती हैं उनमें अस्सी प्रतिशत आंख से होती हैं, बीस प्रतिशत ही दूसरी और चार इंद्रियों पर बंटती हैं। मतलब—और इंद्रियों के हाथ में पांच प्रतिशत ही पड़ता है एक-एक इंद्रिय के हाथ में। और आंखों के हाथ में है अस्सी प्रतिशत। अगर तुमसे कोई कहे कि कोई भी एक इंद्रिय बचा लो, तो तुम क्या बचाना चाहोगे? बस आंख बचाना चाहोगे। आंख बची तो अस्सी प्रतिशत बच जाओगे। आंख गयी, तो बाकी चार इंद्रियां भी बच जाएं तो भी बीस प्रतिशत ही बचोगे। और एक ही इंद्रिय बचे तो केवल पांच प्रतिशत ही बचोगे।और आंखों की भाषा है आंसू। तो जब भी कोई अनुभूति बहुत गहन हो जाती है—ऐसी कि शब्दातीत—तब आंसू झर पड़ते हैं। चाहे दुख हो, बहुत गहन, कि तुम कह न सको, कि शब्द ओछे-थोथे मालूम पड़ें, कि शब्दों का उपयोग करना ही अवांछनीय मालूम हो, तो आंखें झर पड़ती हैं। या आनंद हो, प्रेम हो, समाधि लगे, तो भी आंखों से झर-झर आंसू गिर जाते हैं। आंसू तो केवल इस बात की खबर देते हैं कि तुम्हारे भीतर कुछ घट रहा है, जिसे अब तुम समा नहीं सकते हो। बाढ़ आयी है—फिर दुख की हो, सुख की हो, प्रेम की हो, बाढ़ होनी चाहिए, किसी भी भावदशा की बाढ़ हो।चंद्रकांत, इसीलिए गला रुंध जाता होगा, शब्द खो जाते होंगे, रोना आ जाता होगा। और स्वभावतः उन घड़ियों में यदि तुम अनुभव करते हो कि मैं आपके अत्यंत निकट हूं, तो आश्चर्य नहीं। उन घड़ियों में तुम निकट हो ही। उन घड़ियों में तुम्हारा मन मिट गया। और जहां मन मिटा वहीं निकटता है। जब तक मन है तब तक दीवार है। जहां मन नहीं वहां दीवार नहीं। जब नहीं कह पाते हो कुछ तो मन किंकर्त्तव्यविमूढ़ रह जाता है। पहली दफा अपने को नपुंसक पाता है, असमर्थ पाता है, असहाय पाता है। छुप जाना चाहता है। और सब जगह मन की गति है—गणित हो तो मन की गति है, विज्ञान हो तो मन की गति है। सिर्फ कुछ ही अनूठी

अनुभूतियां हैं—प्रेम की, आनंद की, समाधि की—जहां मन की गति नहीं हैं; जहां मन अपने को अचानक पाता है मेरा कोई उपयोग नहीं; जहां मन पहली दफा व्यर्थ दिखाई पड़ता है; जहां मन बीच से हट जाता है। हटना ही पड़ता है उसे। तुम मन के पार उठ जाते हो।और मन के पार हो तो गुरु के निकट हो, प्रकृति के निकट हो, परमात्मा के निकट हो। मन के पार हो तो अस्तित्व के निकट हो।और ऋण की जरा भी चिंता न करो। किसका ऋण? मैंने तुम्हें कुछ दिया नहीं। तुम्हें लगता है कि मैंने तुम्हें कुछ दिया। वह तुम्हारे प्रेम का आभार। लेकिन मैंने तुम्हें कुछ दिया नहीं। तुम्हारे भीतर ही जो पड़ा था, उसकी ही तुम्हें सुधि दिला दी; उसकी ही तुम्हें—जैसा कल कबीर कहते थे, सुरति को चढ़ाओ—तुम्हें उसकी सुरति दिला दी। धन तुम्हारा था, चाबी भी तुम्हारे पास थी, सिर्फ भूल बैठे थे।कभी-कभी ऐसा होता है न, किसी का नाम याद करना चाहते हो और कहते हो जबान पर रखा है और याद नहीं आता। वे क्षण बड़ी विडंबना के होते हैं, बड़ी बेचैनी लगती है। जबान पर रखी है बात और आती नहीं।एक विज्ञान का शिक्षक अपने विद्यार्थियों से पूछ रहा था। उसने एक सूत्र दिया और कहा कि इसका अर्थ बताओ। जिस विद्यार्थी से पूछा, उसने कहा कि अर्थ मेरी जबान पर रखा है, मगर याद नहीं आ रहा। शिक्षक ने कहा थूक बेटा, जल्दी थूक, क्योंकि यह जहर है। यह जो सूत्र है, जहर का सूत्र है। यह जबान पर रखने की चीज नहीं। दो सेकंड रह गए, मारे गए।तुम्हें भी बहुत बार जीवन में अनुभव होता है, कोई चीज जबान पर अटकी रह जाती है।मेरा काम कुल इतना है, तुम्हें याद दिला दूं। तुम्हें झकझोर दूं। तुम थोड़े सो गए हो, तुम्हें पुकार दे दूं। जैसे अलार्म की घड़ी, उसके तुम ऋणी थोड़े ही हो जाते हो, कि उसने सुबह तुम्हें उठा दिया तो तुम उसको जीवन भर अपने सिर पर लेकर ढोते रहोगे।तुम्हारा प्रेम है तो तुम पूछते हो कि ऋण कैसे चुकाऊं, मगर ऋण इत्यादि की कोई बात ही नहीं। न मैंने तुम्हें कुछ दिया, न तुम्हें मुझे कुछ देना है। यह लेने देने का मामला नहीं। मेरे भीतर मेरा गीत जगा, मैं उसे गा रहा हूं। मैं भी मजबूर हूं, उसे बिना गाए रहा नहीं जा सकता। तुमने कृपा की कि सुन लिया। उस गीत ने तुम्हारे भीतर जा कर हलचल कर दी। तुम्हारे भीतर भी कड़ियां जमने लगीं। तुम्हारे भीतर भी धुन बजने लगी।तुमने देखा न, कोई वीणा बजाए, तुम हाथ से थाप देने लगते हो! तबला बजता है, तुम्हारे पैरों में नृत्य जगने लगता है। बस ऐसा ही। सदगुरु के पास इतना ही होता है। उसने तबले पर थाप दे दी, तुम्हारे पैर नाचने लगे। उसने वीणा बजायी, तुम्हारी हृदय-तंत्री भी बज उठी। उसकी बजती वीणा को सुनते-सुनते तुम्हें याद आ गयी अपनी वीणा की। बस याद आते ही क्रांति घटनी शुरू हो जाती।इसलिए चंद्र कांत, कोई ऋण की बात नहीं है। सत्य कोई वस्तु थोड़े ही है, जिसे लिया दिया जा सके। मगर तुम्हारी मनोदशा मैं समझता हूं। लगता है प्रत्येक शिष्य को ऐसा। स्वाभाविक है कि अब कैसे चुकाऊं! इतना विराट अनुभव होने लगे तो स्वभावतः मन कहता है कि उऋण कैसे हो जाएं। मगर कोई उपाय नहीं है। न तो उऋण होने का कोई उपाय है, न कोई जरूरत है। यह तुम्हारा ही दीया है। तुम बाहर देखते थे, मैंने तुम्हें पुकार दी; कहा, जरा भीतर देखो; तुमने सुन ली और भीतर देखा। जैसे राह पर खड़े किसी सिपाही से तुम पूछ लो कि स्टेशन का रास्ता कौन-सा है। फिर ठीक है धन्यवाद दे दिया और स्टेशन की तरफ चले गए। कुछ ऋण इत्यादि की बात नहीं है।

संध्या ने नील गगन में छिड़की है कुंकुम-लाली,
इस उर में, हाय, जगा दी किसकी 'स्मृति' मृदु मतवाली?
किस लाल-लाल मदिरा से भर गया हृदय का प्याला?
जल उठी अचानक जैसे फिर बुझी बुझायी ज्वाला
ब्रह्मांड अखिल करता है नर्तन आंखों में मेरी।
रवि, शशि, तारे देते हैं मेरे प्राणों में फेरी।
क्या घूम रहा आंखों में छाया-सा,
धुंधलेपन-सा,
विस्मय-सा, कुतूहल-सा झिलमिल लघु शारद घन-सा

जिज्ञासा, गूढ़ पहेली, कुछ तत्व-ज्ञान दर्शन-सा,
सुर-धनु, विद्युत, हृत्स्पंदन, पीड़ा-सा, पागलपन-सा कंपन-सा, प्रेम-पुलक-सा, शुचि प्रणय-ग्रंथि-बंधन-सा, व्याकुलता, विरह-व्यथा-सा, मृदु मधुर अधर चुंबन-सा। संध्या ने नील गगन में छिड़की है कुंकुम-लाली,
इस उर में, हाय, जगा दी किसकी 'स्मृति' मृदु मतवाली? बस एक स्मृति जगा रहा हूं। जो तुम्हारा है, वही तुम्हें दे रहा हूं। इस सूत्र को खयाल में रख लो। जो तुम्हारा नहीं है, वह तुमसे मुझे छीनना है; और जो तुम्हारा है वह तुम्हें ही मुझे दे देना है। इसलिए कैसा ऋण?कुछ नासमझ हैं, जो नाराज हो जाएंगे, क्रोधित हो जाएंगे, क्योंकि उन्हें लगेगा कि मैं उनसे कुछ छीन रहा हूं। मैं तुमसे वही छीन रहा हूं जो तुम्हारा नहीं है और न कभी तुम्हारा हो सकता है। सच तो यह है, इतना ही नहीं कि तुम्हारा नहीं है, वरन है ही नहीं। तुम्हारा अहंकार तुमसे छीन रहा हूं, जो कि झूठ है, जो कि असत्य है। तुम्हारी मृत्यु की धारणा तुमसे छीन रहा हूं। जो कि अतथ्य है, न कभी हुई है, न कभी होगी। तुम्हारा भय तुमसे छीन रहा हूं, क्योंकि तुम्हारा भय जब तक है, तुम्हारा भगवान भी भय पर ही आधारित होगा।और तुम्हें दे क्या रहा हूं? भय छिन जाए, तुम्हारे भीतर सोया निर्भय जग जाएगा। देना कुछ भी नहीं है। अहंकार हट जाए, आत्मा फूलों से लद जाएगी। मृत्यु की धारणा गिर जाए, उदघोष होने लगेगा—अमृतस्य पुत्रः! अमृत के पुत्र हो तुम! जो तुम पर कचरा-कूड़ा है, व्यर्थ है, छाया जैसा है, माया है—उसे छीन लेना है; और जो तुम्हारा है, उसके छीनते ही प्रकट हो जाता है।उड़ो, अब तुम्हें पंख मिलने शुरू हुए चंद्रकांत! दूर की यात्रा पर निकलना है। प्रेम जगा है, इसे विराट से विराटतर करते जाना है—इतना जितना कि बड़ा आकाश है, कि चांद-तारे इसमें समा जाएं, कि यही प्रेम एक दिन तुम्हारे लिए परमात्मा का परम अनुभव हो।

पंख जागे—नींद का अविचल
मुलायम थाप से टूटा :
सितारों के करोड़ों बीज
नम आकाश में डूबे,
उगी किरणें—तरुण मन, सिक्त मन, आसक्त आनन,
असित तम मानो किसी अभिशाप से छूटा :
सवेरा खिलखिलाती जिंदगी से भर गया,
हर स्वप्न बीती रात का
हर फूल ने लूटा पंख जागे,
और आगे—थाम अपने कंपनों में
व्योम का निष्कंप
बढ़ते,
भूमि के संक्षेप में रख निज परिधि के मर्म—
जागे पंख अपने अंग से आगे
धरा का मूढ़ आकर्षण तिरस्कृत कर।
अरे ये साहसी डैने

किधर? किस व्योम के संतुलन में घटते चले जाते?
प्रकृति अदृश्य आलिंगन हटाते, जूझते-थकते चले जाते? एझ्ण् कहां अपने स्वयं से दूर मिट्टी के सुनहले पंख जागे भोर ही बढ़ते चले जाते? बराबर और आगे . . . और आगे . . . छिड़े, उद्यमी पंख जागे, दूर नभ के गर्भ में शिशुवत हुए जाते, अजन्मे सूक्ष्म के अति पास; अपनी मृत्यु से आगे।एझ्ण्
पंख जागे— नींद का अविचल मुलायम थाप से टूटा : सितारों के करोड़ों बीज नम आकाश में डूबे, उगी किरणें—तरुण तन, सिक्त मन, आसक्त आनन, असित तम मानो किसी अभिशाप से छूटा : सवेरा खिलखिलाती जिंदगी से भर गया, हर स्वप्न बीती रात का हर फूल ने लूटा पंख जागे, और आगे—
और यात्रा करनी है। पंख फड़फड़ाए हैं तुमने अब। ये आंखें जो प्रेम के आंसुओं से भर गयी हैं, जल्दी ही अनंत के आलोक से भी भर जाएंगी। ये प्रेम के आंसू इन आंखों को निर्मल कर जाएंगे, स्वच्छ कर जाएंगे, इनकी धूल झाड़ जाएंगे।रोओ, जी भरकर रोओ। जब प्रेम के आंसू आएं, स्वागत करो! घबड़ाना स्वाभाविक है। किसी से बात करते होओगे मेरे संबंध में और आवाज रुंध जाती होगी, तो जरूर संकोच लगता होगा, लज्जा लगती होगी। मत लज्जा करना, मत संकोच मन में लाना शुभ लक्षण हैं। शब्द खो जाते होंगे।और चंद्रकांत को मैं जानता हूं, शब्दों के धनी हैं। शब्दों के धनी व्यक्ति को जब शब्द खो जाते हैं तो बड़ी बेचैनी होती है, बड़ा ऊहापोह होता है—क्या करूं, क्या न करूं? कहां मुंह छिपा लूं? यह बोलते-बोलते कंठ का रुक जाना, यह शब्द का खो जाना और फिर आंखों का आंसुओं से भर जाना।नहीं, मत छुपाना उन आंसुओं को। मोतियों से वे ज्यादा मूल्यवान हैं। उन्हें गिर जाने देना और धीरे-धीरे तुम अनुभव करोगे कि जो तुम नहीं कह फाए शब्दों से, वह आंसू कह गए हैं और बहुत कुशलता से कह गए हैं। तुम्हारे शब्द तो शायद कानों तक पहुंचते, तुम्हारे आंसू हृदय तक पहुंच जाएंगे। तुम बोलते तो शायद तर्क ही होकर रह जाता। तुम्हारा कंठ रुंध गया, अवरुद्ध हो गया, तो दूसरा भी पत्थर तो नहीं है, उसके भीतर भी कुछ घटेगा।रही ऋण की बात, सो बिलकुल भूल जाओ। मैंने तुम्हें कुछ दिया नहीं। तुम मुझे धन्यवाद भी दो, इसकी भी जरूरत नहीं है।श्ध्दूसरा प्रश्न : भगवान! वर्षों से एक प्रश्न बार-बार मेरे मन में उठ रहा था। सोचा था, आपसे प्रश्न का समाधान मिल जाएगा। किंतु यहां आकर मेरा प्रश्न तो क्या, मैं ही खो गया हूं। ऐसा क्यों?महादेव प्रसाद!यही है उत्तर, जिसकी तुम्हें सच में तलाश थी। सच्चे प्रश्नों के उत्तर नहीं होते। सच्चे प्रश्नों का गिर जाना ही उत्तर है। झूठे प्रश्नों के उत्तर होते हैं।किसी से पूछो दो और दो कितने
होते हैं, कोई भी उत्तर दे देगा, छोटा-सा बच्चा उत्तर दे देगा कि दो और दो चार होते हैं। क्योंकि गणित मनुष्य की ईजाद है। प्रकृति में कहीं कोई गणित नहीं है। अगर आदमी खो जाए तो वृक्ष रहेंगे, समुद्र रहेंगे, पर्वत रहेंगे, चांद-तारे रहेंगे, गणित नहीं बचेगा। गणित बिलकुल मनुष्य पर निर्भर है। पशु-पक्षियों को गणित से क्या लेना-देना! वृक्ष कोई गिनती करेंगे, बादलों को, चांद तारों को गणित से क्या लेना-देना! गणित मनुष्य की ईजाद है।और तुम देखते हो, दुनिया भर में अलग-अलग देशों में, अलग-अलग जातियों में, अलग-अलग कालों में, लेकिन एक बात समान रही है गणित के बाबत कि सारी दुनिया के गणित-शास्त्रों में, गणित के अंक दस ही होते हैं। तुमने कभी सोचा कि क्यों। इसलिए क्योंकि आदमी की दस अंगुलियां हैं। अब भी तो गांव के लोग अंगुलियों पर ही गिनती करते हैं। दस अंगुलियों की वजह से दस आंकड़े और सारा गणित दस में पूरा है। दस पर बस आ जाता है। फिर दस के बाद तो पुनरुक्ति है—ग्यारह, बारह वह तो पुनरुक्ति है। फिर तुम कितनी ही पुनरुक्ति करते जाओ, मगर मूल गणित दस पर खतम हो जाता है। और क्यों खतम हो जाता है दस पर?

संयोगवशात आदमी की दस अंगुलियां हैं; समझो कि नौ ही अंगुलियां होतीं तो नौ ही आंकड़े होते।इस आधार को मानकर दुनिया के कुछ गणितज्ञों ने कम आंकड़ों से भी काम चलाया है। पश्चिम के बहुत बड़े गणितज्ञ लीबनित्ज ने तीन ही आंकड़े माने; उसने कहा कि दस की क्या जरूरत, तीन से काम चल जाता है। एक, दो, तीन। और तीन के बाद फिर चार नहीं आता, फिर दस; ग्यारह, बारह, तेरह और फिर तेरह के बाद चौदह नहीं आता, बीस। मगर काम हो जाता है। लीबनित्ज के गणित में दो और दो चार नहीं होते, दो और दो दस होते हैं। मगर काम उससे भी चल जाता है। उसने बड़े-बड़े सवाल गणित के इसी से हल कर दिए हैं।अल्बर्ट आइंस्टीन ने तो एक कदम और आगे लिया; उसने कहा कि तीन की भी क्या जरूरत है, दो से काम चल सकता है; दो से काम नहीं चल सकता। इसलिए न्यूनतम मानना चाहिए। उसने दो ही आंकड़े माने—एक और दो। तो दो और दो उसके हिसाब से चार नहीं हो सकते, चार का तो उपाय ही नहीं है।गणित बिलकुल काल्पनिक शास्त्र है, इसलिए उत्तर हो सकते हैं। आदमी के

ही प्रश्न हैं, आदमी ही उनके उत्तर बना लेता है। लेकिन तुम पूछो प्रेम क्या है—और बस मुश्किल खड़ी हुई। तुम पूछो सत्य क्या है—और मुश्किल खड़ी हुई। तुम पूछो परमात्मा क्या है—और मुश्किल खड़ी हुई।जीवन के जो वास्तविक प्रश्न हैं, उनके कोई उत्तर होते हैं? और जो उत्तर देते हैं वे मूढ़ हैं। पूछने वाला नासमझ है, इसलिए पूछ रहा है और उत्तर देने वाला भी नासमझ होना चाहिए, इसलिए उत्तर दे रहा है। वस्तुतः ज्ञानी जो हैं वे तुम्हारे मूढ़ प्रश्नों के उत्तर नहीं देते। समाधान देते हैं, उत्तर नहीं। भेद समझ लेना। उत्तर और समाधान में बड़ा भेद है, जमीन-आसमान का भेद है। समाधान का अर्थ है : प्रश्न का गिर जाना, प्रश्न का मिट जाना। और उत्तर का अर्थ है : प्रश्न की जगह एक धारणा तुम्हारे भीतर रख दी जाती है। मगर उस धारणा से दस नए प्रश्न खड़े होंगे, महादेव प्रसाद खयाल रखना। धारणा से एक उत्तर मिला, ऐसा मत सोच लेना कि एक प्रश्न हल हो गया; सिर्फ दस प्रश्नों के लिए और सुविधा हो गयी।तुमने पूछा, जगत को किसने बनाया? और जिनको तुम पंडित कहते हो और जिनको मैं मूढ़ कहता हूं—कोई महामूढ़ कहेगा, 'ईश्वर ने'। इससे क्या समझते हो कोई हल हुआ? अब सवाल यह उठता है कि ईश्वर ने क्यों बनाया? तो महामूढ़ों ने उनके भी उत्तर खोज रखे हैं; खोज रखे हैं क्या ईजाद कर लिए हैं—कि इसलिए बनाया है, क्योंकि वह अकेला था और अकेले में उसे बड़ा कष्ट होने लगा। चलो मान लें, तो नए प्रश्न उठेंगे—'क्योंकि पहले क्यों नहीं बनाया; जब बनाया तभी क्यों बनाया? अकेला तो बहुत पहले से था। अकेला तो सदा से ही था। जब बनाया तभी क्यों बनाया? पहले अक्ल नहीं आयी? पहले कुछ बुद्धि की कमी थी?'और भी प्रश्न उठेंगे, कि अगर परमात्मा को भी अकेलापन खलता है तो फिर गरीब आदमी की क्या बिसात? तो फिर गरीब आदमी से क्यों कहा जाता है कि अपने भीतर के एकांत में डूबो? ध्यान, समाधि, ये सब हैं क्या? अपने एकांत में उतरना है। जब परमात्मा भी अकेला न रह सका तो बेचारे आदमी को क्यों सताते हो? तो इसको भी बसाने दो घर-गृहस्थी, संसार। इसको भी भटकने दो भीड़ में। जब परमात्मा भी भीड़ के बिना न रहा सका और आदमी इतनी बड़ी भीड़ मांगता भी नहीं—पत्नी हो, दो-चार बच्चे हों, घर द्वार हो, थोड़े मित्र हों, बस पर्याप्त है। परमात्मा को तो भारी भीड़ की जरूरत पड़ी है। यह पृथ्वी कोई अकेली नहीं, जिस पर जीवन है। वैज्ञानिक कहते हैं : कम से कम

पचास हजार पृथ्वियां और हैं जिन पर ऐसा जीवन है। कम-से-कम; ज्यादा हो सकती हैं। इतना भीड़-भड़क्का, इतना शोरगुल, इतना उपद्रव! परमात्मा को इतने बड़े संसार की जरूरत पड़ी? इतने बड़े संसार की तो संसारियों को भी जरूरत नहीं है। छोटी-मोटी दुकान हुई, चला; थोड़ा पैसा हुआ। और इसी परमात्मा को पाने के लिए संसार छोड़ना पड़ता है! तो प्रश्न ही प्रश्न उठेंगे कि मामला क्या है। जब परमात्मा ही संसार के बिना नहीं रह सका तो हम गरीबों को क्यों सताते हो, हमें क्यों भेजते हो कि गुफाओं में बैठो? अरे तो परमात्मा ही बैठ जाता किसी गुफा में! न होता बांस न बजती बांसुरी! झंझट ही नहीं होती। परमात्मा को संन्यास नहीं सूझा, यह महात्माओं को सूझा! परमात्मा से भी पहुंच इनकी बड़ी गहरी मालूम पड़ती है!और फिर सवाल उठता है कि

आदमी को ही बनाना था तो थोड़ा ढंग का बनाता। यह बेढंगा आदमी, न मालूम कितने क्रोध, ईर्ष्या, वैमनस्य, घृणा, ये सब इसमें रख देने की क्या जरूरत थी? अरे तुमको अकेले से तकलीफ थी, तो भले आदमी बनाते। यह दुष्ट संग! कम से कम सत्संग तो करते! महात्मा ही महात्मा बना लेते। . . . ये बैठे महात्मा गांधी, ये बैठे विनोबा भावे! सत्संग चल रहा है! ये तरह-तरह के आदमी, एक से एक उपद्रवी, इन सबको क्या बनाने की जरूरत थी? चंगेजखान और तैमूरलंग और नादिरशाह और अडोल्फ हिटलर और जोसेफ स्टेलिन . . . और प्रत्येक आदमी के भीतर इतनी गर्हित वासना क्यों रख दी? पाप का ऐसा आकर्षण क्यों रख दिया? बुराई में इतना बल क्यों भर दिया कि लाख चिल्लाते रहें महात्मागण, कोई सुनता नहीं। सच तो यह है कि दूसरों की तो फिकर ही छोड़ दो, महात्मागण भी जो कहते हैं, वे खुद भी कहां सुनते हैं!कल ही मैं एक कहानी पढ़ रहा था। एक अमरीकी महिला परमात्मा की खोज में भारत आयी, गयी हिमालय। न मालूम कैसे यह भ्रांति फैल गयी है कि हिमालय में परमात्मा कुछ ज्यादा उपलब्ध है, कुछ ज्यादा मात्रा में वहां है। जैसे वह भी कहीं-कहीं सघन और कहीं-कहीं विरल है। और जैसा कि होना था, मिल गए एक महात्मा। और हिमालय में महात्मा नहीं मिलेंगे तो और क्या मिलेगा! उनकी जटा-जूट, शरीर पर लगायी गयी भस्म, धूनी रमाए बैठे थे। बड़े मस्त दिखाई पड़ रहे थे, असलियत थी कि गांजा पी गए थे। महात्मा और गांजा न पिएं, यह हो ही नहीं सकता। क्योंकि महात्मा कहते हैं कि जब परमात्मा ने बनाया गांजा तो पीने के लिए ही बनाया। दम मारो दम . . .!

महिला एकदम प्रभावित हो गयी। महात्मा की आंखें बिलकुल ऊपर चढ़ी थीं, जैसे तीसरे नेत्र को देख रहे हों! चरणों पर गिर पड़ी। कहा : 'मन की शांति के लिए आयी हूं। मेरी आत्मा को शांति दो।' महात्मा ने कहा कि बेटी, सब हो जाएगा, समय पर सब हो जाएगा। धीरज रख। महिला रुक गयी। और तो कोई था नहीं वहां गुफा में—महात्मा और महिला। रात तक गांजे का नशा उतर गया। महात्मा ने गौर से . . . उनकी आंखें जरा तृतीय नेत्र से नीचे उतरीं . . . महिला को देखा। सुंदर महिला! एकदम उस पर हमला कर दिया। महिला को तो समझ में ही नहीं आया। उसने कहा : 'अरे महात्मा जी, यह क्या करते हैं!'महात्मा जी ने कहा : 'क्या करता हूं! अरे जो करना चाहिए वही करता हूं।'महिला ने कहा : 'मैं आत्मा की शांति कि मन की शांति के लिए आयी हूं, आप यह क्या करते हैं?महात्मा ने कहा : 'जब तक शरीर की शांति नहीं होगी, न मन की हो सकती है, न आत्मा की हो सकती है। हर चीज क ख ग से शुरू करनी पड़ती है।कौन सुने तुम्हारे महात्माओं की! महात्मा खुद ही कहां मानते हैं! मान भी नहीं सकते। उनका भी कोई कसूर नहीं। कसूर होगा तो परमात्मा का है। क्यों रखा आदमी में वासना का इतना बल? क्यों इतनी कशिश? प्रश्न पर प्रश्न उठते चले जाएंगे। हल करना मुश्किल हो जाएगा। और तुम पूछे थे एक ही प्रश्न कि संसार कैसे हुआ। और तुम्हारे पंडित ने कहा था : परमात्मा ने बनाया। उसने सोचा था मामला निपटा दिया। मामला कुछ निपटा नहीं, मामला और उलझ गया।उत्तर में उत्तर कहां है? उत्तर में और हजार प्रश्न दबे हैं। और उठते ही जाएंगे। इसलिए बुद्ध जैसे ज्ञानी ने उत्तर ही नहीं दिया : जब भी किसी ने पूछा संसार को किसने बनाया, बुद्ध ने कहा : 'किसी ने नहीं, संसार सदा से है।' झंझट मिटी, नहीं तो वह एक प्रश्न का उत्तर दो कि फिर प्रश्नों का एक सिलसिला खड़ा हो जाता है, एक कतार लग जाती है, जिसका कोई अंत नहीं आता।फिर सवाल उठता है कि परमात्मा भले आदमियों को तो कष्ट दे रहा है, बुरे आदमियों को मजा लूटने का अवसर दे रहा है, यह क्या हो रहा है? और अगर इस जगत में यह हो रहा है तो दूसरे जगत का भी क्या भरोसा! जो लुच्चे-लफंगे यहां बाजी मार ले जाते हैं

वे वहां भी बाजी मार ले जाएंगे। ज्यादा संभावना इसी की है, क्योंकि उनका अभ्यास बाजी मार लेने का। तुम यहां भी हारे, वहां भी हारोगे। जिंदगी भर हारने का अभ्यास ही किया। यहां भी लुटे, वहां भी लुटोगे। और जो जेब काटने में कुशल हो गया हैक्र।मैंने सुना है एक आदमी मरा। जैसे ही पहुंचा स्वर्ग के दरवाजे पर, द्वारपाल ने दरवाजा खोला और पूछा : 'आप कौन हैं?' उसने कहा : 'चंदूलाल लोहेवाला।''भई इस तरह के आदमी के स्वर्ग में आने की, हमें कोई खबर नहीं है।'लेकिन चंदूलाल लोहेवाला भी लोहेवाला था। उसने कहा : 'हम इधर से

हटने वाले भी नहीं हैं। यह मेरी आदत ही नहीं है। अरे जिस द्वार पर टिक गया वहीं अड़ा ही रहा हूं।''काम क्या करते हो?' पूछा द्वारपाल ने। उसने कहा कि लोहे का धंधा है। यह धंधा ही ऐसा है। पुराना लोहा खरीदता हूं, घिस-घिसा कर नया करके बेचता हूं। जाऊंगा नहीं।द्वारफाल ने कहा : 'मैं जाकर परमात्मा से पता लगाता हूं।' पता लगा कर जब तक द्वारपाल आया, न तो चंदूलाल लोहेवाले वहां थे और न दरवाजा वहां था। लोहे का दरवाजा पुराना, उनने देखा कि मारो हाथ!जो यहां हाथ मार रहे हैं, वे वहां भी छोड़ेंगे नहीं। तुम्हारे जीवन भर की आदतें ही तो तुम्हें निर्मित करती हैं। तो सवाल उठता है कि यहां देखते हो तुम बेईमानों को जीतते, सत्ता में बैठते। धन, पद, प्रतिष्ठा, सब उनकी। ईमानदारों की पूछताछ कौन करता है! उनको रोटी-रोजी मिल जाए, यही बहुत है, वह भी कहां पूरी मिलती है! लंगोटी ही बच जाए, यही बहुत; इस दुनिया में वह भी कहां बचती है!मुल्ला नसरुद्दीन अपने बुढ़ापे में, गांव का काजी हो गया था। पहला ही मुकदमा उसकी अदालत में आया। एक आदमी एकदम रोता-चिल्लाता, छाती पीटता कि लुट गया, इसी गांव के बाहर लुटा हूं, इसी गांव के किसी आदमी ने लूटा है।मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि पहले चुप हो। ठीक-ठीक बात कर। सब लुट गया! लेकिन यह अंडरवियर! तू चिल्लाए चला जा रहा है—सब लुट गया, सब लुट गया!

उस आदमी ने कहा : 'यह बात तो ठीक है। और सब लुट गया, सिर्फ अंडरवियर छोड़ गए वे लोग।'तो मुल्ला ने कहा : 'वे किसी और गांव के रहे होंगे। इस गांव की आदत ही नहीं है यह; यहां तो जो काम किया जाता है, पूरा किया जाता है। मैं तेरा मुकदमा लेने में असमर्थ हूं। इस गांव में अधूरा काम करने की आदत ही नहीं।'यहां लंगोटी भी नहीं बचती। लंगोटी भी बच गयी तो समझो बहुत है। तो सवाल उठेगा कि यह परमात्मा है भी या नहीं?फ्रेड्रिक नीत्से ने कहा है : अगर संसार को गौर से देखो तो सिद्ध होता है कि परमात्मा नहीं है, क्योंकि इतनी बेईमानी, इतनी जालसाजी, इतनी चार सौ बीसी, और फिर भी तुम कहे चले जाते हो—परमात्मा है! शैतान जीतता दिखाई पड़ता है, परमात्मा हारता दिखाई पड़ता है। बुराई जीतती दिखायी पड़ती है, भलाई हारती दिखाई पड़ती है। सिर्फ शास्त्रों में लिखा है : सत्यमेव जयते! लेकिन कहीं सत्य को जीतते देखते हो? असत्यमेव जयते! असत्य जीतता दिखाई पड़ता है। जितने कुशल तुम झूठ बोलने में हो, उतनी ही सफलता की संभावना है।यहां क्या, वहां भी यही मैंने हालत सुनी है, उस लोक में भी। स्वर्ग और नरक के बीच में जो दीवाल है, जराजीर्ण हो गयी, अति प्राचीन है, कई जगह से गिर गयी। एक दिन दोनों तरफ से—उस तरफ शैतान, इस तरफ परमात्मा—टहलते हुए दीवाल के पास आ गए। परमात्मा ने शैतान से कहा कि भई देखो दीवाल गिर गयी है और यह गिरी है तुम्हारे तरफ के उपद्रव के कारण। हजार दफे कहा है कि तुम अपने आदमियों को सम्हालो। दीवाल पर चढ़-चढ़ जाते हैं। कोई हमारी तरफ के आदमी दीवाल पर नहीं चढ़ते! महात्मा लोग हैं वे अपने झाड़ों के नीचे बैठे रहते हैं, कौन दीवाल पर चढ़े! और तुम्हारे आदमी दीवाल की इटें खींच कर एक-दूसरे के ऊपर फेंकते हैं। तो यह दीवाल तुम्हारी वजह से ही खराब हुई, इसको सुधारो।शैतान ने कहा : सुधरवानी हो तो खुद सुधरवा लो, हमको नहीं पड़ी कुछ। तुमको हो डर दीवाल के टूटने से हमें क्या डर! अरे दीवाल टूट जाए टूट जाए; हमारे लोगों को और थोड़ा फुटबाल खेलने, हाकी खेलने, वालीबाल खेलने के लिए स्थान मिल जाएगा।

परमात्मा को क्रोध आ गया। परमात्मा ने कहा कि देखो मैं मामला अदालत में ले जाऊंगा।शैतान ने कहा : 'ले जाओ जहां ले जाना है, वकील कहां पाओगे? सब वकील तो मेरी तरफ हैं।'प्रश्न पर प्रश्न उठेंगे। समाधान और बात है। और समाधान का एक ही उपाय है—प्रश्न का उत्तर नहीं, प्रश्न का गिर जाना। प्रश्न का ऐसा व्यर्थ हो जाना, जैसे सूखा पत्ता वृक्ष से गिर जाए।और यही हुआ महादेव प्रसाद, शुभ हुआ। तुम कहते हो : वर्षों से एक प्रश्न बार-बार मेरे मन में उठ रहा था। सोचा था आपसे प्रश्न का समाधान मिल जाएगा। सोचा ही नहीं था, समाधान मिल गया! लेकिन तुम समाधान को उत्तर का पर्यायवाची समझते हो, यही तुम्हारी भूल है। उत्तर समाधान नहीं है और समाधान कोई उत्तर नहीं होता। अभी तुम्हें समझना पड़ेगा यह भेद। प्रश्न तो तुमने पूछा

नहीं, उत्तर मैंने दिया नहीं; लेकिन समाधान हो गया है। प्रश्न है कहां?तुम स्वयं कहते हो : 'किंतु यहां आ कर मेरा प्रश्न तो क्या, मैं ही खो गया हूं, ऐसा क्यों?' प्रश्न खो जाए, यही समाधान है। और अगर प्रश्नकर्ता भी खो जाए, तो समाधि बहुत दूर नहीं। समाधि और समाधान एक ही शब्द से निकले हैं। समाधान शुरुआत है समाधि की; बीज है समाधि का। अभी एक प्रश्न खोया; कोई और प्रश्न पड़े होंगे दबे, वे उभरेंगे, वे भी खो जाएं। अगर सारे प्रश्न खो जाएं तो मन खो जाएगा, क्योंकि मन जीता है प्रश्नों के सहारे। मन है ही तभी तक जब तक प्रश्न हैं। जब कोई भी प्रश्न नहीं बचता तो मन मर जाता है। और जहां मन नहीं है वहां समाधि। जहां अमनी दशा है—कबीर के शब्दों में अमनी दशा—बस वहीं समाधान है, वहीं समाधि है। और जहां समाधि है वहां सत्य है, वहां परमात्मा है। और वहां जो है वह अनुभव है।तुम प्रश्न पूछो, मैं उत्तर दे दूं। तुमने कुछ शब्द कहे, मैंने कुछ शब्द कहे। शायद तुम्हें मेरे शब्द जम जाएं, जंच जाएं या न जंचें। न जंचें तो तुमने कहा, कि मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं मिला; जंच गए तो तुमने कहा, कि मेरे प्रश्न का उत्तर मिल गया। लेकिन ये सब बातें मानसिक हैं। फिर तुम मेरे शब्दों पर विचार करोगे, उसमें से कुछ न कुछ प्रश्न निकल आएंगे, क्योंकि तुम्हारी चित्त दशा तो वही की वही है। जिससे पहला प्रश्न पैदा हुआ था, चित्त तो वहीं का

वहीं है, वह नया प्रश्न पूछ लेगा।तुम छोटे बच्चों को साथ लेकर कभी सुबह घूमने निकले हो? बस चित्त की दशा वैसी ही है। वे पूछे ही चले जाते हैं। 'कुत्ते की पूछ सीधी क्यों नहीं?' अब उनको उत्तर दो! किसी तरह सिर पचा कर तुम उनको समझा-बुझा कर आगे बढ़े, वे पूछने लगे कि वृक्ष के पत्ते हरे क्यों हैं? तुम यह मत सोचना कि तुम इसका उत्तर दे दोगे तो हल हो जाएगा, कि क्लोरोफिल के कारण। असल में तुम्हारा उत्तर सुन कौन रहा है! तुम जब उत्तर दे रहे हो तब बच्चा नया प्रश्न तैयार कर रहा है। तुम्हारा उत्तर खतम नहीं हुआ कि उसने नया प्रश्न पूछा। तुम उत्तर न भी दो तो भी वह नया प्रश्न पूछेगा, तुम उत्तर दो तो भी नया प्रश्न पूछेगा। उसकी जिज्ञासा छलांगें भर रही है, कुलांचें भर रही है।मन हमेशा बचकाना है। वह पूछता ही चला जाता है। कुछ भी पूछता चला जाता है!अब एक मित्र ने पूछा है कि मैं यहां आया तो मैंने सपना देखा कि एक भैंस ने मेरे पिता जी को मार डाला! . . . अब इसका उत्तर चाहिए! अब कहां की भैंस . . . और भैंसों का क्या भरोसा! तुम बच कर आ गए, यही बहुत। और पिता जी को तो जाना ही था, जाते ही कभी न कभी। अब भैंस ले गयी या क्या . . . होगी यमदूत की भैंस। पहले से ही शास्त्रों में लिखा हुआ है कि यमदूत भैंस पर बैठ कर आते हैं। . . . वह भी सपने में।मगर नहीं, लोग हैं। अगर तुम किसी मनोवैज्ञानिक से पूछो तो वह कुछ न कुछ उत्तर निकाल लेगा। मनोवैज्ञानिक का सारा धंधा यही है कि तुम्हारे सपनों की व्याख्या करे। मगर एक ही मनोवैज्ञानिक के पास जाना; अगर तुम चार-छः के पास गए तो बड़े संदेह पैदा हो जाएंगे, क्योंकि चार-छः व्याख्याएं होंगी। अगर 179ायड को मानने वाला मनोवैज्ञानिक है तो वह एक व्याख्या करेगा; जुंग को मानने वाला दूसरी; एडलर को मानने वाला तीसरी और फिर असागोली को मानने वाला चौथी। और न मालूम कितने मनोवैज्ञानिक स्कूल हैं दुनिया में इस समय! वे सब अलग-अलग व्याख्या करेंगे और ऐसी-ऐसी व्याख्याएं करेंगे कि तुम भी दंग रह जाओगे कि हद हो गयी; भैंस में भी ऐसे राज छिपे थे! हम तो सोचते थे कि भैंस यानी भैंस! छोटे बच्चे पूछते हैं, अक्ल बड़ी कि भैंस? छोटे बच्चों को तो लगता है भैंस ही बड़ी है। और अगर मनोवैज्ञानिक की व्याख्याएं देखी, तो तुम्हें भी लगेगा कि भैंस

ही बड़ी है। और एक ही उन्होंने प्रश्न नहीं पूछा है, और भी कई तरह के सपने उनको आए—कि उनकी पत्नी किसी और पुरुष के साथ सो रही है, इसका क्या अर्थ?भैया, अपनी पत्नी से पूछो! . . . वह भी सपने में भी न सोने दोगे!... और सपना भी तुम्हारा, पत्नी का नहीं! पत्नी भी अपने सपने में किसी के साथ सो रही हो तो चलो थोड़ा-बहुत कसूर कर रही है, तुम्हारे सपने में सो रही है। अपने से ही पूछो कि मामला क्या है!उनका प्रश्न पढ़ कर मुझे याद आया, इजिप्त का एक सम्राट हुआ। उसने डुंडी पिटवा दी थी पूरे देश में कि मेरे सपने में कोई कभी न आए, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि मेरी नींद कोई खराब करे। अब यह बड़ी मुसीबत की बात हो गयी,

लोग बड़े डरे। वह आदमी बड़ा झंझटी था। अब कोई उसके सपने में न आए, इसमें किसी का क्या वश! और कई आदमी फंस गए इसकी झंझट में। कभी वजीर उसके सपने में आ गया, उसने कोड़े लगवा दिए, कि तू आया तो आया क्यों? सपना उसका, मगर वजीर बेचारा करे तो क्या करे? छोटे-मोटे आदमियों को तो उसने फांसी पर चढ़वा दिया कि दुष्टो, न दिन में सोने देते न रात में! तुम्हें हक क्या है किसी के सपने में प्रवेश करने का?अब उनकी पत्नी किसी के साथ सो रही है! सोने भी दो, तुम्हें कुछ और धंधा नहीं है? होशियार आदमी ऐसी बातें नहीं करते।मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन घर आया। उसके छोटे लड़के ने कहा, कि पिताजी, पिताजी! अलमारी में भूत खड़ा है! ऐसे तो नसरुद्दीन ने भी देख लिया था। किसी का छाता बाहर रखा है। जूते बाहर रखे हैं। कोई आदमी भीतर है। खिड़की से झांक कर भी देख लिया था पत्नी किसी के साथ बिस्तर पर सो रही है। मगर थोड़ी खटर-पटर की, खांसा-खखारा। होशियार आदमी होशियारी से चलते हैं। अरे अब इसमें झंझट लेनी! मगर उस बेटे ने जब कह ही दिया तो जाना पड़ा। जा कर दरवाजा खोला, तो देख कर हैरान हुआ, उसका ही परिचित मित्र—वही चंदूलाल लोहेवाला! मुल्ला ने कहा : चंदूलाल, हद हो गयी! अरे किसी के बच्चों को डराने के लिए भरी दुपहरी में काम-धाम छोड़कर अलमारी में खड़े हो! शर्म नहीं आती? निकलो बाहर!'

जब बाहर ले गया, तब बाहर जा कर कहा कि भई एक बात पूछनी है चंदूलाल। खैर मुझे तो सोना पड़ता है पत्नी के साथ, क्योंकि मेरी पत्नी है, अब क्या करना; तू क्यों सो रहा था रे मूरख? तुझे क्या हो गया? तेरी बुद्धि मारी गयी? ठीक है, अब हमारा तो विवाह हुआ सो हमें तो जो मुसीबत झेलनी है सो झेलेंगे, अपना-अपना भाग्य! मगर तुझे क्या हुआ, यह देख कर मैं चकित हूं!लेकिन तुम्हारे सपने में पत्नी किसी के साथ सो रही थी! इन प्रश्नों के उत्तर चाहते हो, इन प्रश्नों के उत्तर मिलने से क्या होगा? कौन-सी आध्यात्मिक क्रांति होगी? जरूर तुम्हारे मन में शक होगा। सीधी-सी तो बातें हैं, पत्नी पर शक होगा तुम्हारे मन में कहीं न कहीं। किस पति को नहीं है! किस पत्नी को अपने पति पर शक नहीं है! पति-पत्नी का नाता ही शक का नाता है। शक न हो, यह करीब-करीब असंभव। पत्नी आते से ही पहले जांच-परख करती है नीचे से ऊपर तक, कोट इत्यादि देखती है कि कोई बड़ा बाल वगैरह तो नहीं है? खीसे वगैरह में देखती है कि कोई चिट्ठीपत्री तो नहीं है? फोन आता है तो एकदम झट से उठा लेती है कि मामला क्या है?मुल्ला नसरुद्दीन एक रात कह रहा होगा—कमला, कमला! पत्नियां रात में भी सोती नहीं, उसने उसी वक्त उठाया, कहा : 'किस कमला की याद कर रहे हो, कौन कमला?' मगर पति नींद में भी होशियार रहते हैं। कहा : 'अरे यह कुछ नहीं, यह रेसकोर्स की एक घोड़ी का नाम है।' मगर ऐसे तुम किसी पत्नी को इतनी आसानी से हल नहीं कर सकते। ठीक,—पत्नी ने कहा—ठीक है, देखेंगे। दूसरे दिन सुबह-सुबह ही फोन आया। मुल्ला उठे, इसके पहले पत्नी उठ गयी।मुल्ला ने पूछा कि किसका फोन है? कहा : 'कोई किसी का नहीं—वही रेसकोर्स की घोड़ी ने फोन किया! कहा है कि शाम प्लाजा टाकीज में मिल जाना।'संदेह होगा तुम्हारे मन में, सो पत्नी दूसरे के साथ सोयी दिखाई पड़ रही है।मौत का भय होगा। शायद पिताजी बूढ़े होने लगे होंगे, उनकी मौत की छाया तुम पर पड़ने लगी होगी, डर लगने लगा होगा। सुनी हुई बचपन की कहानियां कि यमदूत भैंस पर सवार हो कर आते हैं, तो भैंस दिखाई पड़ गयी होगी। वह तो भला हो यमदूत का कि वे नहीं दिखाई पड़े, नहीं तो उसका

भी उत्तर मुझे देना पड़ता।व्यर्थ की बातों के न तो उत्तर चाहो, न व्यर्थ की बातों के प्रश्न उठाओ। निन्यान्बे प्रतिशत प्रश्न तो तुम्हारे व्यर्थ हैं, वे तो काट ही दो। सार्थक प्रश्न तो बहुत थोड़े-से हैं। और जो सार्थक प्रश्न ही बच रहें, तो यहां मेरे पास बैठो; जो मैं कह रहा हूं उसे सुनो; जो मैं हूं उसे अनुभव करो; जो यहां घटित हो रहा है, उसे पीओ—प्रश्न मिट जाएंगे। असली प्रश्न बचा लो, पहला काम; नकली छांट दो, कूड़ा-कर्कट छांट दो। जिनका उत्तर भी मिल जाएगा तो कोई लाभ नहीं होने वाला, वह प्रश्न काट दो। बचकानी जिज्ञासाएं यहां मत लाओ। बचा लो उतने ही जितने सार्थक हैं। और तब सार्थक का गिर जाना बड़ा आसान है। और जब सार्थक कोई प्रश्न गिर जाता है तो समाधान उपलब्ध होता है। जिस दिन तुम्हारे सब सार्थक प्रश्न विदा हो जाएंगे, चित्त

प्रश्न-शून्य हो जाएगा, उसी दिन समाधि फलित हो जाएगी। और समाधि में ही सत्य का अनुभव है। समाधि दर्पण है, जिसमें सारा अस्तित्व झलक आता है।अच्छा हुआ महादेव प्रसाद, तुम्हारा प्रश्न गिर गया। और उससे भी अच्छा यह हो रहा है कि प्रश्न ही नहीं खो गया, तुम कहते हो मैं भी खो गया हूं! शुभ घड़ी है। बचाना मत अपने को, जरा भी मत बचाना। डूब ही जाओ, मिट ही जाओ! क्योंकि जो मिट जाता है वही परमात्मा को पाने का अधिकारी है। जो शून्य हो जाता है, वह पूर्ण के अवतरण के लिए अवसर देता है। इधर मैं मिटा उधर परमात्मा का अवतरण हुआ। तुम गए कि परमात्मा आया। जब तक तुम हो तब तक परमात्मा नहीं हो सकता।कबीर ने कहा है : प्रेमगली अति सांकरी, ता में दो न समाए।

तीसरा प्रश्न : भगवान! क्या तृष्णा-रहित जीवन ही भगवत्ता है? साथ ही आपसे जो सुख मिला है, उसके लिए धन्यवाद देता हूं।किरण सत्यार्थी!तृष्णा-रहित जीवन ही भगवत्ता है। भगवान कहीं भी नहीं हैं—व्यक्ति की तरह। भगवान को व्यक्ति की तरह देख कर ही हमारी भ्रांतियों का जाल फैल गया। मंदिर उठे, मस्जिद बने। गिरजे उठे, गुरुद्वारे बने। परमात्मा को व्यक्ति मान कर ही पूजा, अर्चना के जाल फैले। यज्ञ-हवन, पंडित-पुरोहित,
मौलवी, पादरी . . .एक जाल खड़ा हो गया, एक अनंत जाल खड़ा हो गया! बजाय इसके कि धर्म मनुष्य की मुक्ति बनता; धर्म मनुष्य के लिए बेड़ियां और जंजीरें बन गया; धर्म मनुष्य के लिए कारागृह बन गया। और इस सबके पीछे जो बुनियादी भ्रांति हो गयी, वह यहां से हुई कि भगवान को हमने व्यक्ति मान लिया। भगवान व्यक्ति नहीं है।भगवान नहीं है—भगवत्ता है! भगवत्ता गुण है; व्यक्ति नहीं। इसलिए पूजा का सवाल नहीं है; अनुभव का सवाल है। इसलिए प्रार्थना काम नहीं आएगी; ध्यान काम आएगा। प्रार्थना तो परमात्मा व्यक्ति हो तो कुछ अर्थ रखती है। लेकिन परमात्मा अगर व्यक्ति नहीं है; अस्तित्व पर फैले हुए जीवन का नाम है; अस्तित्व के सौंदर्य का नाम है; अस्तित्व की गरिमा और गौरव का नाम है; अस्तित्व का ही नाम परमात्मा है—अगर ऐसा है तो फिर प्रार्थना काम नहीं आएगी; फिर प्रार्थना व्यर्थ हो गयी, फिर ध्यान काम आएगा।यही भेद है वास्तविक धर्म में और थोथे धर्म में। थोथा धर्म हाथ जोड़कर परमात्मा की प्रतिमा बनाता है। खुद की ही बनायी हुई प्रतिमाएं हैं और उनकी ही पूजा करता है। जरा खेल तो देखो, बूढ़ों के खेल, बच्चों से गए-बीते! अपने ही हाथ से बना लिए गणेश जी और होने लगी पूजा, सज गया थाल, दीये जल गए, फूल की मालाएं चढ़ गयीं, भजन होने लगे। तुम कभी सोचते भी नहीं कि अपने ही हाथ से बनाकर रख ली है यह प्रतिमा। अपने ही खिलौनों की पूजा कर रहे हो! अपने ही द्वारा बनाए गए खिलौनों के सामने घुटने टेक कर खड़े हो!परमात्मा को तुम कैसे बना सकते हो? अगर बनाया भी हो किसी ने किसी को, तो परमात्मा ने तुम्हें बनाया होगा, तुम परमात्मा को नहीं बना सकते हो। फिर, परमात्मा को अगर व्यक्ति की तरह देखो, तो सवाल उठता है : कितने उसके हाथ, कितने उसके चेहरे, कितनी ऊंचाई, क्या रंग, क्या रूप? फिर सब उपद्रव खड़े हुए। फिर कवि की कल्पनाओं को विस्तार मिला। फिर कोई कहता है उसके हजार हाथ, क्योंकि दो हाथ से इतनी बड़ी पृथ्वी को, इतने बड़े विस्तार को, इतने चांद-तारों को कैसे सम्हालेगा? क्या तुम सोचते हो, हजार हाथों से सम्हल जाएंगे? हजार हाथ भी छोटे पड़ जाएंगे। फिर उसके तीन चेहरे बनाने पड़े। क्योंकि अगर एक ही चेहरा हो तो एक ही तरफ देख सके, तो सर्वज्ञाता न रह जाए। तीनों आयाम में देख सके। तो तीन चेहरे बनाए। किसी
ने चार चेहरे बनाए, ताकि चारों दिशाओं में देख सके। किसी ने चार हाथ बनाए, ताकि चारों दिशाओं को सम्हाल सके। मगर ये सब मनुष्य की ही कल्पनाएं हैं; तुम्हारे ही विश्वास और फिर उनको रूप देने की चेष्टाएं। सब बचकानी हैं।भगवान कोई व्यक्ति नहीं है। भगवत्ता! जितनी भी धर्म के जगत में गहन अनुभूतियां हुई हैं, उन सबका प्रमाण यही है, उन सबकी साक्षी यही है। शब्द की तरह उपयोग करते हो भगवान, ठीक है; मगर स्मरण रहे कि वस्तुतः स्थिति भगवत्ता की है, भगवान गुण है, व्यक्ति नहीं; दशा है, व्यक्ति नहीं।इसलिए बुद्ध ने भगवान को नहीं माना, फिर भी हमने बुद्ध को भगवान कहा। पहले बड़ी पहेली मालूम पड़ती है। बुद्ध कहते हैं कोई भगवान नहीं है और बुद्ध को मानने वाले बुद्ध को ही भगवान कहते हैं! मगर पहली फहली नहीं है, अगर

तुम इतनी बात समझ लो। बुद्ध ने कहा कोई भगवान नहीं—अर्थात कोई व्यक्ति नहीं जो सारे संसार को चला रहा हो। थक जाता कभी का, ऊब जाता कभी का। अरे सत्तर साल की जिंदगी में तुम्हीं सोचने लगते हो कि अब बस, मौत आ जाए तो अच्छा। कभी का मर गया होता, आत्महत्या कर ली होती। या ऐसा भागता कि फिर पीछे लौट कर नहीं देखता। आखिर एक सीमा होती है हर चीज की। इस उपद्रव को कब तक कोई व्यक्ति बर्दाश्त कर सकता है! इस रुग्ण व्यवस्था को कब तक कौन सम्हाल सकता है! और किसलिए?नहीं, भगवान कोई व्यक्ति नहीं है; जीवन का ही दूसरा नाम है; जीवंतता का दूसरा नाम है। इसलिए जब तुम परिपूर्ण रूप से जीवंत होते हो और तुम्हारे भीतर सब मौन हो जाता है, सब शांत हो जाता है, सब निर्विचार हो जाता है—तब जो सुगंध उठती है, तब जो अनुभूति होती है, उस अनुभूति का नाम, उस दिव्यता का नाम, उस भगवत्ता का नाम ही भगवान है।इसलिए किरण, तुम ठीक कहते हो। ठीक तुमने पूछा है कि क्या तृष्णा-रहित जीवन ही भगवत्ता है? हां, जहां तृष्णा गयी वहां दौड़ गयी। मन है क्या? तृष्णा की दौड़। यह पा लूं, वह पा लूं। यह मिल जाए, वह मिल जाए। संसार की ही दौड़ समाप्त नहीं हो पाती कि परलोक की दौड़ शुरू हो जाती है। यहां भी पाना है, वहां भी पाना है। बटोरना है, बटोरते चले जाना है। मरते-मरते दम तक लोग बटोरते हैं और मरने के बाद भी बटोरते हैं। उसका भी आयोजन कर लेते हैं। परलोक में भी अभी से उन्होंने खाते खोल लिए हैं। दान करते
हैं, यज्ञ करवाते हैं, मंदिर बनवाते हैं—सिर्फ इस आशा में कि परलोक में सुरक्षा रहेगी; कहने को रहेगा कि मैंने भी धर्म किया था, कि मैं हकदार हूं, परलोक के सुख पाने का। यह तृष्णा का ही विस्तार है।तुम्हारा स्वर्ग क्या है? तृष्णा का विस्तार। तुम्हारा नरक क्या है? तुम्हारे भय का विस्तार। भय है, इसलिए तुमने नरक बना लिया। और लोभ है, इसलिए तुमने स्वर्ग बना लिया। न तो कहीं नरक है और न कहीं स्वर्ग है। और कहीं नरक और स्वर्ग हैं तो तुम्हारे भीतर हैं। नरक है तुम्हारी वह दशा, जब तुम तृष्णाओं ही तृष्णाओं में घिरे हो और तृष्णाएं तुम्हें खींच रही हैं चारों तरफ, तोड़े डालती हैं। विक्षुब्ध किए हैं तुम्हें, विक्षिप्त किए हैं तुम्हें। एक क्षण भी शांति का नहीं, विश्रांति का नहीं। एक क्षण मौन का नहीं, एक क्षण ऐसा नहीं जीवन में जिसको तुम विराम और विश्राम का क्षण कह सको।जब तृष्णाओं की भीड़ में तुम घिरे हो तो तुम नरक में हो और जब तृष्णाएं शांत हो गयीं, जब तुमने देख लिया कि सब तृष्णाएं दुष्पूर हैं; लाख करो उपाय, कोई तृष्णा भरती नहीं; लाख धन पा लो, और धन पाने की आकांक्षा बनी रहती है; और कितने ही बड़े पद पर पहुंच जाओ, और बड़े पद पर पहुंचने की दौड़ बनी रहती है। और जीवन इतना जटिल है कि एक चीज में तुम पा लो तो और हजार चीजों में तुम गरीब रह जाते हो।समझ लो कि तुमने बहुत धन कमा लिया। ठीक, एक दिशा में तुमने बहुत धन कमा लिया। यह भी हो सकता है कि तुम दुनिया के सबसे बड़े धनी हो जाओ। लेकिन, चूंकि तुम्हारी सारी ऊर्जा धन को कमाने में लग गयी, इसलिए बहुत-सी चीजों में तुम अधूरे रह जाओगे। तुम्हारा स्वास्थ्य वैसा नहीं होगा जैसा अनेकों का होगा; जिन्होंने स्वास्थ्य पर ही ध्यान दिया है। उनकी देह को देखोगे, उनके बल को देखोगे, उनकी बलिष्ठता देखोगे, उनका शरीर सौष्ठव-सौंदर्य देखोगे—ईर्ष्या से जल-भुन जाओगे। क्या हुआ, धन पा कर क्या हुआ? और किसी ने अपना सारा जीवन ज्ञान के बटोरने में लगाया है। जब उसके पांडित्य को देखोगे, तब फिर आग दहक उठेगी कि तुम तो मूढ़ के मूढ़ ही रह गए। फिर यहां जीवन में कितने आयाम हैं। एक में तुम दौड़कर सफल भी हो जाओ, तो बाकी सब में तुम असफल हो गए। उनकी पीड़ा सालेगी, चुभेगी। और जिसमें तुम सफल हो गए हो, उसमें भी 'और' की दौड़ बंद नहीं होती।एंडरू कारनेगी मरा, दस अरब रुपए छोड़कर मरा, लेकिन मरते वक्त भी 'और' की दौड़ कायम थी। मरते वक्त भी उससे किसी
ने पूछा कि हे एंडरू कारनेगी, तुम्हें तो कम से कम निश्चिंत, आनंदपूर्वक मरना चाहिए, कि तुमने जीवन में एक महान कार्य करके दिखाया। दस अरब रुपए एक गरीब घर में पैदा हो कर तुमने इकट्ठे किए।एंडरू कारनेगी ने आंख खोली और कहा कि क्षमा करो, मैं सुख से नहीं मर सकता हूं, क्योंकि मेरे इरादे सौ अरब रुपए कमाने के थे। मैं नब्बे अरब रुपयों से गरीब हूं।दस अरब रुपयों से अमीर नहीं है वह; नब्बे अरब रुपयों से गरीब है। तुम्हें

उसकी अमीरी दिखाई पड़ रही है; उसे बेचारे को अपनी गरीबी दिखाई पड़ रही है। वह हार गया है।निजाम हैदराबाद दुनिया के सबसे बड़े अमीर समझे जाते थे। इतने हीरे-जवाहरात उनके पास थे कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती थी, इसलिए उनको तराजू पर तौला जाता था। सेरों से तौल कर रखे जाते थे, क्योंकि गोलकुंडा की खदान, जिससे कोहिनूर जैसा हीरा निकला—वह भी कभी निजाम हैदराबाद का ही हीरा था—उस खदान से जितने भी अच्छे हीरे निकलते, पहले निजाम के पास आते, फिर बाजार में जाते। वह अच्छे-अच्छे हीरे खुद चुन लेता। इतने हीरे थे कि उन सारे हीरों को एक साल में निकाला जाता था धूप दिखाने के लिए। तो सात छतें उसके महल की भर जाती थीं। अकूत खजाना था। कोई हिसाब नहीं था कि उन हीरों के कितने दाम हैं।लेकिन निजाम हैदराबाद की हालत तुम समझते हो! तीस साल एक ही टोपी पहने रहा! उससे बदबू आती थी, उसको धुलवाता भी नहीं था, क्योंकि धोने में खराब हो जाएगी। एक ही कोट पहने रहा। लोग कहते भीः 'कभी जवानी में बना था, अब आप बूढ़े हो गए, शरीर दुबला हो गया, यह बिलकुल ढीला लगता है, किसी और का लगता है।' निजाम हैदराबाद कहताः 'क्या फर्क पड़ता है! दुनिया जानती है कि मैं निजाम हूं हैदराबाद का। मैं चाहे चुस्त कोट पहनूं, चाहे ढीला कोट पहनूं क्या फर्क पड़ता है?' मगर फर्क सिर्फ सौ पचास रुपए का, वह भी खर्च नहीं कर सकता था वह। तुम जानकर हैरान होओगे कि मेहमानों को सिगरेट पिलाता था तो उसकी छाती जलती थी; मेहमान सिगरेट पीते थे, छाती उसकी जलती थी। और जैसे ही मेहमान जाते थे; जो पहला काम वह करता था, ऐशट्रे में से उनकी जो अधजली सिगरेट के टुकड़े थे, वे इकट्ठे कर लेता था, वे खुद पीता था। तुमने इससे ज्यादा दरिद्र आदमी दुनिया में देखा?

भिखमंगा भी यह न करे। भिखमंगा भी सड़क पर पड़े हुए टुकड़े न उठाए। निजाम हैदराबाद जैसा धनपति और सिगरेट के टुकड़े दूसरों के झूठे टुकड़े उठा कर पिए! भयंकर लोभी!उसके पास एक बहुत बड़ा हीरा था, जो वह टेबिल पर पेपरवेट की तरह उपयोग करता था। जब मरा तो वह हीरा नहीं मिला एकदम, लोग बड़े हैरान हुए कि मामला क्या है, हीरा गया कहां? क्या ले गया निजाम हैदराबाद अपने साथ? बहुत खोजा, वह मिला ही नहीं। आखिर में मिला तो कहां मिला! निजाम हैदराबाद ने अपने जूते में छिपा रखा था। मरते वक्त भी फिकर रही होगी उसको इस हीरे की, कि कोई इसको चुरा-चुरू न ले। जूते में कौन खोजेगा! उसने जूते के अंदर उसको छिपा कर रख दिया था अपने बिस्तर के नीचे। जूते उसके इतने गंदे थे, उनको सुधरवाता रहता था। उसने थेगड़े लगवा लिए थे। और यह आदमी दुनिया का सबसे बड़ा धनपति था।इधर लोभ और भय का भी कोई अंत नहीं था, इतना ही भय भी था। लोभी में अकसर भय भी होता है। भय और लोभ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वह भयभीत इतना था कि रात उसे भूतों का बहुत डर लगता था। सच तो यह है कि जहां तक मैं जानता हूं, भूत उससे डरते थे। ऐसे आदमी से भूत न डरें तो क्या हो। समझ लो कि भूत सिगरेट पी रहा है, वह छीन ही ले। मगर वह भूतों से डरता था। किसी उस्ताद ने उसको बता दिया था कि भूतों से बचने का एक ही उपाय है। तो वह उपाय करता था, वह उपाय उसको सोने नहीं देता था। वह उपाय अजीब था। इस दुनिया में एक से एक ज्ञानी पड़े हैं! मूढ़ों का अंत नहीं है, इसलिए ज्ञानियों का अंत नहीं है। मूढ़ों को चाहिए महामूढ़, तब तो वे उनको गुरु मानें। उसने बताया था कि तरकीब एक ही है भूतों से बचने की और वह यह है कि रात जब सोओ तो एक लोटे में नमक भर कर, उसमें अपना पैर डाल दो। नमक पास रहे और तुम्हें छूता रहे, भूत पास नहीं आ सकता। नमक से भूत बहुत डरते हैं।तो बेचारा एक बड़ा लोटा, उसमें नमक और उसमें एक पैर डाल कर और उसको पैर से बांधकर रात सोता था। अब ऐसे कहीं नींद आएगी! मगर नींद की कौन फिक्र करे, बचना भूतों से है! ऐसा भयभीत, ऐसा लोभी—और सारा धन उसका! दुनिया का सबसे बड़ा धनी!धन मिल जाए तो भी कुछ मिलता नहीं; 'और' की दौड़ कायम रहती है। और एक दिशा में मिलता है कुछ, तो बाकी दिशाओं

में खो जाता है। इसलिए बेचैनी, विषाद बना ही रहता है।इस दुनिया में इस सत्य को जो देख लेता है कि तृष्णा दुष्पूर है, भरती ही नहीं, भर सकती ही नहीं—वही व्यक्ति भगवत्ता को उपलब्ध हो जाता है। तृष्णा गिरी कि तुम

भगवान हो। तृष्णा ने ही तुम्हें तुम्हारी भगवत्ता से नीचे उतार लिया है। तृष्णा की धूल जम गयी है तुम्हारी भगवत्ता पर।इसलिए महावीर, बुद्ध, कबीर, नानक—जो जागे हैं—उन्होंने एक ही बात समझायी है कि किसी तरह तृष्णा को समझ लो, देख लो और तृष्णा से मुक्त हो जाओ। अब यह मत सोचना कि संसार छोड़ कर भाग जाओगे तो तृष्णा से मुक्त हो जाओगे। तृष्णा से मुक्त होने के लिए खूब जागरूकता चाहिए, सघन ध्यान चाहिए; भगोड़ेपन से कुछ भी नहीं होगा। धन से नहीं मिटती तृष्णा; ध्यान से मिटती है। और धन के त्याग से भी नहीं मिटती तृष्णा; यद्यपि तृष्णा मिट जाए तो धन पर पकड़ छूट जाती है। मगर पकड़ का छूट जाना और त्यागने में बड़ा फर्क है। त्याग तो पकड़ ही है। जब तुम कहते हो कि मैंने त्याग दिया तो तुम यही कह रहे हो कि तुम मानते हो अभी भी कि वह तुम्हारा था, नहीं तो त्यागा क्या? अगर तुम जानते हो—खाली हाथ आए, खाली हाथ जाएंगे—तो त्यागोगे क्या? त्यागने को क्या है?तो इस जगत में जो व्यक्ति समझ लेता है, वह चुपचाप, जो मिल जाए—झोपड़ा तो झोपड़ा और महल तो महल—उसका उपयोग करता है, लेकिन पकड़ता नहीं। आज महल मिल जाए तो महल ठीक; कुछ महल से घबड़ाता भी नहीं, कुछ महल से परेशान भी नहीं होता। और कल महल चला जाए तो पीछे लौट कर भी नहीं देखता है। कल झोपड़ा तो झोपड़ा सही। जिस व्यक्ति की तृष्णा गिर गयी, वह कह सकता है कबीर के साथ—'होनी होय सो होय'! जो होना हो हो, मैं राजी हूं। उसकी कोई शर्त नहीं होती अस्तित्व के साथ कि यह शर्त पूरी होगी तो ही मैं प्रसन्न होऊंगा; वह बेशर्त प्रसन्न होता है।और मेरी यही संन्यास की परिभाषा है—बेशर्त आनंदित। न तो भोग में आनंद है, न त्याग में आनंद है। आनंद है इस अनुभव में, कि यहां भोग भी गलत है, त्याग भी गलत है। यहां अपना कुछ है ही नहीं। उपयोग भर कर लो। सराय है यह, घर नहीं है। कुछ ने घर समझ कर पकड़ लिया है और कुछ ने घर समझ कर छोड़ दिया है। सराय समझ कर ठहरो और सुबह जब चलने का मौका आ जाए तो अलविदा। धीरे-धीरे
तुम्हारी भगवत्ता निखर आएगी।तुम उतने ही भगवान हो, जितने बुद्ध, जितने कृष्ण, जितने राम; रत्तीभर का भेद नहीं। अगर कुछ भेद है तो इतना ही कि उन्हें बोध है कि वे कौन हैं और तुम्हें बोध नहीं कि तुम कौन हो।

प्यार है विहंगों में
बार-बार जीने का,
बार-बार रंग, रूप, नेह, नीर पीने का,
बार-बार पक्षी का—
जन्म नया पाने का,
बार-बार गाने का—नीड़ के बनाने का।
प्यार है मनुष्यों में—
बार-बार जीने का,
बार-बार राग, रूप, गंध, धूप पीने का,
बार-बार पृथ्वी में—
जन्म नया पाने का,
बार-बार गाने का—गेह के बसाने का। यही तृष्णा है! बार-बार गाने का—गेह के बसाने का।

बार-बार गाने का—नीड़ के बनाने का।सराय समझो। यहां कोई नीड़ नहीं, कोई गेह नहीं। और फिर बार-बार बसाने की क्या चिंता? फिर-फिर लौट आने की क्या आकांक्षा? मुक्त भाव से जीओ, जब तक हो जीओ।जिसकी और पाने की दौड़ छूट गयी, उसकी और आने की दौड़ भी समाप्त हो गयी। यह तृष्णा ही है जो तुम्हें जन्मों-जन्मों में वापस ले आती है। यह तृष्णा ही है जो तुम्हें जन्म और मृत्यु के वर्तुल में घुमाती रहती है। तृष्णा गयी कि तुम इस चक्र के बाहर हुए। और जो इस चक्र के बाहर है उसके आनंद का पारावार नहीं।

छाया मत छूना, मन

होगा दुःख दूना, मन
जीवन में है सुरंग सुधियां सुहावनी
छवियों की चित्र-गंध फैली मनभावनी
 तन सुगंध शेष रही बीत गयी यामिनी
कुंतल के फूलों की याद बनी चांदनी
भूली-सी एक छुवन
बनता हर जीवित क्षण
छाया मत छूना, मन
होगा दुःख दूना, मन
यश है न वैभव है, मान है न सरमाया
जितना ही दौड़ा तू उतना ही भरमाया
प्रभुता का शरण-बिंब केवल मृगतृष्णा है
हर चांदेरा में छिपी एक रात कृष्णा है
जो है यथार्थ कठिन
उसका तू कर पूजन
छाया मत छूना, मन
होगा दुःख दूना, मन
द्विविधता साहस है दिखता है पंथ नहीं
देह सुखी हो पर मन से दुःख का अंत नहीं
दुःख है न चांद खिला शरद रात आने पर
क्या हुआ जो खिला फूल रस-वसंत जाने पर जो न मिला भूल उसे करे तू भविष्य वरण
छाया मत छूना, मन
होगा दुःख दूना, मन

जगत में छायाएं ही छायाएं हैं—धन की, पद की, प्रतिष्ठा की। इन छायाओं को पकड़ने को दौड़ोगे, कि दुःख बढ़ेगा। पकड़ तो पाओगे नहीं, दुःख बढ़ना
 है, बढ़ता ही रहेगा। जितने हारोगे उतनी ही तेजी से दौड़ोगे। जितना हारोगे उतनी और शक्ति इकट्ठी करके छायाओं को पकड़ना चाहोगे। और छायाएं पकड़ में आती नहीं। इसलिए जिन्होंने जाना, उन्होंने जगत को छाया कहा, माया कहा।तृष्णा यानी छाया, तृष्णा यानी माया। और छाया और माया से जो जागा उस जागरण में ही भगवत्ता है।और जब तक तुम तृष्णा में हो, तब तक तुम अपने को कुछ का कुछ समझते रहोगे, क्योंकि तृष्णा भटकाए रखती है। तृष्णा भीतर आने का समय नहीं देती, अवसर नहीं देती। तुम जान ही न सकोगे कि तुम कौन हो। मैं कौन हूं, यह प्रश्न, यह जिज्ञासा अनुत्तरित ही रह जाएगी। और यही एकमात्र प्रश्न है, जो सच्चा प्रश्न है। और यही एकमात्र प्रश्न है, जो सुलझ जाए तो जीवन की सब उलझन सुलझ जाती है, सब पहेलियां हल हो जाती हैं। और जिसने अपने को जाना नहीं, वह कुछ न कुछ मानता रहेगा। कोई मानता है मैं देह हूं, कोई मानता है मैं मन हूं, कोई मानता है मैं धन हूं।तुमने देखा, कुछ लोगों का धन खो जाए, दिवाला निकल जाए, तो आत्महत्या ही कर लेते हैं। इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ इतना ही हुआ कि उन्होंने धन को ही अपना जीवन मान रखा था। वह धन ही न रहा, तो अब जी कर क्या करोगे? किसी की पत्नी मर गयी, उन्होंने जहर पी लिया। तो उन्होंने पत्नी में ही अपने प्राण रख दिए थे।तुमने बच्चों की कहानियां पढ़ी होंगी। उन कहानियों में कोई राजा, कोई सम्राट अपने प्राण किसी पक्षी में रख देता है। कोई रख देता है तोते में, कौई मैना में। उस राजा को

कितना ही मारो, वह नहीं मर सकता। लेकिन तोते की गर्दन मरोड़ दो कि राजा मर जाता है। वे कहानियां बड़ी अर्थपूर्ण हैं। यही हमारी दशा है। किसी ने धन में रख दिए अपने प्राण। इनको कितना ही मारो, ये न मरेंगे। इनका धन चला जाए कि बस ये गए। धन में ही इनका जीवन है। लोग कहते हैं कि धन का जो पागल है वह मर भी जाए तो गड़े धन पर सांप होकर बैठ जाता है। मरने की जरूरत ही नहीं, जिंदा में ही लोग सांप हो कर बैठे रहते हैं।णभ्-थ्एए-एइ्र तुम्हारा जहां मोह है, वहीं तुम्हारा प्राण है। जिनका राजनीति में मोह है, उनके प्राण दिल्ली में। वे रहें कहीं, तुम उनको कितना ही मारो, मार नहीं सकोगे। गोली आर-पार हो जाएगी,
बेकार जाएगी। तुम्हें उनकी कुर्सी को छेदना पड़ेगा। अगर तुम उनकी कुर्सी मार दो, वे मारे गए। बस कुर्सी में ही प्राण हैं। जब तक कुर्सी पर लोग रहते हैं, देखते हो तुम, उनकी छाती कैसी फूली रहती है! उनकी चाल में क्या रंग होता है, क्या ढंग होता है! बूढ़े भी जवान मालूम होते हैं। कुर्सी चली गयी जवान भी बूढ़े हो जाते हैं—एकदम लचर-पचर, कमर झुक जाती है! सारा बल ही गया। रीढ़ ही टूट गयी।
लोग अपने को कुछ न कुछ माने हुए हैं। जिस चीज में तुम्हारी तृष्णा जुड़ी है, वही तुम हो जाते हो। तृष्णा तादात्म्य पैदा करती है, तादात्म्य से भ्रांति हो जाती है। सारी तृष्णाएं टूट जाएं तो तुम जान सकते हो कि मैं कौन हूं।
मुल्ला नसरुद्दीन को वहम हो गया था कि वह एक चूहा है। कुछ बुरा वहम नहीं। किसी को वहम हो जाता है राष्ट्रपति है, किसी को वहम हो जाता है प्रधानमंत्री है। उससे तो बेहतर। झगड़ा-झांसा तो नहीं है। न चुनाव लड़ने की झंझट, न किसी को परेशान करने की झंझट। बिलकुल अहिंसात्मक तादात्म्य था उसका—चूहा! किसी की कोई स्पर्धा भी नहीं, कोई भाग-दौड़ भी नहीं। किसी को विरोध भी नहीं। घर के लोग, मित्र-गण, मोहल्ले-पड़ोस के आदमी परेशान। पहले तो समझे कि नसरुद्दीन मजाक करता है, फिर धीरे-धीरे जब समझ में आया कि मामला वाकई में गंभीर है, तो वे मुल्ला को पकड़कर एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक के पास ले गए।मनोवैज्ञानिक ने एक माह तक नसरुद्दीन का महंगा इलाज किया। जब मुल्ला का वहम पूर्णतः दूर हो गया, और वह पुनः अपने-आप को मनुष्य मानने लगा, तब उसने फीस चुकाकर डाक्टर से विदा ली। वह डाक्टर के घर की सीढ़ियां उतर रहा था, तभी अचानक एक बिल्ली सामने से गुजर गयी। मुल्ला चीख मार कर छलांग लगाता हुआ वापस सीढ़ियां चढ़ गया।मनोवैज्ञानिक ने पूछा : 'क्यों मुल्ला, क्या बात है? घबरा क्यों रहे हो?'नसरुद्दीन बोला : 'घबराऊं नहीं तो क्या करूं! जान का खतरा था। अभी-अभी एक बिल्ली रास्ता काट गयी। वह तो गनीमत है कि उसकी नजरें मुझ पर नहीं पड़ीं, वरना आज जिंदगी से हाथ धो बैठता।
कंधे पर हाथ रखते हुए मनोवैज्ञानिक ने कहा : 'नसरुद्दीन, क्या तुम फिर भूल गए कि तुम चूहा नहीं हो? अब तुम मानने लगे हो कि तुम मनुष्य हो?'
मुल्ला बोला : 'आप बिलकुल ठीक कहते हैं डाक्टर। मैं मानता हू कि मैं मनुष्य हूं, लेकिन बिल्ली को क्या मालूम? उसने थोड़े ही आपसे इलाज करवाया है!'
लोगों को गौर से देखो—कोई अपने को धन मानता है, कोई अपने को पद मानता है, कोई तन मानता है, कोई मन मानता है। और स्वाभाविक क्योंकि जब तक तुम अपने को नहीं जानते, कुछ न कुछ तो मानोगे। और अपने को जानने की सुविधा कहां, अवकाश कहां! थोड़ा बाहर की आपा-धापी बंद हो, थोड़ी बाहर की दौड़ क्षीण हो, तो तुम भीतर मुड़ो। थोड़ा समय भीतर जाओ, तो अपने से पहचान हो आत्म-साक्षात्कार हो।
आत्म-साक्षात्कार का एक ही उपाय है : तृष्णा से मुक्ति। और आत्म-साक्षात्कार ही भगवत्ता का अनुभव है। वही बोध है, जहां उदघोष उठता है : अहं ब्रह्मास्मि! अनलहक!
आज इतना ही।
तेरहवां प्रवचन
मैं अपने साहब संग चली

ना कानों सुना ना आंखों देखा

सूत्र

भींजै चुनरिया प्रेम-रस बूंदन।

आरत साज के चली है सुहागिन पिय अपने को ढूंढ़न।

काहे को तोरी बनी चुनरिया काहे को लगे चारों फूंदन।

पांच तत्त की बनी चुनरिया नाम के लागे फूंदन।

चढ़िगे महल खुल गई रे किबरिया दास कबीर लागे झूलन।। मैं अपने साहब संग चली।

हाथ में नरियल मुख में बीड़ा, मोतियन मांग भरी।

लिल्ली घोड़ी जरद बछेड़ी, तापै चढ़ि के चली।

नदी किनारे सतगुरु भेंटे, तुरत जनम सुधरी।

कहै कबीर सुनो भाई साधो, दोउ कुल तारि चली।

कबीर भाटी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।

सिर सौंपे सोई पिवै, नहीं तो पिया न जाइ।।

हरि-रस पीया जाणिए, जे कबहूं न जाइ खुमार।

मैंमंता घूमत रहे, नाहीं तन की सार।।

सबै रसायण मैं किया, हरि-सा और न कोई।

तिल इक घट मैं संचरै, तो सब कंचन होइ।।

आइ न सकौं तुज्झपै, सकूं न तुज्झ बुलाइ।

जियरा यौंही लेहुगे, विरह तपाइ तपाइ।।

यहु तन जालौं मसि करूं, ज्यूं धूवां

जाइ सुरग्गि।

मति वै राम दया करै, बरसि बुझावै अग्गि।।

यहु तन जालौं मसि करौं, लिखौं राम का नांऊं।

लेखणि करूं करंक की, लिखी लिखी राम पठाऊं।।

इस तन का दीवा करौं, बाती मेलूं जीव।

लोही सींचौं तेल ज्यू, कब मुख देखौं पीव।।

कै बिरहीन कूं मींच दे, कै आपा दिखलाइ।

आठ पहर का दग्झणां, मौपे सहा न जाइ।

शीघ्र करो तैयारी मेरे जाने की

रथ जाने को बाहर तैयार खड़ा मेरा,

है मंजिल मेरी दूर बहुत, पथ दुर्गम है,

हर एक दिशा पर डाला है तुम ने डेरा

कल तक तो मैंने गीत मिलन के गाए थे

पर आज विदा का अंतिम गीत सुनाऊंगा,

कल तक आंसू से मोल दिया जग-जीवन का

अब आज लहू से बाकी कर्ज चुकाऊंगा।

कल खेला था अलियों-कलियों की गलियों में

अब आज मुझे मरघट में रास रचाने दो,

कल मुस्काया था बैठ किसी की पलकों पर

अब आज चिता पर बैठ मुझे मुस्काने दो।
कल सुनकर मेरे गीत हंसे-मुस्काए तुम
अब आज अश्रु दो मेरे साथ बहा लेना,
कल तक फूलों की मालाएं पहनाई थीं
गलहार अंगारों का अब पहना देना।
बेकार बहाना, टालमटोल व्यर्थ सारी
आ गया समय जाने का—जाना ही होगा,
तुम चाहे जितना चीखो-चिल्लाओ, रोओ,
पर मुझको डेरा आज उठाना ही होगा।
अब चाहूं भी तो मैं रुक सकता नहीं दोस्त!
कारण—खुद मंजिल ही ढिंग बढ़ती आती है,
मैं जितना पैर टिकाने की कोशिश करता
उतनी ही मिट्टी और धसकती जाती है।
वह देखो लहरों में तूफानी हलचल है
उस पार खड़ा होकर कोई मुस्काता है,
जिसके नयनों के मौन इशारों पर मेरा
साहिल खुद लहरों के संग बहता जाता है।
फिर तुम्हीं कहो किस ओर बचूं, भांगू जाऊं
नामुमकिन है अंबर के ऊपर चढ़ जाना
है संभव नहीं धरा के अंदर धंस जाना
नामुमकिन है धर पंख पवन में उड़ जाना
पर यदि यह भी सब संभव हो तो क्या बोलो!
अपने से बचकर कौन कहां जा सकता है?
सांसों पर जो पड़ चुका काल का
नागपाश
उससे छुटकारा कौन कहां पा सकता है? देखो लिपटी है राख चिता की पैरों में अंगार बना जलता है रोम-रोम मेरा है चिता सदृश धू-धू करती सारी देही है कफन बंधा सर पर, सुधि को तम ने घेरा। हूं इसीलिए कहता मत चीखो-चिल्लाओ मत आंसू से तुम मेरा पथ रोको साथी। मत फैलाओ आलिंगन की प्यासी बांहें मत मुझे सुनाओ प्रेमभरी अपनी पाती। अब आंसू की आवाज न मैं सुन सकता हूं, अब देख न सकता मैं गोरी तस्वीरों को, अब चूम न सकता मैं अधरों की मुस्कानें, अब बांध न सकता बांहों की जंजीरों को। मेरे अधरों में घुला हलाहल है काला नयनों में नंगी मौत खड़ी मुस्काती है, है रामनाम ही सत्य, असत्य और सब कुछ बस एक यही ध्वनि कानों से टकराती है। है अट्टहास करते मेरे कंकाल मुझे हैं भूत-प्रेत-से नाच रहे टूटे सपने हैं विकल चिताएं मुझे चूमने को प्रतिपल दाहक-से सब लगते मुझको मेरे अपने। पथराती जाती हैं नीली-पीली पुतली, मन में भीषण तूफान घुमड़ता आता है, सारे शरीर में हलचल है भूचालों की, पलकों पर तम का परदा छाता जाता है। फिर भी आहों से और सिसकियों से छिन-छिन तुम बांध रहे हो मेरे पैरों की गति को, फिर भी लाकर तुम बाढ़ आंसुओं की अनंत हो डुबो रहे मुझको, मेरे पथ अथ-इति को। उस अजित मृत्यु के फंदे के आगे सचमुच हैं बहुत क्षीण कमजोर तुम्हारी ये बांहें, उसके घन-गर्जन तांडव-नर्तन में सचमुच हैं नहीं एक क्षण

टिक सकते आंसू-आंहें। जीवन में तो आंसू का मूल्य बहुत कुछ है वह साथी है एकाकी सूने जीवन का, वह दीपक है तम भरी निशा की राहों का, वह मोती है हत-भाग्य थकित, निर्धन-मन का। पर काल काल के आगे सोना मिट्टी है। हीरे-मोती की कीमत कब उसने जानी है? पहचानी कब उसने पारस की स्वर्ण-शक्ति बस मिट्टी की सत्ता केवल उसने मानी है। उसने कब यह सोचा कि एक कलिका के संग कितने तुतले अरमान बंधे हैं मधुवन के? कब उसे ज्ञात यह हुआ कि एक सांस के संग कितने सपने जीते-मरते हैं जीवन के? कब किसी नीड़ के तिनकों से उसने पूछा किस जगह तुम्हारे दिल पर बिजली टूटी है? कब किसी विकल पंछी से उसने प्रश्न किया किसने जगह तुम्हारी प्राण-पपिहरी छूटी है? है और किसी से मोह न उसको कभी हुआ, परिवर्तन—केवल परिवर्तन उसका साथी हैं नाश-सृजन उसके शाश्वत गतिमय दो पग मृत्तिका—मृत्तिका ही केवल उसकी थाती। हम सत्य समझते हैं उनको जो नित्य नए खिलते मधुवन में रंग-बिरंगे फूल-शूल पर अटहास कर पतझर कहता है हमसे वह देखो मरघट में किसकी उड़ रही धूल? जीवन के तीन बड़े सत्य हैं। उनमें दो केवल भासते हैं कि सत्य हैं; हैं नहीं। और एक जो सत्य है, पर भासता नहीं कि सत्य जैसा है। उन तीन सत्यों को समझना जरूरी है। दो केवल आभास हैं, मगर प्रतीत होते हैं कि बहुत वास्तविक। और एक—जो आभास जैसा मालूम होता है, वही है सत्य—एकमात्र सत्य। पहला है जन्म, दूसरा है मृत्यु और दोनों के मध्य में है प्रेम। जन्म झूठा है। कभी हुआ नहीं। रोज होता लगता है। बार-बार तुम जन्मे हो, पर कभी जन्मे नहीं। जन्म के पहले भी तुम थे।और ऐसी ही झूठ है मृत्यु। रोज-रोज घटती है। हजार बार तुम मरे हो, मरकर भी मरे कहां!
मृत्यु होती है मगर होती कहां! न कोई जन्मता है न कोई मरता है। जन्म के फहले हो तुम, मृत्यु के बाद भी हो तुम। लेकिन दोनों बड़े सत्य मालूम फड़ते हैं।दोनों से ही बना लगता है जीवन का ताना-बाना।और दोनों के बीच में है प्रेम। और प्रेम बिलकुल असत्य मालूम पड़ता है; कवियों की कल्पना मालूम पड़ता है; उन्मत्तों की भावदशा मालूम पड़ता है। लेकिन प्रेम ही है एकमात्र सत्य, क्योंकि प्रेम से ही तुम उसे जान सकोगे जो है—जो जन्म के भी पहले है और मृत्यु के बाद भी है। प्रेम है द्वार परमात्मा का।मैं तुम्हारे प्रेम की बात नहीं कर रहा। जब तक तुम्हें जीवन और मृत्यु का असत्य न दिखाई पड़े, तब तक तुम्हारा प्रेम भी झूठा ही होगा। झूठा जन्म, झूठी मौत; दोनों के बीच में जो प्रेम होगा; वह सच कैसे हो सकता है? यह किनारा झूठा, वह किनारा झूठा; बीच में सेतु बनाओगे, वह सेतु सत्य नहीं हो सकता। दो असत्यों को जोड़ने वाला सेतु सत्य कैसे होगा?नहीं, तुम्हारे प्रेम की बात नहीं कर रहा हूं। उस प्रेम की बात कर रहा हूं जिस प्रेम की बात कबीर कर रहे हैं, मीरा कर रही है, चैतन्य कर रहे हैं। एक प्रेम है, जो वासना नहीं है। एक प्रेम है, जो कामना नहीं है। एक प्रेम है, जो प्रार्थना है। और प्रेम की वह ऊंचाई, वह उत्तुंग शिखर, जहां प्रेम प्रार्थना बन जाता है, अर्चना बन जाता है, आराधना बन जाता है—उससे ही खुलता है द्वार प्रभु का। जागो—जन्म से। जागो—मृत्यु से। जागो—प्रेम में! झूठ से जागो ताकि सत्य को देख सको। प्रेम और परमात्मा पर्यायवाची हैं।कबीर ठीक कहते हैं : 'भींजै चुनरिया प्रेम-रस बूंदन।' मेरी चुनरिया तो अब प्रेम की वर्षा में भीगी जाती है। होने लगी बूंदाबांदी अनंत की, अमृत की।भाषा के साथ एक कठिनाई है। कबीर कहें प्रेम, तो अपने अर्थों में कहते हैं। तुम सुनोगे प्रेम, अपने अर्थों में सुनोगे। और वहीं सब चूक हो जाती है। कबीर जब प्रेम की बात कर रहे हैं तो तुम्हारे प्रेम की बात नहीं कर रहे हैं, इसे तो तुम गांठ बांध लेना। तुम्हारे प्रेम में तो सिवाय विषाद के, दुःख के, पीड़ा के, कलह के, संघर्ष के, ईर्ष्या के, वैमनस्य के—और क्या जन्मता है? तुम्हारे प्रेम में कभी फूल लगते ही नहीं, कांटे ही लगते हैं। यह किसी और ही प्रेम की बात है, जिससे तुम अपरिचित
हो और जिससे परिचित होना जरूरी है; जिससे परिचित होने का नाम ही धर्म, योग, तंत्र, ध्यान; जिससे परिचित होने की ही व्यवस्था सदियों-सदियों में बुद्धपुरुषों ने निर्मित की है।तोड़ना है तुम्हारे प्रेम से तुम्हें और जोड़ना है किसी अनूठे प्रेम से, जिसकी तुम्हें खबर ही नहीं; जिसका तुमने स्वप्न भी नहीं देखा है।'भीजैं चुनरिया

प्रेम-रस बूंदन।' कबीर कहते हैं : नाच उठा हूं, मगन हो गया हूं, मदमस्त हो गया हूं। यह आकाश टूट पड़ा मेरे ऊपर। यह कैसा प्रेम है जो मुझे भिगोए चला जाता है, डुबोए चला जाता है! यह चारों तरफ से कैसे प्रेम की बूंदाबांदी होने लगी!यह होती है। इस होने के लिए तुम्हारी भूमि तैयार होनी चाहिए, भूमिका निर्मित होनी चाहिए। तुम्हारी पात्रता होनी चाहिए। हम उतना ही पाते हैं जितनी हमारी योग्यता होती है। जिसकी योग्यता हीरे पाने की नहीं है, उसे तुम हीरा दे भी दो तो जल्दी ही गंवा देगा। कंकड़-पत्थर खरीद लेगा। हीरे के बदले में पत्थरों के ढेर लगा लेगा। जिसे गुण का बोध नहीं है, जो केवल परिमाण को ही समझता है, अगर उसे कोई मिल जाएगा पत्थरों का ढेर देने वाला, तो एक हीरे को वह क्या करेगा! वह सोचेगा : 'एक हीरे के बदले में इतने पत्थर मिलते हैं, खरीद ही लो! सौदा करने जैसा है।'हीरा सिर्फ जौहरी के लिए हीरा है। मैंने सुना है, एक कुम्हार को रास्ते पर चलते समय—बाजार से लौटता था अपनी मटकियां बेचकर, अपने गधे को लेकर—एक हीरा पड़ा मिल गया। बड़ा हीरा! उठा लिया सोच कर कि चमकदार पत्थर है, बच्चे खेलेंगे। फिर राह में खयाल आया उसे कि बच्चे कहीं गंवा देंगे, यहां-वहां खो देंगे, अच्छा हो गधे के गले में लटका दूं। गधे के लिए आभूषण हो जाएगा।कुम्हार के हाथ हीरा पड़े तो गधे के गले में लटकेगा ही, और जाएगा कहां! उसने गधे के गले में हीरा लटका दिया। एक जौहरी अपने घोड़े पर सवार आता था। देखकर चौंक गया। बहुत हीरे उसने देखे थे, पर ऐसा हीरा नहीं देखा था। और गधे के गले में लटका! रोक लिया घोड़ा। समझ गया कि इस मूढ़ को कुछ पता नहीं है। इसलिए नहीं कहा कि इस हीरे का कितना दाम; कहा कि इस पत्थर का क्या लेगा? कुम्हार ने बहुत सोचा-विचारा, बहुत हिम्मत करके कहा कि आठ आने दे दें। जौहरी तो बिलकुल समझ गया कि इसे कुछ भी पता नहीं है। आठ आने में करोड़ों का हीरा बेच रहा है! मगर जौहरी को भी कंजूसी पकड़ी। उसने सोचा : 'चार आने में देगा? चार आने लेगा? चार आने में देगा? आठ आने, शर्म नहीं आती इस पत्थर के मांगते।' कुम्हार ने कहा कि 'फिर रहने दो। फिर गधे के गले में ही ठीक। चार आने के पीछे कौन उसके गले में पहनाए हुए पत्थर को उतारे!जौहरी यह सोचकर आगे बढ़ गया कि और दो आने लेगा, ज्यादा से ज्यादा; या आगे बढ़ जाऊं तो शायद चार आने में ही दे दे। मगर उसके पीछे ही एक और जौहरी आ गया। और उसने एक रुपए में वह पत्थर खरीद लिया। जब तक पहला जौहरी वापस लौटा, सौदा हो चुका था। पहले जौहरी ने कहा : 'अरे मूरख, अरे पागल कुम्हार! तुझे पता है तूने क्या किया? करोड़ों की चीज एक रुपए में बेच दी!'वह कुम्हार हंसने लगा। उसने कहा : 'मैं तो कुम्हार हूं, मुझे तो पता नहीं कि करोड़ों का था हीरा। मैंने तो सोचा एक रुपया मिलता है, यही क्या कम है! महीने भर की मजदूरी हो गयी। मगर तुम्हारे लिए क्या कहूं, तुम तो जौहरी हो, तुम आठ आने में न ले सके। करोड़ों तुमने गंवाए हैं, मैंने नहीं गंवाए। मुझे तो पता ही नहीं था।'तुम्हें भी पता नहीं है कि तुम कितना गंवा रहे हो! मगर तुमसे भी ज्यादा वे लोग गंवा रहे हैं जिन्हें शास्त्र कंठस्थ हैं; जिन्हें वेद, उपनिषद, कुरान याद हैं; जो रोज हीरों की बातें कर रहे हैं। तुमसे भी ज्यादा वे गंवा रहे हैं। कम से कम उन्हें तो बोध होना चाहिए। लेकिन परमात्मा की बातें चलती हैं, खोज कोई नहीं करता। आत्मा की बातें होती हैं, लेकिन ध्यान कोई नहीं करता। मंदिर में पूजापाठ के आयोजन होते हैं, मगर पूजा कहां, प्रार्थना कहां! पूजा और प्रार्थना क्रियाकांड का नाम नहीं है; औपचारिकता नहीं है।पूजा और प्रार्थना की तैयारी चाहिए, सम्यक तैयारी चाहिए। उस तैयारी के दो सूत्र समझ लेने जरूरी हैं, तो ये प्रेम की बूंदें तुम्हारी चुनरिया पर भी बरसें। दो ही सूत्र हैं, और उनमें से तुम एक पूरा कर लो तो दूसरा अपने-आप पूरा हो जाता है। एक सूत्र है—ध्यान—कि शून्य हो जाओ। और उस शून्य में परम जागरूकता को साध लो; सब सन्नाटा हो जाए भीतर, सिर्फ बोध मात्र रह जाए—कि हूं! सो मत जाना। सन्नाटा हुआ और सो गए, तो ध्यान गंवा बैठे; हीरे के पास पहुंचते-पहुंचते हाथ चूक गया। बस जरा और खोदना था, बस जरा और। शायद इंच दो इंच पर्त और मिट्टी की थी और फिर हीरे की खदान थी।लेकिन अक्सर यह होता है, जो लोग भी ध्यान करने बैठते हैं, जल्दी ही झपकी खा जाते हैं, नींद में पड़ जाते हैं। जब तक विचार चलते रहते हैं तब तक जागे रहते हैं, जैसे ही ध्यान

के करीब पहुंचने लगते हैं वैसे ही नींद आने लगती है।तो तुम्हें मैं एक याद्दाश्त के लिए वह बात कह दूं कि जब तुम्हें नींद आने लगे ध्यान में, तो समझना कि अब है सम्हलने का वक्त। वह नींद सूचक है इस बात की कि अब मन कह रहा है अब सो जाने में सार है। अब जरा और आगे गए तो मौत है मन की, क्योंकि ध्यान मन की मृत्यु है। तो जब मन झपकी लेने लगे, तंद्रा में उतरने लगे, तब तो झकझोर देना अपने को। तब तो झकझोर कर चौंक जाना।बुद्ध ने, जिन्होंने ध्यान के इस मार्ग पर सर्वाधिक प्रयोग किए, अपने भिक्षुओं को कहा था कि बैठ कर ध्यान करो। लेकिन जैसे ही जरा-सी भी झलक तुम्हें लगे कि नींद का कोई सिलसिला शुरू होता है, उठकर खड़े हो जाना; फिर चल कर ध्यान करो, फिर बैठकर ध्यान मत करो।मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि बैठकर ध्यान करें, वह तो ठीक है; अगर लेटकर करें तो कोई हर्जा है? हर्जा तो कुछ नहीं है, लेकिन बैठकर ही तुम सो जाओगे, लेटकर तो फिर बात ही और है। लेटे कि तुम सोए ही। वह मन तरकीबें निकाल रहा है। बैठे-बैठे भी सोओगे, लेकिन सोने की संभावना कम है। क्योंकि जब तुम बैठे हो, तो जमीन का गुरुत्वाकर्षण तुम्हें सोने नहीं देता। जब तुम लेट गए, तो जमीन का गुरुत्वाकर्षण तुम्हारे पूरे शरीर पर समान रूप से पड़ने लगता है। एक तारतम्य बंध जाता है, एक संगीतबद्धता पैदा हो जाती है। इसलिए खड़े हो कर सोना और भी मुश्किल है। क्योंकि जमीन का गुरुत्वाकर्षण जोर से खींचता है, और सारे शरीर फर उसका समान अनुफात नहीं होता। बिना तकिये के भी सोना मुश्किल है। क्योंकि गुरुत्वाकर्षण के कारण मस्तिष्क में खून की धारा उतनी ही चलती है, जितनी शरीर के और हिस्सों में चलती है। और मस्तिष्क में खून की धारा चलती रहे, तो नींद आनी मुश्किल। शीर्षासन करके सोना सर्वाधिक मुश्किल है,
क्योंकि शीर्षासन किए हुए, सारे खून की धारा सिर की तरफ जा रही है। और सिर को ही सोना है और वहां इतना खून का प्रवाह है कि तंतु एकदम शिथिल नहीं हो सकते और सो नहीं सकते।प189ासन में बैठने की जो प्रक्रिया शुरू हुई वह इसीलिए हुई कि रीढ़ पृथ्वी के साथ नब्बे का कोण बनाए, तो सबसे कम संभावना है तंद्रा के उतरने की। और जब भी तुम्हें लगे कि तंद्रा आने लगी, पहली ही उसकी पगध्वनि सुनाई पड़े, तो बुद्ध ने कहा : उठ जाना, खड़े हो जाना, चलने लगना। चार कदम आगे देखते हुए धीरे-धीरे चलना और अब चल कर ही ध्यान करना। तो बुद्ध ने ध्यान की दो विधियां दीं : बैठकर ध्यान करना और चंक्रमण, चल कर ध्यान करना। जब तुम्हें लगे तंद्रा दूर हट गई, फिर बैठ जाना।अगर तुम बोधगया के मंदिर गए हो, तो जिस बोधि-वृक्ष के नीचे बुद्ध को ज्ञान उपलब्ध हुआ उसी के पास वह छोटा-सा पथ है, जिस पर पत्थर लगा दिए हैं, जिस पर बुद्ध चंक्रमण करते रहे। वृक्ष के नीचे बैठ जाते, जब तंद्रा उतरने लगती तो उठ आते और चंक्रमण करते। चंक्रमण चलने की एक विशेष प्रक्रिया का नाम है। कहीं जाने के लिए तो चल नहीं रहे, इसलिए तेजी से नहीं चलना है, बहुत आहिस्ता चलना है। इतनी तेजी से चलोगे तो कहीं ध्यान का जो तारतम्य बन रहा है, वह टूट न जाए। जैसे कि कोई भरी हुई मटकी सिर पर लेकर चलता हो, तो फिर तेजी से नहीं चल सकता; तेजी से चलेगा तो मटकी छलक जाए। और अगर मटकी में अमृत भरा हो, तब तो फिर बहुत सम्हल कर चलेगा और ध्यान की मटकी में अमृत ही भरा है। बहुत सम्हल कर आहिस्ता-आहिस्ता एक-एक पैर उठाकर. . .कोई मंजिल तो है नहीं, कहीं जाना तो नहीं है, मंजिल यही है कि भीतर जागे रहना है। चित्त शून्य हो, निर्विचार हो, और जागरूकता का दीया जले। प्रेम की वर्षा होगी। फिर बूंदा-बांदी होगी, परमात्मा उतरेगा तुममें। उसके पग-घुंघरू जल्दी ही तुम्हें सुनाई पड़ने लगेंगे। उसकी बांसुरी बजेगी। वह निश्चय आता है, वह तुम्हारे द्वार पर थाप देगा। दूसरा रास्ता है भक्ति का। ध्यान के रास्ते पर अपने को जगाना है, होश से भर लेना है। जैसे बस मैं ही हूं और कुछ भी नहीं। सारा अस्तित्व खो जाए, सिर्फ भीतर स्वयं का अस्तित्व जगमगाता हुआ प्रज्वलित रह जाए—एक लपट की भांति—ध्यान। और भक्ति ठीक इससे उलटी है। तुम बिलकुल डूब जाओ। सारा अस्तित्व बचे, तुम न बचो। वृक्ष हों, पहाड़ हों, पर्वत हों, चांद-तारे
हों; मगर तुम न बचो, तुम बिलकुल लीन हो जाओ। जैसे बूंद सागर में खो जाए, जैसे सूरज की किरण पाते ही,

ओस की बूंद भाप बन जाए, आकाश में उड़ जाए। ऐसे अपने को डुबा दो—अस्तित्व के सौंदर्य में, अस्तित्व की गरिमा में, इस अस्तित्व के विराट नृत्य में, इस महोत्सव में, अपने को डुबा दो। जरा भी दूर-दूर नहीं। जरा भी फासला नहीं। एक इंच की दूरी न बचाओ। इसमें ऐसे मगन हो जाओ, ऐसे लीन हो जाओ, जैसे तुम हो ही नहीं! सब है, तुम नहीं हो!ध्यान का अर्थ है : मैं हूं और कुछ भी नहीं। और भक्ति का अर्थ है : तू है, मैं बिलकुल नहीं। ये विपरीत दिखाई पड़ने वाले दो मार्ग एक ही जगह ले आते हैं। क्योंकि जब तू नहीं है, तो मैं बच नहीं सकता। ज्यादा देर नहीं बच सकता। बिना तू के मैं कैसे बचेगा? तू ही तो मैं की परिभाषा बनता है। तू ही से तो मैं की सीमा बनती है, और इसी तरह जब मैं नहीं हूं, तू ही है—तो तू भी ज्यादा देर नहीं बचेगा। क्योंकि मैं से ही तू की सीमा बनती है। जब मैं ही न रहा तो कौन तू! अगर मैं न रहे तो तू मिट जाता है; अगर तू न रहे तो मैं मिट जाता है। ये दोनों ही साथ-साथ जीते हैं और साथ-साथ मरते हैं। तुम एक को मिटा दो, दूसरा अपने-आप मर जाता है। और जहां न मैं बचा न तू बचा, वहीं यह घटना घटती है : 'भींजे चुनरिया प्रेम-रस बूंदन।' फिर चुनरिया भीगने लगती है, तुम फिर दुल्हन हो गए। फिर तुम्हारी भांवरें पड़ गयीं। कबीर ने कहा हैः मैं तो राम की दुलहनिया। फिर तुम चुनरिया ओढ़ कर चल पड़े। उसके मंदिर की सीढ़ियां चढ़ने लगे। किसका अभाव मानस में सहसा शशि-सा आ चमका? है क्या रहस्य, बतला दे कोई इस अंतर्तम का! इन सरल तरल नयनों में किसकी उज् ज्वल छवि छाई? किसने मेरे प्राणों में अपनी तसवीर बनाई?
'जलजात' हृदय का मेरे कोई 'अज्ञात' खिलाता। मेरे जीवन के रवि का कुछ पता नहीं मिल पाता : संध्या के सतम हृदय में कैसा प्रभात-सा आया? किसकी किरणों ने छूकर प्राणों को आज जगाया? कोई अज्ञात तुम्हारी हृदय-वीणा को छेड़ देगा। कोई अदृश्य अंगुलियां तुम्हारी वीणा के तारों में टंकार उठा देंगी। कोई अदृश्य किरण तुम्हारे भीतर के कमल को खिला जाएगी। कोई अदृश्य रूप तुम्हें अपूर्व सौंदर्य दे जाएगा। कोई संगीत तुम पर बरसेगा। गीत-गीत तुम्हारे रोएं में भर जाएंगे। तुम्हारा रोआं-रोआं नृत्यमग्न हो उठेगा।

'आरत साज के चली है सुहागिन पिय अपने को ढूंढन।' और जब ऐसा हो जाए, तभी आरती सजती है। जब प्रेम की बूंदा-बांदी होने लगे, तो आरती सजती है। जब अषाढ़ के मेघ घिर जाएं तुम्हारी अंतरात्मा में, बिजलियां कौंधने लगें, लगे अब हुई वर्षा, अब हुई वर्षा—तभी आरती सजती है। अभी तो तुम आरती क्या सजाते हो, अपने को धोखा देते हो, औरों को धोखा देते हो। तुम्हारी आरती थोथी है अभी।तुम्हारा सिर भी मंदिर में झुकता है तो झूठा। तुम्हारा अहंकार तो अकड़ा खड़ा रहता है। तुम्हारी आरती उतरती रहती है, मगर तुम्हारे प्राणों में नृत्य नहीं है, नाच नहीं है, गीत नहीं है, गान नहीं है। तुम्हारी आंखों में कोई रस-विमुग्धता नहीं है। गए हो एक कृत्य पूरा करने। गए हो, क्योंकि जाना चाहिए,
एक कर्तव्य है। क्योंकि और भी लोग जा रहे हैं तो तुम भी गए हो। क्योंकि न जाओ तो लोग समझते हैं अधार्मिक हो। और जाओ तो लोग समझते हैं धार्मिक हो। और धार्मिक होना, कम से कम दिखलाना कि तुम धार्मिक हो, कई अर्थों में काम का है, कई अर्थों में उपयोगी है। इसकी सामाजिक उपादेयता है।

'आरत साज के चली है सुहागिन पिय अपने को ढूंढन।' जब प्रेम की बूंद तुम पर बरस जाती है, तो तुम सुहागिन हो गए। वह बूंद क्या हुई, जैसे सुहाग से तुम्हारी मांग भर गई। और तभी सच्ची खोज शुरू होती है। फिर खोज जिज्ञासा मात्र नहीं, कोई बौद्धिक खुजलाहट नहीं है। फिर खोज केवल प्रश्न की नहीं है। फिर खोज एक जीवंत अर्थ रखती है। फिर तुम सब कुछ गंवाने को राजी हो सकते हो, सब कुछ दांव पर लगा सकते हो; यह सिर भी जाए तो दे सकते हो। 'आरत साज के चली है सुहागिन पिय अपने को ढूंढन।' शुचि नाम न जाने किसका नव-रश्मि नित्य लिख जाती। वह भाषा मुझे न आती जो मैं उसको पढ़ पाती। किस के चरणों पर अविरल आंखें हैं अर्घ्य चढ़ातीं? कि मादक मोहक छवि के मैं नित्य गीत हूं गाती?
स्वप्नों में आ, क्यों 'कोई' चुपचाप चला जाता है! बुझते 'जीवन-दीपक' को भर 'स्नेह' जला जाता है! किस 'महालोक' से आता, किस महालोक को जाता? किस 'स्वर्ण-सदन' में मेरा रहता है भाग्य-विधाता? किसका

अदृश्य कर नभ को प्रति दिन चित्रित कर जाता? किसका कर दिन-रजनी का यह अविरत चक्र चलाता? है क्या रहस्य, क्या जाने, इस विस्तृत अगम गगन का? वह मादक देश कहां है, जीवन के 'जीवन-धन' का? जब बूंद तुम पर गिरती है—पहली बूंद प्रीति की—तो फिर उस सागर को खोजने की अभीप्सा जगती है, जहां से इस बूंद का आगमन हुआ है। जब पहली किरण तुम्हारे आंगन में नाचती है, तो तुम सूरज की तलाश पर निकलते हो। जब पहली सुगंध तुम्हारे नासापुटों को भर देती है, तो
तुम उस उपवन की तलाश में चलते हो, जहां ये फूल खिले हैं। नहीं वह मंदिर में है, नहीं वह मस्जिद में, नहीं काबा में नहीं काशी में, तुम्हारे काबा भी तुम्हारे बनाए हुए; तुम्हारे मस्जिद, तुम्हारे मंदिर, तुम्हारे काशी, तुम्हारे कैलाश, सब तुम्हारे मानसिक निर्माण हैं। वह है, तो तुम्हारी बनायी हुई वस्तुओं में नहीं। उसे कहीं और खोजना होगा। उसे खोजना होगा प्रकृति में। उसे खोजना होगा उसकी ही सृष्टि में। तुम्हारा सृजन तो सब खेल-खिलौने हैं। 'आरत साज के चली है सुहागिन पिय अपने को ढूंढन। काहे की तोरी बनी चुनरिया, काहे को लगे चारों फूंदन।।' कबीर कहते हैं: यह चुनरिया कैसे बनी? इस चुनरिया के ताने-बाने कैसे बुने गए हैं? और चारों तरफ फूंदन लटके हैं! 'पांच तत्व की बनी चुनरिया नाम के लागे फूंदन।' पांच महा तत्वों से बनी है यह देह। यही है हमारी चुनरिया। इसी के भीतर छिपी है हमारी आत्मा। और इस पर जो फूंदन लगे हैं, इस पर जो सौंदर्य है, इस पर जो गरिमा है, इसमें जो जीवन की आभा है, इसके चारों तरफ जो आभा का एक लोक है—वह उस नाम के कारण है, परमात्मा के कारण है।ऐसे तो सब मिट्टी है, लेकिन मिट्टी में जीवन है। जीवन उससे है। पांचों तत्व, तो तुम मुर्दा हो जाओ तो भी मौजूद होंगे। कोई मर जाता है, तो भी पांचों तत्वों में से कुछ कम नहीं हुआ। वजन उतना का उतना है, मिट्टी उतनी की उतनी है। सब उतना का उतना है।फिर क्या खो गया?वे चार फूंदन खो गए। वह जो परमात्मा ने जोड़ा था चारों दिशाओं से अपने को, वह जो चारों द्वारों से तुममें प्रवेश कर रहा था—वह अब प्रवेश नहीं कर रहा है। उसका साथ छूट गया, उसका हाथ छूट गया।
'पांच तत्व की बनी चुनरिया, नाम के लागे फूंदन। चढ़िगे महल खुल गई रे किबरिया दास कबीर लागे झूलन।।' यह वचन अति प्यारा है। कबीर कहते हैं: 'चढ़िगे महल'. . .महल कहते हैं तुम्हारी उस आंतरिक अंतिम अवस्था को, जहां सहस्त्र-दल-कमल खुलता है, जहां समाधि उपलब्ध होती है। बुद्ध की भाषा में निर्वाण, महावीर की भाषा में कैवल्य, कबीर की भाषा में महल। महल, क्योंकि तुम सम्राट हो जाते हो उस दिन; उसके पहले तो भिखारी हो।'चढ़िगे महल. . .'। जैसे ही यह पता चल गया कि ये पांचों तत्वों से मिलकर तो बनी है यह देह, लेकिन असली यह बात नहीं है, यह मेरा असली होना नहीं है, मेरा असली होना तो राम के नाम से जुड़ा है—जिस दिन यह स्मृति आ गई, यह सुरति जग गई, उसी दिन: 'चढ़िगे महल खुल गई रे किबरिया'. . .और खुल गया झरोखा!. . .'दास कबीर लागे झूलन'! और फिर जो मस्ती छाती है, उतरती ही नहीं। कबीरदास कहते हैं कि फिर तो जो झूलना शुरू हुआ वह जो नाच शुरू हुआ, वह जो नृत्य शुरू हुआ, वह बंद ही नहीं होता है, झूलता ही रहता हूं, मदमस्त ही हूं! मैं समझ नहीं पाया हूं अब तक यह रहस्य मरने से क्यों सारी दुनिया घबराती है, क्यों मरघट का सूनापन चीखा करता है, जब मिट्टी मिट्टी से निज ब्याह रचाती है।
फिर मिट्टी तो मिटती भी नहीं कभी भाई! वह सिर्फ शक्ल की चोली बदला करती है, संगीत बदलता नहीं किसी भी सरगम का केवल गायक की बोली बदला करती है। पर कहता है अस्तित्व जिसे संसार सकल उसकी सत्ता तो सचमुच एक भुलावा है, कर्ता को नहीं, जन्म कृति का ही होता है, केवल कृतित्व जग जीवन का पहनावा है। सूरज से प्राण, धरा से पाया है शरीर, ऋण लिया वायु से है हमने इन सांसों का,
सागर ने दान दिया है आंसू का प्रवाह, नभ ने सूनापन विकल विधुर उच्छवासों का। जो जिसका है उसको उसका धन लौटाकर मृत्यु के बहाने हम ऋण यही चुकाते हैं, इसको ही कोई कहता है अभिशाप-ताप वरदान समझ कुछ इस पर खुशी मनाते हैं। जो हंसने की है बात न यूं उस पर रोओ गीला मत करो आंसुओं से अपना आंचल, है पंथ पुकार रहा, जल्दी दो विदा मुझे बांध लो गांठ में मानस की सारी हलचल।

किसके रोने से कौन रुका है कभी यहां जाने को ही सब आए हैं सब जाएंगे, चलने की तैयारी ही तो बस जीवन है कुछ सुबह गए, कुछ डेरा शाम उठाएंगे। संध्या को जब सूरज ढलता है पश्चिम में तब कितने फूल बाग में मुरझा जाते हैं, जब सुबह सिसककर चांद कहीं सो जाता है तब कितने आंसू धरती पर उग आते हैं! पर ठहरा सूरज कभी? कभी क्या चांद रुका? क्या थमा समय कोई घर-द्वार बसाने को? आने से पहले कौन गया है नहीं यहां

जाने से पहले आया कौन बुलाने को? आता है एक रोज मधुवन में जब वसंत तृण तृण हंस उठता कली कली खिल जाती है, कोयल के स्वर में भर जाती है नई कूक कोंपल पेड़ों पर पायल नयी बजाती है। पर जब तक बने सुहागिन जग की सुंदरता सिंदूर चुराकर सब वसंत चल देता है, लुट जाता है जीवन-बगिया का सब सिंगार वैधव्य समान विषाद करवटें लेता है।

मिट्टी में लेटी कली-कली तब कहती है इस तरह लूटना था तो क्यों यह रूप दिया? कोयल चिल्लाती—जब कि रुलाना ही था फिर क्यों मेरे सोए स्वर को गीत अनूप दिया? धरती की राजकुमारी फूट बिलखती है, 'कुछ देर अभी तो और पास प्रियतम! ठहरो, है पूरी तरह खिला भी नहीं अभी यौवन, कुछ देर अभी तो और कपोलों पर लहरो।' पर अट्टाहस कर ऋतुपति उत्तर देता है मैं नहीं ठहरने को—जाने को आया था, तुझको तेरी असली तस्वीर दिखानी थी

इसलिए तुझे यह नकली रूप उढ़ाया था। यह जो हमने ओढ़ रखा है रूप देह का, यह जो चदरिया, यह जो चुनरिया हमने ओढ़ रखी है, यह हमारा असली होना नहीं है।पर अट्टाहस कर ऋतुपति उत्तर देता है मैं नहीं ठहरने को—जाने को आया था, तुझको तेरी असली तस्वीर दिखानी थी इसलिए तुझे यह नकली रूप उढ़ाया था। असली को दिखाना हो तो नकली के साथ ही दिखाया जा सकता है। जैसे हम ब्लैक-बोर्ड पर सफेद खड़िया से लिखते हैं। सफेद दीवाल पर भी सफेद खड़िया से लिखा जा सकता है, लेकिन पढ़ना मुश्किल होगा, पढ़ना असंभव ही होगा। सफेद कागज पर लिखते हैं तो काली स्याही से लिखते हैं। विपरीत से ही अनुभव हो सकता है।तुम्हारे भीतर शाश्वत है। उसका अनुभव कराने का एक ही उपाय है कि तुम्हें एक चुनरिया दी जाए जो क्षण भंगुर है। तुम्हारे भीतर अमृत है। तुम्हें एक चुनरिया दी जाए, जो अब मरी तब मरी तो ही तुम्हारे भीतर के शाश्वत की प्रतीति इस परिप्रेक्ष्य में हो सकती है।इसी संदर्भ में हम अमृत को जान सकते हैं। मृत्यु के बिना अमृत को जानना बहुत

मुश्किल है, असंभव है। अंधेरे के बिना प्रकाश को कैसे जानोगे? दिन के बिना रात नहीं, रात के बिना दिन नहीं। सौंदर्य के बिना कुरूपता कैसे पहचानोगे? कुरूपता के बिना सौंदर्य की क्या पहचान होगी? इस द्वंद्व को ठीक से समझ लो, तो फिर जीवन में इतनी उलझन नहीं रह जाती; सब साफ-सुथरा होने लगता है; पहेली सुलझने लगती है। 'चढ़िगे महल खुल गई रे किबरिया दास कबीर लागे झूलन।' 'मैं अपने साहब संग चली।'. . .और जब झूलने लगोगे, जब अनुभव हो जाएगा, अमृत का, जब शाश्वत से थोड़ी पहचान होगी, परिचय होगा—तो फिर यह घटना घट सकती है: 'मैं अपने साहब संग चली।' फिर तुम्हारा संग-साथ उस एक से ही हो जाता है: अनेक से टूट जाता है। फिर तुम भीड़ में भी रहो, बाजार में भी रहो, तो भी याद उसकी, सुरति उसकी। 'हाथ में नरियल मुख में बीड़ा, मोतियन मांग भरी। लिल्ली घोड़ी जरद बछेड़ी, तापै चढ़ि के चली। नदी किनारे सतगुरु भेंटे, तुरत जनम सुधरी। कहै कबीर सुनो भाई साधो, दोउ, कुल तारि चली।' कबीर कहते हैं कि दोनों कुलों को तार दिया। एक कुल है क्षण भंगुर का और एक कुल है शाश्वत का। इन दोनों से मिलकर हम बने हैं—मिट्टी से और अमृत से।'नदी किनारे सतगुरु भेंटे'. . .। यह जो जीवन की बहती हुई सतत धारा है, इसके किनारे ही सतगुरु से मिलना हुआ।

'नदी किनारे सतगुरु भेंटे, तुरत जनम सुधरी।' और कबीर कहते हैं: क्षण-भर नहीं लगता। सतगुरु से मिलन हो जाए तो तुरंत जीवन में क्रांति घट जाती है। लेकिन मिलन? मिलन होकर भी कहां हो पाता है! क्योंकि तुम

दूर-दूर खड़े रहते, बचे-बचे खड़े रहते। तुम जरूरत से ज्यादा होशियार हो। तुम गणित में बहुत निपुण हो। तुम अपने को बचा-बचा कर चलते हो। और यह रास्ता उनका है, जो जुआरी हैं; जो बचा-बचा कर नहीं चलते।सदगुरु से संबंध तो उन्हीं का हो सकता है जो दीवाने हो उठते हैं, जो मतवाले हो उठते हैं। यह होशियारों का काम नहीं, दीवानों का काम है। और इस दुनिया के ऊपर दीवानों का बहुत बड़ा ऋण है। अगर दीवाने न होते तो इस दुनिया में कबीर, और दादू, और मलूक, ऐसे अदभुत लोग नहीं हो सकते थे। अगर इस दुनिया में सभी दुकानदार होते तो यह दुनिया बड़ी दीन होती। इस दुनिया में कुछ लोग हुए जो दुकानदार नहीं थे; कुछ लोग हुए, जिन्होंने उस परम सत्य के लिए सब कुछ चढ़ा दिया। 'नदी किनारे सतगुरु भेंटे, तुरत जनम सुधरी। कहै कबीर सुनो भाई साधो, दोउ कुल तारि चली।' कबीर कहते हैं : मैंने तो अपने दोनों कुल सुधार लिए। जब कोई व्यक्ति परम ज्ञान को उपलब्ध होता है तो उसकी चेतना पर ही अमृत नहीं बरसता, उसकी मिट्टी तक अमृत में सराबोर हो जाती है। उसकी देह में भी एक गंध आ जाती है—परलोक की।यह तो तुम जानते हो कि हम सदगुरुओं के शरीर को जलाते नहीं। सिर्फ इसी कारण नहीं जलाते। सदगुरुओं के शरीर को हम बचाते हैं। तिब्बत में, इजिप्त में तो हजारों साल पुराने सदगुरुओं की देहें अब भी सुरक्षित हैं। इस देश में भी हम उनकी समाधि बनाते हैं; उनको जलाते नहीं। क्योंकि उनकी देह में परमात्मा का संस्पर्श हुआ है, यह देह जलाने के लिए नहीं। जलाते तो हम देह को इसीलिए हैं कि मिट्टी है, मिट्टी में मिल जाने दो। अब इस देह को क्या बचाना है!

बुद्धों की अस्थियों को हम सम्हाल कर रखते हैं। अभी तक बुद्ध की हड्डियों के छोटे-छोटे टुकड़े अलग-अलग जगह सम्हाल कर रखे गए हैं। लंका में जो प्रसिद्ध मंदिर है कैंडी का, वहां बुद्ध का एक दांत सुरक्षित है। पच्चीस सौ वर्ष बीत गए, किसलिए इस दांत को सुरक्षित रखे हो? लेकिन जिन लोगों के पास देखने की क्षमता है, वे उस दांत में आज भी उन किरणों को विकीर्णित होते देखेंगे। वह दांत साधारण नहीं है। ऐसे तो साधारण ही है। वैज्ञानिक परीक्षा में तो साधारण ही उतरेगा। लेकिन उसकी असाधारणता केवल उनको उपलब्ध हो सकती है जो ध्यान की आंख से देखने में समर्थ हैं। तब वह दांत साधारण दांत नहीं है; वह दांत गवाही है एक अपूर्व घटना का।हमने उस वृक्ष को बचा कर रखा है जिसके नीचे बुद्ध को ज्ञान हुआ। क्यों? क्योंकि जब यह परमज्ञान की घटना घटती है तो इतना आलोक का विस्फोट होता है कि वह वृक्ष भी पी गया होगा। और यह जानकर तुम चकित होओगे कि वट वृक्ष अब वैज्ञानिक कहते हैं कि प्रतीत होता है सारे वृक्षों में सर्वाधिक बुद्धिमान वृक्ष है। वैज्ञानिक के कहने के तो दूसरे कारण हैं। मनुष्य की बुद्धि के लिए जो तत्त्व सर्वाधिक जरूरी है, जिस रसायन के खो जाने से मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह रासायनिक तत्त्व वट वृक्ष में सर्वाधिक पाया जाता है, किसी और वृक्ष में उतना नहीं। वट वृक्ष थोड़ा अनूठा है। वट वृक्ष की जाति के सारे वृक्ष अनूठे हैं—पीपल और सारे वृक्ष, जो वट वृक्ष की जाति के हैं। यह कुछ आश्चर्य नहीं है कि भारत में पीपल की और वट की पूजा सदियों से चली है। उनमें कुछ खूबियां हैं।यह कुछ आश्चर्य नहीं है कि बुद्ध को वट वृक्ष के नीचे जब ज्ञान उपलब्ध हुआ हो तो उनकी विकीर्णित किरणें वह वृक्ष भी पी गया हो, आत्मसात कर लिया हो उसने। इसलिए उस वृक्ष को बचाने की कोशिश की गई। मूल वृक्ष को तो हिंदुओं ने नष्ट कर दिया बोधगया में, लेकिन अशोक ने उसकी एक शाखा लंका भेजी थी, जो वहां लगाई गई, फिर उसकी एक शाखा लाकर वापिस भारत लगाई गई। इसलिए उस वृक्ष की संतान अब भी मौजूद है। ठीक मूल वृक्ष तो नहीं, लेकिन उसका एक अंश अब भी मौजूद है।और अब भी पृथ्वी पर जहां-जहां कभी कोई बुद्ध हुआ है, वहां-वहां कुछ न कुछ गवाही मौजूद हो जाती है। पत्थर भी, चट्टानें भी आत्मसात कर लेती हैं उस अपूर्व घटना को; उस रोशनी की कोई झलक उनमें सदा के लिए निर्मित

हो जाती है।कबीर ठीक कहते हैं कि दोनों कुल को तार कर जा रहा हूं। आत्मा तो चली ही परमात्मा की तरफ, लेकिन जिस देह में उस आत्मा का वास था वह देह भी धन्य हो गई। 'कबीर भाटी कलाल की, बहुतक बैठे

आइ।' मैं तो बहुत बार कहता हूं कि यह मंदिर नहीं, मधुशाला है। कबीर की बात सुनते हो! मधुशाला तो फिर भी मैं थोड़ा अच्छा शब्द उपयोग करता हूं। कबीर कर रहे हैं : 'कबीर भाटी कलाल की!' यह तो कलाल की भट्टी है।. . .'बहुतक बैठे आइ।' बहुत-से आकर बैठ जाते हैं। मगर बैठने से कुछ भी न होगा। 'सिर सौंपे सोई पीवै'. . .। जो अपना सिर देगा वही पीने का हकदार हो सकता है।. . .'नहीं तो पिया न जाइ।' बिना सिर दिए कोई पी नहीं सकता। एक ही कीमत है जो चुकानी पड़ती है। 'हरि-रस पीया जाणिये, जे कबहूं न जाइ खुमार।' और पहचान क्या है? साधारण शराब में और इस शराब में एक ही पहचान है। साधारण शराब का नशा उतर जाता है—अभी चढ़ा अभी उतरा। क्षण भंगुर है। बरसाती नदी है। और 'हरि-रस पीया जाणिये, जे कबहूं न जाइ खुमार।' एकबार पी लिया तो फिर खुमार उतरता ही नहीं; फिर लाख उतारना चाहो तो उतरता नहीं; फिर सारी दुनिया विरोध करे तो उतरता नहीं; मंसूर को सूली भी दे दी तो भी खुमार नहीं उतरा। जीसस को मार डाला, खुमार नहीं उतार सके। चलने को तो सांसें सालों तक चलती हैं, यात्रा-क्रम भी प्रतिपल ही बढ़ता जाता है, ￼ पर मैंने तो देखा है सौ-सौ सालों में मुश्किल से कोई एक दिवस जी पाता है। हैं पढ़े न मैंने मजहब के पोथे मोटे, संचित न कर सका किसी वाद का तनिक ज्ञान, मंदिर-मसजिद की ओर न मेरी दृष्टि गयी, काबा-काशी का मुझे न आया कभी ध्यान। संध्या-नमाज का राज न अब तक जान सका, इसलिए वक्त उसमें न किया बर्बाद कभी, अपने जीवन की सूनी घड़ियों को मैंने, है किया न तर्क-विवादों से आबाद कभी। ￼ मैं वही पढ़ा जो मुझे पढ़ाया जीवन ने, हूं सीख सका वह गया सिखा जो समय-काल, मैंने बस मानवता को पूजा जीवन में, बस सदा आदमी के आगे यह झुका भाल। क्या सत्य असत्य, नहीं मैंने कुछ भी सोचा, उर-शांति मिली जिसको पा, उसको सत्य कहा, जो आकर जीवन में आंसू सा चला गया, मेरी ममता ने केवल उसे असत्य कहा। फिर और दूसरा भी मेरा यह अनुभव है, जो सत्य, वही जीवन में थिर रह पाता है, जो मिथ्या है, भ्रम है, असत्य है, क्षण ￼ भर में, हलचल सा आता है, जल सा बह जाता है। चाहे वह मिट्टी, सोना हो, आंसू मोती, चाहे वह प्रीति, घृणा हो, चाहे सच, सपना है सत्य वही केवल इस जग में, जीवन में, आखिरी सांस तक साथ निभाए जो अपना। सत्य की परिभाषा यही है कि जो टिके; जो सदा टिके; समय जिसे बदल न पाए, रूपांतरित न कर सके; जो क्षणभंगुर न हो। सत्य शाश्वत ही हो सकता है। खोजो ऐसा खुमार, ऐसी खुमारी, ऐसा नशा—कि चढ़े तो चढ़े, उतरे नहीं। और ऐसा नशा चढ़ जाए तो तुम भी चढ़ सकोगे उस महल में— 'चढ़िगे महल खुल गई रे किबरिया, दास कबीर लगे झूलन।' 'हरि-रस पीया जाणिये, जे कबहूं न जाइ खुमार।। मैंमंता घूमत रहे नाहीं, तन की सार।।' मदमाता घूमता है फिर व्यक्ति; तन का बोध ही नहीं रह जाता, खयाल ही नहीं रह जाता।￼

सबै रसायण मैं किया, हरि-सा और न कोई। तिल इक घट मैं संचरै, तो सब कंचन होइ।।' कबीर कहते हैं : रसायनशास्त्र को मैंने खूब झांक डाला—अल्केमी —सब देख डाला रसायन-शास्त्र; लेकिन हरि जैसा और कोई रसायन नहीं है।'तिल इक घट मैं संचरै'. . .उस परमात्मा का एक जरा-सा अंश भी, एक बूंद भी तुम्हारे भीतर घट में उतर जाए. . .'तो सब कंचन होइ'. . .तो मिट्टी भी सोना हो जाती है। तो सब खालिस सोना हो जाता है।सारी दुनिया के कीमियागर सदियों से खोजते रहे हैं कोई तरकीब, कोई रसायन, जिससे लोहा सोना हो जाए। लेकिन असली रसायन वह है जो तुम्हारी भीतरी मिट्टी को सोना कर दे; जो तुम्हारे भीतर की मिट्टी को अमृत का स्वाद दे दे; जो तुम्हारे भीतर के क्षण-भंगुर को शाश्वत की छाया दे दे; जो तुम्हारे भीतर जन्म-मृत्यु का निरंतर चलता हुआ प्रवाह है, उसको ठहरा दे—और ऐसी मस्ती से भर जाए कि कोई छीन न सके उस मस्ती को; कोई चुरा न सके उस मस्ती को। तलवार उसे काट न सके। नैनं छिंदति शस्त्राणि! आग उसे जला न सके। 'नाहं दहति पावक :'। मृत्यु उसे मिटा न सके। तो ही जानना कि जीवन सार्थक हुआ, अन्यथा यूं ही जीए, यूं ही मरे; व्यर्थ ही जीए, व्यर्थ ही मरे। सौ-सौ बार चिताओं ने मरघट पर मेरी सेज बिछाई सौ-सौ बार धूल ने मेरे

गीतों की आवाज चुराई लाखों बार कफन में रोकर मेरा तन 137ृंगार किया पर, , एक बार भी अब तक मेरी, जग में मौत नहीं हो पाई।
मैं जीवन हूं, मैं यौवन हूं, जन्म-मरण है मेरी क्रीड़ा, इधर विरह-सा बिछुड़ रहा हूं, उधर मिलन-सा आ मिलता हूं, क्या है यह तूफान, अरे मैं खुद आंधी बन कर चलता हूं। तुम्हें बहुत बार मिटाया गया, बहुत बार बनाया गया; फिर भी तुम्हें याद नहीं आती कि कुछ है तुम्हारे भीतर, जो न बनता है और न मिटता है। बस उसी को खोज लेना धर्म है। उस मूल स्वभाव को पहचान लेना—जीवन की असली खोज है। 'आइ न सकौं तुज्झपै सकूं न तुज्झ बुलाइ।' कबीर कहते हैं : स्वाद तेरा लग गया, चल पड़ी पिया को खोजने, किबरिया खुल गई। दूर तेरा देस है। तेरे दर्शन भी हो गए—दूर देश से, किवड़िया से। लेकिन अब बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई. . .'आइ न सकौं तुज्झपै सकूं न तुज्झ बुलाइ।' न तो आ सकती हूं तेरे पास, न तुझे पुकार सकती हूं। तू दूर बहुत। मेरे पग छोटे, मेरे हाथ छोटे—यात्रा लंबी। 'जियरा यौंही लेहुगे, विरह तपाइ तपाइ।' क्या इरादे हैं? क्या ऐसे ही मेरे प्राण ले लोगे—विरह में तपा-तपा कर? 'यहु तन जालौं मसि करूं, ज्यूं धूवां जाइ सुरग्गि।' कहो तो इस शरीर को जला कर ऐसा कर दूं—धुएं जैसा, क्योंकि धुएं की
एक खूबी है कि वह ऊपर की तरफ उठता है, आकाश की यात्रा पर निकल जाता है। अगर यही मर्जी हो तो यही करूं। धुआं स्वर्ग तक पहुंच जाता है। तो मैं भी धुआं हो जाऊं।प्रेमी सब कुछ मिटाने को तैयार होता है। 'यहु तन जालौं मससि करूं, ज्यूं धूवां जाइ सुरग्गि।' अगर यह मर्जी हो तो यही सही। राख कर दूंगा इस देह को। बन जाऊंगा धुंएं की भांति, उड़ चलूंगा आकाश की तरफ, क्योंकि और तो मुझे कोई पंख दिखाई नहीं पड़ते। 'मति वै राम दया करै, बरसि बुझावे अग्गि।' इतना ही खयाल रखना, बीच में दया करके वर्षा मत कर बैठना, नहीं तो आग बुझ जाए, धुआं न उठ पाए। 'मति वै राम दया करै, बरसि बुझावे अग्गि।' 'यहु तन जालौं मसि करौं, लिखौं राम का नांऊं।' अगर तुम्हारी मर्जी हो तो इस शरीर को मिटा कर स्याही बना लूं और राम-राम लिखता रहूं। क्या करूं? विरह की असहाय अवस्था! 'लेखणि करुं करंक की, लिखी-लिखी राम पठाऊं।' और यह जो देह की ठठरी है, इसकी कलम बना लूं, हड्डियों की कलम बना लूं और उसी से लिख-लिख कर राम-नाम, राम-नाम, राम-नाम. . .अगर यह तुम्हारी मर्जी हो तो इसकी भी तैयारी है।

'इस तन का दीवा करौं. . .या कहो
तो इस तन का दीया बना लूं। . .'बाती मेलूं जीव।' और जीवन की बाती बना लूं। 'लोही सींचौं तेल ज्यूं'. . .और रक्त का तेल बना लूं।. . .'कब मुख देखौं पीव।' मगर एक बात पक्की है : जो चाहो करवा लो, लेकिन अब तुम अपने से दूर न रखो। 'कब मुख देखौं पीव!' अब प्यारे को देखे बिना नहीं रहा जाता। जरा किबरिया खुली। देखा है तुम्हें दूर-दूर, जैसे हजारों मील दूर से कोई गौरीशंकर को देखे—सुबह के सूरज में चमकता हुआ स्वर्ण शिखर जैसा! और फिर वह छवि भूलती नहीं। फिर वह छवि खींचने लगती है।कबीर ठीक कह रहे हैं। विरह-अवस्था के अनुभव की बात कहते हैं। कहते हैं : कहो धुआं हो जाऊं, कहो तो दीया बन जाऊं; क्योंकि देखा मैंने कि दीये की ज्योति आकाश की तरफ उड़ने लगती है। तो लहू का तेल बना दूंगा, जीवन की ज्योति बना दूंगा, शरीर का दीया बना दूंगा; मगर अब तुम से मिलकर रहूंगा। अब कोई उपाय और नहीं। अब इस द्वार से तुम मुझे हटा न सकोगे। 'कै बिरहीन कूं मींच दे, कै आपा दिखलाई।' कबीर कहते हैं : सीधी बात साफ तुम से कह देता हूं। या तो मुझे मिटा डालो. . .'कै बिरहिन कूं मींच दे'. . .कि मेरी गरदन काट दो, कि मुझे मृत्यु दे दो। तुम्हारे बिना जीने का कोई अर्थ नहीं। तुम्हारे लिए मर जाना भी सार्थक है और तुम्हारे बिना जीना भी व्यर्थ है।'कै बिरहीन कूं मींच दे'. . . कि या तो विरहिन को मार दे, बिलकुल मिटा दे, नेस्तनाबूद कर दे।. . .'कैं आपा दिखलाइ'. . . और या फिर खुद प्रकट हो जा। अब इन दो से और कोई उपाय नहीं। ये दो ही विकल्प हैं। 'आठ पहर का दग्झणां, मौपे सहा न जाइ।' अब यह आठ पहर तक धू-धू कर जलना, कब तक सहूं?यह है अर्चना! यह है पूजा! यह है आरती का थाल! ऐसे कोई होता है भक्त! और तुम क्या करते हो—राम-नाम की

चदरिया ओढ़ ली, तिलक लगा लिया, जनेऊ पहन लिया, बैठे माला फेर रहे हो और आंखें भटक रही हैं सब तरफ। लोग, भगतजी कहने लगेंगे, मगर ऐसे तुम भगवान को न पा सकोगे।अगर सब मिटाने की तैयारी हो तो सब प्रकट हो जाए। बस तैयारी पर्याप्त है। कुछ ऐसा नहीं कि तुम्हें दीया बनना पड़ेगा—मगर तैयारी! कुछ ऐसा नहीं कि तुम्हें धुआं बनना पड़ेगा—मगर तैयारी! तुम्हारी तरफ से सौ प्रतिशत तैयारी होनी चाहिए, तो तुम्हारे ही भीतर वह प्रकट हो जाता है जो बहुत दूर दिखाई पड़ा है। वह जो स्वर्ण-शिखर दिखाई पड़ा है दूर उसके मंदिर का, वह तब तक ही दूर है जब तक तुम अपने को मिटाने को राजी नहीं; जैसे ही तुम मिटने लगे, मिटने की तैयारी बढ़ने लगी, वैसे ही मंदिर करीब आने लगा। जिस घड़ी तुम मिट जाते हो, तुम हैरान होकर देखते वे मंदिर के शिखर तुम्हारे ही अंतरतम में प्रकट हो गए हैं! गायक के अधरों पर है ऐसा एक गीत चुप होकर भी जो युग युग गाया जाता है, मुरझाते उपवन में है ऐसा एक फूल जिसके तन को पतझार नहीं छू पाता है। सांसों के घर में एक सांस ऐसी रहती मरघट का सूना भी न जिसे भर सकता है, मिट्टी की पुतली में है ऐसा एक स्वप्न जिसके कारण इंसान नहीं मर सकता है। वह इस मिट्टी के अंदर बंद मगर फिर भी, तुम क्या, उसको तो काल नहीं पा सकता है, वह जहां जागकर भोर कर चुका है अपना, उस जगह नहीं कोई सूरज जा सकता है। पड़ जाएगा यह चंदा काला वहां, जहां उसके जीवन की रात थकी-सी सोती है, ले सकता थाह नहीं उसकी कोई सागर, जिस सजल सीप का वह अनबींधा मोती है। जिसकी गति उसके फांवों में बंदी अनंत उतना न तेज चल सकता है कोई समीर, जितनी गहरी उसके आंसू की एक बूंद, उतना गहरा संसृति का कोई नहीं नीर। उसकी ऊंचाई के सम्मुख हिमगिरी नगण्य, उसकी नीचाई के सम्मुख नीचा पताल, उसकी असीमता के सम्मुख आकाश क्षुद्र, उसकी विराटता के सम्मुख अति क्षुद्र काल। सौंदर्य सकल यह उसका ही प्रतिबिंब रूप, है स्वर्ग उसी का सुंदरतम कल्पना नीड़ है नरक उसी की ग्लानि-घृणा का गेह-ग्राम, जग की हलचल उसके ही मन की भाव-मीड़। ये सूर्य, चंद्र, उषा, पूषा, नक्षत्र पुंज, उसकी ही कांति ज्योति हे ज्योतित भासमान, यह निशा उसी के नयनों की पुतली, मृदु हास अधर का मधुर ज्योतिवाही विहान। है आंख उसी की बरसा करती बादल से, है उसकी ही मुसकान थिरकती फूलों पर, संगीत उसी का गूंज रहा है कोयल में, हैं बिंधे उसी के स्वप्न नुकीले शूलों पर। वह अणु में बंदी होकर भी है मुक्त सदा, वह जल में रहकर भी जल से है बहुत दूर जलकर भी ज्वाला में न राख बनता है वह, पाषाणों से दबकर भी होता नहीं चूर। और वह शाश्वत, वह सनातन तुम्हारे भीतर मौजूद है। पहले बाहर दिखाई पड़ेगा, क्योंकि हम बहिर्मुखी हैं। पहले सूरज की किरणों में दिखाई पड़ेगा, चांद की चांदनी में दिखाई पड़ेगा फूलों की गंध में दिखाई पड़ेगा, तितलियों के फंखो फर दिखाई फड़ेगा, इंद्रधनुषों में दिखाई पड़ेगा, आकाश में तारों में दिखाई पड़ेगा, वृक्षों की हरियाली में! और तब एक दिन अचानक जिस दिन तुम पूरा-पूरा सौ प्रतिशत दांव पर लगाने को राजी हो जाओगे, तुम उसे अपने अंतरतम में विराजा हुआ पाओगे। तुम उसके मंदिर हो! वह तुम से इंच भर भी दूर नहीं।मगर यह सिर्फ बौद्धिक विचार हो, तो कुछ भी न होगा। यह तुम्हारा अस्तित्वगत अनुभव बनना चाहिए। और इसे अनुभव बनाने का एक ही उपाय है—एक अहर्निश प्यास जलने लगे, दग्ध करने लगे; रोआं-रोआं उत्तप्त हो उठे; श्वास-श्वास उसे पुकारने लगे।जिसे तुम जीवन समझते हो, यह तो मिट जाएगा। इसके पहले कि यह जीवन मिटे, इस जीवन को उस जीवन को पाने की सीढ़ी बना लो, जो कभी नहीं मिटता है। उस शाश्वत को जाने बिना मत जाना, क्योंकि जो उसे बिना जाने गया, फिर-फिर वापस लौट आया है—इसी देह में, इसी चक्कर में, इसी व्यवसाय में, इसी उधेड़-बुन में। कितनी बार तुम आए, कितनी बार तुम गए, बहुत हो चुकी आपाधापी! अब जागो! अब अपने को पहचानो! अपने प्यारे
को पहचानो! उसको जानते ही जीवन के सारे दुःख विदा हो जाते हैं। अमावस अचानक क्षण-भर में पूर्णिमा हो जाती है। उस अनुभव के बिना जो जाता है, उसने अपने मनुष्य होने का ठीक-ठीक उपयोग नहीं किया। मिला

था एक महत अवसर, यूं ही गंवा दिया। कंकड़-पत्थर बीनने में ही गंवा दिया, जब कि सब हीरे तुम्हारे हो सकते थे।प्रभु का राज्य तुम्हारा है और तुम उसे यूं गंवा रहे हो—कूड़े-कर्कट में! चेतो! जितनी जल्दी चेत जाओ उतना अच्छा है। फिर खयाल रखना : सुबह का भूला अगर सांझ भी घर आ जाए तो भूला नहीं कहा जाता है।आज इतना ही। □□□□□□□□□□□□□□□□□□□□□□□□□□□□□

चोदहवां प्रवचन

मधुर मधुर मेरे दीपक जल

प्रश्न-सार

क्या मुहब्बत की घड़ी है आजकल इक सदी इक लमहा है आजकल आरजुओं को अब बरसाएं हम कहां दिल की कलियां खिल रही हैं आजकल दिल की दुनिया आनंद से आबाद है मुस्तकिल रोशनी जल रही है आजकल थ्ऊ-एऊ ् क्या, लौकिक प्रेम ही ईश्वरीय प्रेम में रूपांतरित हो जाता है? समझाने की अनुकंपा करें! मैं प्रेम में मरा जा रहा हूं!

पहला प्रश्न : भगवान!

क्या मुहब्बत की घड़ी है आजकल सदी इक लमहा है आजकल आरजुओं को अब बरसाएं हम कहां,

दिल की कलियां खिल रही हैं आजकल

दिल की दुनिया आनंद से आबाद है

मुस्तकिल रोशनी जल रही है आजकल।

आनंद मोहम्मद! रोशनी तो सदा से जल रही थी। रोशनी से ही तुम बने हो। वही तुम्हारा स्वभाव है। हां, बोध अभी-अभी आया, स्मृति अभी-अभी जागी। भूली-बिसरी याद, पुनः याद आने लगी है।लेकिन जब पहली बार प्रकाश का अवतरण होता है, तो ऐसा ही लगता है जैसे बाहर से आ रहा है, कहीं दूर से आ रहा है। आता है तुम्हारे ही भीतर से, तुम्हारे अंतस्तल से। जब आनंद की वर्षा होती है तो आकाश में नहीं घिरते मेघ, घिरते हैं अंतर-आकाश में। जब सत्य का सूर्य उदय होता है, तो प्राची लाल नहीं होती, तुम्हारा अंतस्तल ही उसके स्वागत में सुर्ख हो उठता है।जो भी महत्त्वपूर्ण है, वह भीतर घटता □ है और जो भी कचरा है, वह बाहर घटता है। कचरा ही बाहर है। हीरे तो भीतर हैं। हीरे तो परमात्मा ने बहुत सम्हाल कर रखे हैं—तुम्हारे अंतस्तल में। तुम भी तो, घर में जो हीरे होते हैं, उन्हें खूब छिपा कर रखते हो; गहरा खोद कर जमीन में, गुप्त किसी को कानोंकान खबर न हो। ऐसे ही परमात्मा ने, जो हीरे हैं वे तुम्हारे भीतर गहरे खोद कर रखे हैं—इतने गहरे कि तुम्हें भी कानों-कान खबर नहीं हुई।सत्य कोई उपलब्धि नहीं है—सिर्फ सुरति है, जैसा कबीर कहते हैं। है सदा से। पर हम भीतर मुड़ते नहीं। जहां नहीं है वहां खोजते हैं और जहां है वहां पीठ किए रहते हैं। इसीलिए एक क्षण में क्रांति घट सकती है। अगर प्रश्न परमात्मा को पाने का होता, तो यात्रा बहुत लंबी थी, अनंत थी; शायद ही कोई पूरी कर पाता; शायद ही कभी कोई परमात्मा को उपलब्ध हो पाता। वह अपवाद होता। लेकिन परमात्मा कोई उपलब्धि नहीं है। परमात्मा तो वही है जो सदा से उपलब्ध है—जिसे तुमने कभी खोया नहीं; जिसे तुम खोना चाहो तो खो सकते नहीं; खोने के लाख उफाय करो तो भी हारोगे, आसफल हो जाओगे। हां, एक काम कर सकते होः भुला सकते हो। गंवा नही सकते, भुला सकते हो। लेकिन जब हम भुला देते हैं, तो करीब-करीब गंवाने जैसा हो जाता है।सदगुरु तुम्हें परमात्मा से नहीं मिलाता। तुम कभी छूटे ही नहीं। इसलिए परमात्मा से मिलाने की बात ही व्यर्थ है। ये तो थोथे गुरु, झूठे गुरु, परमात्मा से मिलाने की बातें करते हैं। सदगुरु तो तुम्हें केवल स्मृति दिलाता है, झकझोर देता है। जैसे कोई नींद में पड़ा हो और कोई आंखों पर ठंडे पानी के छींटे मार दे—बस इतना। ठंडे पानी के छींटे—और आंखें खुल गयीं, और तुम जाग गए! जागरण ठंडे पानी के छींटों से नहीं आया; जागरण तो तुम्हारी क्षमता थी। ठंडे पानी के छींटों ने सिर्फ जो क्षमता सोयी-सोयी थी, खोयी-खोयी थी, भूली-भूली थी, उसके प्रति तुम्हें सजग कर दिया।सदगुरु

परमात्मा से नहीं मिलाता; याद दिला देता है कि तुम परमात्मा हो। तत्त्वमसि! तुम वही हो! इंच भर कम नहीं, रत्ती भर भिन्न नहीं।इसलिए आनंद मोहम्मद! बहुत प्रेम उमगेगा—इतना कि समा न सकोगे। देह बहुत छोटी है। भीतर छिपा प्रकाश बहुत बड़ा है। देह तो बूंद जैसी, और प्रकाश सागर जैसा है। हां, गागर में सागर है। और जब जागोगे, तो गागर को तोड़ कर बहने लगेगा सागर। देह बहुत पीछे पड़ी रह जाएगी; जैसे बीज की खोल पड़ी रह गई और बीज का छिपा

प्राण एक विराट वृक्ष हो गया। बीज को देखकर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कभी कि इसके भीतर इतने विराट वृक्ष का आविर्भाव हो सकता है; इतने फूल लगेंगे, इतने रंग-बिरंगे, इतने फल, इतने पत्ते, इतनी प्रशाखाएं, ऐसी आकाश में दूर-दूर तक फैलेंगी इसकी शाखाएं कि हजारों लोग इसके नीचे विश्राम कर सकें। कि इसकी सुगंध उड़ेगी दूर-दूर, कि हवाएं इससे सुवासित हो उठेंगी! कि पक्षी नीड़ बनाएंगे, कि पक्षी गीत गाएंगे! कि सूरज की किरणें इसके पत्तों से रास रचाएंगी! कौन सोच सकता था बीज को देखकर?तुम्हें देखकर भी कोई नहीं सोच सकता कि परमात्मा छिपा होगा। तुम अभी बीज हो। जरा हिम्मत की और बीज टूटा, खोल पड़ी रह जाती है पीछे। ऐसी ही देह पड़ी रह जाती है पीछे। तुम देह को पार कर फैलने लगते हो।तुम्हारे भीतर तुम से बड़ा प्रेम छिपा है। तुम्हारे भीतर तुम से विराट चैतन्य छिपा है। तुम्हारे भीतर तुमसे अनंत प्रकाश छिपा है। तुम्हारे भीतर इतना बड़ा आकाश है, कि जब पहली दफा तुम उसे देखोगे तो भरोसा न आएगा। सोचोगे—कोई भ्रम तो नहीं हो रहा? मैं किसी स्वप्न में तो नहीं खो गया हूं? कोई सम्मोहित दशा तो नहीं है? मैं किसी कल्पना के जाल में तो नहीं उलझ गया हूं?इसलिए गुरु की जरूरत है उस दिन भी। गुरु की दो बार जरूरत पड़ती है जीवन में। एक बार कि पानी के छींटे मारे आंखों पर; और दूसरी बार, कि जब तुम आंखें खोलकर देखो और अपने से पहली बार परिचय हो, तो तुम्हें आश्वासन दे कि घबराओ मत—यही हो तुम, तत्त्वमसि! मत भय करो! नहीं तो अपनी ही विराटता से भय पैदा होता है। अपनी ही अनंतता से छाती थर्रा जाती है! अपने ही आकाश को देखकर भागने का मन होने लगता है।. . .'इतना बड़ा शून्य सम्हालूंगा कहां? इतनी बड़ी संपदा बचाऊंगा कहां?'कौड़ी-कौड़ी जोड़ने के हम आदी हैं। कौड़ी की भाषा हमें समझ में भी आती है। लेकिन जब अनंत वर्षा होती है, जब छप्पर तोड़ कर उसकी वर्षा होती है, तब हम किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं।इसीलिए तो परमात्मा का पहला संस्पर्श करीब-करीब लोगों को उन्मत्त कर जाता है, विक्षिप्त कर जाता है। ऐसी मादकता से भर जाता हैं कि कहीं रखते हैं पैर और कहीं पड़ते हैं! कहते हैं कुछ, कह जाते हैं कुछ!

करते हैं कुछ, हो जाता है कुछ! जैसे अपने बस के बाहर! जैसे अपना कोई नियंत्रण नहीं। ऐसी ही किसी घड़ी में तो कबीर ने कहा—'होनी होय सो होय'।योग प्रीतम का यह गीत, इस पर ध्यान करना—हर जगह महफिल उसी की है सजी जिंदगी का गीत सुनना हो—रुको बह रही रसधार उसकी सब तरफ इस अमृत का पान करना हो—झुको तुम सुनो संगीत उसका है मुखर बस हृदय में मौन का उल्लास हो तृप्ति का सागर हिलोरें ले रहा प्राण में बस एक पागल प्यास हो नृत्य उसका ही अहर्निश चल रहा हो अगर थिरकन तुम्हारे पांव में

तुम उसी की ज्योति से जगमग हुए जी रहे हो तुम उसी की छांव में देख सकते हो कुंआरी आंख से सब कहीं आनंद-उत्सव चल रहा हो हृदय अभिभूत तो तुम जान लो धड़कनों में बस वही तो पल रहा आनंद मोहम्मद! तुमने हिम्मत की है, साहस किया है। और जो साहस करता है, हिम्मत करता है, उसका दांव व्यर्थ नहीं जाता।आनंद मोहम्मद मुश्किल में पड़े हैं। मुसलमान होकर मेरे संन्यासी होना मुश्किल की तो बात है ही। सूरत जब संन्यासी होकर लौटे, तो और मुसलमानों ने हजार झंझटें खड़ी कर दीं। लोग कहने लगे, तुम हिंदू हो गए। अब मेरा संन्यासी न तो हिंदू है, न मुसलमान है, न जैन है, न ईसाई है। मेरा संन्यासी तो सिर्फ संन्यासी है। संन्यास भी कहीं हिंदू, मुसलमान और जैन होता है! ये भेद-भाव संसार में रखो। ये छोटी-छोटी बातें, संन्यास कहीं इनमें बंधेगा, अटकेगा!लेकिन आनंद मोहम्मद ने फिक्र न ली, अपनी मस्ती में डोलते रहे, गीत गुनगुनाते रहे।. . .तो जो दांव लगाता है, व्यर्थ नहीं जाता। जितनी कीमत चुकाता है, उससे बहुत गुना पाता है।.60 .60

ना कानों सुना ना आंखों देखा

हर जगह महफिल उसी की है सजी
.60 .60 जिंदगी का गीत सुनना हो—रुकोऔर तुम रुके, इसीलिए गीत की पहली कड़ियां तुम्हारे कानों में पड़ने लगीं।.60 .60 बह रही रसधार उसकी सब तरफ.60 .60 इस अमृत का पान करना हो—झुकोऔर तुम झुके, तो तुम मालिक हो गए। जो झुका वह जीता। जो अकड़ा रहा, वह हारा। जीवन का परम गणित बड़ा उलटा है। दुनिया में तो जो अकड़ा रहता है, जितना अकड़ता है, उतना ही जीतता मालूम होता है। यहां तो झुका दुनिया में कोई कि हारा। झुका कि धूल में गिरा। झुका कि लोगों ने उसके सिर को सीढ़ी बनाया। इस दुनिया में तो जो रुका, उसने गंवाया। यहां तो दौड़ चाहिए। अहर्निश दौड़ चाहिए। बिना इसकी फिक्र किए कि कहां जा रहे हो, चले चलो; इतना ही खयाल रहे कि दौड़ धीमी न हो, औरों से तेज हो। न यह पूछने की फुर्सत है, न जानने की, न सोचने की कि कहां जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं? जो इस सोचने में अटका, वह पीछे रह जाता है। सोच-विचार का अवसर कहां है? अवकाश कहां है? यहां दौड़-धाप ऐसी है, कि पहले दौड़ लो, फिर सोच लेंगे बाद में पहुंच कर।लेकिन परमात्मा के जगत में नियम बिलकुल विपरीत है। वहां जो दौड़ा, वह भटका। वहां जो रुका, वह पहुंचा। रुकने का नाम ही ध्यान है। चित्त का चलन रुक जाए। चित्त की गति रुक जाए। चित्त का यह आवागमन, यह सतत चहल-पहल, यह चलता हुआ-रास्ता, यह विचार और वासनाओं की दौड़, यह आपाधापी, यह व्यस्तता, ये कल्पना और स्मृति के जाल—चित्त किसी में न उलझे, रुक जाए, ठहर जाए, पूर्णविराम लगा दें— बस ध्यान हुआ। और जो रुका, वह पहुंच गया। क्योंकि जो रुका वह अपने को देखने से कैसे वंचित रहेगा! जब तक दौड़ रहे हो, आंख किसी और
चीज पर लगी है—धन पर, पद पर, प्रतिष्ठा पर; जब रुकोगे, आंख अपने-आप बंद हो जाएगी। जब दौड़ना ही नहीं, तो बाहर देखना क्या? जब दौड़ना ही नहीं, तो चारों तरफ आंखों को क्यों भटकाना! ये आंखें भी चारों तरफ चंचल भटकती हैं, क्योंकि मन तलाश कर रहा है किस विषय की तरफ दौडूं। अनंत प्रलोभन हैं यहां, सभी तो पाए नहीं जा सकते। दो हाथ हैं, दो पैर हैं, छोटी दौड़ है। छोटा पात्र है, किससे भर लूं? तो मन चारों तरफ टटोल रहा है, किस दिशा में मेरी सफलता होगी? इसीलिए आंखें भटक रही हैं।आंखें चंचल हैं, क्योंकि मन चंचल है। आंखें सबूत हैं मन की चंचलता की। आंखें द्वार हैं, झरोखे हैं। मन रुका, कि आंखें बंद हुइ। मन ठहरा कि आंखों की गति भी गयी, आंखें भी थिर हुइ।और जिसकी आंख थिर हुई, वह अपने भीतर न देखेगा तो और कहां देखेगा? जिसकी आंख बंद हुई, वही क्षमता जो सारे जगत को देखती थी, अपने पर लौटने लगती है। वही रोशनी, जिसमें सारे पदार्थ आलोकित हो रहे थे, अचानक अपने पर गिरती है। और तब मालिकों के मालिक का दर्शन हो जाता है।बह रही रसधार उसकी सब तरफ इस अमृत का पान करना हो—झुको! दुनिया में तो अकड़ना, झुकना मत; टूट जाओ, मगर झुकना मत—लोग कहते हैं। मिट जाओ, मगर झुकना मत। यहां तो संघर्ष है—एक-दूसरे को मिटाने का। मिटाने में मिटना ही पड़ेगा। जो तलवार उठाएगा, वह तलवार से ही गिरेगा। परमात्मा के जगत में, अंतर्जगत में, अंतरलोक में, नियम बिलकुल विपरीत है। वहां झुको। वहां ऐसे मिट जाओ, जैसे हो ही नहीं। और तभी अपनी झोली हीरों से भर पाओगे।उसकी धार तो बह रही है। नदी के तट पर तुम खड़े हो, अकड़े हुए। प्यासे, मगर अकड़े हुए। झुको कैसे! तुम—और नदी
के सामने झुको!तो खड़े रहो अकड़े। नदी कोई छलांग लगाकर तुम्हारी अंजुली में न आ जाएगी। और नदी छलांग लगाकर तुम्हारे कंठ में न उतर जाएगी। नदी को क्या पड़ी। नदी को क्या लेना-देना! जब तुम्हीं झुकने को राजी नहीं— जिसकी प्यास है—तो नदी को भी क्या प्रयोजन! तुमसे नदी जबरदस्ती न करेगी। नदी हिंसा नहीं करेगी। नदी चुपचाप बहती रहेगी। पीना हो तो झुको। बनाओ अंजुली, झुको। भरो हाथ, फिर जी भर कर पियो!बह रही रसधार उसकी सब तरफ इस अमृत का पान करना हो—झुको। आनंद मोहम्मद! तुम रुके भी थोड़े, तुम झुके भी थोड़े। इसलिए यह घड़ी आ गयी। इसीलिए आज तुम कह सकते हो—क्या मोहब्बत की घड़ी है आजकल एक सदी एक लमहा है आजकल आरजुओं को अब बरसाएं हम कहां? दिल की कलियां

खिल रही हैं आजकल दिल की दुनिया आनंद से आबाद है मुस्तकिल रोशनी जल रही है आजकल लेकिन यह अभी शुरुआत है, भूल मत जाना। सिर्फ यात्रा का पहला कदम है। यद्यपि पहले कदम पर भी यात्रा इतनी मधुर होती है कि लगता है आ गयी मंजिल! पहले कदम पर भी आनंद का अनुभव ऐसा गहन होता है! कभी जाना ही नहीं था आनंद। जैसे जन्मों-जन्मों के प्यासे को घूंट भर जल मिल जाए, तो लगता है सब मिल गया।स्मरण रहे, यह अभी बस शुरुआत है। अभी बहुत कुछ होना है। रुकना मत। अभी और भीतर, और भीतर गति करनी है। बुद्ध ने कहा है : चरैवेति, चरैवेति! चले चलो, चले चलो। और गहरे डुबकी मारो। जितनी गहरी डुबकी भीतर होगी, उतने ही बड़े हीरे-मोती हाथ लगेंगे।लेकिन शुभारंभ हो गया है। रात बीत गयी, सूरज उगने के करीब है। प्राची लाली से भर गयी। पक्षी गीत गुनगुनाने लगे। धन्यभागी हो। अड़चनें बहुत आएंगी। बहुत लोग दुश्मनी खड़ी करेंगे। उन सब को मित्र जानना, क्योंकि उनकी सब दुश्मनियां, उनके द्वारा खड़ी की गयी सब अड़चनें, अंततः लाभ पहुंचाती हैं, हानि नहीं। अंततः तुम उन्हें धन्यवाद दोगे। एक दिन तुम उन्हें धन्यवाद दोगे। क्योंकि न करते वे अड़चनें खड़ी, न देते चुनौती, न तुम्हारे जीवन में यह क्रांति हो पाती। जितनी बड़ी चुनौती मिलेगी उतनी ही बड़ी क्रांति हो जाती है। संन्यास चुनौती है। और मेरा संन्यास तो और बड़ी चुनौती है।आमतौर से लोग सोचते हैं, कि मैंने संन्यास को सरल कर दिया। उनकी धारणा बिलकुल गलत है। आम लोग सोचते हैं कि मैंने तो संन्यास को बिलकुल संसारी बना दिया। उनकी धारणा बिलकुल गलत है। पुराना संन्यास सस्ता है। भाग गए, इससे सस्ता और क्या होगा। भगोड़ेपन से सस्ती और क्या बात होती है? भगोड़ापन कायरता का ही दूसरा नाम है। जिसको तुम त्याग कहते रहे हो अब तक, वह पलायन था; पीठ दिखा दी। और पीठ दिखाने वालों को तुम महात्मा कहते रहे। पीठ दिखाने में कोई बहुत बड़ी कला चाहिए? भाग जाने के लिए कोई बहुत बड़ी बुद्धिमत्ता चाहिए? इसीलिए यह कोई आश्चर्यजनक नहीं है, कि तुम्हारे तथाकथित महात्माओं के जीवन में कोई बुद्धि का, प्रतिभा का, मेधा का, लक्षण नहीं दिखाई पड़ता। कोई चमक नहीं, कोई दमक नहीं, कोई कौंध नहीं, कोई धार नहीं। बोथले-बोथले? जंग खायी हुई तलवारें, कि साग-सब्जी भी काटो तो न कटे।पुराना संन्यास सस्ता था। सस्ता था, क्योंकि चुनौतियों से भाग जाता था। जब तुम पत्नी से भागते हो, तो किससे भाग रहे हो वस्तुतः? पत्नी एक चुनौती है। चुनौती है प्रतिपल; जैसे कि पति एक चुनौती है, बच्चे चुनौती हैं, परिवार चुनौती है, समाज चुनौती है। इन सब से भाग गए, बैठ गए जाकर दूर एक गुफा में जहां कोई चुनौतियां नहीं हैं; और तुम सोचते हो तुमने बहुत बड़ा काम कर लिया!मैंने संन्यास को, बीच बाजार में खड़ा कर दिया! जहां सब तरह की चुनौतियां हैं; जहां सब तरफ से पत्थर पड़ेंगे; जहां सब तरफ से अड़चनें आएंगी। और वहां भी तुम्हें धैर्य रखना है, शांति रखनी है, आनंद रखना है, अहोभाव रखना है। जब पत्थर तुम्हारे ऊपर पड़ें, तब भी तुम्हारे प्राणों से धन्यवाद उठता रहे। फिर तुम्हें कोई रोक न पाएगा।आनंद मोहम्मद ने दूसरा प्रश्न भी पूछा है कि 'मैं क्या करूं? और मुसलमान हैं, वे कहते हैं, मैं भ्रष्ट हो गया! हिंदू हो गया! और हजार तरह की अड़चनें डाल रहे हैं।' धन्यवाद दो उनको। वे तुम्हारे मार्ग में, सोचते तो हैं कि पत्थर बन जाएंगे। मगर तुम अगर जरा समझ का उपयोग करोगे, तो पत्थर सीढ़ियां बन जाते हैं। पत्थर और सीढ़ियों में भेद ही क्या होता है? उनको पत्थर बनने दो, तुम सीढ़ियां बना लो। तुम रोज-रोज उनके पत्थरों की सीढ़ियां बना कर ऊपर उठते जाओ। तुम इस सबको सहज भाव से स्वीकार करना। आनंद बहुत घना होगा।अभी मंजिलें और हैं, यह तो पहला ही कदम है। बीच में बहुत पड़ाव भी आएंगे, पड़ावों को भी मंजिल मत समझ लेना। मंजिल तो तभी है जब तुम बचो ही नहीं, सिर्फ आनंद ही आनंद बचे, आनंद को अनुभव करने वाला भी न बचे-तभी समझना कि मंजिल है। जब तक तुम्हें लगे कि मैं हूं, आनंद है, मैं हूं और कैसा महासुख—तब तक जानना, अभी पड़ाव है। जिस दिन अचानक पाओ कि मैं कहां, आनंद ही आनंद है। अनुभोक्ता गया, अनुभव ही अनुभव बचा। अनुभव का सागर लहरें ले रहा है। और खोजे से पता नहीं चलता उसका, जो अनुभव करने निकला था। जो सत्य का साक्षात्कार करने

निकला था वह तो न मालूम कहां खो गया! सत्य है। कबीर कहते हैं : 'हेरत-हेरत हे सखि रह्या कबीर हेराई' निकले थे खोजने, खो गए। जिस दिन ऐसा हो, उस दिन मंजिल आ गयी। अब आगे जाने का उपाय न रहा, क्योंकि अब जाने वाला ही न रहा। नमक का पुतला था, गल गया, घुल गया। सागर की गहराई खोजने चला था, सागर में लीन हो गया। तब तक यात्रा, अंतर्यात्रा या अंतर की डुबकी गहरी करते जाना है।मैं आनंदित हूं। मेरे सारे आशीष तुम्हारे साथ हैं!श्ध्दूसरा प्रश्न : भगवान! सूफी संत अलगजाली ने कहा है—इश्क-मजाजी और इश्क-हकीकी, भिन्न-भिन्न नहीं है; वरन, इश्क-मजाजी इश्क-हकीकी तक पहुंचने की पहली सीढ़ी है। इश्क-मजाजी यानी भौतिक प्रेम, इश्क-हकीकी यानी अभौतिक प्रेम। और इसी संबंध में दो बड़ी रोचक कथाएं भी उन्होंने कही हैं :श्ध्पहली : जुलेखा का यूसुफ से प्रेम हो गया। वह प्रेम इतना घनीभूत हुआ कि उसे कोई आकर यह कह देता कि मैंने यूसुफ को देखा है, तो उसे गले का हार दे देती। उसके पास सत्तर ऊंट हीरे थे। धीरे-धीरे वे सब समाप्त हो गए। वह मात्र युसुफ को याद करती थी। यहां तक कि जब वह आकाश की ओर देखती, तो तारों में यूसुफ का नाम ही उसे दिखाई पड़ता। किंतु विवाह हो जाने के पश्चात उसका प्रेम और व्यापक हो गया और उसने यूसुफ के साथ रहना अस्वीकार कर दिया। उसने यूसुफ से कहा : मैं तुमसे उस समय तक प्रेम करती थी, जब तक ईश्वर को नहीं जानती थी। ईश्वरीय प्रेम ने मेरे हृदय में घर कर लिया है। अब मैं उस स्थल पर किसी दूसरे को नहीं रख सकती।'श्ध्दूसरी कथा : इससे भी प्रभावशाली कथा मजनू की है। वह लैला के पीछे पागल हो गया था। यदि उससे कोई उसका नाम पूछता तो वह कह उठता—लैला! यदि कोई पूछता क्या लैला मर गयी, तो वह कह उठता, लैला तो मेरे हृदय में है, उसकी मृत्यु नहीं हो सकती। मैं ही लैला हूं! एक दिन वह लैला के कूचे से गुजर रहा था, आकाश की ओर उसकी आंखें लगी हुई थीं। किसी ने कहा : 'मजनू! तुम आकाश को न देखो, बल्कि लैला के घर की दीवालों की ओर देखो। शायद वह दिखाई पड़ जाए।' मजनू ने तत्काल उत्तर दिया : मैं तो उन तारों से ही संतुष्ट हूं, जिनका प्रतिबिंब लैला के घर पर पड़ रहा है।'श्ध्भगवान, क्या लौकिक प्रेम ही, ईश्वरीय प्रेम में रूपांतरित हो जाता है? समझाने की अनुकंपा करें!नरेंद्र! अलगजाली, ऐसे तो ठीक ही
बात कह रहे हैं, मगर मैं जो कह रहा हूं, वह थोड़ा एक कदम आगे है। अलगजाली सूफी संत नहीं हैं, सूफी दार्शनिक हैं। अलगजाली दुनिया के बड़े दार्शनिकों में से एक हैं। अरस्तू, अफलातूं ऐसे बड़े-बड़े दार्शनिकों की कोटि में उनका नाम है। लेकिन वे रहस्यवादी संत नहीं हैं। कबीर, फरीद, रूमी, बहाऊद्दीन—ऐसे संत नहीं हैं। उनकी चर्चा बारीक है, और सूक्ष्म है; लेकिन बौद्धिक है, अनुभवगत नहीं है। और इसलिए मैं उनसे राजी भी और राजी नहीं भी। राजी इसलिए, कि इशारा तो अनजाने में उनका ठीक है।जैसे कभी-कभी अंधेरे में भी कोई तीर चलाए और लग जाए। लग जाए तो तीर, न लगे तो तुक्का। अंधेरे में भी तुम तीर चलाते ही रहो तो कभी न कभी लग सकता है। मगर, अंधेरे में चलाए तीर, लग भी जाएं, तो भी तुम तीरंदाज नहीं हो जाते हो, तो भी तुम धनुर्धर नहीं हो जाते हो। और कुछ न कुछ भूल रह जाएगी। और वही भूल रह गयी है।ये दोनों कथाएं प्रीतिकर हैं। ये दोनों कथाएं सूफियों की हैं। लेकिन अलगजाली के हाथ में, इन्होंने सूफियाना रंग खो दिया। तुम थोड़ा चौंकोगे। जैसे पहली कथा में. . .सूफी ऐसा कभी नहीं कह सकते। मैं तो सूफी हूं, इसलिए मैं ऐसा नहीं कह सकता। पहली कथा में जाली कहते हैं, कि जब जुलेखा का विवाह हो गया तो उसने यूसुफ के साथ रहना अस्वीकार कर दिया। कहा कि मैं तुमसे उस समय तक प्रेम करती थी, जब तक ईश्वर को नहीं जानती थी।क्या ईश्वर के जानने में, यूसुफ ईश्वर के बाहर हो गया? क्या ईश्वर के जानने में यह भी नहीं जान लिया गया कि यूसुफ भी ईश्वर है। बस यहीं गजाली चूक गए। यहीं तीर जरा इरछा-तिरछा लगा; अंधेरे में चलाया गया था। लगा भी, और लगा भी नहीं। जिसने ईश्वर को जान लिया, वह यह कैसे कह सकता है कि ईश्वरीय प्रेम ने मेरे हृदय में घर कर लिया है? अब कहां 'मैं' और मेरा हृदय? और वह यह भी नहीं कह सकता कि अब मैं उस स्थल पर किसी दूसरे को नहीं रख सकती। जिसने ईश्वर को जान लिया उसे दूसरा बचता ही कहां है? और

अगर दूसरा अभी भी बचा है, तो अभी ईश्वर से पहचान नहीं हुई है।इसलिए दार्शनिक टटोलते हैं अंधेरे में, और कभी-कभी ठीक बात कह जाते हैं। लेकिन फकीर देखते हैं, टटोलते नहीं। उनका अनुभव विचार नहीं है—अनुभव

है। दार्शनिकों का काम बड़े और तरह का है।मैंने सुना है, एक बहुत बड़ा धनुर्धर बादशाह, जिसे बड़ा लगाव था धनुर्विद्या से, अपने स्वर्ण-रथ पर सवार एक गांव से गुजरता था। उस गांव में उसने जो देखा, तो उसकी आंखें फटी की फटी रह गयीं। उसे भरोसा न आया—वृक्षों पर, खलिहानों के दरवाजों पर, दीवालों पर, तीर चुभे थे। कोई बहुत बड़ा निशानेबाज गांव में रहता है। क्योंकि हर तीर ठीक एक वर्तुलाकार निशान के मध्य में लगा था—बिलकुल मध्य में। एक बार भी कहीं कोई चूक नहीं थी। सम्राट ने कहा : 'रथ रोको। मैंने बहुत धनुर्धर देखे हैं, मैं स्वयं भी धनुर्धर हूं; जीवन भर मैंने यही साधना की है। लेकिन मेरे भी सौ में, निन्यान्बे तीर ही ठीक लगते हैं, एक तो कभी चूक ही जाता है। मगर इस गांव में कौन धनुर्धर है, जिसका हमें पता भी नहीं! जिसका एक तीर नहीं चूका है! दीवालों पर, वृक्षों पर, खलिहानों पर, खेतों पर, जहां उसके तीर लगे हैं, ठीक लक्ष्य के बिलकुल मध्य में लगे हैं! मैं उससे मिलना चाहता हूं। गांव के लोगों से पूछो।'गांव के लोगों से पूछा तो लोग हंसने लगे। लोगों ने कहा कि आप फिजूल की बातों में न पड़ें, अरे वह पगला है, पागल है।सम्राट ने कहा : 'पागल हो या कोई भी हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? मुझे उसके पागलपन से कुछ लेना-देना नहीं। मगर मैं उसे पुरस्कृत करूंगा। वह हमारे राज्य का सबसे बड़ा धनुर्धर है।' उन लोगों ने कहा : 'आपको बात ही पता नहीं, वह तीर पहले मारता है और बाद में गोला खींचता है। बीच में लगने का सवाल ही नहीं है, जहां भी लगे. . .।'दार्शनिक भी बस यही करते रहते हैं : तीर पहले मार दिया, फिर बड़े विचार, सिद्धांत, उनसे गोला खींचते हैं। वर्तुल भी बन जाता है। तीर बिलकुल मध्य में मालूम लगता है। और लगता है कि बात बड़ी गहरी कही।अलगजाली दार्शनिक तो बड़े थे, विचारक बड़े थे, लेकिन अनुभवी सूफी नहीं हैं। मीरा, या कबीर, या नानक, या दादू, ये सब गजाली के मुकाबले दर्शन-शास्त्र में तो हार जाएंगे। मगर इनके पास आंखें हैं और गजाली अंधे हैं। अंधेपन का प्रत्यक्ष सबूत है। कहते हैं : 'जुलेखा ने यूसुफ से कहा कि अब ईश्वर ने मेरे हृदय में घर कर लिया है।' जैसे पहले ईश्वर हृदय में नहीं था! अब घर कर लिया है! ईश्वर सदा से वहां है। जानने वाला कभी यह नहीं कहेगा कि अब, घर

कर लिया है। था ही, अब मुझे होश आया। और जानने वाला यह भी नहीं कहेगा कि मेरा हृदय। इतनी अस्मिता भी कहां शेष रह जाती है? उसका ही हृदय है, वही घर किए है! मैं कौन हूं? मैं न कल था, न आज हूं। वह कल भी था, और आज भी है। मैं कल भी झूठ था, आज भी झूठ हूं। वह कल भी सच था, आज भी सच है। वह सत्य है, मैं झूठ हूं। सत्य और झूठ का मिलन कैसे हो! जैसे अंधेरे और प्रकाश का मिलन नहीं होता, ऐसे ही सत्य और झूठ का भी मिलन नहीं होता।इसलिए जो 'मैं' भाव से खोजने चला है, वह तभी तक परमात्मा को नहीं देख पाता जब तक 'मैं' भाव बना रहता है। जिस दिन 'मैं' भाव गिर जाता है, उस दिन चकित हो जाता है। चकित होता है यह जानकर कि मेरे 'मैं' भाव के कारण ही मेरी आंखों पर परदा था, नहीं तो परमात्मा तो सदा से मौजूद है। मैं ही अंधा था। या मैंने ही आंख बंद कर रखी थी। अहंकार की धूल ने ही, मुझे अंधा बना रखा था। अहंकार की धूल ही मेरे दर्पण पर जम गयी थी और परमात्मा का प्रतिबिंब नहीं बन रहा था।और फिर जब परमात्मा का अनुभव होगा, तो कोई कैसे कह सकता है कि उस स्थल पर मैं किसी दूसरे को नहीं रख सकती। दूसरा बचता है फिर? फकीरों से पूछो, सूफियों से पूछो।राबिया ने अपनी धर्म-पुस्तक में से कुछ वचन काट दिए थे। वे वचन जहां यह कहा गया है कि शैतान को घृणा करो, उसने काट दिए। एक दूसरा फकीर हसन उसके घर मेहमान था। उसने ये कटे हुए, संशोधन देखे। धर्मशास्त्र में कोई संशोधन कर सकता है! जैसे वेद में तुम संशोधन कर दो, तो सारे हिंदू नाराज हो जाएंगे कि तुम हो कौन संशोधन करने वाले? हमारा शास्त्र—और संशोधन करो! कहीं शास्त्रों में संशोधन होता है, कुरान में या बाइबिल में कहीं संशोधन होता है? वे तो जैसे हैं,

वैसे हैं। ईश्वर का संदेश है, उसमें संशोधन करने वाले तुम कौन हो?हसन ने कहा : 'राबिया, यह तूने क्या किया? यह तो गुनाह है, यह तो पाप है। यह कु179ा है। तूने कुरान के वचन काट दिए। तो तू क्या समझती है कि तू मुहम्मद के वचनों में संशोधन करेगी!'राबिया ने कहा : 'प्यारे हसन, मैं क्या करूं? इसमें मेरा कोई कसूर नहीं। वही करवाता है, मैंने बहुत अपने को रोका, कि यह करना ठीक नहीं। जैसा तुम कहते हो, मैंने भी अपने को बहुत समझाया, बहुत दिन रोका।

बहुत दिन कुरान की किताब के पास नहीं जाती थी, कि वहां गयी कि संशोधन करूंगी। मगर यह कब तक रुक सकता था, एक दिन यह हो ही गया। यह होना अनिवार्य था। क्योंकि जब से परमात्मा को जाना है, तब से अगर शैतान भी मेरे सामने खड़ा हो, तो मुझे शैतान नहीं दिखाई पड़ेगा, परमात्मा ही दिखाई पड़ेगा। अब मैं शैतान को घृणा कैसे कर सकती हूं? पहली तो बात यह है कि परमात्मा को जानने के बाद दूसरा कोई बचा नहीं। अब तो शैतान भी परमात्मा में ही लीन हो गया। दूसरी बात, मेरे भीतर प्रेम के अतिरिक्त घृणा नहीं बची। बाहर शैतान नहीं बचा, भीतर घृणा नहीं बची। और यह सूत्र कहता है कि शैतान को घृणा करो। ये दोनों बातें असंभव हो गयीं। न शैतान दिखाई पड़ता है कहीं और न घृणा शेष रही। अब मैं क्या करूं? अब मैं यह तरमीन न करूं, यह सुधार न करूं, तो क्या करूं? मजबूरी है, करनी ही पड़ी है।'और गजाली कहता है कि जुलेखा ने कहा : 'अब मैं उस स्थल पर किसी दूसरे को नहीं रख सकती।' नहीं, गजाली को कुछ पता नहीं है। जिसके हृदय में परमात्मा आ गया, पहली तो बात वह मिट जाता है। उसके आते ही तुम डूब गए, मिट गए, समाप्त हो गए। तुम बचोगे? और फिर, कौन दूसरा? और परमात्मा क्या सबको समा लेगा, सिर्फ गरीब यूसुफ को छोड़ देगा? आखिर यूसुफ का कसूर क्या है? यूसुफ को इतनी विशिष्टता, इतना अपवाद? नहीं, कोई भी अपवाद नहीं है। क्या यूसुफ का कसूर यही है कि यूसुफ के प्रेम में पड़कर जुलेखा को परमात्मा का प्रेम दिखाई पड़ गया? यूसुफ का कोई गुनाह हो गया? सच तो यह है, यूसुफ के प्रति अब आभार होना चाहिए—और भी घना, पहले से भी ज्यादा घना, क्योंकि वही झरोखा बना।अगर कोई सूफी इस कहानी को कहेगा—अगर मैं इस कहानी को कहूंगा, तो मुझे सुधार करना ही पड़ेगा। यह कहानी का अंत इस तरह नहीं कर सकता हूं। मेरे लिए, इश्क-मजाजी और इश्क-हकीकी, भौतिक प्रेम और अभौतिक प्रेम दो प्रेम नहीं हैं—एक ही प्रेम के दो रूप हैं। जैसे कीचड़ और कमल। कीचड़ में कमल छिपा है और कमल में कीचड़ छिपी है। जब कीचड़ थी तो कमल दिखाई नहीं पड़ता था। और अभी कमल है तो तुम्हें याद भी नहीं आती कि यह गंदी कीचड़ से निकला है और कल फिर कीचड़ में गिर जाएगा, फिर कीचड़ हो जाएगा।

कीचड़ और कमल दो नहीं हैं। रूपांतरण हुआ है। एक ही ऊर्जा है। जिसको हम इश्क-मजाजी कहते हैं, वह, और जिसको कहें इश्क-हकीकी—उन दोनों में केवल रूप का भेद है। वही प्रेम है। प्रेम कहीं दो तरह के होते हैं? प्रेम तो एक ही तरह का होता है। प्रेम यानी प्रेम! हां, विस्तार बड़ा हो जाता है। लेकिन अगर यूसुफ उस विस्तार के बाहर छूट गया, तो जुलेखा को अभी परमात्मा का कोई अनुभव नहीं हुआ है। नहीं तो यूसुफ भी परमात्मा हो जाएगा। जब और सब परमात्मा हो गया, तो यूसुफ ही परमात्मा न होगा!स्वामी रामतीर्थ अमरीका से भारत वापस लौटे। उन्होंने बड़ी ख्याति अमरीका में पायी। ख्याति पाने योग्य उनकी क्षमता थी। जब भारत वापस आए, तो सोचा था कि जब अमरीका जैसे भौतिकवादी देश में, इतना सम्मान मिला, और लोगों ने इतने प्रेम से, आनंद से, अहोभाव से, एक-एक शब्द को पीया, तो भारत में तो क्या नहीं हो जाएगा! मगर उनकी गलती थी। स्वभावतः उन्होंने चाहा कि भारत की यात्रा काशी से शुरू करें। बस यात्रा वहीं खत्म हो गयी। बोले; बीच प्रवचन में एक पंडित खड़ा हो गया, और उसने कहा कि 'रुकिए। आप संस्कृत जानते हैं, व्याकरण का बोध है? वेद पढ़ा है?' रामतीर्थ संस्कृत नहीं जानते थे। पंजाब में पैदा हुए, तो फारसी जानते थे। और उपनिषद और वेद भी पढ़े थे तो उनका फारसी अनुवाद पढ़ा था। संस्कृत नहीं पढ़ी थी। रामतीर्थ ने कहा : लेकिन परमात्मा को जानने के लिए क्या संस्कृत जाननी जरूरी है?'उस पंडित ने कहा : 'बिना संस्कृत जाने, क्या खाक तुम्हारा

ब्रह्म-ज्ञान! व्याकरण का बोध नहीं है, चले ब्रह्म-ज्ञान की बातें करने!' और पंडितों ने भी साथ दिया। हो-हल्ला हो गया। स्वागत होने की जगह, शोरगुल मच गया, उपद्रव मच गया। काशी के पंडे गुंडों से कुछ कम नहीं।रामतीर्थ के मन को बड़ा धक्का पहुंचा। ऐसी आशा न की थी। यात्रा छोड़ दी। हिमालय चले गए। एक कुटिया में, टिहरी गढ़वाल की पहाड़ियों में एक कुटिया में रहने लगे। उनकी पत्नी को खबर मिली, दूर पंजाब में, कि पति लौट आए हैं, उनके दर्शन को आयी। एक प्रसिद्ध विचारक और लेखक, सरदार पूर्णसिंह उनकी सेवा में रहते थे। जब पत्नी को रामतीर्थ ने आते देखा दरवाजे से, दूर चढ़ते हुए पहाड़ी पर, तो पूर्णसिंह से कहा : 'दरवाजा बंद कर दो, और बाहर तुम रहो और उसको कह देना कि रामतीर्थ मिलना नहीं चाहते।' पूर्णसिंह को तो बहुत धक्का लगा। पूर्णसिंह ने कहा, कि 'हजारों स्त्रियां आपसे मिलने आती हैं, किसी से आपने मिलने से इनकार नहीं किया, सिर्फ इस स्त्री का कसूर क्या है? क्या इसे आप अब भी अपनी पत्नी मानते हैं? नहीं तो रोक क्यों रहे हैं?'बात पते की कही—बहुत पते की कही!. . .जब और किसी स्त्री को कभी नहीं रोकते, तो इसी स्त्री का कसूर क्या है? और यह गरीब, दूर पंजाब से यात्रा करके दर्शन करने आयी है, इसको दर्शन भी नहीं देंगे!'पूर्णसिंह ने कहा : 'तो फिर आप तय कर लें! या तो इस पत्नी को दर्शन दें, या मैं भी चला। फिर मैं भी आपके पास रुकने वाला नहीं हूं।'रामतीर्थ को बात खयाल में आयी, कि बात तो सच है। आखिर मैं पत्नी को मिलने से रोक क्यों रहा हूं! जरूर मैं उसे अब भी पत्नी मानता हूं। कहीं, अभी भी भय समाया हुआ है। इसकी चोट उन पर इतनी गहरी पड़ी कि उसी दिन उन्होंने गैरिक वस्त्र छोड़ दिए। यह जानकर तुम हैरान होओगे कि रामतीर्थ जब मरे, तो गैरिक वस्त्रों में नहीं थे। उन्होंने गैरिक वस्त्र छोड़ दिए, कि यह क्या मेरा संन्यास! इस संन्यास का क्या मूल्य है? चोट गहरी पड़ी, पत्नी से मिले और उससे क्षमा मांगी; हालांकि उसे तो कुछ पता ही नहीं था कि बीच में क्या हुआ? उसने पूछा भी कि क्षमा किस बात की? कहाः 'क्षमा इस बात की, कि मैं इनकार कर रहा था मिलने से, बचना चाहता था। उससे सिर्फ मेरा भय प्रकट होता है।' अलगजाली का यह कहना कि जुलेखा ने कह दिया यूसुफ को, कि अब मैं तुझसे प्रेम नहीं कर सकूंगी, क्योंकि अब मेरे हृदय में परमात्मा का वास है, वहां दूसरे की कोई जगह नहीं'—इसमें थोड़ा डर है। इसमें थोड़ा भय है। भय है यह कि कहीं यूसुफ रहा भीतर तो परमात्मा को निकाल बाहर न कर दे। हृदय में जगह भी बहुत छोटी मालूम पड़ती है। हृदय न हुआ, बंबई का कोई अपार्टमेंट हुआ। या तो भगवान जी रहें, या यूसुफ जी रहें; दोनों जी साथ नहीं रह सकते!परमात्मा का अनुभव तुम्हें विराटता देता है। उसमें एक यूसुफ क्या लाखों यूसुफ समा जाएं! परमात्मा का प्रेम इस योग्य बनाता है कि सारा अस्तित्व तुम्हें प्रीतम जैसा मालूम होने लगे। आदमी तो आदमी, पशु-पक्षी, पौधे, चांद-तारे सब तुम्हारे प्रेम के पात्र हो जाते हैं। सिर्फ बेचारे यूसुफ का कसूर क्या है? इतना ही कसूर कि उसके आधार से, उसके झरोखे से तुम्हें परमात्मा का दर्शन हुआ? यह कसूर है उसका?नहीं, अलगजाली कोई संत नहीं हैं, कोई सूफी नहीं हैं—दार्शनिक हैं। और दार्शनिक से इस तरह की भूलें होनी स्वाभाविक हैं; अंधेरे में तीर चलाए जा रहे हैं।तुमने पूछा है नरेंद्र : 'भगवान, क्या लौकिक प्रेम ही ईश्वरीय प्रेम में रूपांतरित हो जाता है?' निश्चय ही, लौकिक प्रेम ईश्वरीय प्रेम का बीज है। और ईश्वरीय प्रेम, लौकिक प्रेम का खिल जाना है, फूल हो जाना है।परमात्मा और हमारा होना, संयुक्त है; जैसे तुम और तुम्हारी छाया। तुम चले, तुम्हारी छाया चली। तुम रुके, तुम्हारी छाया रुकी। परमात्मा, और हमारे बीच वही नाता है। परमात्मा अगर सत्य है, तो हम उसकी छाया मात्र। परमात्म-प्रेम अगर सत्य है, तो लौकिक प्रेम उसकी छाया। और परमात्मा की छाया भी सुंदर है। परमात्मा की माया भी सुंदर है। आखिर परमात्मा की है, सुंदर ही होगी!इसलिए तो तुमसे कहता नहीं, कि भागो, छोड़ो! क्योंकि यह जो माया है, यह जो छाया है, यह भी उसकी ही है। कहीं इससे भाग खड़े हुए, तो डर यह है कि मूल से भी दूर न हो जाना। हो ही जाओगे। अगर तुम किसी की छाया से भागोगे तो उससे भी तो भाग गए! मैं कहता हूं उसकी छाया को समझो, उसकी छाया को पकड़ो, उसकी छाया को आधार बनाओ—सूत्र। और उसी के सहारे चलते-चलते एक दिन तुम मूल को पकड़ लोगे।तुम तुंग-हिमालय-शृंगऔर मैं

चंचल-गति-सुर-सरिता;तुम विमल हृदय-उच्छ्वास,और मैं कांत-कामिनी-कविता;तुम प्रेम और मैं शांति।तुम सुरा-पान-घन अंधकार—मैं हूं मतवाली भ्रांति।।
तुम दिनकर के खर किरण-जाल, मैं सरसिज की मुसकान; तुम वर्षों के बीते वियोग, मैं हूं पिछली पहचान।तुम योग और मैं सिद्धि, तुम हो रागानुग निश्छल तप—मैं शुचिता सरल समृद्धि।।तुम मृदु मानस के भाव, और मैं मनोरंजिनी भाषा;तुम नंदन-वन-घन विटप, और मैं सुख-शीतल-तरु-शाखा।तुम प्राण और मैं काया।तुम शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म, मैं मनोमोहिनी माया।तुम प्रेममयी के कंठहार, मैं वेणी काल-नागिनी; तुम कर-पल्लव-झंकृत सितार, मैं व्याकुल विरह-रागिनी; तुम पथ हो, मैं हूं रेणु तुम हो राधा के मनमोहन—मैं उन अधरों की वेणु।।तुम पथिक दूर के श्रांत,
और मैं बाट जोहती आशा; तुम भवसागर दुस्तर, पार जाने की मैं अभिलाषा; तुम नभ हो, मैं नीलिमा।तुम शरत-काल के बाल-इंदु—मैं हूं निशीथ-मधुरिमा।।तुम गंध-कुसुम-कोमल पराग, मैं मृदु-गति मलय-समीर;तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष मैं प्रकृति प्रेम-जंजीर; तुम शिव हो, मैं हूं शक्ति।तुम रघुकुल-गौरव रामचंद्र—मैं सीता अचला भक्ति।तुम आशा के मधुमास, और मैं पिक-कल-कूजन तान; तुम मदन फंच-शर-हस्त, और मैं हूं मुग्धा अनजान;तुम अंबर, मैं दिग्वसना।तुम चित्रकार, घन-पटलश्याम—मैं ताड़िन्तूलिका रचना।तुम रण-तांडव-उन्माद नृत्य, मैं मुखर मधुर नूपुर-ध्वनि; तुम नाद-वेद ओंकार सार, मैं कवि शृंगार-शिरोमणी; तुम यश हो, मैं हूं प्राप्ति।
तुम कुंद-इंदु-अरविंद शुभ्र—तो मैं हूं निर्मल व्याप्ति।।तुम तुंग-हिमालय-शृंग
और मैं चचंल-गति सुर-सरिता; तुम विमल हृदय-उच्छ्वास, और मैं कांत-कामिनी-कविता; तुम प्रेम और मैं शांति।तुम सुरा-पान-घन अंधकार—मैं हूं मतवाली भ्रांति।।भेद जरा भी नहीं। भेद आभास मात्र है। ये नदी के दो किनारे, एक ही नदी के दो किनारे हैं। यह किनारा उतना ही नदी का है, जितना वह किनारा। यह लोक उतना ही परमात्मा का है, जितना वह लोक। देह भी उसकी, आत्मा भी उसकी। भेदों को छोड़ो, भेदों के पार उठो। भेदों के पार उठकर जिस दिन अभेद का दर्शन करोगे, उसी दिन जानना मुक्ति हुई, निर्वाण हुआ; उसी दिन जानना—साक्षात, सत्य; उसी दिन जानना—मुक्ति, मोक्ष। उसके पहले सब बौद्धिक हिसाब-किताब है।अलगजाली बड़े विचारक हैं। मगर कोई अनुभव इस अतिक्रमण का नहीं है, जहां द्वंद्व मिट जाते हैं। और तथाकथित धार्मिक लोग इन्हीं द्वंद्वों में जीते रहे हैं। इसलिए उन्हें मैं धार्मिक नहीं कहता।मैने एक दार्शनिक की कहानी फढ़ी। वह बड़ा भत्त है फरमात्मा का। दिन रात उसी की माला जफता है। उसका पोता, छोटा-सा बच्चा, जब वह माला जप रहा है, उसकी गोद में आ बैठा। उसने उसे, प्रेमपूर्वक छाती से लगा लिया। लेकिन तभी उसे खयाल आया कि 'अरे, यह मैं क्या कर रहा हूं. . .। ईश्वर मुझे उसके लिए कभी माफ नहीं करेगा। उसकी माला जपना छोड़कर और अपने पोते को छाती से लगा रहा हूं!' उसने एक धक्का मारकर पोते को, गोदी से नीचे गिरा दिया और कहा कि दुष्ट, शैतान! हट जा
यहां से! मेरी पूजा, मेरी उपासना को भ्रष्ट कर रहा है।एक हिंदू संन्यासी मुझे यह कहानी सुना रहे थे। उन्होंने कहा : 'आपका इस संबंध में क्या कहना?' मैंने कहा कि मुझसे अगर पूछो, बुरा न मानो, सच्ची बात कह दूं? उन्होंने कहा कि सच्ची बात पूछने के लिए आपसे—। तो मैंने कहा : 'परमात्मा पोते के रूप में आया था। और मूरख ने धक्के मारकर खतम कर दिया। जिंदगी भर माला जपी कि आओ, आओ, आओ! कांव-कांव मचा रखी थी! और अब आया तो धक्का मार दिया।'आखिर उस पोते में कौन है? और वह निर्दोष बच्चा, जो गोद में आ बैठा है, वह कोई तुम्हारी पूजा-पाठ को बिगाड़ने आया है? उसे क्या तुम्हारी पूजा-पाठ का पता! सरलचित्त बच्चा, उसे ऐसे धक्का मार दिया जैसे वह शैतान हो!लेकिन यह धारणा रही।जिस संन्यासी ने मुझे यह कहानी सुनाई थी, वह भी बहुत चौंका। उसने कहा : 'मैं तो यह कहानी अक्सर अपने प्रवचनों में लोगों को कहता हूं। और कहता हूं, इसको कहते हैं भक्ति! आपने तो सब गड़बड़ कर दिया!'यह भक्ति नहीं है। अगर यह भक्ति है,

तो फिर अभक्ति क्या होगी? और इतना कंजूस हृदय, इतना कृपण हृदय! परमात्मा का प्रेम विराटता देगा, कि इतना संकीर्ण हो जाएगा? कि इतना भयभीत हो जाएगा, इतना सिकुड़ जाएगा? परमात्मा अगर विस्तार है—विराट विस्तार—तो उसका प्रेम भी तुम्हें विराट विस्तार देगा। उसमें एक यूसुफ क्या, हजारों यूसुफ समा सकते हैं। इसलिए तो हमने कंजूसी नहीं की, इस देश में हमने कंजूसी नहीं की। जो समझा तो कंजूसी नहीं की, जिन्होंने नहीं समझा वे कंजूसी कर गए। कृष्ण को हमने कहा कि सोलह हजार सखियां। इसको कहते हैं अकृपणता! यह भी क्या एक पोते को धक्का मार दिया!और उस संन्यासी को मैंने कहा कि तुम तो कृष्ण-भक्त हो! हरे कृष्ण, हरे राम! सोलह हजार सखियों के बीच कृष्ण नाचते रहे, और घबराए नहीं; और यह पोते से ही घबरा गया! और तुम यह कहानी कहते हो!कृष्ण को हमने पूर्णावतार कहा है। ऐसे ही नहीं कह दिया। कारण हैः ऐसा विस्तार, इतनी विराटता! प्रेम का ऐसा सागर, जो सबको
समाहित कर ले—कभी और किसी दूसरे में देखा नहीं गया था! राम उन अर्थों में सीमित मालूम होते हैं। इसलिए उनको हम कहते हैं—मर्यादा-पुरुषोत्तम। मर्यादा यानी सीमा। कृष्ण है अमर्याद। मर्यादा नदी की होती है। सागर की क्या मर्यादा! तो राम को हमने आंशिक अवतार कहा। बुद्ध को भी हमने आंशिक अवतार कहा। लेकिन कृष्ण को हमने पूर्णावतार कहा। पूर्णावतार कहकर कृष्ण को, हमने यह उदघोषणा की, कि अगर परमात्मा का प्रेम सघन होगा, तो उसकी कोई सीमा नहीं हो सकती है। जहां सीमा है, वहां संकोच है। और जहां असीम का पदार्पण होता है, वहीं परमात्मा का अनुभव है।प्रेम झरोखा है। इसी प्रेम से धीरे-धीरे प्रार्थना का आगमन होगा, प्रार्थना से धीरे-धीरे परमात्मा का आगमन होगा। लेकिन ध्यान रखना, इस आगमन से पुराने झरोखे जला नहीं दिए जाएंगे, तोड़ नहीं दिए जाएंगे; पुराने झरोखे और भी समादृत हो जाएंगे, तुम्हारा अनुग्रह और सघन हो उठेगा।इसलिए तो गुरु के झरोखे से हम परमात्मा को जानते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि फिर गुरु को हम भुला देते हैं। गुरु के प्रति हमारा सम्मान और सघन हो जाता है, क्योंकि उसके ही माध्यम से तो परमात्मा की झलक मिली। कबीर कहते हैं : गुरु गोविंद दोई खड़े काके लागू पांव। एक घड़ी आती है, जब गुरु के झरोखे से परमात्मा दिखाई पड़ा, गोविंद दिखाई पड़ा। तो कबीर का प्रश्न बिलकुल ठीक है, ठीक पूछते हैं : गुरु गोविंद दोई खड़े काके लागूं पांव? अब बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। किसके पहले पैर छुऊं? अगर परमात्मा के छुऊं पहले पैर. . .सोचना! कबीर कहते हैं : अगर परमात्मा के पहले पैर छुऊं तो गुरु का अपमान हो जाएगा, और यह मैं नहीं कर सकता। और गुरु के पहले पैर छुऊं तो परमात्मा का कहीं अपमान न हो जाए। यह मैं कैसे करूं?

गुरु गोविंद दोई खड़े काके लागूं पांव।

बलिहारी गुरु आपकी गोविंद दियो बताय।। लेकिन बलिहारी कही गुरु की कि धन्य हैं आप, कि जल्दी से इशारा कर दिया कि संकोच न कर, परमात्मा के चरण छू ले! मगर यह पद जाहिर नहीं करता
कि कबीर ने फिर पैर छुए किसके? आमतौर से इसकी व्याख्या करनेवाले लोग कहते हैं कि परमात्मा के छुए, क्योंकि गुरु ने इशारा कर दिया। मैं कहता हूं : नहीं, क्योंकि 'बलिहारी' शब्द कुछ और कह रहा है। बलिहारी यह कह रहा है : गुरु ने तो इशारा किया परमात्मा की तरफ, लेकिन अब कैसे परमात्मा के पैर पहले छुए जा सकते हैं? वह बलिहारी शब्द कह रहा है, साफ कर रहा है कि कबीर ने पैर तो गुरु के ही छुए। कहा कि फिर ठीक है, अब ऐसे गुरु के पैर न छुओ तो क्या करो, जो इशारा कर रहा है कि परमात्मा के छू! छोड़ मुझे, भूल मुझे!तो मेरे हिसाब में तो कबीर ने पैर छुए गुरु के ही।सीढ़ियां भूल नहीं जानी चाहिए। जो पहुंचा देती है उत्तुंग शिखरों पर, उनको नमस्कार नहीं करोगे? नाव जो उस पार लगा देती है, जाते समय उसे धन्यवाद नहीं दोगे?नहीं, अलगजाली को कुछ भी पता नहीं है। बड़ा तत्त्वदार्शनिक था; लेकिन कोई सूफी नहीं, कोई ज्ञाता नहीं।श्घ्तीसरा प्रश्न : भगवान ! मैं प्रेम में मरा जा रहा हूं।सिद्धार्थ!

मरौ हे जोगी मरौ! मरौ मरण है मीठा!

तिस मरणी मरौ जिस मरणी मरि गोरख दीठा।

इसीलिए तो यहां आए हो सिद्धार्थ— मरने की कला सीखने। और प्रेम में मरे तो पुनरुज्जीवन है। प्रेम में मरे तो शाश्वत जीवन है। प्रेम में मरे कि सब पा लिया। प्रेम में मरने से बड़ी और कोई घटना नहीं। सो कंजूसी न करो!तुम्हारे प्रश्न से ऐसा लग रहा है कि पूछ रहे हो कि बचाओ। जैसे कि कोई नदी में डूब रहा हो, चिल्लाता है। मैं बचाने वाला नहीं। मैं कहता हूं : डूबो, हे डूबो!जोगी डूबो!यह मौका मत चूको क्योंकि जो डूबे सो ऊबरे।

मैं बचाने को आने वाला नहीं, क्योंकि बच कर क्या करोगे? बचे तो बहुत जन्मों से हो! बच-बच कर क्या पाया? अब जरा खोने की कला सीखो। अब जरा दांव पर लगाओ सब।प्रेम में मरना ही होता है। प्रेम मृत्यु है—अहंकार की, अस्मिता की, मैं-भाव की। प्रेम मृत्यु से भी बड़ी मृत्यु है; वह महामृत्यु है। इसलिए गोरख ने फर्क किया : 'तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मरि गोरख दीठा!' ऐसे तो सभी मरते हैं, मगर इस तरह मरने से कोई दर्शन नहीं होता। तिस मरणी मरौ! वह मरनी मरो जिस मरने से गोरख को दिखाई पड़ा। वह कौन-सी मरनी है? वह प्रेम की मरनी है। प्रार्थना में मरो, प्रेम में मरो! परमात्मा के मार्ग पर मरो। धर्म मृत्यु की कला है।तो तुम यह मत पूछो सिद्धार्थ, इस तरह मत पूछो कि 'भगवान, मैं प्रेम में मरा जा रहा हूं।' तो कुछ बुरा नहीं हो रहा है। इलाज की चिंता न करो। और यह दर्द ऐसा है भी नहीं कि इसकी कोई दवा हो। और यह दर्द ऐसा है कि जैसे-जैसे दवा करोगे वैसे-वैसे मर्ज बढ़ेगा।और मेरा काम ही यह है कि तुम्हारी बीमारी बढ़ाऊं। तुम दवा भी मांगते हो, तो रंग-बिरंगा पानी तुम्हें पिला देता हूं, बाकी उसमें कुछ है नहीं; वह सिर्फ सांत्वना है कि ठीक है सिद्धार्थ, रखे रहो बोतलें, भरोसा रहा आएगा। मगर असली बात तो मरना है।मरो, और फिर छोड़ो सब उस पर! होनी होय सो होय! फिर उसकी जो मर्जी। उबारे तो उबार लेगा, डुबाए तो डुबा देगा। अपनी मर्जी को छोड़ देना ही मृत्यु है—असली मृत्यु।मधुर-मधुर मेरे दीपक जल। युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,प्रियतम का पथ आलोकित कर!

सौरभ फैला विपुल धूप बन, मृदुल मोम-सा घुल रे मृदु तन; दे प्रकाश का सिंधु अपरिमित; तेरे जीवन का अणु गल-गल! पुलक-पुलक मेरे दीपक जल! सारे शीतल कोमल नूतन, मांग रहे तुझसे ज्वाला-कण; विश्व-शलभ सिर धुन कहता 'मैं हाय, न जल पाया तुझमें मिल!' सिहर-सिहर मेरे दीपक जल! जलते नभ में देख असंख्यक, स्नेहहीन सागर नित कितने दीफक, जलमय सागर का उर जलता, विद्युत ले गिरता है बादल! विहंस-विहंस मेरे दीपक जल! द्रुम के अंग हरित कोमलतम, ज्वाला को करते हृदयंगम वसुधा के जड़ अंतर में भी बंदी है तोपों की हलचल! बिखर-बिखर मेरे दीपक जल। मेरी निश्वासों के द्रुततर, सुभग न तू बुझने का भय कर; मैं अंचल की ओट किए हूं, अपनी मृदु पलकों से चंचल! सहज-सहज मेरे दीपक जल!

सीमा की लघुता का बंधन, है अनादि तू मत घड़ियां गिन; मैं दृग के अक्षय कोषों से तुझमें भरती हूं आंसू-जल! सजल-सजल मेरे दीपक जल! तम असीम तेरा प्रकाश चिर, खेलेंगे नव खेल निरंतर, तम के अणु-अणु में विद्युत-सा— अमिट चित्र अंकित करता चल! सरल-सरल मेरे दीपक जल! तू जल-जल जितना होता क्षय, वह समीप आता छलनामय;

मधुर मिलन में मिट जाना तू—उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल खिल!

मदिर-मदिर मेरे दीपक जल! युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,प्रियतम का पथ आलोकित कर! सिद्धार्थ, जलो, मिटो, गलो। क्योंकि यही है उसे पाने का मार्ग। यही है उसे पाने की एकमात्र विधि। तुम जब तक हो, वह नहीं है। तुम मिटे कि वह है।पीड़ा तो होती है मिटने में। घबड़ाहट भी होती है। डर भी लगता है। मन कहता है : 'कहां चल पड़े हो, किस अज्ञात पथ पर! लौट चलो वापस अपनी सुरक्षा में।' पर वापस, वहां पाया क्या था? वहां मिला क्या, जिसके लिए वापस लौटना चाहते हो?पीछे लौट कर भी मत देखना, क्योंकि पीछे सिवाय राखों

के और कुछ भी नहीं है।जो जग-मग ज्योति जगाता रहता जग के कण-कण में, वह क्यों न करेगा 'क्रीड़ा' मेरे भी व्याकुल मन में? आशा है एक दिवस तो चमकेंगी 'किरणें' उज्जवल। तब तक लहरों पर तरणी तिरती रहने दूं अविरल। घबराओ मत, अगर दूसरा किनारा न भी दिखाई पड़े और पुराना किनारा दिखाई पड़ना भी बंद हो जाए, लगे कि भटक गया, लगे कि मिटने लगा, लगे कि डूबी अब यह मेरी नौका—फिक्र मत करना।जो जग-मग ज्योति जगाता रहता जग के कण-कण में, वह क्यों न करेगा क्रीड़ा मेरे भी व्याकुल मन में? वह जो चांद-तारों को चला रहा है, वह जो छिपा है वृक्षों की हरियाली में, फूलों के रंगों में, वह जो व्याप्त है हवा के कण-कण में—वह तुम्हें भी सम्हालेगा। कोई और हाथों की आवश्यकता नहीं है।मैं भूल न जाऊं उसको जग आंखों से हट जाए, उसका ही 'प्रेम' निरंतर यह 'जीवन-तरी' चलाए।
मैं अपनी अभिलाषाएं करती हूं उसे समर्पित। सौंपे देती हूं सुख-दुःख सब पाप-पुण्य चिर-अर्जित। सब सौंप दो उसे—पाप भी, पुण्य भी। सब सौंप दो उसे— ज्ञान भी, अज्ञान भी। सब सौंप दो उसे—जीवन भी, मृत्यु भी। और उसी क्षण क्रांति घट जाएगी। जब तक कुछ भी बचाओगे, रत्ती भर भी बचाओगे, तब तक क्रांति नहीं घट सकती। सौ प्रतिशत पर ही क्रांति घटित होती है। शुभ घड़ी है। मृत्यु की घड़ी है। मरण की बेला है, क्योंकि मरण की बेला जागरण की बेला है। इस मरण को आत्मसात कर सको तो जागरण बन जाए। अगर घबड़ा जाओ, भाग जाओ, तो फिर नींद है। फिर वही पुरानी नींद। फिर वही पुराने दुःख-स्वप्न।निशि के आंचल से मुंह ढंक जग-शिशु है सोने वाला। पर पिला रहा है मुझको कोई जागृति का प्याला। जब मूंद पलक देखेगा जग सुख के सपने प्यारे, क्या सूने में बैठूंगी मैं व्याकुल गिनती तारे? विश्राम करेंगे जब सब नीड़ों में श्रम से हारे, क्या तरी खोजती मैं ही भटकूंगी सिंधु-किनारे?
पर जब इस अस्थिर जग के उस पार जगत है मेरा, तब क्यों न चलूं उस पर, मैं तोड़ क्षितिज का घेरा। इस भूले-भटके जग ने समझा है जिसे किनारा, वह माया-जाल भ्रमों का दिखने में मोहक, प्यारा। उस पर यह हृदय भटक कर फिरता है मारा-मारा इस जग के पार क्षितिज से प्रियतम ने मुझे पुकारा।। मृत्यु की प्रतीति हो रही है, अर्थात उस प्यारे की पुकार कहीं सुनाई पड़ने लगी है। वह कह रहा है : मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा। वह पुकार रहा है कि गलो! जगह दो, ताकि मैं प्रवेश पा सकूं। स्थान खाली करो, ताकि मैं उसे भर सकूं।जब तक अहंकार तुम्हारे सिंहासन पर बैठा है, परमात्मा को बैठने के लिए जगह नहीं है।जो प्यास हृदय में जागी क्या रोके रुक सकती है?
चातक की तृष्णा जग के झरने से बुझ सकती है? छू स्वर्ण-रश्मियों ने उर जाने क्या भाव जगाया। जाने किस मलयानिल ने मानस का कमल खिलाया। उन्मत्त हृदय है, मद की दी पिला किसी ने प्याली। आवेंगी फिर न कभी ये घड़ियां प्यारी, मतवाली। ऐ हृदय, आज बहने दे नौका को झोंके खाती। आने दे यदि आती है आंधी तूफान उठाती । सीमा के बंधन टूटे चेतना लुप्त है मेरी। मैं आंखें मूंद बढ़ूंगी लहरों पर सागर तेरी कितनी नौकाएं डूबीं भव-कूल नहीं
है पाया, फिर भी मैंने इस जर्जर तरणी को आज बहाया। ऐसे तो सभी को मरना है।कितनी नौकाएं डूबीं भव-कूल नहीं है पाया, फिर भी मैंने इस जर्जर तरणी को आज बहाया। ऐसे तो सभी मरते हैं; लेकिन धन्यभागी है वह, जो बोधपूर्वक मरता है, जो प्रेम में मरता है। देह तो मरेगी ही; लेकिन जो अहंकार को मर जाने देता है, उससे बड़ा सौभाग्यशाली व्यक्ति इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं है।आज इतना ही।

पंद्रहवां प्रवचन

पीवत रामरस लगी खुमारी

सूत्र

छारि पर्‌यौ आतम मतवारा। पीवत रामरस करत बिचारा।। बहुत मोलि महंगै गुड़ पावा। लै कसाब रस राम चुवावा।। तन पाटन मैं कीन्ह पसारा। मांगि मांगि रस पीवै बिचारा।। कहैं कबीर फाबी मतवारी। पीवत रामरस

लगी खुमारी।। सील-संतोख ते सब्द जा मुख बसै, संतजन जौहरी सांच मानी। बदन विकसित रहै खयाल आनंद मैं, अधर मैं मधुर मुसकान बानी।
सांच गेलै नहीं झूठ बोलै नहीं, सुरत मैं सुमति सोइ स्त्रेष्ठ ज्ञानी। कहत हौं ज्ञान पुकारि कै सबन सों, देत उपदेस दिल दर्द जानी। ज्ञान को पूर है, रहनि को सूर है, दया की भक्ति दिल माहिं ठानी। ओर ते छोर लौं एक रस रहत है, ऐस जन जगत मैं बिरलै प्रानी। ठग्ग बटमार संसार में भरि रहे, हंस की चाल कहं काग जानी। चपल और चतुर हैं बनै बहु चकिने, बात मैं फै ठीक कपट ठानी। कहा तिन सों कहों दया जिनके नहीं, घात बहुतें करैं बकुल ध्यानी।। दुर्मती जीव की दुबिध छूटे नहीं, जन्म जन्मांत पड़ नर्क खानी। काग कूबुद्धि सूबुद्धि पावै कहां, कठिन कट्ठोर बिकराल बानी। अगिन के फुंज हैं सितलता तन नहीं, अमृत और विष दोऊ एक सानी। कहा साखी कहे सुमति जागा नहीं, सांच की चाल बिन धूर धानी।
सुकृति और सत्त की चाल सांची सही, काग बक अधम की कौन खानी। कहै कबीर कोउ सुघर जन जौहरी, सदा सावधान पियो नीर छानी।। छें इठ्ृ इ18श्जाइ255णर्ज गुरजिएफ से उनके एक शिष्य ने पूछा ः 'आप मनुष्य को प्रेम करते हैं या नहीं?' पूछने का कारण था, क्योंकि गुरजिएफ मनुष्य के संबंध में अति कठोर सत्य बोलता था। कहता थाः मनुष्य है ही नहीं फृथ्वी फर, मशीनें हैं। मनुष्य तो कभी-कभार फैदा होता है—कोई बुद्ध, कोई जीजस, कोई जरथुस्त्र; शेष तो सब यंत्र हैं। धोखे में हैं मनुष्य होने के। मनुष्य हो सकते थे, हो सकते हैं; लेकिन मनुष्यता जन्म के साथ नहीं मिलती, उपलब्ध करनी होती है, अर्जित करनी होती है, आविष्कृत करनी होती है।गुरजिएफ यह भी कहता था कि आत्मा सभी व्यक्तियों में नहीं होती। यह और भी कठोर बात थी; क्योंकि सदा से ऐसा ही कहा जाता रहा है कि आत्मा प्रत्येक के भीतर है। लेकिन गुरजिएफ कहता था ः सोयी हुई आत्मा का होना और न होना बराबर है। जागे, तो ही है; सोयी हो, तो नहीं है। कितनों की आत्मा जागी हुई है? जिनकी जागी है वे ही आत्मवान हैं, शेष सब आत्महीन हैं।इसलिए प्रश्न स्वाभाविक था और शिष्य ने पूछा कि 'आप मनुष्य को प्रेम करते हैं या घृणा? आपके वचन बड़े कठोर हैं।' गुरजिएफ ने जो कहा, उस पर खूब ध्यान देना। गुरजिएफ ने कहा ः 'मनुष्य जैसा है उसे तो मैं घृणा करता हूं। उसकी सात पीढ़ियों पीछे तक घृणा करता हूं। और मनुष्य जैसा हो सकता है उसके प्रति मेरे मन में सिवाय समादर के और कुछ भी नहीं।'मनुष्य जैसा है, वह तो कूड़ा-कर्कट है। 'लेकिन जैसा हो सकता है! जैसा है, वह तो कीचड़ है, लेकिन हो सकता है कमल। बीज का क्या मूल्य; बीज जब विकसित
हो, फूल खिलें, गंध उड़े, तो कुछ मूल्य है।हम केवल संभावना की भांति पैदा होते हैं। जीवन एक अवसर है—जीवन को पाने का। इससे ही तृप्त मत हो जाना, नहीं तो चूक जाओगे। इससे ही राजी मत हो जाना। मत समझ लेना कि जन्म मिल गया तो जीवन मिल गया। जन्म मिला तो केवल मृत्यु मिली, क्योंकि जन्म का अंत मृत्यु में है।जीवन तो मिलता है—जन्म से नहीं; ध्यान से। एक और जन्म चाहिए—ध्यान का जन्म। द्विज होना होगा। एक जन्म तो मिलता है माता-पिता से। एक जन्म देना होता है स्वयं को। जो माता-पिता से मिलता है वह तो देह का जन्म है। देह तो मरेगी; वह तो क्षणभंगुर है। पानी का बबूला है; अभी है अभी नहीं। एक और जन्म है, जो स्वयं को ही देना होता है। वही शाश्वत है। वही ले जाता है महाजीवन में।कबीर के ये सूत्र, उसी महाजीवन की तरफ एक-एक सीढ़ियों की भांति हैं। सीधे-साधे वचन, पर महावाक्य हैं ये।कितनी दूरी मंजिल की हो चलते चलते कट जाती है। विदा दिवस-मणि की बेला में, धरती तम-वसना बन जाती, रजनी सुधि बुधि भूली जैसी अगम गगन में सेज बिछाती; कितनी रात अंधेरी हो पर
धीरे-धीरे कट जाती है। साहस हो तो बढ़ चल आगे हार न पंथी भर न निराशा, कुहू निशा की बेला में भी देख सितारा राह दिखाता; घनी अंधेरी उजियाले की एक रेख से फट जाती है। भूल न भावुकता में भोले, दुर्बलता न कभी फल पाई, नहीं याचना से जीवन में दो कण भी भिक्षा मिल पाई? विश्वासों की कुछ किरणों से,
दुःख की बदली छंट जाती है। नींद रंगीली बन सकती है, सपने स्वर्णिम बन सकते हैं, ढलते रवि की किरणों में

भी इंद्रधनुष नव तन सकते हैं; राह कंटीली प्रिय संबल पर हंसते-हंसते कट जाती है। कितनी दूरी मंजिल की हो चलते-चलते कट जाती है। यात्रा तो लंबी है। मार्ग तो कठिन है। चढ़ना है पर्वत-शिखर की ओर। उतार आसान होते हैं, चढ़ाव कठिन होते हैं। और यह तो अंतिम चढ़ाव है। चैतन्य के शिखर को छूना; इससे बड़ी न कोई यात्रा है, न कोई बड़ा अभियान है।लेकिन घबड़ाना मत। कितनी ही हो दूर मंजिल, चलते-चलते कट जाती है। एक-एक कदम चल कर—लाओत्सु ने कहा है—दस हजार मीलों की यात्रा पूरी हो जाती है। यही सोच कर कोई बैठ रहे कि इन छोटे-से कदमों से कैसे पहुंच पाऊंगा, तो फिर कोई यात्रा संभव नहीं; छोटी-सी दूरी भी पूरी नहीं हो सकती। प्रत्येक को एक ही कदम तो मिला है। एक बार एक ही कदम तो चल सकते हो। मगर एक-एक कदम चलते-चलते अनंत यात्रा भी पूरी
हो जाती है।ये छोटे-छोटे कदम हैं जो कबीर सुझा रहे हैं। पहले तो बात करते हैं उस अंतिम घड़ी की, उस शिखर की, ताकि तुम्हारे मन में वीणा बज उठे। पहले तो दिखाते हैं दृश्य—दूर गौरीशंकर का, प्रभात के सूर्य में स्वर्ण जैसा चमकता हुआ!ताकि तुम्हारे भीतर भी एक अदम्य अभीप्सा जाग सके। और अभीप्सा जागे तो ही कोई यात्रा पर निकल सकता है। इतनी कठिन यात्रा छोटे-छोटे विचारों से नहीं होती—महासंकल्प चाहिए, समग्र संकल्प चाहिए!इसलिए सारे संतों ने पहले तो परमात्मा की आनंद-अनुभूति के गीत गाए हैं कि तुम्हारे भीतर बीज अंकुरित हो उठे। उठे एक अदम्य भाव कि मैं भी पाकर रहूंगा। यह भरोसा जगाया है कि मिल सकता है तुम्हें भी। और फिर उस लंबी यात्रा के पड़ावों की चर्चा की है।'छारि पर्‌यौ आतम मतवारा।' कहते हैं कबीर : जैसे वर्षा हो उठे, जैसे घिर जाएं मेघ और अमृत बरस उठे—ऐसा हुआ है!'छारि पर्‌यौ आतम मतवारा।' णभ थ्इऊ़ ऐसी वर्षा हुई है आनंद की कि आत्मा मतवाली हो गयी है।'पीवत रामरस करत बिचारा।' अब रामरस पी रहा हूं, जी भरकर पी रहा हूं। जितना पी सकूं उससे ज्यादा बरस रहा है। इस आनंद-अमृत में मदमस्त हूं, नाच रहा हूं, गा रहा हूं। और एक विचार उठता है : बहुत मोलि महंगै गुड़ पावा।' लेकिन यह जो मधुरिमा मिली है, यह जो गुड़ मिला, यह जो मिठास मिली, यह बहुत कीमत चुका कर मिला। यूं ही नहीं मिला, मुफ132त नहीं मिला।धर्म मुफ132त नहीं है और भिक्षा मांगने से नहीं मिलता। और धर्म सस्ता नहीं है और थोथे क्रियाकांडों, यज्ञ-हवन, पूजा-पाठ, इस सब धोखे में समय मत खराब करना, ऐसे नहीं मिलता।कहते हैं कबीर : 'बहुत मोलि महंगै
गुड़ पावा।' बहुत कीमत चुकायी, तब यह मधुरिमा मिली है, तब यह मिठास मिली है। क्या कीमत चुकायी?'लै कसाब रस राम चुवावा।' वह जो कषाय रस भरे हुए थे, उनको निकाल बाहर किया। क्रोध है, मोह है, लोभ है, काम है, ईर्ष्या है, मद है, मस्तर है—कषाओं से हम घिरे हैं। कषाय यानी शत्रु। इन शत्रुओं को जब निकाल कर बाहर किया . . . लै कसाब! राम ने जब ये सब कषाएं ले लीं, जब हमने सब ये कषाएं उसे दे दीं, उसके चरणों में चढ़ा दीं . . .!फूल चढ़ाने से कुछ भी न होगा। फूल तुम्हारे हैं भी नहीं। तोड़ लिए गुलाब की झाड़ी से और चढ़ा दिए परमात्मा फर। परमात्मा भी तुम्हारा झूठा—पत्थर की मूर्ति; और फूल भी उधार—वे भी गुलाब के, तुम्हारे नहीं। झूठे परमात्मा पर उधार फूल चढ़ाकर तुम सोच रहे हो, अमृत की वर्षा होगी? तुम उस अलौकिक आनंद को उपलब्ध हो सकोगे? तुम उस स्वर्ण-शिखर पर पहुंच सकोगे? तुम्हारा पुनर्जन्म हो सकेगा? तुम्हारे जीवन में ऐसे वसंत आएगा? नहीं, इतनी सस्ती बात नहीं है।कबीर कहते हैं : सब कषाएं जब उसके हाथ में दे दीं—अहंकार, मद-मत्सर, काम, क्रोध, लोभ सब चढ़ा दिए उसके पैरों पर . . . ये चढ़ाने की चीजें हैं। फूल चढ़ाने से क्या होगा? दीये जलाने से क्या होगा? नारियल फोड़ने से क्या होगा? सिर चढ़ाओ, अहंकार चढ़ाओ।आदमी बड़ा चालबाज है। नारियल आदमी के सिर जैसा मालूम पड़ता है, इसलिए उसको खोपड़ा भी कहते हैं न! उसके आंखें भी होती हैं, दाढ़ी-मूंछ। आदमी ने तरकीब निकाल ली : अपना सिर चढ़ाने लगा। अपना लहू चढ़ाने की जगह उसने मंदिर की मूर्तियों पर कुमकुम चढ़ा दी, लाल रंग से मूर्तियां पोत दी हैं। किसको धोखा दे रहे हो?'बहुत मोलि महंगै गुड़ पावा। लै कसाब रस राम चुवावा।।' जब राम ने सब कषाएं

रखवा लिए अपने चरणों में, तब रस की वर्षा हुई, तब उसने अमृत पिलाया।तुम्हारा पात्र अगर गंदा हो तो उसमें अमृत भी
पड़ेगा तो गंदा हो जाएगा। तुम्हारा पात्र अगर जहर से भरा हो तो उसमें अमृत कौन डालेगा! पहले तो इस सारे जहर को परमात्मा को सौंप देना होगा। और कुछ तुमसे मांगता नहीं परमात्मा—कोई धन नहीं मांगता, कोई पद नहीं मांगता, कोई प्रतिष्ठा नहीं मांगता। मांगता है तुम्हारे रोग, तुम्हारी बीमारियां, ताकि तुम्हें स्वास्थ्य दिया जा सके।ज्योतित दीप झरो! वसुधा के आंगन में नभ के ज्योतित दीप झरो! घोर अमा के अंधकार में नभ, भू, तम की गहन धार में शुभ आलोक भरो! ज्योतित दीप झरो! निर्मल-नभ का हास्य अनोखा धरणी मंद-मंद मुस्काती, नई नवेली बनी सुहागिन
तारों से शुभ मांग सजाती, दीप अवनि से उमग-उमग कर तम पर टूट पड़ो। प्रार्थनाएं तो करते हैं लोग कि जलो दीप, ज्योतित दीप झरो! प्रार्थनाएं तो लोग करते हैं : अंधकार गहन है। हे परमात्मा, हे ज्योतिर्मय—ज्योति दे!' पर कीमत चुकाने की बात ही भूल जाते हैं, बस प्रार्थनाएं चलती रहती हैं। और ऐसी प्रार्थनाएं न सुनी जाती हैं, न ऐसी प्रार्थनाएं कभी किसी सार्थकता को उपलब्ध होती हैं। ऐसी प्रार्थनाओं में गंवाया समय बस सिर्फ गंवाया समय है। प्रार्थना का मूल्य तभी है, प्रार्थना की प्रामाणिकता तभी है, जब तुम उसके साथ मूल्य भी चुकाने को राजी होओ। और मूल्य क्या है? कूड़ा-कर्कट सब चढ़ा दो उसके चरणों में। देने योग्य तुम्हारे पास और है भी क्या? हीरे-जवाहरात तो हैं भी नहीं : कंकड़-पत्थर हैं। मगर इनको ऐसे छाती से लगा कर बैठे हो!मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं : 'क्रोध छूटे नहीं छूटता।' क्रोध से पाया क्या है जो इतना जोर से पकड़े हो? दुःख पाया, पीड़ा पायी, जहर पाया; फिर भी छूटता नहीं और उनकी बात से ऐसा लगता है जैसे क्रोध ने उन्हें पकड़ा है।शेख फरीद के पास ऐसे ही किसी आदमी ने जाकर पूछा था—फरीद कबीर के समसामयिक थे—कि क्रोध नहीं छूटता। फरीद मस्तमौला आदमी थे। बैठे थे, उठकर खड़े हो गए। पास ही खंबा था मंदिर का, उस खंबे को जोर से पकड़ लिया और चिल्लाने लगे : 'छुड़ाओ, छुड़ाओ' भीड़ इकट्ठी हो गयी। लोगों ने कहा कि आपका दिमाग तो ठीक है? आप अचानक पागल तो नहीं हो गए? खंबे को आप ही पकड़े हो और कहते हो बचाओ, छुड़ाओ!फरीद ने कहा : 'इस आदमी को उत्तर दे रहा हूं। यह कहता है क्रोध से छुड़ाओ; जैसे कि क्रोध ने तुम्हें पकड़ा हो! अब यह खंबा थोड़े ही मुझे पकड़े है; मैं
ही इसको पकड़े हूं। यह रहा, छोड़ दिया तो छूट गया।'इस बोध को स्मरण में लो। ये भी तरकीबें हैं तुम्हारे मन की—क्रोध से छुड़ाओ, मोह से छुड़ाओ, लोभ से छुड़ाओ। इसमें तुमने मौलिक भ्रांति को स्वीकार ही कर लिया कि जैसे इन्होंने तुम्हें पकड़ा है।इन्होंने तुम्हें नहीं पकड़ा है; तुम्हीं इन्हें पकड़े हो। तुम जिस दिन छोड़ना चाहोगे, क्षण भर भी देर नहीं करनी होगी। तुमने निर्णय किया और छूटे, तत्क्षण छूटे।'लै कसाब रस राम चुवावा। तन पाटन मैं कीन्ह पसारा।' कितने शरीर के नगरों में से तुम गुजर चुके, कब सीखोगे पाठ? प्रत्येक शरीर एक गागर थी, जिसमें परमात्मा का सागर उतर सकता था। मगर तुम भरे रहे—राख से, कूड़े-कर्कट से, कंकड़-पत्थर से। तुमने परमात्मा को अवकाश न दिया, स्थान न दिया। कितने शरीरों से गुजर गए हो यूं—अंधे, आंख बंद किए! कितने अवसर तुमने गंवाए हैं उसकी अनुकंपा अपार है कि फिर-फिर तुम्हें अवसर देता है; थकता ही नहीं; आशा नहीं छोड़ता; तुम पर भरोसा नहीं छोड़ता। तुमने उस पर भरोसा नहीं किया है; उसका भरोसा अडिग है, अथक। आज नहीं कल तुम लौट ही आओगे। सुबह नहीं तो दोपहर, दोपहर नहीं तो सांझ तुम लौट ही आओगे।'मांगि-मांगि रस पीवै बिचारा।' तुम कितने नगरों से निकले और मांग-मांग कर चाहते थे रस मिल जाए। बड़े नासमझ हो। कबीर कहते हैं : बड़े बेचारे हो, बड़े दया-योग्य हो, दया के पात्र हो।'मांगि-मांगि रस पीवै बिचारा।' आशा रखते हो कि मांगने से अमृत मिल जाएगा। मांगने से अर्थ है—हमारी वासनाएं, हमारी आकांक्षाएं, हमारी अभिलाषाएं। ये सब भिखमंगेपन के सबूत हैं। हम मांगते ही चले
जाते हैं—यह दो, वह दो। हमारी मांग कभी समाप्त ही नहीं होती। एक मांग पूरी नहीं होती कि दस नयी मांगे

खड़ी हो जाती हैं। हमारा भिक्षापात्र भरता ही नहीं, भरना जानता ही नहीं!'मांगि-मांगि रस पीवै बिचारा।' रस कहां मिला तुम्हें? बिन मांगे मोती मिलें, मांगे मिले न चून। रहीम ने ठीक कहा है। मांगने से कुछ भी न मिलेगा। कुछ चीजें हैं जो बिना मांगे मिलती हैं, क्योंकि कुछ चीजें हैं जो मालिकों को मिलती हैं, भिखमंगों को नहीं मिलतीं। भिखमंगों को वही मिलता है जो भिखमंगों के योग्य है। मालिकों को वही मिलता है जो मालिकों के याग्य है।तुम जरा क्रोध, लोभ, माया, मोह परमात्मा के चरणों में तो रख कर देखो, अचानक तुम पाओगे तुम मालिक हो गए! इनके जाते ही तुम्हारी गुलामी कट गयी, तुम्हारी जंजीरें टूट गयीं, तुम्हारा कारागृह नष्ट हो गया। और परमात्मा केवल मालिकों को ही दे सकता है। जिनकी कोई मांग नहीं, उनको दे सकता है। जिनकी कोई मांग नहीं, वे पाने के अधिकारी हैं। मांगा कि चूके। नहीं मांगो। मांगने के ऊपर उठ जाओ—तत्क्षण वर्षा हो जाएगी, तत्क्षण वसंत आ जाएगा।धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत-रजनी! तारकमय न वेणी बंधन, शीश फूल कर शशि का नूतन, रश्मि-वलय सित फन-अवगुंठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी! पुलकती आ वसंत-रजनी! मर्मर की सुमधुर नूपुर-ध्वनि, अलि-गुंजित प189ों की किंकिणि भर पद-गति में अलस तरंगिणि तरल रजत की धार बहा दे मृदु स्मित से सजनी! विहंसती आ वसंत-रजनी! पुलकित स्वप्नों की रोमावलि, कर में हो स्मृति की अंजलि, मलयानिल का चल दुकूल अलि!
घिर छाया-सी श्याम, विश्व को आ अभिसार बनी, सकुचती आ वसंत-रजनी! सिहर-सिहर उठता सरिता-उर खुल-खुल पड़ते सुमन सुधा भर, मचल-मचल आते पल फिर फिर, सुन प्रिय की पदचाप हो गई पुलकित यह अवनी! सिहरती आ वसंत-रजनी! सिहरती आ वसंत-रजनी! पुलकित हो गयी यह अवनी! यह सारी पृथ्वी जैसे वसंत के आगमन पर दुल्हन बन जाती है, ऐसे ही तुम जब अपने को शून्य कर लेते हो व्यर्थ की वासनाओं से, तो उतरना है एक महावसंत। कहो उसे
निर्वाण, मोक्ष, कैवल्य, परमात्मा, या जो भी नाम तुम्हें प्रिय हो। फूल पर फूल तुम्हारे भीतर खिलते चले जाते हैं—चैतन्य के फूल! और अपूर्व सुगंध उठती है!लेकिन यह मालिकों के ही जीवन में वसंत आता है। भिखमंगों के जीवन में कभी वसंत नहीं आता। संन्यास मालिक बनने की प्रक्रिया है। इसलिए संन्यासी को स्वामी कहते हैं। स्वामी का अर्थ है : मालिक। अब वह भिखमंगा नहीं। मगर संन्यास ऊपर से ही लिया तो किसी अर्थ का नहीं। तुम्हारे भीतर मालकियत की घोषणा होनी चाहिए। और एक ही उपाय है कि तुम चुका दो, परमात्मा जो कीमत मांगता है।'कहैं कबीर फाबी मतवारी।' और कबीर कहते हैं : जब तक मांगा तब तक हम दयनीय अवस्था में रहे, कुछ न पाया। और अब! ऐसी वर्षा हो रही है, ऐसी अनंत आनंद की धार बह रही है—फाबी मतवारी! ऐसी मस्ती छा रही है—'पीवत रामरस लगी खुमारी!' अब जो राम-रस पीया है, तो ऐसी खुमारी लगी है जो टूट नहीं सकती। यह जो शराब पी ली है परमात्मा की, अब बस यह नशा उतरने वाला नहीं। जो नशा उतर जाए वह भी कोई नशा है! नशा चढ़े और उतरे नहीं, वही नशा है।कबीर कहते हैं : मांग-मांग कर नहीं मिला था और बिना मांगे मिला है। ऐसे ही तुम्हें भी मिलेगा।और इस खुमारी को पाए बिना जाना मत, विदा मत होना। कितनी ही प्रतीक्षा करनी पड़े, प्रतीक्षा करना। और कितना ही श्रम करना पड़े, श्रम करना। और कितनी ही कठिनाई हो उसके चरणों में अहंकार चढ़ाने में, झेल लेना कठिनाई, मगर यह सिर चढ़ा ही देना है!मैं मिलन प्रतीक्षा में प्रिय की अलि हंस कर दिवस बिता लूंगी
मेरे शीतल निश्वासों से मधु वात सिहर सी जाती है, मेरी अंतर-ज्वाला से ही यह रात्रि सुलगती जाती है, सखि, मैं वियोग के तम में ही अपना उज्ज्वल विध पा लूंगी। पथ मेरा परिचित है, पथ का अणु-अणु मेरा चिर-परिचित रे! मंजिल कितनी ही दूर रहे यह गैल सदा की परिचित रे। पथ के कंटक को भी अलि मैं, सुख से दो पग में छा लूंगी।
अंतर में ज्वाल उठा करती नयनों से धार बहा करती; उर की इस विकल रागिनी को दुनिया दे कान सुना करती।

सखि, मैं प्रिय के सुख-हेतु तार उर के सब आज बजा लूंगी।। उस परमात्मा के सामने तुम्हारे हृदय की वीणा बजनी चाहिए। भिखमंगा यह नहीं कर सकता। वह तो रोता है, गिड़गड़ाता है। उसकी वीणा पर क्या आनंद के गीत उठेंगे? वह क्या वसंत को पुकारेगा? वह तो कौड़ियों के पीछे दीवाना है। उसकी नजर तो कौड़ियों पर अटकी है।रामकृष्ण कहते थे : चील आकाश में भी उड़ती है तो भी उसकी नजर घूरे पर पड़े मरे चूहे में लगी रहती है। उड़ती आकाश में है, लेकिन नजर घूरे पर लगी रहती है। मरे चूहे में! तुम मंदिर में भी बैठे हो, नजर कहां है? कोई मरा चूहा! किसी घूरे पर। हाथ में पूजा का थाल है, नजर कहां है? मुख पर राम-राम है और बगल में छुरी। नजर कहां है?और नजर ही निर्णायक है। क्या तुम कर रहे हो, क्या तुम कह रहे हो—इसका कोई मूल्य नहीं। तुम्हारी दृष्टि में क्या है? क्योंकि तुम्हारी दृष्टि ही तुम्हारी सृष्टि है। वही तुम्हें निर्मित करती है। वही है सृजन की प्रक्रिया।यह तो कबीर ने उस परम दशा की बात कही। अब वह कहते हैं मार्ग की बात। मंजिल की पहले कही, कि थोड़ी तुम्हारी
हृदयतंत्री झनझना उठे। अब मार्ग की बात—

'सील संतोख' ते सब्द जा मुख बसै, संतजन जौहरी सांच मानी।' 'सील-संतोख'! एक तो शील . . . शील का अर्थ साधार आचरण नहीं होता, साधारण नैतिकता नहीं साधारण चरित्र नहीं। साधारण चरित्र तो दो कौड़ी का है। वह तो तुम्हारा अहंकार का ही आभूषण है। उससे तुम्हें मान मिलता, मर्यादा मिलती, पद-प्रतिष्ठा मिलती। लोग कहते हैं : 'अहा, कैसा धार्मिक व्यक्ति है, कैसा चरित्रवान! कलियुग में भी सतयुगी है! और तुम्हारा अहंकार फूलता है।और चरित्र ऊपर से थोपी हुई बात है। जो तुम्हारे मां-बाप ने, समाज ने, चर्च ने, पंडित-पुरोहितों ने सिखा दिया है, वही तुम्हारा चरित्र बन जाता है। और शील! शील ध्यान से उठी हुई सुगंध का नाम है। कोई और नहीं सिखाता उसे; वह तुम्हारे भीतर का आविर्भाव है। जब तुम शांत होते हो तो तुम्हारे जीवन में एक प्रसाद होता है, एक सौंदर्य होता है, एक गरिमा, एक महिमा। बाहर से आरोपित नहीं, अभ्यास की गयी नहीं—तुम्हारे भीतर से जागी। तुम्हारे भीतर मौन होते चैतन्य ने ही तुम्हें जो दृष्टि दी है, उसके अनुसार तुम चलते हो—वह शील। पंडित-पुरोहित जो समझाते हैं, उनके अनुसार चलते हो—वह चरित्र। चरित्र थोथा होता है। उसकी गहराई चमड़ी से भी ज्यादा गहरी नहीं होती; जरा-सा खरोंच दो, खतम हो जाता है।एक युवक न्यूयार्क गया। वह अपने मित्र के साथ बगीचे की एक बेंच पर बैठा हुआ है। एक सुंदर युवती निकली। उस युवक ने अपने मित्र से पूछा : 'यह कौन है?' उसने कहा, 'यह है सुजान। दस डालर।' उसके पीछे एक दूसरी स्त्री आती थी, पूछा, 'यह कौन है?' कहा, 'यह है अन्ना। बीस डालर।' उसके पीछे एक तीसरी स्त्री आती थी, कहा : ' यह कौन है?' कहाः गिलोरिया। पचास डालर।' मित्र ने पूछा कि क्या न्यूयार्क में एक भी चरित्रवान स्त्री नहीं है? हर स्त्री की कीमत बता रहे हो!मित्र ने कहा, 'चरित्रवान स्त्रियां क्यों नहीं हैं!हैं! मगर तुम उनकी कीमत न चुका सकोगे।बस कीमत के भेद हैं। तुम खुद ही सोचो। तुमसे कोई पूछे कि दस रुपए का नोट पड़ा है राह के किनारे, उठाओगे? तुम कहोगे
: 'कभी नहीं, मैं कोई चोर हूं!' लेकिन कहे कि दस लाख रुपए पड़े हैं, तो फिर तुम कहोगे, 'जरा विचार करना पड़ेगा।' दस लाख छोड़ना मुश्किल हो जाएगा। मुल्ला नसरुद्दीन एक लिफ132ट में सवार हुआ। साथ एक महिला और थी। एकांत, लिफ132ट जैसे ही दरवाजा बंद हुआ ऊपर की तरफ उठी, मुल्ला ने पूछा, 'अगर हजार रुपए दूं तो तुम मेरे साथ चलने को राजी हो?' उस स्त्री ने कहा, 'तुमने मुझे क्या समझा है? अभी रोकती हूं लिफ132ट और अभी शोरगुल मचाती हूं।'मुल्ला ने कहा, 'ठहर, पहले पूरी बात सुन ले। दस हजार दे सकता हूं।' उस स्त्री ने कहा, 'दस हजार!' शांत हो गयी। कहा, 'ठीक है।' तो मुल्ला ने कहा, 'और दस रुपया?' उस स्त्री ने कहा, 'अभी दरवाजा खोलती हूं और चीख मारती हूं।'मुल्ला ने कहा , 'अब चीख वगैरह मारने की कोई जरूरत नहीं।' उस स्त्री ने कहा, 'मुझे तुमने समझा क्या है?' मुल्ला ने कहा : 'वह तो अपन ने तय ही कर लिया। अब तो मोल-भाव कर रहे हैं। तू कौन है, वह हम समझ गए। हम कौन हैं, वह तू समझ गयी।

हम खरीददार, तू बेचने वाली। दस हजार में बेच सकती है, तो बात ही खतम हो गयी, बात तो तय हो गयी। अब रहा मोल-भाव करने का, तो वह तो दस रुपए से ज्यादा मेरे पास हैं नहीं।'हर आदमी की कीमत है यहां। यहां बड़े से बड़े राजनेताओं की कीमत है, राष्ट्रपतियों की कीमत है, प्रधानमंत्रियों की कीमत है। हां, जरा बड़ी कीमत है स्वभावतः। पुलिसवाले की बेचारे की उतनी कीमत है जितनी उसकी हैसियत है।जिनको तुम चरित्रवान कहते हो, यह हो सकता है उनकी कीमत जरा ज्यादा हो और तुम न चुका सको। मगर चरित्र की कीमत होती है, क्योंकि चरित्र अंतर से आविर्भूत नहीं होता; बाहर से ही थोपा गया है। और बाहर से भी थोपा गया है तो प्रलोभन के आधार पर ही थोपा गया है। तुम्हें कहा गया है कि अगर सच बोलोगे; अगर ईमानदार रहोगे तो स्वर्ग में बड़ा सुख मिलेगा। उस सुख को पाने के लिए तुम सच भी बोल रहे हो; लेकिन अगर कोई सुख देने को यहीं राजी हो जाए, तो फिर तुम सोचोगे कि अब मरने के बाद की बात बाद में देखेंगे, पहले यहां सुख ले लें, और बाद की कौन जान आया है! कोई लौटकर कहता तो नहीं आकर कि बाद में क्या घटता है। हाथ की आधी रोटी खोना कल्पना की पूरी रोटी के लिए—नासमझी है। तुम्हारा गणित तुमसे कहेगा कि राजी हो जाओ; अभी फिलहाल इसको तो निपटाओ, फिर आगे का आगे देखेंगे। और अभी जिंदगी पड़ी है, और पुण्य कर लेंगे। मगर यह अवसर छोड़ना ठीक नहीं।चरित्र का कोई आधार नहीं होता, स्रोत नहीं होता तुम्हारे भीतर। ऊपर से टांगा हुआ होता है। जैसे कोई कागजी फूल ले आए और वृक्षों पर लटका दे। शायद पास-पड़ोस के लोगों को धोखा भी हो, लेकिन कागज के फूल, कागज के फूल हैं असली फूल वृक्षों की जड़ों से जुड़े होते हैं।और यही फर्क है चरित्र और शील में। चरित्र होता है कागजी, आरोपित। शील होता है अंतःस्फूर्त; भीतर से जागा हुआ। जैसे झरने का कलकल-नाद, ऐसे तुम्हारे ध्यान का जो कलकल-नाद है, वही शील है।कबीर कहते हैं : 'सील-संतोख'। दोनों को एक साथ रखा, क्योंकि जहां शील है वहां संतोष है ही। चरित्रवान जरूरी नहीं है कि संतोषी हो।अकसर लोग मेरे पास आकर कहते हैं कि 'हम हर तरह से नैतिक जीवन जी रहे हैं, मगर हर जगह अनैतिक लोग मजा लूट रहे हैं। यह कैसा न्याय है! भ्रष्ट लोग धन पा रहे हैं, पद पा रहे हैं। यह परमात्मा का कैसा न्याय है?' इनको संतोष नहीं है अपने चरित्र से। चरित्र से इन्हें कोई रस भी नहीं है। ये चाहते थे चरित्र के साथ इनको पद भी मिले, प्रतिष्ठा भी मिले तो ये मानेंगे कि परमात्मा न्यायशील है। और इन बेईमानों को समझाने के लिए पंडित-पुरोहितों ने रास्ते निकाल लिए हैं, वे कहते : उसकी दुनिया में देर है, मगर अंधेर नहीं। देर की तरकीब निकाल ली, क्योंकि नहीं तो समझाएं कैसे! यहां दिखायी तो यही पड़ता है कि बेईमान सिर पर बैठ जाते हैं। ईमानदार सब जगह चारों खाने चित्त और बेईमान छाती पर चढ़े हैं। अब कैसे लोगों को समझाएं कि ईमानदार रहो! बेईमानी जीतती मालूम पड़ती है। असत्य जीतता मालूम पड़ता है। सत्य की जगह-जगह हार है। कैसे समझाएं सत्यमेव जयते, कि सत्य की विजय होती है? तो उन्होंने एक तरकीब निकाली, एक फार्मूला निकाला कि देर है, अंधेर नहीं; घबड़ाओ मत। थोड़ी देर लगेगी; इस जन्म में नहीं, अगले जन्म में, मगर मिलेगा।मगर देर भी क्यों? आग में हाथ डालते हो, अभी जलता है कि देर लगती है? और मजा यह है कि ईमानदारों के लिए ही देर है, बेईमान अभी मजा ले रहे हैं! उनके लिए न देर है न अंधेर है। और क्या पता जो देर कर रहा है, वह आखिर में अंधेर भी करे! और जो यहां जीत रहे हैं, कौन जाने वहां भी जीत जाएं, क्योंकि जीतने की कला उन्हें आ जाएगी। छाती पर बैठने का गणित वे समझ लेंगे। बहुत संभावना तो यही है कि जो तुम्हारे सिर पर यहां बैठे हैं, वे ही लोग तुम्हारे सिर पर स्वर्ग में भी बैठेंगे, अगर कहीं कोई स्वर्ग होगा। क्योंकि तुम्हारी आदत हो जाएगी लोगों को सिर पर ढोने की, उनकी आदत हो जाएगी सिर पर बैठने की। बहुत संभावना तो यही है कि अगर कोई भी दूसरा लोक है तो इसी लोक का सिलसिला होगा। इसी लोक के साथ उसका तारतम्य होगा; वह इससे विपरीत नहीं हो सकता। इसी में उसकी 137ृंखला जुड़ी होगी।मगर ये झूठे चरित्र को बनाए रखने के लिए ये सारी तरकीबें ईजाद करनी पड़ीं।शील के साथ संतोष होता ही है। शीलवान वही है, जिसके साथ संतोष भी हो।

जो शील से भरा है उसके मन में कभी यह सवाल ही नहीं उठता कि बेईमान जीत रहा है; वह तो जानता है—'मैं जीत ही गया हूं। ठीकरे मेरे पास नहीं हैं, न हों।' उसे दया आती है जिनके पास ठीकरें हैं उन पर, क्योंकि वह जानता है—असली संपदा मेरी ही है और ये बेचारे व्यर्थ की चीजों में उलझे हैं और व्यर्थ की चीजों के लिए कितना गंवा रहे हैं!'रामकृष्ण के पास एक आदमी आया, दस हजार रुपए रामकृष्ण को भेंट करना चाहता था। रामकृष्ण ने कहा कि तू ही इनको रख, तू ही इनको रखने का पात्र है; क्योंकि हम हैं भोगी, तू है त्यागी। वह आदमी तो बहुत चौंका। उसने रामकृष्ण से कहा, आप कह क्या रहे हैं; आप होश में हैं परमहंस देव? मुझ भोगी को त्यागी बता रहे हैं, और आप जैसा त्यागी, अपने को भोगी कह रहा है!'रामकृष्ण ने कहा कि नहीं, भोगी मैं हूं, क्योंकि मैंने कचरा छोड़ा और रामरस पी रहा हूं। और तुमने रामरस छोड़ा और कचरा छाती से लगाए बैठे हो। त्यागी कौन? त्यागी तुम हो! हीरे छोड़ दिए, कंकड़-पत्थर पकड़े—त्यागी तुम। मैंने तो हीरे पकड़े, कंकड़-पत्थर छोड़े—यह कैसा त्याग! मैं तो भोगी हूं।जिन्होंने जाना है वे यही कहेंगे। तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। जिन्होंने त्यागा है वे ही जानते हैं भोग का असली अर्थ, भोग का असली राज; क्योंकि उन्होंने ही भोगा है, और बाकी

तो सिर्फ भोग की भ्रांति में हैं। बुद्ध ने भोगा, कृष्ण ने भोगा, कबीर ने भोगा, फरीद ने भोगा, नानक ने भोगा; बाकी तुम तो भ्रांति में हो। तुम सब त्यागी हो। तुम असली चीज तो छोड़े हो। पास ही अमृत की धार बह रही है, उसको छोड़े हो और एक गंदे नाले में पानी पी रहे हो, तो त्यागी नहीं तो कौन हो! महात्यागी हो।जहां शील है वहां एक अपूर्व संतोष होगा। लेकिन शील उठता है भीतर से; वह ध्यान का परिणाम है।.50ृ 'सील-संतोख ते शब्द जा मुख बसै . . .।' कबीर जो ध्यान के लिए शब्द उपयोग करते हैं वह शब्द है—'सबद'। जिसके भीतर राम की धुन अपने-आप उठने लगी है, उठानी नहीं पड़ती; जिसके भीतर ओंकार का नाद होने लगा है—उसको 'सबद' कहते हैं वे। जिसके भीतर अनाहत बजने लगा। जिसने सुन लिया परम संगीत। जिसने जीवन की परम संगीतमयता का अनुभव कर लिया। मैं उसको ध्यान कह रहा हूं; वे उसको 'सबद' कहते हैं, वह उनका शब्द है।.25ृ 'सील-संतोख ते सब्द जा मुख बसै, संतजन जौहरी सांच मानी।' संतजन ऐसे ही व्यक्ति को सच्चा मानते हैं, बाकी सब झूठे हैं; क्योंकि बाकी सब थोथे हैं, ऊपर-ऊपर रंग लिया है चेहरे को, मुखौटे लगा लिए हैं।होली आयी और दिल्ली में एक घटना घटी। एक बड़े नेताजी की लोग बहुत दिन से फिकर में थे कि होली आए तो मजा चखाएं। होली है इसीलिए कि जिनको तुम गाली नहीं दे सकते—नहीं तो अदालत में मुकदमा चलेगा—उनको तुम होली के दिन गाली दे सकते हो। वह सुविधा है। और तुम देखते हो कि होली पर जो गालियां दी जाती हैं, उन गालियों का नाम है—'कबीर'! क्योंकि कबीर ने ऐसी कुटाई की है, ऐसा सिर फोड़ा है पंडितों का, पुरोहितों का कि 'कबीर' शब्द ही एक तलवार की धार हो गया है।और पकड़ो नेताओं को; और जो साल भर तुम्हारी छाती पर मूंग दलते हैं मलो उनके चेहरों पर कालिख, कोलतार . . . तो नेताजी को पकड़ लिया लोगों ने और खूब कोलतार मला और आशा रखते थे कि महीने दो महीने भी छुड़ाना मुश्किल हो जाएगा। शाम को देखने गए कि हालत क्या है। नेताजी बैठे मुस्करा रहे! कोलतार का कोई पता ही नहीं! लोग बड़े चौंके। उन्होंने कहा कि हुआ क्या, इतने जल्दी आपने धो कैसे डाला!उन्होंने कहा कि तुम नेताओं का राज ही नहीं जानते। वह देखो! . . . कोने में मुखौटा पड़ा था, जिस पर कोलतार पोता था।कोई नेताजी का असली चेहरा होता है! वे तो कई चेहरे रखते हैं—जब जैसी जरूरत हुई। चेहरा बदलते उन्हें देर नहीं लगती, क्षण में बदल लेते हैं। उनका असली चेहरा पकड़ में नहीं आता। अब यह भी कहना पक्का नहीं कि अभी जो चेहरा है वह असली होगा। यह दूसरा मुखौटा हो सकता है। संभावना यही है, क्योंकि असली चेहरा तो केवल संतों के पास होता है।' . . . संतजन जौहरी सांच मानी।' संतजन असली जौहरी हैं, पारखी हैं। जो मनुष्य को पहचानते हैं उन्होंने इस बात को आधार बनाया है : सील संतोख तुम्हारे भीतर के सबद से उठें तो तुम सच्चे मनुष्य हुए; तुम पहली बार मनुष्य हुए।'बदन विकसित रहै खयाल आनंद मैं, अधर मैं मधुर मुसकान

बानी।' और तुम्हारा जीवन एक कमल की तरह खिलता रहे। 'खयाल आनंद मैं . . .' और सदा भीतर आनंद के फूल खिलते रहें। 'अधर है मैं मधुर मुसकान बानी . . .' और तुम्हारा जीवन एक मुस्कराहट हो, तो ही ऐसा संतोष . . .। मुरदा संतोष नहीं। एक मुरदा संतोष होता है—अंगूर खट्टे वाला संतोष, कि लोमड़ी नहीं पहुंच सकी अंगूरों तक, तो यह कह कर चल दी कि अंगूर खट्टे हैं। यही संतोष, तुम्हें दिखाई पड़ेगा अधिक लोगों में। वे कहते हैं—'रखा क्या है धन में,' क्योंकि पा नहीं सके; रखा क्या है महलों में,' क्योंकि पा नहीं सके। अब इस तरह संतोष कर रहे हैं!यह संतोष नहीं हैं। यह चालबाजी है। यह अपने को समझाना है। यह सांत्वना है, संतोष नहीं। संतोष बड़ी और बात है।संतोष का अर्थ है : महलों से बड़ा महल पा लिया; हीरों से बड़े हीरे पा लिए; यह जगत जो दे सकता है, उससे बड़ी संपदा अनुभव
कर ली, उपलब्ध कर ली—इसलिए संतोष है। इसलिए—नहीं कि अंगूर खट्टे थे।इस देश में तुम्हें अंगूर खट्टे वाला संतोष बहुत फैला हुआ मिलेगा। क्या करें, लोग दीन-हीन हो गए हैं सदियों से, अब इसी दीन-हीनता को उन्होंने गौरव बना लिया। दीन-हीनता को भी उन्होंने सुंदर शब्द दे दिए हैं—दरिद्रनारायण'। दरिद्र होना भी जैसे गरिमा की बात हो गयी! दरिद्र होने में एक आध्यात्मिकता आ गयी। अछूत को अब कहने लगे— 'हरिजन'। हरिजन हमने कहा है बुद्धों को और अब अछूत होना काफी है हरिजन होने के लिए। सभी ब्राह्मण भी हरिजन नहीं हैं; कभी-कभार कोई हरिजन होता है।और अब तो शूद्र होना काफी है हरिजन होने के लिए। हम अच्छे शब्द देने में बड़े होशियार हो गए हैं, बड़े कुशल हो गए हैं! अच्छे शब्द लगा देते हैं। असलियत को ढांपने के लिए, छिपाने के लिए शब्दों का जाल बिछा देते हैं। संतोष, सांत्वना, धैर्य, शांति—और सबके पीछे भीतर जलती हुई आग है, विषाद है, पराजय है, विफलता है।नहीं, यह संतोष कबीर का संतोष नहीं। यह संतोष मेरा संतोष नहीं। संतोष तो वह, जब तुम्हारे भीतर सहस्त्र-दल कमल खिलें!'बदन विकसित रहै खयाल आनंद मैं, अधर मैं मधुर मुसकान बानी। सांच गैले नहीं झूठ बौले नहीं, सुरत मैं सुमति सोई श्रेष्ठ ज्ञानी।' 'सांच गेलै नहीं झूठ बोले नहीं' . . . सत्य को छोड़े नहीं, झूठ बोले नहीं। . . . 'सुरत मैं सुमति सोई स्त्रेष्ठ ज्ञानी।' और जिसकी अंतर्प्रज्ञा में परमात्मा का स्मरण सतत बहता रहे, वही है ज्ञानी; वेद का ज्ञाता नहीं, कुरान का ज्ञाता नहीं। उपनिषद और गीता कंठस्थ हों, इससे कुछ नहीं होता। भीतर सुरति बहती रहे। और जब भीतर सुरति बहती है, स्मृति बहती है, तो परमात्मा सब जगह दिखाई पड़ने लगता है।

तुम छिपो चाहे जहां प्रिय, मैं तुम्हें पहचान लूंगी।
कुमुदिनी के शशि बनो, अथवा कमल के रवि बनो तुम; तुम उषा के प्राणवल्लभ, या निशा की छवि बनो तुम। दिवस हो या रात्रि हो, पर मैं तुम्हें तो जान लूंगी। तुम्हीं में अरमान मेरे हो तुम्हीं धन-मान मेरे, हैं तुम्हारे ही लिए दिन-रात नंदित गान मेरे।

मैं तुम्ही में घुल गई प्रिय, और क्या वरदान लूंगी।

तुम छिपो चाहे जहां प्रिय, मैं तुम्हें पहचान लूंगी। भीतर अंतर्धारा बहने लगे उसके स्मरण की,
तो वृक्षों से झांकती हुई धूप और छाया उसकी ही माया है। फिर भीतर खिले फूल कि बाहर खिले फूल, सब उसके ही फूल हैं; सब खिलावट उसकी है। फिर भीतर उठे गंध या बाहर उठे गंध, सब उसकी ही सुगंध है। यह सारा अस्तित्व उसका मंदिर है। फिर उसी के स्वर्ण-कलश चारों तरफ चमकने लगते हैं। फिर तुम जहां झुके वहां काबा। फिर तुम जहां बैठे शांत और मौन होकर, वहां काशी। फिर नहीं तुम्हें किसी तीर्थ-यात्रा पर जाने की कोई जरूरत है; तुम जहां हो वहीं तीर्थ है।'सांच गेलै नहीं झूठ बोलै नहीं . . .।' मगर ध्यान रखना, इस भेद को सदा ध्यान रखना इन पूरे सूत्रों में—कि एक तो है चरित्रगत सत्य, कि सत्य बोलूंगा, चाहे कुछ भी हो जाए। भीतर झूठ उठ रहा है और तुम सत्य बोल रहे हो कबीर इसकी बात नहीं कर रहे हैं। कबीर कह रहे हैं : भीतर से ही सत्य उठे; बोलना न पड़े, थोपना न पड़े, आरोपण न करना पड़े। और जब भीतर से ही सत्य उठे तो झूठ तुम कैसे बोलोगे? बोलना भी चाहो तो न बोल सकोगे। बोलने जाओगे, तो भी सत्य ही निकल जाएगा।

'कहत हौं ज्ञान पुकारि कै सबन सों, देत उपदेस दिल दर्द जानी।' और ऐसा जो ज्ञानी है, जिसके भीतर सुरति बहने लगी है, जिसके भीतर सत्य का आविर्भाव हुआ है, झूठ जिसके भीतर से हट गया है; जैसे अंधकार हट जाए दीये के जलने पर, ऐसे सत्य के जलने पर झूठ हट जाता है—वह बोलता है तो किसी शाब्दिक, सैद्धांतिक, बौद्धिक विवाद को पैदा करने के लिए नहीं; किसी को हिंदू, मुसलमान, ईसाई बनाने के लिए नहीं; किसी पंथ, किसी संप्रदाय के निर्माण के लिए नहीं। अगर वह बोलता है तो सिर्फ इसलिए कि तुम्हारे दिल के दर्द को पहचानता है, तुम्हारी पीड़ा को पहचानता है। और उसके पास तुम्हारी पीड़ा के लिए, तुम्हारी प्यास के लिए कुछ है। उसकी उपलब्धि है कि तुम्हारी पीड़ा मिटा दे, कि तुम्हारी प्यास बुझा दे। उसने जो पाया है, उसे बांटने के लिए बोलता है। 'ज्ञान को पूर है, रहनि को सूर है' . . .। जहां ध्यान है, वहां ज्ञान है। ध्यान है दीये की ज्योति और ज्ञान है दीये का प्रकाश। और जहां ध्यान है, जहां ज्ञान है, वहां स्वभावतः तुम्हारे बाहर भी प्रकाश विकीर्णित होने लगेगा।

जिस घर में दीया जलेगा, उसकी खिड़की से, द्वार-दरवाजों से भी रोशनी बाहर पहुंचने लगेगी। वही आचरण है।.

'ज्ञान को पूर है, रहनि को सूर है' . . .। और एक बात खयाल रखना : जिस व्यक्ति के भीतर भी ध्यान से अनुभव पैदा होता है, उसके विपरीत जीवन नहीं जीया जा सकता। फिर चाहे कोई भी कीमत चुकानी पड़े। गर्दन कटे तो कट जाए। मंसूर की कट गयी, लेकिन 'अनलहक' का उदघोष बंद न हुआ। मंसूर के गुरु जुन्नैद ने कहा भीः 'मंसूर, इसको अपने भीतर ही रख। यह घोषणा कि मैं ईश्वर हूं, कि मैं सत्य हूं। तुझे मुश्किल में डालेगी। मुझे भी मुश्किल में डालेगी। इसको अपने भीतर ही रख। इसको बोल मत।'मंसूर कहता कि जरूर, आप जैसी आज्ञा देते हैं वैसा ही करूंगा। और फिर मस्ती आ जाती, फिर खुमारी लग जाती और फिर चिल्ला बैठता—'अनलहक'! जुन्नैद ने बहुत बार कहा कि देख तू आश्वासन देता है और तोड़ देता है। मंसूर ने कहा कि आश्वासन जो देता है वह नहीं तोड़ता—आश्वासन मैं देता हूं, लेकिन मैं ही नहीं रह जाता। जब वह परमात्मा मुझ पर सवार हो जाता है—तो फिर मैं नहीं रह जाता । फिर वही बोलता है। इसलिए फिर जो होगा होगा।'मंसूर को सूली लगी, लेकिन आखिरी दम तक जब तक सांस रही, अनलहक का उदघोष होता रहा; मैं ईश्वर हूं, इसकी घोषणा मंसूर करता रहा। असत्य बोला नहीं जा सकता। सत्य जान लिया जाए तो सत्य ही बोला जा सकता है।तुम्हें दिखायी पड़ जाए कि कहां दरवाजा है और कहां दीवाल, तो तुम दरवाजे से ही निकलोगे, दीवाल से कैसे निकलोगे? हां, अंधा आदमी बेचारा कभी-कभी दीवाल से टकरा सकता है। मगर आंख वाला! वह दरवाजे से निकलता है।'ज्ञान को पूर है, रहनि को सूर है' . . .। क्यों रहनी के लिए 'सूर' कहा कबीर ने? क्योंकि ज्ञान तो तुम्हारे भीतर होता है, किसी को उसका पता भी नहीं चलता; लेकिन जब तुम अपने ज्ञान को जीवंत करते हो, जब तुम अपने ज्ञान को जीने लगते हो, तो औरों को पता लगेगा और अड़चन शुरू होगी। इसलिए ज्ञान से जो पूर होता है, उसको एक न एक दिन रहनी में 'सूर' भी होना पड़ता है। उसको बड़ा साहस चाहिए, अदम्य साहस चाहिए;

क्योंकि अंधों की दुनिया में आंख वाला आदमी होना, इससे बड़ा और कोई उपद्रव नहीं है। पागलों के बीच पागल न होना, इससे बड़ा और कोई खतरा नहीं है।और यहां चारों तरफ अंधों की भीड़ है, पागलों की जमातें हैं। इसलिए तुमने बुद्धों के साथ हमेशा दुर्व्यवहार किया। फिर पीछे तुम पूजा करते हो सदियों तक; वह पूजा केवल तुम्हारे अपराध-भाव के कारण है। क्योंकि बुद्धों से तुमने जो दुर्व्यवहार किया है, उससे तुम्हारे मन में ग्लानि होती है। जब वे विदा हो जाते हैं तो ग्लानि जोर से तुम्हें पकड़ लेती है। फिर तुम पूजा करते हो।बुद्ध ने कहा था मेरी मूर्ति मत बनाना। आज दुनिया में जितनी बुद्ध की मूर्तियां हैं, उतनी किसी और की नहीं। क्या हुआ? क्यों लोगों ने मूर्तियां बनायीं? बुद्ध के साथ जो दुर्व्यवहार किया था, उस पाप का प्रक्षालन कर रहे हैं। उस अपराध-भाव से पूजा उठ रही है। यह पूजा भी झूठी है। यह सिर्फ अपने अपराध-भाव को पूरा करने के

लिए है। यह अपने ही सामने अपने-आप की प्रतिमा को सुंदर कर लेने का उपाय है—कि देखो हम कितने भक्त, कितने प्रार्थना से भरे हुए, कितने पूजा से भरे हुए! यह भुलाने की कोशिश है।अगर जीसस को आज दुनिया में मानने वालों की सर्वाधिक भीड़ है, तो उसका कारण जीसस को लगी सूली है। सूली से बड़ा अपराध-भाव पैदा हो गया। हमने मारा जीसस को तो अब कैसे पश्चाताप करें, कैसे प्रायश्चित करें?. . .पूजा करो, अर्चना करो, फूल चढ़ाओ! तुम्हारी सारी पूजा झूठी है, क्योंकि अपराध से उठी है, आनंद से नहीं। आनंद तो तुम्हारे पास है ही नहीं।'ज्ञान को पूर है, रहनि को सूर है, दया की भक्ति दिल माहिं ठानी।'जिसके भीतर ज्ञान भरता है, उसके आचरण में साहस आ जाता है। आना ही पड़ेगा, क्योंकि अब उसे सत्य को जीना पड़ता है; अब कोई उपाय नहीं, कोई विकल्प नहीं। भीतर सत्य है, सत्य बाहर आकर रहेगा। 'दया की भक्ति दिल मांहि ठानी'. . .और अब उसकी एक ही भक्ति है, वह है करुणा। वह भगवान के मंदिर में पूजा करने नहीं जाता। वह तो अपनी करुणा लुटाता है, अपना प्रेम लुटाता है। उसकी करुणा के कारण जहां-जहां पीड़ा है, जहां-जहां लोग भटके हैं, जहां-जहां लोग अटके हैं, उन्हें सुलझाता है।

'ओर ते छोर लौं एक रस रहत है, ऐसजन जगत में बिरलै प्रानी।' ऐसा व्यक्ति ओर से छोर तक एक होता है, अखंड; यह उसकी पहचान है। उसमें टुकड़े नहीं होते, खंड-खंड नहीं होता। तुम खंड-खंड हो। तुम एक भीड़ हो। तुम्हारे भीतर बहुत लोग छिपे हैं। सुबह कुछ, दोपहर कुछ, सांझ कुछ; तुम्हारा कुछ भरोसा नहीं है। अभी कुछ कहोगे, कल बदल जाओगे। तुम्हारे आश्वासन सब झूठे हैं। तुम किसी स्त्री से कहोगे कि मैं तुझे जीवन भर प्रेम करूंगा और तुम इसका भी पक्का नहीं कर सकते कि कल भी उसे प्रेम करोगे; जीवन-भर की तो बात और।मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री से कह रहा था कि तुझसे सुंदर कोई स्त्री इस दुनिया में नहीं है। मैं तुझे जीवन-भर प्रेम करूंगा। जीवन भर ही क्या, अगर कोई और भी आगे जीवन हुआ तो भी तुझे ही प्रेम करूंगा।स्वभावतः स्त्रियां ऐसी बातों से प्रसन्न हो जाती हैं। वह स्त्री बहुत प्रसन्न हो गयी। मुल्ला ने कहा, 'ठहर, बहुत प्रसन्न मत हो जा, क्योंकि यह मेरी आदत है। ऐसा मैं कई स्त्रियों से कह चुका और आगे भी कहूंगा।'एक और घटना मैंने सुनी है कि मुल्ला एक स्त्री से प्रार्थना किया कि मुझसे विवाह कर ले। उस स्त्री ने साफ इनकार कर दिया। मुल्ला ने कहा कि देख, अगर मुझे इनकार किया, अभी मर जाऊंगा। आत्महत्या कर लूंगा।स्त्री थोड़ी डरी। उसने कहा : 'क्या यह बात सच है?'मुल्ला ने कहा, 'सच है! यह मेरी पुरानी आदत है। यह कोई आज की बात नहीं है। जब भी कोई स्त्री मुझे इनकार करती है, मैं तत्क्षण आत्महत्या करने की बात करता हूं।'तुम्हारे भीतर तुम जरा गौर करना। तुम्हारे आश्वासन, तुम्हारे भरोसे, तुम्हारे वचन, क्या मूल्य रखते हैं? एक क्षण के बाद के लिए भी तुम क्या वचन दे सकते हो? तुम्हारे भीतर एक स्वर ही अभी नहीं है; अभी एक व्यक्ति का जन्म ही नहीं हुआ है। अभी तुम विभक्त हो, खंड-खंड हो। एक बाजार हो, एक भीड़ हो।'ओर ते छोर लौं एक रस रहत है'. . .जिसके

भीतर ध्यान का दीया जलता है, उस रोशनी में एकता पैदा होती है।. . .'ऐस जन जगत मैं बिरलै प्रानी।' बहुत मुश्किल से ऐसा व्यक्ति जगत में मिलेगा, जो ओर-छोर एक है।.50ृ लट खुलती जाती निशि की शशि ने आनन दिखलाया,.50ृ तारों की आंखें चमकीं रजनी ने जाल बिछाया। .50ृ निद्रा की साड़ी ओढ़े दुनिया ने दुःख भुलाया। .50ृ बेहोशी ने स्वप्नों का है सुंदर कुंज खिलाया। .50ृ निशि की अलसित पलकों में क्या नए स्वप्न हैं जागे .50ृ बजते हैं तार हृदय के, क्या होने वाला आगे? .50ृ इन किरणों की डोरी से ऊपर को कौन चढ़ाता? .50 ृ सौरभ-सा आज हृदय उड़ अनजान दिशा को जाता।

.50ृ सागर की लहरें, मानो, सोने की तरणी लातीं। .50ृ किस छवि की शुभ्र पताका मुझको उस पार बुलाती। .50ृ कुछ ऐसा अनुभव होता—हूं विकल जिसे पाने को, .50ृ वह स्वयं आ रहा मुझको अपने घर ले जाने को। णभ थ्इऊ ृ तुम तैयार भर हो जाओ; तुम एक भर हो जाओ, अखंड—और यह घटना घटेगी।.50ृ कुछ ऐसा अनुभव होता—हूं विकल जिसे पाने को, .50ृ वह स्वयं आ रहा मुझको अपने घर ले जाने को। फिर

परमात्मा को खोजने नहीं जाना पड़ता, वह स्वयं ही तुम्हें लेने आ जाता है अपने स्वर्ण-रथ पर। वह तुम्हें खोजता आता है। उसे आना ही पड़ेगा।.25. 'ठग्ग बटमार संसार में भरि रहे, हंस की चाल कहं काग जानी।' और इस जगत में इस तरह के विरले लोग पहचाने नहीं जा सकते, क्योंकि यहां की मुसीबत एक है कि यहां ठगों से दुनिया भरी है। यहां कौओं की बहुत भीड़ है। यहां कोई हंस आ जाए तो कौए पहले तो उसे मान ही नहीं सकते। पहले तो कौए कोशिश करेंगे कि कुछ गड़बड़
हो गयी, कुछ प्रकृति की भूल हो गयी। रंग दो इसको भी कोलतार से। और कौओं की ही अदालतें हैं और कौओं के ही जज हैं और कौओं की ही पुलिस और कौओं के ही न्याय, और कौओं के ही नेता, और कौओं की सारी दुनिया है! हंस अकेला पड़ जाता है, उसकी सुने कौन! यहां राजनीति है, कूटनीति है; धर्म कहां? यहां चालबाजी है, बेईमानी है, पाखंड है; सत्य कहां?'मालिक को विश्वास नहीं है तो मैं दोनों गाएं घर पर ला कर ही दुह दिया करूंगा; साहब, दोनों बड़ी मरकही, जरा, पास कोई मत आए, मुंह अंधियारे लाना होगा, अपना नौकर खड़ा करा दें, दूध नपा लें।' बड़े सवेरे ग्वाला लेकर गाएं आता,टुन-टुन टुन-टुन घंटी बजती, पड़े रजाई में जाड़े की सुखद सुबह में अच्छा लगता, फिर मटकी में धारों के फिर-फिर गिरने का शब्द मधुर कानों को लगता।अपने संस्कारों में हम अब भी किसान हैं, उससे जो संबद्ध हमें प्यारा लगता है, फिर होता संतोष दूध अब शुद्ध मुझे औ' मेरे लड़कों को मिलता है।.75
एक रात कुछ तुकें तोड़तेऔर जोड़ते सुबह हो गई; सोचा, खुद ही बाहर जा कर दूध दुहा लूं।जो देखा हैरत अंगेज था।ग्वाला, गाएं नहीं, बैल की जोड़ी लाता, कुछ लंबे कंबल उनकी पीठों पर डाले, दूध मिला पानी भी अपने घर से लाता, औ' घुटनों में दाब दोहनी हाथ चलाने का केवल अभिनय भर करता, मुंह से 'षिर-षिर' स्वर निकालता,औ' पी-पी कर शुद्ध दूध हम सपरिवार दिन-प्रतिदिन अंदर ज्यादा ताकत अनुभव करते।राजनीति के कैसे-कैसे रूप विचरते।यहां सब तरफ पाखंड है। इसलिए सत्य सूली पर चढ़ाया जाता रहा। सत्य को बर्दाश्त करना मुश्किल है, क्योंकि बहुतों के न्यस्त स्वार्थों को चोट पहुंचती है।.25. 'चपल और चतुर हैं बनै बहु चकिने, बात मैं ठीक पै कपट ठानी।' बड़े चतुर हो गए हैं लोग, बड़े कुशल हो गए हैं लोग। बात में बड़े होशियार हो गए हैं लोग और भीतर सिर्फ कपट है,धोखा है।बहुत दिनों से जमे हुए थे एक मेहमान अंततःतंग आकर एक दिन यूं बोले यजमान— 'महोदय जी, आपकी याद करते होंगे
आपके परिवार जन बच्चे बेचैन होंगे, बीबी तड़फती होगी मन ही मन बेचारीविरह में जलती होगी आप बिन घर छोड़े आपके हो चुके हैं—एक महीना और सात दिन !'पलंग पर पैर पसारते हुए मेहमान ने कहा— 'अरे वाह!आपने अच्छी याद दिलाई, मैं तो भूल ही गया था भाई!कल ही मैं घर एक तार कर दूंगाबीबी को, बच्चों को—सबको बुला लूंगा।' 'कहा तिन सौं कहों दया जिनके नहीं घात बहुतें करें बकुल ध्यानी।' क्या कहा जाए उनके संबंध में—कबीर कहते हैं—जिनके जीवन में प्रेम नहीं, करुणा नहीं। और इस तरह के लोग बहुत हानि कर रहे हैं। 'बकुल ध्यानी' उनको कबीर कह रहे हैं। देखा है बगुले को ध्यान करते? बगुला कैसा खड़ा होता है! हिलता नहीं, डुलता नहीं। योगियों ने तो उसका एक आसन ही बना लिया—बगुलासन। है भी; योगी की तरह खड़ा हो जाता है बगुला, एक टांग पर खड़ा रहता है! हिले-डुले, खतरा है। हिले-डुले, पानी हिल-डुल जाए। पानी हिल-डुल जाए, मछलियां चौंक जाएं। तो उसे खड़े रहना पड़ता है बिलकुल योग साधे। जब कुछ भी नहीं हिलता, कुछ भी नहीं डुलता, मछलियां आश्वस्त होकर आस-पास घूमने लगती हैं। बगुला उसी की प्रतीक्षा करता है, फिर झपट्टा मार देता है।कबीर ने कहा है : इस तरह के बकुल
ध्यानी बहुत घात कर रहे हैं, जिन्हें ध्यान का कुछ भी पता नहीं। ऐसे मैं नामालूम कितने महात्माओं को जानता हूं, जिन्होंने न कभी ध्यान किया न कभी करने की सोची, मगर ध्यान दूसरों को करवा रहे, ध्यान दूसरों को समझा रहे हैं। इस तरह के लोग जितना नुकसान पहुंचाते हैं उतना नुकसान राजनैतिक भी नहीं पहुंचा सकते।बकुल ध्यानियों से सावधान रहना। ये शास्त्रों को पढ़ लेते हैं और शास्त्रों की व्याख्या करते रहते हैं। ये

शब्दों की खाल निकालने में बड़े कुशल हो जाते हैं।.25ֈ 'दुर्मती जीव की दुबिध छूटे नहीं, जन्म जन्मांत पड़ नरक खानी।' ध्यान रहे, इस तरह की दुर्मति से अगर जिए तो दुविधा छूटेगी नहीं और जन्मों- जन्मों तक दुःख पाओगे, नरकों में पड़ोगे।.25ֈ 'काग कूबुद्धि सूबुद्धि पावै कहां, कठिन कठोर बिकराल बानी।' कौआ सुबुद्धि पाए कहां! वह बैठता नहीं हंसों के पास। हंसों की बात ही उसे बड़ी कठिन-कठोर लगती है। कौआ चाहता है यह सुनना कि कोई कहे कि 'अहा, कैसे सुंदर तुम्हारे बोल हैं! कैसा संगीतपूर्ण तुम्हारा जीवन है!' कौआ चाहता है कोई कहे कि तुमने कोयल को मात दे दी। लेकिन कोई प्रबुद्ध पुरुष ऐसा तो नहीं कह सकता। वह तो सत्य को कहेगा, चाहे सत्य कितना ही कड़वा हो। वह तो सत्य के अतिरिक्त असत्य नहीं कह सकता है, चाहे असत्य कितना ही तुम्हें मधुर क्यों न लगे, असत्य की तुम्हारी आकांक्षा कितनी ही क्यों न हो। तुम खुशामद सुनना चाहते हो और कबीर जैसे लोग तुम्हारे सिर पर लट्ठ मार देते हैं। इसलिए कौए पहुंच ही नहीं पाते सुनने हंसों के पास। कौए अपनी कांव-कांव में ही लगे रहते हैं।'अगिन के पुंज हैं सितलता तन नहीं, अमृत और विष दोऊ एक सानी।' समझो। तुम्हें परमात्मा ने सब कुछ दिया है। देह भी दी है, आत्मा भी दी है। अमृत भी दिया है, विष भी दिया है। दोनों को सानो मत, □ दोनों को अलग-अलग करो। अमृत को पीओ। जहर में मिलाकर मत अमृत पीओ, क्योंकि एक जीवन का महानियम है कि अश्रेष्ठ की एक बूंद भी श्रेष्ठ के पूरे सागर को नष्ट कर देती है। श्रेष्ठ कोमल होता है। एक पत्थर मार दो गुलाब के फूल पर, पत्थर का कुछ भी नहीं बिगड़ेगा, गुलाब का फूल नष्ट हो जाएगा, क्योंकि गुलाब का फूल एक श्रेष्ठता के जगत में जीता है। पत्थर एक निम्न अस्तित्व है, कठोर है। गुलाब कोमल है।ऐसे ही संतों के वचन हैं। उनकी आलोचना बड़ी आसानी से की जा सकती है। उन पर पत्थर फेंके जा सकते हैं; वे गुलाब के फूल हैं। और गुलाब के फूल जल्दी ही नष्ट भी हो जाते हैं। पत्थर पड़े रहेंगे और तुम यह मत सोचना कि पत्थर जीत गए।फत्थर क्या जीतेंगे! गुलाब के फूल मिट सकते हैं, मगर हारते नहीं; फिर फिर लौट आते हैं; आते ही चले जाएंगे। जब तक हर पत्थर गुलाब न हो जाएगा, गुलाब के फूल आते ही रहेंगे।'कहा साखी कहे सुमति जागा नहीं, सांच की चाल बिन धूर धानी।'और ऐसे लोग भी तुकबंदियां करते हैं और सोचते हैं 'साखी' कह रहे हैं।'साखी' कबीर का अपना शब्द है। साखी शब्द को समझना; वह साक्षी का रूप है। जिसको साक्षी का अनुभव हुआ हो, उसके वचन का नाम—'साखी'। जिसने अपने भीतर साक्षी को जान लिया हो—ध्यान की वह अंतिम शुद्धता, कि मैं केवल साक्षी मात्र हूं—ऐसा जिसने जान लिया हो उसके बोल का नाम साखी। तुकबंदियों से साखियां नहीं बनतीं।ये कबीर के जो वचन हैं, ये साखियां हैं। हालांकि तुम्हें कवि मिल जाएंगे, जो इनसे अच्छे वचन लिख देंगे। इन वचनों में कुछ बड़ी कविता नहीं है। ये वचन तो साधारण हैं—कविता की दृष्टि से। मगर साक्षी हैं ये, क्योंकि कबीर के अनुभव की गवाही देते हैं।और लोग हैं कि तुकबंदियां बना रहे हैं। तुकबंद कवि हो जाते हैं। दुनिया से ऋषि खो गए, तुकबंद बचे हैं। ऋषि और कवि में यही भेद है। कवि वही कहता है जो कहने में मधुर लगता है और ऋषि वही कहता है जो सत्य है। मधुर लगे, कठोर लगे, यह बात अप्रासंगिक है।णभ थ्इऊ ֈ 'सुकृति और सत्त की चाल □ सांची सही, काग बक अधम की कौन खानी।'मत फिक्र करना कौओं की और मत फिक्र करना बगुलों की; इन दो से बचना। कौए कहते हैं कबीर पंडितों को, क्योंकि वे कांव-कांव लगाए रखते हैं; और बगुले कहते हैं कबीर झूठे महात्माओं को, क्योंकि वे एक टांग पर खड़े हैं। नजर मछलियों पर लगी है, लेकिन योग-साधन कर लिया है, योगासन साधे खड़े हैं। माला जप रहे हैं।कबीर की भाषा में कौए हैं—पंडित, और बगुले हैं—तथाकथित महात्मा; इन दोनों से बचना। अगर इन दोनों से बच सको तो सत्य तक पहुंच सकते हो। और फिर सत्य की चाल सीधी है, साफ है। ये दो भटकाते हैं। इन दो से सावधान हो जाना।'कहै कबीर कोऊ सुघर जन जौहरी, सदा सावधान पियो नीर छानी।' हां, मिल जाए अगर कभी कोई जौहरी—जिसने जाना हो, पहचाना हो, देखा हो, जीया हो परमात्मा को, जो सदा सावधानी से उसके अमृत को पी रहा हो—तो फिर बैठना उसके

सत्संग में, फिर डूब जाना उसके साथ, तल्लीन हो जाना। फिर उसके संगीत में अपने को मिटा देना, गला देना। फिर उसके सत्संग में अपने को बचाना मत। फिर रत्ती-भर कंजूसी न करना। फिर दूर दर्शक की तरह नहीं; साधक की तरह उसके पास बैठना। तो एक दिन तुम्हारे जीवन में भी यह घटना घट सकेगी—'छारि पर्‌यौ आतम मतवारा। पीवत रामरस करत बिचारा।। बहुत मोलि महंगै गुड़ पावा। लै कसाब रस राम चुवावा।। तन पाटन मैं कीन्ह पसारा। मांगि मांगि रस पीवै बिचारा।। कहैं कबीर फाबी मतवारी। पीवत रामरस लगी खुमारी।।' आज इतना ही।

सोलहवां प्रवचन

सत्संग

प्रश्न-सार

आज बड़ी मुद्दत के बाद आपके सन्मुख होने का अवसर मिला।ण एक अजब अनुभव से गुजरा। ऐसा लगता था जैसे आंखों के णसामने प्रकाश ही प्रकाश है। और बड़ी अजीब-सी सुगंध से णनासा-पुट भर गए थे। रीढ़ में अंदर पसीना-सा जा रहा था। मैं कहां था, खबर नहीं है। शब्दों का बस स्णांगीत था—पहली णबार, अर्थ न था।. . .आनंद! प्रभु आनंद!

मुझ पर ऐसे जैन संस्कार पड़े हैं कि मन की सूक्ष्म वैचारिक अवस्था यानी आत्मा। और आप उसी मन को मारने के लिए, णछोड़ने के लिए कहते हैं। मैं समझ नहीं पाता। दुविधा में पड़ा जाता हूं। कृपया प्रकाश डालें।

आप कहते हैं, होनी होय सो होय। तो क्या कुछ न करें? बस उसी पर छोड़ दें?

पहला प्रश्न : भगवान! आज बड़ी मुद्दत के बाद आपके सन्मुख होने का अवसर मिला। एक अजब अनुभव से गुजरा। ऐसा लगता था जैसे आंखों के सामने प्रकाश ही प्रकाश है। और बड़ी अजीब-सी सुगंध से नासापुट भर गए थे। रीढ़ में अंदर पसीना-सा जा रहा था। मैं कहां था, खबर नहीं है। शब्दों का बस संगीत था—पहली बार, अर्थ न था।. . .आनंद, प्रभु आनंद!स्वभाव! सन्मुख होना ही सत्संग है। लेकिन सन्मुख होना सिर्फ भौतिक अर्थों में कोई सार्थकता नहीं रखता। ऐसे तो कोई सामने बैठ सकता है और फिर भी उसकी पीठ हो। अगर मन में विचारों का ऊहापोह चल रहा है,

तो सन्मुख हो कर भी तुम विमुख ही रहोगे। मन में ऊहापोह समाप्त हो गए हों, विचारों की तरंगें न हों, मन एक शांत झील हो गया हो—तो फिर तुम कहीं भी हो, सन्मुख हो।सन्मुखता एक आंतरिक अवस्था है। बैठते-बैठते सत्संग में कभी घटती है। तुम्हारे घटाए तो घट नहीं सकती, कि तुम चाहो तो घट जाए। क्योंकि तुम्हारी चाह भी बाधा है। तुम्हारी चाह भी एक विचार है, एक चेष्टा है। और जहां विचार है, चेष्टा है, वहीं विमुखता है। इसलिए अनायास ही घटती है। धैर्य चाहिए। बैठते रहे सत्संग में, उठते रहे सत्संग में कोई जल्दी न की, कोई अपेक्षा न की—तो किसी न किसी दिन तुम अचानक अपने को सन्मुखता में पाओगे। और तब यह घड़ी घेर लेगी तुम्हें। यह अपूर्व अनुभव होगा। क्योंकि जब तुम सदगुरु के सन्मुख होते हो तो तुम भी मिट जाते हो, सदगुरु भी मिट जाता है।इस आधारभूत बात को ठीक से समझ लेना। जब तक मैं का भाव है, तभी तक तू भी है। मैं और तू एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब तक शिष्य हैं तभी तक गुरु भी हैं। गुरु की तरफ से तो न गुरु है न शिष्य है। शिष्य की तरफ से शिष्य भी है और गुरु भी है। जैसे ही शिष्य-भाव मिटा, जैसे ही तुम शांत हो गए, इतनी भी अस्मिता न रही, इतना भी अहंकार न रहा कि मैं हूं, कि मैं शिष्य हूं, कि मैं धार्मिक हूं, कि संन्यासी हूं, कि सत्य का खोजी हूं, अन्वेषी हूं—ऐसा कोई भाव ही न रहा; एक निर्भावदशा हो गई— उसी क्षण गुरु भी मिट गया। न तुम रहे न गुरु रहा। तब अपूर्व प्रकाश का अनुभव होगा। वह प्रकाश मेरा नहीं है, वह प्रकाश तुम्हारा नहीं है; वह प्रकाश परमात्मा का है। जहां मैं नहीं, जहां तू नहीं वहां जो शेष रह जाता है उसी का नाम परमात्मा है—उस शून्य का, उस सन्नाटे का!वही हुआ। तुम कहते हो : 'आज बड़ी मुद्दत के बाद आप के

सन्मुख होने का अवसर मिला।' मुद्दत के बाद भी मिल जाए तो जल्दी है। मुद्दत के बाद भी मिल जाए तो सौभाग्य है। क्योंकि लोग इतने अंधे हैं, आते भी हैं मगर आते कहां हैं! बहरे हैं, सुनते हैं मगर सुनते कहां! न सुनते हैं, न देखते हैं; क्योंकि भीतर इतना उपद्रव चल रहा है, भीतर इतना शोरगुल मचा है। इस शोरगुल के कारण ही हम चूक रहे हैं। नहीं तो वृक्षों के पास बैठ जाओगे, वहां भी यही प्रकाश प्रकट होगा। जहां बैठ जाओगे शांत होकर, मौन होकर, जहां मैं मिटा वहीं प्रकाश प्रकट हुआ। यह मैं की मृत्यु पर अनुभव होता है।

सन्मुख होने का इतना ही अर्थ है कि शिष्य का मैं मिट जाए। विमुख होने का अर्थ है—मैं सघन। फिर पीठ हो गुरु की तरफ या मुंह हो गुरु की तरफ कुछ भेद नहीं पड़ता। पास रहो कि हजार मील दूर रहो, कुछ फर्क नहीं पड़ता।तुम कहते हो : एक अजब अनुभव गुजरा।अजब लगेगा, क्योंकि कभी पहले हुआ नहीं। अन्यथा बिलकुल स्वाभाविक है, नैसर्गिक है। मगर जैसे अंधे आदमी को अचानक आंख मिले तो प्रकाश का अनुभव बड़ा अजब अनुभव होगा; हालांकि जिनके पास आंखें हैं वे कहेंगे, 'इसमें अजब क्या, इसमें गजब क्या?' अंधे को आंख मिलें और फूलों के रंग दिखें और इंद्रधनुष सतरंगा और तितलियों के पंख! अजब अनुभव होगा। आंख वालों से कहेगा कि बड़ा अजब अनुभव हुआ; वे कहेंगे, 'इसमें अजब क्या! फूलों में रंग होते हैं, इंद्रधनुष सतरंगा होता है, तितलियों के पर परमात्मा अपनी तूलिका से खूब रंगता है! इसमें अजब कुछ भी नहीं।' मगर अंधा भी ठीक कह रहा है, गलत नहीं कह रहा है। ऐसा पहले नहीं हुआ था। उसके पास ऐसी कोई स्मृति नहीं है जिसके आधार पर हम समझ सके।अजब का इतना ही अर्थ होता है कि हमारा अतीत कोई कुंजी नहीं देता, हमारा अतीत पृष्ठभूमि नहीं देता; हमारे अतीत से कोई संदर्भ नहीं उठता; हमारा अतीत एकदम अवाक रह जाता है, मौन रह जाता है, बोल भी नहीं पाता। एक क्षण को आश्चर्य-चकित, विमुग्ध, ठगे-ठगे हम रह जाते हैं। अवाक। वाणी खो जाती है। शब्द खो जाते हैं, ज्ञान खो जाता है, सूझ-बूझ खो जाती है। एक रहस्य किसी अज्ञात लोक से उतर कर हमें घेर लेता है। हम रहस्य में नहा जाते हैं।यही परमात्मा के अनुभव की शुरुआत है स्वभाव! परमात्मा ने पहली बार दस्तक दी तुम्हारे द्वार पर।निश्चित ही परमात्मा को हमने पहले जाना नहीं। उसकी दस्तक भी अपरिचित है। अगर सामने भी परमात्मा खड़ा हो जाए तो हम एकदम से पहचान न सकेंगे। इसीलिए तो सदगुरु की जरूरत है, कि जब परमात्मा तुम्हारे सामने खड़ा हो तो तुम्हें झकझोरे और कहे कि भर आंख देख लो, जी भर पी लो! इसी की तलाश जन्मों-जन्मों से। जिसको खोजते थे, आज द्वार पर खड़ा है। कहीं ऐसा न हो कि आयी शुभ घड़ी चूक जाए। भर लो झोली, भर लो प्राण! यह जो सुगंध बरस रही है, यह सदा के लिए तुम्हारी हो सकती है।

लेकिन प्रत्यभिज्ञा दो तरह से हो सकती है : या तो तुम्हारी स्मृति में कोई अनुभव हो तो तुम पहचान कर लो; या किसी और, पहचान जिसको हो, उसके कहे पर भरोसा कर लो, श्रद्धा कर लो। इसीलिए धर्म श्रद्धा के बिना नहीं जी सकता। विज्ञान बिना संदेह के नहीं जी सकता, धर्म बिना श्रद्धा के नहीं जी सकता। उनकी विधियां विपरीत हैं। विज्ञान को जीना हो तो संदेह करना ही होगा। विज्ञान की पूरी कला संदेह की कला है। संदेह को निखारो, उसको धार दो। जितना संदेह कर सकते हो उतनी ही तुम्हारे भीतर वैज्ञानिक प्रतिभा विकसित होगी। कुछ भी मान न लो, परीक्षण करो, प्रयोग करो हजार-हजार तरह से जांचो, परखो। जब कोई उपाय ही न रह जाए इनकार करने का तब मानना। और तब भी मत कहना कि सत्य है यह; इतना ही कहना परिकल्पना है, हाइपोथिसिस है। इतना ही कहना कि अब तक जो मैंने जांचा-परखा है, उसमें ठीक लग रहा है; लेकिन कल हो सकता है और नए तथ्यों का पता चले और गलत हो जाए। इसलिए कामचलाऊ है।विज्ञान के सभी सिद्धांत कामचलाऊ हैं। अभी तक के लिए सच हैं, कल का कुछ भरोसा नहीं। विज्ञान कहता है कि सब तरफ से जांचना; फिकिर इसकी ही करना कि किसी तरह गलत हो जाए। जब गलत हो ही न सके तो मान लेना। मजबूरी में मानना।और धर्म कहता है बिलकुल उल्टी बात। धर्म कहता है : श्रद्धा के बिना एक कदम आगे न बढ़ा जा सकेगा। तुम्हारे अनुभव में तो परमात्मा की कोई पहचान नहीं है। अगर तुम इनकार करते गए तो यह पहचान

कभी होगी भी नहीं। किसी पहचान करने वाले से दोस्ती बना लो। किसी पहचान करने वाले का हाथ पकड़ लो। किसी की पहचान हो गयी हो, उसके साथ अपना तारतम्य जोड़ लो। यही शिष्यत्व है। उसके साथ संदेह करोगे, विचार करोगे, तर्क करोगे, विवाद करोगे—दूर-दूर रहोगे फिर, फासला बना रहेगा। उसके साथ तो प्रेम ही हो सकता है।श्रद्धा प्रेम की ही सघनता है—इतनी सघनता कि सदगुरु अगर दिन को रात कहे तो भी शिष्य मानने को राजी हो जाता है। ऐसा नहीं कि मानने के लिए चेष्टा करता है। चेष्टा की, तो उसका अर्थ है कि भीतर अभी संदेह था। चेष्टा करता ही नहीं।तिब्बत में एक बहुत महत्वपूर्ण कथा है। मारपा अपने गुरु के पास गया। मारपा एक

बहुत अदभुत संत हुआ। मारपा नया-नया था, लेकिन श्रद्धा उसकी प्रगाढ़ थी। ऐसी प्रगाढ़ कि एक दिन गुरु ने कहा कि श्रद्धा अगर पूरी हो तो आदमी जल पर भी चल सकता है। गुरु तो समझा ही रहा था। लेकिन मारपा गया और नदी पर चल गया। और शिष्यों ने देखा मारपा को नदी पर चलते देखकर ईर्ष्या जगी। उन्होंने भी कोशिश की, किनारे पर डुबकी खा गए। मारपा नया-नया था, और शिष्य पुराने थे। और उन्होंने गुरु को आकर कहा कि मारपा नदी पर चल रहा है। गुरु भी थोड़ा हैरान हुआ। उसने सोचा भी नहीं था कि कोई चलेगा; वह खुद भी कभी चला नहीं था। यह तो शास्त्र को समझा रहा था। फिर एक दिन यह हुआ कि गुरु समझा रहा था कि श्रद्धा अगर पूर्ण हो और कोई पर्वत से भी कूद पड़े तो खरोंच नहीं लगती। मारपा गया और कूद गया। और खरोंच न लगी। और शिष्यों ने भी सोचा, हिम्मत की, लेकिन देखी गहराई; पानी पर तो चलने की कोशिश भी की थी कि किनारे डूब गए, वापिस लौट आए थे; यहां से तो लौटने का भी उपाय नहीं था, यहां से गिरे तो गए। छोटे-मोठे पत्थरों पर से कूद कर देखा, उसी में हाथ-पैर टूट गए। लौट कर गुरु को कहा। गुरु को अहंकार जगा। गुरु कोई गुरु न रहा होगा। थोथे गुरु! सौ में निन्यान्बे थोथे ही होते हैं। जहां असली सिक्के होते हैं वहां नकली सिक्के भी चलेंगे ही। असली होते हैं, इसलिए तो नकली चलते हैं। असली न हों तो नकली चल भी नहीं सकते।और नकली सिक्कों की एक खूबी होती है—अर्थशास्त्र का नियम है—कि नकली सिक्के असली सिक्कों को चलन के बाहर कर देते हैं। तुम्हारी जेब में अगर दस रुपए का एक नकली नोट है और दस रुपए का एक असली नोट है तो पहले तुम नकली को चलाओगे। स्वभावतः इससे जितनी जल्दी झंझट मिटे उतना बेहतर। पान वाले को पकड़ाओगे, सब्जीवाले को पकड़ाओगे, जहां भी चल जाए चला दोगे। असली को बचाओगे, नकली को चलाओगे। और अगर सभी के पास नकली रुपए हैं तो बाजार में नकली रुपए ही चलेंगे, असली तिजोड़ियों में बंद हो जाएंगे।और यही अकसर सदगुरुओं के संबंध में होता है। असली सदगुरु चल नहीं पाते।नकली सदगुरु खूब चलते हैं। नकली सदगुरु इसलिए चल जाता है कि वह तुम्हारी आकांक्षाओं की तृप्ति का भरोसा दिलाता है, आश्वासन दिलाता है। वह तुम्हें सांत्वना देता है, संक्रांति नहीं; वह तुम्हें संतोष देता है, रूपांतरण नहीं; वह तुम्हारी मलहम-पट्टी करता है; तुम्हारे जीवन को नए आयाम नहीं देता।ऐसा ही यह मारपा का गुरु रहा होगा। उसे अहंकार जगा कि जब मेरा शिष्य नदी पर चल गया, पहाड़ से कूद गया, तो मैं तो चल ही सकता हूं। पूछा उन्होंने मारपा को कि तू कैसे चला। उसने कहा कि कुछ नहीं, बस आपका नाम लिया और चल गया। गुरु के अहंकार की तो कोई सीमा न रही कि मेरा नाम जब इतना काम कर सकता है तो मैं क्या नहीं कर सकता! गुरु ने शिष्यों को इकट्ठा किया और कहा ः आओ नदी पर! और गुरु चला कि पहले ही कदम पर डुबकी खा गया। पहाड़ से कूदने की तो फिर उसने कोशिश ही नहीं की।गुरु को डुबकी खाते देख कर मारपा बड़ा हैरान हुआ। पूछा गुरु से, इसका राज क्या है? गुरु मारपा के चरणों पर गिर पड़ा और उसने कहा ः 'मुझे माफ करो।' मेरा अपना कोई अनुभव नहीं है। मैं तो शास्त्र समझा रहा था। लेकिन तुम्हारी श्रद्धा अपूर्व है, कि तुमने झूठे पर भी श्रद्धा की तो भी काम कर गयी।'श्रद्धा का रसायन बड़ा गहरा है। झूठे पर भी श्रद्धा काम कर सकती है, क्योंकि सवाल झूठ और सच का नहीं है सवाल श्रद्धा का है। श्रद्धा तुम्हारे भीतर एक आत्मबल जगाती है, एक ऊर्जा का स्फुरण होता है तो कभी-कभी झूठे गुरुओं के पास भी सच्ची श्रद्धा ने भवसागर पार

कर लिया है। और अकसर सच्चे गुरुओं के पास भी श्रद्धा न हो तो लोग पत्थरों की तरह बैठे रहे हैं; उनके प्राणों में कोई वीणा नहीं बजी, कोई गीत नहीं जगा।स्वभाव, तुम्हारे भीतर धीरे-धीरे श्रद्धा का जन्म हो रहा है। मैं रोज श्रद्धा में नए-नए पत्ते लगते देख रहा हूं। तुम धीरे-धीरे मिटे जा रहे हो। जितना मिटोगे उतना ही प्रकाश अनुभव होगा। जहां मिटे, कि प्रकाश ही प्रकाश है। अहंकार अंधेरा है और निरहंकारिता प्रकाश है। अहंकार दुग□ध है और निरहंकारिता सुगंध है।तो इस भ्रांति में मत पड़ना कि मेरा प्रकाश था, जो तुमने जाना। इस भ्रांति में मत पड़ना कि वह मेरी सुगंध थी, जो तुमने जानी। वहां कहां मेरा, कहां तेरा! वहां सुगंध है; न मैं है न तू है। वहां प्रकाश है, न मैं है न तू है।तुम कहते हो : 'ऐसा लगता था जैसे आंखों के सामने प्रकाश ही प्रकाश है।' अब तुम किसी झूठे गुरु से जाकर कहोगे तो वह कहेगा : 'हां, वह मेरा प्रकाश था—वह मेरी समाधि का, मेरे योग-बल का!' अगर कोई कहे वह मेरा प्रकाश था, तो समझ लेना कि यह जगह रुकने की नहीं है; यहां से हट जाना। क्योंकि जहां मेरा और मैं है वहां तुम मिट न सकोगे। वहां तुम्हारा तू भी जिंदा रहेगा, सूक्ष्म भाव से जिंदा रहेगा।तुम कहते हो : 'और एक बड़ी अजीब-सी सुगंध से नासापुट भर गए।' पहली बार जब अनुभव होता है तो आश्चर्य-विमुग्ध कर जाता है, चकित कर जाता है, चौंका जाता है।'रीढ़ में अंदर पसीना-सा आ रहा था।' जब तुम्हारे भीतर प्रकाश भरेगा, ऊर्जा उठेगी तो रीढ़ पर यह अनुभव हो सकता है। क्योंकि रीढ़ तुम्हारे मस्तिष्क से जुड़ी है। रीढ़ और मस्तिष्क अलग-अलग नहीं हैं। वैज्ञानिक तो कहते हैं : मस्तिष्क रीढ़ का ही फूल है। जैसे वृक्ष में फूल लगता है, ऐसे रीढ़ के ही ऊपर जा कर मस्तिष्क लगा है। मस्तिष्क रीढ़ का ही एक विकसित रूप है। रीढ़ और मस्तिष्क एक ही 137ृंखला में बंधेहैं।इसलिए जैसे ही तुम्हारे भीतर मस्तिष्क में अहंकार-शून्यता पैदा होगी, मैं-भाव मिटेगा, विचार क्षण भर को भी ठहर जाएंगे—वैसे ही रीढ़ में कोई सोयी ऊर्जा जगने लगेगी। उसको ही हमने कुंडलिनी कहा है। वह बड़ी उत्तप्त ऊर्जा है। लगेगा पसीना-पसीना हो गए। लेकिन बड़ा प्रीतिकर लगेगा वह अनुभव भी। और वह पसीना भी बहुत शीतल कर जाएगा। वह कोई साधारण पसीना नहीं है। पहले तो साधारण ही लगेगा, क्योंकि हम साधारण पसीने से ही परिचित हैं, और किसी तरह का पसीना तो हमने जाना नहीं।जब मुहम्मद को पहली बार परमात्मा का अनुभव हुआ, तो वे भागे हुए घर आए और कंबल ओढ़ कर सो गए। उन्होंने पत्नी से कहा : 'और कंबल जितने घर में हों, मेरे ऊपर डाल दे। मुझे लगता है बुखार है। पसीना-पसीना हुआ जा रहा हूं।' पत्नी ने उनके ऊपर कंबल पर कंबल डाल दिए। वे कंप रहे हैं और पसीना-पसीना हुए जा रहे हैं। पत्नी ने पूछा कि आप भले-चंगे घर से गए थे, अभी थोड़ी देर पहले ही घर से गए थे। अचानक ऐसा बड़ा बुखार कैसे आ गया?मुहम्मद ने कहा : तू पूछती है तो मैं तुझे कहता हूं। मगर किसी और को मत बताना। मैं पहाड़ी पर जा कर बैठा था ध्यान करने, कि आवाज आयी—'बोल! गुनगुना! पढ़!, मैं बहुत घबड़ाया। आवाज बाहर से भी आती लगती थी और भीतर से भी आती लगती थी। जैसे बाहर और भीतर एक हो गए थे! कोई मेरे अंतस्तल से बोल रहा था और वही आकाश से भी बोल रहा था। और मैं तो बेपढ़ा-लिखा हूं, तो मैंने कहा मैं पढ़ूं क्या खाक! मैं तो बेपढ़ा-लिखा हूं! लेकिन फिर आवाज आयी कि 'तू फिकिर मत कर, जब मैं साथ हूं तो लंगड़े पर्वत चढ़ जाते हैं, अंधे रोशनी देख लेते हैं। नहीं जो पढ़े हैं वे पढ़ने लगते हैं। नहीं जिनके कंठ हैं उनसे गीत फूट पड़ते हैं। तू गा, गुनगुना, पढ़!, और कुछ हुआ कि मैं गुनगुनाने लगा। और ऐसी अदभुत ऋचाएं उतरने लगीं, जो मेरे बस के बाहर हैं, जो मेरी नहीं हैं।ऐसे कुरान का जन्म हुआ। कुरान का इतना ही अर्थ होता है—कुरान शब्द का अर्थ होता है—पढ़।मुहम्मद ने अपनी पत्नी से कहा : किसी और को मत कहना। या तो मैं पागल हो गया हूं या कवि हो गया हूं; दो में से कुछ एक हो गया है। और एक बात पक्की है कि जो हुआ है वह मेरे वश के बाहर है, मेरी सामर्थ्य के बाहर है।मुहम्मद की पत्नी ही मुहम्मद की पहली शिष्या थी। उसने कहा कि नहीं; घबड़ाने की कोई बात नहीं, यह बुखार नहीं है। उम्र में भी बड़ी थी। मुहम्मद से अनुभवी भी थी। मुहम्मद छब्बीस वर्ष के थे, पत्नी चालीस वर्ष की थी। उसने कहा कि कुछ अनूठा हुआ है, कुछ ईश्वरीय हुआ है। यह अवस्था दिव्य भाव की है, यह समाधि की है। तुम्हारे भीतर से

परमात्मा गुनगुनाया है। तुम उसकी बांसुरी बन गए हो। घबड़ाओ मत। उठो! और जो आज्ञा हो उसका पालन करो।ऐसा ही पसीना तुम्हें स्वभाव, आ गया होगा। घबड़ाना मत। कभी और भी ज्यादा आ सकता है। कभी तो बिल्कुल ऐसा लग सकता है कि जैसे एक सौ दस डिग्री बुखार है। ऐसी प्रज्वलित अग्नि भीतर उठती है, तुम्हारे ही प्राणों में सोए हुए अंगारे सारी राख झाड़ देते हैं। ऐसे उत्तप्त हो उठते हो तुम! धीरे-धीरे फिर इस उत्ताप को भी सहने की क्षमता आ जाती है। इसको भी आत्मसात कर लेने का गुण आ जाता है। फिर इसका उठना बंद हो जाता है।कहते हो : 'मैं कहां था, खबर नहीं है।' तुम थे ही नहीं। होते तो खबर होती। कहते हो कि शब्दों का बस संगीत था—पहली बार अर्थ न था। वही मुझे सुनने का ठीक-ठीक ढंग है। जब तुम मुझे ऐसे सुन सको, जैसे कोई पहाड़ी झरने का कल कल नाद सुनता है या हवाओं के झोंकों का गुजरना वृक्षों से, या पक्षियों का गीत, या दूर से आती कोयल की आवाज—ऐसे जब तुम मुझे सुन सकोगे. . .। क्योंकि जब तक अर्थ खोजने की इच्छा बनी रहती है तब तक तुम दूर बने रहते हो; सुन रहे हो, लेकिन भीतर तुम सोच रहे हो कि ठीक है या गलत है; मेरे विचार से मेल खाता कि नहीं खाता; मैं जो अब तक मानता रहा हूं उसके साथ बैठता कि नहीं बैठता। जब तक तुम इस हिसाब में पड़े हो. . .अर्थ का और क्या अर्थ होता है? अर्थ का यही अर्थ होता है कि तुम अपने साथ तारतम्य बिठाने की कोशिश कर रहे हो; अपने अतीत, अपने मन के साथ जोड़-तोड़ बिठा रहे हो।. . .तब तक तुम सुनोगे तो जरूर, लेकिन चूक जाओगे।सत्संग का वह ढंग नहीं। सत्संग तो पागलों की जमात है। यह तो मतवालों की बात है। सुना नहीं कबीर ने कल कहा; कि कबीर तो कलाल है, शराब बेचने वाला है! और यह कबीर का सत्संग तो शराबखाना है।सभी सत्संग मधुशालाएं हैं। मंदिर-मस्जिदों से उनका क्या लेना-देना! मंदिर-मस्जिद तो होशियार लोग चलाते हैं, चालाक लोग चलाते हैं। संतों के पास मधुशालाएं निर्मित होती हैं। वहां पियक्कड़ इकट्ठे होते हैं। वहां लोग सुनते हैं। अर्थ की चिंता किसको। वहां पीते हैं। आम खाते हैं, गुठलियां नहीं गिनते।

गायक मेरी उलझी वीणा,
कैसे अरे बजा जाते हो?
मैंने चुप-चुप सपने पाले,
चुप-चुप उर अरमान सम्हाले,
पर जीवन-रहस्य को तुम ही,
आकर सदा बजा जाते हो।
दृग में घिर-घिर बादल आते,
दृश्य सामने के छिप जाते,
नीर भरी पुतली में छलिया,
रह-रह तुम्हीं लजा जाते हो।
मधु-पीड़ा यह उर का स्पंदन,
यह अतीत की सुखकर उलझन,
अंतर्यामी अंतर में तुम,
धड़कन बन कर छा जाते हो। परमात्मा अर्थ नहीं है, अनुभव है; शब्द नहीं है, शून्य है।
गायक मेरी उलझी वीणा,
कैसे अरे बजा जाते हो?

तुम हो एक उलझी वीणा। जन्मों-जन्मों से तुमने अपने तार उलझा रखे हैं। तुम सुलझाओगे तो और उलझ जाओगे। तुम ही तो उलझाने वाले हो, सुलझाओगे तुम कैसे? तुम तो रख दो अपनी वीणा उसके सामने।गुरु तो बहाना है, निमित्त है। उसके बहाने तुम परमात्मा के सामने अपनी वीणा रख देते हो। कहते हो कि मैं तो बजाने

की बहुत कोशिश कर चुका, सिवाय विसंगीत के कुछ भी पैदा नहीं होता। तार टूट जाते हैं, सब तार उलझ गए हैं; कुछ ठीक-ठिकाना नहीं है। इस वीणा से संगीत पैदा भी हो सकता है, इसकी संभावना भी छोड़ चुका हूं। अब तुम ही बजाओ।

गायक मेरी उलझी वीणा,

कैसे अरे बजा जाते हो?

और तब वे अपूर्व क्षण आने लगते हैं। जब उसकी अंगुलियां, अदृश्य अंगुलियां तुम्हारी वीणा से अपूर्व संगीत को पैदा कर जाती हैं। वह अर्थ नहीं है, संगीत है ।संगीत में कोई अर्थ होता है? संगीत में जो अर्थ खोजने गया, वह भूल में पड़ जाएगा। संगीत तो पीओ, जीओ, नाचो, गुनगुनाओ। संगीत से भरपूरित हो जाओ ।मैं जो तुम्हें दे रहा हूं, वह संगीत है, सिद्धांत नहीं

मैंने चुप-चुप सपने पाले,

चुप-चुप उर अरमान सम्हाले,

पर जीवन-रहस्य को तुम ही,

आ कर सदा बजा जाते हो। कितना ही तुम उपाय करो, तुम्हारी बुद्धि से जीवन के रहस्य को जानने की कोई विधि नहीं है, कोई द्वार नहीं है। जितना तुम उपाय करोगे, उतनी ही मुश्किल हो जाएगी।ईसप की कहानी है सेंटीपीट के संबंध में। एक शतपदी, सौ पैर वाला जानवर चला जा रहा है। सदा से चलता रहा है। एक खरगोश ने उसे देखा! और उसने कहाः 'चाचा! एक बात मुझे हमेशा बड़ी जिज्ञासा और कुतूहल से भर देती है कि सौ पैर हैं, कौन-सा पहले उठाना, कौन-सा पीछे उठाना, कैसे सम्हाल लेते हो? न लड़खड़ाते, न उलझ जाते। और सौ पैर! मैं तो कल्पना ही करता हूं तो घबड़ा जाता हूं, कि नंबर एक उठाऊं कि नंबर दो कि नंबर तीन, फिर कौन-सा किसके बाद! सौ का हिसाब!'शतपदी ने कहा : 'मैंने कभी सोचा नहीं! सोचता हूं, उत्तर देता हूं।' और सम्हल कर शतपदी चला और लड़खड़ा कर गिर पड़ा। उठना चाहा तो फिर गिर पड़ा। खरगोश को उसने बड़े तर्रा कर देखा और कहा : 'इस तरह से गलत जिज्ञासा कभी किसी और से मत करना। अब तक मैं चलता रहा जन्म से, कभी यह झंझट उठी ही न थी। अब मैं भी मुश्किल में पड़ गया हूं कि कौन पहले कौन पीछे! सौ की संख्या मुझे भी कहां आती हैं, वैसे भी मैं कभी स्कूल में भरती हुआ नहीं।'कहा कि भैया, तूने जो मेरे साथ किया सो ठीक, मैं किसी तरह अपना गुजार बसर कर लूंगा, मगर अब किसी और शतपदी से इस तरह की जिज्ञासा मत करना। नहीं तो हमारा वंश ही नष्ट हो जाएगा।तुम से कोई पूछ ले, 'कैसे सांस लेते हो?' तुम भी ऐसी ही मुश्किल में पड़ जाओगे। हालांकि अब तक लेते रहे हो। और तुमसे कोई पूछ ले, 'कैसे खून को भीतर चलाते हो? खून दौड़ रहा है, तीव्र गति से दौड़ रहा है। और कैसे भोजन को पचा लेते हो! और कैसे रोटी की, सब्जी की. . .किस कीमिया से रक्त बन जाता है, हड्डी-मांस-मज्जा बन जाती है?' तुमसे कोई पूछे तो तुम क्या कहोगे? तुम कहोगे, कभी सोचा नहीं; यह सब हो रहा है।जीवन का जो भी गहन है, सब हो रहा है। जीवन की गहनता के लिए कोई उत्तर नहीं है। और जिस दिन तुम समग्र जीवन को इसी तरह स्वीकार कर लेते हो तो तुम फिर कबीर का वचन कह सकते हो—'होनी होय सो होय।'

मैंने चुप-चुप सपने पाले,

चुप-चुप कर अरमान सम्हाले,

पर जीवन-रहस्य को तुम ही,

आकर सदा बजा जाते हो।

जीवन-रहस्य तो एक संगीत की तरह है, जो परमात्मा बजाता है; एक सिद्धांत की तरह नहीं है जो गणित की तरह ब्लैक-बोर्ड पर समझाया जाता है। एक संगीत की तरह है जो वीणा पर बजाया जाता है, कि बांसुरी पर बजाया जाता है।ऐसी ही एक प्रीतिपूर्ण घड़ी से स्वभाव तुम गुजरे। यह घड़ी बार-बार आएगी, मगर कुछ बातें

खयाल रखना। इसे लाना मत चाहना, नहीं तो रुक जाएगी। अब इसकी प्रतीक्षा मत करना। यह प्रीतिकर थी, मधुर थी। यह तुम्हें मस्त कर गयी। स्वभावतः मन कहेगा : 'और-और, फिर-फिर हो।' बस तुमने चाहा कि फिर-फिर हो, कि अड़चन हो जाएगी। तुम्हारे किए हुई भी नहीं थी, तुम्हारे चाहे होगी भी नहीं। हो गयी, धन्यवाद दो परमात्मा को और भूल जाओ।कहते हैं न, नेकी कर और कुएं में डाल! नेकी कर के कुएं में डालो या न डालो, मगर जब भी ऐसे अनुभव हो, अनुभव करो और कुएं में डाल। पीछे लौट कर देखना ही मत। और कभी भी यह इच्छा, आकांक्षा, अभीप्सा मत जगाना कि अब फिर ऐसा हो; जो कि स्वाभाविक है। अगर हो ऐसा तो मैं तुम्हें कुछ दोष न दे सकूंगा। यह निरंतर का अनुभव है, रोज का अनुभव है। पहली बार जब किसी को ध्यान होता है या ऐसे अपूर्व अनुभव होते हैं, तो स्वभावतः उसके मन में यह वासना जगती है कि अब रोज-रोज ऐसा हो, अब फिर-फिर ऐसा हो। बस वही वासना बाधा बन जाती है। क्योंकि पहली बार जब हुआ था ऐसा, तब कोई वासना नहीं थी; तब तो अकस्मात; आयी थी कोई हवा और उड़ा ले गयी थी तुम्हें! आई थी कोई गंध और डुबा गयी थी तुम्हें। वर्षा हो गयी थी। लेकिन अब तो तुम एक नयी शर्त लगा कर बैठे हो—होनी चाहिए! जहां इस तरह का दावा है, आग्रह है—होनी चाहिए—वहीं बाधा पड़ जाती है।इसलिए पहली बात खयाल रखना, दुबारा ऐसा हो, इसकी आकांक्षा मत रखना। होगा बहुत बार होगा, और-और गहरा होगा। अभी तो कुछ भी नहीं हुआ। यह तो पहली बूंदा-बांदी है। अभी तो मूसलाधार वर्षा होगी। लेकिन अगर इसी की तुमने आकांक्षा की तो बूंदा-बांदी भी बंद हो जाएगी।और इसको बौद्धिक विश्लेषण का विषय भी मत बनाना। इस पर बैठ कर मत सोचना कि क्या हुआ, क्यों हुआ, कैसे हुआ, नहीं तो शतपदी की हालत में पड़ जाओगे। और उलझ जाओगे। जो एक घटना हुई थी, जिससे कि बहुत कुछ सुलझ सकता था, उस घटना को भी अगर बौद्धिक विचारणा बना लिया तो वह घटना भी उलझा जाएगी सुलझाने की बजाय।योग प्रीतम का यह गीत तुम्हारे लिए है :

आंखों के अंसुवन में
ओंठों की पुलकन में
ढुलक-ढुलक जाए मेरा प्यार रे!
प्राणों का पंछी तो
उड़ा-उड़ा जाए रे!
सांसों का सरगम तो
छिड़ा-छिड़ा जाए रे!
खुशियां हैं मन में अपार रे!
प्रीतम की बगियन में
प्यार भरी बतियन में
झरती है रस की फुहार रे!
बांहों में सारा
आकाश समा जाए रे!
सांसों में सारा
वातास समा जाए रे!
तन मन हो जाए बेसम्भार रे!
जयरा की गुनगुन में
हियरा की धड़कन में
उसका ही बज रहा सितार रे!

बजने दो। उसका सितार है! तुम विश्लेषण में मत पड़ना। बरसने दो, उसका अमृत है। तुम किसी केमिस्ट से जा कर इसका विश्लेषण मत करवाना। चुपचाप पीए जाओ। और-और की मांग मत उठाना, नहीं तो मन वापिस आ जाता है पीछे के दरवाजे से। और जहां मन आया वही हमारा संबंध परमात्मा से टूट जाता है।श्ध्दूसरा प्रश्न ः भगवान! मुझ पर ऐसे जैन संस्कार पड़े हैं कि मन की सूक्ष्म वैचारिक अवस्था यानी आत्मा। और आप उसी मन को मारने के लिए, छोड़ने के लिए कहते हैं। मैं समझ नहीं पाता, दुविधा में पड़ जाता हूं।ण श्ध्कृपया प्रकाश डालें।मदन लाल दुधेड़िया! संस्कार धूल है। बाहर से पड़ता है। संस्कार से कोई संक्रांति नहीं होती। जैन घर में पैदा हुए तो जैन संस्कार पड़ जाएगा और मुसलमान घर में फैदा होते तो मुसलमान संस्कार पड़ जाता, और ईसाई घर में बड़े होते तो ईसाई संस्कार पड़ जाता और अगर कम्युनिस्ट रूस में पैदा होते तो कम्युनिजम का संस्कार पड़ जाता। अभी महावीर का गुणगान गाते हो; मुसलमान घर में होते , मुहम्मद का गुणगान गाते। और कम्युनिस्ट घर में होते तो मार्क्स का गुणगान गाते।संस्कार बाहर से पड़ते हैं। संस्कारों से मुक्त होना है। संस्कारों से जब तक जकड़े हो, चाहे वे कितने ही शुभ क्यों न मालूम होते हों, तब तक तुम बंधन से पार न हो सकोगे।संस्कार न शुभ हैं न अशुभ। संस्कार मात्र जंजीरे हैं।तो जब मैं तुमसे कहता हूं मन से मुक्त हो जाओ, तो मैं यही कह रहा हूं कि संस्कारों से मुक्त हो जाओ। मन और है क्या? संस्कारों का जोड़ है। हिंदू मन, जैन मन, बौद्ध मन। ये मन के भेद हैं। लेकिन क्या तुम्हें मन के पार कोई चीज समझ में नहीं आती? तुम्हारे भीतर कोई नहीं है क्या, जो मन को भी देख सकता हो? एक विचार उठा, क्या तुम उसे देख नहीं सकते?मन के पर्दे पर विचार उठता है। मगर देखने वाला दर्शक तो भिन्न है, द्रष्टा तो भिन्न है। तुम फिल्म देखने जाते हो; पर्दे पर बहुत-सी तस्वीरें आती हैं और जाती हैं और कई बार तुम भूल ही जाते हो, तल्लीन हो जाते हो, ऐसे तल्लीन हो जाते हो, कि लगता है जैसे तुम नाटक के हिस्से हो। लोग नाटक का भाग ही बन जाते हैं। तस्वीरें कुछ भी नहीं हैं; तुम्हें भलीभांति मालूम है कि वहां पर्दे पर कुछ भी नहीं है, कोरा पर्दा है, धूप-छांव का खेल है। मगर उसमें भी खो जाते हो। अगर कोई करुण दृश्य आ जाए तो लोगों की आंखों से आंसू टपक जाते हैं। चुपचाप अपना रूमाल निकाल कर आंखें पोंछ लेते हैं कि कोई और पड़ोसी न देख ले। वह तो भला हो फिल्म वालों का कि कमरे में अंधेरा रखते हैं। जरा कोई सनसनीखेज दृश्य आ गया किसी हत्यारे का पीछा पुलिस की कार कर रही है हत्यारा भी भागा जा रहा है पहाड़ों के गोल रास्तों पर और आवाजों की आवाजें, कारों की आवाजें और कारों के पीछे कारें! तुम जो टिके बैठे थे कुर्सी से एकदम रीढ़ सीधी कर के बैठ जाते हो। तुम्हारी कुंडलिनी अगर कभी सीधी होती है तो बस ऐसे समय में सीधी होती है, अन्यथा कभी सीधी नहीं होती। सांस रुक जाती है, आंखों का झपकना रुक जाता है।फिल्म देखने से आंखें खराब नहीं होतीं; आंखें खराब होती हैं झपकना बंद होने से। नवीनतम संशोधन यही कहते हैं। फिल्म तो तुम जितनी चाहो देख सकते हो, अगर आंखें झपकते रहो तो कोई तुम्हारी आंखों को नुकसान नहीं होगा। लेकिन आंखें झपकने की फुर्सत किसको है! आंखें झपकने का खयाल कौन रखे! और फिर ऐसे चमत्कारी दृश्य सामने घट रहे हों!एक देहाती पहली दफा फिल्म देखने गया था। पहला शो खत्म हो गया, वह टिकिट ले कर फिर आकर बैठ गया। दूसरा शो भी खत्म हो गया, वह टिकिट ले कर फिर तीसरे शो के लिए आ गया। मैनेजर ने पूछा कि दादा! आज क्या जाने का इरादा नहीं है? बात क्या है? मैटिनी भी देखा, पहला शो भी देखा, अब दूसरे शो में भी आ गए।उस देहाती ने कहा कि मैं जाऊंगा नहीं जब तक कि असली चीज न देख लूं। 'असली चीज क्या है?'फिल्म में एक दृश्य आता है कि हेमामालिनी एक झील में स्नान करने को उतर रही है। उसने करीब-करीब सब कपड़े उतार दिए, बस आखिरी कपड़ा उतारने को है कि तभी एक रेलगाड़ी छक-छक-छक करती गुजर जाती है। जब तक रेलगाड़ी गुजरती है तब तक हेमामालिनी झील में उतर जाती है। रेलगाड़ी गुजर जाने के बाद वह झील में तैर रही है। वह जो आखिरी कपड़े का उतारना है, वह रेलगाड़ी की वजह से. . .।तो उस देहाती ने कहा कि कभी तो लेट होगी! हम बिना देखे असली दृश्य जाएंगे नहीं। अब ऐसी अवस्था में कौन आंखें झपके! इधर तुम आंख झपको उधर कुछ से

कुछ हो जाए। लोग आंखें फाड़ कर बैठे रहते हैं। अमरीका जैसे देश में जहां टेलीविजन बहुत जोर से फैल गया, रोग की तरह फैल गया; क्योंकि अमरीकी औसतन पांच घंटे टेलीविजन देख रहा है। खास कर छोटे बच्चे। आंखों का कैंसर टेलीविजन से शुरू हो रहा है। और कारण है—आंख का नहीं झपकना। आंख झपकती है अकारण नहीं, उसकी जरूरत है। हर बार आंख झपकती है, धूल पोंछ जाती है; आंख को ताजा कर जाती है। हर बार आंख झपकती है,आंख को गीला कर जाती है। उतना ही गीलापन आंख की ताजगी के लिए जरूरी है; नहीं तो आंख सूखने लगती है। आंख सूखी रहे पांच घंटे तक तो खतरा है। आंख के तंतु बड़े सूक्ष्म हैं। वे सूखने लगेंगे; उनके सूखने से कैंसर भी हो सकता है।लेकिन पर्दे पर दृश्यों को देख कर हम इतने तल्लीन हो जाते हैं कि भूल ही जाते हैं कि दृश्य हैं; मान ही लेते हैं कि हम इसी के हिस्से हैं।बस वैसी ही मदनलाल, हमारे चित्त की अवस्था है। चित्त भी एक पर्दा है। उस पर विचार चल रहे, वासनाएं चल रहीं, कल्पनाएं चल रही हैं, स्मृतियां रहीं—फिल्में चल रही हैं। तुम कौन हो? तुम द्रष्टा हो! तुम मन नहीं हो।इसलिए जिसने तुम से कहा हो कि मन की सूक्ष्म वैचारिक अवस्था यानी आत्मा, उसने बिलकुल ही गलत कहा है। आत्मा मन की सूक्ष्म वैचारिक अवस्था नहीं है। आत्मा है चैतन्य! आत्मा है साक्षी-भाव। आत्मा है केवल साक्षी-भाव। और मन है सारी स्मृतियों का, कल्पनाओं का वासनाओं का मेला। तुम द्रष्टा हो! तुम्हारे द्रष्टा का तुम्हें स्मरण आ जाए, बस क्रांति होनी शुरू हो गयी। मगर भूल जाते हैं लोग।ईश्वर चंद्र विद्यासागर बहुत बड़े पंडित हुए। एक नाटक देखने गए थे। और नाटक में एक लफंगा है, वह बड़ी छेड़-छाड़ कर रहा है, एक स्त्री को बहुत परेशान कर रहा है। ईश्वर चंद्र—भले आदमी, नैतिक आदमी, साधु आदमी; उनकी बर्दाश्त के बाहर हुआ जा रहा है। वह यह भूल ही गए. . .। पंडित बड़े हैं, मगर यह भूल ही गए कि नाटक ही है। एक रात जंगल में वह स्त्री अपने भटक गए बेटे को खोजने निकली, तो वह लफंगा उसका पीछा कर लेता है। आकाश में बादल घिरे हैं, और बिजलियां चमक रही हैं। रात का अंधेरा और जंगल का एकांत। और वह दुष्ट उस स्त्री को पकड़ लेता है उसकी साड़ी खींचने लगता है। बस फिर उनके बर्दाश्त के बाहर हो गया। सामने की पंक्ति में बैठे थे; मारी छलांग, निकाल लिया जूता, लगे पीटने उस लफंगे को! उनसे ज्यादा समझदारी तो उस अभिनेता ने की। उसने जूता उनका अपने सिर पर रख लिया और कहा जनता से कि मेरे जीवन में मुझे बहुत पुरस्कार मिले हैं, मगर इससे बड़ा पुरस्कार नहीं मिला। मैंने भी नहीं सोचा था कि मेरा अभिनय इतना कुशल हो सकता है कि ईश्वर चंद्र विद्यासागर जैसा महापंडित अभिनय को सत्य समझ लेगा।तुम ईश्वर चंद्र की हालत सोचो। बेचारे बड़े झेंपे हुए नीचे उतरे। बात तो सच थी। अभिनेता ने जूता वापिस नहीं लौटाया। उसने कहा : इसको तो मैं सम्हाल कर रखूंगा, यह तो इनाम है। कहते हैं उसके बच्चों के पास वह जूता अब भी उसके घर में सुरक्षित है। है भी बड़ा इनाम!पंडित होने से कोई ज्ञानी नहीं होता। ईश्वर चंद्र बड़े पंडित थे, मगर ज्ञानी नहीं कहे जा सकते। भूल ही गए। अभिनय को सत्य मान लिया।बस यही हमारी भी भूल है। मन के पर्दे पर चलते विचारों को इतना सत्य मान लेते हैं; और उनके साथ अपने को जोड़ लेते हैं—फिर तुम जैन हो गए, अगर जैन विचारों के संस्कार दौड़ रहे हैं मन पर! जैन फिल्म देख रहे तो जैन हो गए। हिंदू फिल्म देख रहे, हिंदू हो गए। और मुसलमान फिल्म देखी तो मुसलमान हो गए। हालांकि न तुम हिंदू हो, न जैन हो, न मुसलमान हो। तुम जागरूकता हो। तुम होश हो। तुम ध्यान हो; मन नहीं।इसलिए मेरी बातें सुन कर तुम्हें थोड़ी दुविधा तो हुई होगी; क्योंकि तुम्हारा संस्कार. . .और मेरी बातें विपरीत पड़ रही हैं। मैं कह रहा हूं कि मन से मुक्त हो जाओ। फिर न केवल तुम्हारा मन ही अभिनय हो जाता है; यह सारा जगत अभिनय हो जाता है, लीला हो जाता है। फिर तुम इस सारे जगत को एक द्रष्टा की तरह देखते हो। फिर तुम जगत में भी हो सकते हो और जगत से मुक्त भी।यही मेरे संन्यास की धारणा है : जगत में और जगत के नहीं; कमलवत। नहीं तो बस भूल जाते हो। चार पैसे मिल गए कि एकदम अकड़ आ जाती है। चार पैसे, उनसे तुम्हारा ऐसा जोड़ हो जाता है कि पैर जमीन पर नहीं पड़ते। कहीं रखते हो पैर, कहीं पड़ते हैं पैर। फिर ये चार पैसे कल चले जाएंगे, फिर बहुत पछताओगे, फिर अकड़ टूट जाएगी। किसी पद पर पहुंच गए,

किसी कुर्सी पर पहुंच गए; बैठे हो कुर्सी पर, लेकिन भूल ही जाते हो कि यह कुर्सी की ऊंचाई तुम्हारी ऊंचाई है। कल कोई और कुर्सी पर चढ़ बैठेगा। और जब तुम बैठे हो तभी कोई तुम्हारी टांग खींच रहा है, कोई हाथ खींच रहा है। जिसके हाथ में जो आ गया. . .। क्योंकि कुर्सी पर कोई शांति से तो किसी को बैठने नहीं देता, औरों को भी तो बैठना है! कोई तुम्हीं एक अकेले थोड़े ही माई के लाल हो!

एक बांस लंबा
आंगन में गड़ा हुआ है,
दो दर्जन बंदर प्रतियोगी
उस पर चढ़ने,
चोटी तक जाने को
अपने हाथ-पांव मारते,
कशमकश करते कब से।
एक नहीं चोटी पर अब तक पहुंच सका है—
एक जरा-सा उठा,
दूसरे ने आ उसकी टांगें खींचीं;
और तीसरा पूंछ दूसरे की, पंजों से पकड़ लटकता;
उसकी टांग, हाथ में इसके,
इसकी टांग, हाथ में उसके,उसकी दुम, इसके पंजे में,इसके पंजे में, उसकी दुम—गुत्थिम-गुत्था,लपटा-झपटी,हाथा-पाई,गर्द-उड़ाई!कोई हर्ज नहींकोई जो पहुंच नहीं चोटी तक पाता,मांसपेशियां एक-दूसरे की तो है मजबूत बनाता। व्यायाम चल रहा है। हर कुर्सी के आस-पास तुम देखोगे, कुश्तम-कुश्ती हो रही है, गुत्थम-गुत्थी हो रही है। मगर जो बैठा है कुर्सी पर, वह सोचता है वह ऊंचा हो गया, बड़ा हो गया। कुर्सी से एक तादात्म्य हो गया। मान लिया कि मैं कुर्सी हूं! मैं धन हूं! मैं पद हूं!थोड़ा तो होश रखो!न तो तुम देह हो, न तुम मन हो, न तुम पद, न तुम प्रतिष्ठा। तुम केवल साक्षी मात्र हो। हां, खेल हैं बहुत; खेलो, जी भर कर खेलो। स्मरण बनाए रखो, ताकि कोई भी खेल तुम्हारी छाती पर बैठ न जाए। कोई भी खेल भारी न होने लगे। हल्के रहो, निर्भार रहो।मगर लोग भूल ही जाते हैं; खेल को भी असली मान लेते हैं। शतरंज खेलते हैं; लकड़ी के हाथी-घोड़े; लकड़ी के राजा-वजीर—और ऐसे तल्लीन हो जाते हैं! तलवारें खिंच गई हैं शतरंज के खेल फर। गर्दनें कट गई हैं। ताश खेलते हैं। ताश के राजा-रानी। मगर उनमें भी कैसा लगाव बन जाता है! असली राजा-रानी मिट गए, मगर ताश के राजा-रानी मिटने वाले नहीं हैं। और जब तुम खेलते हो तो कितना तादात्म्य बना लेते हो! भूल ही जाते हो।विस्मरण तुम्हारा रोग है। मुझसे पूछो तो कहूंगा : विस्मरण संसार है। स्मरण—सुरति कबीर की भाषा में—मोक्ष है, मुक्ति है, समाधि है। खेलो जरूर अभिनय—और कुशलता से खेलो! जीवन है तो कुछ तो करना होगा। मैं नहीं कहता कि सब भाग कर और बैठ जाओ गुफाओं में। कुछ लोग गुफाओं में बैठ सकते हैं इसीलिए कि बाकी लोग काम में लगे हैं। अगर सभी लोग गुफाओं में बैठ जाएं, तो एक भी नहीं बैठ सकता फिर गुफाओं में, फिर सभी को वापिस आना पड़े। यह खयाल रखना। इसलिए मैं पुराने संन्यास के खिलाफ हूं, क्योंकि उसकी आधारशिला गलत है।इमैनुअल कांट ने नैतिकता के नियमों में एक नियम निर्धारित किया है, जो बहुत महत्वपूर्ण है। उसका नियम है कि इस आधार से तौल लेना कि कौन-सी चीज नैतिक है और कौन-सी अनैतिक! यह कसौटी है। जैसे सुनार के पास सोने को कसने के लिए पत्थर होता है, ऐसा इमैनुअल कांट ने इसको पत्थर कहा है। जिस नियम को सारे लोग मान लें और उस नियम की ही मौत हो जाए, समझ लेना कि वह नियम अनैतिक है।स आधार से तो पुराना संन्यास अनैतिक है; क्योंकि अगर सारे लोग संन्यासी हो जाएं, पुराने ढब के, तो संन्यास टिक ही नहीं सकता। महावीर को भी

भोजन देने के लिए कोई गृहस्थ चाहिए, श्रावक चाहिए। और शंकराचार्य को भी भोजन देने के लिए कोई श्रावक चाहिए, कोई गृहस्थ चाहिए। और बुद्ध को भी भिक्षा देने के लिए कोई श्रावक चाहिए, कोई गृहस्थ चाहिए। अगर सारे ही लोग भिक्षु हो जाएं तो भिक्षा किससे मांगो? असंभव हो जाएगा संन्यास!इमैनुअल कांट का सिद्धांत उपयोगी है। ऐसा संन्यास अनैतिक है।इसलिए मैं संन्यास की एक नयी परिभाषा दे रहा हूं। खेलो! संसार के खेलों से कुछ भागने की जरूरत नहीं है। बस इतना ही स्मरण रखो कि मैं द्रष्टा हूं। मैं तुम्हें रोकता भी नहीं कि फिल्म देखने मत जाना। जाना हो तो बराबर चले जाना, मगर खयाल रखना ः फिल्म मत बन जाना, तादात्म्य मत कर लेना। लोग तादात्म्य कर लेते हैं, वहीं अड़चन खड़ी हो जाती है। और जब एक दफा तादात्म्य कर लिया तो तादात्म्य करने के लिए सब तरह के तर्क भी खोज लेते हैं।मुल्ला नसरुद्दीन को एक रात सपना आया कि वह मर गया। सपना ऐसा भयानक था कि जाग गया तो भी टूटा नहीं। अपनी पत्नी को हिलाया और कहा ः 'सुनती हो, मैं मर गया!' पत्नी ने कहा कि नसरुद्दीन, होश में हो? अगर मर जाते तो कौन मुझे जगाता, कौन मुझसे कहता?नसरुद्दीन ने कहा ः अब तू कुछ भी कह, मगर जो मुझे घट चुका है सो घट चुका। अपनी आंखों देखा है। अब मैं किसी की मानने वाला नहीं हूं।'पहले तो पत्नी ने समझा कि मजाक कर रहा है मगर बात मोहल्ले में फैल गयी। दूसरे दिन वह लोगों से भी कहने लगा। दुकान पर ग्राहकों से भी कहता कि भई कुछ पता है, मैं मर गया! मजाक धीरे-धीरे गंभीर हो गया, बात बिगड़ने की हो गयी। पहले तो लोगों ने समझाया-बुझाया लेकिन वह समझने-बूझने के बाहर, वह हजार तर्क दे। वह कहे प्रमाण क्या है कि मैं जिंदा हूं? कोई प्रत्यक्ष प्रमाण लाओ!आखिर उन्होंने कहा कि अपने बस के बाहर है। एक मनोवैज्ञानिक के पास ले गए। मनोवैज्ञानिक ने बहुत खोज-बीन की। उसने कहा ः ठीक है तुम एक बात तो मानते हो नसरुद्दीन कि अगर मुर्दा आदमी के हाथ में सुई चुभाएं या चाकू से काटें तो खून नहीं निकल सकता?नसरुद्दीन ने कहा ः कभी नहीं निकल सकता। जब मर ही गया आदमी तो उसमें खून क्या निकलेगा! मरते ही से खून पानी हो जाता है।'मनोवैज्ञानिक को ढाढस बंधा। उसने कहा अब रास्ता निकाल लेंगे। पकड़ा नसरुद्दीन को, ले गया आईने के पास। कहा कि अंगुली करो आगे आईने के। उठाया चाकू और थोड़ी-सी अंगुली काटी। खून गिरने लगा। कहा, देखो अंगुली में, देखो आईने में, खून निकल रहा है कि नहीं?नसरुद्दीन ने कहा ः 'निकल रहा है।'तो मनोवैज्ञानिक ने कहा ः 'अब क्या कहते हो?'नसरुद्दीन ने कहा ः 'अब मैं यही कहना चाहता हूं कि अब तक का सिद्धांत कि मुर्दा आदमी से खून नहीं निकलता, गलत था। खून निकलता है। अपनी आंख से देख रहा हूं। और तुम भी गवाह हो।'आदमी जो मान ले, उसे उससे हटाना बहुत मुश्किल है। वह अपनी मान्यता के लिए तर्क इकट्ठे कर लेता है। तर्क-जाल, वितर्क, वितंडा। और इसलिए सारे धर्मों ने, सारे दर्शनशास्त्रों ने अपने-अपने तर्क इकट्ठे कर लिए। तर्कों की कोई कमी है। तुम जिस चीज के लिए चाहो तर्क उसके लिए इकट्ठा कर सकते हो। तर्क तो बिलकुल बच्चों का खेल है।और लोग तर्क पर बड़ा भरोसा किए हुए हैं। सिर्फ बचकाने लोग ही तर्कों पर भरोसा करते हैं। तर्कों का मूल्य नहीं। जिनको तर्क का थोड़ा अनुभव है, जो तर्क में थोड़े गए हैं. . .।मैं तर्कशास्त्र का विद्यार्थी था। नौ महीने तक मैंने अपने प्रोफेसर को इंच भर आगे नहीं बढ़ने दिया। आखिर उन्होंने सिर पीट लिया, उन्होंने कहा कि भाई परीक्षा करीब आ रही है; तुम इंच-भर आगे बढ़ने नहीं देते। परीक्षा होनी है कि नहीं होनी है? बाकी का क्या होगा? और मैं भी थक गया।तो मैंने कहा कि फिर तर्कशास्त्र क्या खाक पढ़ाते हैं। तर्कशास्त्र पढ़ाने का तो अर्थ ही यह है कि होने दो तर्क।उन्होंने इस्तीफा लिख कर दे दिया, कि या तो यह विद्यार्थी रहे और या मैं। अब हम दोनों; ये दो तलवारें एक ही म्यान में नहीं रह सकतीं।प्रिंसीपल ने मुझे बुलाया और कहा कि वे हमारे पुराने अध्यापक हैं, आदृत अध्यापक हैं; उनको हम ऐसे नहीं छोड़ सकते। बीस साल की उनकी सेवाएं हैं। तुम तो आज यहां हो, कल चले ही जाओगे। तो मैं तुमसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूं कि तुम चले ही जाओ। और प्रार्थना इसलिए करनी पड़ती है, क्योंकि मैं समझ रहा हूं कि तुमने गलती कुछ भी नहीं की है। तुम्हारी बात भी ठीक है कि जब तर्कशास्त्र ही पढ़ाते हो तो कम से कम तर्क तो यहां तो होने दो, और कहीं नहीं तो ठीक है।

गणित की कक्षा में अगर गणित न हो. . .। तो तुम्हारी बात मैं भी मानता हूं, मगर मैं हाथ जोड़ता हूं। वे बूढ़े आदमी हैं, उनको क्षमा करो। तुम किसी और कालेज में भर्ती हो जाओ।मैंने कहा : मेरी बदनामी इतनी हो गयी है कि कौन कालेज मुझे लेगा?उन्होंने कहा : 'यह बात सच है। मैं कोशिश करता हूं।' उन्होंने ही कोशिश की, दूसरे कालेज के प्रिंसीपल को समझाया-बुझाया। मैं गया। उन्होंने कहा : 'भई हम लेने को तो राजी हैं, लेकिन लिखित तुम्हें देना होगा कि चुपचाप बैठोगे। इस शर्त पर हम तुम्हें लेने को राजी हैं। क्योंकि वहां तो जो तर्कशास्त्र का प्रोफेसर है, जिस कालेज में तुम हो, वह तो अखिल भारतीय ख्याति का व्यक्ति है। हमारा तर्कशास्त्र का प्रोफेसर तो बिलकुल नया है, उसकी तो तुम जान ले लोगे। लिखित दे दो।'तो मैंने कहा कि मैं लिखित भी दे दूं; मगर जब वे तर्क की बात करेंगे तो मुझे अपने पर ही भरोसा नहीं कि मैं चुप रह सकूंगा। गलत-सही कुछ भी कहा. . .। तो आप ऐसा करें कि मैं आऊंगा ही नहीं कक्षा में, उपस्थिति मुझे मिलनी चाहिए। क्योंकि मेरे चुपचाप बैठे रहने से भी क्या फायदा है!वे इसके लिए राजी हो गए। मैं कक्षा में गया नहीं कभी, उपस्थिति मुझे पूरी मिली, परीक्षा भी मैंने दी।तर्क का कोई अंत नहीं है। और तर्क से कभी कोई निष्पत्ति नहीं होती। इतना ही मैं उन प्रोफेसर से कहता था : एक बार तुम यह कह दो कि तर्क से कोई निष्पत्ति नहीं होती, फिर मैं चुप हो जाऊं। इसको वे कहने को राजी नहीं थे। वे मानते थे कि तर्क से निष्पत्ति होती है, तो मैंने कहा : 'निकालना निष्पत्ति! नौ महीने में एक नहीं निकली। और आप अगर कहें तो कभी भी नहीं छोड़ूंगा इस क्लास को, परीक्षा ही नहीं दूंगा। निष्पत्ति जिस दिन निकल जाएगी उस दिन मैं चला जाऊंगा।निष्पत्ति निकलती ही नहीं तर्क से। जितने पक्ष में तर्क दिए जा सकते हैं, उतने ही विपक्ष में दिए जा सकते हैं। ईश्वर के पक्ष में जो तर्क हैं वही विपक्ष में हो जाते हैं। ईश्वर के पक्ष में तर्क है कि दुनिया को कोई तो बनाने वाला चाहिए। हर चीज को बनाने वाला होता है। जैसे कुम्हार घड़े को बनाता है, ऐसे ईश्वर ने जगत को बनाया। लेकिन नास्तिक पूछता है, 'ईश्वर को किसने बनाया? अगर हर चीज को बनाने वाला चाहिए तो ईश्वर को बनाने वाला भी कोई होगा!' अब झंझट खड़ी होगी। अब तुम कहोगे : 'ईश्वर को और किसी महाईश्वर ने बनाया—महाब्रह्मा ने।' तो वह पूछेगा : 'उसको किसने बनाया, फिर उसको किसने? फि132र उसको किसने?'पुरानी कहानी है, एक सम्राट ने घोषणा की कि मैं एक ऐसी कहानी सुनना चाहता हूं जिसका अंत न आता हो। बहुत लोग आए, कहानियां सुनायीं। आखिर कहानी का अंत तो आएगा ही। लेकिन एक आदमी आया और उसकी कहानी का अंत नहीं आया। उसकी कहानी बड़ी छोटी थी। उसने कहा : 'एक शिकारी शिकार खेलने गया। एक झील के तट पर हजारों वृक्ष, हजारों वृक्षों पर लाखों पक्षी बैठे हैं। उसने गोली मारी, चिड़िया उड़ गयी—फुर्र।' सम्राट ने फूछा : 'फिर क्या हुआ?' उसने कहाः 'फिर उसने गोली मारी। चिड़िया उड़ गयी फर्र।'सम्राट ने कहा : 'निकल बाहर हो। इस कहानी का तो अंत आएगा ही नहीं।'उसने कहा : इसीलिए तो आप से मैं. . .। आप ही चाहते हैं कि कहानी का अंत न आए। अब कोई ला दे इस कहानी का अंत! जब भी तुम पूछोगे—फिर?. . .'फिर उसने गोली मारी, चिड़िया फुर्र!'तर्क का कोई अंत नहीं। मारो गोली : चिड़िया फुर्र। कोई तर्क किसी निष्पत्ति पर नहीं ले जाता है। लेकिन तर्क को लोग मान लेते हैं, क्योंकि बचपन से तर्क दोहराए जाते हैं।क्या है जैन होना, क्या है हिंदू होना, क्या है बौद्ध होना? सिर्फ तर्कों के विभिन्न जाल हैं। मैं तुम्हें न तो हिंदू बनाना चाहता, न बौद्ध, न ईसाई। मैं तुम्हें तर्कों के जाल से मुक्त करना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि तुम इस बात को समझ सको कि सभी संस्कार, चाहे कितने ही तर्क-निष्ठ मालूम होते हों, मूलतः तर्क-निष्ठ नहीं है। नहीं तो अभी तक आस्तिक-नास्तिक कोई निर्णय ले लेते। कोई दस हजार साल से लड़ रहे हैं, कोई निर्णय है? आस्तिक-आस्तिक, नास्तिक-नास्तिक। जैनों और हिंदुओं ने निर्णय लिया कोई? पांच हजार साल से साथ-साथ रह रहे हैं। वही विवाद, वैसा का वैसा, वहीं का वहीं।दुनिया के कोई धर्म एक दूसरे से निर्णय क्यों नहीं ले पाते? तीन सौ धर्म हैं पृथ्वी पर। तीन सौ में से एक तो कम कर दो तुम, दो सौ निन्यान्बे तो कर दो! सब अपना तर्क देते हैं। और तुम किसी के तर्क को भी कितना ही गलत करो, वह और-और तर्क खोज लेता है, जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं वैसे ही मन में तर्क लगते हैं। और तुम्हारा तर्क हो तो

प्रीतिकार लगता है, क्योंकि तुम्हारे अहंकार को आच्छादित करता है, तुम्हारे अहंकार को पोषित करता है, तुम्हारे अहंकार को मजबूत करता है।मैं नहीं चाहता कि तुम मन को छोड़ कर जंगल में भाग जाओ, कि संसार को छोड़ कर जंगल में भाग जाओ। मैं चाहता हूं कि तुम यहीं रहो, जहां हो; इतना बोध पर रखो कि मैं मन नहीं हूं, मैं देह नहीं हूं, मैं संसार नहीं हूं। फिर यह अभिनय चलने दो पर अभिनय ही हो। अगर यह संसार अभिनय ही रह जाए तो तुम मुक्त हो गए। यही संन्यास है।एक गांव में रामलीला हुई। हनुमान जी गए हैं, लक्ष्मण जी बेहोश पड़े हैं, उनके लिए दवा-दारू लेने, संजीवनी-वटी लेने, संजीवनी-वटी उनको मिली नहीं। जो लक्षण बताए थे उस पहाड़ पर वैसे लक्षण की बहुत-सी-औषधियां थीं। वह पूरा पहाड़ ही ले आए।अब गांव की रामलीला—और भारतीय गांव। एक रस्सी पर चढ़ कर आते हैं एक पुट्ठे की पहाड़ी लिए हुए हैं। मगर रस्सी की घिर्री उलझ जाती है। न उलझे तो ही चमत्कार। सो वे बीच में अटके हैं। नीचे लक्ष्मण जी पड़े हैं, वे भी बीच-बीच में थोड़ी आंख खोल कर देख लेते हैं कि बहुत देर हुई जा रही है। रामचंद्र जी ऊपर देख रहे हैं कि अभी तक आए नहीं! और जनता देख रही है कि आ तो गए, बीच में अटके हैं; उतरते क्यों नहीं? बड़ी झंझट मची है। मैनेजर घबड़ा गया कि अब करना क्या! वह ऊपर चढ़ा, उसने चाकू से रस्सी काट दी। सो हनुमान जी धड़ाम से मय पहाड़ के नीचे गिरे! रामचंद्र जी को जो कहना चाहिए था वही उन्होंने कहा, कि ले आए पवनसुत! जड़ी-बूटी ले आए?हनुमान जी ने कहा ऐसी की तैसी पवनसुत की! पहले यह बताओ, रस्सी किसने काटी?अब यह सारा खेल ही बिगड़ गया। रामचंद्र जी ने फिर भी समझाने की कोशिश की कि लक्ष्मण जी बेहोश पड़े हैं। उन्होंने कहा, पड़े रहने दो, मरते हों तो मर जाएं! इधर मेरे घुटने में चोट लग गयी। और कौन कहता है बेहोश पड़े हैं; जब मैं ऊपर अटका था तो खोल-खोल कर आंख देख रहे थे।अब यह अभिनय न रहा; अब भूल से अभिनय सच्चा हो गया। अब ये भूल ही गए कि अभी खेल को कायम रखना था; इन्होंने खेल से संन्यास ही ले लिया। ये पुराने ढंग का संन्यास। इतनी जल्दी भी क्या थी, थोड़ी देर में फर्दा गिरता, फिर मालिश वगैरह करवा लेते, फिर पता लगा लेते कि कहां है वह मैनेजर का बच्चा! फिर निपट सुलझ लेते, मगर जरा पर्दा तो गिर जाने देते।संसार एक अभिनय है और मौत पर्दे गिराती है। जल्दी क्या है भागने की? मौत तो खुद ही हटा लेगी। पर्दा तो अपने-आप गिर जाएगा। लेकिन एक तरफ लोग हैं जो इस अभिनय को इतना सत्य समझ लेते हैं कि इसी में उलझ जाते हैं और दूसरी तरफ लोग हैं, वे भी इस अभिनय को इतना सत्य समझ लेते हैं कि इससे भाग खड़े होते हैं। ये दोनों गलत हैं। तुम्हारा भोगी भी गलत है, तुम्हारा त्यागी भी गलत है। दोनों ने एक बात पर तो सहमति जाहिर कर दी है कि यह अभिनय बहुत सच्चा है। एक पकड़ रहा है, एक छोड़ रहा है। एक छाती से लगाए है, एक घबड़ा कर भाग रहा है। मगर दोनों मानते हैं कि यह संसार बहुत सत्य है।संन्यास की वास्तविक धारणा केवल इतनी है कि तुम जानो कि मन तुम नहीं हो, और संसार तुम्हारे मन का ही फैलाव है। तुम द्रष्टा हो। देखो मौज से अपने भीतर बैठ कर। देखो सब राग-रंग। देखो पतझड़-वसंत।जब मैं कहता हूं मन से मुक्त हो जाने के लिए तो मेरा कुल अर्थ इतना ही है कि तुम्हारी ऊर्जा मन से अपना तादात्म्य तोड़ दे और चैतन्य में विराजमान हो जाए। मदन लाल दूधेड़िया, दुविधा में पड़ोगे अगर संस्कार को जोर से पकड़ा। लेकिन संस्कार को इतने दिन तो पकड़े रहे, तो पहुंचना क्या हुआ? कहां पहुंच पाए? अब मैं कह रहा हूं संस्कार को छोड़ कर देखो। थोड़ा यह प्रयोग भी कर लो। थोड़ी इस मदिरा को भी पीओ, थोड़ी इसकी भी चुस्की लो। उस संस्कार ने तो कहीं नहीं पहुंचाया है; शायद संस्कार-मुक्त होने से कहीं पहुंच जाओ।और कहां पहुंचना है? अपने भीतर पहुंचना है। अपने अंतरतम में पहुंचना है! वहां तुम परम शुद्ध हो, वहां तुम परमात्मा हो। मगर वह परमात्म-रूप केवल चैतन्य-रूप है, सच्चिदानंद है, सत् है, चित् है, आनंद है। थोड़े ध्यान में उतरो, ताकि इन संस्कारों से छुटकारा हो सके।संस्कार का अर्थ ही होता है धूल—दर्पण पर जम गयी धूल। हटाओ, पोंछो दर्पण को, ताकि दर्पण उसका प्रतिफलन दे सके जो है।श्‍आखिरी प्रश्न ः भगवान ! आप कहते हैं 'होनी होय सो होय'। तो क्या कुछ न करें? सब उसी पर छोड़ दें?रामदास! कुछ न करें, यह भी करना होगा। यह भी एक ढंग का करना है—कुछ न करें, कि हम कुछ

न करेंगे। यह नकारात्मक कृत्य है, लेकिन है कृत्य ही। सब उसी पर छोड़ दें—यह छोड़ना भी कृत्य है। कौन छोड़ रहा है? और छोड़ना क्या है? क्या छोड़ना क्रिया नहीं है?अगर तुम बात को ठीक से समझे—'होनी होय सो होय'—तो फिर न तो कुछ करने को बचता है, न न-करने को बचता है; न तो कुछ पकड़ने को बचता है, न कुछ छोड़ने को बचता है। जो हो रहा है, ठीक हो रहा है; हम केवल दर्शक रह जाते हैं। न पकड़ना है न छोड़ना है, न करना है, न न-करना है। जो हो रहा है, हो ही रहा है। हम सिर्फ दर्शक रह गए, द्रष्टा रह गए—देखेंगे और देखने से इंच भर इधर-उधर नहीं जाएंगे, कर्ता नहीं बनेंगे।नहीं तो तुम भूल में पड़ोगे।मुल्ला नसरुद्दीन और उसके तीन साथियों ने बार-बार मुझे सुनकर—कि मौन से रहो, शून्य में जीयो—निर्णय कर लिया कि जाते हैं, एक महीने का मौन लेते हैं। बैठ गए गुफा में जा कर। एक महीने का मौन ले लिया। कोई पांच-सात मिनिट ही बैठे होंगे कि पहले ने कहा, अरे! पता नहीं मैं घर का ताला लगा पाया कि नहीं लगा पाया! दूसरे ने कहा : 'अरे मूरख! मौन लिया महीने भर का, पांच मिनिट टिका नहीं, सब बर्बाद कर दिया!'तीसरे ने कहा : 'तू महामूरख है! वह तो बोला सो बोला, तू क्यों बोला?'मुल्ला नसरुद्दीन ने हाथ जोड़े आकाश की तरफ और कहा : 'हे प्रभु! मुझे छोड़कर ये सब मूरख बोल गए! मैं ही भला, अब तक बोला ही नहीं।'बस पांच-सात मिनिट में सब खतम हो गया।मौन बैठना है, यह आग्रह भी कृत्य है। मौन बैठा नहीं जाता; समझ से मौन फलित होता है। अपने को जबरदस्ती मौन बिठा लोगे, तो ये सब बातें उठेंगी। हो सकता था पहला आदमी न भी कहता कि पता नहीं घर में ताला लगा पाया या नहीं, लेकिन भीतर तो कहता ही; मौन तो खंडित तभी हो जाता, चाहे उफर न भी बोलता। दूसरा चाहे दूसरे की बारी आने फर कुछ भी न कहता, लेकिन भीतर तो कहता कि इस मूरख ने अपना मौन तोड़ लिया; बाहर न भी कहता तो भी चल जाता, लेकिन मौन तो टूट ही जाता। कुछ मौन के बाहर और भीतर बोलने का सवाल नहीं है। यह मौन जबरदस्ती आरोपित है। यह टूट ही जाएगा। यह टिक नहीं सकता। समझ इस बात की कि मैं सिर्फ द्रष्टा मात्र हूं; फिर कोई मौन सम्हालना नहीं पड़ता, सम्हल जाता है। बीच बाजार में रहोगे और भीतर मौन की सतत धारा बहती रहेगी।अब तुमने सुना कि कबीर कहते हैं 'होनी होय सो होय' और मैं कबीर के समर्थन में हूं कि जो होना है सो होगा। तुम क्यों फिकिर लेते हो? तुम क्यों चिंता में पड़ते हो? तुम तो द्रष्टा मात्र हो। तुम्हें चिंता लेने का, संताप करने का कोई भी कारण नहीं। तुम तो देखो। दुःखांत होगा नाटक तो ठीक और सुखांत होगा तो ठीक। तुम्हें क्या पड़ी है? लेकिन तब तुम्हारे सामने सवाल उठा—'तो क्या कुछ न करें?' करने से तुम न छूटोगे। अब तुमने दूसरा निर्णय लिया—'तो अच्छी बात है। होनी होय सो होय! तब हम बैठेंगे, कुछ न करेंगे।' मगर वह बैठना भी कृत्य हो गया। जबरदस्ती बैठ जाओगे गुफा में जा कर, बार-बार देखोगे बाहर गुफा के कि अभी तक कुछ हो नहीं रहा है! होनी होय सो होय, मगर हो कुछ भी नहीं रहा है और हम बैठे हैं इतनी देर से! तुम्हारे बैठने में तुम्हारा अहंकार ही रहेगा। यह कुछ बोध नहीं है। यह कोई समझ नहीं है। यह कोई प्रज्ञा से उठी क्रांति नहीं है।अब तुम कहते हो : 'सब क्या उसी पर छोड़ दें?' तो क्या कुछ बचा लेने का इरादा है कि थोड़ा-बहुत तो बचा लें! मीठा-मीठा गप, कड़वा-कड़वा थू! कि बाकी तू सम्हाल। कि जब बुरा हो जाए तो कहेंगे 'होनी होय सो होय'; और जब भला हो जाए तो झंडा ले कर निकल पड़ेंगे कि झंडा ऊंचा रहे हमारा! देखो यह हमने ही किया!अब तुम पूछ रहे हो : ' तो क्या सब उसी पर छोड़ दें?' मगर छोड़ोगे तुम! तो छोड़ना कृत्य हो गया। छोड़ने वाला है कौन? सब उस पर छूटा ही हुआ है। पागल हो तुम, जो सोचते हो कि हम पकड़े हैं। सब उसी का है, सब उस पर ही छूटा हुआ है। और तुम कुछ कर रहे हो, इस भ्रांति में हो। जो हो रहा है वही हो रहा है; तुम्हारे किए से कुछ भी नहीं हो रहा है। तुम नाहक ही हाथ-पैर न मारो।भोगी भी हाथ-पैर मारते हैं, त्यागी भी हाथ-पैर मारते हैं। संन्यासी मैं उसको कहता हूं जो यह समझ लेता है : अपने हाथ-पैर मारने की बात ही नहीं। हम हैं ही नहीं, वही है! हम उसके अंग-मात्र हैं।'जैसे पानी की लहर—सागर की लहर—अलग तो हो नहीं सकती सागर से। सागर ही उसमें नाचता है तो नाचती है। सागर ही सो जाता है तो सो जाती है।यह बोध की बात है। मैं तुमसे जो कह रहा हूं, यह करने की कम, समझने की बात है।बस समझ लिया कि सब हो गया। तुम

और परमात्मा में भेद नहीं है। तुमने मान लिया है कि मैं अलग हूं तो झंझटें आ रही हैं। अब अलग मान लिया है तो कुछ करूंगा। और फिर अगर किसी ने कहा कि तुम्हारे करने से असफलता हाथ लगती है, दुःख हाथ लगता है, तो तुम कहते हो : 'अच्छी बात है, तो नहीं करेंगे!' मगर करने की भाषा नहीं बदलती, वही की वही भाषा जारी रहती है।तुम अपनी भाषा में जरा झांक कर देखो।एक जैन मुनि प्रवचन दे रहे थे। अहिंसा पर उन्होंने बड़ी तात्विक चर्चा की और कहा कि पशु-पक्षियों को मारना महापाप है। मुल्ला नसरुद्दीन खड़ा हो गया। उसने कहा : 'आप बिलकुल ठीक कहते हैं। एक बार एक मछली ने मेरे प्राण बचाए।'जैन मुनि ने देखा कि एक तो मुसलमान. . .अच्छा है। नसरुद्दीन को कहा कि तू हमारे साथ रह। जहां भी हम प्रवचन देंगे, हम कहेंगे—पूछो इससे! तो तू खड़े हो कर कहना कि एक मछली ने हमारे प्राण बचाए। सो यह नियम हो गया; वे बोलते और मुल्ला नसरुद्दीन खड़े हो कर कहता कि एक मछली ने हमारे प्राण बचाए। फिर धीरे-धीरे दोनों में काफ132ी निकटता बढ़ गयी, एक दिन मुनि ने पूछा एकांत में कि तू पूरी बात तो बता कि घटना क्या हुई?नसरुद्दीन ने कहा : 'आप यह न पूछें तो अच्छा है! क्योंकि मुझे भूख लगी थी और मछली को मैंने खा लिया। सो इस तरह उसने मेरे प्राण बचाए। यह आप पूछें ही मत! बस उतना ही काफी है कि एक मछली ने मेरे प्राण बचाए, क्योंकि इससे आगे मैंने कहा तो झंझट हो जाएगी।'जरा बात की गहराई में उतरो तो तुम और बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। ऊपर से तो लगता है, कहते हो : 'तो क्या हम कुछ न करें, सब कुछ उसी पर छोड़ दें?' जरा भीतर उतरो। सब कुछ उसी पर छोड़ने का मतलब यह है कि तुम चाहो, तो कुछ बिना छोड़े भी रह सकते हो। जैसे तुम्हारे हाथ में है छोड़ना! जैसे यह तुम्हारा निर्णय है छोड़ो या न छोड़ो!नहीं, ऐसा नहीं है। सब उसके हाथ में ही है।यह ऐसा ही है जैसा कि हवा का एक झोंका आए और एक सूखी पत्ती हवा में ऊपर उठ जाए और सोचने लगे कि क्या सब हवा पर छोड़ दूं, कि जहां ले जाए जाऊं; फूरब तो फूरब, फ185ीम तो फ185ीम? सब हवा फर छोड़ दूं?हवा पर छूटा ही हुआ है। मगर पत्ती यह अकड़ ले सकती है कि अच्छा, चल तुझ पर छोड़ते हैं सब; पूरब चल तो पूरब, पश्चिम चल तो पश्चिम। तुझ पर ही श्रद्धा करते हैं। ले समर्पण करते हैं।मगर क्या इसमें कुछ समर्पण हो रहा है? पत्ती तो जाती ही वहां जहां हवा को जाना था। मगर पत्ती के पास सोच-विचार नहीं है। इतना ही फर्क है तुम में और पत्ती में।एक ढेर लगा था पत्थरों का, एक बच्चा आया और उसने एक पत्थर उठा कर महल की खिड़की की तरफ फेंक दिया। अब पत्थर ऊपर उठा तो उसने नीचे पड़े पत्थरों से कहा कि मित्रो, मैं जरा आकाश की सैर को जा रहा हूं। किसके मन में नहीं होती आकाश की सैर की इच्छा! पत्थरों के मनों में भी होती है। तड़फते हैं; नहीं जा सकते, यह बात और है।बाकी पत्थर तो कसमसा कर रह गए, ईर्ष्या से जले-भुने हो गए। देखा अपनी आंखों से, इनकार भी नहीं कर सकते। पत्थर जा ही रहा था आकाश की तरफ। क्या हुआ! किसी ने कहा : 'अवतारी पत्थर है। ईश्वर की बड़ी इस पर कृपा है। यह कोई साधारण पत्थर नहीं है। हम तो पहचान ही न पाए इसको अब तक। हमारे ही बीच रहा और हमने इसको न पहचाना। हम जैसा अंधा कौन होगा? अरे हम पूजा करें इसकी! इसका स्मरण करें, इसकी मूर्तियां बनाएं।'और पत्थर गया और जा कर टकराया महल की खिड़की से। कांच की खिड़की चकनाचूर हो गयी। स्वभावतः पत्थर कांच से टकराएगा तो पत्थर और कांच का स्वभाव ऐसा है कि पत्थर नहीं टूटेगा और कांच टूटेगा। इसमें कुछ पत्थर की खूबी नहीं है। लेकिन पत्थर ने कहा : 'मैंने हजार बार कहा है, कोई सुनता नहीं, मेरे बीच में कोई न आए! जो मेरे बीच में आएगा, चकनाचूर हो जाएगा। अब देखा! अब देखा फल!'और गिरा अंदर जा कर कालीन पर महल की। कहा कि थक गया हूं बहुत; थोड़ा विश्राम कर लूं। सजा हुआ कमरा महल का और उसने कहा कि लगता है मेरे आने की खबर पहले ही पहुंच गयी है। सब इंतजाम कर रखा है, कालीन बिछा रखे हैं, झाड़-फानूस लगा रखे हैं, तस्वीरे टांग रखी हैं, दीए जला रखे हैं। हो भी क्यों न मैं कोई साधारण पत्थर तो हूं नहीं! आकाश में उड़ सकता है जो पत्थर, जिसके पंख हैं—ऐसा पत्थर हूं। अवतारी पत्थर हूं!और तभी महल के नौकर ने आवाज सुनी पत्थर की, टकराने की, कांच के टूटने की। भागा हुआ अंदर आया, पत्थर को उठाया। पत्थर ने कहा कि मेरा स्वागत किया जा रहा है;

हाथ में लेकर मेरा सम्मान किया जा रहा है; खुद सम्राट मालूम होता है, मेरे सम्मान-स्वागत में आया है! और नौकर ने पत्थर वापिस फेंक दिया खिड़की से। पत्थर नीचे गिरने लगा, तो उसने कहा कि बहुत समय हो गया अपने मित्रों को छोड़े, घर-द्वार छोड़े! और मातृ-भूमि से श्रेष्ठ तो इस जगत में कुछ भी नहीं वापिस जाऊं और अपनी अनंत-अनंत यात्राओं की कथा भी अपने मित्रों को सुनाऊं कि कैसे-कैसे महलों में वास हुआ, कैसे-कैसे सम्राटों के हाथों में स्वागत मिला, कहां-कहां फूलमालाएं चढ़ीं!गिरा वापिस पत्थरों की भीड़ में। पत्थर इकट्ठे हो गए। और उसने कहा कि जानते हो, क्या-क्या हुआ? खूब बढ़ा-चढ़ा कर उसने कहानी कही। पत्थरों ने कहा : 'आप एक काम करें, अपनी आत्मकथा लिखें। बच्चों के काम आएगी। सदियों-सदियों तक लोग स्मरण रखेंगे।' कहते हैं वह पत्थर अपनी आत्मकथा लिख रहा है।तुम छोड़ोगे क्या? तुम पकड़ोगे क्या? तुम हो कहां? न पकड़ना है, न छोड़ना है—सिर्फ जागना है। और मजा यह है : पकड़ो तो तुम बने रहोगे, छोड़ो तो तुम बने रहोगे; जागे कि तुम मिटे। या तुम मिट जाओ तो जाग जाओ । मिटना और जागना एक ही घटना के दो पहलू हैं। जागने में अहंकार नहीं बचता। अहंकार अंधकार है, कैसे बचेगा? जागना प्रकाश है।इसलिए रामदास, कबीर जो कहते हैं या मैं जो कहता हूं—'होनी होय सो होय'—उसका अर्थ समझो। उसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हें कुछ नहीं करना है, सब उसी पर छोड़ देना है। उसका यह अर्थ नहीं है कि आलस्य में पड़ जाओ, कि अकर्मण्य हो कर बैठ जाओ। यह पूरा देश ऐसे ही आलसी हुआ, ऐसे ही अकर्मण्य हुआ।नहीं; जो कर रहे हो करो, लेकिन जानो भलीभांति; कर रहा है वही हमारे द्वारा! उसके हाथ हजार हैं। हम सब उसके हाथ। जो हो रहा है उसके द्वारा हो रहा है। इसलिए तुम्हें चिंता नहीं पकड़ेगी। हारोगे तो उसकी हार, जीते तो उसकी जीत है। कैसी चिंता? कैसी अस्मिता? न अकड़ आएगी, न विषाद आएगा। तुम जीवन से ऐसे गुजर जाओगे—अछूते!कबीर ने कहा है : 'ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया, ऐसे जतन से ओढ़ी कबीरा। काश, तुम भी ऐसा ही एक दिन कह सको अपने अंतिम क्षणों में कि जीवन की चादर को जैसा का तैसा रख दिया— इतने जतन से ओढ़ कर, इतने होश से ओढ़ कर! जरा भी दाग न पड़ा! तो बस, तुम्हारे जीवन की पूर्णता आ गयी, तुम्हारे जीवन में फूल लगे, तुम्हारे जीवन में सुगंध उड़ी, तुम सार्थक हुए! अन्यथा लोग ऐसे ही धक्के खाते हैं और मर जाते हैं। बहुत कम लोग हैं जिनके जीवन में फूल लगते हैं, कमल खिलते हैं।और सब के जीवन में फूल लग सकते हैं! और सब के जीवन में कमल खिल सकते हैं। सब का जन्मसिद्ध अधिकार है।आज इतना ही।

सत्रहवां प्रवचन

पी ले प्याला हो मतवाला

सूत्र

इब न रहूं माटी के घर में, इब मैं जाइ रहूं मिली हरि में।

छिनहर घर अरु झिरहर टाटी, घन गरजन कंपै मेरी छाती। दसवैं दारि लागि गई तारी, दूरि गवन आवन भयौ भारी। चहुं दिसी बैठे चारि पहरिया, जागत मूसि गए मोरी नगरिया।

कहै कबीर सुनहु रे लोई, भानंड़ घड़ण संवारण सोई।

पी ले प्यारा हो मतवाला, प्याला नाम अमीरस का रे।

बालपना सब खेलि गंवाया, तरुन भया नारी बस का रे।

विरध भया कबाय ने घेरा, खाट फड़ा न जाय खस का रे।

नाभि कंवल बिच है कस्तूरी, जैसे मिरग फिरे बन का रे।

बिन सतगुरु इतना दुख पाया, बैद मिला नहिं इस तनका रे। माता पिता बंधु सुत तिरिया, संग नहीं कोइ जाय सका रे।
जब लग जीवै गुरु गुत लेगा, धन जोबन है दिन दस का रे। चौरासी जो उबरा चाहे, छोड़ कामिन का चसका रे।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, नख-सिख पूर रहा बिस का रे। मुरसिद नैनों बीच नबी है।
स्याह सपेद तिलों बिच तारा, अवगति अलख रबी है।
आंखी मद्धे पांखी चमके, पांखी मद्धे द्वारा।
तेहि द्वारे दुर्बीन लगावै, उतरै भवजल पारा।
सुन्न सहर में बास हमारी, तहं सरबंगी जावै।
साहब कबीर सदा के संगी, सब्द महल ले आवै।
जिंदगी सुबह से अब शाम हुई जाती है
देर कुछ पल की बस यह सांस रुकी जाती है।
उससे मिलना न हुआ जिससे मुझे मिलना था
यूं तो मिले खूब मगर यह भी कोई मिलना था।
गांठ जब लगती हो तो डोर टूट जाती है।
जिंदगी सुबह से अब शाम हुई जाती है।
कोई मेरा न हुआ न मैं किसी का हो सका
चक्र मेरे भाग्य का इस जगह आ कर रुका।
जहां फूल तो खिलते नहीं कली बिखर जाती है
देर कुछ पल की बस यह सांस रुकी जाती है।
किसी का दोष नहीं मैंने ही गल्ती की है
सत्य को छोड़ जो सपनों से मोहब्बत की है।
जो कभी थी ही नहीं वह दुनिया मिटी जाती है
जिंदगी सुबह से अब शाम हुई जाती है।
असंभव आस थी भरने की खुद को भर न सका
नियति शून्य है मेरी मैं यह देख न सका।
आंख में आंसू हैं मगर होंठों पे हंसी आती है
देर कुछ पल की बस यह सांस रुकी जाती है।
जिंदगी सुबह से अब शाम हुई जाती है।।

सुबह हुई तो शाम हो ही गयी, क्योंकि प्रारंभ में ही अंत छिपा है। जन्म में ही मृत्यु छिपी है। जिस दिन से पैदा हुए हो, मर रहे हो। सत्तर वर्ष लगें, अस्सी वर्ष लगें इस प्रक्रिया को पूरे होने में, वह बात अलग। लेकिन मृत्यु अचानक नहीं आती। जन्म के साथ, पहली सांस के साथ ही उसकी पगध्वनि सुनी जाती है। आते-आते समय लग जाता है। जिसे यह बात खयाल में आ गयी कि मैं मर रहा हूं; जिसे हम जिंदगी कहते हैं वह मृत्यु की ही लंबी प्रक्रिया है--उसके जीवन में क्रांति हो जानी अवश्यंभावी है। यह भ्रांति की यह जीवन है, हमें उलझाए रखती है। जीवन समझते हैं तो लिपटते हैं। जीवन समझते हैं तो जोर से पकड़ते हैं कि हाथ से छूट न जाए। मौत दिखायी पड़ जाए, फिर कौन पागल पकड़े! मौत दिखायी पड़ जाए तो हमारी आंखें उसकी तलाश करने लगें, जो असली जीवन है।यह जीवन जीवन नहीं है, ऐसी प्रतीति प्रगाढ़ हो तो कैसे रोक सकोगे अपने को अनंत जीवन को खोजने से? तब अमृत की तलाश शुरू होती है। पहला कदम यही है कि यह जीवन सिर्फ धोखा है, माया है। प्रतीत होता है जीवन जैसा, है क्या? हड्डी, मांस-मज्जा का ढेर है। सांस आती है, जाती है। छाती फूलती है,

सिकुड़ती है। इसे तुम जीवन कहते हो? बाहर गयी श्वास भीतर न आएगी और बस जीवन समाप्त! इतना सस्ता, इतना दो कौड़ी का, इतना परवश, इतना असहाय—इसे तुम जीवन कहते हो! अगर इसे जीवन कहते हो तो फिर मृत्यु क्या है? यह देह अभी है और अभी न हो जाए। जरा-सी बात इसे मिटा दे, पानी का बबूला है। सूरज की रोशनी में चमकता है। यूं लगता है जैसे इंद्रधनुष बना हो उसके चारों तरफ रंग-बिरंगा मालूम पड़ता है और जरा-सी अलपिन चुभा दो और ऐसे मिट गया जैसे कभी न था! इससे भिन्न है हमारी जिंदगी कुछ? बस अलपिन चुभा दो और गयी! पानी की लहर है, हवा का झोंका है।महावीर ने ठीक कहा है : जीवन ऐसे है जैसे घास की पत्ती पर सुबह की ओस; सूरज निकलेगा, वाष्पीभूत हो जाएगी। और न भी निकले सूरज, जरा-सा हवा का झोंका आ जाएगा कि पत्ती से झर जाएगी, मिट्टी में खो जाएगी। ओस की बूंद है हमारा जीवन। मगर इसको हमने इतना मूल्य दे रखा है, इतना सजाने-संवारने में, इतने श्रृंगार में लगे हैं, सब कुछ इसी पर लगा रखा है। फिर रोओगे, फिर पछताओगे।कबीर कहते हैं 'इब न रहूं माटी के घर में'—अब इस मिट्टी के घर में न रहूंगा। रह चुके बहुत। जन्मों-जन्मों से रह रहे हो। कबीर तो घोषणा कर रहे हैं परमात्मा के सामने। 'इब न रहूं माटी के घर में।' अब हो गया बहुत। आखिर नासमझी की भी एक सीमा होती है। अब नहीं रहूंगा इस मिट्टी के घर में। मिट्टी ही तो है। इधर सांस गयी, उधर लोगों ने अर्थी उठायी। इधर सांस गयी, उधर लोग गड्ढा खोदने लगे। मिट्टी मिट्टी में मिल ही जाएगी। और मिट्टी के लिए कितना शोरगुल था! कितने उपद्रव थे! कितने राग-रंग थे! मिट्टी के लिए कितनों को सताया, कितनों को मिटाया! मिट्टी ने न मालूम कैसे-कैसे सपने देखे! सारे संसार की विजय-यात्रा करनी चाही। सारे संसार की संपदा इकट्ठी करनी चाही। पद और प्रतिष्ठा के तमगे लगाना चाहे। और भूल ही गयी मिट्टी कि बस मिट्टी है! देर नहीं लगेगी गिरने में। सब धन-संपत्ति पड़ी रह जाएगी। सब विजय-यात्रा विषाद में बदल जाएगी।कबीर को दिख गयी यह बात! तुम्हें भी दिखनी चाहिए। बहुत हो गया समय! संकोच करो अब, थोड़ी लाज भी करो, थोड़े शरमाओ भी।

'इब न रहूं माटी के घर में,

इब मैं जाइ रहूं मिलि हरि में।' कबीर कहते हैं : अब तो इस मिट्टी के घर में नहीं रहना। अब तो हरि में मिलूंगा, अब तो चैतन्य में निवास करूंगा, अब तो सच्चिदानंद में डूबूंगा। बहुत हो गए खिलौनों से खेल। अब तो सत्य को पकड़ूंगा। अब नहीं और सपने; नहीं अब बनानी हैं और कामनाएं और तृष्णाएं और वासनाएं। अब सब मिटा दूंगा ये मिट्टी के घर-घूले। ये रेत में बनाए महल सब गिरा दूंगा। ये कागज की नावें सब डुबा दूंगा। अब तो जो है और सदा है, और सदा रहता है, उससे ही नाता जोड़ूंगा, उससे ही सेतु बनाऊंगा। उसका ही नाम हरि है।हरि कोई व्यक्ति नहीं है। इस भ्रांति में मत रहना कि राम कहीं कोई व्यक्ति है कि जो तुम्हें मिलेगा और कहेगा कि 'आइए, विराजिए, पधारिए, कि भले आए, बहुत दिन से प्रतीक्षा करता था, कि बड़े सौभाग्य हमारे, कि पलक-पांवड़े बिछाए बैठा था। हरि कोई व्यक्ति नहीं है। ईश्वर के संबंध में व्यक्ति की धारणा बिलकुल छोड़ दो। भगवान व्यक्ति नहीं है, भगवत्ता है; चैतन्य, सत्य, आनंद—ऐसे गुणों का स्मरण करो। यह सारा जगत उसमें व्याप्त है। फूल-फूल पर उसकी छाप है। पत्ते-पत्ते पर उसके हस्ताक्षर हैं। मगर व्यक्ति की तलाश बंद कर दो, नहीं तो वह तुम्हें कभी मिलेगा नहीं। अब कोई चला धनुर्धारी राम को खोजने। अब कहां मिलेंगे धनुर्धारी राम? कोई चला बांसुरी बजाने वाले कृष्ण को खोजने। कहां मिलेंगे बांसुरी बजाने वाले कृष्ण? तुम्हारे मन की कल्पना है। तुम चाहो तो कल्पना को इतना साकार कर ले सकते हो कि खुली आंखों सपना दिखायी पड़ने लगे। मगर सपना चाहे बंद आंख देखो, चाहे खुली आंख; चाहे रात का हो सपना, चाहे दिवस का—सपना सपना है। और सपना चाहे संसार का हो और चाहे स्वर्ग का—सपना सपना है।परमात्मा को व्यक्ति की तरह देखने के कारण ही करोड़ों-करोड़ों लोग उससे वंचित हैं, क्योंकि मौलिक रूप से ही उनकी खोज गलत शुरू हो जाती है।

परमात्मा व्यक्ति नहीं है, एक भाव है—अहोभाव है।

परमात्मा व्यक्ति नहीं है—प्रार्थना की परम स्थिति है।

परमात्मा व्यक्ति नहीं है—ध्यान में उतरी हुई धन्यता है। परमात्मा व्यक्ति नहीं है—शून्य है। निर्विचार, निर्विकल्प समाधि है।कबीर कहते हैं : 'इब न रहुं माटी के घर में, इब मैं जाइ रहूं मिली हरि में।' अब तो मिलना है मुझे भगवत्ता में। अब इस छोटे-से घर से काम न चलेगा। अब तो सारे विश्व को, विराट को अपना घर बनाऊंगा। अब बंधा न रहूंगा सीमा में। अब तो असीम के साथ भांवरें डालनी हैं। अब तो विवाह रचाना है। कबीर और जगह कहते हैं : मैं तो राम की दुल्हनियां। ये प्रतीक हैं। अगर भांवरें ही डालनी हों तो शाश्वत के साथ डालो। क्षणभंगुर के साथ भांवरें डालोगे, पछताओगे। अगर आश्वासन ही लेना है, देना है, तो शाश्वत को दो, लो। क्षणभंगुर को आश्वासन दोगे-लोगे, टूटेंगे आश्वासन। खुद का ही भरोसा नहीं है कि कल हम होंगे या नहीं और कल के हम आश्वासन देते हैं।सुनी है मैंने यह कथा; महाभारत की है। युधिष्ठिर सुबह-सुबह बैठे हैं। अज्ञातवास के दिनों की बात है। एक भिखमंगा द्वार पर दस्तक दिया है। युधिष्ठिर कुछ काम में लगे हैं। कहा कि कल आ जाना। भीम ने सुना, उठाया नगाड़ा, बजाता नगाड़ा बाहर की तरफ भागा। युधिष्ठिर ने पूछा : 'कहां जाते हो?' उसने कहा : 'गांव में खबर कर दूं कि मेरे भाई ने समय पर विजय पा ली है। एक भिखमंगे को कहा है कि कल भिक्षा दूंगा। समय पर विजय पा ले, वही कह सकता है कल भिक्षा दूंगा। कल का क्या भरोसा, कल हो या न हो! एक पल का तो भरोसा नहीं है। अभी हो, अभी मिट जाओ। और तुम कल तक का आश्वासन दे रहे हो।'युधिष्ठिर को बात समझ में आयी। दौड़े, भिखमंगे को पकड़ा और कहा : भइया, तू भिक्षा ले जा। अभी ले जा, क्योंकि जो करना है वह अभी। कल पर टालना तो तभी हो सकता है जब हमें भरोसा हो कि कल हम भी होंगे।चीन की एक पुरानी कथा है। एक सम्राट अपने वजीर पर नाराज हो गया। उसने उसे मृत्यु का दंड दे दिया। लेकिन नियम था उस साम्राज्य का कि जब किसी का मृत्यु दंड हो तो एक दिन पहले सम्राट स्वयं मिलने आता था। फिर यह तो उसका खुद वजीर था और इस वजीर ने बड़ी सेवाएं की थीं। लेकिन कोई बात पर नाराज हो गया था। और क्रोध में दंड दे दिया था। ऐसे मन ही मन पछताया भी था पीछे, लेकिन अब लौटना तो हो ही नहीं सकता। थूका चाटा नहीं जा सकता। तो आया वजीर को मिलने, अपना घोड़ा बांधा कारागृह के बाहर, सींखचों के भीतर वजीर बंद है। ताला खुला, सम्राट भीतर आया। वजीर से कहा : 'कुछ भी मांगना हो तो मांग लो। तुमने मेरी बहुत सेवाएं कीं। यद्यपि तुम्हारी भूल के कारण मुझे दंड देना पड़ा, लेकिन मेरे मन में पछतावा है। पर अब कुछ भी हो नहीं सकता।'सम्राट यह कह ही रहा था कि वजीर दहाड़ मार कर रोने लगा। सम्राट ने कहाः 'तुम और रोते हो! तुम जैसा शूरवीर मैंने नहीं देखा। मैंने तुम्हें युद्ध के मैदानों पर नंगी तलवारों में घिरे देखा है। तुम्हारी आंख में मैंने कभी आंसू नहीं देखे। तुम और मौत से डरो, यह तो मैं सोच भी नहीं सकता था!'वजीर ने कहा : 'मौत से कौन डर रहा है मालिक, मैं किसी और बात के लिए रो रहा हूं।'सम्राट ने पूछा : 'वह कौन-सी बात है, मैं पूरी करूंगा।'वजीर ने कहा कि नहीं आप पूरी न कर सकेंगे। कोई भी पूरी न कर सकेगा वह बात ही कुछ ऐसी है।जिद्द की सम्राट ने तो उसने कहा : 'आप कहते हैं तो कह देता हूं आप जिस घोड़े को ले कर आए हैं उसके कारण रो रहा हूं।'सम्राट ने कहा : 'पागल हो गए हो! घोड़े के लिए क्यों रोओगे?'वजीर ने कहा कि जीवन भर इस जाति के घोड़े की मैं तलाश करता रहा, क्योंकि मैंने बारह वर्ष अपने जीवन के इसी साधना में लगाए थे। एक सदगुरु के पास बैठ कर मैंने घोड़ों को आकाश में उड़ाने की कला सीखी थी, मगर एक खास जाति का घोड़ा ही उड़ने में समर्थ हो सकता है, और आज जब मरने की घड़ी है और केवल चौबीस घंटे मेरे हाथ में बचे हैं, तब यह घोड़ा मुझे दिखायी पड़ा। जिंदगी भर इसकी तलाश करता था। इसलिए रो रहा हूं कि यह भी खूब मजाक रही, खूब विडंबना हुई! बारह साल मैंने खर्च किए थे—बड़ी आशा में कि घोड़ों को उड़ा कर दुनिया में एक चमत्कार पैदा कर दूंगा। और अब आप आए हैं इस घोड़े पर बैठकर। मरते वक्त मुझे और पीड़ा देने आए हैं। मृत्यु से नहीं रो रहा हूं मालिक, इस घोड़े को देख कर रो रहा हूं।सम्राट के मन में वासना जगी कि काश मेरे पास उड़ने वाला घोड़ा हो, जो दुनिया में किसी सम्राट के पास नहीं है। उसने कहा : 'कितना समय लगेगा घोड़े को उड़ना सीखने?' वजीर ने कहा : 'एक वर्ष।' सम्राट ने कहाः 'तो एक वर्ष के लिए तुम बाहर आ जाओ। अगर

घोड़ा उड़ना सीख गया तो न केवल तुम्हारा मृत्यु दंड रद्द, मैं अपनी बेटी से तुम्हारा विवाह करूंगा, आधा साम्राज्य भी तुम्हें दूंगा। और अगर घोड़ा उड़ना नहीं सीखा तो कोई हर्ज नहीं है। साल भर के बाद मौत हो जाएगी। मैं इसमें कुछ गंवा नहीं रहा हूं। 'वजीर घोड़े पर बैठ कर अपने घर लौटा। पत्नी, बच्चे रो रहे थे। क्योंकि आज आखिरी दिन था। पति को घर आए देख कर, पत्नी ने पूछा : 'आप और कैसे लौट आए, क्या चमत्कार घटा?' पति हंसने लगा, उसने कहा कि ऐसी-ऐसी घटना घटी। सम्राट को मैंने कहा कि एक साल में घोड़े को उड़ना सिखा दूंगा। इसलिए एक साल तो बचा।पत्नी ने कहा कि यह तुमने क्या किया, और मुश्किल डाल दी। मुझे भलीभांति पता है, तुमने ऐसी कोई कला कभी सीखी नहीं। तुम झूठ बोले हो। और झूठ ही बोलना था तो कम से कम दस-पांच साल तो मांगते। एक साल तो यूं गुजर जाएगा. . .और यह एक साल हमारी छाती पर पत्थर की चट्टान की तरह रहेगा, गर्दन पर तलवार लटकी रहेगी। अब गया एक दिन, और एक दिन गया और मौत फिर खड़ी है सामने। इससे तो मर जाना ही बेहतर था। यह एक साल तो हमारे लिए, सबके लिए मृत्यु सिर पर खड़ी रहेगी। यह तो और भारी पड़ जाएगा। यह तुमने क्या किया?उस वजीर ने कहा : 'नासमझ, तुझे जिंदगी का कुछ हिसाब पता है? अरे साल भर में क्या नहीं हो सकता। घोड़ा तो नहीं उड़ेगा, यह पक्का है। मगर और बहुत कुछ हो सकता है। राजा मर सकता है, मैं मर सकता हूं। कम से कम घोड़ा तो मर ही सकता है।'और जो घटना घटी वह बहुत हैरानी की है। राजा ही नहीं मरा, घोड़ा ही नहीं मरा, वजीर भी मर गया। तीनों मर गए, साल भर में तीनों समाप्त हो गए।जिंदगी बिलकुल पानी की धार है। और हम पानी की धार में पैर को अड़ा कर सारी ताकत लगा कर खड़े हैं। जो कोई नहीं कर सका वह हम करने की कोशिश कर रहे हैं। जीत लेंगे जैसे। जैसे अपने को अपवाद सिद्ध कर देंगे।कबीर कहते हैं : 'इब न रहूं माटी के घर में।' अब नहीं। बहुत हो चुका। सीमा होती है। अब सीमा के बाहर की बात हो गयी।इस 'इब' शब्द पर ध्यान देना। 'इब न रहूं'. . .क्योंकि जब भी क्रांति घटित होती है तो अब में ही घटित होती है। कबीर यह नहीं कह रहे हैं कि कल बदलूंगा, अगले वर्ष, कि जब बुढ़ापा आएगा तब संन्यास ले लूंगा। कबीर टाल नहीं रहे हैं। कबीर का वचन बहुत अदभुत है : इब न रहूं! बस अभी, इसी क्षण! इस देह में अब नहीं रहना है। देह में नहीं रहने का क्या अर्थ है? क्या आत्महत्या कर लेनी है? क्या गर्दन काट लेनी है? क्या पहाड़ से कूद जाना है? क्या फांसी लगा लेनी है? नहीं; 'इब न रहूं माटी के घर में', इसका अर्थ है अब और अपने को इस माटी के घर के साथ तादात्म्य नहीं कर सकता। अब नहीं कह सकता हूं कि मैं देह हूं। अब कहना चाहता हूं कि मैं सच्चिदानंद हूं, अनलहक हूं, अहं ब्रह्मास्मि! अब यह उदघोष करना चाहता हूं। बहुत दिन माटी से जुड़ा रहा। अब वह जोड़ तोड़ देना चाहता हूं।इधर माटी से जोड़ तोड़ो, उधर अमृत से जोड़ बन जाता है। दोनों जोड़ साथ नहीं रह सकते। हाथ से मिट्टी गिर जाए, अमृत से हाथ भर जाते हैं। जब तक हाथ मिट्टी से भरे हैं, अमृत के लिए अवकाश नहीं, स्थान नहीं।

'इब न रहूं माटी के घर में,

इब मैं जाइ रहूं मिली हरि में।' अब इसी क्षण हरि में मिलूंगा!. . .इस वचन के बाद भी कबीरदास बहुत वर्षों तक जिंदा रहे। इसलिए हरि में मिलने का अर्थ ऐसा नहीं है कि कोई मरने के बाद ही हरि में मिलता है। हरि का और मरने से क्या लेना-देना! अभी घटना घट सकती है—और अभी ही घटना घट सकती है! कल पर टाला तो सदा को टाला। जिसने कहा कल, उसने असल में यह कहा : 'कभी नहीं!'कल कभी आता है? कल कभी आया है! जो आता है वह तो आज है। सदा आज है। परमात्मा तो सिर्फ एक ही समय जानता है। न बीता कल जानता है, न आने वाल कल जानता है। परमात्मा तो सिर्फ आज को ही पहचानता है। 'आज' भी कहना ठीक नहीं, आज भी बड़ी बात हो गयी। परमात्मा भी बस, 'अब' को ही पहचानता है। यह क्षण, यह क्षण की प्रगाढ़ता, यह क्षण जो तुम्हें घेरे हुए है। यह धड़कती हुई छाती, यह श्वास का आना-जाना। यह दूर ट्रेन की आवाज, यह पक्षियों की चहचहाहट। यह क्षण—अपनी समग्रता में। बस इस क्षण के बाहर और कोई समय नहीं। बीता कल तुम्हारी स्मृति में है। आने वाला कल तुम्हारी कल्पना में है। न बीते कल का कोई अस्तित्व है, न

आने वाले कल का कोई अस्तित्व है। अस्तित्व है तो बस, अब का। और अब से भी छोटा लगता है कबीर का शब्द—'इब'। इब और भी प्यारा है।

'इब न रहूं माटी के घर में,
इब मैं जाइ रहूं मिली हरि में।'
ओ! मेरी श्वासों में उलझे
मेरी उलझन सुलझा दे रे!
यह उर में कैसी, उथल-पुथल
तन आज शिथिल, मन आज विकल,
निर्जीव उंगलियां तारों पर,
स्वर-लहरी में भारी हलचल।
भूले अतीत रागों को गायक
फिर वीणा पर गा दे रे!
मैंने फूलों का उर झांका,
कांटों-कांटों में भरमाई,
मैं जलधि-उर्मियों पर नाची,
मैं चट्टानों से टकराई।
तू पार, न तुझको छू पाई
मुझको ही पार लगा ले रे!

यह घोषणा परमात्मा से क्यों कर रहे हैं वे? इसलिए कि हमारी सामर्थ्य के बाहर है, कि हम परमात्मा के साथ एक हो जाएं। हम तो केवल प्रार्थना कर सकते हैं। हम तो पुकार दे सकते हैं।

तू पार, न तुझको छू पाई
मुझको ही पार लगा ले रे!

तू है बहुत दूर; हाथ हमारे बहुत छोटे, बहुत बौने। तू है आकाश में चमकते तारे जैसा; हम हाथ भी बढ़ाते हैं तो तुझ तक कहां पहुंच पाते हैं! हां, तू चाहे तो तेरे हाथ तो कहीं भी पहुंच सकते हैं। तेरी किरणें तो किसी भी हृदय के अंधकार को तोड़ सकती हैं।

ओ! मेरी श्वासों में उलझे
मेरी उलझन सुलझा दे रे!

हमारे लिए तो तू दूर है, लेकिन तू तो. . .तेरे लिए हम दूर नहीं हैं, क्योंकि तू हमारी श्वासों में उलझा है। हमें पता नहीं इसलिए दूर है। हमें पहचान नहीं, इसलिए दूर है। तुझे तो पहचान है, तुझे तो पता है!

ओ! मेरी श्वासों में उलझे
मेरी उलझन सुलझा दे रे!

तू चाहे तो अभी सुलझ जाए बात। तू चाहे और बात न हो, तो हम क्या करें? हम सिर्फ पुकार दे सकते हैं। हम अपने समग्र प्राणों से तुझे पुकार सकते हैं। हम रोएं-रोएं से पुकार सकते हैं। हमारा कण-कण आवाहन दे सकता है, रो सकता है।वही कबीर कह रहे हैंः 'इब न रहूं माटी के घर में।' मेरी तरफ से तुझसे कहे देता हूं, मेरी तरफ से कोई बाधा नहीं डालूंगा। तू कुछ कर, तोड़ दे मेरा तादात्म्य। मिटा दे मेरी भ्रांतियां। हिला और जगा दे मुझे। यह नींद और ये नींद के दुःख-स्वप्न बहुत झेल लिए।

'इब न रहूं माटी के घर में,
इब मैं जाइ रहूं मिली हरि में।'

अब तो बस तुझमें मिलने की आकांक्षा है, मगर मेरे बस के बाहर की आकांक्षा कर रहा हूं। तू है विराट, हम हैं क्षुद्र। तू है सागर, हम हैं बूंद। बूंद सागर को तलाश करने भी जाएगी, बहुत संभावना है रास्तों में कहीं भटक जाए, खो जाए, मरुस्थलों में डूब जाए। लेकिन अगर सागर बूंद को खोजने आए तो जरूर खोज लेगा। फिर बूंद को सागर का कुछ पता भी तो नहीं, जाए तो किस दिशा में जाए? सागर का कोई नाम-धाम भी तो हो, सागर की कोई पहली पहचान भी तो हो। सागर सामने भी आ जाएगा तो बूंद कैसे पहचानेगी कि यही सागर है? पहचान के लिए भी तो कोई पुराना परिचय चाहिए। हां, सागर पहचान लेगा, क्योंकि बूंद सागर की है।

ओ! मेरी श्वासों में उलझे

मेरी उलझन सुलझा दे रे!

यह उर में कैसी, उथल-पुथल

तन आज शिथिल, मन आज विकल,

निर्जीव उंगलियां तारों पर,

स्वर-लहरी में भारी हलचल। मैं तो इतना ही निवेदन कर सकता हूं कि मेरे हृदय में एक उथल-पुथल मची है, एक क्रांति उठी है, एक ज्वाला जगी है।

यह उर में कैसी, उथल-पुथल

तन आज शिथिल, मन आज विकल,

और यह जो भी हो रहा है, आज हो रहा है, अभी हो रहा है।

मन आज विकल, तन आज शिथिल,

निर्जीव उंगलियां तारों पर,

स्वरलहरी में भारी हलचल। और मेरी उंगलियां तो निर्जीव हैं, मैं तो मिट्टी ही हूं। तू छू दे तो जीवन मिले। तेरा स्पर्श आए तो मिट्टी सोना हो जाए। मैं तो जो छूता हूं वही मिट्टी सिद्ध होता है। सोना छूता हूं तो मिट्टी हो जाती है। तेरा दिव्य स्पर्श चाहिए, तेरा संस्पर्श चाहिए--तो क्रांति घट सकती है।

कबीर सिर्फ उदघोषणा कर रहे हैं।

'छिनहर घर अरू झिरहर टाटी।'

अपना निवेदन किए देते हैं। कहते हैं कि मैं अपनी पहचान तुझे बता दूं, ताकि तू मुझे खोजे तो कुछ अड़चन न हो। तू तो कुछ कहता नहीं, कहां है! तू तो बुलाता नहीं। तू तो द्वार पर दस्तक देता नहीं। मैं ही तुझे अपना पता-ठिकाना बताए देता हूं।'छिनहर घर'. . .! टूटा-फूटा घर है यह। जहां टूटे-फूटे घर को देख लेना, समझना कि मैं ही हूं।'छिनहर घर अरु झिरहर टाटी।' टूटा-फूटा घर है, जर्जर टाटी है। बस माटी ही माटी है।

'घन गरजन कंपै मेरी छाती।' और मौत चारों तरफ घनघोर गरज रही है और मेरी छाती कंप रही है।कबीर का वचन बड़ा प्यारा है। कबीर यह ही नहीं कह रहे हैं कि यह मेरे साथ ही हो रहा है। जहां भी ऐसा हो रहा हो वहीं तू समझना कि यही अड़चन है, यही रोग है, यही बीमारी है। और तू ही निदान है और तू ही उपचार है!कबीर अपने परिचय में हम सबका परिचय दे रहे हैं। कबीर अपने संबंध में कह कर हम सबके संबंध में कह रहे हैं।

'छिनहर घर अरु झिरहर टाटी,

घन गरजन कंपै मेरी छाती।'

मुस्कान के इरादे अश्कों में ढल गए

आए बहार बनके खिजां बनके ढल गए।

सारे जहां को रोशन कर सकते जिस शमां से

झुलसा दिया गुलशन को और खुद भी जल गए।

हकीकत न जान पाए गम और खुशी की हम

थे गुल गले लगाए कांटों में छल गए।
डूबे कभी यादों में खोए कभी ख्वाबों में
दो कलों में आज के बरबाद पल गए।
नजरें तो टिकी हुई थीं चांद और सितारों पर
खुद अपने ही आंगन की जमीं पर फिसल गए।
दूर-दूर खोजा करतीं जिन्हें निगाहें
अफसोस बहुत पास से मेरे निकल गए।
मालूम ये न चल सका कब मौत आ गयी
यूं हौले-हौले हाथों से बरसों निकल गए।
किस्मत को दोष दें या गफलत को अपनी यारो
कई मंसूर और रूमी इसी जहां में सम्हल गए।
हम आए बहार बनके खिजां बनके ढल गए।।

यह हम सबकी कहानी है। हम आते तो हैं बहार बनकर और पतझड़ विदा हो जाते हैं। आते हैं तो हम बड़ी रौनक से, बड़ी शान से। हर बच्चा वसंत की तरह आता है और हर बूढ़ा पतझड़ की तरह जाता है। आते तो हैं बड़े खयालों से, बड़ी अभिलाषाओं से। आते तो हैं बड़े अकड़े हुए, बड़े अरमानों से भरे हुए। आते तो हैं न मालूम कितनी-कितनी इच्छाएं पूरी करने—और जाते हैं हाथ में केवल जीवन का विषाद, विफलता, रिक्तता लिए।एक स्कूल में एक अध्यापक जीवन के सत्य को ही समझा रहा था। समझाने के बाद उसने बच्चों से पूछा, कि वह कौन है कि जो आता है तो सिंह की तरह गरजता हुआ आता है और जाता है तो कुत्ते की तरह दुम दबा कर जाता है।एक छोटे बच्चे ने कहा : 'मेरे पिताजी!' उसने देखा होगा बेचारे ने। बच्चे देखते रहते हैं। बच्चे काफी सावधान होते हैं। चित्त ताजा होता है अभी; दर्पण पर प्रतिबिंब ठीक-ठीक बनते हैं। सोच-विचार भला ज्यादा न हो, लेकिन दृष्टि अभी निर्मल होती है। देखता होगा रोज पिताजी आते तो हैं बड़े अकड़े हुए और जब घर से जाते हैं कुट-पिट कर, तो बिलकुल पूंछ दबाए हुए चले जाते हैं।लेकिन जीवन की भी ऐसी ही दशा है। आते हैं सभी सिंह की तरह गरजते हुए। तुमने भी कितने सपने पाले थे! अब कहां हैं वे सपने? उनकी धूल भी न बची। तुमने भी कितने अरमान नहीं संजोए थे, अब कहां हैं वे सारे अरमान? एक-एक गिरते गए। राह क्या चलते गए, अरमान उजड़ते गए। धीरे-धीरे विषाद का तिक्त स्वाद ही मुंह में रह जाता है। मरते समय हाथ बिलकुल खाली होते हैं और मरते वक्त एक गहन उदासी होती है। वह मृत्यु की नहीं होती। मरते वक्त जब तुम किसी को देखते हो तो यह कभी मत सोचना कि वह मरने से डरने के कारण इतना परेशान हो रहा है। नहीं; वह परेशान इसलिए हो रहा है कि जीवन यूं ही चला गया। मौत तो सिर्फ अब इतना कह रही है कि अब और जीवन नहीं है और तुमने जो गंवा दिया अब उसको लौटा लेने का कोई उपाय नहीं। गए दिन, गए; अब आ नहीं सकते। जो अतीत हुआ, व्यतीत हुआ, अब उसे फिर नहीं पाया जा सकता।और कैसी-कैसी बातों में गंवा दिए दिन, कैसे-कैसे खेल थे, कैसी-कैसी बचकानी बातें थीं! लड़ाई थे, झगड़े थे, द्वंद्व थे। ईर्ष्या थी, वैमनस्य था, लोभ था, मोह था। किन-किन चीजों पर बरबाद कर दिया जीवन के अमूल्य अवसर को! इस सारे अवसर को तुम सेतु बना सकते थे परमात्मा से मिलने का।कबीर कहते हैं : अब मैं सजग हो गया। अब और धोखा नहीं खाऊंगा। अब तो तय कर लिया है।

'इब न रहूं माटी के घर में,
इब मैं जाई रहूं मिली हरि में।
छिनहर घर अरु झिरहर टाटी,
घन गरजन कंपै मेरी छाती।

दसवैं दारि लागि गई तारी,

दूरि गवन आवन भयौ भारी।'

और कबीर कहते हैं : जब से यह निर्णय हुआ, जैसे ही यह निर्णय हुआ, कि दसवें द्वार पर ध्यान चढ़ गया। कबीर ने दस सीढ़ियां मानी हैं—परमात्म-विकास की, आत्म-यात्रा की, अंतर्यात्रा की। दसवीं आखिरी सीढ़ी है, जिसके पार फिर महाशून्य है, जहां से छलांग लगती है। वह सीमा-रेखा है—सीमांत, सरहद—जहां से मनुष्य सीमा तोड़ देता है और असीम के साथ एक होता है। वह दसवां द्वार। जिसको योगियों ने 'सहस्रार' कहा है, कवियों ने और-और नाम दिए हैं, ऋषियों ने सप्तम द्वार कहा है—उसको ही कबीर दसवां द्वार कहते हैं।भीतर के जगत को अनेक तरह से बांटा जा सकता है। इसमें कुछ अड़चन नहीं है। इसमें विवाद भी मत समझना, इसमें कुछ विरोध भी नहीं है। इस च्वांगत्सु-भवन को तुम कितने ही हिस्सों में बांट सकते हो, कई तरह से बांट सकते हो। खंबों के हिसाब से बांट सकते हो तो एक तरह के खंड होंगे। खंबों की बिलकुल फिक्र ही मत करो, भूमि के हिसाब से बांट सकते हो। तब और तरह के खंड हो जाएंगे। रहेगा यही भवन।सब खंड कृत्रिम हैं; उनका उपयोग है, उपादेयता है उनकी, लेकिन उनका कोई सत्य नहीं है। लेकिन कुछ मूढ़ इन्हीं बातों में बहुत उलझे रहते हैं कि कबीर कहते हैं दस द्वार; योगी कहते हैं सात—सत्य कौन? सिर्फ मूढ़ ही इस तरह की चर्चाओं में पड़ते हैं। मेरे पास एक सज्जन आए। मैं आगरा में मेहमान था। उस इलाके में एक खास संप्रदाय का काफी प्रचार है : राधास्वामी संप्रदाय। तो उन्होंने मुझसे कहा कि चौदह खंड होते हैं। राधास्वामी संप्रदाय के हिसाब से चौदह खंड होते हैं। कोई अड़चन नहीं, चौदह खंडों में बांट सकते हो। मगर जिस अकड़ से उन्होंने कहा, जिस मूढ़ता से उन्होंने कहा, वे यह कह रहे थे कि कबीर के दस द्वार ठीक नहीं—चौदह। योगियों के सात तो बिलकुल गलत हैं—चौदह!वे नक्शा भी लाए थे अपने साथ जिसमें चौदह खंड बताए गए हैं। आखिरी खंड—सच्च खंड! और उस नक्शे पर उन्होंने यह भी दिखाया हुआ था, ठीक-ठीक तो मुझे याद नहीं, लेकिन नक्शे पर यह भी दिखाया हुआ था कि महावीर पांचवें खंड तक पहुंचे, क्योंकि उन्होंने पांच की ही बात की। पतंजलि सातवें तक पहुंचे, क्योंकि उन्होंने सात की ही बात की। कबीर दस तक पहुंचे, क्योंकि उन्होंने दस की बात की। और मुहम्मद, जीससक्र कोई तीसरे फर अटका है, कोई चौथे पर अटका है। ऐसा पूरा सब नक्शा था, कौन कहां अटका है। सिर्फ उनके गुरु—राधास्वामी संप्रदाय के चलाने वाले—वे चौदहवें तक पहुंचे—सच्च खंड तक! उन्होंने चौदह की बात की।मैंने उनसे कहा कि तुम बिलकुल ठीक कहते हो; मैं तुम्हारे गुरु को जानता हूं, वे चौदहवें फर अटके हैं। असली में होते अट्ठाइस हैं। उन्होंने कहाः 'क्या कहते हैं' मैंने कहा : 'मैं अट्ठाइस तक पहुंचा, इसलिए अट्ठाइस होते हैं। तुम्हारे गुरु को मैं देख रहा हूं, चौदहवें पर अटके हैं। चिल्ला रहे हैं—उबारो! अब मेरा अट्ठाइस से चौदहवां इतना दूर है कि उबारूं भी कैसे! मैं उनसे कहता हूं : थोड़े और चढ़ो। उन्होंने तो बड़ी गंभीरता से लिया। वे दूसरे दिन और पांच-सात लोगों को ले कर आ गए कि आपने तो हमें बहुत दुविधा में डाल दिया है—अट्ठाइस! मैंने कहा : 'तुम पागल हो, मैं मजाक कर रहा था! मजाक इसलिए कर रहा था कि तुम्हारी मूढ़ता भरा नक्शा देख कर मैं हैरान हुआ। कहीं बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट, मुहम्मद, कबीर, इनको तुम ऊपर-नीचे रख सकते हो!' सीमा के जो बाहर गया, फिर उसको ऊपर-नीचे रखने का कोई उपाय नहीं। गंगा गिर गयी सागर में और एक गंदा नाला भी गिर गया सागर में; अब भी तुम यही चिल्लाए चले जाओगे कि गंगा का जल पवित्र और गंदे नाले का जल पवित्र नहीं? अब कहां गंगा और कहां गंदा नाला! जब सागर में दोनों मिल गए, दोनों ने अपने तट छोड़ दिए, दोनों अपनी सीमा के पार हो गए. . .। गंदा नाला और गंगा भी एक हो जाते हैं सागर में। और तुम्हारे सागर में अभी कबीर और महावीर और बुद्ध जैसी गंगाएं भी एक नहीं हो पाए, क्या खाक सागर है! वहां भी कम्पार्टमेंट, दीवालें उठा रखी हैं, खंड बांट रखे हैं! यह कोई सागर न हुआ।और परमात्मा सागर से भी विराट है, क्योंकि सागर की भी सीमा होती है। उसकी तो कोई सीमा नहीं। सब विभाजन मनुष्यों तक हैं। जैसे ही हम मनुष्यता के पार उठे. . .मन के पार गए कि मनुष्य के पार गए।

'मनुष्य' शब्द ख्याल रखना, मन से बना है।दुनिया में दो ही तरह के शब्द हैं मनुष्य के लिए, दोनों बड़े अर्थफूर्ण हैं। एक तो है आदमी, जो 'आदम' से बना है। आदम का अर्थ होता है मिट्टी। वह आदमी का एक पहलू है। अगर बाहर से देखो तो आदमी मिट्टी। इसलिए वह शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। उर्दू, अरबी, परसियन उन सब में जो शब्द हैं वे 'आदम' से बने हैं। वे आदमी के एक पहलू की खबर देते हैं—उसके बाहर के रुफ की, मिट्टी के। 'इब न रहूं माटी के घर में!' वे माटी के घर की खबर देते हैं, 'आदमी'— वह शब्द महत्वपूर्ण है। और दूसरा शब्द है 'मन' उससे बना 'मनुष्य'; उससे ही अंग्रेजी का बना—'मैन'। वह मन को ही अंग्रेजी में लिखने का ढंग है।बस दुनिया की भाषाओं में दो ही तरह के शब्द हैं—एक अदम से बना है और एक मन से। मन का अर्थ है—मनुष्य के भीतर की जो सोच-विचार की क्षमता है, वह जो ऊहापोह है, उससे मनुष्य बना। ये दो मनुष्य के पहलू हैं : बाहर मिट्टी; भीतर विचार। और एक मनुष्य का अतिक्रमण है, जहां न मिट्टी है न विचार है, जहां दोनों के फार है। उसको ही हम आत्मा कहते हैं, फरमात्मा कहते हैं। जहो मिट्टी भी छुट गयी और विचार भी छूट गए। जहां न बाहर का घर रहा न भीतर का घर रहा। मन भीतर का घर है; तन बाहर का घर है। न जहां मन है न तन, वहां फिर कोई सीमा नहीं, वहां तुम पूरे आकाश हो! उस आकाश में कौन पीछे कौन आगे!कबीर का यह दसवां द्वार एक और अर्थ में भी महत्वपूर्ण है। जैसे मैंने आदमी और मनुष्य के संबंध में कहा, ऐसे ही यह दस शब्द का आंकड़ा भी कबीर का बहुत महत्वपूर्ण है। अगर बाहर से परमात्मा के संबंध में सोचो तो वह एक है; जैसा कि अद्वैतवादी कहते हैं, कि वह दो नहीं, एक। शंकराचार्य कहते हैं : वह एक है। एक को कहने का उनका ढंग है कि वह दो नहीं, अद्वय है, अद्वैत है। यह दार्शनिक प्रक्रिया है परमात्मा के संबंध में—विचार की। लेकिन बुद्ध इससे राजी नहीं। बुद्ध कहते हैं : वह शून्य है। यह परमात्मा को भीतर से देखने और भीतर से कहने का ढंग है।पहला ढंग है दार्शनिक का; दूसरा ढंग है रहस्यवादी का। पहला ढंग है विचारक का; दूसरा ढंग है द्रष्टा का। दर्शन-शास्त्र कहेगा : एक है परमात्मा। रहस्यवादी दीवाने, मस्त फकीर कहेंगे : शून्य है। एक और शून्य से मिल कर बनता है दस। कबीर ने दोनों चुन लिए। कबीर ने कहा कि कोई झगड़ा नहीं। विचार की तरफ से कहो तो एक है; बाहर से देखो तो एक है; भीतर से देखो तो शून्य है। हम दोनों को चुन लेते हैं। हम कहते हैः दस है। और दसवां द्वार समाधि की अवस्था है। समाधि की अवस्था का अर्थ होता है, जहां सारी समस्याओं का समाधान हो गया। जहां कोई व्याकुलता न रही, कोई संताप न रहा, कोई चिंता न रही; कोई भय न रहा, कोई लोभ न रहा, कोई अहंकार न रहा। जब ऐसी परम अवस्था में तुम्हारी डुबकी लगती है, उसका नाम है तारी।कभी-कभी संगीत को सुनते समय तुम जागे भी होते हो और जागे नहीं भी होते, ऐसी हालत बन जाती है। अगर तुमने मधुर संगीत सुना है, संगीत में तुम्हें रस है, अगर कभी किसी वीणा वादक के साथ तुम डूब गए हो तो तुम्हें अनुभव होगा तारी का, तारी एक बड़ी अनूठी अवस्था है। तारी का अर्थ होता है—न सोए, न जागे; मध्य में खड़े। एक अर्थ में जागे, एक अर्थ में सोए। इस अर्थ में सोए कि जितना आदमी सोयी अवस्था में विश्राम में होता है उतने ही तुम विश्राम में हो। इसलिए गहन संगीत को सुनकर वैसी ही ताजगी आ जाएगी जैसी गहरी निद्रा के बाद आती है। जैसे डुबकी लग गयी। एक रसमय-विभोर हो गए। ताजे निकलोगे, पुनरुज्जीवित, नए-नए! जैसे गहरी नींद के बाद सुबह उठते हो। तुम्हारी पलकें उतनी ही ताजी होती हैं जितने गुलाब के फूल की कलियां, पंखुड़ियां। तुम्हारी आंखें उतनी ही ताजी होती हैं जैसे आकाश के तारे। तुम्हारे चेहरे पर वही ताजगी होती है जो ओस की होती है। ऐसा ही गहरे संगीत को सुनकर भी घट जाएगा। लेकिन तुम सो नहीं गए थे; तुम जागे भी थे। सच तो यह है कि तुम इतने जागे थे जितने तुम साधारणतः कभी जागे नहीं होते, क्योंकि साधारणतः तुम्हारे मन में हजार विचार चलते हैं, भागे-भागे होते हो—यह आया, वह गया. . .। कोई अंत ही नहीं आता; सिलसिला जारी ही रहता है। मन के रास्ते पर विचारों का आंदोलन चलता ही रहता है। तुम विचारों से घिरे ही रहते हो। जैसे राजनेताओं का घेराव हो जाता है न, ऐसा तुम्हारा घेराव चौबीस घंटे रहता है। तुम्हारे भीतर नारेबाजी चलती ही रहती है—झंडा ऊंचा रहे हमारा! तुम्हारे भीतर चिल्ल-पों मची ही रहती है। तुम्हारे भीतर

खींचा-तानी होती ही रहती है। अगर तुम अपने भीतर गौर से देख लो तो तुम्हें पार्लियामेंट का पूरा दृश्य दिखायी पड़ जाए।पार्लियामेंट को हमने हिंदी में अनुवाद किया है—'संसद'। बड़ी भूल हो गयी। कभी न कभी इस शब्द को बदलना पड़ेगा। संसद शब्द का अर्थ होता है, साथ बैठना जिन्हें आता हो। हद हो गयी! कम से कम हमारी संसद तो संसद है ही नहीं। साथ बैठना, अरे साथ खड़े होना भी नहीं आता। लत्तम-लत्ता, जूता-जूती—इसका नाम संसद। कम से कम इस शब्द को तो भ्रष्ट न करते। इन शब्दों के कुछ अर्थ थे। ऐसा ही अर्थ होता है सभ्य का। सभ्य का अर्थ होता है : जिसे सभा में बैठने का ढंग आता हो। संसद का अर्थ होता है : जो साथ बैठ सके। संसद का ठीक वही अर्थ होता है, जो सदगुरु की मौजूदगी में सत्संग का होता है। और सांसद का अर्थ होता है : जो जानता है कला साथ होने की, संवाद की। मगर कहां संवाद, गाली-गलौज होती है! सामान फेंका जाता है, कुर्सियां उठ जाती हैं। हर रोज रिकार्ड पर से चीजें कटवानी पड़ती हैं, क्योंकि ऐसे शब्द बोल जाते हैं सांसद, जो रिकार्ड में नहीं लिखे जा सकते। मैं-मैं तू-तू ही नहीं होती; मां-बहनों की गाली भी हो जाती है। रिकार्ड पर कहां रखो उनको! आने वाली सदियां क्या कहेंगी कि यह क्या मामला था! रोज रिकार्ड से कटवाना पड़ता है, कि इतना हिस्सा छोड़ दो। आदमी रखने पड़ते हैं वहां, क्योंकि कुछ सांसद तो ऐसे बिफर जाते हैं, ऐसी उछल-कूद मचा देते हैं, उनको पकड़ कर बाहर निकालना पड़ता है। यह संसद न हुई, कोई पागलखाना हुआ। साथ बैठने का ढंग. . .! तुम अपने मन को गौर से देखो, तो तुम वहां खींचा-तानी देखोगे। दो विचारों को साथ बैठने का ढंग नहीं आता। विचार बड़े राजनीतिज्ञ होते हैं। कोई किसी की टांग खींच रहा है, कोई किसी की पूंछ खींच रहा है। कोई किसी की शेरवानी ले भागा।तुम अगर थोड़ी देर के लिए शांत बैठ कर अपने विचारों को देखो, तो तुम्हें समझ में आ जाएगा कि इन विचारों के कारण ही बाहर के जगत में इतना उपद्रव है, क्योंकि यही विचार तुम्हारा निर्माण करते हैं, यही विचार औरों का निर्माण करते हैं। इनकी ही कलह बाहर के युद्ध बन जाती है। इनकी ही कलह बाहर फैल जाती है। अगर किसी तरह तुम्हारी खोपड़ी में खिड़कियां बनायी जा सकें और उन खिड़कियों में से झांका जाए तो जो दर्शन होगा, जो दिखायी पड़ेगा—जो देख लेगा वही चौंकेगा। अभी तो कोई नहीं देख सकता, यही भला है। लेकिन तुम तो देख ही सकते हो। मगर तुम भी कभी शांत बैठ कर देखते नहीं कि क्या तुम्हारे भीतर चल रहा है। शायद इसी डर से नहीं देखते कि कौन देख कर और झंझट मोल ले, और चिंता बढ़ाए।कभी बैठ कर दस मिनिट एक कागज पर जो भी तुम्हारे मन में चलता हो लिख लेना—बिना संपादन किए। फिर पीछे जला देना, किसी को दिखाने की जरूरत नहीं। दरवाजे में ताला लगा कर और लिख कर और फिर जला देना। इस में डर की कोई जरूरत नहीं। संशोधन मत करना, संपादन मत करना, जोड़ना मत, हटाना मत—जैसा आए! तुम बड़े हैरान होओगे, क्या-क्या बातें तुम्हारे भीतर चल रही हैं और कहां-कहां से शुरू हो जाती हैं! मोहल्ले में एक कुत्ता भौंक गया, तुम्हें सुनायी पड़ गया, बस चल पड़ा एक सिलसिला। कुत्ते ने चला दिया! तुम भी कैसी चीजों के शिकार हो! कुत्ता भौंका, तुम्हारे भीतर एक सिलसिला शुरू हो गया। तुम्हें याद आ गयी एक स्त्री जिससे तुम्हारा प्रेम था, जिसके फास कुत्ता था। अब कुत्ता तो एक तरफ रहा, अब वह स्त्री आ गई। अब उस स्त्री के साथ जो-जो बीता. . .और क्या नहीं बीता! जो भी दुर्दिन बीत सकते थे, सब बीते। और उसको ही सोचते-सोचते और कुछ आ जाएगा। चल पड़ा सिलसिला। अब तुम जिंदगी भर सोचते रह सकते हो। एक कुत्ता बटन दबा गया और कुत्ते को पता ही नहीं था कि उसने बटन दबा दिया। वह अनजाने में ही दबा गया और तुम चल पड़े। जब तुम घंटे भर बाद लौट कर सोचोगे कि अरे, कहां से शुरू हुई यह यात्रा और कहां पहुंच गयी; यह मेरे भीतर क्या चलता रहता है—तो तुम बहुत हैरान होओगे! एक विक्षिप्तता है, एक पागलपन है। यह तुम्हारा मन है।मन हमेशा ही पागल है। देह मिट्टी है, मन पागल है। इन दोनों का तुम जोड़ हो। आदमी और मनुष्य यह तुम हो अभी और जाना है दोनों के पार।

'इब न रहूं माटी के घर में,
इब मैं जाइ रहूं मिली हरि में।'

दोनों बातें कह रहे हैं कबीर कि अब मुझे आदमी भी नहीं होना और अब मुझे मनुष्य भी नहीं रहना; अब तो मुझे हरि हो जाना है—अनलहक, अहं ब्रह्मास्मि! अब तो मुझे उसमें अपनी सारी सीमाएं डुबा देनी हैं। अब तो मुझे चैतन्य-रूप हो जाना है। अब तो मुझे सिर्फ साक्षी हो जाना है। तुम्हारे भीतर एक तीसरा तत्व भी है, जो साक्षी है, जो देखता है—देह को, मन को—बस उसके साथ एक हो जाना है। वही साक्षी परमात्मा की किरण है तुम्हारे भीतर। उसी साक्षी को पकड़ लो, तो उसी धागे को पकड़ कर तुम परमात्मा के सूरज तक पहुंच जाओगे। और जब दसवें द्वार पर पहुंचते हो तो तारी लग जाती है। देह का पता नहीं रहता, मन का पता नहीं रहता। सोए हो कि जागे हो, यह भी पता नहीं रहता। नींद जैसा विश्राम और जागरण जैसी ताजगी; दोनों साथ-साथ होती हैं। उसका नाम तारी है। तारी बड़ी अदभुत दशा है!संगीत में कभी-कभी शायद तुम्हें अनुभव हो जाए या प्रकृति के किसी सौंदर्य को देखते समय—सूर्यास्त को या हिमालय पर होती हुई सुबह को, हिमालय के बर्फ से ढके शुभ्र-शिखरों पर, सूरज की गिरती हुई किरणें और जैसे स्वर्ण बिखर गया हो, उसे देख कर; कि रात आकाश तारों से भरी हो और उन आकाश के तारों की अनंत रहस्यमयता में तुम डूब गए हो—तो शायद कभी-कभी तुम्हें तारी का छोटा-सा क्षण भर का अनुभव हो। मगर वह क्षण भर का होगा, क्योंकि आकस्मिक है; तुमने उसकी कोई भूमिका निर्मित नहीं की है; तुमने उसकी कोई पात्रता अर्जित नहीं की है।योगी को वही अनुभव पात्रता से होता है। वह अपने पात्र को साफ करता है। अपने मन को शांत करता है। अपने विचारों से अपने को मुक्त करता है। साक्षी में लीन होता है! धीरे-धीरे, धीरे-धीरे एक ऐसी घड़ी आ जाती है कि उसके भीतर सन्नाटा छा जाता है। तब सूर्यास्त उसके भीतर होने लगते हैं, सूर्योदय उसके भीतर होने लगते हैं। जब चांद-तारे उसके भीतर उगने लगते हैं, तब सारा आकाश उसके भीतर होने लगता है, डोलने लगता है। तब सारा ब्रह्मांड उसके भीतर खड़ा हो जाता है। तब वह भीतर के सौंदर्य को देख कर विस्मयविमुग्ध हो जाता है। वह अवस्था है तारी की। कल उसी को कबीर ने कहा था— खुमारी; आज कहते हैं—तारी दोनों का एक ही अर्थ है।

'दसवैं दारि लगि गई तारी,

दूरि गवन आवन भयौ भारी।'

कबीर कहते हैं : यह इतनी ऊंची बात है कि उससे लौटना मुश्किल हो जाता है, उससे वापिस आना मुश्किल हो जाता है।रामकृष्ण को जब तारी लग जाती थी तो कभी-कभी छह घंटे, कभी आठ घंटे, एक बार तो छह दिन तक लगी रही। शिष्य बड़ी मुश्किल में पड़ जाते थे। उनके शरीर की रक्षा करनी पड़ती, देखभाल करनी फड़ती। वे किसी और लोक में ही खो जाते। भूल ही जाते तन-मन की सुध-बुध! कहीं और ही उनकी सुधि हो जाती, किसी और आयाम में उनका प्रवेश हो जाता। और जब भी वे वापिस लौटते तो रोते कि मुझे फिर क्यों वापिस भेज दिया, वापिस बुला लो, वापिस लौटा लो, अब यहां मन नहीं लगता! यह मेरा देश नहीं। इस परदेश में मुझे फिर क्यों भेज दिया? शिष्य तो प्रसन्न होते कि रामकृष्ण परमहंसदेव वापिस लौट आए और परमहंसदेव रोते। उनकी तारी टूट गयी, उनकी समाधि टूट गयी।

'दूर गवन आवन भयौ भारी।'

कबीर कहते हैं : इतने दूर निकल गया था, दसवें द्वार पर कि लौटना मुश्किल हो जाता है, आना बहुत मुश्किल हो जाता है। और आ भी जाओ, तो भी तुम फिर वही नहीं होते जो तुम गए थे तब थे। जिसने परमात्मा की झलक पा ली, वह रूपांतरित हो जाता है। जिसने उसकी जरा-सी भी अनुकंपा पा ली, जिसने दो बूंदाबांदी भी अपने ऊपर उसके अमृत की पा ली, फिर वह वही नहीं रह जाता जो था—आदमी नहीं रह जाता, मनुष्य नहीं रह जाता। वह भगवान ही हो जाता है—भगवत्ता में लीन हो गया।

'चहुं दिसी बैठे चारि पहरिया,

जागत मूसि गए मोरी नगरिया।'

और कबीर कहते हैं : जब तक यह न हो जाए तब तक सावधान रहना, होशियार रहना; क्योंकि चारों तरफ भी

तुम अगर पहरेदार बिठा दो और पहरेदार जागे भी रहें, तो भी मौत आएगी और तुम्हें लूट कर ले जाएगी। सिर्फ समाधि में ही एक ऐसा धन मिलता है, जिसको कोई लूट नहीं सकता।

'कहै कबीर सुनहु रे लोई. . .'

'लोई' कबीर की पत्नी का नाम है। अपनी पत्नी को संबोधन करते हुए कह रहे हैं : 'कहै कबीर सुनहु रे लोई, भांनड़ घड़ण संवारण सोई।' वह जो तोड़ने वाला है, जोड़ने वाला है, वही सम्हालने वाला भी है। इतने अदभुत सूत्र कहने के बाद कबीर यह याद दिलाते हैं लोई को, क्योंकि हो सकता है लोई के मन में सवाल उठा हो कि अब मैं क्या करूं? अब कैसे इस दसवें द्वार को पाऊं?स्वभावतः जब कोई ऐसी अनिर्वचनीय घटना का संकेत देने लगेगा और तुम्हारे ओठों में उसका स्वाद धीरे-धीरे उतरने लगेगा और तुम्हारे कानों में उस संगीत की पहली-पहली दूर की ध्वनि सुनाई पड़ने लगेगी—जैसे दूर, बहुत दूर कोई कोयल बोले—तो स्वभावतः सवाल उठेगा : कैसे इसे पाएं? हम तो पाने की ही भाषा जानते हैं। कैसे पाएं? क्या करें? हम तो करने और पाने की दुनिया में उलझे हुए हैं। देखा होगा कबीर ने कि जब वे यह बातें कह रहे थे कि—

'इब न रहूं माटी के घर में,
इब मैं जाइ रहूं मिली हरि में।
छिनहर घर अरु झिरहर टाटी,
घन गरजन कंपै मेरी छाती।
दसवैं दारि लागि गई तारी,
दूरि गवन आवन भयौ भारी।
चहुं दिसी बैठे चारि पहरिया,
जागत मूसि गए मोरी नगरिया।

इन अदभुत वचनों को सुन कर लोई बैठी-बैठी सोचने लगी होगी। सदगुरु उन्हीं प्रश्नों के उत्तर नहीं देते जो तुम पूछते हो; उनके भी उत्तर देते हैं, जो तुम कभी नहीं पूछते; उनके भी उत्तर देते हैं जो तुम पूछना चाहते हो, लेकिन पूछ नहीं पाते; उनके भी उत्तर देते हैं जो तुम्हारे अचेतन में पड़े हैं और तुम्हारे मन में चेतन भी नहीं हो पाते। देखा होगा लोई की तरफ। देखा होगा कि लोई के मन में आकांक्षा जगी है—कैसे पाऊं इस दशम् द्वार को? कैसे यह समाधि भी मेरी हो? कैसे अमृत को पा लूं? तत्क्षण उत्तर आ गया। कहै कबीर सुनहु रे लोई— कि ए लोई, सुन। इन भ्रांति के शब्दों में मत खो जा, इन भ्रांति की आकांक्षाओं में मत डूब जा, सुन!. . . 'भांनड़ घड़ण संवारण सोई' वह जो तोड़ने-जोड़ने वाला है, वही सम्हालने वाला भी है। तुझे कुछ करना नहीं है; सिर्फ अपने को उस पर छोड़ दे। होनी होय सो होय। फिर उसे जो करना है वह करेगा।

वह रवि कहता है, 'पगली इसका है कहां किनारा?
इस 'उद्य-अस्त' में मेरा बीता है जीवन सारा।
'मैं उठता-गिरता फिरता इस पथ में मारा-मारा।
पर फल न मिला है कुछ भी, हो भी कुछ 'कूल-किनारा'!
'मैं' नित्य जहां से चलता आ जाता वहीं 'सवेरे'।
ऐसे ही व्यर्थ गगन में देता रहता हूं फेरे।
'पा जाता पार क्षितिज का पर पुनः क्षितिज आ जाता।
'अवसान' जिसे कहते हैं है वही 'उदय' कहलाता।
जिसके 'वियोग' की मेरे प्राणों में जलती ज्वाला,
क्या जग में जनमा कोई उसका 'पथ' पाने वाला।
जब 'एकाकार' बनेंगे घुल-मिलकर 'सांझ-सवेरे',

जिस दिवस शांत होगी यह 'ज्वाला' अंतर की मेरे,
जब होगा शून्य जगत सब अपना अस्तित्व मिटाकर,
तब अपने आप मिलेंगे सब उस 'अनंत' में जाकर।
है वही 'मुक्त' कर सकता जिसने जग-जाल बिछाया।
यह वही मिटा सकता है जिसने यह खेल बनाया।
जिसकी इच्छा की विस्तृत सागर भी, एक लहर है,
उस छवि के दर्शन पाने लोचन पाना दुस्तर है।
कितना ही ऊंचा कोई चढ़ जाए इस अंबर में।
वह उसे गिरा देता है अवनी पर फिर पल भर में।
कितनी 'नौकाएं' निशि-दिन 'सागर' पर बहती रहतीं,
उन से 'विनाश' की गाथा आ आकर लहरें कहतीं।
'तू अपनी जर्जर 'नौका' क्यों खेती व्यर्थ अकेली,
जब सुलझाने वाला है अंत 'अनंत' पहेली।

इस अपनी टूटी-फूटी नौका को ले कर उस अनंत सागर में उतरना, आकांक्षाओं से भरे—यह कर लूंगा, वह कर लूंगा; ऐसा कर लूंगा, वैसा कर लूंगा—सब नासमझी है। छोड़ो उस पर।मनुष्य एक ही काम कर सकता है—एक ही काम करने योग्य है : छोड़ दे। कह दे कि राजी हूं तेरी रजा से, कि तेरी मर्जी मेरी मर्जी! कि अब तुझसे भिन्न नहीं हूं। अब तू जहां चलाएगा, चलूंगा और जो तू कराएगा, करूंगा। जिस दिन ऐसा समर्पण घटित होता है, उसी दिन क्रांति हो जाती है; उसी क्षण मिल गए हरि में। अगर तुमने कहा कि ऐसा होना चाहिए, तो तुम अभी अपने संकल्प को अलग किए हो। और संकल्प अलग है तो तुम अलग हो। संकल्प का अलग होना अहंकार का अलग होना है।छोड़ो सब संकल्प, छोड़ो सब विकल्प, छोड़ो अहंकार। कह दो उससे, 'कर जो तुझे करना हो, मैं हर हाल में राजी हूं!' और फिर देखो, जो तुम कर नहीं पाए जन्मों-जन्मों में, वह क्षण में हो जाता है।

'पी ले प्याला हो मतवाला, प्याला नाम अमीरस का रे।' और तब फिर पीने ही पीने को है। मधुशाला के द्वार खुल जाते हैं। जिसने सब छोड़ दिया, समर्पण किया. . .समर्पण ही संन्यास है. . .उसके लिए मधुशाला के द्वार खुल गए। पी ले प्याला हो मतवाला. . .! फिर पीओ जितना पीना हो।. . .प्याला नाम अमीरस का रे!' फिर उस परमात्मा के नाम का अमृत-रस पीओ।'बालपना सब खेलि गंवाया'. . .। बचपन तो खेलने में बीत गया।. . .'तरुन भया नारी बस का रे।' और युवा हुए तो नए खेल सीख लिए। स्त्री हुए तो पुरुषों के साथ खेल चला; पुरुष हुए तो स्त्रियों के साथ खेल चला। वे भी नए खेल हैं। जवानी के खेल हैं। खिलौने जरा बड़े हैं। कुछ बहुत फासला नहीं, कुछ बहुत भेद नहीं। बचपन में गुड्डे-गुड्डियों से खेलते थे। बड़े हो गए, असली आदमी-स्त्रियों से खेलने लगे; मगर खेल वही है।

'विरध भया कफ-बाय ने घेरा, खाट पड़ा न जाय खस का रे।' फिर बूढ़े हो गए, फिर हजार बीमारियों ने घेर लिया, खाट पर पड़े रहे। खाट से खसकना भी मुश्किल हो गया।ऐसे जिंदगी गंवाते हैं अधिकतम लोग। और जबकि मजा यह है—कबीर कहते हैं—'नाभि कंवल बिच है कस्तूरी'! और तुम्हारे ही नाभि-कमल के भीतर कस्तूरी छिपी है, परम धन छिपा है।. . . 'जैसे मिरग फिरे बन का रे।' जैसे मृग खोजता फिरता है कस्तूरी को, जंगल में भटकता फिरता है, क्योंकि गंध उसे मालूम होती है—और गंध उसके भीतर से ही उठती है। तुम जिसे खोज रहे हो, वह तुम्हारे भीतर छिपा है। धन खोज रहे हो; धन तुम्हारे भीतर छिपा है।और जिसे तुम धन कहते हो, यह कोई धन है? यह धन तो क्षण भर में मिट्टी हो जाता है। अभी कुछ दिन पहले हजार रुपए के नोट चलते

थे, धन थे। फिर हजार रुपए का नोट बंद हो गया, फिर वह धन नहीं रहा; फिर लोगों ने उसकी सिगरेट बना कर पी ली और किसी ने उस पर अपना नाश्ता बिछा कर कर लिया। जिसको कल तक ऐसा सम्हाल कर रखा था, लोगों ने रास्तों पर फेंक दिया। क्या करोगे, कागज का टुकड़ा हो गया! कागज का टुकड़ा कल भी था, अब भी वही है; कुछ भेद नहीं पड़ा। लेकिन बस मान्यता की बात थी। मान्यता थी तो धन था। आज मान्यता नहीं है तो धन नहीं है।तुम जिस चीज में अपनी मान्यता चिपका देते हो, वही धन मालूम होने लगता है। जिस चीज में से मान्यता हट जाती है, वही व्यर्थ हो गया। सब खेल मन का है, मान्यता का है। लेकिन भीतर एक ऐसा धन है जो मान्यता का नहीं है—जो वस्तुतः धन है। और उसे पा लेते ही व्यक्ति धनी हो जाता है, सम्राट हो जाता है।और भीतर एक ऐसा पद है, जिसे कोई नहीं छीन सकता। अब देखते हो मोरारजी भाई देसाई को—पड़े चारों खाने चित! कोई जीवन-जल पिलाने वाला भी नहीं मिलता। पद का कोई मूल्य है? आज हो पद पर तो छाती फुला कर बैठ जाओ। कल पद पर नहीं रह जाओगे, दो कोड़ी की कीमत हो जाएगी। कीमत पद की थी, तुम्हारी थी नहीं। लेकिन भीतर एक पद है, जिसको कोई भी नहीं छीन सकता। वह पद दसवें द्वार का है, समाधि का है।हमने तो समाधि को ही पद कहा है। परमात्मा को जिसने पाया, उसी ने पद पाया; बाकी तो सब बकवास है।ऐसे जिंदगी मत गंवाना तुम जैसे आम लोग गंवा देते हैं। बचपन यूं गया खेल-खिलौनों में, फिर जवानी गयी आपा-धापी में—धन-दौलत, पत्नी, बच्चे; फिर बुढ़ापा बीमारी में, रोग में। और फिर आयी मौत।'बिन सदगुरु इतना दुःख पाया'. . .। कबीर कहते हैं : बिना सदगुरु के इतना दुःख पाया!. . .'बैद मिला नहिं इस तन का रे।' यह जो भीतर की बीमारी थी, इसका कोई वैद्य नहीं मिला, जब तक कि सदगुरु नहीं मिला। बाहर की बीमारियों के लिए तो बहुत चिकित्सक मिल गए; लेकिन यह जो भीतर की बीमारी थी, जो घुन की तरह खाए जाती थी, यह जो रोग था बेहोशी का, यह जो मूर्च्छा थी, इसको मिटाने वाला तब मिला जब गुरु मिला।

'बिन सतगुरु इतना दुःख पाया, बैद मिला नहिं इस तन का रे। माता-पिता बंधु सुत तिरिया, संग नहीं कोइ जाय सका रे।'

कोई साथ नहीं जाएगा। इस जगत के सब संगी-साथी बस मन के भुलावे हैं।मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर रही थी। तो उसने नसरुद्दीन को कहा कि नसरुद्दीन, एक वचन दे दो। मैं जानती हूं कि मेरे मरते ही तुम ज्यादा दिन अविवाहित न रह सकोगे। तुम विवाह करोगे ही।नसरुद्दीन ने कहा : 'कभी नहीं! तुझे देखने के बाद तुझ जैसा अब कोई दिखायी नहीं पड़ता। कौन है तेरे जैसा सुंदर, कौन है तेरे जैसा सौम्य! अब तो जिंदगी भर रोऊंगा, तड़फूंगा तेरे लिए। अगले जन्म में मिलने की आकांक्षा और प्रार्थना और परमात्मा से मांग करूंगा।' वही सब बातें कहीं जो कि पत्नियां मरती हैं तो पति कहते हैं; पति मरते हैं तो पत्नियां कहती हैं। लेकिन पत्नियां इतनी आसानी से इस तरह की बातें मानती नहीं।पत्नी ने कहा : 'तुम छोड़ो ये बातें। मेरी घड़ी दो घड़ी की सांस है, एक बात का वचन दे दो कि मेरे जो कपड़े हैं वे तुम चाहे शादी कर लेना, मगर मेरे कपड़े और मेरे गहने तुम्हारी आने वाली पत्नी न पहने। उससे मेरी आत्मा को बड़ा दुःख होगा।'पत्नियां भी बड़ी अजीब होती हैं। जिंदा में ही ईर्ष्या नहीं, मरने के बाद भी ईर्ष्या—कि तुम्हारी पत्नी न पहने मेरे कपड़े-लत्ते। नहीं तो मेरी आत्मा को बड़ा दुःख होगा।मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा : 'तू फिक्र ही मत कर। वैसे भी फातिमा को तेरे कपड़े आएंगे नहीं।' अभी-अभी कह रहा था कि तुझे देखा तो फिर कोई देखने जैसा न रहा; अब वे भूल ही गए! और मरने के बाद की बात ही अलग है! मामला तय ही है। रास्ता ही देख रहे हैं कि कब मरे। इधर वह मरी नहीं कि उधर उनका विवाह हुआ नहीं। एक अर्थ में विवाह वे कर ही बैठे हैं, सब तैयारी चल रही है।डाक्टर आया था देखने पत्नी को तो डाक्टर ने नसरुद्दीन से कहा कि हालत बहुत खराब है, दुःख की बात है, दो-तीन घंटे से ज्यादा नहीं जिएगी।नसरुद्दीन ने कहा कि आप दुःख न करें, अरे तीस साल जब सहा तो तीन घंटे और सह लेंगे। आप नाहक दुःख न करें!यहां कौन अपना है? यहां कोई अपना नहीं, यहां सब बातें हैं। कसमें हैं, वायदे हैं; मगर सब बातें हैं। और बातों में हम खूब उलझ जाते हैं। हम कागज के फूलों में भी अटक जाते हैं। हम झूठे-झूठे सुंदर शब्दों में भी खो जाते हैं।

माता-पिता बंधु सुत तिरिया, संग नहीं कोइ जाय सका रे।'

जब लग जीवै गुरु गुत लेगा, धन जीवन है दिन दस का रे।' कबीर कहते हैं कि धन हो, यौवन हो—बस दस दिन की बात है। आया नहीं कि गया नहीं—पता भी नहीं चलेगा कि कब आया और कब गया। लेकिन एक संबंध इस जगत में है, जो शाश्वत है। पूरब ही उस संबंध को खोज पाया। पश्चिम अब नया-नया उस खोज में संलग्न हुआ है। अगर हमने दुनिया को कोई देन दी है, अगर कोई दान है पूरब का सारी दुनिया को, तो वह शिष्य और गुरु के संबंध का दान है। दुनिया में वैसा कोई संबंध और जगह नहीं होता। माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी सब जगह होते हैं; मगर शिष्य और गुरु का संबंध बिलकुल पूर्वीय घटना है। पश्चिम में होता है विद्यार्थी और शिक्षक का संबंध; वह बड़ी अलग बात है। उसका कोई संबंध गुरु और शिष्य से नहीं है। गुरु और शिष्य तो बड़ी और बात है।गुरु का अर्थ है : जो तुम्हारे अंधेरे को तोड़ दे। और शिष्य का अर्थ है कि गुरु को अंधेरे को तोड़ लेने दे, राजी रहे; क्योंकि अंधेरा तोड़ना कोई सस्ता काम नहीं। तुम्हें खंड-खंड करना होगा। तुम्हारे सारे न्यस्त स्वार्थ अस्त-व्यस्त हो जाएंगे। तुम्हारे भीतर क्रांति घटित होगी। तुम्हें अतीत से विच्छिन्न करना होगा। तुम्हारे भविष्य को नष्ट करना होगा, ताकि न बचे अतीत, न भविष्य; तुम वर्तमान के ही हो जाओ।गुरु तो आग की तरह है; मृत्यु की तरह है। गुरु में मरना होगा, ताकि तुम्हारा पुनरुज्जीवन हो सके। गुरु तो आग है जिसमें जलना होगा, ताकि शुद्ध स्वर्ण की तरह तुम बच पाओ। यह तो समर्पण का, प्रेम का, श्रद्धा का आत्यंतिक रूप है। यह संबंध भर एक ऐसा है जो भौतिक नहीं है, शारीरिक नहीं है, जैविक नहीं है; जिसके लिए कोई तुम्हारे शरीर के रसायन में जगह नहीं है।स्त्री-पुरुष में आकर्षण है; वह तो शारीरिक रसायन का आकर्षण है। अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि इंजेक्शन लगाने से ही फर्क हो जाता है। अगर तुम्हारा पति तुममें उत्सुक न हो, उसका मतलब इतना ही है कि उसमें पुरुष हार्मोन कम हो गए; इंजेक्शन दिलवा दो। पुरुष हार्मोन के इंजेक्शन दिलवाते ही से वह तुम में उत्सुकता लेने लगेगा, स्त्री में उत्सुकता लेने लगेगा। यह उत्सुकता उसकी नहीं है; यह बेचारा भ्रांति में है। यह तो इंजेक्शन से जो हार्मोन चले गए हैं उसके खून में, वे उसको तड़फड़ा रहे हैं, वे उसको परेशान कर रहे हैं। स्त्री को हार्मोन दिलवा दो तो स्त्री उत्सुक हो जाएगी पुरुषों में। हार्मोन अलग कर लो तो बदलाहट हो जाती है। अब तो स्त्री को भी पुरुष बनाया जा सकता है, पुरुष को स्त्री बनाया जा सकता है—हार्मोन इतने बदले जा सकते हैं।तो यह तो खेल रसायनशास्त्र का हुआ। इसमें कुछ अध्यात्म नहीं है। इसमें तो पशु में और तुममें कोई भेद नहीं है।मनुष्य-जाति के जितने और संबंध हैं, वे सभी साधारण हैं, प्राकृतिक हैं। सिर्फ गुरु और शिष्य का संबंध अनूठा है, जिसका प्रकृति में कोई स्थान नहीं है; जिसको मनोवैज्ञानिक नहीं समझा सकता; जिसको भौतिकशास्त्री नहीं समझा सकता; जिसको रसायनशास्त्री नहीं समझा सकता। शिष्य को काटो कितना ही, तुम उसमें कहीं भी ऐसा रसायन न पाओगे जिससे गुरु और उसके संबंध का पता चले। हां, अगर पुरुष है तो स्त्री के प्रति आकर्षण का कारण मिल जाएगा। अगर बाप है तो बेटे के प्रति आकर्षण का कारण मिल जाएगा। अगर मां है तो बेटे के प्रति आकर्षण का कारण मिल जाएगा। लेकिन शिष्य और गुरु का संबंध बिलकुल ही अभौतिक है। और चूंकि अभौतिक है, इसलिए मृत्यु भी इसे नष्ट नहीं कर सकती। यह शाश्वत है।कबीर ठीक कहते हैं : 'जब लग जीवै गुरु गुत लेना।' जब तक जीवन रहेगा, तब तक यह संबंध रहेगा। और जीवन तो सदा है : यह आत्मा का संबंध है। कुछ संबंध शरीर के होते हैं, कुछ संबंध मन के होते हैं। आत्मा का एक ही संबंध है। शरीर के संबंध शरीर की बदलाहट के साथ बदलते जाते हैं। जवानी में जिसको प्रेम किया था, उसको बुढ़ापे में तुम वैसा ही थोड़े प्रेम कर पाओगे। जवानी ही न रही, वह जोश ही न रहा; वह जैविकता ही बदल गयी।एक पति-पत्नी अपने विवाह की पचासवीं वर्ष-गांठ मना रहे थे तो उन्होंने तय किया. . .पत्नी ने ही सुझाव दिया। पत्नियां इन मामलों में बहुत होशियार हैं! सुझाव दिया कि हम उसी होटल में चलें जहां हनीमून के लिए गए थे—महाबलेश्वर चलें।पति ने कहा : ठंड के दिन, वैसे ही मैं सर्दी-जुकाम से परेशान रहता हूं। मगर पत्नी कहां सुने, तो कहा : ठीक है। गए महाबलेश्वर। उसी कमरे में ठहरे, उसी होटल

में। वही भोजन किया। वह भोजन भी नहीं पचा। शाम को ही डाक्टर को बुलाना पड़ा। पचास साल पहले जो भोजन किया था, अब उसको पचाने की सामर्थ्य भी तो चाहिए। मगर पत्नी भी जिद पर अड़ी थी। जब दोनों सोने लगे, पत्नी ने कहा : 'अरे ऐसे ही सो जाओगे क्या? कम से कम चुंबन तो लो।'पति ने कहा : 'चलो ठीक है, यह भी सही। अब महाबलेश्वर तक आ गए, अपाच्य हो गया; चलो यह भी सही। अब जो-जो झेलना है सो झेल ही लो। क्या पता था, नहीं तो हनीमून ही न करते। अगर पहले ही पता होता कि इतनी मुसीबतें पीछे आएंगी. . .।' और एकदम पति उठा बिस्तर से और जाने लगा कहीं। पत्नी ने कहा : 'अरे कहां जा रहे?' तो कहा कि दांत तो ले आने दे बाई! चुंबन क्या खाक लें! दांत तो बाथरूम में रख आया हूं।' अपने दांतों की सफाई करके. . .बड़ी देर लग गयी खटर-पटर करते। पत्नी ने कहा : 'क्या कर रहे हो?' कहा कि दांत साफ तो कर लूं और लगे हाथ तेरे भी साफ कर दिए।जवानी जवानी थी; अब बुढ़ापे में उसकी कोई सार्थकता नहीं रह गयी, कोई अर्थ नहीं रह गया।जो बचपन में सार्थक था वह जवानी में सार्थक नहीं रह जाता। बच्चे लिए फिरते हैं, अपने खिलौनों को छाती से लगाए फिरते हैं और फिर एक दिन व्यर्थ हो जाते हैं खिलौने। कोने-कातरों में पड़े कहां खो जाते हैं पता ही नहीं चलता। जिन खिलौनों के बिना सो भी नहीं सकते थे, छाती से लगा कर सोते तो ही नींद आती थी, फिर वे कहां पड़े-पड़े खो जाते हैं कूड़े-कर्कट में, कहां रद्दी में बिक जाते हैं, कुछ पता ही नहीं चलता। ऐसे ही एक दिन जवानी के खिलौने बुढ़ापे में व्यर्थ हो जाते हैं और बुढ़ापे के खिलौने मौत व्यर्थ कर देगी। सब खिलौने ही खिलौने हैं। इसमें कुछ एकाध तो ऐसा सेतु खोज लो, जो खिलौना न हो। कुछ तो एकाध ऐसा नाता बना लो, जो शाश्वत हो—जो जन्म और मृत्यु के पार हो। वही नाता गुरु और शिष्य का नाता है।

'चौरासी जो उबरा चाहे, छोड़ कामिन का चसका रे।'

कबीर कहते हैं।. . .कामिनी इस देश में सभी कामनाओं का प्रतीक है। चूंकि ये पुरुषों को संबोधन किए गए होंगे वचन, इसलिए ठीक है, 'कामिनी' का उपयोग किया। लेकिन स्त्रियां भी ध्यान रखें : जो स्त्रियों के संबंध में सच है पुरुषों के लिए, वही पुरुषों के संबंध में सच है स्त्रियों के लिए। यह बात कभी भूलनी नहीं चाहिए। नहीं तो ऐसी भ्रांति होती है कि स्त्रियों के कारण ही दुनिया में सारा उपद्रव है। और तुम्हारे साधु-संत यही समझाते फिरते हैं कि स्त्री नरक का द्वार है। अगर स्त्री नरक का द्वार है, तो स्त्रियां तो नरक जा ही नहीं सकतीं, क्योंकि द्वार तो चाहिए। यह तो साधु-संत खूब फंसा गए! पुरुष ही द्वार से जा सकते नरक और स्त्रियां चाहे स्वर्ग न जा सकें, मगर नरक तो जा ही नहीं सकतीं। जब द्वार ही हैं तो नरक के बाहर ही रहेंगी। द्वार तो बाहर ही रहता है न। पुरुषों को भेज देती होंगी कि चलो भीतर।न तो स्त्रियां नरक के द्वार हैं न पुरुष। स्त्रियां पुरुषों की चाहना करती हैं; चाह में द्वार है नरक का। पुरुष स्त्रियों की चाहना करते हैं; चाह में द्वार है।कामिनी कामना का प्रतीक है, समझना। फिर पुरुष की हो कि स्त्री की, कुछ भेद नहीं पड़ता। अगर चौरासी, अगर जन्मों-जन्मों की अनंत यात्रा से बचना हो तो कामना की, वासना की, तृष्णा की आदत छोड़ दो।'कहै कबीर सुनो भाई साधो, नख-सिख पूर रहा बिस का रे।'क्या चाह रहे हो? यहां चाहने योग्य क्या है? तुम्हारी देह भी और दूसरे की देह भी सब विष से भरी है।

'मुरसिद नैनों बीच नबी है!'

तुम दूसरों में तलाश रहे हो सौंदर्य को, सत्य को—फुरुष स्त्रियों में, स्त्रियां फुरुषों में; कोई धन में, कोई प्रतिष्ठा में। 'मुरसिद नैनों बीच नबी है!

'अरे पागल, जिसकी तुम तलाश कर रहे हो, जिस सदगुरु की, जिस परमात्मा की, जिस नबी की, ए उपदेशक, ए मुर्शिद! वह तेरी आंखों के बीच में बसा है। दोनों आंखों के बीच में, जहां हम तीसरी आंख कहते हैं—तृतीय नेत्र, शिव नेत्र—इन दोनों आंखों के बीच में बसा है।'स्याह सफेद तिलों बिच तारा, अवगति अलख रबी है।'उस मालिक की अदभुत गति है। पकड़ में न आए, बुद्धि की, तर्क के जाल में न आए—ऐसी रहस्यमय

उसकी गति है।'आंखी मद्धे पांखी चमके'. . .। इन दोनों आंखों के मध्य में वह पक्षी की तरह है। क्यों पक्षी की तरह? बड़ा प्यारा शब्द उपयोग किया।' आंखी मद्धे पांखी चमके'—क्योंकि वह उड़ सकता है। वह उड़ सकता है अनंत तक, इसलिए पक्षी कहा। 'आंखी मद्धे पांखी चमके, पांखी मद्धे द्वारा।'और उस पक्षी के मध्य में ही द्वार है परमात्मा के प्रवेश का, क्योंकि वह उड़ सकता है, पंख फैला सकता है।'तेहि द्वारे दुर्बीन लगावै. . .। वहीं से देखो। दोनों आंखों के मध्य में जो तीसरी आंख है, वहां से देखो। ये दो आंखें बाहर देखती हैं, तीसरी आंख भीतर देखती है। और जो भीतर देखती है वहीं आंख द्वार है परमात्मा की। 'तेहि द्वारे दुर्बीन लगावै'. . .। वहीं लगाओ दूरबीन।. . .'उतरै भवजल पारा।' तो संसार से पार हो जाओ। तो इस व्यर्थ के उपद्रव, दुःख, पीड़ा, जाल से मुक्त हो जाओ।

'सुन्न सहर में बास हमारी, तहं सरबंगी जावै।'

हमारा आत्यंतिक निवास तो हमारे ही भीतर एक शून्य है उसमें है। 'सुन्न सहर में बास हमारी, तहं सरबंगी जावै।' जहां सबको जाना है, आज नहीं कल, देर-अबेर जाना ही पड़ेगा। खोज लो अपने भीतर छिपे शून्य को, क्योंकि उसी शून्य में पूर्ण का अवतरण होता है। इस शून्य को ही ध्यान कहते हैं, समाधि कहते हैं। तुम्हारे भीतर यह शून्य छिपा है। लेकिन ये दो आंखें इसे न देख पाएंगी। इन दोनों आंखों के बीच में एक तीसरी आंख है।भीतर देखो! बाहर देखने से ही नहीं मिलेगा। और भीतर देखो तो तुम्हारी तीसरी आंख पक्षी बन जाए, उड़ चले शून्य गगन में।'साहब कबीर सदा के संगी'. . .। और तब तुम जानोगे कि अरे मैं जिसे खोजता था वह तो मेरे भीतर बैठा था! कितना खोजा, कहां-कहां भटका और वह सदा से भीतर वास कर रहा था! 'कबीर साहब सदा के संगी'. . .। तब तुम पाओगे कि मालिक तो भीतर बैठा था, सदा से साथ था।. . .'सब्द महल ले आवै।' बस शून्य के महल में तुम आ जाओ।कौन लाएगा उस शून्य के महल में तुम्हें? सदगुरु का शब्द; उसकी पुकार; उसका झकझोरना।सब्द महल ले आवै, साहब कबीर सदा के संगी।' सदगुरु का हाथ पकड़ लो। सदगुरु को कैसे पहचानोगे? कोई बाह्य लक्षण तो होते नहीं। सौ मैं निन्यान्बे तो झूठे गुरु होते हैं। कैसे पहचानोगे सदगुरु को?सदगुरु की एक ही पहचान है : किसी के पास बैठ कर शांति मिले, सुगंध मिले। किसी के पास बैठकर संतोष मिले। किसी के पास बैठ कर संगीत मिले। किसी के पास बैठते-बैठते तारी लगने लगे। बस वही पहचान है, और कोई पहचान नहीं। जिसके पास बैठ कर तारी लग जाए, फिर उसका हाथ पकड़ लेना, फिर छोड़ना मत। तो उसके शब्द तुम्हें जगा देंगे। उसकी पुकार तुम्हें जगा देगी। एक न एक दिन उसकी सुनते-सुनते तुम्हारे भीतर भी यह भाव सघन हो जाएगा—

'इब न रहूं माटी के घर में,

इब मैं जाइ रहूं मिली हरि में।'

अब इस मिट्टी के घर में और नहीं रहूंगा। अब हरि में मिलने की अभीप्सा जग गयी है।जिस दिन यह अभीप्सा जगे, उसी दिन समझना तुम्हारा सच्चा जन्म हुआ; सच्चे जीवन की शुरुआत हुई। तुम द्विज बने, ब्राह्मण बने, क्योंकि ब्रह्म की आकांक्षा जगी। जब तक ब्रह्म की आकांक्षा नहीं, तब तक प्रत्येक व्यक्ति शूद्र है, ब्राह्मण नहीं। ब्रह्म की आकांक्षा ही ब्राह्मण बनाती है।

आज इतना ही।

अठारहवां प्रवचन

प्रज्ञा संन्यास है

प्रश्न-सार

तुम्हें पा के मैंने जहां पा लिया है

जमीं तो जमीं आसमां पा लिया है।
जमाने के गम प्यार में जल गए हैं
उम्मीदों के लाखों दीए जल गए हैं
न उजड़ेगा जो आशियां पा लिया है!
तुम्हें पा के मैंने जहां पा लिया है!
मेरे बूढ़े ससुर जवान बेटे की अचानक मृत्यु से विक्षिप्त से हो गए हैं, और मैं संसार से बिलकुल मुक्ति पाना चाहती हूं। किंतु मेरे ये गेरुआ वस्त्र कहीं उनकी मृत्यु का कारण न बनें। और मैं संन्यास लेना चाहती हूं। कृपया मार्गदर्शन करें।
बड़ी आशा लेकर आयी हूं।

मैं आपको सुनते-सुनते सो जाता हूं। पता नहीं है तारी है या खुमारी है। या केवल साधारण निद्रा मात्र। प्रकाश डालने की कृपा करें।
मैं राजनीति में हूं। क्या राजनीति छोड़ कर संन्यासी बन जाऊं? पहला प्रश्नः भगवान!
तुम्हें पाके मैंने जहां पा लिया है
जमीं तो जमीं आसमां पा लिया है।
जमाने के गम, प्यार में जल गए हैं
उम्मीदों के लाखों दिए जल गए हैं।
न उजड़ेगा जो, आशियां पा लिया है।
तुम्हें पा के मैंने जहां पा लिया है!
कृष्ण चैतन्य! मनुष्य दिखाई पड़ता है बहुत छोटा; है नहीं। लगता तो है जैसे ओस की एक बूंद; पर है महासागर। ऊपर से देखो तो ओस की बूंद ही मालूम होगा; भीतर जागो तो असीम सागर है।मुझे पाकर तुमने मुझे नहीं पाया, अपने को ही पाने की कला पा ली है। मुझे पाकर तुम्हें अपने को ही भीतर से देखने का राज, कुंजी मिल गयी है। भीतर से देखो स्वयं को तो तुम्हारी कोई सीमा नहीं है; सारा आकाश तुमसे छोटा है; सारे चांद तारे तुम्हारे भीतर हैं। लेकिन हम मनुष्य को बाहर से देखते हैं। हम अपने को भी बाहर से देखते हैं। दूसरे को बाहर से देखें, समझ में आता है; लेकिन अपने को भी दर्पण में देखते हैं और दर्पण में देख कर पहचानते हैं। हमारी खुद से भी पहचान अंतर की नहीं है, जो कि होनी चाहिए, क्योंकि वहीं हम विराजमान है, वहीं हमारा होना है। जहा हम हैं वहीं पैर जमाकर अपने को नहीं देखते हैं। खुद को देखने के लिए भी दर्पण चाहिए। दर्पण में क्या दिखायी पड़ेगा? रूप-रेखा, रंग-ढंग, आकृति। वह तुम नहीं हो। न तुम देह हो, न तुम मन हो—तुम साक्षी हो।सदगुरु के पास बैठने का और तो कुछ अर्थ नहीं है; यही अर्थ है कि साक्षी का धीरे-धीरे जागरण होने लगे। तुम नींद में थे। मैंने तुम्हें पुकारा और तुम थोड़ी करवट बदलने लगे हो, तुम्हारी पलकें थोड़ी-थोड़ी खुलने लगी हैं। तुम्हें जो अनुभव हो रहा है, वह तुम्हारा ही है, उसमें मेरा कुछ भी नहीं है। तुम्हारे भीतर जो पड़ा था उसे ही मैंने झकझोरा है। जो संपदा तुम्हारी थी, तुम्हें उससे परिचित कराया है। तुम्हें तुमसे परिचित कराया है! तब ऐसा होगा। लगेगा ऐसा ही। प्रथमतः ऐसी ही प्रतीति होगी—'तुम्हें पा के मैंने जहां पा लिया है। जमीं तो जमीं आसमां पा लिया है। जमाने के गम प्यार में जल गए हैं. . .' मनुष्य दुःखी क्यों है? बस छोटी-सी बात के कारण कि उसे प्यार की कला नहीं आती। उसकी पीड़ा क्या है? कि प्रेम प्रकट नहीं हो पाता। अप्रकट प्रेम ही पीड़ा बनता है और प्रकट प्रेम ही आनंद हो जाता है। अप्रकट प्रेम ऐसा है जैसे बीज और प्रकट प्रेम ऐसा है जैसे बीज वृक्ष बना, वसंत आया, फूल खिले, गंध उड़ी। वृक्ष जब फूलों से लद जाता है तो उसके आनंद का पारावार नहीं है, क्योंकि पा ली उसने अपनी नियति, अपना गंतव्य, अपना लक्ष्य। अपने को व्यक्त कर लिया। गा लिया

गीत जो गाना था। नाच लिया नृत्य जो नाचना था। कर लीं बातें चांद-तारों से। हो गया संवाद सूरज से। हवाओं के साथ भांवर डाल ली। आकाश में शाखाएं फैला दी हैं। पृथ्वी में दूर तक जड़ें पहुंचा दी हैं। पृथ्वी के रस को भी चखा, आकाश की मुक्ति को भी जाना। परिपूर्णता हो गयी।मनुष्य भी एक बीज है। और जब तक उसमें सहस्त्र दल कमल का फूल न खिल जाए—जिसको योगी कहते सहस्त्रदल कमल; जिसको बुद्ध ने कहा निर्वाण; जिसको महावीर ने कहा कैवल्य; जिसको कबीर कहते हैं सुरति या दशम द्वार—दसवां द्वार न खुल जाए . . .मनुष्य की देह में नौ द्वार खुले हुए हैं, एक द्वार बंद है। नौ द्वार यानी नौ छेद। जननेंद्रिय से लेकर आंखों तक गिनती कर लेना, नौ छेद हैं; इनसे तुम जगत से जुड़े हो। आंख से तुम जुड़े हो प्रकाश से। कान से तुम जुड़े हो ध्वनि से। नाक से तुम जुड़े हो गंध से। मुंह से तुम जुड़े हो स्वाद से। ये नौ द्वार तुम्हें जगत से जोड़े हुए हैं। यही तुम्हारा लेन-देन है, व्यवसाय है जगत से, व्यापार है। एक दसवां द्वार भी है—सहस्त्रार। तुम्हारे मस्तिष्क में सबसे ऊंचाई पर वह बंद पड़ा है। वह तब तक बंद रहेगा जब तक तुम जागोगे नहीं। जब तक ध्यान की गरिमा गहनतम न होगी जब तक ध्यान की त्वरा न होगी, जब तक ध्यान एक जलती हुई अग्नि न बन जाए, तब तक दसवां द्वार नहीं खुलेगा। जैसे ही ध्यान की अग्नि प्रज्वलित होगी, झटके से दसवां द्वार खुल जाता है। कबीर कहते हैं : खुली किबरिया! और जैसे ही दसवां द्वार खुलता है, जैसे नाक के बिना गंध नहीं, आंख के बिना रंग नहीं—ऐसे ही दसवें द्वार के बिना परमात्मा नहीं। दसवें द्वार से परमात्मा का अनभुव होता है। दसवें द्वार की प्रतीति परमात्मा है। जैसे ही दसवां द्वार खुला अचानक, फिर किसी प्रमाण की कोई जरूरत नहीं रह जाती। तुम जानते हो तुम परमात्मा हो और तुम जानते हो शेष सब भी परमात्मा है।लेकिन दसवें द्वार को खोलने के दो उपाय हैं : एक है ध्यान; एक है प्रेम। बुद्ध, महावीर ध्यान के आग्रही हैं। खूब जागरण को सघन करो—इतना सघन, जैसे कि किरणें इकट्ठी हो जाएं तो आग बन जाएं। ऐसे तुम्हारे जागरण की किरणें इकट्ठी हो जाएं, मारें धक्का तो खुले किबरिया! भक्त कहते हैं प्रेम। प्रीति की ऐसी उमंग तुम में उठे, ऐसा अंधड़, ऐसा तूफान उठे कि सारे अस्तित्व को डुबा देने की क्षमता तुम में आ जाए। बेशर्त प्रेम तुम कर सको तो प्रार्थना हो जाती है। मांगो मत प्रेम के उत्तर में कुछ, तो प्रेम ही किबड़िया को खोल देगा। मांगा कि चूके। मांगा कि भिखमंगे हुए। प्रेम अगर इसलिए दिया कि उत्तर में कुछ मिल जाए. . .और लोग इसीलिए प्रेम करते हैं कि उत्तर में कुछ मिल जाए। देते कम, लेना ज्यादा चाहते हैं। आदमी की व्यवसायी बुद्धि ऐसी है। व्यवसाय का अर्थ ही यह होता है : लगाओ कम पूंजी, कमाओ ज्यादा।एक यहूदी ने नया-नया विक्रेता अपनी दुकान पर रखा था। यहूदी बाहर गया था, लौटा तो विक्रेता बहुत प्रसन्न था। उसने कहा कि मालिक, आप जान कर प्रसन्न होंगे कि जो कोट वर्षों से आप नहीं बेच पाए वह मैंने बेच दिया। वह जो काले रंग का कोट था वह बेच दिया।'कितने में बेचा?' यहूदी ने बड़े घबड़ा कर पूछा। तो उसने कहा कि जितने उस पर दाम पड़े थे—अठानबे सेंट। यहूदी ने माथा ठोक लिया, कहाः 'फागल, वह अठानबे डालर का कोट था, अठानबे सेंट का नहीं।' बेचारा विक्रेता तो एकदम हतप्रभ हो गया। सोचा था धन्यवाद मिलेगा, यह तो मुसीबत हो गयी। उसके चेहरे का रंग उड़ गया, फीला जर्द हो गया, चक्कर सा मालूम होने लगा। लेकिन यहूदी ने कहा : 'घबड़ा मत, फिर भी दस परसेंट का लाभ हमको हुआ है।'व्यवसाय का तो ढंग यही है : लगाओ कम से कम।मुल्ला नसरुद्दीन से मैंने पूछा कि काफी मजे-मौज चल रहे हैं, खूब व्यवसाय चल रहा है मालूम होता है! बोला कि हां, अच्छा चल रहा है। एक रुपए में चीज खरीदते हैं, दो में बेच देते हैं। एक परसेंट का लाभ, मगर बस मजा चल रहा है।एक रुफये की चीज को दो रुफये में बेचता है, इसको एक फरसेंट का लाभ बता रहा है! लोग कम से कम लगाएं और ज्यादा से ज्यादा ले लें, यह व्यवसाय बुद्धि है। और प्रेम में भी हम इससे भिन्न नहीं करते हैं। कौड़ी देना चाहते हैं। हीरा पाना चाहते हैं। मगर जो व्यवसाय में चल जाता है, वह प्रेम में नहीं चलेगा। प्रेम व्यवसाय नहीं है। प्रेम से ज्यादा गैर-व्यवसायिक और कोई जीवन आयाम ही नहीं है। यह काम ही सौदे का नहीं है। यह काम तो दीवानों का है। और दीवानों की बड़ी कृपा है होशियारों पर, क्योंकि अगर होशियार ही होशियार दुनिया में होते तो प्रेम के फूल बिलकुल समाप्त

ही हो गए होते; प्रेम की भाषा ही भूल गयी होती। यह तो कभी-कभी कोई दीवाना, कोई कबीर, कोई मीरा, कोई चैतन्य पैदा हो जाता है और प्रेम के पाठ हम भूल नहीं पाते; फिर-फिर हमें प्रेम की याद दिला जाता है, हमारी क्षमता की खबर दिला जाता है।काश तुम बेशर्त दे सको! देने में ही आनंद पा सको, लेने में नहीं। दान बन सको। धन के दान को मैं दान नहीं कहता, क्योंकि धन का दान तो बड़ी बेईमानी का दान है। उन्हीं से चुराया था, उन्हीं से छीना था, उन्हीं को वापस दे दिया! उन्हीं की जेबें काटीं, उन्हीं को दान कर दिया! यह कोई दान हुआ? धन तो तुम ले कर आए नहीं थे, इसलिए धन का दान कैसे करोगे? धन तो यहीं बटोरा। फिर यहीं बटोरा और यहीं दान कर दिया। प्रेम का ही दान हो सकता है, क्योंकि प्रेम तुम लेकर आए थे, यहां बटोरा नहीं। वह तुम्हारी निजता है। वह तुम्हारे प्राणों का स्वभाव है। वह तुम्हारे भीतर की गंध है। वह परमात्मा ने तुम्हारे भीतर रचा है। उसे तुमने किसी से लूटा नहीं है, किसी का शोषण नहीं किया। नहीं तो एक तरफ शोषण करते रहो और दूसरी तरफ मंदिर बनाते रहो। लोग करोड़ का शोषण करते हैं; लाख रुपए का दान कर देते हैं; सोचते हैं ऐसे भगवान को भी राजी रखेंगे, ऐसे परलोक में भी इंतजाम कर लेंगे। यहां भी मजे से रहेंगे, वहां भी मजे का इंतजाम कर रहे हैं। पहले से ही वहां के लिए भी उन्होंने सूत्रपात डाल दिए।लेकिन धन तुम्हारा है ही नहीं। यह खयाल कि मैंने धन का दान किया--भ्रांति है, अहंकार है। हां, प्रेम तुम्हारा है। और प्रेम का ही मात्र दान हो सकता है। भक्त कहता है प्रेम को लुटाओ, दो! और मजा यह है कि जितना दोगे उतना ही पाओगे!' तुम्हारे भीतर अजस्त्र स्त्रोत खुलने लगे। जैसे कुएं से कोई फानी भरता रहे तो नए-नए झरने कुएं को भरते जाते हैं। कंजूस हो कोई, कुएं पर ताला मार दे--डर से कि कहीं कुएं का पानी न चुक जाए--तो सड़ जाएगा पानी, तो जहर हो जाएगा पानी, तो पीने योग्य न रह जाएगा। सांप-बिच्छू पलेंगे कुएं में। और किसी दिन अगर जरूरत हुई तो जान लेगा उस कुएं का पानी। कुआं तो ताजा रहता है, जीवंत रहता है--जितना पानी खींचा जाए उतने ही झरने खुले रहते हैं। जब पानी नहीं खिंचता तो झरने अपने-आप बंद हो जाते हैं; उनकी जरूरत ही न रही।ऐसा ही तुम पाओगे। जितना प्रेम दोगे उतना ही तुम्हारे भीतर नए झरने फूटने लगेंगे। जिस दिन तुम बांटते ही रहोगे, गणना भी न करोगे, तौलोगे भी नहीं कि कितना बांटा, हिसाब भी न रखोगे कि कितना बांटा--उस दिन तुम्हारे भीतर अनंत स्त्रोत खुल जाएंगे, उन्हीं अनंत स्त्रोतों से जो ऊर्जा बहेगी, उसके धक्के से किबड़िया खुल जाएगी, दसवां द्वार खुल जाएगा।मैं तो दोनों रास्तों से राजी हूं। तुम्हें जो पट जाए, तुम्हें जो रुच जाए। मेरा किसी रास्ते पर कोई मोह नहीं है। सब रास्ते उसी तक ले जाते हैं, इसलिए रास्तों का क्या मोह करना!कृष्ण चैतन्य! तुम कहते हो : 'जमाने के गम प्यार में जल गए हैं।' निश्चित ही प्रीति जला देती है सारे दुःखों को, सारी चिंताओं को। प्रेम की अग्नि राख कर देती है कूड़ा-करकट को, बच रहता है खालिस सोना। और तब निश्चित ही जीवन को एक नयी दिशा मिलती है, नहीं तो उलझे हैं व्यर्थ की चिंताओं में। जिन चिंताओं से कुछ लेना-देना नहीं है, उनमें उलझे हैं। कितनी ही चिंताएं करो, जिनका कोई हल तुम्हारे हाथ में नहीं है, उनमें उलझे हैं। जिनसे कुछ छुटकारा नहीं--जैसे मृत्यु--उसकी कितनी चिंता लोग करते रहते हैं! मगर मृत्यु तो निरफवाद रूफ से आएगी चिंता क्या करनी है! आनी ही है, बात खतम हो गयी। लेकिन उसकी ही चिंता में लगे रहते हैं। मरते दम तक चिंता करते रहते हैं। किसी तरह बचे रहें! बचकर कुछ पाया नहीं, जिंदगी खाली की खाली थी, जिंदगी रूखी-सूखी थी, एक फूल भी न खिला, एक बूंद भी अमृत की न निर्मित हुई; मगर फिर भी--जीना है; जीने का मोह, तृष्णा! कौन जाने आज तक नहीं हुआ, कल हो जाए, तो कल को बचाना है। जीना है। मृत्यु से घबड़ाए हुए हैं। और मृत्यु तो आकर रहेगी। घबड़ाने में ही जिंदगी चली जाएगी और मृत्यु तो आकर रहेगी। किसी ने दो शब्द कह दिए कठोर और तुम दुःखी हो गए--और कितनी चिंताएं! वर्षों बीत जाते हैं और किसी के कठोर शब्द तुम्हारे भीतर गूंज ही उठाते रहते हैं--प्रतिशोध की, बदले की। शब्द ही तो थे, शब्दों में भी क्या रखा है? सब अर्थ मनगढ़ंत हैं।खलील जिब्रान की प्रसिद्ध कहानी है। एक आदमी लेबनान आया, परदेस से आया है। लेबनान की भाषा नहीं जानता। भौंचक्का सा घूम रहा है। बड़ा नगर। देहाती है। एक महल जैसे भवन में लोगों को

आते-जाते देखा। बहुत लोग आ-जा रहे हैं तो वह भी चला गया। भीतर पहुंचा तो उसे बिठाया गया। बहुत लोग भोजन कर रहे हैं, तो उसने समझा कि शायद राजमहल है, राजा ने कोई भोज दिया है। मन ही मन सोचा कि कहीं ऐसा तो नहीं कि मेरे ही स्वागत में भोज दिया हो, क्योंकि मैं ही एक अजनबी हूं यहां। और तभी थाली सजकर आ गयी—सुंदर-सुंदर खाद्य पदार्थ, सजे हुए बैरे! वह थी एक होटल, मगर उसने समझा कि राजमहल है। राजमहल समझा तो उसके मजे का अंत न रहा। व्याख्या की बात है। फूला नहीं समाया। कहा कि राजा हो तो ऐसा हो। एक हमारा राजा है जिसने कभी एक दो कौड़ी का भी आयोजन न किया! इसको कहते हैं दिल! इसको कहते हैं दिलदारी!फूला जा रहा था, मस्ती से भोजन कर रहा था। जब भोजन पूरा हो गया तो बैरा बिल ले कर आया। बैरे को वह समझ रहा था कि कोई राजदूत। शुभ्र वस्त्रों में सजा-बजा बैरा था! बिल ले कर आया तो उसने समझा कि राजा ने धन्यवाद दिया है कि आप आए, बड़ी कृपा की, भूल मत जाना, कुछ भूल-चूक हुई हो तो क्षमा करना, फिर आते रहना। पढ़ तो सकता नहीं था, भाषा तो आती नहीं थी, तो वह झुक-झुक कर धन्यवाद दिया बैरे को। बैरा मांगे पैसे, वह झुक-झुक कर धन्यवाद दे। बैरा जितना पैसे मांगे वह उतना ही धन्यवाद दे। बैरे ने कहा कि अच्छी झंझट हुई! ले कर मैनेजर के पास गया। सोचा कि शायद राजदूत अपने प्रधान के पास ले जा रहा है। मैनेजर का शानदार कमरा था वह झुक-झुककर खूब धन्यवाद देने लगा। मैनेजर ने कहा : 'यह आदमी तो अजीब है! हम कुछ कहते हैं, यह कुछ कहता है! यह कौनसी भाषा बोल रहा है, यह भी पता नहीं। और मस्त बड़ा दिखता है। पागल है या पिए है? इसे अदालत ले जाओ।'अदालत का भवन और भी बड़ा था। उसने कहा कि मालूम होता है, सम्राट ने स्वयं बुलवाया है। मजिस्ट्रेट की शान देख कर तो वह समझा कि सम्राट है। वह तो एकदम चारों खाने गिर पड़ा नीचे—साष्टांग दंडवत! और सम्राट को झुक-झुक कर नमस्कार करने लगा। मजिस्ट्रेट ने कहा : 'यह आदमी या तो पागल है या पक्का शरारती है। हम कुछ कहते हैं, यह कुछ कहता है। उत्तर देता ही नहीं। इसको गधे पर बिठाकर, तख्ती लटकाकर इसके गले में कि यह आदमी बेईमान है, बदमाश है, गांव में घुमाया जाए।'वह तो बड़ा ही खुश हुआ। जब उसके गले में तख्ती लटकाई गयी तो उसकी छाती फूल कर दुगनी हो गयी। उसने कहा : 'वाह रे लोगो, खिलाया भी पिलाया भी, राजा ने खुद स्वागत भी किया और अब जुलूस निकाल रहे हैं—शोभायात्रा!' बच्चे भी इकट्ठे हो लिए, कुछ लोग भी पीछे चल पड़े। फालतू लोगों की कमी तो हैं नहीं दुनिया में। वे ऐसे ही घूमते रहते हैं कि कहीं कोई जुलूस हो, कोई हो-हल्ला हो तो साथ हो लें। वह झुक-झुक कर लोगों को नमस्कार करे और तख्ती दिखाए—क्योंकि यह समझे कि सम्राट ने, कुछ प्रमाणपत्र दिया है; शायद प189भूषण या भारतरत्न या ऐसी कोई पदवी दी है या क्या मामला है! भीड़ में लेकिन एक ही दुःख उसे खल रहा था कि आज इतना बड़ा स्वागत हो रहा है, काश अपने गांव का कोई होता! वही एक बात अखर रही थी कि गांव में जा कर कहूंगा तो कोई मानेगा नहीं। वे कहेंगे, सब झूठी बातें कर रहा है, गप्प-शप्प मार रहा है। एकाध भी गवाह होता।तभी उसे भीड़ में अपने गांव का एक आदमी दिखाई पड़ा, जो कि कोई दस-पंद्रह साल पहले गांव छोड़ दिया था और लेबनान आ कर बस गया था। उसने उस आदमी की तरफ देखा और उसको इशारे से हाथ किया कि देखो, तख्ती देखो! मेरी हालत देखो! क्या मजा आ रहा है! गांव का आदमी अब तक भाषा समझने लगा था, लेबनान का रंग-ढंग समझने लगा था, उसने एकदम सिर झुकाया और भीड़ में गुप्प हो गया। इसने कहा : 'हद हो गयी! ईर्ष्या की भी सीमा होती है! अरे ईर्ष्यालु तेरा स्वागत नहीं हुआ तो इतनी ईर्ष्या की तो बात न थी। दो शब्द तो बोल लेता ऐसे भाग जानाक्र।'व्याख्या की बात है। किसी ने दो शब्द कह दिए, तुम क्या व्याख्या करते हो, सब इस पर निर्भर करता है। जैसी चाहो व्याख्या कर लो। शब्दों में क्या है! शब्दों में कुछ अर्थ थोड़े ही है। शब्द तो कामचलाऊ हैं। उनका कोई मूल्य नहीं है। न गालियों का कोई मूल्य है, न गीतों का कोई मूल्य है। समझो तो गालियां और गीत सब एक जैसे हैं। मान और सम्मान समान हैं। सफलता-असफलता समान हैं। प्रतिष्ठा-अप्रतिष्ठा समान हैं। यश-अपयश समान हैं।प्रेम का जब उदभव होता है तो सब कूड़ा-करकट जल जाता है। फिर अपमान खलता

नहीं, दया आती है, उलटे दया आती है कि बेचारा नाहक कष्ट उठा रहा है। न मालूम कितना भीतर जला होगा, भुना होगा। न मालूम भीतर कितने क्रोध में पीड़ा पायी होगी, तब ये गालियां आई हैं। गालियां ऐसे तो पैदा नहीं हो जातीं; जैसे बच्चे ऐसे ही तो पैदा नहीं हो जाते, पहले नौ महीने गर्भ में मां को कष्ट झेलना पड़ता है। वैसे ही जो आदमी गाली देता है, वह भी कोई से आकस्मिक रूप से गाली आकाश से थोड़े ही उतरती है। गर्भ होता है गाली का भी। नौ महीने तक उसको गर्भ में रखना पड़ता है। बड़ी तकलीफ झेलनी पड़ती है। तुम्हें तकलीफ देने के पहले वह खुद बहुत तकलीफ झेल लेता है, तभी तुम्हें तकलीफ देता है। और तुम्हारे ऊपर है कि तुम तकलीफ लो या न लो। गाली न लो, बात खतम हो गयी।और जो प्रेम की कला जानता है वह गाली नहीं लेता। जिसे फूल चुनने आ गए वह क्यों कांटे चुने? माना कि कांटे हैं गुलाब की झाड़ी में, तो रहने दो। जिसे फूल चुनने आ गए वह कांटों से बच जाता है, फूल चुन लेता है। तब यह सारा जगत नयी अर्थवत्ता से, एक नयी गरिमा से भर जाता है।तुम ठीक कहते कृष्ण चैतन्य—

'जमाने के गम प्यार में जल गए हैं

उम्मीदों के लाखों दीये जल गए हैं।'

और फिर ही उम्मीद का दीया जलता है। क्योंकि तब ही पहली बार तुम्हें लगता है कि हां, जीवन व्यर्थ नहीं है; कि हां, जीवन निरर्थक नहीं है; कि हां, जीवन एक दुर्घटना मात्र नहीं थी। इसके पीछे एक गहन प्रयोजन था। इसके पीछे एक छिपी हुई अंतर्यात्रा थी। हम किसी दिशा में चल रहे थे। पहुंच कर ही पता चलता है—मंजिल पर पहुंच कर ही पता चलता है कि हम मार्ग पर थे। मंजिल पर पहुंचे बिना पता भी चले तो कैसे चले?नदी जब उतरती है हिमालय से तो कैसे जाने कि सागर की तरफ जा रही है, कैसे माने कि सागर है? न जाना, न देखा, न पहचाना और जो सागर में गयी नदियां, वे लौट कर कहती नहीं। यह नदी तो सागर में जब गिरेगी, तब ही जानेगी कि अरे वे सारी पर्वतश्रृंखलाएं, वे लंबी यात्राएं, खाई-खड्डे, उलटे-सीधे मार्ग, अड़चनें, सब इस गंतव्य के लिए थीं, इस महासागर में लीन होने के लिए थीं। तब सब अचानक सार्थक हो जाता है। सब दुःख, सब सुख सीढ़ियां बन गए। तब सारी यात्रा पीछे लौट कर स्पष्ट हो जाती है, जो पहले कभी स्पष्ट नहीं थी। अंतिम अनुभव में ही किबड़िया जब खुले, दसवां द्वार जब खुले, तब तुम पाओगे कि जो भी जीवन में जाना, माना, पहचाना, उस सब की एक गहन अर्थवत्ता थी। वह सब एक

तारतम्य में बंधा था। उसकी एक 137ृंखला थी। वह किसी दिशा में हमें गतिमान कर रहा था। पहुंच कर ही पता चलता है कि हम पथ पर थे।प्रेम जब जला कर कचरे को अलग कर देता है, जीवन की चिंताएं, दुःख, पीड़ाएं व्यर्थ—तुमने उधार ले ली थीं—जब सब समाप्त हो जाती हैं। तुम्हारी भूल थी, तुम्हारी गलत व्याख्या थी। तुम्हारे ही सोचने के कारण तुम्हारी चिंताएं थीं। जब वे सब गल जाती हैं, पिघल जाती हैं और जब खालिस सोना ही बचता है, तो उम्मीद का दीया जलता है। पहली बार तुम्हारे जीवन में आशा की किरण उतरती है, क्योंकि पहली बार भगवत्ता से मिलन होता है।लेकिन ध्यान रहे कृष्ण चैतन्य, मैं तो निमित्त हूं, उससे ज्यादा नहीं। जो तुम्हारे भीतर हो रहा है, तुम्हारे ही भीतर हो रहा है। मैं उसे कर नहीं रहा हूं। हो सकता है मेरी मौजूदगी सहयोगी बन गयी हो, लेकिन जब भी धन्यवाद दो तो मुझे छोड़ देना, धन्यवाद परमात्मा को ही देना। धन्यवाद सब उसके लिए, कृतज्ञता सब उसकी तरफ। तुम्हारा सिर झुके उसके लिए। मुझे बीच में मत लेना।मैं बस निमित्त मात्र हूं। मेरे बहाने तुम चुप बैठना सीख गए। मेरे बहाने तुम्हें सत्संग की कला आ गयी। मेरे बहाने तुम संगीत में डूबने लगे। मेरे बहाने तुम नाचे, गाए। मेरे बहाने तुम शांत हुए, मौन हुए। मगर यह सब बहाना है। यह किसी और के बहाने भी हो सकता था। इसलिए बहानों की क्या फिक्र लेनी! अब जिस बहाने हो गया ठीक। मगर जो हो गया है, वह उस परमात्मा के द्वारा ही हो रहा है। और वह परमात्मा तुम्हारे भीतर ही छिपा पड़ा है।जैसे हम किसी को सोते से जगा दें, तो जागरण उसी के भीतर मौजूद था। अगर कोई आदमी कोमा में पड़ा हो, फिर तुम कितना ही हिलाओ-डुलाओ, ठंडे पानी के छींटे उसकी आंखों पर मारो, अलार्म बजाओ, घंटे

ठोको—कुछ भी न होगा। अजान दो, कुछ भी न होगा। वे कोमा में पड़े हैं। या कोई मर ही गया हो, अब तुम कितना ही शोरगुल मचाओ, अच्छा-बुरा कुछ भी कहो, अब कुछ भी न होगा। वह तो जीवित हो और अभी जागने की क्षमता हो, तो कुछ हो सकता है।मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मरी। जब उसे ले कर उतर रहे थे ऊपर की मंजिल से, जीना छोटा, संकरा, नीचे के दरवाजे पर आ कर अर्थी को धक्का लग गया दरवाजे का और पत्नी उठ बैठी। मुल्ला की तो सांस जैसे रुक गयी। एक क्षण तो सकते में आ गया। फिर वह तीन साल जिंदा रही। फिर मरी। फिर वही जीना। फिर अर्थी उतरने लगी। जैसे ही नीचे दरवाजे के करीब आने लगी अर्थी, मुल्ला चिल्लाया : 'भाईयो, जरा सम्हाल कर! यह वही दरवाजा है। पिछली बार ठोकर मार कर तुम तो घर चले गए, फिर तीन साल जो मुझ पर गुजरी वह मैं ही जानता हूं।'मगर अगर पत्नी मर गयी होती तो दरवाजे की ठोकर से भी जग नहीं सकती थी। मरी नहीं थी तो ही जग गयी।कृष्ण चैतन्य! तुम्हारे भीतर जागरण है, छिपा पड़ा है। मैंने तुम्हें झकझोरा। तुम जग गए, जगने लगे। तुमने आंखें खोल लीं। सुबह सूरज निकलता है कंकड़ पत्थर तो फूल नहीं बन जाते; कलियां फूल बन जाती हैं, क्योंकि कलियां फूल बन सकती हैं, उनमें बनने की क्षमता है। कंकड़-पत्थर तो कंकड़-पत्थर ही रहेंगे, चाहे रात हो चाहे दिन हो, क्या फर्क पड़ता है? लेकिन कलियों को बहुत फर्क पड़ता है! और सूरज की किरणें आकर कलियों की पंखुड़ियां भी खोलती नहीं, एक-एक पंखुड़ियां नहीं खोलतीं। बस सूरज की किरणों की मौजूदगी निमित्त बन जाती हे, कलियां खिल जाती हैं।सत्संग निमित्त है। सदगुरु तो सूरज की भांति है। शिष्य कली की भांति है। वह खिल सकता है, इसलिए खिल जाता है। और जरूर, फिर लाखों उम्मीदों के दीये जलते हैं, क्योंकि पहली बार लगता है कि पैरों में घूंघर बंधे। पहली बार तुम्हारे पैर जमीन पर नहीं पड़ते। पहली बार खुमारी चढ़ती है, आंखें मस्त होने लगती हैं। कोई भीतरी शराब रोएं-रोएं को डुबा लेती है। और पहली बार दिखायी पड़ता है—हम क्या हो सकते हैं, हमारे होने की कितनी बड़ी क्षमता है, हम विराट हैं! अहं ब्रह्मास्मि!

झुरमुट में दुपहरिया कुम्हलायी
खेतों पर अंधियारी घिर आयी
पश्चिम की सुनहरिया धुंधरायी
टीलों पर टालों पर
इक्के-दुक्के अपने घर जानों पर
धीरे-धीरे उतरी शाम
आंचल से छू तुलसी की थाली
दीदी ने घर की ढिबरी बाली
जमुहाई ले लेकर उजियाली
जा बैठी ताकों में
घर भर के बच्चों की आंखों में
धीरे-धीरे उतरी शाम
इस अधकच्चे से घर के आंगन में
न जाने क्यों इतना आश्वासन
पाता है यह मेरा टूटा मन
लगता है इन पिछले वर्षों में
सच्चे-झूठे, मीठे-कड़वे संघर्षों में
इस घर की छाया थी छूट गयी अनजाने
जो अब झुककर मेरे सिरहाने

कहती है
भटको बेबात कहीं
लौटोगे अपनी हर यात्रा के बाद यहीं
धीरे-धीरे उतरी शाम
'भटको बेबात कहीं'. . .। कितने ही भटको, कहीं भी भटको, एक दिन तो इस घर आ ही जाना है—यह परमात्मा का घर।
जन्मों-जन्मों की भटकन के बाद भी आना है।
भटको बेबात कहीं
लौटोगे अपनी हर यात्रा के बाद यहीं
फिर कौन निमित्त बन जाएगा—कबीर, कि दादू, कि फरीद या मैं— इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। ये सब बहाने हैं। किसकी अंगुली का इशारा तुम्हें चांद को दिखा देगा, इससे क्या फर्क पड़ता है? चांद दिख गया, अंगुली भुला देनी चाहिए। अंगुलियों को हम धन्यवाद नहीं देते; चांद दिख जाए।एड्ढ प्रात होते—
सबल पंखों की अकेली एक मीठी चोट से
अनुगता मुझ को बना कर बावली को—
जान कर मैं अनुगता हूं—
उस बिदा के विरह के विच्छेद के तीखे निमिष में भी
युता हूं—
उड़ गया वह बावला
पंछी सुनहला
कर प्रहर्षित देह की रोमावली को
प्रात होते!
वही जो
थके पंखों को समेटे—आसरे की मांग पर विश्वास की चादर लपेटे—चंच की उन्मुख विकलता के सहारेनम रही ग्रीवा उठाए—सिहरता-सा, कांपता-सा,नीड़ की—नीड़स्थ सब-कुछ की प्रतीक्षा भांपता-सा, निकट अपनों के निकटतर भवितव्य की अपनी प्रतिज्ञा के—निकटतम इस वि-बुध सपनों की सखी के
आ गया था
आ गया था
रात होते!
उड़ गया वह बावला
पंछी सुनहला
कर प्रहर्षित देह की रोमावली को।
प्रात होते!सांझ पक्षी आ जाते हैं, वृक्षों पर बसेरा कर लेते हैं। रात भर विश्राम, सुबह होते उड़ जाते हैं।कृष्ण चैतन्य! तुम्हारी सुबह अब करीब है। तैयारी करो—उड़ने की तैयारी करो। पंखों को झटको, धूल-धवांस झाड़ो। कूड़ा-करकट इकट्ठा हो, अलग करो। व्यर्थ के बंधन, व्यर्थ के आग्रह, व्यर्थ के पक्षपात, सिद्धांत शास्त्र सब गिरा दो।सुबह करीब है। उड़ने की घड़ी आ गयी। रात जो बना ली थीं बहुत-सी आसक्तियां, लगाव, अब उनसे पार उठना है। सूरज निकलेगा, आकाश में उसकी किरणों का जाल फैलेगा। दूर तुम्हें पुकारेगा। उसी के दीये जल गए हैं, जिनको तुम उम्मीदों का दीया कह रहे हो, उसकी धीमी-धीमी पुकार आने लगी। सुबह की धुंध कटने लगी। भोर हो गयी, अब उड़ना होगा। अब अपने असली घर की तरफ जाने का क्षण करीब आ रहा है।

उसकी तैयारी में लगो।मैं यहां कोई औपचारिक धर्म तुम्हें नहीं दे रहा हूं। औपचारिक धर्म सस्ता होता है : मंदिर गए, सिर पटक लिया, आ गए; दो पैसे दान कर दिए, कि कभी सत्यनारायण की कथा करवा ली, कि बैठ कर कभी माला फेर ली। मैं तुम्हें कोई औपचारिक धर्म नहीं दे रहा हूं। न तो यहां जो दिया जा रहा है वह हिंदू है, न मुसलमान है, न जैन है, न ईसाई। यहां तो सिर्फ सुबह होने की खबर दी जा रही है। सुबह कैसे करीब आए, उसका विज्ञान समझाया जा रहा है। और जब सुबह आ जाए तो तुम कैसे उड़ सको—तुम जो कि वर्षों से, जन्मों से नहीं उड़े हो, फिर कैसे अपने पंखों को उड़ा सको, फिर कैसे पंखों को तौल सको आकाश में, क्योंकि फिर लौटना नहीं है। उस अनंत यात्रा पर निकलने की तैयारी की ही ये सूचनाएं हैं।इसलिए तुम कह पा रहे हो—

'तुम्हें पा के मैंने जहां पा लिया है

जमीं तो जमीं आसमां पा लिया है।

जमाने के गम प्यार में जल गए हैं

उम्मीदों के लाखों दीये जल गए हैं

न उजड़ेगा जो आशियां पा लिया है।

तुम्हें पा के मैंने जहां पा लिया है।'

दूसरा प्रश्न : भगवान! मेरे बूढ़े ससुर जवान बेटे की अचानक मृत्यु से विक्षिप्त से हो गए हैं और मैं संसार से बिलकुल मुक्ति पाना चाहती हूं। किंतु मेरे ये गेरुआ वस्त्र कहीं उनकी मृत्यु का कारण न बनें। और मैं संन्यास लेना चाहती हूं। कृपया मार्गदर्शन करें। बड़ी आशा ले कर आयी हूं।

उर्मिला! बेटे की मृत्यु से कोई विक्षिप्त नहीं होता। हां, बेटे से आसक्ति हो तो विक्षिप्तता आ सकती है। मृत्यु से नहीं, आसक्ति से। और आसक्ति तो विक्षिप्तता लाएगी ही। लेकिन हम बड़े होशियार हैं। हम अपनी आसक्तियों को छिपा लेते हैं और झूठे बहानों पर थोप देते हैं। बेटा मर गया, इसलिए विक्षिप्त हैं। मरना तो होगा ही—बेटे को भी, बाप को भी, सभी को। मृत्यु जैसा प्रगाढ़ सत्य टालोगे कैसे? कोई आज गया, कोई कल जाएगा। किसी की बारी आज आ गयी, किसी की कल आ जाएगी। बेटा जरा क्यू में आगे खड़ा होगा, बाप जरा क्यू में पीछे खड़ा है। क्यू तो मौत के दरवाजे पर ही लगा है। और क्यू रोज छोटा होता जा रहा है, तुम रोज दरवाजे के करीब आते जा रहे हो। लेकिन यह सोच कर कि बेटे की मृत्यु के कारण मैं विक्षिप्त हूं, फिर तुमने अपनी आसक्ति बचा ली।मेरे एक मित्र का बेटा मर गया। वे बिलकुल पागल हालत में थे। यहां तक कि उन्होंने दो बार आत्महत्या करने की कोशिश की। मुझे खबर मिली तो मैं उन्हें देखने गया। वे बड़े राजनेता थे। उनको पार्लियामेंट का पिता कहा जाता था। शायद सबसे पुराने संसद-सदस्य थे वे; अंग्रेजों के जमाने से संसद के सदस्य रहे थे। रो रहे थे, आंख से आंसू गिर रहे थे। लेकिन बगल में तारों की गिड्डी लगा रखी थी। मैं पहुंचा। औपचारिक थोड़ी बात हुई, फिर तारों की गिड्डी मेरी तरफ सरका दी कि देखो, जवाहरलालजी का पत्र आया, तार आया, राष्ट्रपति का—राजेंद्र प्रसाद का; इसका उसका. . .। उन दिनों मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री थे द्वारका प्रसाद मिश्र। द्वारका प्रसाद मिश्र का नहीं आया, यह भी नहीं भूले वे बताना।मैंने उनसे कहा : 'बेटा मर गया, तुम ये तार इकट्ठे किए बैठे हो! और मैंने तो सुना है कि आपने दो बार आत्महत्या करने की कोशिश की। कहीं यह द्वारका प्रसाद का पत्र नहीं आया, तार नहीं आया—इसी कारण तो नहीं?उन्होंने कहा : 'आप भी इसी क्षण में मजाक करते हैं!''मैं मजाक नहीं कर रहा।'और मैंने कहा : 'आत्महत्या करने की दो बार कोशिश करनी पड़ती है! अरे कर ली तो कर ली। वह भी कुछ ऐसी ही रही होगी ढीली-ढाली।'लोग गोलियां ले लेते हैं, मगर वे भी हिसाब से लेते हैं कि कहीं मर ही न जाएं! कितने ही लोग कोशिश करते हैं आत्महत्या की—मगर कोशिश! और सब इंतजाम कर लेते हैं बचने का पहले ही।मैंने कहा : 'दो बार आपने कोशिश की। होशियार आदमी हैं, समझदार आदमी हैं। राजनीति में जिंदगी भर खेले, आत्महत्या तक न कर सके! अरे करनी थी तो कर ही लेनी थी।'वे तो कहने लगे कि आप कैसी बातें करते हैं! जो भी आता है वह मुझसे सांत्वना प्रकट करता है। और

आप उलटी-सीधी बातें कर रहे हैं!मैंने कहा : 'आप सांत्वना प्रकट करवाना चाहते हैं, इसलिए बैठे हैं यह ढोंग रचाकर। सांत्वना में रस ले रहे हैं।'और मैंने कहा कि खयाल रखना कि बेटे के मरने से कुछ इसका लेना-देना नहीं है। मामला कुछ और है।उन्होंने कहा : 'क्या मामला है?'मैंने कहा : 'आपका दूसरा बेटा भी है। मैं आपसे पूछता हूं, छाती पर हाथ रखकर कहा कि अगर यह दूसरा बेटा मर जाता तो आप आत्महत्या करने की कोशिश करते, यह ढोंग कर के बैठते?'उन्होंने थोड़ा सोचा और कहा कि नहीं; दूसरा मरता तो मैं आत्महत्या नहीं करता। दूसरा मरता तो मैं सोचता अच्छा ही हुआ। क्योंकि इस दूसरे ने मुझे इतना दुःख दिया है. . .। यह दूसरा किसी काम का ही नहीं है।तब मैंने कहा कि मामला बेटे का नहीं है। दोनों ही बेटे हैं, लेकिन पहला था मंत्री और मुख्यमंत्री होने की संभावना थी। उसके कंधे पर महत्वाकांक्षा की बंदूक रख कर बाप चलाने की कोशिश कर रहा था। और दूसरा बेचारा साधारण है, जैसा साधारण आदमी होता है। कोई नेता नहीं है। कोई महत्वाकांक्षी नहीं है। मेरे हिसाब से तो दूसरा बेहतर आदमी है। हां माना कि कभी-कभी शराब भी पी लेता है। पर मेरे हिसाब से तो राजनीति की शराब से तो साधारण शराब कुछ बुरी नहीं। पहले बेटे के मरने से आप परेशान नहीं हैं। अगर सच ईमानदारी से मुझसे कहो तो परेशानी यह है कि वह मुख्यमंत्री होने के करीब था अब; और यह कोई वक्त था मरने का, कम से कम मुख्यमंत्री हो जाता।वे खुद नहीं बन सके मुख्यमंत्री कभी, वे खुद मंत्री नहीं बन सके। रहे तो बहुत दिन राजनीति में, मगर उतने चालबाज नहीं थे, उनसे बड़े चालबाज हाथ मार ले गए। तो वे हमेशा पिछड़ते ही रहे। ट्रेन चूकते ही रहे। मगर बेटा चालबाज था; वह ठीक गति से चल रहा था।मुझसे बोले कि अब आपसे मैं छिपा नहीं सकता। और जब आपने बात ही छेड़ दी तो बात सच है। पीड़ा मुझे यही हो रही है कि यह भी कोई मरने का वक्त था! अरे मरना तो सभी को है, कम से कम मुख्यमंत्री तो हो जाता!मैंने कहा : 'क्या फर्क पड़ता है, मुख्यमंत्री हो कर भी मरता!' ठीक से समझो, उनको मैंने कहा कि बेटे के मरने की तकलीफ नहीं; महत्वाकांक्षा को चोट लगी है। आसक्ति को चोट लगती है। अहंकार को चोट लगती है। और सबसे बड़ी चोट यह लगती है कि बेटा मर गया, अब मुझे मरना होगा। जब बेटा तक नहीं बचा तो मैं कैसे बचूंगा?

इससे तुम उर्मिला, इस भाव को तो बिलकुल छोड़ ही दो कि जवान बेटे की अचानक मृत्यु से. . .। सभी मृत्युएं अचानक होती हैं। तुम सोचती हो, तुम्हारे ससुर के जवान बेटे की मृत्यु ही अचानक हुई; तो बाकी लोगों की मृत्यु क्या खबर दे कर आती है? कि डाक बंगले में स्थान बना रखना, कि ब्लू डायमंड में कम से कम कमरा रिजर्व करवा लेना, मैं आती हूं! सभी की अचानक होती है। बूढ़े से बूढ़ा आदमी भी अचानक ही मरता है। अभी क्षण भर पहले जिंदा और क्षण भर बाद नहीं। सभी की मृत्यु असमय होती है। हालांकि हम कहते हैं कि फलां की मृत्यु हो गयी, असमय हो गयी; जैसे कि कुछ की समय पर होती है! किसकी समय पर होती है? सभी मृत्युएं असमय होती हैं, अचानक होती हैं।और जवान, अगर गौर से देखो, तो शरीर से जवान लोग शायद अधिक नहीं मरते। लेकिन बूढ़े भी चित्त से तो जवान ही होते हैं—वही आकांक्षाएं, वही वासनाएं, वही इच्छाएं, वही जवानी के रोग। क्या फर्क पड़ता है? बूढ़ों में कुछ फर्क पड़ता है? तुम जा कर दिल्ली में देख लो, बूढ़े से बूढ़े—जिनको कभी का मर जाना चाहिए था—इनको कहो कि असमय जिंदा हैं तो समझ में आता है। कि अचानक जिंदा! जिनको नहीं होना चाहिए, किसी वजह से भी होने का कोई कारण नहीं है. . .और न केवल जिंदा हैं, बल्कि छाती पर बैठे हैं। और ऐसे अड़ कर बैठे हैं कि डर लगता है पता नहीं, मरेंगे कि नहीं मरेंगे! तुम दिल्ली में जा कर जरा उपद्रव देखो—बूढ़ों के उपद्रव देखो! तो तुम्हें पता चलेगा कि कोई जवान ही जवान नहीं होते। शरीर बूढ़े हो जाते होंगे मगर वासनाएं तो जवान ही होती हैं। बूढ़ों की और विक्षिप्त हो जाती है; क्योंकि जवान तो कुछ कर भी सकता है अपनी वासनाओं के लिए, बूढ़े तो कुछ भी नहीं कर सकते। मुल्ला नसरुद्दीन बैठा कुरान पढ़ रहा था। सुबह, सर्दी की सुबह। अभी कुछ ही दिन पहले की बात है। लेकिन कुरान कौन पढ़ाता है! वह तो बूढ़े ऐसा रख लेते हैं कुरान को सामने. . .मगर देख रहा था सड़क पर। एक सुंदर स्त्री निकली,

एकदम आवाज दी : 'फजलू, फजलू! दांत ला।'फजलू ने कहा कि कुरान पढ़ने में दांत की क्या जरूरत है? 'अरे—उसने कहा—दांत ला पहले, एक जवान स्त्री जा रही है। सीटी बजाने का मन हो रहा है।'यह सीटी बजाने का मन, दांत न हों तो भी समाप्त नहीं होता। जवान तो सभी मर जाते हैं। प्रौढ़ हो ही कौन पाता है! हां, कोई बुद्ध, कोई कबीर, कोई जीसस, कोई महावीर, कोई मुहम्मद—ऐसे लोग प्रौढ़ होते हैं, बाकी तो अप्रौढ़ ही मरते हैं। शरीर के धोखे में मत आना। शरीर तो बूढ़ा सभी का हो जाता है, लेकिन आत्मा की प्रौढ़ता जिसकी हो जाए उसकी मृत्यु धन्य भाग है—नहीं तो सभी की मृत्यु वैसा ही है दुर्भाग्य, जैसा उनका जीवन था।और तू कहती है उर्मिला कि वे विक्षिप्त से हो गए हैं बेटे की अचानक मृत्यु से। क्या तू सोचती है जितने लोग विक्षिप्त होते हैं वे सब बेटों की अचानक मृत्यु से विक्षिप्त होते हैं? बेटे की मृत्यु तो सिर्फ बहाना होगी। अगर बेटा न मरता तो किसी और कारण विक्षिप्त होते। अगर विक्षिप्त होने की भीतर संभावना थी, तो कारण कोई न कोई मिल भी जाता—मिल ही जाता! ये तो बहाने हैं कि बेटा मर गया। अच्छा बहाना मिल गया। अब लोग कुछ कह भी नहीं सकते। अब विक्षिप्त होने के लिए तुम्हें पूरी स्वतंत्रता मिल गयी। नहीं तो किसी और बहाने विक्षिप्त होते। धंधे में नुकसान लग जाता। और ऐसा ही नहीं कि नुकसान लगने से लोग विक्षिप्त होते हैं; अरे कभी-कभी ज्यादा लाभ हो जाता है, उससे भी विक्षिप्त हो जाते हैं। लाटरी खुल गयी और विक्षिप्त हो गए। आदमी को विक्षिप्त ही होना हो तो बहानों की इस संसार में कोई कमी नहीं है। एक स्त्री के पति को लाटरी मिल गयी। वह बहुत घबड़ायी। पति तो दफ132तर में थे, घर खबर आयी कि लाटरी मिल गयी है—दस लाख रुपया। वह इतनी घबड़ा गयी. .ईसाई स्त्री, पास के पड़ोस के पादरी के पास भागी गयी और पादरी से कहा कि अब आप ही सम्हालो। मैं डरती हूं, क्योंकि मुझे मालूम है, उन्हें दस रुपए का नोट भी पड़ा मिल जाए तो रात भर नहीं सो सकते। उनकी एकदम हृदय की धड़कन बढ़ जाती है, खून की चाल बढ़ जाती है। दस लाख रुपए! बरदाश्त न कर सकेंगे। वे मर ही जाएंगे। नहीं तो पागल हो जाना तो निश्चित ही है। अब आप बचाओ। आप ही बचा सकते हो, और कोई नहीं बचा सकता।पादरी ने कहा : 'बिलकुल फिक्र मत कर। यही हमारा काम है। मैं आता हूं। पति के आने के पहले मैं आ जाता हूं। पादरी आ कर जम कर बैठ गया। पति दफ132तर से आए। पादरी ने पूरी की पूरी व्यवस्था बना ली थी कि धीरे-धीरे बताना है। एकदम से दस लाख रुपया ज्यादा हो सकता है। सिर की नसें फट जाएं, कुछ भी हो जाए।तो पादरी ने कहा : 'सुनते हो, पचास हजार रुपए मिले हैं लाटरी में!' फिर देखा उसने कि क्या असर पड़ता है। अगर पचास हजार पचा जाए तो फिर पचास हजार और बताएंगे। वे भी पचा जाए तो फिर और, फिर और, ऐसे धीरे-धीरे बता कर दस लाख बता देंगे।पति ने कहा : 'पचास हजार! अगर पचास हजार मुझे मिले हैं तो पच्चीस हजार आपके चर्च के लिए दान।' पादरी वहीं गिरा, उसका हार्ट फेल हो गया।उसने सोचा ही नहीं था कि यह—पच्चीस हजार एकदम से!कुछ कहा नहीं जा सकता कि कौन किस कारण पागल हो गया है। कारण इत्यादि अकारण हैं।तू कहती है उर्मिला : 'मेरे ससुर जवान बेटे की अचानक मृत्यु से विक्षिप्त से हो गए हैं।' अगर गौर से देखो तो अधिकतम लोग विक्षिप्त से हैं। किसी का पता चल जाता है, किसी का पता नहीं चलता। शायद बेटे के मरने से तेरे ससुर की असलियत का पता चल गया, और कुछ मामला ज्यादा नहीं हो गया है,। डिग्रियों के फर्क हैं। कोई निन्यान्बे डिग्री पागल, कोई सौ डिग्री पागल, कोई एक सौ एक डिग्री बस इतना फर्क है। कोई गुणात्मक भेद नहीं है, परिमाण का भेद है। ससुर रहे तो होंगे निन्यान्बे डिग्री पागल, तू फिर से विचार करना। बेटे के मरने से पहले की जरा हालत पर विचार करना ससुर की। निन्यान्बे डिग्री तो रहे ही होंगे। हां, हो सकता है बेटे ने ऊंट पर आखिरी तिनका, कि उंट बैठ गया। कोई आखिरी तिनके से ऊंट बैठता है; मगर बोझ काफी था, आखिरी तिनके ने पूरा कर दिया। शायद बेटे की चोट आखिरी हो गयी। चोटों पर चोटें पड़ी होंगी। चोटें तो पड़ेंगी। जहां आसक्ति है वहां चोट पड़ेगी। जहां आसक्ति है वहां विक्षिप्तता की संभावना है। आसक्ति विक्षितता है—छिफी हुई; बीज है उसका। लेकिन हम विक्षितता को भी छिफाने के उफाय कर लेते हैं। कोई आदमी बैठा हुआ माला फेर रहा है; उसको हम पागल नहीं

कहते लेकिन अगर रूस में वही आदमी माला फेरे, फौरन उसको पागलखाने भेजा जाएगा। क्योंकि यह कोई बात हुई कि सुबह-सुबह बैठे और माला फेर रहे! रूस जाओ तो भूल कर माला मत फेरना, नहीं तो लोग समझेंगे विक्षिप्त हो, क्योंकि उन्होंने धर्म की आड़ छोड़ दी। अब धर्म की आड़ में विक्षिप्तता नहीं चल सकती वहां।मैं एक सज्जन को जानता हूं, जो नल से पानी भरें, स्त्री दिख जाए, फिर से बर्तन मांजें, फिर से पानी भरें। मेरे पड़ोस में ही रहते थे। उनकी बड़ी ख्याति थी, उनको लोग महात्मा मानते थे—है तो पहुंचा हुआ सिद्ध! कभी कभी तो उनको दस दफा, बीस दफा, बर्तन मांजना पड़े। मगर वे भी एक थे जिद्दी। अब यह पागलपन ही है, मगर धार्मिक हवा में इसका नाम धार्मिकता है। स्त्री दिख भर जाए. . .।पड़ोस में ही एक स्त्री रहती थी, मैंने उससे कहा कि मैं तुझे दस रुपए दूंगा, तू आज महात्मा को दिखती ही रह। कब तक ये मलते हैं बर्तन, देखें!उसे दस रुपए मिले, उसने कहा ठीक है। तो महात्मा बर्तन मलें, वे जब बर्तन मल कर जैसे ही पानी भरें, वह स्त्री फिर निकल आए। एक दफा, दो दफा, तीन दफ1321, . . .वही की वही स्त्री। पच्चीस-तीस दफा उन्होंने बर्तन मला। दोपहर होने लगी, फिर राज कुछ उन्हें समझ में आ गया। बर्तन वहीं पटका और भागे हुए आ कर मेरे पास आए। कहा कि बंद करवाइए! मैंने कहा : 'भाई मेरा इसमें क्या लेना-देना है?' उन्होंने कहा : 'वही की वही औरत बार-बार आ रही है, मुझे शक है कि आपका इसमें हाथ है।'मैंने कहा : 'तुम्हीं क्यों नहीं बंद करते? तुम ही कह दो कि आओ जिसको आना हो, आज बर्तन नहीं मलेंगे! तुम मालिक हो, तुम मुख्तियार हो।'और मैंने कहा : 'स्त्री देख कर तुम्हारा बर्तन कैसे गंदा हो जाता है, यह भी मेरी समझ में नहीं आता! आंख पर पानी मार लिया करें। बर्तन तो देख ही नहीं सकता कि स्त्री आयी कि पुरुष आया, कौन आया! बर्तन तो बर्तन है। न आत्मा बर्तन में, न आंखें बर्तन में, बर्तन को क्या पता! बर्तन को नाहक घिसते हो! समय खराब करते हो। और स्त्री आयी, आंख पर पानी मार लिया, या स्त्री आयी तो आंखें बंद ही कर लीं।और फिर मैंने उनसे कहा कि मां के पेट में नौ महीने रहे कि नहीं? फिर मां के स्तन से दूध पीया कि नहीं? और दिन में और दूसरे काम भी करते रहते हो, स्त्रियां दिखायी पड़ती हैं, तब झंझट में नहीं आते? कि कपड़े पहने चले जा रहे, स्त्री दिख गयी, फौरन कपड़े धोने लगे। अगर महात्मा ही हो तो कुछ ऐसे काम कर के दिखाओ। यह बर्तन का क्या कसूर है?और मैंने कहा : 'यह सस्ती महात्मागिरी मैं नहीं चलने दूंगा। मैंने तो स्त्री को रख छोड़ा है। दस रुपए उसको रोज दूंगा।' वे महात्मा दूसरे दिन मोहल्ला ही छोड़ कर चले गए। पता चला वे दूसरे मोहल्ले में महात्मा हो गए हैं।इसको महात्मापन कहोगे? यह विक्षिप्तता है। एक आदमी बैठा किताब में राम-राम-राम-राम-राम-राम लिखता रहा है और लोग कहते हैं : 'अहा! कैसा धार्मिक पुरुष!' तुम जरा एक किताब में बैठ कर लिखो न कोकाकोला-कोकाकोला- कोकाकोला, और तुम्हारी पत्नी देखेगी, बेटा देखेगा और कहेगा कि अच्छा चलो डाक्टर के पास! यह क्या कर रहे? और राम-राम लिखो तो धार्मिक और बेचारे कोकाकोला ने क्या बिगाड़ा है! इससे ज्यादा अंतर्राष्ट्रीय कोई मंत्र ही नहीं है। राम-राम लिखो, हिंदुओं का होगा। अल्लाह-अल्लाह लिखो, मुसलमानों का होगा। मगर कोकाकोला सब का! एकमात्र नाम है जो अंतर्राष्ट्रीय है, जिसके लिए कहीं कोई रोक-टोक नहीं है। रूस में भी नहीं! अगर रूस में भी कोई एक अमरीकन चीज तुमको मिल सकती है तो कोकाकोला। मगर कोकाकोला लिखे आदमी तो पागल! और कुछ अंट-संट लिखे—हिरीम् श्रीम् श्रीम्. . .मंत्र लिख रहा है—वेदमंत्र!तेरे ससुर उर्मिला पहले से ही कुछ गड़बड़ रहे होंगे। यह बेटे ने तो कलई खोल दी। उनका इलाज करवाओ, इसमें बेटे के मरने का कोई कसूर नहीं।उनको आवश्यकता है कि थोड़ा आसक्ति से मुक्त होना सीखें। उनको आवश्यकता है कि जीवन के इस परम सत्य को स्वीकार करना सीखें कि मृत्यु है और बेटे की मौत से कुछ फाठ सीखें कि जब बेटा तक नहीं बचा तो मैं कितनी देर बचूंगा! विक्षिप्त होने की क्या बात है, संन्यस्त होने की जरूरत है! विक्षिप्त होने का कहां सवाल है, ध्यानस्थ होने का सवाल है। बेटा मर गया तो ध्यान करो। बेटा मर गया हो समाधि साधो, कि कहीं तुम भी ऐसे ही न मर जाओ। यह बेटा तो बेकार गया, कहीं तुम भी बेकार न चले जाओ। यह बेटा तो खाली कारतूस निकल गया, तुम्हें भी खाली ही कारतूस

की तरह टांय-टांय फिस्स हो जाना है, कि कुछ जीवन में उपलब्धि करनी है?और तू इस चिंता में संन्यास रोक रही है अपना, कि कहीं मेरे गेरुआ वस्त्र पहनने से उनकी मृत्यु न हो जाए! मेरे एक लाख संन्यासी हैं, अभी तक किसी के ससुर की मृत्यु तो नहीं हुई। सिर्फ गणित के आधार पर ही काफी है। मत घबड़ा! ऐसे कहीं कोई मरता है? जब बेटे की मृत्यु से भी नहीं मरे तो तेरे गेरुआ पहनने से मर जाएंगे! यह तू बहाना खोज रही है अब—यह ससुर की आड़ कि कहीं ससुर न मर जाएं। और तू गेरुआ नहीं पहनेगी तो ससुर नहीं मरेंगे, यह पक्का है? अगर यह पक्का हो तो मैं कहता हूं गेरुआ मत पहन। रहने दो बेचारे ससुर को जिंदा, सदा जिंदा रहने दो! लेकिन ससुर तो मरेंगे, गेरुआ पहनो या न फहनो । गेरुआ पहनने से कोई नहीं मरता। न तो अब तक कोई ससुर मरा, न कोई सास मरी, न कोई पिता मरे, न कोई मां मरी, न कोई पत्नी मरी, न कोई पति मरा, न कोई बेटा . . .कोई नहीं मरता। गेरुआ पहने से किसी के मरने का क्या सवाल? अरे गेरुआ भी और रंगों में एक रंग है। काला कपड़ा पहन लो, कोई नहीं मरता; पीला पहन लो, कोई नहीं मरता; हरा पहन लो, कोई नहीं मरता—गेरुआ पहन लिया कि मर गए! गेरुआ क्या कोई जहर है? हां, इतना जरूर है कि मर गए होंगे तो गेरुआ पहन कर एकदम उठ कर खड़े हो जाएंगे कि क्यों, यह तूने क्या किया? और बेटे की चोट से उनको जो थोड़ी अस्त-व्यस्तता हुई है, वह रास्ते पर आ जाएंगे। क्योंकि अक्सर ऐसा होता है, छोटी चोट को भुलाने के लिए बड़ी चोट की जरूरत पड़ती है।जैसे तुम्हारे सिर में दर्द है और मैं बता दूं कि सिरदर्द! सिरदर्द में क्या रखा है, तुमको टी.बी. है। सिरदर्द एकदम खतम हो जाएगा। जब टी.बी. है तो कौन सिरदर्द की फिकर करे! फिर बाद में समझा दूंगा कि टी.बी. नहीं है, वह तो सिरदर्द का इलाज था।बर्नार्ड शा ने अपने जीवन में उल्लेख किया है। उसने अपने डाक्टर को खबर की, फोन किया कि मुझे हृदय का दौरा पड़ा है। डाक्टर खुद बूढ़ा है, फुराना डाक्टर है। बर्नार्ड शा खुद बूढ़ा, उसका डाक्टर बूढ़ा। अब हृदय का दौरा फड़ा है आधी रात को तो बेचारा डाक्टर उठा, तीन मंजिल सीढ़ियां चढ़ा, जब तक वह ऊपर पहुंचा तो उसकी छाती फूलने लगी, सांस चढ़ गई वह डाक्टर एकदम लेट गया, कुर्सी पर लेट गया। बर्नार्ड शा बिस्तर पर लेटा था, उठ कर बैठ गया, कहा : 'क्या हुआ?' वह बोले ही नहीं। तो बर्नार्ड शा उठा, पानी के छींटे मारे, पंखा किया। पंद्रह-बीस मिनिट के बाद डाक्टर आंख खोला, और बोला कि अब थोड़ा ठीक लग रहा है।चलते वक्त डाक्टर ने फीस मांगी। बर्नार्ड शा ने कहा : 'फीस काहे की? उलटा तुम्हारी मुझे सेवा करनी पड़ी।' डाक्टर ने कहा कि वह तुम्हारा इलाज था। तुम देखो भले-चंगे दिखायी पड़ रहे हो। तुम भूल ही गए अपनी झंझट। अब घर में आदमी मर रहा हो सामने, तो किसको याद रह जाए अपने हृदय के दौरे पड़ने की! उसने कहा कि वह तो तुम्हारा इलाज था। फीस तो लूंगा फीस उसने ली। और बर्नार्ड शा ने कहा कि बात भी उसकी ठीक थी, क्योंकि पंद्रह-बीस मिनट उसकी हवा करना, पंखा करना, पानी पिलाना, उसमें मैं भूल ही गया, भूल क्या बिलकुल ठीक ही हो गया! जब तक वह ठीक हुआ, तब तक मैं बिलकुल स्वस्थ ही था।शायद उर्मिला तेरे गेरुए वस्त्रों में पहुंच जाना उनको ऐसा धक्का दे कि वे सम्हल जाएं। भूल ही भाल जाएं बेटे की असमय मृत्यु; सोचने लगें कि उर्मिला को क्या हो गया! यह असमय का संन्यास! मौत पर तो आदमी का बस नहीं है, इसलिए कुछ कर नहीं सकते, अब बेटे से कुछ लड़-झगड़ नहीं सकते। लेकिन तुझसे लड़-झगड़ सकते हैं, बातचीत करेंगे, बकवास करेंगे, अपना ज्ञान दिखलाएंगे। चलो एक नयी व्यस्तता हो जाएगी। कौन जाने इसी में विक्षिप्तता ठीक हो जाए! इसी में बेटे की मौत भूल जाए—और बड़ा उपद्रव हो गया!मेरा संन्यास मौत से कुछ छोटा उपद्रव नहीं है।तो मैं तो कहूंगा कि ससुर से अगर तेरा कुछ भी लगाव हो, थोड़ी करुणा उन पर हो, तो संन्यास ले ही ले। मरेंगे करेंगे नहीं। ऐसे कोई मरता ही नहीं। मरना कुछ आसान मामला है? कोई ऐसी छोटी-मोटी बातों से मरता है। बेटा जुआ खेलने लगे तो बाप नहीं मरता, शराब पीने लगे तो बाप नहीं मरता; संन्यास लेने से मर जाएगा? संन्यास ले कर कौनसा पाप किया? हो सकता है संन्यास लेने से उनको भी थोड़ा बोध आए।और संन्यास सिर्फ गैरिक वस्त्र ही तो नहीं है। गैरिक वस्त्र तो केवल बाह्य आवरण है संन्यास का। साथ में ध्यान को ले कर जा, आनंद को ले

कर जा। नाचती हुई जा! तो शायद तेरा नृत्य, तेरा गीत, तेरा संगीत, तेरा आनंद उनको छुए। शायद उन्हें भी होश आए कि अब अपने भी दिन कम बचे हैं, अब कुछ कर लेने जैसा कर लेना चाहिए।डर मत। डरने की कोई जरूरत नहीं है। और अगर ससुर मर भी जाएं तो पाप मेरा, तू फिक्र छोड़। मैं लोगों के पाप अपने ऊपर ले लेता हूं।उसका निपटारा मैं कर लूंगा। कयामत के दिन जब पूछताछ होगी, तू मेरी तरफ इशारा कर देना कि इस आदमी ने संन्यास दिया था, हमारा कोई कसूर नहीं है। और ये इतने मेरे संन्यासी गवाह हैं कि पाप मेरा रहेगा, क्योंकि मैं जानता हूं : मृत्यु होती ही नहीं, पाप कैसे होगा! कोई कभी मरा है? सिर्फ देह बदलती है। जैसे कपड़े कोई बदल ले।मृत्यु सबसे बड़ा झूठ है इस जगत में और सबसे बड़ा सत्य हो कर बैठ गया है। लेकिन तुम झूठों में जीते हो। तुम्हारा अहंकार झूठ है। तुम्हारा जन्म झूठ है। तुम्हारी मृत्यु झूठ है। न तो तुम कभी जन्में हो, क्योंकि जन्म के पहले भी तुम थे। तुम्हारा अहंकार झूठ है, क्योंकि तुम परमात्मा से अलग नहीं हो, भिन्न नहीं हो; इसलिए कैसा मैं? वही है एकमात्र वही है! और तुम्हारी मृत्यु भी झूठ है, क्योंकि तुम हो ही नहीं तो मरेगा कौन? परमात्मा थोड़े ही मरेगा, परमात्मा थोड़े ही मर सकता है। तुम मृत्यु के बाद भी रहोगे।असल में 'मैं ' असली झूठ है, जिसके कारण दो झूठ और पैदा हो गए—जन्म और मृत्यु। यह खयाल कि मैं अलग हूं, नयी-नयी भ्रांतियां पैदा करवाता है कि मेरा जन्म हुआ, अब मेरी मृत्यु होगी।मैं हूं ही नहीं—यह जानना ही संन्यास है। मैं असत्य हूं, यह अहंकार झूठ है; परमात्मा सत्य है; मैं उसी की एक लहर हूं—यह जानना संन्यास है। और जिसने ऐसा जान लिया कि मैं सिर्फ एक लहर मात्र हूं, उसके जीवन में कहां मृत्यु, कहां जन्म?तू मृत्यु और जन्म से मुक्त हो कर जा। शायद तेरी मुक्ति तेरे ससुर को भी इशारा बन जाए, शायद उनका जीवन क्रांति का कारण बन जाए। इस अवसर को छोड़ मत। तू कहती है : 'और मैं संन्यास लेना चाहती हूं, बड़ी आशा ले कर आयी हूं!'बड़ी आशा ले कर आयी है तो खाली हाथ मत जा। मैं तेरी झोली भरने को राजी हूं।श्घ्तीसरा प्रश्न : भगवान ! मैं आपको सुनते-सुनते सो जाता हूं; पता नहीं यह तारी है या खुमारी है, या केवल साधारण निद्रा मात्र है। प्रकाश डालने की कृपा करें!णश्घ्धर्मदास! भइया, तारी या खुमारी तो जरा मुश्किल है। निद्रा ही होगी। तारी और खुमारी होती तो प्रश्न उठता ही नहीं। लेकिन कुछ चिंता न लेना। धर्म-सभा का यह नियम है। वहां जो न सोए सो नासमझ है। समझदार तो गहरी निद्रा लेते हैं। यही तो अवसर है सोने का। रात इत्यादि तो दूसरे कामों के लिए बनी है—चिंताएं हजार, सपनों की भीड़, कहां फुरसत है! धर्म-सभा ऐसी जगह है—न चिंता न फिकर, न घर न द्वार, न पत्नी न बच्चे, एकदम निश्चिंत! ऐसा अवसर कौन छोड़े! लोग घुर्राटे लेते हैं।मैं तो बहुत-से डाक्टरों को जानता हूं। अनिद्रा के रोगियों को वे कहते हैं : भइया, धर्म-सभा में जाओ! अगर कोई और शामक दवा काम न करे तो फिर यह दवा जरूर काम करती है।और धर्मदास, मैं तुम्हें जानता हूं, भली-भांति पहचानता हूं; सो सौ प्रतिशत नींद ही है।मैटरनिटी हास्पिटल के जनरल वार्ड से नर्स गोद में एक काला-कलूटा, अधमरा सा बच्चा लिए बाहर निकली। बाहर खड़े अनेक व्यक्तियों के बीच से नसरुद्दीन जोर से बोला : 'सिस्टर, यह बच्चा मेरा है!' नर्स को तो बहुत आश्चर्य हुआ। वह बोली : 'मगर नसरुद्दीन, तुमने पहचाना कैसे कि यह तुम्हारा ही बच्चा है?'नसरुद्दीन बोला : 'अजी, मैं अपनी बीबी को अच्छी तरह जानता हूं, जो भी चीज बनाती है ऐसा ही जला-भुना देती है।'सो धर्मदास, मैं तुम्हें जानता हूं। खुमारी, समाधि—इस झंझट में तुम न पड़ोगे। तुम तो मजे से सो रहे होओगे। और नाम ही तुम्हें धर्मदास का किसलिए दिया है? धार्मिक हो। और धार्मिक आदमी और करे क्या! दर्शन को भी तुम आते हो तो मैं चकित होता हूं कि कैसे चले आ रहे हो! नींद तुम्हारी ऐसी गहरी है।मगर कुछ लोग नींद में भी चलते हैं। सौ में से दस प्रतिशत लोग नींद में चल सकते हैं, मनोवैज्ञानिक कहते हैं। नींद में उठते हैं, काम भी कर लेते हैं, फिर सो जाते हैं। जा कर किचन में टटोल कर कुछ खा-पी आते हैं, फिर सो जाते हैं। और सुबह उनसे पूछो, उन्हें कुछ याद नहीं है। नींद में चलना संभव है।तुम्हें जब देखता हूं आते, तो मैं सोचता हूं : ये चले आ रहे, चमत्कार! सब सोया है तुम्हारे भीतर। तुम्हें देख कर मुझे नींद का ही पहले खयाल आता है। असल में तुम अगर ज्यादा मेरे साथ सत्संग करो तो तुम्हारे जगने की कम संभावना है,

मेरे सो जाने की ज्यादा है। तुम्हारा अभ्यास गहरा है।कई संन्यासी अपने बच्चों को संन्यास लिवाने ले आते हैं। जब तक उनका नाम पुकारा जाए, तब तक बच्चे सो जाते हैं। तो बेचारे पिता या मां थोड़े-से हतप्रभ होते हैं, कहते हैं क्षमा करें! मैं कहता हूं : 'तुम बिलकुल फिक्र मत करो। यह मेरा रोज का ही काम है—सोए लोगों को ही संन्यास देना है। ये बच्चे तो बेचारे सच्चे हैं, सो मजे से सो रहे हैं। बाकी चालबाज हैं, आंख भी खोले हैं और सो भी रहे हैं।'कुछ लोग हैं जिनको आंख खोलकर भी सोने का अभ्यास होता है। एक महिला को तो मैं जानता हूं कि वे आंख खोल कर सो सकती हैं। उनको मैंने आंखें खोले सोए हुए देखा है। जब वे कभी मेरे घर आ कर मेहमान होती थीं, तो मैं छोटे बच्चों को डराने के लिए उनका उपयोग करता था कि जब भी वे सोएं, बच्चों को भेजूं कि जरा अंदर जा कर तो देखो क्या हो रहा है। बच्चे देखें कि नींद भी लगी है, घुर्राटा भी चल रहा है—और आंखें भी खुली हैं!ढब्बूजी को पेंटिंग का शौक था। एक दिन उन्होंने अपने मित्र डाक्टर को पेंटिंग दिखाने के लिए बुलाया। सूर्योदय और सूर्यास्त, वृक्षों और पक्षियों के चित्र देखकर तो डाक्टर पर कोई असर पड़ा नहीं; यद्यपि वे चित्र बहुत खूबसूरत थे। फिर आया एक बूढ़ी दुबली-पतली स्त्री का दृश्य। डाक्टर की आंखें उस पर गड़ी रह गयीं। ढब्बूजी को थोड़ी राहत मिली, वे खुशी से बोले : 'मुझे अपनी बनायी हुई सभी कला कृतियों में यही सर्वश्रेष्ठ लगती है—बुढ़ापे के दुःख की कथा, हताशा और पीड़ा चेहरे की झुर्रियों में स्पष्ट झलक आई है। आपका इस
चित्र के संबंध में क्या खयाल है?'डाक्टर ने गंभीर स्वर में अपनी राय पेश की : 'आप मानें या न मानें, ढब्बूजी, मुझे तो पूरा विश्वास है, इस बुढ़िया को टी.बी. है।'धर्मदास, तुम्हें नींद की बीमारी है। तुम जब सोते हो, तब तो तुम सोते ही हो; जब तुम जागे हो, तब भी तुम सोए हो। लेकिन कल चर्चा सुन कर—तारी, खुमारी—ये शब्द तुम्हारे कानों में पहुंच गए होंगे नींद में। तुमने सोचा होगा : 'हो न हो, यह भी खूब रही! हमें तारी लगती रही अब तक और हम नींद समझते रहे!'आदमी को सुंदर-सुंदर व्याख्याएं मिल जाएं अपनी बीमारियों की, तो उनको, बीमारियों को ढांक लेने की कोशिश करने में लग जाता है। लोग अपनी विक्षिप्तता को धर्म कह सकते हैं। लोग अपनी मूढ़ता को धर्म बना लेते हैं। लोग अपनी निद्रा को भी समाधि कह सकते हैं। लोग चाहते हैं अच्छे शब्द। अहंकार ऐसा आतुर है!एक सज्जन हैं, उनको मिर्गी की बीमारी है तो बेहोश हो जाते हैं, मुंह से फसूकर गिरने लगता है। वे मेरे पास आए और कहने लगे कि मैं रामकृष्ण का जीवन पढ़ रहा हूं, तो उसमें ऐसा आता है कि वे भी बेहोश हो जाते थे और मुंह से फसूकर गिरता था, तो कहीं ऐसा तो नहीं है कि वही अवस्था मेरी भी है और लोग गलती से समझ रहे हैं कि मुझे मिर्गी की बीमारी है!उनकी आंखें देख कर मुझे लगा कि कैसे सच इनसे कहूं, बड़ी चोट लगेगी। उनका चेहरा बिलकुल ऐसा, लार टपकी जा रही, कि मैं कह दूं कि हां यही बात है। मगर मैं यह भी तो कैसे कहूं! मगर उनकी उत्सुकता यही है कि अगर मैं कह दूं कि हां तुम्हें भी वही अवस्था आ गयी जो रामकृष्ण की थी, तो वे इतने आनंदित होंगे कि उनके आनंद का कोई हिसाब न होगा। फिर वे घोषणा करेंगे दुनिया में कि हां गुरु है अगर कोई सच्चा तो यह।लोगों को सत्य से प्रयोजन नहीं है। लोगों को सांत्वना मिले, ऐसी बातों से प्रयोजन है, चाहे वह असत्य ही क्यों न हो। और सच यही है कि असत्य से ज्यादा सांत्वना मिलती है सत्य की बजाय। सत्य तो झकझोर देता है। सत्य तो कड़वा लगता है। बुद्ध ने कहा है : 'सत्य पहले कड़वा लगता है, फिर मीठा। और असत्य पहले मीठा लगता है, फिर कड़वा। असत्य पर शक्कर की पर्त चढ़ायी जा सकती है, सत्य पर नहीं चढ़ायी जा सकती। सत्य तो जैसा है, नग्न, वैसा ही होता है।एक धर्मगुरु अपना व्याख्यान दे रहे थे। मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी गुलजान सामने वाली पंक्ति में ही बैठे हुए थे। तभी धर्मगुरु ने देखा कि मुल्ला की पत्नी तो वहीं बैठे-बैठे ही आंख बंद करके घुर्राटे लेने लगी है। धर्मगुरु ने थोड़ी तो बेचैनी प्रकट की, कसमसाया, फिर भी शांत रहा। पर थोड़ी देर बाद मुल्ला ने अपनी छड़ी उठायी, अपनी टोपी सीधी की और उठ कर चलता बना। धर्मगुरु को यह तो बहुत बुरा लगा कि कोई उठकर चला जाए। वह तो खैर ठीक कि कोई सो जाए, मगर उठ कर चला जाना किसी का, धर्मगुरु को बहुत अखरा। धर्म-सभा के

अंत में उन्होंने मुल्ला की पत्नी से कहा कि देख, तू व्याख्यान के बीच सो गयी सो ठीक, मगर तेरे पति को क्या हुआ? मैंने ऐसा क्या कहा कि वह उठ कर ही चला गया?गुलजान बोली : 'महोदय, आप चिंता न करें। दरअसल उन्हें नींद में चलने की आदत है।'धर्मदास! नींद ही होगी। तारी तो साधनी पड़ेगी, साधना करनी होगी। तारी तो तब लगेगी जब दशम द्वार के करीब पहुंचोगे। जब सहस्रदल कमल पहली बार खुलने लगेगा तब तारी लगेगी। और जब खुल जाएगा तो खुमारी। तारी शुरुआत है, खुमारी अंत है। ये समाधि के दो अंग : तारी पहला कदम और खुमारी अंतिम। लेकिन लग सकती है तारी। जब नींद लग सकती है तो तारी भी लग सकती है। जिंदा हो, इत्ता तो पक्का है। जिंदा न होओ तो सो भी नहीं सकते। मुर्दा कहीं सोते हैं! जिंदा हो इतना तो पक्का है; नींद से इतनी खबर मिलती है। नींद लग सकती है तो जागरण भी हो सकता है। नींद में ही जागरण की क्षमता छिपी है। नींद के ही आवरण में जागरण छिपा है। जैसे बीज के खोल के भीतर फूल छिपे हैं।तो घबड़ाओ मत। मगर झूठे आश्वासन भी मत मांगो। मैं आखिरी आदमी हूं जो तुम्हें कोई आश्वासन दे सकूं। मैं तो कोई अवसर नहीं चूकता, जब कि मैं चोट कर सकूं तो जरूर करता हूं। बिना चोट किए तुम जग नहीं सकते। अब एक बात पक्की है कि इतनी बातें तुमने जग कर सुनी होंगी। यह बात बिलकुल पक्की है कि धर्मदास अभी नहीं सो सकते। अभी कैसे सोएंगे! अभी तो उनकी जान पर गुजर रही होगी कि यह मारा, कि यह मारा! कि भीतर ही भीतर कह रहे होंगे कि किस दुर्घड़ी में यह प्रश्न पूछ लिया! अभी नहीं सो सकते। अगर अभी सो रहे होओ तो बोलो। अभी नहीं सो सकते। अभी तो बिलकुल जगे होओगे। अभी तो एकदम जाग गए होओगे। चोट पड़ेगी बार-बार तो जागने लगोगे।सदगुरु का काम ही यही है कि वह तुम्हारी नींद को तोड़ दे, चाहे यह कितना ही पीड़ादायक, कितना ही कठोर कृत्य क्यों न मालूम पड़े। सदगुरु की करुणा यही है कि अगर उसे कठोर होना पड़े तो कठोर हो।ले चलेंगे तुम्हें तारी की तरफ। ले चलेंगे तुम्हें खुमारी की तरफ। उसी का तो सारा आयोजन है। तुम्हें डुबो देना है शराब में, खुमारी में! रोआं-रोआं डुबा देना है। तुम्हारे भीतर कोई अणु भी न रह जाए प्यासा। शराब में तुम्हें डुबकी लगवा देनी है। लेकिन जागे बिना यह नहीं हो सकता। जागने की प्रक्रिया सीखो।धर्मदास! विपस्सना में उतरो, ध्यान करो, होश सम्हालो। धीरे-धीरे! छोटे-छोटे काम होशपूर्वक करने लगो। चलो तो होशपूर्वक बैठो तो होशपूर्वक। कम से कम यहां जब रहो, जब सत्संग में बैठो, तो अपने को झकझोर कर बैठो। नींद आए, तोड़ दो नींद को! और ऐसा नहीं है कि तुम तोड़ना चाहो तो न तोड़ सको।घर में आग लग जाए, उस रात तुम सो सकते हो? दिन भर के थके-मांदे घर लौटे हो, ऐसा लगता है कि गिरते ही बिस्तर पर सो जाएंगे, और घर में आग लग जाए—फिर रात भर जागे रहोगे। तुम्हारे संकल्प की बात है। तुम्हारे निर्णय की बात है। जागना चाहो, निर्णय करो, संकल्प करो, तो कोई पृथ्वी पर तुम्हें सुला नहीं सकता। और तुम जाग जाओ तो ही परमात्मा की पहचान हो सकती है। सोए-सोए तो जो पहचान होगी, पदार्थ की होगी, परमात्मा की नहीं; देह की होगी, आत्मा की नहीं; व्यर्थ की होगी, सार्थक की नहीं। सोए रहे तो सपनों के जाल में खोए रहोगे—माया। और जागे तो माया समाप्त, सपने समाप्त। तो प्रभात हो गयी, भोर हो गया। फिर तुम पंख फैला सकते हो। फिर आकाश में उड़ सकते हो।श्ध्आखिरी प्रश्न : भगवान! मैं राजनीति में हूं, क्या राजनीति छोड़कर संन्यासी बन जाऊं?रामेश्वर प्रसाद! राजनीति इतनी आसानी से छोड़ सकोगे? राजनीति में रग-पग गए होओगे। राजनीति भीतर घुस गयी होगी। कहीं ऐसा तो नहीं है कि इस चुनाव में हार गए होओ, तब सोचा कि चलो संन्यासी हो जाएं। तब संन्यास भी राजनीति ही होगी। और कुछ नहीं। कि चलो अपनी हार को भी जीत का ढंग दे दिया, कि कह दिए कि अंगूर खट्टे हैं! कि अरे जीतना ही कौन चाहता था! कि हमें रस ही नहीं राजनीति में। नहीं तो अचानक तुम यहां आ कैसे गए? जो सत्ता में होते हैं, उनका तो पता ही नहीं चलता फिर।मुझे पहले भूत-प्रेतों में विश्वास नहीं था, लेकिन अब है : क्योंकि इतने भूतपूर्व मंत्री, इतने भूतपूर्व मुख्यमंत्री, इतने भूतपूर्व उपमंत्री, कि लगता है कि भूत-प्रेत भी होते हैं। भूतपूर्व मंत्री आते हैं। मंत्री तो एकदम नदारद हो जाते हैं! तुम जरूर कहीं पछाड़ खा गए, कहीं पिट गए। अब तुम सोच रहे होओगे कि चलो संन्यास. . .तो कह देंगे कि हमें रस ही नहीं

है, हमें कुछ लेना-देना ही नहीं।कहते हो : 'मैं राजनीति में हूं, क्या राजनीति छोड़ कर संन्यासी बन जाऊं?' अगर तुम्हें संन्यास समझ में आ गया तो राजनीति छूट गयी; छोड़ना नहीं पड़ेगी। और अगर छोड़ना पड़े तो मैं कहूंगा अभी मत छोड़ना। क्योंकि जिसे छोड़ना पड़ता है वह कुछ न कुछ बचा रह जाता है। छोड़ना पड़ने में जो चेष्टा करनी पड़ती है, उसमें ही बात बच जाती है।और फिर इस बार हार गए तो क्या हर्ज है, लगे रहो! कितने ही पिटो, मगर लगे रहो। तो एक न एक दिन घुस ही जाओगे। सौ-सौ जूते खाएं, तमाशा घुस कर देखें। जूतों-मूतों की फिक्र मत करना। ये तो अच्छे लक्षण हैं। यह तो इस बात की खबर है कि जनता तुम्हें पहचानने लगी। खाते ही रहे जूते तो एक न एक दिन तमाशा घुस कर देखोगे। और तमाशा दिल्ली बिना पहुंचे कोई देख सकता नहीं। तमाशा तो सब वहीं है। लगे रहो, इतनी जल्दी क्या हारना! कुछ कला सीखो राजनीति की, अगर हार गए।

नोट के दम पर वह वोट लेता है
बेचारा कुर्सी के लिए
टमाटर और अंडे
गाली और डंडे
क्या-क्या नहीं सहता है
हूटिंग हो कितनी ही
मंच पर खड़ा रहता है
अपमान से डरता नहीं
हिम्मत से काम लेता है

यह नेता हैएइ्ण् नेता एक साधना है, एक तपश्चर्या है—आधुनिक तप! पुराने तपस्वियों ने क्या खाक किया, जला ली धूनी, बैठ गए राख लगा कर! अरे उसमें कुछ भी लगा नहीं!

नोट के दम पर वह वोट लेता है
बेचारा कुर्सी के लिए
टमाटर और अंडे
गाली और डंडे
क्या-क्या नहीं सहता है
हूटिंग हो कितनी ही
मंच पर खड़ा रहता है
अपमान से डरता नहीं
हिम्मत से काम लेता है
यह नेता है।
कितना ही मारो इसे
मुस्कराए जाता है
पानी नहीं पीता है
रोटी नहीं खाता है
बस यह तो पार्टी का चंदा चबाता है
नयी-नयी पार्टियां प्रतिदिन बनाता है
पुराना रवैया इसे नहीं भाता है
नए-नए झंडों और
नारों का प्रणेता है

यह नेता है।

पांच साल तक मैट्रिक में.75् जब पास हो सका नहीं.75् और न ही कालेज में.75् दाखिला मिला कहीं.75् तब यह बेरोजगार बन बैठा गुंडा.75् धीरे-धीरे यहां तक बढ़ा लिया धंधा.75् कि न हुआ बी.ए. या एम.ए. .75 ् पर देखो बन ही गया.75 ् आखिर एम.एल.ए..75 ् आवारा बाप का यह 73 .75् बिगड़ा हुआ बेटा है.75् यह नेता है।एझ्ण् .75् बंदर सी सूरत है.75् कुत्ते की मूरत है.75् बुद्धि की.75् अकल की.75् जरा नहीं जरूरत है.75् हे प्रभु! यह कैसा महूरत है.75् देश की नैया यह नालायक खेता है.75् यह नेता है।एझ्ण् जमे रहो! घबड़ाओ मत! इतनी जल्दी क्या संन्यास की! लेकिन अगर समझ में आ गयी हो बात तो फिर यह मत पूछो कि क्या राजनीति छोड़ दूं? मुझसे क्यों पूछते हो? अगर हाथ में सांप पकड़े हो और दिखायी पड़ गया कि सांप है, तो क्या पूछते फिरोगे कि क्या सांप छोड़ दूं? जैसे दिखायी पड़ा वैसे ही छोड़ दोगे। पैर में कांटा गड़ा तो किसी से पूछते फिरते हो कि कांटा निकाल दूं? अरे जैसे ही पता चला, वैसे ही निकालने की कोशिश 73 में लग जाओगे। अगर राजनीति की व्यर्थता दिखायी पड़ गयी है, तो क्या पूछना, बात खतम हो गयी! एक परदा गिर गया।संन्यास का अर्थ यही है : दृष्टि; दर्शन; प्रतीति। मेरे कहे से तुम राजनीति छोड़ दोगे तो तुम यहां राजनीति करोगे। और मैं नहीं चाहता कि यहां राजनीति चले। राजनेता जहां जाएगा वहीं राजनीति चलाएगा। वह जानता ही एक बात है। उसको गणित ही एक आता है—वह हर चीज में से तरकीबें निकाल लेगा।नहीं, छोड़ने की बात मैं नहीं कहूंगा। हां, अगर तुम्हें दिखायी ही पड़ गया है, अगर मेरी बात तुम्हें सत्य लग रही है; लगता है कि जीवन ध्यान होना चाहिए, सुरति बननी चाहिए, कि जीवन परमात्मा की तलाश होनी चाहिए—तो पूछो मत छोड़ने की बात। बात खतम हो गयी। फिर संन्यास तुम्हारा है। फिर मैं राजी हूं—संन्यास के सारे आशीर्वाद तुम पर बरसा देने को! और तभी तुम संन्यासी हो सकते हो।राजनीति छोड़ कर नहीं—छूट जाए तो; बोधपूर्वक। चेष्टा कर के त्याग न करना पड़े; सिर्फ समझ काफी है। समझ ही अगर त्याग बने किसी चीज का तो त्याग सच्चा होता है। और अगर समझ के बिना तुम जबरदस्ती कर के त्याग कर दो तो त्याग सच्चा नहीं होता है। पीछे के दरवाजे से सारी बात वापिस लौट आती है। फिर वही खेल शुरू हो जाते हैं। ऊपर से राजनीति छोड़ दोगे, भीतर घुमड़ेगी। और भीतर घुमड़े, इससे बाहर ही बेहतर है।इसलिए रामेश्वर प्रसाद, मेरी सलाह है : समझो, सुनो, गुनो। और अगर मेरी बात सत्य दिखायी पड़ जाए. . .मैं नहीं कहता मानो; मैं कहता हूं: समझो, गुनो। मैं नहीं कहता विश्वास करो; मैं कहता हूं : अनुभव करो। रुको यहां! ध्यान में डूबो। और अगर लगे यह मार्ग है; यही मार्ग है—ऐसी प्रतीति प्रगाढ़ हो जाए तो गयी राजनीति। राजनीति का कचरा कुछ छोड़ना पड़ता है! और जब राजनीति चली जाती है, तब जो शेष रह गया वही संन्यास है।राजनीति के विकल्प में नहीं संन्यास लेना है। राजनीति चली जाए तो फिर जो शेष रह जाएगा—निर्मल चित्त, राजनीति-मुक्त, कुटिलता से मुक्त, चालबाजी चालाकियों से मुक्त—वही संन्यास है। और चालबाजियां हजार तरह की हैं। कोई राजनीति सिर्फ राजनीति में ही थोड़े ही है। बाजार में भी राजनीति 73 है—धन की। और घर में भी राजनीति है। पति पत्नी पर कब्जा करना चाहता है। पत्नी पति पर कब्जा करना चाहती है। घर-घर में तो राजनीति है। बच्चे तक. . .बाप बेटों के बीच राजनीति है। छोटे-छोटे बच्चे भी जानते हैं कि कैसे राजनैतिक चाल चलनी है। मेहमान घर में आ गए, बच्चे उपद्रव करने लगते हैं। पिताजी जल्दी से पांच का नोट निकाल कर पकड़ा देते हैं कि जाओ, सिनेमा देख आओ; कि जाओ घर के बाहर। यही पिताजी से बच्चा पूछ रहा था तीन दिन से कि सिनेमा देख आऊं डांटते थे कि नहीं, सिनेमा नहीं देखना है। और अब खुद ही कह रहे हैं कि जाओ सिनेमा देख आओ, किसी तरह यहां से टलो। बच्चा राजनीति सीख रहा है। बच्चा जान रहा है कि बाप कौन-सी भाषा समझता है।मेहमान जब घर में हों, उपद्रव मचाओ। पत्नी भी जानती है कि पति कौन-सी भाषा समझता है। जिस दिन उसको राजनीति करनी होती है, उस दिन देखो ज्यादा कप-बसी टूटते

हैं, बर्तन गिरते हैं, दरवाजे भड़ा-भड़ होते हैं। पति समझ जाता है कि अब अपनी पूंछ दबा लो, अब मामला बिगड़ा जा रहा है।राजनीति कुछ राजनीति में ही नहीं है; हर जगह राजनीति है। एक जगह से छोड़ोगे, दूसरी जगह प्रकट हो जाएगी। अगर राजनीति की व्यर्थता समझ में आ गयी तो सब जगह से विलीन हो जाएगी।.50˛ अपने पति के नाम का.50˛ रोना रोते हुए.50˛ एक महिला ने कहा—.50˛ सुनो बहन,.50˛ इस इंसान के पीछे मैंने.50 ˛ क्या-क्या दुःख नहीं सहा! 73 .50˛ मैं बीस वर्षों से इसके साथ.50˛ जी नहीं,.50˛ सड़ रही हूं,.50˛ यही समझो कि धीरे-धीरे मर रही हूं!एझ्ण˛ .50˛ बोली पड़ोसिन एक आह भरती हुई—.50˛ क्यों जी रही हो इस तरह.50˛ नरक की आग में जलती हुई?.50˛ अरी क्या कहूं तेरी मति को.50˛ पगली!.50˛ तलाक क्यों नहीं दे देती.50˛ अपने दुष्ट पति को?एझ्ण ˛ .50 ˛ दहाड़ मारकर रोती हुई महिला चिल्लाई— 73 .50˛ हे संतोषी माई!.50˛ रक्षा करो मेरे जीवन की.50˛ मैं सती हूं, और न सताओ.50˛ ये तलाक की बातें मुझे न बताओ.50˛ मैं कसम खा कर कहती हूं.50˛ खुद के तन-मन की.50˛ हे संतोषी माई,.50˛ रक्षा करो इस भक्तन की!.50˛ अभी तो धीरे-धीरे ही मर रही हूं.50˛ किसी तरह जिंदगी गुजार रही हूं.50˛ मगर पति को तलाक दे कर.50˛ इसे खुशी से फूला देख कर.50˛ मैं सदमा सहन न कर पाऊंगी.50˛ सच कहती हूं 73 .50˛ एक क्षण में मर जाऊंगी!एझ्ण˛ राजनीति जगह-जगह है। पत्नी तलाक नहीं दे रही, यह मत सोचना कि सती है। और जो पत्नी तुम्हारी चिता पर चढ़ कर सती हो जाए, यह मत सोचना कि सती हो रही है; हो सकता है सिर्फ पीछा कर रही हो कि आगे कहां जाते हो, कि देखूं बच कर कहां जाते हो!मनुष्य जब तक चालबाजी से भरा है तब तक राजनीति से भरा है। जिस दिन तुम्हें समझ में आ जाए, उसी दिन संन्यास है। समझ संन्यास है। प्रज्ञा संन्यास है।आज इतना ही।

उन्नीसवां प्रवचन

सखि, वह घर सबसे न्यारा

सूत्र

साहेब है रंगरेज चुनरी मेरी रंग डारी।
स्याही रंग छुड़ायके रे दियो मजीठा रंग।
धोय से छूटे नहीं रे दिन दिन होत सुरंग।।
भाव के कुंड नेह के जल में प्रेम रंग देइ बोर।
दुख देह मैल लुटाय दे रे खूब रंगी झकझोर।।
साहिब ने चुनरी रंगी रे पीतम चतुर सुजान।
सब कुछ उन पर बार दूं रे तन मन धन और प्रान।।
कहैं कबीर रंगरेज प्यारे मुझ पर हुए दयाल।
सीतल चुनरी ओढ़ि के रे भई हौं मगन निहाल।।
अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिं।
कबिरा जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिं।।
सुन्न मंडल में घर किया, बाजै सब्द रसाल।
रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दीन दयाल।।
सुन्न सरोवर मीन मन, नीर तीर सब देव।
सुधा सिंधु सुख विलसही, विरला जाने भेव।।
लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।

ना कानों सुना ना आंखों देखा

जिन पावन भुइं बहु फिरे, घूमें देस विदेस।
पया मिलन जब होइया आंगन भया
बिदेस।।
सखि, वह घर सबसे न्यारा, जहं पूरन पुरुष हमारा।।
जहां न सुख-दुःख सांच-झूठ नहिं पाप न पुन्न पसारा।
नहिं दिन-रैन चंद नहिं सूरज, बिना जोति उजियारा।।
नहिं तहं ग्यान-ध्यान नहिं जप-तप बेद-कितेब न बानी।। करनी, धरनी, रहनी, गहनी ये सब उहां हेरानी।
धर नहिं अधर न बाहर-भीतर, पिंड-ब्रह्मांड कछु नाहीं।
पांच तत्त गुन तीन नहीं तहं, साखी सब्द न ताहीं।।
मूल न फूल बेल नहिं बीजा, बिना वृच्छ फल सोहै।
ओहं-सोंह अध ऊरध नहिं, स्वासा लेखन को है।।
नहिं निरगुन नहिं अविगत भाई, नहिं सूछम-अस्थूल।
नहिं अच्छर नहिं अविगत भाई, ये सब जग के मूल।
जहां पुरुष तहंवा कछु नाहीं कहे कबीर हम जाना।
हमरी सैन लखे जो कोई, पावै पद निरवाना।।
'तारिका' नभ में आ चमकी भूली-भटकी।
मानो, मैं वन की कलिका उपवन में आकर चटकी।
मानो, मैं पथिक अकेली भूली पथ-रेखा घर की।
मैं बिछुड़ी बूंद, अमरता के मिलनोन्मुख सागर की।
क्या जाने किस गिरि से गिर मैं नीचे भू पर आई।
किस विकल जलद के दृग ने प्राणों की पीर बहाई?
बह चली 'विश्व-सरिता' में कर पार नगर, निर्जन-वन; अस्तित्व निरख अपना ही मैं विस्मित होती क्षण-क्षण।
प्रत्येक, हृदय का कंपन कहता है एक कहानी।
'तू महा-उदधि के उर की, बस, एक लहर दीवानी!'
किस 'सागर' का आमंत्रण है मलय समीरण लाई?
करने हैं 'पार' मुझे अब कितने गिर 'गहूर खाई
होता है भान कहीं है मेरा भी 'मधु-नंदन-वन'।
छूती थीं कभी मुझे भी शीतल 'शशि-किरनें' छन छन!
अब पथ भूली उस सुख का, पाया यह 'कंटक-कानन'।
किस ओर बहा जाता है अब मेरा आकुल जीवन?
पृथ्वी मनुष्य का घर नहीं है, परदेस है। लाख मानो कि घर है, फिर भी सराय सराय है और घर नहीं हो सकती। सराय वह जहां सांझ टिके और सुबह उठ जाना पड़े। घर वहां जहां शाश्वतता हो। यह संसार तो क्षण-भंगुर है। यहां घर सिर्फ पागल बनाते हैं। होशियार तो सराय समझकर ठहरते हैं और गुजर जाते हैं।दूर है देश हमारा। कभी-कभी कोई उस देश की खबर ले आता है। कभी-कभी किसी को उस देश की सुधि आ जाती है। जिसको उस देश की सुधि आ जाती है, उसकी बात हमारे लिए बेबूझ होने लगती है। हम समझते हैं एक भाषा, वह बोलता है कोई और भाषा। और इसलिए जब तक इन संदेश-वाहकों की भाषा को समझने की श्रद्धा न हो, तत्परता न हो, आकुलता-व्याकुलता न हो, प्यास न हो, तड़फ न हो, एक अभीप्सा न हो—तब तक हम चूकते ही चले जाते हैं।यूं तो कबीर के शब्द सीधे-साधे हैं। इससे सीधे-साधे शब्द और क्या होंगे! कबीर बे पढ़े-लिखे

हैं, जुलाहे हैं। जो बोलते हैं वह जुलाहे की भाषा है। इसलिए प्यारी भी बहुत है। इसलिए सीधी-साधी भी बहुत है। उसमें मिट्टी की सौंधी सुगंध है। उसमें गांव की सरलता-सहजता है। जैसे खदान से अभी-अभी निकला हीरा, तराशा नहीं गया। अभी जौहरियों के हाथ नहीं पड़ा। अनगढ़ है; पर अनगढ़ है, इसलिए प्राकृतिक है, नैसर्गिक है, स्वतः-स्फूर्त है। उपनिषदों के वचन जौहरियों ने खूब निखारे हैं। बुद्ध के वचन एक सम्राट के वचन हैं—सुसंस्कृत। महावीर के वचन में गणित है, गहरा तर्क है; आकाश को छू लेने वाली ऊंचाइयां हैं। कबीर के वचनों में जमीन में गड़ी हुई जड़ें हैं।अगर तुम कबीर को भी न समझ पाओ तो फिर किसी को भी न समझ पाओगे। इसलिए कबीर पर इतना बोला हूं। सबको बाद दी है—बुद्ध को, महावीर को, कृष्ण को। बोला हूं उन पर, पर इतना नहीं जितना कबीर पर। और कारण यही है कि अगर कबीर से चूक गए तुम तो फिर तुम किसी को न समझ पाओगे। कबीर को समझ लो तो सबको समझ लिया, जानना। क्योंकि कबीर तुम्हारे निकटतम हैं। बुद्ध और तुम्हारे बीच बड़ा फासला है। जो फासला राजमहल और झोपड़े के बीच होता है, वही फासला है। कबीर और तुम्हारे बीच कोई फासला नहीं है। अगर जरा तुम सजग हो जाओ तो कबीर के सीधे-साधे शब्द तुम्हारे भीतर अमृत को घोल जाएं। और सीधे-साधे हैं; लाग-लपेट नहीं उनमें, तर्कजाल नहीं उनमें; बोल-चाल की भाषा के हैं। इसलिए एक ताजगी भी है—ऐसी ताजगी जो फूलों में होती है; सुबह घास की पत्तियों पर जमी हुई ओस के कणों में होती है। कबीर को समझना अपरिहार्य है। कबीर तुम्हारे लिए पहली सीढ़ी बन सकते हैं और अंतिम भी।पहली बात : हम जहां हैं, वहां हम आ गए हैं, वह हमारा घर नहीं है। और हमें जल्दी ही अपना घर खोज लेना है। एक सराय से दूसरी सराय, एक होटल से दूसरी होटल कब तक भटकते रहोगे?

बहरा है जगत किसे मैं प्राणों की पीर सुनाऊं?
इन कांटों में मैं कैसे अब अपना नीड़ बनाऊं?
जल उठी अचानक उर में किस आकांक्षा की ज्वाला?
है कौन, बता दे कोई, यह आग लगाने वाला?
हो उठा तरंगित मानस, उर में सागर लहराता।
अभिलाषा की लहरों का अब छोर नहीं मिल पाता।
किसकी स्मृति अंतस्तल को करती पल-पल मतवाला?
किसने अपनी ममता का छिप-छिप कर बंधन डाला?
अलिगुंजन-सा कानों में अस्पष्ट 'गान' है गाता,
परिचित-सा, किंतु न उसका कुछ अर्थ समझ में आता।
वीणा के तार बजा कर हरिणी-सा मुझे बुलाता।
कसका 'आकर्षण' मुझको अनजान कहां ले जाता?
उड़ता है हृदय निरंतर पर, उसे नहीं है पाता,
यह व्यर्थ असीम गगन में 'चक्कर' अविराम लगाता!
यदि कभी, 'अलख', 'पथ' तेरा पल भर को भी मिल जाता, इस 'भूल-भूलैयां' से तब छुटकारा मिल पाता।

कबीर में वह झलक मिल सकती है। उस मार्ग की जरा-सी भी झलक तुम्हारी समझ में आ जाए तो घर दूर नहीं है। शायद हम पीठ किए खड़े हैं और घर पीछे है और हम आगे ही आगे दौड़े चले जाते हैं। हम घर से दूर ही दूर निकले जाते हैं। घर की ही खोज करते हैं और घर से दूर निकले जाते हैं, क्योंकि पीछे लौट कर देखते ही नहीं।घर शायद भीतर है और हमारी यात्रा बाहर की तरफ है—काशी और काबा और कैलाश, सब बाहर। और असली तीर्थ भीतर—वहां जहां तुम्हारी चेतना का उदगम-स्रोत है। गंगा भागी जाती है गंगा सागर की तरफ। वहां नहीं है घर। चलना है गंगोत्री की तरफ। जहां से आए हैं वहां चलना है, तब घर मिलेगा। मूल उदगम को खोजना है, तब घर मिलेगा। बजाने दो कबीर को तुम्हारे हृदय की वीणा के तार। शुरू-शुरू

समझ में न भी आए तो फिकिर मत लेना; किसी की समझ में शुरू-शुरू में बात नहीं आती। बात ही ऐसी है, तुम्हारा कोई कसूर नहीं है।

अलिगुंजन-सा कानों में अस्पष्ट 'गान' है आता,

परिचित-सा, किंतु न उसका कुछ अर्थ समझ में आता।

परिचित-सा भी लगेगा। जैसे गीत कहीं सुना हो—किसी स्वप्न में! कुछ भूली-बिसरी याद उमगने लगेगी। मगर अर्थ बिलकुल स्पष्ट भी न हो जाएगा; ऐसा नहीं स्पष्ट हो जाएगा जैसे दो और दो चार। एक गुन-गुन तो उठेगी, मगर उस गुनगुन के शब्द पकड़ में न आएंगे।

वीणा के तार बजा कर हरिणी-सा मुझे बुलाता!

किसका 'आकर्षण' मुझको अनजान कहां ले जाता?

पहले डर भी लगेगा कि कोई अज्ञात आकर्षण खींचने लगा। कहीं मेरी बसायी हुई बस्ती उजड़ न जाए! मेरे न्यस्त स्वार्थों का जाल बिखर न जाए! कितनी तमन्नाओं से, कितनी उम्मीदों से यह मिट्टी का घर बनाया है! कितनी आशाओं से इसकी नींव के पत्थर रखे हैं! यह सब कहीं धूल-धूसरित न हो जाए। इस डर से हम आंख नहीं खोलते। कभी-कभी कोई वीणा भी हमारी छू देता है, तार भी बज उठते हैं, तो भी हम अपने को कहीं और व्यस्त कर लेते हैं। हम नहीं चाहते कि कोई हमें याद दिलाए—उस पार हमारा घर है, क्योंकि इस पार हमने बहुत उलझाव खड़े कर लिए हैं। हालांकि सब उलझाव पड़े रह जाएंगे। कल मौत आएगी और जहां है, जो जैसा है वैसा ही पड़ा रह जाएगा। कुछ भी तुम अपने साथ न ले जा सकोगे। फिर भी कैसे उलझे हो, कैसे व्यस्त हो, कैसे पागल की तरह दौड़े जाते हो! कबीर को तुम्हारी वीणा के तार छूने दो। हृदय को सामने कर दो। हृदय को सामने कर देना सत्संग है। बुद्धि को ऐसे हटा देना बगल में, क्योंकि बुद्धि हृदय तक पहुंचने ही नहीं देती बात को। ऊहापोह में ही भटका देती है 'ठीक', या गलत? शास्त्र के अनुकूल है या नहीं? मेरे सिद्धांत के अनुकूल है या नहीं? क्या तुम्हारा सिद्धांत! क्या खाक तुम्हारा सिद्धांत!सिद्धांत का अर्थ ही होता है कि वह केवल सिद्धों के पास होता है, तुम्हारे पास नहीं हो सकता। सिद्धांत का अर्थ होता है—जो सिद्ध हो गया हो जिसने अंत पा लिया—उसका सिद्धांत होता है।इधर मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं : 'आप जो कहते हैं उससे हमारे सिद्धांत को बड़ी अड़चन होती है। तुम्हारा और सिद्धांत, तो तुम यहां आए किसलिए? सिद्धांत का वही अर्थ नहीं होता है जो निष्कर्ष का होता है। निष्कर्ष बौद्धिक होता है, तार्किक होता है। गलत भी हो सकता है, क्योंकि अनुमान ही है। सही होने की संभावना कम ही है। अंधेरे में टटोला है, अंधेरे में तीर चला दिया है—लग जाए लग जाए। लगने की संभावना बहुत कम है। न लगने की संभावना ज्यादा है। लग जाए तो तीर, न लगे तो तुक्का।लेकिन सिद्धांत अनुमान नहीं है। सिद्धांत तो साधना की अंतिम परिणति है। सिद्धांत तो सिद्धि की सुवास है। सिद्धांत तो केवल सिद्धों के पास होता है। और तुम कहते हो : 'हमारे शास्त्र के विपरीत है!' तुम शास्त्र क्या खाक समझोगे! अपने को नहीं समझा अभी—और शास्त्र को समझने चल पड़े! तुम उपनिषद नहीं समझ सकते; वह भाषा उनकी है जिन्होंने अपने को जाना। जिन्होंने अपने भीतर गहरी डुबकी मारी, उस डुबकी के अनुभव से ही वे बोले हैं। तुम क्या समझोगे? तुम जो भी समझोगे वह गलत होगा। तुम अपनी जगह से समझोगे।न तुम्हारा कोई शास्त्र है, न तुम्हारा कोई सिद्धांत है, न हो सकता है। ये भ्रांतियां छोड़ो। बुद्धि को एक तरफ रखो, ताकि हृदय को बजाया जा सके। बज उठे हृदय! तो पहले तो कुछ भी समझ में न आएगा। उमंग उठेगी, उत्साह उठेगा। एक अपूर्व ऊर्जा का जागरण होगा। कबीर कहते हैः रोआं-रांओ दीया बन जाएगा। एक उजियाला हो जाएगा। लेकिन अगर हिम्मत बांध कर चल ही पड़े किसी सदगुरु के साथ, तो धीरे-धीरे अर्थ भी प्रकट होने लगेगा। पहले संगीत, फिर अर्थ। पहले वीणा बजेगी और फिर तुम्हारे भीतर ही कुरान और उपनिषद और गीता उठेंगे। तुम्हारे भीतर जब भगवान बोले तभी भगवदगीता जानी; उसके पहले नहीं। उसके पहले किताबें हैं। उसके पहले शब्द हैं। उसके पहले सिद्धांतों की कोई संभावना ही नहीं; अनुमान है, कल्पनाएं हैं,

ऊहापोह है, दर्शन हैं, चिंतन-मनन हैं,—मगर प्रतीति नहीं, साक्षात नहीं। कबीर के सामने अपने हृदय को कर दो।

कहते हैं कबीर—

'साहेब है रंगरेज'. . .।देखते ही जुलाहे की भाषा! 'साहेब है रंगरेज. . .। परमात्मा को रंगरेज कह रहे हैं।

'साहेब है रंगरेज चुनरी मेरी रंग डारी।

स्याही रंग छुड़ाय के रे दियो मजीठा रंग।' परमात्मा की तरफ जो चला है उसने दुल्हन बनने की ठान ली। उसने तय कर लिया है कि रचाएंगे विवाह, डालेंगे भांवर परम के साथ। छोटी-मोटी क्या भांवरें डालनी! भांवर ही डालनी तो शाश्वत के साथ डालेंगे। अमृत के साथ जोड़ेंगे संबंध, चुनरी रंगनी होगी फिर। दुल्हन को सजना भी होगा फिर। मगर चुनरी भी 'वहीं' रंग सकता है। हम रंगेंगे, हमारे रंग तो उतर जाते हैं। हमारे रंग पक्के नहीं होते। हम ही कच्चे हैं, हमारे रंग कैसे पक्के होंगे!

'साहेब है रंगरेज चुनरी मेरी रंग डारी।'

दे दो उसके हाथ में अपनी चुनरी तो रंग दे।

'स्याही रंग छुड़ाय के रे दियो मजीठा रंग।' और पहला काम तो यह करेगा कि तुमने जो गंदी कर ली है चुनरी, न मालूम कितने दाग लगा लिए हैं—दाग ही दाग हो गए हैं, चुनरी में। लेकिन तुम तो उन्हीं दागों को समझते रहे कि छपाई है, कि छींट है। तुम तो उन्हीं दागों को समझते रहे कला है। तुम्हारी चुनरी की वही हालत है जो आधुनिक चित्रकला की है।मैंने सुना है कि पेरिस में आधुनिक चित्रकारों की एक प्रतियोगिता थी। उस प्रतियोगिता में जो प्रथम पुरस्कार मिला, वह उस व्यक्ति को मिला जो भूल से अपनी पेंटिंग तो नहीं लाया, लेकिन जिस प्लेट में उसने रंग मिलाए थे वह ले आया। उसको प्रथम पुरस्कार मिल गया। आधुनिक चित्रकला में समझ में आ जाए अगर चित्र तो वह आधुनिक ही नहीं है। समझ में न आए तो आधुनिक है।पिकासो के पास एक अमरीकी करोड़पति चित्र खरीदने गया था। उसने कहा मुझे दो पेंटिंग चाहिए, पिकासो के पास एक ही पेंटिंग तैयार थी। वह भीतर गया, उसने पेंटिंग को कैंची से दो टुकड़ों में काट दिया। बाहर लाकर दो पेंटिंग बेच दीं।. . .क्योंकि पता लगाना ही मुश्किल है। तुम्हें यह भी पक्का करना मुश्किल होगा कि इसको लटकाएं कैसा, कौन-सी तरफ सीधी है और कौन-सी तरफ उल्टी है।यह भी कहानी मैंने सुनी है : एक महिला ने चित्र बनवाया अपना पिकासो से। छः महीने तो उसने बनाने में लगाए, लाखों रुपए दाम मांगे। और जब चित्र बन कर आ गया, महिला ने चित्र को देखा। उसने कहा : 'और तो सब ठीक है, लेकिन नाक मेरी ठीक नहीं आयी।'पिकासो ने चित्र देखा और कहा : 'यह बहुत मुश्किल बात है, सुधार करना बहुत मुश्किल है।'उस महिला ने कहा : 'क्यों? इतना क्या मुश्किल है, जब इतने पैसे दे रही हूं? और थोड़े ले लेना, मगर सुधार कर दो।' पिकासो ने कहा : 'मुश्किल यह है कि नाक कहां है, मुझे खुद ही पता नहीं। छः महीने हो गए बनाते-बनाते, नाक कहां बनायी है यह मैं खुद ही भूल गया हूं।'आधुनिक चित्रकला मनुष्य के मन की प्रतीक है। ऐसा ही विक्षिप्त, ऐसा ही विकृत मनुष्य का मन है। यही तुम्हारी हालत है, यही तुम्हारी चदरिया है, यही तुम्हारी चुनरी है। लेकिन जब तुम परमात्मा को दोगे तो इसमें सारे दाग, स्याहियों के दाग पड़ गए हैं जन्मों-जन्मों में, इन सबको धो डालेगा। वही धो सकता है। तुम तो धोने के नाम पर कुछ और बिगाड़ लोगे। तुम तो बिगाड़ने में कुशल हो गए हो। तुम्हारा तो जन्मों-जन्मों का अभ्यास बिगाड़ने का है। तुम बनाना जानते ही नहीं। तुमसे कोई चीज बन जाए तो आश्चर्य। तुम निष्णात हो बिगाड़ने में। क्योंकि तुम जीते हो विध्वंस में, घृणा में, हिंसा में, द्वेष में, ईर्ष्या में, जलन में। तुमसे बनेगा क्या? तुम्हारे भीतर आग की लपटें जल रही हैं। तुम्हारे भीतर सब तरह के जहर हैं। तुम सांप को काटो तो सांप मर जाए। वह तो यह कहो कि आदमी सांप को काटते नहीं। विषाक्त हो तुम; तुम सुधारने में लगोगे, और गड़बड़ हो जाएगी।इसलिए कबीर कहते हैं : अगर सुधरवाना ही हो तो सौंप दो उसके हाथ में, समर्पण करो। संकल्प से नहीं पहुंचोगे तुम परमात्मा तक, समर्पण से पहुंचोगे। यह तुम्हारे संकल्प की

बात भी अहंकार है। मैं पहुंचकर रहूंगा, मैं पा कर रहूंगा—इसमें न तो पहुंचना है न पाना है; इसमें बस मैं की उदघोषणा है। और मैं ही तो बाधा है। छोड़ दो उसके हाथ में, फिर—होनी होय सो होय। फिर जो उसे करना हो करने दो।

'साहेब है रंगरेज चुनरी मेरी रंग डारी।' कबीर कहते हैं : मैं तो तुम्हें अपनी बता दूं, इस भांति मेरी चुनरी रंगी गयी कि मैंने उसको ही दे दी। मैंने कहा, मेरे किए तो कुछ न होगा। मैं तो जो करूंगा गलत हो जाता है। मैं तो जन्मों-जन्मों से गलत करने का अभ्यासी हूं। मैं तो ठीक भी करने जाऊं तो गलत हो जाता है। मैं तो शुभ करता हूं तो अशुभ हो जाता है। पुण्य करने की आकांक्षा रखता हूं, पाप हो जाता है। मेरे हाथ खराब हो गए। मेरा मन खराब हो गया। अब मैं किससे संकल्प करूं? मैं तो विकृति ही विकृति हूं। इसलिए सब तुम्हारे चरणों में रख देता हूं। ऐसे मेरी चुनरी रंगी गयी, कबीर कहते हैं। और जो मेरे साथ हुआ वही तुम्हारे साथ भी हो सकता है।

'साहेब है रंगरेज चुनरी मेरी रंग डारी।' मैंने दी नहीं कि उसने रंगी नहीं। वह है रंगरेज। वह बैठा ही था जैसे जन्मों-जन्मों से प्रतीक्षा करते कि कबीर ले आओ, चुनरी मैं रंग दूं। यह तुम क्या कर रहे हो, दाग पर दाग लगाए जाते हो, गंदे पर गंदा किए जाते हो? मेरा काम बढ़ाए जाते हो। दे दो मुझे।मगर हम सब जिद्द में हैं कि अपना कुछ करके रहेंगे, दिखा कर रहेंगे। हम भी कुछ हैं! उसी जिद्द में दाग लगते चले जाते हैं!'स्याही रंग छुड़ाय के रे दियो मजीठा रंग।' कबीर कहते हैं : हद कर दी। सारे दाग छुड़ा दिए, सारा काला रंग छुड़ा दिया और ऐसा पक्का रंग दिया है!

'धोय से छूटे नहीं रे दिन दिन होत सुरंग।'

ऐसा चमत्कार किया है कि कितना ही धोऊं, छूटता ही नहीं; जितना धोता हूं उतना ही और सुरंग होता जाता है, और-और निखरता आता है।'भाव के कुंड नेह के जल में प्रेम के रंग देई बोर।'—कह दी सारी भक्ति! भक्ति का पूरा शास्त्र आ गया इस छोटे-से वचन में : 'भाव के कुंड नेह के जल में प्रेम के रंग देइ बोर!' भाव के कुंड!तुम्हारे भीतर दो तल हैं : एक विचार का, एक भाव का। एक है मस्तिष्क जहां चलते सोच-विचार और एक है तुम्हारा हृदय, जहां उठतीं भावनाएं। हम सोच विचार में अटके हैं।लोग परमात्मा के संबंध में सोच रहे हैं।. . .परमात्मा के संबंध में खाक सोचोगे! जिसका पता ही नहीं है, क्या सोचोगे? सोच-विचार तो उसका हो सकता है जिसका हमें पता हो। परमात्मा तो अपरिचित है। है या नहीं, यह भी पता नहीं। क्या है, कैसा है, यह भी पता नहीं। उसके संबंध में सोच-विचार कैसे करोगे? सोचा कि चूके। जितना सोचा उतने दूर निकल गए। सोचा कि भटके। सोचने में भटकाव है। सोचने में उलझाव है। सोचने में अंतिम परिणति विक्षिप्तता है।लेकिन भाव एक और तल है तुम्हारे भीतर—जहां सोच-विचार नहीं होते; जहां प्रतीति होती है—सहज, बिना विचार के।तुम एक फूल को देखते हो, क्या तुम विचार करके यह निष्कर्ष लेते हो कि यह सुंदर है? अगर विचार करके निष्कर्ष लोगे तो निष्कर्ष ले ही न सकोगे। क्या प्रमाण दोगे कि गुलाब का फूल सुंदर है? और कोई जिद्दी अगर खड़ा हो जाए, कहे कि प्रमाण दो, तर्क दो, तो मुश्किल में पड़ जाओगे। कहोगे कि भई, सुंदर प्रतीत होता है, प्रमाण और क्या? अगर वैज्ञानिक के पास ले जाओगे तो फूल का विश्लेषण कर देगा, बता देगा कि कितना मिट्टी है, कितना पानी है, कितने रासायनिक द्रव्य हैं, क्या-क्या है, सब बता देगा; कितना लोहा, कितना तांबा, सब निकाल कर रख देगा। मगर सौंदर्य, वह कह देगा : कहीं है नहीं इसमें। और सब तो निकाल देगा, लेकिन सौंदर्य भर चूक जाएगा।विज्ञान सौंदर्य को स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि विज्ञान भाव के जगत से सोचता नहीं; सोचने के जगत से सोचता है। एक भाव के भी देखने का ढंग है। एक भाव का भी झरोखा है। भाव की भी अपनी एक दृष्टि है। भाव की अपनी रोशनी है। भाव का अपना ही अलग आयाम है। जब तुम फूल में सौंदर्य देखते हो तो वह भाव है, वह विचार नहीं है। जब तुम संगीत में सौंदर्य देखते हो, वह भाव है, विचार नहीं है। किसी विचारक से कहोगे कि संगीत में बड़ा सौंदर्य है; वह कहेगा, मुझे कुछ सुनाई नहीं पड़ता, मुझे तो सिर्फ शोरगुल मालूम पड़ता है। तारों की खींचातानी से कहीं सौंदर्य पैदा हो सकता है? शोरगुल पैदा हो सकता है।

आवाज सुनाई पड़ती है। और आवाज में क्या है? विद्युत-तरंगें हैं। हवा में उठी हुई विद्युत की लहरें हैं, और कुछ भी नहीं। सौंदर्य इत्यादि सब कल्पना है तुम्हारी।अगर हम विचार से ही जीना शुरू करें तो सौंदर्य खो जाएगा, प्रेम खो जाएगा, काव्य खो जाएगा। जीवन में जो भी मूल्यवान है, सब खो जाएगा—खो गया है।आधुनिक सदी मनुष्य-जाति के इतिहास में बड़ी अनूठी सदी है। बाहर की दृष्टि से हम सबसे ज्यादा समृद्ध लोग हैं और भीतर की दृष्टि से सबसे ज्यादा दरिद्र। क्योंकि काव्य हमारे भीतर उठता ही नहीं, उमगता ही नहीं; प्रेम हमारे भीतर जगता ही नहीं। सौंदर्य की भाषा से ही हम अपरिचित हो गए हैं। आश्चर्य हम जानते ही नहीं क्या है? अवाक होने की कला हम भूल गए हैं।भाव के कुंड! कबीर कहते हैं कि अगर परमात्मा को चुनरी दोगे तो वह भाव के कुंड में डुबाएगा, विचार के कुंड में नहीं। विचार के कुंड में तो स्याही ही स्याही है। वहां तो स्याही की ही लिखावट है। शास्त्रों में भी स्याही ही स्याही है, क्योंकि वे भी विचारों की उत्पत्तियां हैं। कबीर कहते हैंः मसि कागद छुओ नहिं। वे तो कहते हैं ः मैंने तो कभी स्याही और कागज छुआ ही नहीं, दूर ही रहा, इस झंझट में पड़ा ही नहीं।कबीर कहते हैं ः लिखालिखी की है नहीं, देखादेखी बात। यह लिखा-लिखी की नहीं है कि लिख दी किसी ने और पढ़ ली किसी ने।यह देखादेखीक्र ! यह तो देखना पड़ेगा, यह तो आंख खोलनी पड़ेगी। ऐसे तो अंधा भी प्रकाश के संबंध में जानकारी इकट्ठी कर सकता है। और बहरा भी संगीत के संबंध में जानकारी इकट्ठी कर सकता है। संगीत को भी लिखने की लिपि होती है न, बहरा भी पढ़ सकता है। और अंधों की भी ब्रेल-लिपि होती है, वह भी पढ़ सकते हैं। लेकिन अंधा प्रकाश को कभी न जान सकेगा, कितना ही पढ़े सारा विज्ञान पढ़ ले प्रकाश का तो भी प्रकाश न जान सकेगा। एक छोटी-सी मोमबत्ती भी न जलेगी। और बहरा कितना ही अध्ययन करता रहे, सारे राग पढ़ डाले और सारे शास्त्र संगीत के छान डाले, तो भी कोयल की कुहू-कुहू भी उसके प्राणों में उठेगी नहीं, उसे संगीत का कोई अनुभव नहीं होगा। यह बात लिखालिखी की नहीं है—देखादेखी बात।और देखने का जगत भाव है, देखने का द्वार भाव है। सोचने का—मस्तिष्क; देखने का—भाव।परमात्मा को देखना हो तो हृदय से देखा जा सकता है। इसलिए सारे धर्म श्रद्धा पर इतना जोर देते हैं। संदेह है मस्तिष्क की प्रक्रिया और श्रद्धा है हृदय का कमल; वह हृदय की झील में खिलता है।'भाव के कुंड नेह के जल में. . .। भाव का तो कुंड है, उसमें प्रेम का जल भरा है। मस्तिष्क बिलकुल प्रेम से रिक्त है। मस्तिष्क को प्रेम की कोई खबर ही नहीं है। मस्तिष्क मान ही नहीं सकता कि प्रेम जैसी कोई चीज होती है; सब कल्पना है।छमस्तिष्क धन को मान सकता है, पद को मान सकता है, प्रेम को नहीं मान सकता। मस्तिष्क गणित को मान सकता है काव्य को नहीं मान सकता, क्योंकि काव्य तो प्रेम की ही स्फुरणा है।'भाव के कुंड नेह के जल में'. . .। लेकिन सौभाग्य है कि लाख इनकार करे कोई, हमारे भाव का कुंड नष्ट नहीं होता—चाहे हम पीठ कर लें उसकी तरफ, चाहे हम उसे देखना बंद कर दें, चाहे हम उसकी उपेक्षा करने लगें।अंग्रेजी में शब्द है अज्ञान के लिए—'इग्नोरेंस', वह बड़ा प्यारा शब्द है। इग्नोरेंस बनता है 'इग्नोर' से। इग्नोर का अर्थ है ः उपेक्षा करना, ध्यान न देना।हम चाहें तो अपने भीतर के जो राज हैं, उनको 'इग्नोर' कर सकते हैं। उनकी उपेक्षा कर सकते हैं। बस वही इग्नोरेंस है, वही अज्ञान है। और जिस दिन चाहें उस दिन लौट कर देख सकते हैं, उपेक्षा करनी बंद कर दें, ध्यान देने लगें। जिस दिन चाहें उस दिन स्मरण कर लें, पुनः स्मरण कर लें, फिर से एक बार टटोल कर देख लें। और तत्क्षण, जो दबा पड़ा था, प्रकट होना शुरू हो जाएगा। जो झरोखा बंद था, खोला जा सकता है।विज्ञान, तर्क लाख उपाय करे तो भी मनुष्य के भाव के जगत को नष्ट नहीं कर सकता। भुलावा दे सकता है। प्रेम तो तुम्हारे भीतर है ही, बना ही रहेगा। अदृश्य हो जाएगा, अंतर्गर्भ में उसकी धारा बहने लगेगी। जरा खोदोगे तो मिल जाएगा।

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,

नेह का आक्रान फिर-फिर।

और तुम कितना ही भुलाओ, प्रेम भीतर से पुकारता ही रहेगा। जब भी कभी अवसर पा जाएगा, तुम्हें थोड़े

विश्राम में पाएगा, थोड़े विराम में पाएगा, फिर पुकार देगा कि आओ, थोड़ा भीतर देखो, थोड़ी मेरी तरफ भी तवज्जो दो, मैं भी हूं! इसलिए बड़े से बड़ा गणितज्ञ भी गणित की दुनिया में तो प्रेम को स्वीकार नहीं करता, लेकिन प्रेम में पड़ जाता है। बड़े से बड़ा दार्शनिक भी प्रेम में पड़ जाता है। दर्शनशास्त्र में तो इनकार कर देगा, लेकिन जीवन के शास्त्र में तो कहीं न कहीं से प्रेम उमग आता है, अंकुरित हो जाता है। उसके बीज तुम्हारे स्वभाव में हैं।एझ्ण् नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आक्रान फिर-फिर।
वह उठी आंधी कि नभ में
छा गया सहसा अंधेरा,
धूलि धूसर बादलों ने
भूमि को इस भांति घेरा,
रात-सा दिन हो गया फिर,
रात आयी और काली,
लग रहा था, अब न होगा
इस निशा का फिर सवेरा;
रात के उत्पात-भय से
भीत जन-जन, भीत कण-कण,
किंतु प्राची से उषा की
मोहिनी मुस्कान फिर-फिर!
नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आक्रान फिर-फिर! रात कितनी ही अंधेरी हो और चाहे ऐसा ही क्यों न लगने लगे कि अब सुबह कभी होने की नहीं, अब सहर होगी ही नहीं; लेकिन फिर-फिर सुबह हो जाती है, फिर-फिर सूरज की किरण फूटती है।प्रेम मनुष्य का स्वभाव है, इसलिए उसे सदा के लिए वंचित नहीं किया जा सकता। दबाओ लाख, इधर दबाओगे, उधर उभर रहा है। वह चले झोंके कि कांपे भीम कायावान भूधर, जड़ समेत उखड़-पुखड़कर गिर पड़े टूटे विटप वर, हाय, तिनकों से विनिर्मित घोसलों पर क्या न बीती, डगमगाए जबकि कंकड़, ईंट, पत्थर के महल-घर; बोल आशा के विहंगम, किस जगह पर तू छिपा था, जो गगन पर चढ़ उठाता गर्व से निज तान फिर-फिर, नीड़ का निर्माण फिर-फिर, नेह का आक्रान फिर-फिर। एझ्ण् आएं तूफान, आएं आंधियां, लेकिन फिर तुम अचानक पाओगे एक दीया तुम्हारे भीतर अभी भी जल रहा है, जो बुझता ही नहीं, जिसे बुझाया नहीं जा सकता।मनुष्य का सबसे बड़ा भाग्य यही है कि उसके प्रेम के दीये को बुझाया नहीं जा सकता। न विज्ञान बुझा सकता, न तर्कशास्त्र बुझा सकता, न राजनीति बुझा सकती, न धन-पद, माया-मोह कुछ भी नहीं बुझा सकता। आएं अंधड़, आएं आंधियां, घिरें अमावस की रातें, मगर फिर-फिर सुबह होगी। स्वभाव के विपरीत तुम कितने ही जाओ, स्वभाव तुम्हें फिर-फिर पुकार देगा। क्रुद्ध नभ के वा दंतों में उषा है मुस्कराती घोर गर्जनमय गगन के कंठ में खग-पंक्ति गाती एक चिड़िया चोंच में तिनका लिए जो जा रही है। वह सहज में ही पवन उन्चास को नीचा दिखाती। नाश के दुःख से कभी दबता नहीं निर्माण का सुख, प्रलय की निस्तब्धता में सृष्टि का नवगान फिर-फिर। नीड़ का निर्माण फिर-फिर, नेह का आक्रान फिर-फिर। एझ्ण् प्रलय भी आए तो भी एक चीज बच रहेगी तुम्हारे भीतर, वह तुम्हारा स्वभाव है। और प्रेम तुम्हारा स्वभाव है। प्रेम तुमसे भिन्न नहीं, प्रेम तुम्हारी आत्मा है।
'भाव के कुंड नेह के जल में प्रेम रंग देइ बोर।'
और परमात्मा इन्हीं से तुम्हारी चुनरिया रंग देता है।

'भाव के कुंड नेह के जल में प्रेम रंग देइ बोर।' नेह और प्रेम में कुछ भेद किया है कबीर ने। भेद थोड़ा है। नेह—हम जिसे थोड़ा सा जानते हैं, जिससे हमारा थोड़ा सा परिचय है। जैसे प्रेम का मिट्टी से मिला-जुला रूप। जैसे सोना खालिस नहीं, ऐसा हमारा नेह है—मानवीय, हमारे आंसुओं से भीगा, हमारी कमजोरियों से भरा, और प्रेम नेह की शुद्धतम अवस्था है; जैसे सोना आग से गुजर गया, और कंचन हो गया।

'भाव के कुंड नेह के जल में प्रेम रंग देइ बोर।'

तो भाव के कुंड में और नेह के जल में और प्रेम के रंग में रंग देता है चुनरिया को।

'दुःख देह मैल लुटाया दे रे खूब रंगी झकझोर।।

साहिब ने चुनरी रंगी रे पीतम चतुर सुजान।

सब कुछ उन पर बार दूं रे तन मन धन और प्रान।।

कहैं कबीर रंगरेज पियारे मुझ पर हुए दयाल।

सीतल चुनरी ओढ़ि के रे भई हौं मगन निहाल।।

' कबीर कहते हैं : अब इस चुनरी को ओढ़ कर दुल्हन बनी हूं। कबीर कहते हैं : मैं राम की दुल्हनिया! अब इस चुनरी को ओढ़ कर मैं निहाल हो गयी, मगन हो गयी। क्योंकि यह चुनरी अब छीनी नहीं जा सकती। इसका रंग उतरेगा नहीं; जैसे-जैसे ओढ़ोगे, जैसे-जैसे धोओगे, वैसे-वैसे निखरेगा, और प्रगाढ़ होगा।एक तो क्षण-भंगुरता का रंग है, जिसमें हम जीते हैं। लाख पकड़ो तो भी छूट जाता है। लाख सम्हालो तो भी मिट जाता है। कागज की नाव में बैठे हैं हम—अब डूबी, तब डूबी! पानी के बबूले हैं हम—अब फूटे, तब फूटे! और एक है शाश्वत का रंग, सनातन का, जो सदा है।परिवर्तनशील से अपने संबंध को जोड़ लेना संसार है और जो सदा अपरिवर्तित है उससे अपने संबंध को जोड़ लेना संन्यास है। संन्यास का अर्थ है : दे दी चुनरी उसके हाथ में। संन्यास का अर्थ है, समर्पण।

'अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिं।' कबीर कहते हैं : पहले बहुत गाता था। और जब से गुरु को भीतर देखा है, अपने भीतर. . .। 'गुरु' शब्द बहुत प्यारा है। दुनिया की किसी भाषा में वैसा शब्द नहीं। गुरु का अर्थ होता है, जो अंधकार को दूर कर दे।. . .जब से भीतर उसे देखा है, अंधकार को दूर करने वाले को. . .'अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिं।' अब कहे नहीं कहा जाता, गाए नहीं गाया जाता, क्योंकि वह शब्दों के पार है। गीत में भी बंधता नहीं। गद्य की तो बात छोड़ो, पद्य की भी पकड़ में नहीं आता। छूट-छूट जाता है। इतना विराट है!

हे चिर महान!

यह स्वर्णरश्मि छू श्वेत भाल

बरसा जाती रंगीन हास,

सेली बनता है इंद्रधनुष,

परिमल मल मल जाता बतास!

पर रागहीन तू हिमनिधान!

हे चिर महान!

नभ में गर्वित झुकता न शीश,

पर अंक लिए है दीन क्षार,

मन गल जाता नत विश्व देख,

तन सह लेता है कुलिश-भार!

कितने मृदु कितने कठिन प्राण!

हे चिर महान!

ना कानों सुना ना आंखों देखा

टूटी है कब तेरी समाधि,
झंझा लौटे शत हार हार,
बह चला दृगों से किंतु नीर,
सुनकर जलते कन की पुकार!
सुख से विरक्त दुःख में समान!
हे चिर महान!
मेरे जीवन का आज मूक,
तेरी छाया से हो मिलाप
तन तेरी साधकता छू ले,
मन ले करुणा की थाह नाप!
उर में पावस दृग में विहान!

हे चिर महान!जैसे ही उसकी भीतर झलक मिलती है, एक क्रांति घट जाती है—उर में पावस दृग में विहान! एक आ जाता मधुमास, खिल जाते फूलों पर फूल, हो जाती सुबह! ऐसी सुबह, फिर जो आंखों से कभी मिटती नहीं! आंखों में भर जाती सुबह। भोर आंखों का हिस्सा हो जाती है। जिसने अपने भीतर देख लिया उसकी आंखों में प्रभात होता है। वह जहां देखे, जिसको देखे, जिसकी आंख में झांके, वहां भी अंधेरा टूटने लगे।लेकिन कैसे बांधें इसे शब्दों में, रागों में? इसे बांधा नहीं जा सकता। इसलिए कबीर कहते हैं :'अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिं। कबिरा जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिं।।' पहले हम कितना गाते थे, कितना गुनगुनाते थे, कितनी प्रार्थनाएं, कितनी स्तुतियां, कितने भजन, कितने कीर्तन!

'कबीरा जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिं।' तब हमने जाना नहीं था; नहीं जाना था सो गा लेते थे। अब जाना है, सकुचाते हैं।जो नहीं जानते, परमात्मा के संबंध में बोलना उनके लिए बहुत आसान है। जो जानते हैं, उनके लिए बहुत कठिन, असंभव। ज्यादा से ज्यादा इशारे कर सकते हैं, बोला नहीं जा सकता।

'सुन्न मंडल में घर किया, बाजै शब्द रसाल।' कबीर कहते हैं : भीतर प्रवेश क्या हुआ, विराट शून्य में प्रवेश हो गया।

'सुन्न मंडल में घर किया, बाजै शब्द रसाल।' और वहां अनहद नाद बज रहा है, अब हम क्या गाएं, अब हम कैसे गाएं? उस अनहद को तो हद में बांधा नहीं जा सकता। वह शब्दातीत है। वह निराकार है।

'रोम रोम दीपक भया, प्रकटे दीन दयाल।' छोटे-छोटे शब्द, सीधे-साधे शब्द— बिना किसी उलझाव के। मगर सचोट, कि कोई अगर राजी हो तो जगा जाएं; कि कोई अगर राजी हो तो अमावस टूटे और अभी सुबह हो।

'रोम रोम दीपक भया, प्रकटे दीन दयाल।' भीतर देखा रोआं-रोआं दीया हो गया और परमात्मा प्रकट हुआ। परमात्मा ही गुरु है, इसलिए हम गुरु को परमात्मा कहते हैं : वह प्रतीक मात्र, चूंकि हमने जाना, हजारों बार जाना। हजारों कबीर हो गए। नाम ही अलग हैं, नानक कहो कि दादू कहो कि फरीद कहो, सब कबीर ही हैं। इन सबने एक ही बात जानी कि परमात्मा ही गुरु है। अगर परमात्मा ही गुरु है तो इसका बाहर हमने प्रतीक बनाया है कि हमने बाहर के गुरु को भी परमात्मा कहा। यह सांकेतिक है। इसमें इशारा छिपा है। इसमें इशारा है कि पहले गुरु को परमात्मा समझ कर चलो तो एक दिन तुम परमात्मा को गुरु की तरह पाओगे।'सुन्न सरोवर मीन मन. . .।' शून्य का सरोवर है। और कबीर कहते हैं : हम तो मछली हो गए।. . .'नीर तीर सब देव।' और अब जल भी उसका, थल भी उसका। नीर भी उसका, तीर भी उसका।

'सुधा सिंधु सुख विलसही, विरला जाने भेव।' और अब हम अमृत के इस सागर में हम आनंद-विभोर हो रहे हैं। 'सुख विलसही।' खूब मजा ले रहे हैं, मस्त हो रहे हैं। 'विरला जाने भेव।' कोई विरले व्यक्तियों ने ही इस भेद को जाना है।

'लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।' इस भेद को जानते ही एक रहस्य पता चला कि वही है, सब तरफ वही है।

'लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।' 'उसका' ही रंग छाया है।लाल रंग बहुत सी बातों का प्रतीक है। एक तो सुबह का प्रतीक : प्राची लाल हो जाती है। भोर का प्रतीक। दूसरा मनुष्य के जीवन का प्रतीक, क्योंकि रक्त लाल है, रक्त मनुष्य की जीवन-धार है। उसके बिना मनुष्य नहीं, उसके बिना जीवन नहीं। तो जीवन का प्रतीक। और लाल वसंत का प्रतीक, क्योंकि फूल ही फूल भर जाते हैं, चारों तरफ फूल ही फूल हो जाते हैं। सब तरफ लाली फैल जाती है। और लाल प्रतीक है, यौवन का, युवावास्था का, ताजगी का, नवीनता का। ये चारों बातें परमात्मा के संबंध में सच हैं। वह सदा नवीन है, कभी पुराना नहीं होता। वह सदा युवा है, कभी बूढ़ा नहीं होता। वह जीवन है, वह भोर है। सदा सुबह है, उस लोक में कभी अंधकार नहीं, उजियारा ही उजियारा है। और वह मधुमास है, वसंत है। वहां फूल ही फूल खिल रहे हैं, और सुगंध ही सुगंध उड़ रही है।इसलिए हमने पूरब में संन्यास के रंग को भी लाल चुना। वह इन चारों प्रतीकों को अपने भीतर लिए है।

'लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।'

उस मेरे प्यारे का रंग लाल है। जहां देखता हूं उसका रंग ही मुझे दिखाई पड़ रहा है। और भी चकित करने वाली बात यह है कि—

'लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।' और यह तो बाद में पता चला कि लाल को देखते-देखते कब मैं भी उसके रंग में रंग गयी! कब मैं भी डुबकी खा गयी! यह तो बहुत बाद में पता चला कि उसको देखते-देखते मैं भी वही हो गयी, उसके जैसे ही हो गयी। तुम जो देखते हो, धीरे-धीरे वही हो जाते हो। जो व्यक्ति सौंदर्य को देखता है, सुंदर हो जाता है। जो व्यक्ति संगीत में डूबता है, संगीतमय हो जाता है। जो व्यक्ति ध्यान में डूबता है, वह ध्यान-रूप हो जाता है। जो व्यक्ति प्रेम में डूबता है, वह प्रेम हो जाता है। जो व्यक्ति परमात्मा में डूबता है, वह परमात्मा हो जाता है।

'जिन पावन भुइं बहु फिरे, घूमें देश-विदेश।' पवित्र तीर्थों की यात्रा की, देश-विदेश घूमा—इस तलाश में कि कहीं कोई भूमि मिले, जहां से उससे संबंध जुड़ जाए।

'जिन पावन भुइं बहु फिरे, घूमें देश-विदेश।'

'पिया मिलन जब होइया आंगन भया विदेस।।' और जब उससे मिलना हुआ तो अपने घर का आंगन भी विदेश हो गया। और तो वह कहां मिलता! सब विदेश हो गया। यह देश ही विदेश हो गया! यह जीवन, यह देह, यह मन, यह तन, यह पृथ्वी, यह लोक, सब विदेश हो गया। 'आंगन' में सारी बात कह दी कबीर ने। 'पिया मिलन जब होइया आंगन भया विदेस।।'

'सखि, वह घर सबसे न्यारा, जहां पूरन पुरुष हमारा।। जहां न सुख-दुःख सांच-झूठ नहिं पाप न पुन्न पसारा।' वहां कोई द्वंद्व नहीं है, कोई द्वैत नहीं है। वहां न सुख है न दुःख है।समझना इस सूत्र को। साधारणतः तुम्हारी धारणा यह होती है कि वहां दुःख नहीं है, सुख ही सुख है। वह धारणा गलत है। जहां दुःख नहीं है वहां सुख भी नहीं हो सकता। घबड़ा मत जाना कि अगर वहां सुख नहीं है तो फिर खोजें ही क्यों? सुख के भी ऊपर कुछ है। सुख तो दुःख का ही दूसरा पहलू है। सुख और दुःख तो एक ही सिक्के के दो अंग हैं। हर सुख में दुःख छिपा है और हर दुःख में सुख छिपा है। इसलिए दुःख आए तो बहुत घबड़ाना मत; सुख आता होगा। और सुख आए तो बहुत अकड़ मत जाना; ये दुःख के आने के संदेश आने लगे कि यह दुःख आता ही होगा। इसके ही पीछे छिपा चला आ रहा है।जो जानता है, दुःख में दुःखी नहीं होता, क्योंकि वह जानता है कि यह केवल सुख का ही एक रूप है। और सुख में सुखी नहीं होता, क्योंकि वह जानता है यह दुःख का ही एक रूप है। धीरे-धीरे सुख और दुःख उसके लिए समान हो जाते हैं। इससे समता पैदा होती है, समभाव पैदा होता है, सम्यकत्व पैदा होता है। और सम्यकत्व संन्यास की आधारशिला है।'जहां न सुख-दुःख. . .।' वहां सुख-दुःख दोनों ही नहीं हैं। उस

अवस्था को ही हमने आनंद कहा है। लेकिन कुछ भी कहो, हम ऐसे नासमझ हैं, हमारी नासमझी उसमें से कुछ ऐसी व्याख्या निकाल लेगी जो सत्य के अनुकूल नहीं होगी, हमारे असत्य के अनुकूल होगी। आनंद कहा हमने तो आनंद का मतलब हम समझने लगे : महासुख। मगर हमने सुख जोड़ ही लिया। हमारे शब्दकोषों में लिखा होता है : आनंद यानी महासुख। महासुख में तो महादुःख भी होगा। इसलिए बुद्ध ने आनंद शब्द का उपयोग नहीं किया; आनंद शब्द को ही छोड़ दिया, क्योंकि देखा कि लोग उससे भ्रांति में पड़ रहे हैं। उनकी आकांक्षा ही गलत हुई जा रही है। वे सुख की ही तलाश कर रहे हैं, परमात्मा का नाम दे रहे हैं सिर्फ; महासुख की तलाश कर रहे हैं और नाम परमात्मा का लगाया हुआ है। लेबिल भर परमात्मा है, भीतर सब संसार की ही आकांक्षा भरी पड़ी है।मुल्ला नसरुद्दीन के घर में मेहमान आए हुए थे। भोजन चल रहा था। पत्नी नमक लाना भूल गयी थी। तो मुल्ला ने कहा, मैं ले आता हूं। भागा, किचन में गया। बड़ी देर लग गयी, बड़ी खटर-पटर, डब्बों की आवाज, इसका खोलना, उसका बंद करना। मेहमान भी थक गए। पत्नी ने कहा : 'क्या कर रहे हो? क्या जिंदगी भर वहीं रहे आओगे? तुम से कभी कुछ होगा कि नहीं होगा, नमक ही नहीं मिलता!'मुल्ला ने कहा कि मैंने कितने डब्बे खोल डाले, नमक का कुछ पता नहीं। पत्नी ने कहा : 'अंधे हो! अरे तुम्हारे सामने ही जिस डब्बे पर 'मिर्ची' लिखा है उसी में 'नमक' है।'पत्नियों के भी राज रहते हैं! अक्सर तुम्हें किचन में यह हालत मिलेगी। डब्बे पर कुछ लिखा है, डब्बे के भीतर कुछ। पति को धोखा देने का इससे और क्या उचित उपाय हो सकता है! पति को भी धोखा, बच्चों को भी धोखा। कोई एक महिला के किचन में दूसरी महिला काम कर ही नहीं सकती। सारा मामला रहस्यपूर्ण होता है। इतना तो पक्का है कि जिस डब्बे पर मिर्च लिखी है उसमें मिर्च नहीं होगी।हमारी जिंदगी भी ऐसी ही है। हम डिब्बों पर कुछ लिख लेते हैं—परमात्मा की खोज। मेरे पास लोग आ जाते हैं कि परमात्मा को खोजना है। मैं कहता हूं : 'सच में? तुम्हारे परमात्मा ने तुम्हारा बिगाड़ा क्या है?'वे कहते हैं : 'नहीं, बिगाड़ा तो कुछ भी नहीं।''तो फिर तुम काहे के लिए खोज कर रहे हो?' खोज ही करनी होगी तो वह तुम्हारी करेगा। वारंट ही निकालना होगा तो वह निकालेगा, तुम क्यों परेशान हो रहे हो? तुम इतने उपद्रव कर रहे हो कि उसके आते ही होंगे पहरेदार, यमदूत इत्यादि—भैंसों पर सवार हो कर, तुम घबड़ाओ मत। तुम्हें खोजने की कोई जरूरत नहीं। तुम सच्ची बात कहो, 'क्या चाहते हो?'तब उनकी सच्ची बात निकलती है कि जीवन में बड़ा दुःख है। 'तो पहले ही क्यों नहीं कहते कि जीवन में बड़ा दुःख है। सुख चाहते हो?' कि हां सुख चाहते हैं। आनंद चाहिए। और हमने सुना है कि परमात्मा यानी सच्चिदानंद।परमात्मा से किसको लेना-देना है! आनंद चाहिए! और आनंद का तुम्हारा मतलब, तुम्हारा है; ज्ञानियों का नहीं। ज्ञानियों का अर्थ होता है आनंद से—जहां न सुख है न दुःख है। बुद्ध ने आनंद शब्द छोड़ दिया। आनंद की जगह उपयोग किया शांति—जहां न दुःख न सुख, सारी अशांति गयी, सब शांत हो गया, कोई सुख-दुःख की तरंगें न रहीं।इसलिए बुद्ध का बहुत प्रभाव नहीं पड़ा इस देश में। बुद्ध जब जिंदा रहे तो प्रभाव पड़ा, पड़ना था; क्योंकि बुद्ध जैसा व्यक्ति मौजूद हो, प्रभाव न पड़े, यह कैसे हो सकता है! लेकिन बुद्ध के जाते ही बुद्ध-धर्म इस देश से समाप्त हो गया। उस समाप्त होने में बहुत कारणों में से एक कारण यह था कि बुद्ध ने तुम्हारी आकांक्षाओं को कोई सहारा नहीं दिया। तुम कहते हो हमें आनंद चाहिए; बुद्ध कहते हैं, फालतू की बातें। वहां कैसा आनंद, वहां तो बिलकुल शून्य है। 'शून्य'! तो तुम उनसे कहते हो कि फिर हम जरा सोच-विचार कर आएंगे कि शून्य में जाना है कि नहीं, जा कर भी वहां क्या करेंगे? इससे यहीं भले, कुछ खटर-पटर तो है, कुछ तो है,!. . .शून्य!शून्य शब्द में आकर्षण नहीं मालूम होता, कोई बुलावा नहीं मालूम होता, ऐसा नहीं लगता कि बस एकदम गले लग जाएं। शून्य शब्द सुन कर ऐसा होता है कि भाग खड़े होओ, कि जितने दूर निकल सको निकल जाओ, कि कहीं ऐसा न हो कि इस शून्य की झपट में आ जाओ।बुद्ध कहते हैं : वहां शांति है।शांति! आदमी को दुःख भला, सुख न हो तो, मगर शांत होने को कोई राजी नहीं, क्योंकि शांति में क्या रस? मरघट का सन्नाटा! एकदम शांति ही शांति है। आदमी तो कहता है : इससे तो दुःख ही बेहतर, कम से कम कुछ तो उलझाव बना रहता है। कुछ समाचार, कुछ घटनाएं घटती

रहती हैं। आदमी दुःखी होना पसंद करेगा बजाय शांत होने के, क्योंकि दुःख में व्यस्तता तो रहती है।जरा तुम सोचो, एक बार बैठ कर सोचना कि अगर सच में ही यह हो जाए कि तुम एकदम शांत हो गए, तो तुम्हें खुद ही डर लगने लगेगा। शांत! एकदम-एकदम शांत! भीतर कोई हलचल नहीं, कुछ नहीं, फिर करेंगे क्या? इससे तो ऐसे ही बेहतर। करने-धरने को भी है। सोच-विचार को भी है। जीवन में कुछ रंग-रौनक भी है। अब सभी बैठ गए शांत हो कर। शांत होने में भी आकर्षण नहीं मालूम होता।और बुद्ध ने और भी जड़ काट दी—आखिरी। लोग कहते कि आत्मा को पाना है। बुद्ध कहते ः आत्मा वगैरह कुछ है ही नहीं। जब तुम भीतर जाओगे तो पाओगे आत्मा वगैरह कुछ नहीं है। है ही नहीं कुछ; बस सन्नाटा है, शून्य, शांति!लोग पूछते ः तो कोई तो शांत होगा। बुद्ध कहते ः कोई नहीं। सिर्फ शांति है; वहां कोई शांत है, ऐसा भी नहीं।तो लोग बुद्ध से बार-बार पूछें ः तो फिर इतनी काहे के लिए मेहनत करें कि बैठे वृक्षों के नीचे, तप कर रहे! काहे के लिए? आंख बंद कर रहे, ध्यान कर रहे— किसलिए, इसका प्रयोजन क्या है? बुद्ध के प्रभाव में तो बैठ गए लोग, मगर बुद्ध के हटते ही भाग गए।. . .अपने अपने घर जाओ, इसमें क्या सार है! हिंदुस्तान से बुद्ध धर्म की जड़ें उखड़ गयीं। जड़ें उखड़ने का कारण ः बुद्ध ने तुम्हारी क्षमता के बाहर के शब्दों का उपयोग किया। सीधा-सीधा उपयोग किया। लेकिन हिंदुस्तान के बाहर बुद्ध धर्म की जड़ें जम गयीं, क्योंकि हिंदुस्तान में बुद्ध-धर्म उखड़ा तो बौद्ध भिक्षुओं ने राज समझ लिया कि उखड़ने का कारण क्या है। वे-वे कारण उन्होंने सुधार लिए। तो जब चीन में जा कर उन्होंने कहा तो उन्होंने कहा ः वहां महासुख मिलेगा। इसलिए चीनी शास्त्रों में शून्य की चर्चा नहीं है; महासुख। शांति की चर्चा नहीं है; परम आनंद। यह बात जंची। यहां उन्होंने जो भूल की थी, वह भूल फिर चीन में नहीं की, तिब्बत में नहीं की, लंका में नहीं की, बर्मा में नहीं की, जापान में नहीं की। हिंदुस्तान को छोड़ कर सारे एशिया में बौद्ध धर्म फैल गया; मगर विकृत हो कर फैला। बुद्ध की मूल बात टूट गयी। बुद्ध का मूल संदेश शुद्ध न रहा। शुद्ध हम पचा न सके।मैंने सुना है कि एक सम्राट, जो रोज रात देर तक नाच-गाने में मस्त रहता, शराब पीता और फिर बारह बजे, दो बजे दिन में सो कर उठता। एक रात, जब विदा हो रही थीं नर्तकियां और नींद उसे आ नहीं रही थी, बजे होंगे कोई पांच, ब्रह्ममुहूर्त, नींद नहीं आ रही थी तो उठ कर अपने बगीचे में आ गया। कुछ अजीब-सी बात मालूम हुई। उसने पूछा अपने दरबारी से, जो उसके साथ थाछः 'यह किस चीज की बास आ रही है?' उसने कहा ः 'मालिक, यह बास नहीं है, यह सुबह की ताजी हवा है। यह सुबह की ताजी हवा की सुगंध है, यह बास नहीं है।'उसने जीवन भर से ताजी हवा का अनुभव ही नहीं किया था। तो रात देर तक नशा चलता, नाच-गाना चलता, सिगरेट, हुक्का इत्यादि चलता होगा, धुआं-धाम। फिर सो जाता होगा। फिर दो बजे उठता होगा। सूरज के तो उसने दर्शन ही नहीं किए थे, ब्रह्ममुहूर्त का तो उसे कुछ पता ही नहीं था। तो सुबह की ताजी हवा उसको ऐसी लगी जैसे कि कोई गड़बड़ बात हो रही है, कुछ मामला ठीक नहीं मालूम होता।हमारी आदतें बन जाती हैं। हम अपनी आदतों से जीते हैं।मैंने सुना है कि एक आदमी एक चौराहे पर गिर पड़ा—बेहोश हो कर। उस चौराहे के चारों तरफ गंधियों की दुकानें थीं। आयुर्वेद में इस तरह की सूचनाएं हैं कि कुछ खास सुगंधें होती हैं बड़ी तीव्र, जो बेहोश आदमी को सुंघा दी जाएं तो वह होश में आ जाए, उसके भीतर तक चोट करती हैं। गंधियों की दुकानें थीं। एक गंधी को दया आ गयी, वह अपनी तिजोड़ी में से सबसे बहुमूल्य गंध निकाल कर लाया, उसने इस आदमी को सुंघायी। बजाय होश में आने के वह हाथ-पैर तड़फड़ाने लगा, पैर पटकने लगा। भीड़ लग गयी थी। एक आदमी भीड़ में खड़ा था, उसने कहा कि तुम मार डालोगे उसको, यह क्या सुंघा रहे हो? बंद करो! मैं इसको भली भांति जानता हूं वह कौन है। वह मछली बेचने वाला है। मैं भी मछली बेचने वाला था। हटो! इसकी टोकरी कहां है?वहीं टोकरी पास में पड़ी थी, जिसमें मछलियां बेच कर वह लौटा था। उसने टोकरी उठायी, उसमें गंदा कपड़ा था जिसमें मछलियां बांध कर लाया था। उस पर थोड़ा पानी छिड़का और टोकरी पूरी की पूरी उस आदमी के सिर पर उलट दी। उसने एक गहरी सांस ली, एकदम होश में आ गया। टोकरी उठायी, उसने कहा ः 'भाई, किसने मुझे बचाया? कोई दुष्ट मेरी जान लिए लेता था। ऐसी

दुगध, ऐसी दुगध कि मैंने अपने जीवन में नहीं देखी। मछलियों की सुगंध मिलते ही मेरे प्राण में प्राण आ गए।'जिंदगी भर जो मछलियों में रहा है, उसे मछलियों में सुगंध मालूम होने लगती है। तुम्हें दुगध मालूम होगी मछली में। लेकिन जो मछलियों में ही रहा है, उसे मछलियों में गंध, सुगंध बन जाती है।बुद्ध बिलकुल शुद्ध भाषा बोले हैं; वही उनका कसूर था। तुम चाहते हो ऐसी भाषा, जिसमें तुम्हारी अशुद्धियां मिली हों। आनंद जंचता है, मोक्ष जंचता है। मुक्ति हो जाएगी। तुम मुक्ति का क्या अर्थ लेते हो? अगर तुम अपने भीतर खोज-बीन करोगे, तुम्हारा मतलब यही होता है कि वहां सब करने की स्वतंत्रता होगी। और क्या मतलब होगा, कि जो दिल में आएगा करेंगे। मोक्ष का मतलब तुम्हारे मन में यही होगा—गहरे में अगर खोजोगे अचेतन में अगर खोजोगे,—कि फिर जो दिल में आएगा करेंगे। मुक्ति का मतलब यह है कि फिर कोई बंधन नहीं।लेकिन बुद्ध ने कहा : मोक्ष ! कोई मोक्ष नहीं है, क्योंकि तुम मिट ही जाओगे उसके पहले। कैसा मोक्ष? किसका मोक्ष निर्वाण हो जाएगा। निर्वाण का अर्थ होता है दीये का बुझ जाना। जैसे दीया बुझ जाता है, ऐसे ही तुम बुझ जाओगे। कहां का मोक्ष! सब खत्म।लोग बार-बार. . .अनेक घटनाएं हैं बुद्ध के जीवन में. . .बार-बार यही पूछते कि जब सभी मिट जाएगा, सभी खत्म हो जाएगा तो आप क्या उपदेश देते हैं? किसलिए इतना उपदेश देते हैं। ये इतने भिक्षु क्या कर रहे हैं। ये सब मिटने की तैयारी कर रहे हैं। सार क्या?हमें सार भी हमारे ही हिसाब का होता है। मेरे पास लोग आते हैं, वे पूछते हैं : 'अगर हम ध्यान करेंगे तो उससे समृद्धि बढ़ेगी?' समृद्धि—ध्यान से! मैंने कहा : 'भैया, कुछ होगी तो वह भी चली जाएगी।' तुम ध्यान करते रहे, कोई जेब ही काट लेगा। तुम ध्यान करते रहे, कि कोई तिजोड़ी खोल कर ले जाएगा। समृद्धि बढ़ेगी!लेकिन महर्षि महेश योगी अमरीका में लोगों को समझाते हैं कि अगर भावातीत ध्यान—उनका ध्यान, जिसको वे ध्यान कहते हैं—करोगे—जो कि ध्यान बिलकुल नहीं है, न कुछ भावातीत है उसमें, न कुछ ध्यान है—तो समृद्धि बढ़ेगी, पदोन्नति होगी, स्वास्थ्य मिलेगा, युवावस्था देर तक ठहरेगी। अमरीका में जो-जो चीजें लोगों को चाहिए, जिन-जिन के लिए लोग दीवाने हैं, उस सबका आश्वासन देते हैं। चलती है बात फिर। फिर बाजार में उस बात की कीमत बन जाती है—लोग जो चाहते हैं।ये सूत्र कबीर के तुम ठीक से समझ लेना। ये ठीक बुद्ध के ही वचन हैं। भाषा अलग है। कबीर कहते हैं, 'जहां न सुख दुःख'. . .वहां सुख नहीं, दुःख नहीं। 'सांच झूठ नहिं।' वहां न सत्य है, न असत्य है। तुमने अभी तक यही सुना है कि वहां सत्य है। 'चौदहवां खंड, सच्च खंड'! वह भी नहीं वहां। वहां झूठ ही नहीं तो सत्य कैसा! 'पाप न पुन्न पसारा'। पाप तो है ही नहीं, पुण्य भी नहीं है वहां। इस भ्रांति में मत रहना कि पाप यहां छूट जाएगा, पुण्य की पोटली बांध कर और ले जाओगे। कुछ न ले जा सकोगे—न पाप न पुण्य।'. . .नहिं दिन-रैन।' न दिन है न रात।. . .'चंद नहिं सूरज, बिना जोति उजियारा।' वहां कोई ज्योति भी नहीं है। लेकिन उजियारा है, अलौकिक प्रकाश है! मगर वह प्रकाश तुम्हारा प्रकाश नहीं है, क्योंकि तुम्हारा प्रकाश तो ज्योति से बंधा होता है। वह सिर्फ प्रकाश है। कोई ज्योति नहीं।बिन बाती बिन तेल! न कोई बाती है, न कोई तेल है।यह तुम्हारी सारी धारणाओं को तोड़ने की चेष्टा चल रही है कि तुम्हारे द्वैत की धारणा छूट जाए।'नहिं तहं ग्यान-ध्यान'. . .। वहां न ज्ञान है न ध्यान है।. . .'जप-तप नहीं, बेद-कितेब न बानी।' न वेद है, न कुरान है, न बानी है, कुछ भी नहीं है।

'करनी, धरनी, रहनी, गहनी ये सब उहां हेरानी।' ये सब खत्म। यह सब यहीं की बकवास है—करनी, धरनी, रहनी, गहनी। 'धर नहिं अधर न बाहर-भीतर'. . .। न तो वहां बाहर है कुछ, न भीतर—न धर, न अधर।—'पिंड ब्रह्मांड कछु नाहिं।'

'फांच तत्त्व गुन तीन नहीं तहं, साखी शब्द न ताहीं।' वहां कुछ भी नहीं है। साक्षी तक समाप्त हो गया, क्योंकि किसका साक्षी रहोगे। वहां कोई विषय नहीं बचता जिसके साक्षी बने रहो। जहां द्वैत गया, वहां दर्शन भी गया, द्र ष्टा भी गया, दृश्य भी गया। ज्ञान भी गया, ज्ञेय भी गया, ज्ञाता भी गया। ध्यान भी गया, ध्याता भी गया, ध्येय भी गया। जहां द्वंद्व चला गया, जहां दो न रहे, वहां हमारी सारी भाषा व्यर्थ हो गयी।

'मूल न फूल बेल नहिं बीजा, बिना वृच्छ फल सोहैं।' कबीर कहते हैं : समझो तो समझ लेना। फल तो है वहां, सिद्धि तो है वहां, परम सिद्धि है वहां, मगर. . .'मगर. . .'मूल न फूल बेल नहिं बीजा'. . .वहां न बीज है, न मूल है, न फूल है, न बेल है। सिर्फ फल रह गया। सिर्फ आत्यंतिक उपलब्धि है। 'ओहं-सोहं'— कबीर कहते हैं : ये तुम्हारे ओहं-सोहं भी नहीं। देख रहे हो कि अगर उनको कोका-कोला का पता होता तो जरूर कहा होता। 'ओहं-सोहं'. . .कुछ भी नहीं है ये मंत्र-तंत्र। 'अध ऊरध नहिं'. . .न वहां कुछ ऊंचा है न कुछ नीचा है। 'स्वासा लेखन को है।' और न वहां श्वास को देखने वाला है। विपस्सना भी वहां काम नहीं करेगी, कि बैठे अपनी श्वास देख रहे हैं। न वहां श्वास है न कोई देखने वाला है।

'नहिं निरगुन नहिं अविगत भाई, नहिं सूछम-अस्थूल।' न कुछ सूक्ष्म है, न कुछ स्थूल है। न निर्गुन है, न सगुण है।

'नहिं अच्छर नहिं अविगत भाई, ये सब जग के मूल।' न अक्षर है, न अज्ञात है। ये सब जग के मूल! ये द्वंद्व ही जग के मूल हैं।'जहां पुरुष तहंवा कछु नाहिं'. . .। जहां परमात्मा है वहां और कुछ नहीं बचता।'जहां पुरुष तहंवा कछु नाही, कह कबीर हम जाना' और कबीर कहते हैं : ध्यान रखना, हम जान कर कह रहे हैं । यह हम कोई पढ़ी-लिखी बात नहीं कर रहे। यह कोई शास्त्रों का उद्धरण नहीं दे रहे हैं।

'जहां पुरुष तहंवा कछु नाहीं, कह कबीर हम जाना।' यह अनुभव से कह रहे हैं। उस शून्य में उतर कर कह रहे हैं। उस शून्य में खो कर कह रहे हैं।

'हमरी सैन लखे जो कोई, फावै पद निरवाना।' बड़ा प्यारा वचन है—हमरी सैन—बस इशारे हैं! सैन। साफ-साफ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि साफ-साफ कहने में बात बिगड़ जाती है। जितना स्पष्ट कहोगे, उतनी ही बात परमात्मा से दूर हो जाएगी। वह परम रहस्य है, उसे साफ-साफ कैसे कहोगे! 'हमरी सैन लखे जो कोई, पावै पद निरवाना।' कबीर कहते हैं : हमने जो इशारा किया, इसको अगर देख लो तो निर्वाण का परम पद तुम्हारा है, पा लोगे।निर्वाण शब्द का उपयोग किया कबीर ने भी—ठीक बुद्ध जैसा। बुझ जाओ, मिट जाओ, खो जाओ। क्योंकि जहां तुम मिटे वहीं परमात्मा है। जब तक तुम हो, परमात्मा नहीं।कबीर कहते हैं : प्रेमगली अति सांकरी, ता में दो न समाय। वह गली बड़ी संकरी है, उसमें दो नहीं समा सकते।जीसस का भी प्रसिद्ध वचन है, कि रास्ता सीधा है, मगर बहुत संकरा है; संकरा इतना कि दो नहीं समा सकते। इसलिए तुम इस आशा में मत जाना कि तुम भी पहुंच जाओगे वहां। तुम तो छूट जाओगे बहुत पीछे। परमात्मा का अनुभव किसी 'और' का अनुभव नहीं है। अलग खड़े हो कर तुम परमात्मा का दर्शन करोगे, ऐसा नहीं है; परमात्मा में एक हो जाओगे। जैसे गंगा सागर में एक हो गयी। जैसे बूंद गिरी और सागर हो गयी, ऐसे तुम भी उसके साथ एक हो जाओगे। तुम्हारा तो निर्वाण हो जाएगा, तुम तो गए, सदा को गए; फिर लौटने का भी कोई उपाय नहीं है। तुम तो महाशून्य हो जाओगे।लेकिन उस महाशून्यता में ही आनंद है। उस महाशून्यता में ही परम सफलता है, परम सिद्धि है। उस महाशून्यता में ही मोक्ष है। उस महाशून्यता की ही तलाश, जिन्होंने जाना है उन्होंने करने के लिए तुम्हें पुकारा है। 'हमरी सैन लखे जो कोई, पावै पद निरवाना।'

'जहां पुरुष तहंवा कछु नाहीं कह कबीर हम जाना।' कबीर कहते हैं : हम जानकर कह रहे हैं। अगर तुम लखो, देख सको हमारी सैन को, हमारे इशारे को। ये इशारे हैं, जैसे कोई उंगली बताए चांद की तरफ। उंगली चांद नहीं है, उंगली को मत पकड़ लेना।उंगली की पूजा चल रही है। कोई महावीर की पूजा कर रहा है, कोई बुद्ध की पूजा कर रहा है, कोई कृष्ण की, कोई राम की। और कुछ तो बहुत ही आगे निकल गए हैं—गणेश जी तक की पूजा कर रहे हैं! हनुमान जी की पूजा कर रहे हैं! कुछ की तो पूछो ही मत, उनकी गति तो बड़ी न्यारी है, सोच-विचार भी नहीं करते कि क्या कर रहे हैं। काली माई की पूजा चल रही है!. . .जय संतोषी मैया!उंगलियां पकड़ रहे हो! चांद की तरफ देखो। कुरान कोई सिर पर लिए है। कोई वेद लिए है। मरे जा रहे हैं, दबे जा रहे हैं। भारी हो गए हैं वेद, सदियों-सदियों का भार हो गया है। टीका-टिप्पणियां जुड़ती चली गयीं, जुड़ती चली गयीं। इंच भर

सरकना मुश्किल है, पहुंचने की तो बात अलग। शास्त्रों का बोझ भारी है। और जिस चांद की तरफ इशारा था, वह कहां खो गया, इसका पता ही नहीं है। फुर्सत कहां! अंगुली की ही साज-137ृंगार में लगे हैं।मैं एक घर में मेहमान था। सुबह उठ कर स्नान करने जा रहा था तो जिस कमरे से निकला, देख कर हैरान हुआ। वहां एक छोटा-सा मंदिर बना रखा था उन्होंने। उसमें गुरु-ग्रंथ साहब रखे हुए थे। चलो कोई बात नहीं, गुरु-ग्रंथ साहब रखो तो कोई हर्ज नहीं। मगर सामने एक लोटा रखा और दतौन रखी। मैंने कहा : 'भैया, तुम गुरु-ग्रंथ साहब को भी दतौन करवा रहे हो! चलो यह भी ठीक था कि कृष्ण जी की मूर्ति होती और तुम दतौन रख देते, चलो समझ में आती है बात। हालांकि उन्हें भी कोई दतौन की जरूरत नहीं है, मूर्ति को क्या दतौन! मगर पुस्तक!. . .मगर यह, 'साहब' शब्द दिक्कत दे रहा है—गुरु-ग्रंथ 'साहब'। अब जब साहब हैं तो फिर दतौन भी करेंगे।मैंने उनसे कहा कि तुम्हें शर्म नहीं आती? टुथ-पेस्ट रखो! अरे साहब हैं, दतौन करेंगे? बिनाका! कहां के पुराने चलन में पड़े हो! नीम की दतौन बेचारे साहब को! सड़ोगे नरक में अगर साहब को ऐसी दतौन करवायी। और फिर रोज तोड़ो, लाओ. . .। एक दफा ब्रुश खरीद लो, और बिनाका की एक पैकट रख दो—हो गया सदा के लिए निपटारा, करने दो साहब को जितना करना हो।लोग भी अदभुत हैं, क्या-क्या अदभुत लोग हैं! उनकी अगर कारगुजारियां देखो तो बड़ी हैरानी होती है। धर्म के नाम पर चल रही हैं सारी कारगुजारियां। गणेश जी की पूजा चल रही है। तुम्हें आदमी नहीं मिलते पूजा करने को? और क्या-क्या खूबियां! और गणेश जी बैठे काहे पर—चूहे पर! चूहों ने क्या बिगाड़ा? और चूहे पर गणेश जी को बिठाले हुए हो! असलियत उल्टी है : रात को जरा गणेश जी को कमरे में छोड़ो, चूहे गणेश जी पर बैठे मिलेंगे। और गणेश जी कुछ भी न बिगाड़ लेंगे।मगर आदमी की बुद्धिहीनता का कोई अंत नहीं है। और धर्म के नाम पर क्या-क्या कूड़ा-कर्कट चल जाता है! अच्छे नाम, फिर कुछ भी उनके पीछे चलता रहता है। फिर पंडे हैं, पुरोहित हैं; उनकी दुकानें हैं, उनके व्यवसाय हैं। वे अपने व्यवसाय को समझाने के लिए कुछ भी समझाते रहते हैं। ऐसी-ऐसी बातें समझाते हैं कि हैरानी होती है; बीसवीं सदी है या अभी हम कोई पांच हजार साल पुराने जमाने में रह रहे हैं।मैं एक वेदांत सम्मेलन में भाग लेने गया था। भूल से ही मुझे बुला लिया लोगों ने। एक सम्मेलन में बस एक ही बार लोग मुझे बुलाते हैं। वहां मेरी झंझट हो गयी। झंझट सीधी-साफ थी। एक स्वामी जी लोगों को समझा रहे थे कि हमारे शास्त्रों में तो सारा विज्ञान भरा हुआ है। हर चीज! अरे ये जर्मन हमारे वेदों को चुरा कर ले गए और उन्होंने हमारे वेदों में से सब निकाल लिया। हमारे वेदों में क्या नहीं है!और लोग बड़े भक्ति-भाव से सुन रहे—कोई पचास हजार लोग। मैं चकित कि यह. . .। मैंने पूछा, जब मैं बोला कि अगर तुम्हारे वेदों में सब कुछ लिखा ही है तो तुमने पश्चिम की खोज के पहले ये सब चीजें क्यों नहीं बनायीं? मैंने पूछा कि तुम कुछ चीजों का उत्तर दो, कम-से-कम यह ही बताओ कि साइकिल को वेद में क्या कहते हैं? छोड़ो हवाई जहाज वगैरह, साइकिल? साइकिल का पंचर कैसे जोड़ा जाता है, इसके लिए वेद में कहीं कोई जगह है? और इतने दिन तक तुम क्या करते रहे, कम-से-कम साइकिल तो बना लेते!मगर वे समझा रहे थे लोगों को कि हर चीज वैज्ञानिक है।. . . 'हिंदू चोटी इसीलिए रखते हैं कि वह वैज्ञानिक है।' और क्या आधार दिया उन्होंने विज्ञान का—कि जैसे तुम देखते न बड़े-बड़े मकानों के ऊपर बिजली से बचाने के लिए एक लोहे का डंडा लगा देते हैं, वैसे ही बिजली से बचाने के लिए चुटैया खड़ी कर देते हैं। और लोग बड़े प्रसन्नता से सुन रहे कि अहा! अपने वेदों में भी कैसा-कैसा विज्ञान, क्या-क्या रहस्य भरा हुआ पड़ा है! धर्म इन मूढ़ताओं का नाम नहीं है।वे थे स्वामी जी, वे तो बिलकुल सफाचट थे। तो मैंने उनसे कहा : 'स्वामी जी, आपके बाबत क्या खयाल है? बिजली गिरेगी तो आप पर ही गिरेगी। चुटैया कहां है? इसका क्या विज्ञान है?'लेकिन इसी तरह की मूढ़ता की बातें कि हम खड़ाऊं पहन कर चलते थे, क्योंकि वहां एक नस होती है पैर में, वह खड़ाऊं को पकड़ने में दबी रहे तो उससे आदमी ब्रह्मचारी रहता है। हद के पागलो. . .तो फिर यह बर्थ-कंट्रोल वगैरह का इत्ता उपद्रव क्यों कर रहे हो? खड़ाऊं बांट दो भैया! थोड़ी खटर-पटर होगी, और क्या, मगर यह भीड़-भाड़ तो बचेगी। जब ब्रह्मचर्य का

ऐसा सस्ता नुस्खा तुम्हें मालूम है—। मगर मूढ़तापूर्ण बातों को भी अगर वे हमारी हों और उनके लिए कोई व्यर्थ के तर्क भी देता रहे, तो हमारे अहंकार को तृप्ति मिलती है। हमारे शास्त्र, हमारे पंडित-पुरोहित इसी तरह व्याख्या करते रहते हैं, कि हमारे अहंकार को तृप्ति देते रहते हैं। और अहंकार ही बाधा है। फिर वह अहंकार हिंदू का हो, मुसलमान का हो, जैन का हो, ईसाई का हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अहंकार बाधा है। अहंकार को विदा करो, तो परमात्मा प्रवेश करे। जहां अहंकार नहीं है वहीं परमात्मा है।यह छोटा सा इशारा समझो। यह सैन है। इसको कोई तख्ती पर लगा कर पूजा करने की जरूरत नहीं है। इस इशारे को समझो, गुनो, जीओ। ऐसे जीओ जैसे तुम हो ही नहीं; जैसे तुम शून्यवत हो। एक दिन चौबीस घंटे ही प्रयोग कर के देखो, ऐसे जैसे तुम हो ही नहीं, फिर कोई गाली दे जाए तो तुम हो ही नहीं तो गाली शून्य से आर-पार निकल जाएगी। और तुम बड़े हैरान होओगे : चूंकि तुम नहीं हो, इसलिए आज गाली कोई प्रभाव नहीं करती। कोई गले में माला डाल जाए तो भी ठीक; कोई भेद नहीं आता, क्योंकि तुम शून्य हो। शून्य-भाव ऐसे धीरे-धीरे सघन होता जाए तो संन्यास के एक-एक सोपान पर तुम चढ़ते चले जाते हो। जिस दिन शून्य-भाव पूर्ण हो जाता है उस दिन परमात्मा अवतरित हो जाता है। शून्यता एकमात्र पात्रता है।

'जहां पुरुष तहंवा कछु नाहीं, कह कबीर हम जाना।
हमरी सैन लखे जो कोई, पावै पद निरवाना।।'

आज इतना ही।□□□

बीसवां प्रवचन

नेति-नेति

प्रश्न-सार

स्वामी विवेकानंद के मौलिक विचारों फर प्रवचन देने की प्रार्थनणा।

पहला प्रश्न : भगवान! अपने ज्ञान-चक्षुओं के आधार पर जब भी आपको पाया तो दो रूपों में। आप के आरंभिक जीवन के प्रेरणा-स्रोत स्वामी विवेकानंद ही रहे होंगे, तत्पश्चात भगवान बुद्ध होंगे। और उसके बाद आप स्वयं ही बुद्ध हो गए। स्वामी विवेकानंद भारत के दूसरे कृष्ण थे; उपनिषदों व अन्य भारतीय ग्रंथों के मूर्धन्य विद्वान थे। ऐसे महापुरुष पर आपके मुखारविंद से एक लंबी प्रवचनमाला की अपेक्षा है। शंका भी है कि विवेकानंद पर आप शायद नहीं भी बोलें; कारण कि उनका समग्र चिंतन हिंदू शब्द व हिंदू सभ्यता पर आधारित है। और हिंदू शब्द से आपको घृणा है, ऐसा मुझे कई बार प्रतीत हुआ है।श्विशेष प्रार्थना है कि स्वामी विवेकानंद के मौलिक विचारों पर व चिंतन पर आप मंथन करते हुए हमें शुभ्र, सात्विक, सच्चाईपूर्ण नवनीत का प्रसाद प्रदान करेंगे!णभगवानदास आर्य!हिंदू शब्द से मुझे उतनी ही घृणा है जितनी मुसलमान शब्द से, जितनी ईसाई शब्द से, जितनी जैन शब्द से—और जितनी, यह तुम्हारे नाम के पीछे जो 'आर्य' जुड़ा है इससे। हिंदू शब्द से कोई विशेष घृणा नहीं है, वह कोई अपवाद नहीं है। सभी संप्रदाय मनुष्य को धर्म तक जाने से रोकते हैं। धर्म से मुझे प्रेम है। इसीलिए प्रकारांतर से मैं हिंदू, जैन, ईसाई, बौद्ध सभी के विपरीत हूं। लेकिन विपरीत होने में मुझे रस नहीं है। फूलों का पक्षपाती हूं, इसलिए कांटों से विरोध है, कांटों से कोई सीधी दुश्मनी नहीं है। स्वास्थ्य का पक्षपाती हूं, इसलिए बीमारियों से विरोध है। ये सब बीमारियों के अलग-अलग नाम हैं।पृथ्वी पर कोई तीन सौ धर्म हैं। तीन सौ कहीं धर्म हो सकते हैं! धर्म तो एक ही हो सकता है। धर्म का तो अर्थ होता है स्वभाव। विज्ञान एक है और धर्म तीन सौ हैं, इससे ही तुम झूठ का अंदाज लगा सकते हो। विज्ञान एक क्यों है? क्योंकि पदार्थ का स्वभाव एक है।पानी को गर्म करो, चाहे हिंदू घर में और मुसलमान घर में, सौ डिग्री पर भाप बनेगा। चाहे भारत में और चाहे चीन में, पानी अपना स्वभाव न बदलेगा। चाहे कुरान पढ़कर पानी को गरम करो, चाहे

गीता पढ़कर, पानी अपनी नियति से चलेगा।जब पदार्थ का स्वभाव एक है, तो तुम सोचते हो परमात्मा का स्वभाव अनेक होगा? और मजा यह है कि पदार्थ अनेक हैं, उनका स्वभाव एक है! और परमात्मा तो सदा एक है, उसका स्वभाव अनेक होगा? अनेकों का स्वभाव भी मूलतः एक है, तो एक का स्वभाव तो एक ही होगा?ये तीन सौ धर्म, धर्म नहीं हैं—धर्म के नाम पर चलते हुए थोथे सिद्धांत हैं! और इन थोथे सिद्धांतों में जो खो गया, वह धर्म से वंचित रह जाता है। तुम धर्म से वंचित न रह जाओ, इसलिए इन थोथी मान्यताओं और धारणाओं पर जितनी चोट बन सके उतनी करता हूं। लेकिन मेरी कोई दुश्मनी नहीं है। दुश्मनी तो किसी से भी नहीं है। दुश्मनी का तो कोई उपाय न रहा। मेरे भीतर कोई घृणा नहीं है। लेकिन देखता हूं तुम्हें उलझे हुए, तो तुम्हारी जंजीरें टूटनी जरूरी हैं, तुम्हारी बेड़ियां तोड़नी जरूरी हैं, तुम्हें कारागृह के बाहर खींच लेना जरूरी है। तो तुम्हारी जंजीरों और बेड़ियों पर चोट करता हूं। जंजीरों-बेड़ियों से कोई दुश्मनी नहीं है; तुम्हारी मुक्ति की जरूर अभीप्सा है।हिंदू भी बंधा है, मुसलमान भी बंधा है। उनके बंधन अलग-अलग हैं। उनके बंधन के ढंग अलग-अलग हैं। लेकिन उन बंधनों के भीतर झांकोगे तो एक ही मूल आधार है; वह है विश्वास।ज्ञान मुक्त करता है; विश्वास बांधता है। तुम हिंदू कैसे हो—विश्वास से या बोध से? हिंदू घर में पैदा हुए तो हिंदू हो, क्योंकि हिंदू विश्वास तुम पर आरोपित कर दिए गए। बचपन में ही तुम्हें उठा कर मुसलमान घर में रख दिया गया होता और तुम मुसलमान घर में बड़े होते, तो तुम मुसलमान होते; तुम्हें कभी खयाल भी न आता कि तुम हिंदू हो। खून थोड़े ही हिंदू होता है, हड्डी-मांस-मज्जा थोड़े ही हिंदू होती है! ये तो तुम्हारे मस्तिष्क में डाले गए विचार. . .जो भी डाल दिए जाएं, वही विचार तुम पकड़ लेते हो। और धर्म इन विचारों से मुक्त होने का नाम है।धर्म यानी ध्यान। ध्यान में तुम हिंदू नहीं रह जाओगे, मुसलमान भी नहीं रह जाओगे, ईसाई भी नहीं रह जाओगे। क्योंकि ध्यान का अर्थ है अपने विचारों से मुक्त हो जाना; अपने विचारों का साक्षी हूं मैं, ऐसा जान लेना। तब तुम देखोगे कि हिंदुओं के विचार, मुसलमानों के विचार, ईसाइयों के विचार तुम्हारे चारों तरफ हैं—बादलों की तरह घिरे हैं। और तुम सूरज हो। तुम बादल नहीं हो। न यह बादल, न वह बादल। जिस दिन तुम जानोगे कि तुम सूर्य के प्रकाश हो, जिस दिन तुम जानोगे कि तुम साक्षी-भाव हो, जिस दिन तुम्हारे भीतर समाधि फलित होगी—उस दिन क्या तुम हिंदू रह जाओगे? अगर उस दिन भी हिंदू रह गए तो तुम्हारी समाधि झूठी। उस दिन क्या तुम पुरुष रह जाओगे या स्त्री? अगर तुम पुरुष और स्त्री रह गए, तो भी तुम्हारी समाधि झूठी। उसका अर्थ है अभी तुम शरीर के साक्षी नहीं हो पाए। स्त्री-पुरुष होना शरीर में है। हिंदू-मुसलमान होना मन में है। मन और शरीर दोनों के पार हो तुम। न आर्य हो, न अनार्य हो—साक्षी हो। साक्षी होने में ही तुम्हारी भगवत्ता है। इसलिए इस बात को खयाल में रख लो।चोट करता हूं तुम्हारी जंजीरों पर, क्योंकि तुमने जंजीरों को आभूषण समझ रखा है। तुम उनको सजा रहे हो, रंग रहे हो, मोती जड़ रहे हो उन पर, हीरे-जवाहरात लगा रहे हो। और जो भी तुम्हारे आभूषणों की प्रशंसा करता है, तुम्हारे आभूषणों का यशगान करता है, स्तुति करता है, उससे तुम बहुत प्रभावित होते हो। स्वामी विवेकानंद से तुम इसीलिए प्रभावित हो कि उन्होंने तुम्हारे कारागृह को खूब सजाया। वे कुशल व्यक्ति थे; द्रष्टा नहीं, बुद्ध नहीं, साक्षी नहीं। चिंतक थे, विचारक थे, दार्शनिक थे; ऋषि नहीं, भगवत्ता को उपलब्ध नहीं, समाधिस्थ नहीं। समाधिस्त हो कर क्या फिक्र रह जाती है हिंदू-मुसलमान की! और वे जीवन भर छूट न सके उन शब्दों से। और उन शब्दों का इतना मोह था उन्हें कि एक जगह उन्होंने कहा है कि जो व्यक्ति अपनी परंपरा के विपरीत जाएगा वह भयंकर बीमारियों से मरेगा। उन दिनों मधुमेह, डायबिटीज बड़ी भयंकर बीमारी थी, तो उन्होंने स्पष्ट उल्लेख किया है कि परंपरा के विपरीत जो जाएगा, वह मधुमेह से मरेगा। और जान कर तुम हैरान होओगे, वे खुद मधुमेह से मरे! और तेतीस साल की उम्र में मरे।अब मधुमेह का परंपरा के विपरीत जाने से कोई संबंध नहीं है। लेकिन डरवाने के लिए, भयभीत करने के लिए—कि अपनी परंपरा को पकड़े रहना, नहीं तो मधुमेह से मरोगे!विवेकानंद का शरीर तुम्हें बहुत प्रभावित करता है। लेकिन उस तरह के शरीर वाले लोग अक्सर ही मधुमेह से पीड़ित होंगे। वह कोई स्वास्थ्य का लक्षण नहीं है। उतना वजन शरीर पर डालना

डायबिटीज को निमंत्रण देना है। मगर कोई डायबिटीज परंपरा के विपरीत जाने से पैदा नहीं होती, नहीं तो सारी दुनिया में डायबिटीज फैल जाए। तब तो ऐसा आदमी पाना मुश्किल हो जाए जिसको डायबिटीज न हो।अभी जिन लोगों को डायबिटीज है उन की संख्या बहुत थोड़ी है। तो उन्होंने संघ बना लिया है और वे अपने कोट के खीसे में कार्ड रखते हैं कि मैं डायबिटीज का बीमार हूं। क्योंकि डायबिटीज का बीमार कभी-कभी अगर शक्कर की मात्रा शरीर में कम हो जाए तो बेहोश हो जाता है। तो कार्ड पर लिखा होता कि मैं बेहोश हो जाऊं तो घबड़ाने की जरूरत नहीं है, शीघ्र मुझे शक्कर पिलाई जाए; कोई और दूसरा इलाज न किया जाए, मैं सिर्फ डायबीटिज का बीमार हूं।अगर परंपरा के विपरीत जाने से डायबिटीज होती हो तो हमें स्थिति बदलनी पड़े; सिर्फ कुछ लोगों को कार्ड रखना पड़े कि मैं डायबिटीज का बीमार नहीं हूं। बाकी तो सब लोग हैं ही फिर। और विवेकानंद खुद डायबिटिज से मरे। और तेतीस-चौतीस साल की उम्र में मरे और डरवाते रहे लोगों को। पहले कभी सोचा भी नहीं होगा कि इसी बीमारी में अपने को फंस जाना पड़ेगा। और परंपरा के बड़े भक्त थे।तुम कहते हो भगवानदास आर्य, कि 'अपने ज्ञान-चक्षुओं के आधार पर'. . . अगर तुम्हारे ज्ञान-चक्षु खुल गए तो भइया यहां सिर क्यों मार रहे हो! मुझे तो शक है कि अभी चर्म-चक्षु भी तुम्हारे खुले हैं कि नहीं। ज्ञान-चक्षु खुल गए तो फिर बचा क्या? और ज्ञान-चक्षु खुले—और दिखाई पड़ रही हैं ये बातें! तुम्हारे ज्ञान-चक्षु खुलें तो मैं विवेकानंद से प्रारंभिक रूप से प्रभावित रहा होऊंगा, यह दिखाई पड़ेगा? क्या लेना विवेकानंद से, क्या लेना मुझसे? ज्ञान-चक्षु खुलेंगे तो परमात्मा दिखाई पड़ेगा। ज्ञान-चक्षु खुलेंगे तो परम ज्योति का अनुभव होगा; या इन बातों का पता लगाते रहोगे! ज्ञान-चक्षुओं को भी इस काम में लगाओगे? इतिहास की खोजबीन करोगे, भूगोल का पता लगाओगे?ज्ञान-चक्षु का अर्थ क्या होता है? औपचारिक रूप से तो हम अंधों को भी कहते हैं—प्रज्ञा-चक्षु। दयावश। बेचारों की आंखें तो हैं नहीं। सीधा-सीधा किसी को अंधा कहो, अच्छा नहीं लगता। सत्य अच्छा लगता ही नहीं। अंधे को भी अंधा कहो तो वह नाराज हो जाए। तो अंधे को भी हमें शक्कर चढ़ा कर सत्य को कहना पड़ता है, कि आप हैं प्रज्ञा-चक्षु! अंधा भी बड़ा प्रसन्न होता है। कुल हम इतना ही कह रहे हैं कि इनके चर्म-चक्षु नहीं हैं। मगर चर्म-चक्षु नहीं हैं, यह कहने के लिए और एक झूठ बोलना पड़ रहा है कि इनके प्रज्ञा-चक्षु हैं, इनके ज्ञान-चक्षु हैं। काश इतना आसान होता कि अंधे होने से ज्ञान के चक्षु खुल जाते, तब तो जिनको चश्मे लगे हैं उनके थोड़े-थोड़े खुल गए समझो! धन्यभागी हैं वे। और जितना बड़ा नंबर हो चश्मे का उतने ही प्रसन्न होना कि परमात्मा से उतनी ही निकटता बढ़ रही है। जब चश्मे से भी कुछ दिखाई न पड़े तो समझना कि अब ज्ञान-चक्षु खुल गए। जब टटोलने लगो बिलकुल, द्वार-दरवाजे कुछ समझ में न आएं, तो समझना कि यही परमहंस अवस्था है।

भगवानदास आर्य, कुछ तो सोचो। ज्ञान-चक्षु! चर्म-चक्षु ही कहते तो ठीक था। मगर हमारी आदतें खराब हो गयी हैं। इस देश की बड़ी से बड़ी बीमारियों में एक बीमारी है कि हम बड़े-बड़े शब्दों का उपयोग करना सीख गए हैं। छोटे-मोटे शब्दों की तो हम बात ही नहीं करते। हम शब्दों में ऐसे कुशल हो गए हैं! शब्दों में ही जीते हैं और शब्दों से ही हम समस्याएं हल कर लेते हैं।महात्मा गांधी ने देखो न कैसे समस्याएं हल कर दीं! अछूत को हरिजन कह दिया, समस्या हल हो गयी। जैसे शब्द ही का मामला था! अछूत कहो तो समस्या थी। हरिजन कह दिया, अछूत भी बड़े प्रसन्न हुए। अंधे प्रज्ञा-चक्षु हो गए। हरिजन हम कहते हैं, जिसने हरि को जान लिया उसको। और गांधी ने कह दिया हरिजन उनको, जो-जो अछूत हैं। सस्तें में हरिजन हो गए। बुद्ध को हरिजन कहो, कृष्ण को हरिजन कहो, कबीर को कहो, तो समझ में आता है। लेकिन तुमने अछूतों को हरिजन कह दिया और समस्या हल कर ली! अच्छा शब्द दे दिया, नाम सुंदर दे दिया। सुंदर नाम और बस हम बड़े प्रभावित होते हैं।गरीबों को 'दरिद्रनारायण' कह दिया। लक्ष्मीनारायण के मंदिर होते थे।जमनालाल बजाज वर्धा में लक्ष्मीनारायण का मंदिर बना रहे थे। उस मंदिर को बनाते देख कर ही गांधीजी को यह खयाल आया कि अरे, यह तो अच्छा है—दरिद्रनारायण! बस तो दरिद्र नारायण हो गए। अब गरीब होने में एक अध्यात्म हो गया। अब

तुम गरीब हो तो बड़े गौरव की बात है। अछूत हो तो हरिजन हो, गरीब हो तो भगवान हो; अब और क्या चाहिए? अगर अछूत घर में और गरीब हुए, बस यह महा-सौभाग्य!उन्नीस सौ बावन में भारत की संसद में एक बड़ी समस्या थी, क्योंकि हिमालय में नीलगाय पायी जाती है—जंगली गाय है। और वह खेतों को काफी नुकसान पहुंचा रही थी, उसकी संख्या काफी बढ़ गयी थी। उसको मारा जाना जरूरी था। लेकिन सवाल यह था कि अगर नीलगाय को मारो तो हिंदू एकदम भड़क जाएंगे। 'गाय' शब्द ही काफी है उपद्रव मचाने के लिए। तो पंडित जवाहरलाल नेहरू ने सलाह-मशविरा लिया। लोगों ने कहा कि नाम बदल दो—नीलघोड़ा। बस नाम बदल दिया और नीलघोड़े मारे गए। और एक हिंदू ने कोई ऐतराज नहीं उठाया। नीलघोड़ा मारो, किसको क्या लेना-देना! नीलगाय मारो तो बस सारे शंकराचार्य खड़े हो जाते झंडा लेकर, कि नीलगाय मारी जा रही है, हिंदू धर्म पर अत्याचार हो रहा है! न तो वह नीलगाय है न नीलघोड़ा है; वह जंगली जानवर है, उसको नाम तुम जो देना चाहो दे दो। मगर 'नीलघोड़ा' दे कर मामला हल कर लिया।शब्दों से जीते हैं हम!तुम्हें भी क्या सूझी! ज्ञान-चक्षु के आधार पर. . .ज्ञान-चक्षु तो समाधि में खुलते हैं। बड़ी अपूर्व घटना है ज्ञान-चक्षु का खुलना। ज्ञान-चक्षु का अर्थ होता है कि भीतर निर्विचार घटित हुआ; मौन, परम मौन उतरा; क्वांरा शून्य उतरा! तब वहां से जो दृष्टि मिलती है, जो दर्शन मिलता है. . .मगर उस दर्शन में ये चीजें थोड़े ही प्रकट होंगी—कि किसी के घर में चोरी हो गयी तो तुम्हारे ज्ञान-चक्षुओं से तुम बता दोगे कि चोर कौन है।एक गांव में चोरी हो गयी थी। पुलिस खोजबीन करने आयी। बहुत खोजबीन की, कुछ पता न चला। आखिर गांव के लोगों ने कहा कि अब एक ही उपाय है ः हमारे गांव में एक लाल बुझक्कड़ हैं। ऐसी कोई चीज ही नहीं है जिसको वे न बूझ दें। लाल बुझक्कड़ के ज्ञान-चक्षु खुल गए होंगे—जब ऐसी कोई चीज ही नहीं है जिसको वे न बूझ दें! कैसी ही समस्या ले आओ, फौरन बूझ देते हैं। एक दफा रात गांव में हाथी निकल गया होगा। गांव के लोगों ने हाथी देखा नहीं था, सुबह लाल बुझक्कड़ को पूछा। पैरों के चिह्न थे गांव के धूल भरे रास्ते पर। लाल बुझक्कड़ ने बहुत सिर मारा, आंखें बंद कीं, ज्ञान-चक्षु खोले होंगे। फिर कहा कि एक ही बात है—'पांव में चक्की बांध के हरिणा कूदा होय'। पैर तो ऐसे ही थे जैसे चक्की। और हाथी किसी ने देखा नहीं था। तो एक ही बात है कि हरिणा पैर में चक्की बांध कर कूद गया होगा।गांव के लोग प्रसन्न हुए कहा कि देखो, इसको कहते हैं ज्ञान! तो लोगों ने कहा कि अब और कोई उपाय नहीं है, लाल बुझक्कड़ से पूछो। इंस्पेक्टर ने लाल बुझक्कड़ के दरवाजे पर जा कर दस्तक दी, बुलाया। लाल बुझक्कड़ ने कहा कि ऐसी कौनसी चीज है जो मैं न बता सकूं! मगर एकांत में बताऊंगा और इस शर्त से बताऊंगा कि तुम किसी और को मत बताना।इंस्पेक्टर ने कहा कि भइया, तू बता। शर्त हम तेरी मानते हैं, किसी को न बताएंगे कि तूने बताया है।
73 कहा कि यहां नहीं बताऊंगा, एकांत में चलो। ले गया दूर गांव के बाहर। थक गया इंस्पेक्टर भी; कहा, भई, कहां ले जा रहा है? अब यहां कोई भी नहीं दिखायी पड़ता, पशु-पक्षी भी नहीं हैं, झाड़-झंखाड़ भी नहीं हैं। अब तो बता दे!तो पास में ला कर मुंह कान के, कि जहां तक मैं समझता हूं, किसी चोर ने चोरी की है।. . .ज्ञान-चक्षु खुले हैं! और इतना पता लगाया कि चोर ने चोरी की है! इंस्पेक्टर ने सिर ठोंक लिया। कहा ः यह तू गांव में ही बता देता। और यह तो हमें ही मालूम है। यह किसको मालूम नहीं है!तुमने भी ज्ञान-चक्षुओं का खूब उपयोग किया! कुछ काम की बातों में लगाओ।रही मेरी बात। विवेकानंद मेरे लिए कभी भी प्रेरणा के कोई स्रोत नहीं हैं। विवेकानंद भारत में समादृत हुए, उसका कारण यह नहीं था कि वे कृष्ण के बाद दूसरे महापुरुष हैं। उसका कुल कारण इतना था कि विवेकानंद ने भारत के अहंकार को खूब पोषित किया। और भारत सदियों से, कोई दो हजार साल से गुलाम था। इसके अहंकार को बड़ी चोटें लग गयी थीं, बड़े घाव हो गए थे। यह चाहता था कि कोई इसके अहंकार पर मलहम-पट्टी करे। कोई इसको कहे कि तुम जगत-गुरु हो। कोई इसकी घोषणा करे कि तुम महानतम हो! कि इसी पृथ्वी पर अवतारों का जन्म हुआ है। कि यह धर्म-भूमि है, यह पुण्य-भूमि है। कोई घोषणा करे, हमारी अस्मिता को बल दे, हमारे अहंकार के झंडे फहराए। वह कार्य विवेकानंद ने

किया।यह काम राजनीति का काम है, धर्म का इससे कोई संबंध नहीं है। और विवेकानंद होशियार थे, राजनीति में कुशल थे। और अगर ठीक से उनकी जांच-पड़ताल करोगे तो तुम बहुत चकित हो जाओगे। उनके नाम से बहुत सी झूठी बातें प्रचारित की जाती रही हैं—कि उन्होंने भारत में राजनैतिक क्रांति को जन्म दिया, कि भारत के सभी राजनेताओं ने उनसे प्रेरणा ग्रहण की।विवेकानंद ब्रिटिश साम्राज्य के बड़े पक्षपाती थे और खुशामदी थे, क्योंकि होशियार आदमी थे। ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ उन्होंने एक शब्द नहीं कहा है, यह तुम्हें मालूम होना चाहिए; बल्कि उसकी बड़ी प्रशंसा की है। यहां तक कहा है कि ब्रिटिश साम्राज्य न होता तो भारत का पुनरुत्थान नहीं हो सकता था। यह ब्रिटिश साम्राज्य के कारण ही भारत का पुनरुत्थान हो रहा है। और यह भी कहा है कि राजनीति में भाग मत लेना। उन दिनों राजनीति में भाग लेने का अर्थ था राजनैतिक स्वतंत्रता के आंदोलन में भाग लेना। उन दिनों राजनीति में भाग लेने का अर्थ था ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ लड़ना। विवेकानंद ने अपने शिष्यों को, अपने संन्यासियों को, अपने अनुयायियों को बचाने की कोशिश की कि वे राजनीति में न उतरें। वे हर हालत में चाहते थे कि ब्रिटिश साम्राज्य के द्वारा उनको समर्थन मिले। और वह समर्थन मिला। ब्रिटिश साम्राज्य ने विवेकानंद के खिलाफ कोई काम नहीं किया, सब तरह समर्थन दिया। वे कोई भारतीय क्रांति के अग्रदूत नहीं हैं—पलायनवादी हैं। और खुशामदी हैं। और उन्होंने भारतीयों को समझाने की कोशिश की कि तुम्हारा असली काम अध्यात्म है; तुम तो सिर्फ उपनिषद, गीता, वेद इनकी घोषणा करो। यह भौतिक गुलामी है, इसमें क्या रखा है! यह तो सब माया है!विवेकानंद का यह मूल आधार रहा चिंतन का, कि यह जगत माया है। तो गुलामी क्या, स्वतंत्रता क्या? यह सब तो माया है, इसमें क्या उलझना? अध्यात्म की घोषणा करो!और गुलाम कौमें अध्यात्म की क्या खाक घोषणा करेंगी! जो अपनी स्वतंत्रता की घोषणा भी नहीं कर सकते, वे क्या परम स्वतंत्रता की घोषणा करेंगे?लेकिन विवेकानंद कुशल थे। तरकीब यह थी कि ब्रिटिश राज्य नाराज भी न हो, ब्रिटिश राज्य से कोई झंझट भी न लेनी पड़े और साथ ही साथ भारत के अहंकार को भी चोट न पहुंचे, भारत के अहंकार को भी फसलाया जा सके। तो भारत को उन्होंने समझाया कि तुम धार्मिक जगत-गुरु हो। तुम्हें और दूसरी उलझनों में नहीं पड़ना है। तुम्हें अपने धार्मिक जगत-गुरु होने की घोषणा करनी है जगत के ऊपर। तुम्हें धार्मिक साम्राज्य स्थापित करना है।और उन्होंने ब्रिटिश राज्य की बड़ी प्रशंसा की है कि रेल और टेलीफोन और पोस्ट आफिस, सब ब्रिटिश साम्राज्य लाया। विज्ञान ब्रिटिश साम्राज्य लाया, रास्ते, आवागमन के साधन ब्रिटिश साम्राज्य लाया। दवाइयां, ब्रिटिश साम्राज्य लाया। इसका हमें अनुग्रह मानना चाहिए। जैसे कि हम इतने नपुंसक हैं कि हम अपने हाथ से रास्ते भी नहीं बना सकते थे, रेलगाड़ी भी नहीं ला सकते थे! जैसे कि जिन-जिन देशों में ब्रिटिश साम्राज्य नहीं रहा वहां रेलगाड़ी नहीं पहुंची और वहां रास्ते नहीं बने और वहां टेलीफोन-तार नहीं है, और पोस्ट आफिस नहीं है! यह मूढ़तापूर्ण बात! मगर ब्रिटिश साम्राज्य की खुशामद हमेशा वे करते रहे। एक तरफ ब्रिटिश साम्राज्य की खुशामद करते रहे, जितना मक्खन लगा सकते थे ब्रिटिश साम्राज्य को लगाते रहे, और दूसरी तरफ आध्यात्मिक रूप से हिंदुओं के अहंकार को पुनरुज्जीवित करने की बात करते रहे। यह चालबाजी का लक्षण है। ये कोई बुद्धत्व के लक्षण नहीं हैं।विवेकानंद मेरी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं रखते। प्रेरणा-स्रोत तो बहुत दूर, मेरे लिए उनका कोई मूल्य भी नहीं है। हां, रामकृष्ण परमहंस देव का कुछ मूल्य है। उनकी कुछ बात करो तो समझ में आती है। रामकृष्ण उसी कोटि में हैं जिसमें राम और जिसमें कृष्ण; उसी कोटि में हैं जहां बुद्ध और महावीर। विवेकानंद ने रामकृष्ण के सिद्धांत को भ्रष्ट किया। विवेकानंद ने रामकृष्ण के सिद्धांत को उसकी ऊंचाइयों से उतार लिया, आकाश से उतार लिया, धूल-धूसरित कर दिया।मेरे लिए कोई प्रेरणा उनसे कभी नहीं मिली। हां, भगवानदास आर्य, तुम्हें उनसे प्रेरणा मिली होगी। सभी हिंदुओं को उनसे प्रेरणा मिली है। हिंदू अहंकार को इतनी उदघोषणा और किसने दी?तुम कहते हो, 'अपने ज्ञान-चक्षुओं के आधार पर जब भी आपको पाया तो दो रूपों में। आपके आरंभिक जीवन के प्रेरणा-स्रोत स्वामी विवेकानंद ही रहे होंगे?' मुझसे तो पूछ लेते, निर्णय ही कर लिया!. . .'तत्पश्चात बुद्ध होंगे।' वह भी तुमने निर्णय कर लिया।

जैसे कि प्रेरणा स्रोत होना ही चाहिए कोई!प्रेरणास्रोत तो तुम्हारे भीतर बैठा हुआ है। जिस दिन तुम अपने भीतर झांक लेते हो उसी दिन बुद्ध को समझ पाओगे, उसी दिन महावीर को भी, उसी दिन मुहम्मद को भी, उसी दिन जीसस को भी। उसके पहले तुम किसी को भी नहीं समझ पाओगे। उसके पहले तुम जो भी समझोगे वह गलत होगा। उसके पहले तुम्हारी ही समझ काम करेगी न! तुम्हारी समझ ही तुम आरोपित करोगे।मैंने किसी बाहरी व्यक्ति में प्रेरणा खोजने की कभी कोई चेष्टा नहीं की। मैं अगर बुद्धत्व तक पहुंचा हूं तो किसी से प्रेरणा लेकर नहीं, बल्कि परम नास्तिकता के मार्ग से पहुंचा हूं। सबको इनकार करके पहुंचा हूं। मेरा प्रारंभिक जीवन नास्तिक का जीवन है, आस्तिक का जीवन ही नहीं है। और मैं मानता हूं कि जिसको सच में आस्तिक होना हो उसे पहले नास्तिकता से गुजरना जरूरी है। क्योंकि जिसे 'नहीं' कहने की सामर्थ्य नहीं, उसके 'हां' में कुछ बल नहीं होता। और जिसने कभी संदेह नहीं किया है—प्रखरता से, परिपूर्णता से, समग्रता से—उसकी श्रद्धा दो कौड़ी की है।मैं किसी पर श्रद्धा करके यहां नहीं पहुंचा हूं। मैं सब पर अश्रद्धा करके यहां पहुंचा हूं। मैंने सबको इनकार किया है। मेरा प्रारंभिक जीवन विरोध का जीवन रहा है, नकारात्मक जीवन रहा है। अगर बुद्ध को पढ़ता तो बुद्ध में भी गलतियां खोजने की ही चेष्टा रहती। महावीर को पढ़ता तो महावीर में गलतियां खोजता। कृष्ण को पढ़ता तो कृष्ण में गलतियां खोजता। मुझसे सभी नाराज थे।मेरे गांव में कोई संन्यासी अगर प्रवचन देने आते थे तो संयोजक मुझसे प्रार्थना कर जाते थे कि आप न आना, क्योंकि झंझट हो जानी निश्चित थी। मगर मैं बेचूक मौजूद होता था। और मैं बिना बीच में खड़े हुए नहीं रह सकता था। विवाद होना सुनिश्चित था।मेरा प्रारंभिक जीवन नकार का जीवन है। जहां तक इनकार किया जा सकता था, मैंने इनकार किया। इनकार करते-करते उस जगह आया जहां इनकार करने को भी कुछ न बचा। अगर ठीक से समझो तो यही नेति-नेति का अर्थ है। नेति-नेति नकार की पराकाष्ठा है—न यह न वह। अगर ठीक से समझो तो यही उपनिषद है—नकार। और जब तुम इनकार करते-करते-करते उस जगह आ जाते हो जहां इनकार करने को भी कुछ नहीं बचता, एक विराट शून्य ही रह जाता है—तभी तुम्हारे भीतर अंतर-वाणी गूंजती है। उस शून्य में अनाहत का नाद होता है। उस शून्य में ही पूर्ण का अवतरण होता है।तो मैंने किसी से प्रेरणा नहीं ली। हां, जब पूर्ण का अवतरण हुआ, जब मेरा अंतर-आकाश प्रकाश से भर गया, तब मैंने जाना कि ऐसा ही बुद्ध को हुआ था; तब मैं पहचाना कि ऐसा ही महावीर को हुआ था; तब कबीर में भी मुझे वही झलक मिली—और जीसस में और जरथुस्त्र में और लाओत्सु में। लेकिन मैं उनका गवाह हूं, वे मेरे प्रेरणास्रोत नहीं हैं। इस बात को मैं बहुत स्पष्ट कर देना चाहता हूं। उनकी प्रेरणा पाकर मैं यहां नहीं पहुंचा हूं। यहां पहुंच कर मैंने उनको गवाही दी है कि हां वे ठीक हैं। मैंने जान कर कहा है कि वे ठीक हैं। मैंने उनको मानकर ठीक को नहीं जाना है। जाना पहले है, फिर उनको ठीक कहा है। मैं उनका प्रमाण हूं, उनका गवाह हूं, उनका साक्षी हूं। अब मैं कह सकता हूं कि वे ठीक हैं।लेकिन विवेकानंद कहीं भी नहीं आते। रामकृष्ण ठीक हैं, बिलकुल ठीक हैं, सौ प्रतिशत ठीक हैं। विवेकानंद की कोई गिनती नहीं।यह सच है कि बिना विवेकानंद के रामकृष्ण की कोई ख्याति न होती। शायद दुनिया में कोई उनको जान भी न सकता। यह भी सच है कि विवेकानंद ने रामकृष्ण को बड़े तर्कयुक्त ढंग से प्रस्तावित किया। लेकिन उस प्रस्तावना में ही रामकृष्ण का मूल खो गया। क्योंकि वह जो तर्कयुक्तता है, उसी ने तो मार डाला। रामकृष्ण हैं दीवाने, मस्ताने, परवाने! उनको तुम तर्कबद्ध नहीं बना सकते। हां, तर्कबद्ध बनाने से लोगों की समझ में आ जाएंगे। लोगों को ही समझाना हो तो ठीक। मगर तर्कबद्ध बनाने में उनका जो मूल स्वर है वह खो जाएगा; उनकी जो गरिमा है, उनकी जो महिमा है, नष्ट हो जाएगी।ऐसा ही समझो कि एक दीया जला और अंधे को समझाना है, तो अंधे को समझाने के लिए तुम्हें कुछ उपाय करने पड़ेंगे।रामकृष्ण एक कहानी कहा करते थे। वे कहते थे : एक अंधा आदमी अपने मित्र के घर पर निमंत्रित था भोजन के लिए। उसने पहली दफा खीर खायी। गरीब आदमी था। सुंदर खीर थी, स्वादिष्ट खीर थी। गुलाब की पंखुड़ियां डाली गयी थीं उसमें और केशर थी उसमें और पिस्ता-बादाम थे उसमें। और बहुत प्रभावित हुआ। और उसने कहा : 'यह क्या है? मुझे कुछ समझाओ।'पास में

बैठे हुए एक पंडित ने, जो कि निमंत्रित था भोजन के लिए, उसने कहा : 'अरे, यह समझ में नहीं आता! यह खीर है, दूध की बनी हुई।'अंधे आदमी ने कहा 'दूध क्या है? दूध का रंग क्या है, ढंग क्या है? कुछ दूध की परिभाषा दो।'पंडित तो पंडित! पंडित तो अंधों से अंधे होते हैं। पंडित समझाने बैठ गया। उसने इसको चुनौती मान ली। पंडित ने कहा : 'दूध, दूध तुझे पता नहीं! अरे बिलकुल सफेद रंग का होता है।'अब अंधे आदमी ने कहा कि तुम पहेलियां बुझा रहे हो। पहला प्रश्न हल नहीं होता, तुम और नए प्रश्न खड़े कर देते हो। अब यह सफेदी क्या है? मगर पंडित भी कोई हारने वाला था! अंधे से कुछ हारने वाला था! अंधे से कुछ पिछड़ने वाला था! उसने कहा : 'सफेद रंग नहीं मालूम! बगुला देखा बगुला? ठीक बगुले के रंग जैसा।'अंधे आदमी ने कहा कि बात और उलझती जा रही है। खीर से चले थे, बगुले पर पहुंच गए। बात और दूर की हुई जा रही है। बगुला कैसा होता है?मगर पंडित तो पंडित, उनके तो ज्ञान-चक्षु खुले होते हैं! वह यह भी न देख सका कि यह अंधा आदमी है, उसको मैं बगुला समझा रहा हूं, यह कैसे समझेगा! उसने तरकीब निकाली। उसने कहा कि ऐसे नहीं चलेगा, बातचीत से नहीं चलेगा, तुझे कुछ अनुभव करवाना पड़ेगा। ला तेरा हाथ मेरे हाथ में दे।एक हाथ में हाथ पकड़ा, दूसरा हाथ बगुले की गर्दन की तरह मोड़ा और अंधे के हाथ को लेकर दूसरे हाथ पर फेरा और कहा : 'देख इस तरह बगुले की गर्दन होती है!'अंधे ने कहा : 'अब कुछ बात कही। अब मैं समझ गया कि खीर कैसी होती है। मुड़े हुए हाथ की तरह होती है।'हम हंसते हैं, मगर अंधा क्या करे? अंधे पर दया करो। उसकी गलती कहां? बात बिलकुल तर्कयुक्त है। खीर के लिए ही सवाल उठा था। खीर को समझाने के लिए ही बगुले तक बात पहुंची थी। फिर बगुला, कुछ थोड़ा-थोड़ा उसकी समझ में आया कि ऐसी उसकी गर्दन होती है—मुड़े हुए हाथ की तरह। तत्क्षण उसने निष्कर्ष ले लिया कि खीर मुड़े हुए हाथ की तरह होती है। बात बड़ी दूर हो गयी। कहां खीर! कहां मुड़ा हुआ हाथ! क्या लेना-देना!विवेकानंद ने वही किया। रामकृष्ण खीर की बात कर रहे हैं, विवेकानंद मुड़े हुए हाथ की। मगर अंधों को मुड़ा हुआ हाथ समझ में आ रहा है। और अंधों की जमात है, अंधों की भीड़ है। रामकृष्ण तुम्हें समझ में नहीं आएंगे, विवेकानंद समझ में आ जाएंगे। क्योंकि रामकृष्ण बोलते हैं ऊंचाइयों से और उन ऊंचाइयों से, जहां भाषा अपने अर्थ खो देती है। और विवेकानंद बोलते हैं वहीं से जहां तुम खड़े हो। तुम्हारी ही भाषा, तुम्हारा ही तर्क, तुम्हारा ही मस्तिष्क उनके पास भी है। तुमसे थोड़ा निफुण, थोड़ा कुशल, थोड़ा ज्यादा सुशिक्षित। वे वेद का उल्लेख कर सकते हैं, उपनिषद के उद्धरण दे सकते हैं। और तुम्हारे सामने जो अतर्क्य है, जिसको तर्क में बांधा भी नहीं जा सकता, बांधा कभी गया नहीं, उसको तर्क में बांधने की चेष्टा कर सकते हैं। और तुम्हें खूब जंचेगी बात। तुम कहोगे : जो बात कभी समझ में न आती थी, समझा दी। और तुम्हें पता ही न चलेगा कि इस समझाने में वह बात खो ही गयी जिसको समझाने चले थे।परमात्मा समझाया नहीं जा सकता; केवल जाना जा सकता है—अनुभव है। उपनिषद भी नहीं समझा सकते, वेद भी नहीं, कुरान भी नहीं, बाइबिल भी नहीं, कोई भी नहीं समझा सकता। सब समझाने वाले हार गए हैं। लेकिन पंडित समझाए चले जाते हैं।और विवेकानंद निश्चित ही महापंडित हैं। रामकृष्ण बिलकुल बेपढ़े-लिखे गंवार, कबीर जैसे। दूसरी कक्षा तक पढ़े, इससे ज्यादा उनकी कोई समझ नहीं। विवेकानंद विश्वविद्यालय के स्नातक, तर्कनिष्ठ; आधुनिक मनुष्य के मन की क्या गतियां हैं, उनके संबंध में सुपरिचित। ठीक उनका प्रभाव पड़ा। मगर प्रभाव अंधों पर पड़ा। जो जानते हैं उन पर विवेकानंद का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। हां, रामकृष्ण जरूर उन्हें आंदोलित करेंगे।रामकृष्ण असली गुलाब हैं। विवेकानंद तो कागज के फूल हैं। गुलाब जैसे लग सकते हैं, गुलाब हैं नहीं। न सुगंध है रामकृष्ण की, न वह ताजगी है, न वह रस है, न पृथ्वी से कोई जोड़ है, न आकाश की हवाओं से, न चांद-तारों से। शाब्दिक जाल है। और शब्दों के कुशल चितेरे हैं। इससे मैं इनकार नहीं करूंगा कि शब्दों के कुशल चितेरे हैं, सुंदर व्याख्याता हैं। लेकिन इतने भी नहीं जितने कि तुम मान बैठे हो। तुम्हारी मान्यता तो तुमने बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कर ली है।और अमरीका में जो प्रभाव पड़ा—सर्वधर्म संसद में—उस प्रभाव के वक्तव्य में भी कुछ ऐसी खास बात नहीं है। मगर लोग कैसी-कैसी बातों से प्रभावित होते हैं, यह भी

सोच लेने जैसा है। विवेकानंद से पहले तो इसलिए प्रभावित हुए लोग. . .जो पहला प्रभाव पड़ा, वही तुम्हें बता देगा कि लोगों की कैसी अवस्था है। पश्चिम में तो ईसाइयत ने धर्म को बिलकुल ही औपचारिक बना दिया है. . .रविवारीय धर्म। उसका जीवन से कोई संबंध नहीं है; रविवार को बस चर्च में हो आओ। वह भी एक सामाजिक कृत्य है। थोथा कर दिया बिलकुल।. . .विवेकानंद को जो पहला सम्मान मिला, जैसे ही वे खड़े हुए और पहले शब्द बोले कि सारी संसद खड़ी हो गयी और सारे लोगों ने तालियां बजा कर स्वागत किया। किस बात पर, तुम बड़े हैरान होओगे! सिर्फ उन्होंने छोटी सी बात कही थी, जो कि तुमको बिलकुल प्रभावित नहीं करेगी, जो कि भारत में हरेक राजनेता करता है, हर कोई करता है। चौरस्ते पर खड़े हैं—'भाइयो एवं बहनो!' इससे तुम प्रभावित होते हो? इतना सुनकर ही चल पड़ते हो कि हो गया बहुत। विवेकानंद ने वही किया, लेकिन लोग बड़े प्रभावित हुए। 'ब्रदर्स एंड सिस्टर्स!' अमरीका में कोई धर्मगुरु इस तरह बोलता ही नहीं। धर्मगुरु बोलता है बड़ी ऊंचाई से; वह है पुण्यात्मा और कहां तुम—पापी, नरक जाने वाले! तुमसे कहेगा—'भाइयो एवं बहनो?' अब विवेकानंद ने सड़ी-सड़ायी बात कही; यहां तो सड़ी-सड़ायी है। यहां कौन नहीं कहता भाइयो एवं बहनो! विवेकानंद तो बेचारे यहीं की परंपरा निभा रहे थे। उनको क्या पता था कि इसमें ताली बज जाएंगी, लोग एकदम खड़े हो जाएंगे। इस बात का इतना प्रभाव पड़ा। कारण? कारण यह था कि सदियों से पश्चिम में किसी ने संबोधन नहीं किया था इतने प्रेमपूर्वक ढंग से, इतनी निकटता से कि 'भाइयो एवं बहनो।'फिर तो एक-एक शब्द लोगों के हृदय में उतरता गया। हालांकि कोई शब्दों में खूबी नहीं है, कुछ खास बात नहीं है। यहां तो पान की दुकान पर भी ब्रह्मचर्चा चल रही है! यहां तो जो देखो वही ब्रह्मज्ञानी है। ऐसा आदमी मिलना मुश्किल है जिसके कि ज्ञान-चक्षु न खुल गए हों।मुझ पर कोई विवेकानंद का, या किसी और का, इस तरह का प्रभाव नहीं कि मैं किसी से प्रेरणा लिया हूं। प्रेरणा बाहर से जब तक लोगे तब तक धार्मिक हो ही न पाओगे। बाहर से आयी प्रेरणा तुम्हें बाहर से ही बांधे रखेगी। धार्मिक होने का मौलिक सिद्धांत है : बाहर से सारी प्रेरणाएं तोड़ दो। अपने भीतर, निपट अपने भीतर, सारे सेतु, सारे संबंध तोड़ कर डूब जाओ। उसकी प्रक्रिया नकार है।तो मैंने उपनिषद को भी कह दिया कि नहीं, और वेदों को भी कह दिया नहीं, और बाइबिल को भी कह दिया, नहीं और बुद्ध को और महावीर को भी कह दि़या नहीं। निश्चित ही इन को नहीं कहना कोई आसान काम नहीं था। कठिन काम था। इनको नहीं करना अपने ही प्राणों के हिस्सों को अपने से अलग करना है। ये सब हमारे भीतर इस तरह समा गए हैं! इनसे ही तो हमारा चित्त निर्मित हुआ है। इन्होंने ही तो इ□टें रखी हैं हमारे चित्त की—और इनको इनकार करना! और इनको इनकार करने में बड़ा खतरा है, क्योंकि इनको जब तुम बिलकुल इनकार कर दोगे तो तुम्हारे पास पकड़ने को कोई सहारा भी न रह जाएगा, तुम बिलकुल बेसहारे हो जाओगे। बिलकुल असहाय! अथाह सागर है और नौकाएं सब इनकार कर चुके! लगेगा अब डूबे तब डूबे। वैसी ही दशा कई वर्षों तक मेरी रही कि अब डूबा तब डूबा।मेरे अध्यापक समझते थे कि मैं विक्षिप्त हो गया हूं, या होने के करीब हूं। क्योंकि मेरे अध्यापकों से भी विश्वविद्यालय में यही उपद्रव था। किसी बात पर मैं राजी नहीं हो सकता था। छोटी-मोटी बात पर राजी नहीं हो सकता था, बड़ी बातों की तो बात ही छोड़ दो। नकार मेरा ऐसा था कि हर छोटी बात पर था, हर बात पर था। मेरे शिक्षक मुझ से थक गए थे। मुझे विश्वविद्यालयों से निकाल दिया गया। मुझे कोई नया विश्वविद्यालय जगह देने को राजी नहीं था। कारण यह था कि मैं लोगों को अड़चन दे रहा था। मैं खुद तो पागल जैसी हालत में था, उनको भी पागल किए दे रहा था। ऐसे सवाल मैं पूछता था जिनके कि उत्तर वे बेचारे देते भी तो कहां से देते! आज मैं जानता हूं कि वे देते भी तो कहां से देते!जैसे मैंने अपने एक प्रोफेसर को पूछा कि आप जिंदा हैं, इसका प्रमाण क्या? वे अपने चारों तरफ देखने लगे। क्या प्रमाण, और वे प्रमाण दे भी नहीं सकते थे, क्योंकि वे वेदांत पढ़ाते थे—जगत माया है! तो क्या पता तुम भी माया हो, मैंने उनसे कहा। यह हो सकता है मैं एक सपना देख रहा हूं कि तुम पढ़ा रहे हो और कोई न हो वहां। तुम भी हो सकता है सपना देख रहे हो कि मैं यहां पढ़ रहा हूं और कोई भी न हो यहां।उन्होंने कहा कि हो सकता है। तो मैंने कहा : 'तुम भी घर जाओ, मैं भी

घर जाऊं। क्यों सिर पचा रहे हो? सब माया है! और तुम माया समझाते हो और घंटा बजता है और सीधे क्लास में आ जाते हो। पहले सोचा करें कि घंटा जो बज रहा है, बज रहा है? सच में बज रहा है? इसका कोई प्रमाण है? और घंटा बजता है फिर और एकदम तुम बंद कर देते हो। तुम मानते हो घंटे में। और तुम कह रहे हो जगत माया है।'निषेध कर-करके मैं उस जगह पहुंच गया जहां बिलकुल विक्षिप्तता जैसी अवस्था हो जाए। उस विक्षिप्तता से गुजरना ही होता है। वह विक्षिप्तता अनिवार्य है। मैं उसी को त्याग कहता हूं। तपश्चर्या कहता हूं। धूनी लगाकर बैठ गए, यह कोई तपश्चर्या नहीं है। राख मल ली शरीर पर, यह कोई तपश्चर्या नहीं है। सच तो यह है कि ठंड लग रही हो तो राख मलकर बैठ जाओ, ठंड नहीं लगेगी। राख जो है वह सारे तुम्हारे रोओं को बंद कर देती है, जहां से हवा अंदर जाती है। तो वे जो राख लपेटे बैठे रहते हैं ठंड के दिनों में, तुम यह मत समझना कि तपश्चर्या कर रहे हैं; वे कंबल ओढ़े हैं। कंबल में से भी हवा चली जाए, राख में से हवा भी नहीं जा सकती। क्योंकि तुम सांस से ही हवा नहीं लेते हो, तुम्हारा रोआं-रोआं हवा ले रहा है, करोड़ों रोएं हवा ले रहे हैं। राख से बढ़िया कोई चीज नहीं है। खूब खोजा, जिनके ज्ञान-चक्षु खुल गए थे उन्होंने!. . .राख लपेट कर बैठ गए! लोगों को लगता है कि अहा! कैसा त्याग किया—कपड़े न लत्ते! महात्यागी! और वे सिर्फ एक साधारण-से वैज्ञानिक सिद्धांत का उपयोग कर रहे हैं कि रोओं को बंद कर दिया।वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर तुम्हारी सांस चलती रहे, नाक खुली रहे और सारे रोओं को बिलकुल कोलतार से बंद कर दिया जाए तो तुम तीन घंटे में मर जाओगे, तीन घंटे से ज्यादा जिंदा नहीं रह सकते। इतना जरूरी है श्वास का भीतर जाना सारे अंगों से। तुम्हारा एक-एक कोष्ठ शरीर का श्वास चाहता है, आक्सीजन चाहता है।कोई कांटों पर लेटा हुआ है। तुम सोचते हो यह तपश्चर्या है? तो तुम जरा एक छोटा सा प्रयोग करना। अपने बच्चे को कहना कि सुई ले ले और मेरी पीठ के पीछे खड़ा हो जा। अभी सर्दी के दिन हैं, धूप में बैठ जाना और कहना कि मेरी पीठ पर जगह-जगह सुई चुभा। और तुम चकित होओगे, तुम्हारी पीठ पर ऐसे बहुत से स्थान हैं जहां बच्चा सुई चुभाएगा और तुमको पता ही नहीं चलेगा। तुम्हारी पूरी पीठ संवेदनशील नहीं है। कुछ स्थानों पर पता चलेगा, कुछ पर पता ही नहीं चलेगा, जिन-जिन स्थानों पर सुई के चुभने का पता ही नहीं चलता, बस उसी ढंग से कांटों की सेज बनायी जाती है। वह थोड़ी-सी कुशलता की बात है, थोड़े अभ्यास की बात है, ढंग से लेटने की बात है—कि बस कांटे वहां छुएं पीठ को जहां चुभन पता ही नहीं चलती। वहां कोई तंतु ही नहीं है जिससे चुभन तुम तक पहुंच सके। फिर धीरे-धीरे अभ्यास हो जाता है। मजे से लेटे रहो कांटों की शैया पर। और लोग समझेंगे कि क्या गजब की साधना कर रहे हो! और तुम केवल एक सीधे-से शारीरिक नियम का उपयोग कर रहे हो। ये कोई तपश्चर्याएं नहीं हैं। न ही उपवास कोई तपश्चर्या है।अ्रीका में बहुत-से कबीले हैं जो दिन में एक ही बार भोजन करते हैं। चौबीस घंटे में एक ही बार। जब उनको पहली दफा पता चला कि दुनिया में और लोग दो बार करते हैं, कुछ लोग तीन बार और अमरीकी हैं जो पांच बार। और पांच बार के बीच-बीच में जो-जो f179ज तक जाते हैं, उसकी कोई गिनती ही नहीं। तो उनको भरोसा ही नहीं आया। मगर उन्होंने कभी यहनहीं सोचा कि वे कोई त्याग कर रहे हैं कि एक ही बार भोजन कर रहे हैं।शरीर के समायोजन की क्षमता इतनी है कि तुम एक बार भोजन करो तो वह धीरे-धीरे एक ही बार में उतना भोजन लेने लगता है जितना चौबीस घंटे के लिए जरूरी है। इसलिए जो लोग एक बार भोजन करेंगे उनकी तोंदें बड़ी हो जाएंगी। तुम जैन मुनियों को देखो। जैन मुनियों की तोंद तो होनी ही नहीं चाहिए। जैन मुनि और तोंद का संबंध ही नहीं होना चाहिए। क्योंकि जैन मुनि तो बेचारा उपवास करता है, लंबे उपवास करता है—दो-दो तीन-तीन दिन के, फिर पंद्रह-पंद्रह दिन के भी उपवास करता है। मगर उसकी तोंद क्यों बढ़ जाती है? क्योंकि जब वह दो-तीन दिन के बाद भोजन करता है तो फिर डटकर ही करता है।तुम देखोगे कि जहां अकाल पड़ जाता है वहां बच्चों के पेट बड़े हो जाते हैं। फोटुएं तुमने अखबारों में देखी होंगी। क्यों? अकाल पड़ा है, बच्चों के पेट बड़े क्यों हैं? इसीलिए कि जब मिल जाता है तब वे इतना कर जाते हैं जितना कि दो-चार-आठ दिन के लिए जरूरी है, नहीं तो जिएंगे कैसे? जैसे-जैसे कोई देश समृद्ध होता

जाता है वैसे-वैसे उस देश में तोंद कम होती जाती है। जब भोजन ठीक से उपलब्ध होने लगता है तो तोंद समाप्त हो जाती है, अपने आप समाप्त हो जाती है। क्योंकि उसकी कोई जरूरत नहीं है। जब जरूरत होगी तब भोजन कर लेंगे।और आदमी शाकाहारी है। आदमी की जो पेट की व्यवस्था है वह बताती है कि वह शाकाहारी है। उसकी जो अंतड़ियां हैं पेट की, वे बताती हैं कि वह शाकाहारी है। क्योंकि मांसाहारी जानवरों के पेट की अंतड़ी छोटी होती हैं और शाकाहारी जानवरों के पेट की अंतड़ियां बहुत बड़ी होती हैं। मनुष्य के पेट की अंतड़ियां बहुत बड़ी हैं, कई फीट लंबी हैं। गुड़री मार कर बैठी हैं। क्योंकि मांस तो पचा हुआ भोजन है। वह दूसरे ने पचा लिया, तब तो मांस बना। इसलिए छोटी अंतड़ी काफी है।सिंह के पेट की अंतड़ी बहुत छोटी होती है, इसलिए सिंह चौबीस घंटे में एक ही बार भोजन करता है। कर ही नहीं सकता दो बार करना भी चाहे तो। उसकी अंतड़ी में जगह नहीं होती। और एक ही बार का भोजन पर्याप्त हो जाता है, क्योंकि पचा हुआ है उसको पचाने का काम खुद भी नहीं करना पड़ता। और भारी भी है मांसाहार, क्योंकि पूरा का पूरा भोजन पचा हुआ है। उसमें कुछ भी व्यर्थ नहीं है जो फेंकना है बाहर। जब तुम शाक-सब्जी खाते हो उसमें सत्तर प्रतिशत तो बेकार है, कूड़ा-करकट है; उसे बाहर फेंकना पड़ेगा। तुम्हें बड़ी अंतड़ी चाहिए, क्योंकि सत्तर प्रतिशत जगह तो व्यर्थ की चीजें ले लेंगी, तीस प्रतिशत ही सार्थक चीजों के लिए जगह बचेगी।इसलिए जितने शाकाहारी जानवर हैं, जैसे बंदर, वह दिन भर तुम देखो चल रहा है काम उनका। इस झाड़ से उस झाड़ पर. . .। अमरीकी उसी अवस्था में आ गए हैं। सुबह-सुबह—ब्रेकफास्ट. . .फास्ट किया ही नहीं है—और ब्रेकफास्ट! अजीब आदमी हैं। लेकिन वे उसको फास्ट कहते हैं—रात जो बारह बजे भोजन बंद कर दिया, सो गए और फिर सुबह जो आठ बजे उठे तो आठ घंटे का फास्ट हो गया न! वह आठ घंटे का उपवास हो गया। अब उपवास-भंग, ब्रेकफास्ट। फिर दिन भर यह प्रक्रिया चलती है बारह बजे रात तक।शरीर के समायोजन की व्यवस्थाएं हैं।जितना समृद्ध देश होगा उतनी ही तोंदें कम होंगी। जितना गरीब देश होगा उतनी ही तोंदे ज्यादा होगी। और साधु-संन्यासियों की तोंदों का तो कहना ही क्या! तुमने मुक्तानंद के गुरु नित्यानंद की तोंद देखी? अगर नहीं देखी तो दुनिया का दसवां चमत्कार नहीं देखा! तो तुम्हारा जीवन अकारथ है! तस्वीर में ही देख लेना, मगर नित्यानंद की तोंद जरूर देख लेना। तोंदें तो बहुत हुइ मगर नित्यानंद, कोई उनका मुकाबला नहीं कर सकता। साधारणतः आदमी की तोंद होती है; नित्यानंद को देखकर लगता है तोंद को आदमी है। और नित्यानंद—बड़े उपवासी हैं! उपवास करोगे, यह होनेवाला है, यह स्वाभाविक है। ये कोई तपश्चर्याएं नहीं हैं। तपश्चर्या एक ही है : नकार कर दो बाहर से सारे ज्ञान को, विच्छिन्न कर लो अपने को—सारे सामाजिक सम्मोहन से, सारे सामाजिक संस्कारों से। हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई, यहूदी कोई भी संस्कार हो, सारे संस्कारों से अपने को मुक्त कर लो; यही तपश्चर्या है। कठिन है, कठोर है। कपड़े उतारने जैसी नहीं है, चमड़ी उघाड़ने जैसी है। और जब तुम सारे संस्कारों से नकार कर दोगे तब तुम्हारे भीतर एक ऐसा महाशून्य घिरेगा कि तुम घबराओगे कि मौत आयी, कि अब मरा, पकड़ने को कुछ भी नहीं रहा, कोई सहारा न रहा! और जब तुम पूरे बेसहारा हो जाते हो तभी परमात्मा का सहारा मिलता है। जब तक तुम खुद ही अपना सहारा पकड़े हुए हो तो तब तक परमात्मा का सहारा नहीं मिलता।कृष्ण के जीवन में एक प्यारी घटना है। कहानी ही होगी, मगर बड़ी सत्य के संबंध में सूचक है। वे भोजन करने बैठे हैं। रुक्मिणी थाली पर पंखा झल रही है। बीच भोजन में उठ खड़े हुए और एकदम भागे दरवाजे की तरफ। रुक्मिणी ने कहा : 'क्या हुआ?' हाथ का कौर छोड़ ही दिया है थाली में। उत्तर नहीं दिया रुक्मिणी को। जैसे कि एकदम घर में आग लग जाए! और फिर दरवाजे पर जा कर ठिठक गए, क्षण भर खड़े रहे, फिर वापिस लौट आए, वापिस थाली पर बैठ कर भोजन करने लगे। रुक्मिणी ने पूछा : 'मेरी कुछ समझ में नहीं आया। इतनी तेजी से भागे जैसे घर में आग लगी हो, जैसे भूकंप आ गया हो! और फिर चुपचाप लौट आए दरवाजे की देहरी से। हुआ क्या! इसका राज क्या है?'कृष्ण ने कहा : 'राज कुछ ज्यादा नहीं, छोटा-सा है। मेरा एक भक्त एक रास्ते से गुजर रहा है। लोग उसको पत्थर मार रहे हैं। उसके माथे से लहू की धार बह रही है। मगर वह है कि अपना

इकतारा बजाए ही जा रहा है—उसी मस्ती में, उसी मस्ती में, जिसमें पहले बजा रहा था जब लोग पत्थर नहीं मार रहे थे। खून बह रहा है और इकतारा बज रहा है और वह मुझे पुकार रहा है। उसकी असहाय अवस्था देख कर मुझे भागना पड़ा। भोजन मैं पूरा नहीं कर सका।'रुक्मिणी ने कहा : 'फिर दरवाजे से लौट क्यों आए?'उन्होंने कहा कि जब तक मैं दरवाजे पर पहुंचा, उसने अपना इकतारा तो एक तरफ फेंक दिया है और पत्थर उठा लिए। उसने कहा कि आ जाओ अब कौन-कौन हैं। अब बहुत हो गया पुकारते-पुकारते कृष्ण-कृष्ण। अब मैं ही निपटे लेता हूं। अब वह खुद ही निपट रहा है, अब मेरी कोई जरूरत न रही।इस कहानी को मैं बहुत अर्थपूर्ण मानता हूं। तुम जब तक कुछ भी सिद्धांत, कुछ भी विचार, कुछ भी धारणा, कुछ भी शास्त्र पकड़े रहोगे, तब तक परमात्मा की तुम्हें जरूरत ही नहीं, तुम खुद ही काफी समझदार हो। उसकी समझ प्रवेश पा सके, इतना स्थान भी तुममें नहीं है। जब तुम अपनी सारी समझ को हटा कर रख दोगे और तुम कहोगे मैं नाकुछ हूं, शून्य हूं, मुझे कुछ भी पता नहीं है—नकार वहीं ले आता है जहां अपने अज्ञान का पता चलता है और ज्ञान बिलकुल नहीं बचता। घनी अमावस की रात हो जाती है, गहन अंधकार छा जाता है। लेकिन जितना गहन अंधकार है उतनी ही सुबह करीब है। और जब तुम बिलकुल बेसहारा हो तब उसका हाथ उतरेगा और तुम्हें सहारा देगा। जब तुमने सब नावें छोड़ दीं तब वह स्वयं तुम्हारी नाव बन जाता है, स्वयं तुम्हारा माझी बन जाता है।मैंने किसी से कोई प्रेरणा नहीं ली है। पढ़ा मैंने सबको, मैंने सबको इनकारा। और कोई उपाय भी न था। जिसको मैं नहीं जानता, उसे मैंने कभी स्वीकार नहीं किया। जो मेरा अनुभव नहीं है उसे मैं क्यों स्वीकार करूं? मैंने कभी विश्वास पर अपने जीवन की भित्ती नहीं रखी। संदेह मेरी प्रक्रिया रही। और तुम जान कर चकित होओगे कि संदेह करते-करते मैं परम श्रद्धा को पहुंचा। संदेह ने रास्ता साफ कर दिया, संदेह सीढ़ी बन गया। संदेह ने काट दिया जाल सब व्यर्थ के विश्वासों का।और जब हृदय बिलकुल शून्य हो जाता है, तो इस प्रकृति का एक नियम है कि यह शून्य को तत्क्षण भर देती है। जहां भी शून्य होता है वहीं भरने पहुंच जाती है। अगर बाहर का शून्य हो तो भी भर दिया जाता है। अगर भीतर का शून्य हो तो भी भर दिया जाता है। भीतर का शून्य परम चैतन्य से भर जाता है।प्रेरणा किसी से लेना मत, अगर परमात्मा को चाहते हो तो। हां, जिस दिन मिल जाएगा परमात्मा उस दिन तो तुम्हें कहना ही होगा। जिन्होंने जाना है उन्हें स्वीकृति देनी ही होगी।इसलिए बहुतों को मेरे जीवन में बड़ा विरोधाभास दिखाई पड़ता है। जिन्होंने मेरे प्राथमिक जीवन को देखा है और अब मेरे वचनों को सुनते हैं उनको बड़ी हैरानी होती है! वे कहते हैं : 'आप इन्हीं बातों को तो इनकार करते थे!' इन्हीं को इनकार करता था, क्योंकि ये बातें मेरी नहीं थीं। और वे कहते हैं : 'अब आप इन्हीं बातों को स्वीकार करते हैं।' निश्चित, क्योंकि अब ये बातें मेरी हैं। मैंने बुद्ध को इनकार किया था; अब मैं बुद्ध को स्वीकार करता हूं। मैंने रामकृष्ण को इनकार किया था, अब रामकृष्ण को स्वीकार करता हूं। मैंने उपनिषद, कुरान सबको इनकार किया था; अब मैं स्वीकार करता हूं। लेकिन यह स्वीकृति मेरे अपने अनुभव से आ रही है। मैं अब गवाह हूं। ये मेरे प्रेरणा-स्रोत नहीं हैं, मैं इनका गवाह हूं।और अंततः तुमने पूछा है कि स्वामी विवेकानंद भारत के दूसरे कृष्ण थे।परमात्मा कभी दो व्यक्ति एक जैसे बनाता नहीं। वह उसकी आदत नहीं, वह उसका स्वभाव ही नहीं। व्यक्तियों की तो बात छोड़ दो, तुम दो पत्ते भी एक जैसे नहीं खोज सकते सारी पृथ्वी पर! दो कंकड़ भी एक जैसे नहीं खोज सकते! परमात्मा पुनरुक्ति करता ही नहीं। परमात्मा मौलिक सर्जक है, स्रष्टा है, हमेशा अनूठा बनाता है। कृष्ण को बना चुका एक बार, अब दोबारा किसलिए बनाना? परमात्मा कोई फोर्ड की कार बनाने वाली कंपनी तो नहीं है कि बनाते गए फोर्ड, लाइन पर लाइन लगाते गए, एक सी फोर्ड कारों की कतारें लग गयीं। परमात्मा मौलिक है।कृष्ण एक बार पर्याप्त हैं, दोबारा जरूरत भी क्या है? और कृष्ण दोबारा हो भी कैसे सकते हैं, क्योंकि जिस परिस्थिति में कृष्ण थे वह परिस्थिति दोबारा नहीं होती। अगर दोबारा कृष्ण को लाना हो तो पूरी परिस्थिति को पुनः लाना पड़े। फिर बनाओ कौरव, फिर बनाओ पांडव, फिर द्रौपदी का चीर-हरण करवाओ। बहुत झंझटें होंगी। फिर दुर्योधन बनाओ, फिर चले जुआ, फिर सजे महाभारत। मगर बड़ी गड़बड़ें हो जाएंगी, क्योंकि दुर्योधन भी इस बीच काफी कुशल हो

गया होगा।और महाभारत अब अगर हो तो कोई बचेगा? अणु-बम और हाइड्रोजन-बम हमारे हाथ में हैं—और इतने कि एक-एक आदमी को कम से कम सात-सात बार मारा जा सकता है। यह पूरी पृथ्वी सात बार नष्ट की जा सकती है। वह तो ठीक था, उन दिनों युद्ध एक बात थी, आज युद्ध बात और है। और उस परिस्थिति को तुम लौटा ही नहीं सकते। उस परिस्थिति को लौटाने के लिए तो इंच-इंच फिर पुरानी कथा दोहरानी पड़ेगी। और यह हो नहीं सकता। कृष्ण कैसे पैदा हो जाएंगे दोबारा?और क्या तुम्हें कृष्ण जैसा दिखाई पड़ा विवेकानंद में? न तो बांसुरी दिखाई पड़ती, न मोर-मुकुट। जरा सोलह हजार सखियों की तो कल्पना करो! सोलह भी नहीं दिखाई पड़ती, सोलह हजार की तो बात और है। एक बेचारी भगिनी निवेदिता! उसको भी रामकृष्ण आश्रम के अधिकारियों ने आश्रम में प्रवेश नहीं करने दिया। वह भी आश्रम के बाहर रही, क्योंकि संन्यासी को यह शोभा देता है कि एक स्त्री को आश्रम में ले आए? और विवेकानंद जैसा कमजोर आदमी! अरे कम से कम इतना करना था कि जाकर सिस्टर निवेदिता के साथ बाहर ही रहने लगते। वह भी हिम्मत न कर सके। और कृष्ण की सोलह हजार रानियों में पक्का खयाल रखना, विवाहित तो एक रुक्मिणी ही थी, बाकी तो दूसरों की विवाहिताएं थीं।. . .जिसकी मिली, ले भागे! अब यह न चलेगा, जेलखाने में बंद पाए जाएंगे।यह और युग है, और परिस्थिति है। किस आधार पर कहते हो कि दूसरे कृष्ण? ऐसा तो कुछ भी नहीं है विवेकानंद में, जो तुम कृष्ण से तुलना करो। असल में तुलना ही नहीं हो सकती। कहां कृष्ण, कहां विवेकानंद! विवेकानंद की तुलना तो परमहंस रामकृष्ण से भी नहीं हो सकती; उनकी भी चरणों की धूल हैं।तुम कहते हो : 'उपनिषदों व अन्य भारतीय ग्रंथों के मूर्धन्य विद्वान'। यह मैं स्वीकार करूंगा—विद्वान। मगर ज्ञाता नहीं। विद्वान निश्चित। भाषा के विद्वान, सिद्धांतों के संबंध में कुशल; मगर ज्ञाता नहीं, गवाह नहीं, साक्षी नहीं। व्याख्याकार, टीकाकार। लेकिन ऐसा कुछ विवेकानंद की वाणी में नहीं है जिसको उपनिषद का गौरव दिया जा सके।अब तुम कह रहे हो : 'ऐसे महापुरुष पर आपके मुखारविंद से एक लंबी प्रवचनमाला की अपेक्षा है।' भइया मुझे क्षमा करो। एक ही प्रवचन में सफाया किए दे रहा हूं, ताकि आगे दोबारा कोई यह सवाल उठाए ही न।और तुम कहते हो : 'शंका भी है कि विवेकानंद पर आप शायद नहीं बोलें।' तुम्हारी शंका दुरुस्त है।'कारण कि उनका समग्र चिंतन हिंदू शब्द व हिंदू सभ्यता पर आधारित है। और हिंदू शब्द से आपको घृणा है, ऐसा मुझे कई बार प्रतीत हुआ है। 'हिंदू शब्द से मुझे घृणा नहीं है। शब्दों में क्या रखा है? हिंदू शब्द हिंदुओं का है भी नहीं, दूसरों ने दे दिया है, विदेशियों ने दे दिया है। वेदों में हिंदू शब्द का कोई उल्लेख नहीं है, उपनिषदों में कोई उल्लेख नहीं है। जैसे विदेशी भारत में आए उनके कारण यह पैदा हुआ।विदेशियों की जो पहली शृंखला भारत आयी, उनकी भाषा में 'स' के लिए 'ह' शब्द था। वे स का उच्चारण ह की तरह करते थे। इसलिए सिंधु नदी को उन्होंने हिंदू कहा—हिंदू नदी। और सिंधु नदी पहले पड़ती थी रास्ते में तो इस सिंधु के पार जितने लोग बसते थे, वे 'हिंदू नदी' के पास बसने वाले लोगों को हिंदू कहा।उसके बाद जो दूसरी शृंखला भारत में विदेशियों की आयी. . .आती रही विदेशियों की शृंखला। भारत अपनी व्यर्थ की बकवास में लगा रहा और विदेशी आते रहे और शोषण करते रहे। भारत ज्ञान की बातें करता रहा—'जगत मिथ्या, ब्रह्म सत्य।' और लोग आते रहे और बताते रहे इनको कि सत्य क्या है।. . .जो दूसरी शृंखला आयी, उनकी भाषा में सिंधु के लिए इंदु उच्चारण हुआ। उससे 'इंडस' और 'इंडिया' शब्द पैदा हुए। ये दोनों ही शब्द विदेशी हैं; भारतीयों का इनसे कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन फिर इन शब्दों को भारतीयों ने पकड़ लिया; ये उनके प्रतीक बन गए।कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है कि ऐसे शब्द, जिनका तुमसे कोई संबंध नहीं होता, तुम्हारे प्रतीक बन जाते हैं। इतना ही नहीं, ऐसे शब्द भी जो तुम्हारे लिए शुरू-शुरू में गालियों की तरह उपयोग किए जाते हैं, वे भी तुम्हारे लिए बड़े समादृत हो जाते हैं। ऐसा ही एक शब्द है 'बाबू'। बाबू जगजीवनराम! बाबूजी कहो तो वे एकदम खिल जाते हैं। लेकिन बाबू शब्द गाली है, किसी से भूल कर मत कहना। अंग्रेजों ने शुरू किया, क्योंकि बंगाली मछली डट कर खाते हैं। और पहली दफे अंग्रेज बंगालियों के संपर्क में आए। कलकत्ता उनकी पहली राजधानी थी। इसलिए बंगाली बाबू सबसे ज्यादा बाबू है बाकी किसी

और बाबू से। जैसे तुम पंजाबी बाबू कहो, जंचता नहीं। जंचता ही नहीं—पंजाबी और बाबू! बात जंचती ही नहीं। बंगाली बाबू, एकदम तालमेल बैठता है। उसका कारण यह है कि सबसे पहले बंगाली के लिए ही बाबू शब्द का उपयोग हुआ। बंगाली और बाबू न हो, यह हो ही नहीं सकता।अंग्रेज बाबू कहते थे। बाबू का अर्थ होता है—बदबू सहित। जिससे बास आती हो—बा-बू। वह मछलियां खाओगे तो बदबू आएगी। अब जग्गू भइया को कोई कह देता है बाबूजी—अहा! सोचते हैं बड़ी ऊंची बात कही जा रही है। कहने वाले को भी पता नहीं, सुनने वाले को भी पता नहीं कि गाली दी जा रही है।शब्दों की भी बड़ी यात्राएं होती हैं, लंबी यात्राएं होती हैं। शब्द भी कभी-कभी ऊंचाइयां देखते हैं। घूरों पर पड़े शब्द कभी आकाश के तारे बन जाते हैं। कभी आकाश के तारे घूरों पर गिर जाते हैं। बड़े उतार-चढ़ाव आते हैं शब्दों के जीवन में भी। शब्दों की यात्राएं भी बड़ी अदभुत हैं। शब्दों की यात्राओं को कोई गौर से देखे तो बड़ी हैरानी होती है। कभी जो आदृत शब्द होता है, अनादृत हो जाता है, बाद में। कभी अनादृत था, फिर आदृत हो जाता है। समय बदलता है, परिस्थिति बदलती है।भगवानदास आर्य! हिंदू शब्द हिंदुओं का तो है ही नहीं, विदेशियों का दिया हुआ शब्द है। तुम पकड़ कर बैठ गए और अब उसको शोरगुल मचाए हुए हो बहुत शोरगुल मचाए हुए हो। सिर्फ सिंधी अपने को हिंदू कहें तो चल सकता है। और सिंधी भाषा को हिंदी कहो तो चल सकता है। बाकी पूरे देश को हिंदू कहना, हिंदुस्तान कहना, हिंद कहना और पूरे देश के रहने वालों की भाषा को हिंदी कहना, कुछ अर्थ नहीं रखता।मुझे क्या विरोध हिंदू शब्द से! मुझे कोई घृणा नहीं है हिंदू शब्द से। लेकिन मैं चाहता हूं : मनुष्य एक हो। एक मनुष्य की उदघोषणा करनी चाहिए। सारी पृथ्वी एक हो। ये विभाजन गिरें। ये भेदभाव गिरें, कौन हिंदू, कौन मुसलमान, कौन ईसाई! चैतन्य की उदघोषणा करो। अपने भीतर के परमप्रभु की उदघोषणा करो। उस उदघोषणा के लिए इन सारे शब्दों को गिरा देना चाहता हूं।इसलिए मेरे संन्यासियों का तुम्हें पता ही नहीं चलेगा—कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है, कौन ईसाई है, कौन यहूदी है? यहां सारे धर्मों के संन्यासी मौजूद हैं, सारे देशों के संन्यासी मौजूद हैं। लेकिन कोई पूछता ही नहीं—उनकी जाति, उनका धर्म, उनका देश, कुछ लेना-देना नहीं है। हम तो एक ही बात पूछते हैं : ध्यान। बाकी सब बातें गौण, बाकी सब बातें व्यर्थ।और अंततः तुम कहते हो : 'विशेष प्रार्थना है कि स्वामी विवेकानंद के मौलिक विचारों पर'. . .। एक तरफ तो कहते हो कि वे भारतीय ग्रंथों, उपनिषदों इत्यादि के मूर्धन्य विद्वान थे और दूसरी तरफ कहते हो 'मौलिक विचार'. . .। क्या खाक मौलिक विचार होंगे। विद्वानों के कहीं मौलिक विचार होते हैं! मौलिक विचार तो बुद्धों के होते हैं, विद्वानों के नहीं होते। विद्वानों के विचार तो सब उधार होते हैं। उपनिषद बोलता उनसे, गीता बोलती उनसे; वे खुद नहीं बोलते। वे तो सब ग्रामोफोन रिकार्ड हैं—एच.एम.वी. हिज मास्टर्स वाइस! वह देखा न, चोंगे के सामने कौन बैठा रहता है? वही! मूर्धन्य विद्वान यानी वही!. . .एच.एम.वी. ने भी खूब प्रतीक चुना है! वह मूर्धन्य विद्वान का सार आ गया उसमें। ग्रामोफोन रिकार्ड! दोहरा दिया उपनिषद और मूर्धन्य विद्वान हो गए।तोतों की तरह हैं ये लोग। इन तोतों का कोई मूल्य नहीं है। तोता कितना ही राम-राम जपे, क्या मूल्य है? तोता कितना ही भजन करे, माला फेरे, क्या अर्थ? उसके भीतर तो कुछ नहीं होता। बस राम-राम शब्द की तो गुहार लगा देता है, क्योंकि तुमने सिखा दिया राम-राम तो राम-राम दोहराता है। सब सिखावन की बात है।विवेकानंद के मैंने सारे वक्तव्य देखे हैं। मुझे तो कोई एक वक्तव्य भी मौलिक नहीं दिखाई पड़ा। इसलिए मैं असमर्थ हूं उनके मौलिक विचारों पर 'शुभ्र, सात्विक और सच्चाईपूर्ण नवनीत का प्रसाद' प्रदान करने में। मौलिक विचार ही नहीं, क्या खाक करूं! उसमें कुछ है नहीं, जान नहीं, प्राण नहीं। मौलिक का अर्थ समझते हो? जो मूल से आए। और मूल कहां है? मूल तुम्हारे भीतर है; तुम्हारे प्राणों के प्राण में छिपा पड़ा है; तुम्हारे अंतरतम का नाम मूल है। वहां से जो उठे, वह मौलिक। उपनिषद से आए, वेद से आए, वह कैसे मौलिक? वह तो किताबी है, कागजी है, बासा है, उधार है। तुम्हारी निजता का उसमें कोई दान नहीं है। जो ध्यान में जन्मे, जो समाधि में उठे— जो सुगंध समाधि में उठती है वही मौलिक होती है, बाकी तो सब कूड़ा-करकट है। ढोओ कितना ही, सजा लो कितना ही, काम नहीं

पड़ेगा, वक्त पर काम नहीं आएगा।मैंने सुना, एक महिला एक तोते को खरीद कर लायी। तोते बेचने वाले ने कहा कि आप न लें तो अच्छा, क्योंकि उसे पता था कि महिला बड़ी धार्मिक है। उसने कहा आप धार्मिक हैं और यह तोता जरा रद्दी संग-साथ में रहा है, तो जरा गाली इत्यादि बक देता है। इसको आप न ही लें तो अच्छा। मगर तोता इतना प्यारा था कि महिला ने कहा कि ठीक है, वह तो हम समझा लेंगे, बदल लेंगे, कोई घबड़ाने की बात नहीं है।

महिला लेकर घर आयी। तोते ने आते से ही कहा : 'अरे, नया घर, नयी मालकिन, नयी लड़कियां!' फिर चंदूलाल आए—पतिदेव घर लौटे। तो तोते ने कहाः 'अरे, घर नया, स्त्री नयी, लड़कियां भी नयी, चंदूलाल ग्राहक पुराने के पुराने!'वह एक वेश्या के घर का तोता था, जहां चंदूलाल आया-जाया करते थे। चंदूलाल भी दुखी हुए, महिला बहुत दुखी हुई कि करना क्या अब! 'यह तोता कहां से ले आयी', चंदूलाल ने कहा। 'यह बहुत उपद्रवी तोता है। यह कुछ भी अंट-संट बकेगा।' और बकता था। कोई साधु-महात्मा आ जाए तो कहे—'ए पोंगा पंडित!' सत्संग में रह चुका था।महिला ने कहा : 'करना क्या अब?' पास में ही एक पादरी था। महिला ने पादरी से सलाह ली कि कुछ रास्ता बताओ, आप तो बड़े-बड़ों को सुधार दिए। यह मेरे तोते को सुधार दो।'पादरी ने कहा : 'कोई फिक्र नहीं, मेरे पास भी एक तोता है जो बड़ा भक्त है; जिसे पूरी की पूरी प्रार्थना आती है, बाइबिल के वचन भी आते हैं और सुबह से ही बैठ कर माला जपता है। ऐसा भक्त तोता मैंने नहीं देखा। तू ऐसा कर अपने तोते को यहां ले आ। मेरे भक्त तोते के पास छोड़ दे, सत्संग का असर होगा। दोनों साथ-साथ रहेंगे, सब ठीक हो जाएगा। महीने-पंद्रह दिन में सब बदलाहट हो जाएगी।'सत्संग तो असर लाता ही है। महिला को भी बात जंची। तोते को ले आयी, रख गयी पादरी के तोते के पिंजड़े में। पांच-सात दिन बाद देखने आयी कि हालत कहां तक सुधरी! महिला को देखकर पादरी तो एकदम भनभना गया। उसने कहा : 'ले जा अपना तोता, इसी वक्त ले जा!' महिला ने कहा : 'बात क्या है?' उसने कहा : 'बात कुछ पूछ मत। तू अपने तोते को ले जा, हमें नहीं रखना यह तोता!'दोनों तोते के पिंजड़े के पास गए। महिला भी कुछ समझी नहीं कि बात क्या है। जाकर समझ में आयी। पादरी के तोते ने माला फेंक दी थी। महिला ने पूछा कि तूने माला क्यों फेंक दी? उसने कहा माला जिसके लिए जपते थे वह मिल गयी। वह तोता, जो महिला लायी थी, तोती थी।. . .कि माला इसी के लिए जप रहे थे, प्रार्थना कर रहे थे, सुन ली प्रभु ने। अब क्या जपना माला, अब क्यों जपना माला?तोतों की बातें तो ऊपर ही ऊपर होंगी, भीतर तो कुछ और चलता रहेगा। मौलिकता तोतों में नहीं हो सकती। विद्वानों में मौलिकता कभी नहीं होती। विचार में मौलिकता होती ही नहीं; मौलिकता तो ध्यान में होती है, निर्विचार में होती है।भगवानदास आर्य, ऐसे व्यर्थ के प्रश्न यहां मत उठाया करो। कुछ सार्थक पूछो, दो दिन की जिंदगी है, कुछ काम की बात पूछो—कुछ जो तुम्हारे काम आ जाए; कुछ जो तुम्हारे जीवन को बदल जाए; कुछ जिससे तुम्हारे बंद झरोखे खुलें; कुछ जिससे परमात्मा से तुम्हारा सेतु जुड़े।तुमने नाहक विवेकानंद को पिटवाया। इसमें मेरा कोई जुम्मा नहीं, जुम्मा तुम्हारा है।

आज इतना ही।